श्रीः
संत-चरित्र
ब्रज विभव की अपूर्व श्री
भक्तिमती ऊषा बहिन जी (पू. बेबो)
—विजय एम.ए.

बहन जी के पत्र से–

'त्रिविध समीरण के सुशीतल झोंके यदि किन्हीं अनुरागी किशोर के स्पर्श का सा भान कराते हों तो समझ ले तेरा वृन्दावन से सम्बंध हैं। यह वासन्ती उन्माद यदि इन उन्मादित युगल की झूम का तनिक सा भी भान कराता हो तो तेरा वृन्दावन से सम्बंध है। पंछियों का कल–कल गान किन्हीं रस रंगी के प्यार का तराना सा कहता जान पड़ता हो तो इस रसीली वृन्दाटवि से तेरा सम्बंध है। निर्मल आकाश की स्वच्छ नीलिमा यदि किन्हीं सुकुमार श्यामल किशोर की अंग कान्ति का आभास भर भी कराती हो तो वृन्दावन से तेरा नाता है। लहलहाते पादपों की लहराती शाखाओं को डोलते देख यदि नीलाम्बर पीताम्बर की फहरान हृदय को झकझोर देती हो तो निश्चय ही इस वृन्दा कानन से सम्बंध है। नील नभ में उमड़ घुमड़ कर छाने वाली घन घटाऐं यदि किन्हीं प्रणयी किशोर की लहरा–लहरा उठती केशावली की झांकी करा देती हों तो तेरा वृन्दावन से सम्बंध है। मेध के अन्तर में दमकती विद्युत लहरी यदि पीतारुण छवि सम्पन्न किशोरी राधिका की रसीली छटा का स्मरण कराती हो तो वृन्दावन से सम्बंध है ही। मेह बौछार यदि नेह झरी की सूचना देती हो तो वृन्दावन से सम्बंध हाने में सन्देह क्या ? यह सुशीतल स्निग्ध वातावरण यदि इन प्राण प्रेष्ठ युगल के केलि कौतुक का परिचय सा देता जान पड़ता हो तो वृन्दावन से सम्बंध है––निश्चय से है। यह श्यामल सुखद भोर, कजरारी फूली सांझ, नीरव निशा यदि किन्हीं सुजान सुन्दर का सन्देश दे मन प्राणों में हलचल भर देती हो तो सचमुच ही इस रस धाम वृन्दावन से सम्बंध है।

❑❑❑

प्रधान मंत्री

संदेश

भारतीय संस्कृति में भक्ति एवं भक्त परम्परा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है । बृजभूमि भक्ति की आराधना एवं मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है ।

मुझे प्रसन्नता है कि बृज अकादमी, वृन्दावन शैक्षिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण को लेकर भक्ति-परम्परा के रिक्थ एवं इतिहास के लिए कार्य कर रही है । "बृज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती उषा बहन" ग्रन्थ का प्रणयन एवं प्रस्तुत ग्रन्थ का लोकार्पण बहन जी की 69वीं जयन्ती के अवसर पर वृन्दावन के सन्त-समाज के सान्निध्य में किया जा रहा है ।

इस अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

(पी0वी0 नरसिंह राव)

नई दिल्ली

27 जुलाई, 1994

राष्ट्रपति सचिवालय
राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली - 110004
President's Secretariat
Rashtrapati Bhavan
New Delhi-110004

दिनांकः 27 जुलाई, 1994

प्रिय महोदय,

भक्तिमती ऊषा बहन जी वृन्दावन की भक्ति परम्परा की उन विभूतियों में से एक हैं, जिन्होंने अपने जीवन के कई वर्ष वृन्दावन में गहन चिन्तन में व्यतीत किए ।

राष्ट्रपति जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ऐसे व्यक्तित्व पर ब्रज अकादमी ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रही है ।

इस हेतु राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं ।

आपका,

फ्रैंक नरोन्हा

§ फ्रैंक नरोन्हा §

साधु भक्ति विजय,
ब्रज अकादमी,
वृन्दावन §उ॰प्र॰§

Dr KARAN SINGH

3, NYAYA MARG
CHANAKYAPURI
NEW DELHI-110021

वेदाहमेतं पुरुषम्महान्तं आदित्यवर्णम्

संदेश

भारतीय शास्त्रों के प्रणेता ऋषि महर्षियों तथा मनीषियों के चिन्तन तथा अनुभूतियों के आधार पर जिन ग्रन्थों का प्रणयन हुआ, वही भारतीय संस्कृति का मूलाधार बना और अद्यावधि पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण की सामाजिक परम्पराओं को एक सूत्र में पिरो सामरस्य स्थापित किये हैं।

भक्ति की यह विधा भारतीय विभव का उद्घोष करती भावात्मक एवं बौद्धिक परम्पराओं को समन्वयातात्मक रूप दे विश्व भर के मनीषियों, चिन्तकों की धारणा का आधार बनी है।

भक्ति परम्परा के इतिहास में जहाँ एक ओर दक्षिण के आलवार सन्तों का योगदान रहा, वहीं महाराष्ट्र की परम्परा में सन्त तुकाराम, एकनाथ तथा नामदेव प्रभृति महानुभावों ने अपने प्रेम से भगवान विट्ठल को प्रकट कर अपने हृदय के उद्गारों को व्यक्त किया। सन्त तुकाराम जी के लोकप्रिय भजन तो जन-जन के कण्ठ का हार बन गए। उनकी सामर्थ्य अद्भुत थी।

इधर महाप्रभु चैतन्य की परम्परा ने बंगाल में प्रेम रस सरिणी प्रवाहित कर दी। श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने गुजरात तथा स्वराष्ट्र में भक्ति को पल्लवित और पुष्पित कर दिया। भक्तिमती मीरा के प्रभाव से राजस्थान का कण-कण प्रेममय हो गया। उत्तर में श्री गुरुनानक जी की नाम निष्ठा ने एक अपूर्व परिस्थिति का निर्माण कर दिया।

भक्ति की इन सभी विधाओं का जन्म अलग-अलग क्षेत्रों में होने पर भी प्रचार और प्रसार का मुख्य स्थल ब्रज ही रहा। महाकवि सूरदास, नन्द दास इत्यादि की श्री कृष्ण भक्ति परम्परा को नित्य विहार एवं अचल विहार की अनुभूति से संयुत कर एक नई विधा के सूत्रपात का श्रेय स्वामी श्री हरिदास जी, श्री स्वामी हित हरिवंश जी तथा रसिक राज श्री हरिराम व्यास जी महाराज को ही जाता है।

भक्तों की यह परम्परा आज भी ब्रज क्षेत्र में गौरव को प्राप्त की रही है, उसी की आगे की कड़ी में भक्तिमती उषा बहन जी स्मरणीय है।

......2/....

उनकी अनुभूति अपूर्व थी, उनका व्यक्तित्व अद्भुत था । वास्तव में उनके मन का तार श्यामा-श्याम की मधुर भक्ति से सतत् जुड़ा था, फलस्वरूप अपनी अनन्या सखी के जीवन में एक ऐसे सुयोग क्रम का सूत्रपात हुआ जो दिव्य तथा अलौकिक परम्पराओं के इतिहास को दोहरा रहा है । श्री कृष्ण ने अपनी नित्य परिकर एक सखी को इनकी सन्निधि में भेज अपनी लीलाओं से इनके जीवन को सराबोर कर दिया ।

मुझे प्रसन्नता है कि ब्रज अकादमी के तत्वावधान में ऐसे ही एक महान भक्त चरित्र "ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती उषा बहन जी" ग्रन्थ का ब्रज के सुधि साधकों, विद्वानों, रसिक महानुभावों के सम्मुख श्री कृष्णार्पण समारोह आयोजित किया जा रहा है । ब्रज के इस महान गौरव समारोह के अवसर पर मैं ब्रज अकादमी, ग्रन्थ विमोचन समिति, वृन्दावन, को शुभ कामनाएँ प्रेषित करता हूँ ।

कर्ण सिंह

(कर्ण सिंह)

बुधवार, 27 जुलाई 1994

नयी दिल्ली - 110 021

ब्रज विभव की अपूर्व श्री

भक्तिमती ऊषा बहिन जी

(पू० बोबो)

१. जीवन परिचय

२. कतिपय अनुभूति प्रसङ्ग

३. काव्य

४. श्रद्धाञ्जली

(कतिपय भावोद्गार)

संरक्षक

श्रद्धेय बालकृष्ण दासजी महाराज
वेणु विनोद कुञ्ज, वृन्दावन ।

श्रद्धेय पंडित गया प्रसाद जी महाराज
दान घाटी, गोवर्द्धन ।

श्रद्धेय श्रीपाद बाबा
ब्रज अकादमी, वृन्दावन ।

पूजनीया सुशीला बहन जी
एम. ए.

ब्रज विभव की अपूर्व श्री
भक्तिमती ऊषा बहिन जी (पू. बोबो)

मुख्य सम्पादक

विजय एम.ए.

सम्पादक मण्डल

पू. श्री मनोहर दास जी
पू. श्री बिहारी दास जी 'वृन्दावनी'
आचार्य गोबिन्द शर्मा
आचार्य सत्य प्रकाश सिंह

सहयोग

सुश्री राजदुलारी *(एम.ए., बी.टी)*
प्रो. निर्मल गुप्ता *(एम.ए., एच.ई.एस.)*
राजकीय महाविद्यालय, नाहन (हि.प्र.)

सम्प्रेरयिता एवं मार्गदर्शक :

श्रद्धेय बाबा श्रीपाद जी महाराज

लेखक एवं मुख्य सम्पादक :

विजय एम.ए. 51, बांके बिहारी कालोनी, वृन्दावन-281 124 (उ.प्र.)
फोन: (0565) 442104

प्रकाशक :

स्वामी हितदास जी महाराज 'रसिक पद रेणु', वृन्दावन
एवम् पूजनीया बहन ललिता जी, वृन्दावन द्वारा 'ब्रजनिधि' प्रकाशन हेतु

प्रकाशन :

श्रावण कृष्णा अष्टमी संवत् वि. 2051, तद्नुसार 30 जुलाई 1994 के अवसर पर ब्रज अकादमी, वृन्दावन के तत्त्वाधान में ''रसोपासिका–भक्तिमती ऊषा बहनजू के पावन स्मृति-ग्रन्थ का संत-रसिक-प्रेमी-भक्तों की सन्निधि में श्रीकृष्णार्पण...''

प्रथम बार–1200 प्रतियां

कला सज्जा एवं आकल्पन :

शलभ भारती, आगरा

न्यौछावर: दो सौ इक्यावन रुपये मात्र।

वितरण व्यवस्था:

1. **स्वामी रामेश्वरानन्द जी**
   श्री राधा कृष्ण सखा 'श्री दामा' अखंड संकीर्तन मण्डल
   चार सम्प्रदाय नगर, वृन्दावन (मथुरा) पिन: 281 121
2. **श्री क्षीरोदकशायी विष्णुदास,**
   भक्ति वेदान्त प्रकाशन, 201-डी, रमण रेती, वृन्दावन (मथुरा) पिन: 281 124
   टेलीफोन: (0565) 442620

मुद्रक : राधा प्रेस, गान्धी नगर, दिल्ली-110031

समर्पण

जिनकी अहैतुकी कृपा ने, निज जनों का सम्मिलन सुयोग प्रदान कर अत्यन्त आत्मीयता से सिंचित, पोषित किया, निज धाम में सहज स्थायी वास दे परम अनुग्रह किया उन्हीं रस स्वरूप युगलाराध्य को सादर सप्रेम –

कृपाकांक्षी
विजय

श्रद्धांजली

अनुक्रमणिका

प्रतिपाद्य विषय

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक, रसिक भक्त श्री ऊषा जी का जीवन चरित्र, उनके कतिपय अनुभूति प्रसङ्ग तथा स्वरचित कविताओं तथा पदों का संग्रह है ।

पुस्तक के प्रथम भाग में जीवनी पर प्रकाश डाला गया है । जन्म से लेकर उनके शैशव, अध्ययन-अध्यापन, रचनात्मक क्रियाएें, सन्तों और भक्तों से परिचय, प्रिया-प्रियतम की शास्त्रानुमोदित सेवा प्रणाली, भरपूर व्यस्तता में भी श्यामा-श्याम के लीला-विहार में अभिनिवेश, नित्य सिद्ध देह से स्थिति, तथा प्रिया-प्रियतम की अनवरत बरसती कृपा-ममता की अनुभूति, सभी वर्णन अद्भुत, सजीव, चित्रात्मक एवं भाव प्रधान हैं । वृन्दावन, यहां की उपासना पद्धति का सरस अनुसरण जो उनमें पूर्व से ही संस्कारगत विद्यमान था, देख कर उनकी अभूतपूर्व स्थिति तथा स्वरूप परिलक्षित होता है । उनका मृदुल स्वभाव, मस्ती भरी चाल, रसपूर्ण स्थिति से मैं सदा प्रभावित रहा हूँ ।

दूसरे भाग में उनके कुछ अनुभव प्रसङ्गों का वर्णन है, जो उनकी रसमयी स्थिति का परिचायक, भाव गाम्भीर्य का प्रतीक तथा मधुर रस सम्पन्न स्थिति से ओत-प्रोत है । अनुभूति स्वानुभव का विषय होने तथा प्रयत्न पूर्वक गुप्त रखने के प्रयास पर भी किसी न किसी मिस से छलक कर प्रकट होती आई है- अतः वही सब उसी के परिप्रेक्ष्य में आस्वादनीय है ।

तृतीय भाग में उनके विशाल पद संग्रह से, बानगी स्वरूप कुछ पदों को प्रस्तुत किया गया है । पदों में कलापक्ष तो अपने में महत्वपूर्ण है ही, साथ-साथ भावभिव्यक्ति इतनी मार्मिक और मौलिक है कि मन का तादात्म्य सहज हो जाता है ।

चतुर्थ भाग में श्रद्धाञ्जली के कतिपय अंश दिये गए हैं ।

इस पुस्तक के लेखक मेरे स्नेही अनुज हैं । इनकी पहली कृति 'ब्रजभूमि मोहिनी', जो इनकी आन्तरिक रति की परिचायक है, देख कर इनकी भक्ति भावना, साहित्यिक अभिरुचि एवं हार्दिक सरसता ने मेरे स्नेह में आत्मीयता का संचार किया है ।

ये श्री ऊषा जी के वात्सल्य भाजन तथा उनके प्रति पूर्णत: समर्पित हैं, उनकी कृपा ममता बटोर जिस भावात्मकता तथा सरसता से वर्णन हुए हैं, यह उन महान विभूति का ही प्रसाद है । इनकी भाषा-शैली, भाव शाबल्य, शब्द लालित्य तथा भाषा सौष्ठव, सभी अनुपम तथा अनुपमेय हैं । वर्णन शैली में मन का इतनी गहराई से समावेश है कि चित्र सम्मुख प्रस्तुत हो जाता है । अनेक स्थानों पर लेखक का द्रवित हृदय दृष्टिगोचर होता है ।

मुझे याद है इनकी 'ब्रज भूमि मोहिनी' पुस्तक को देख मैंने एक अन्य सरस ग्रन्थ की अपेक्षा की थी । भक्त परम्परा इतिहास की इस अभूतपूर्व कृति के प्रकाशक के रूप में, मैं स्वयं को गौरवान्वित समझता हूँ ।

अक्षय तृतीय २०५१

सम्पादकीय

भक्ति के क्षेत्र में ब्रज का अपना महत्व प्रारम्भ से ही चला आया है। वास्तव में भक्ति का प्रचार, प्रसार तथा विकास इसी भूमि में हुआ। ज्ञान और वैराग्य अपने दोनों ही अंगों को जीवन प्रदान करती भक्ति यहाँ सर्वत्र नृत्य निरत अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है।

भक्त परम्परा के इतिहास में समय समय पर बहुमूल्य चरित्रों का प्रणयन हुआ है। अनुभूति से परिपूर्ण भक्तों का जीवन, लिपिबद्ध हुई उनकी हृद् तरङ्गें छलक छलक गद्य-पद्य में, पद-पदावलियों में, स्तुति, स्तोत्रों में तथा उनके उपदेशात्मक वचनों में संग्रहीत हुई एक ओर वैष्णव समाज तथा भक्त-परम्परा के गौरव का प्रकाश कर रही हैं वहीं आने वाले साधक जगत के लिये पथ-प्रदर्शन कर उन्हें आश्वासन, प्रोत्साहन दे रही हैं। रसिकों की अनुभूतियों ने ही तो उस अखण्ड ब्रह्माण्ड-नायक ब्रजेन्द्र नन्दन को इस रसमयी चिन्मय भूमि के प्रति आकर्षित कर रखा है। उन्हीं रसिकों की पद-पदावलियों का अनुसरण करना होगा- उसी के लिये ललक लगानी होगी- यही शाश्वत पथ है- राजमार्ग है, श्यामा-श्याम की प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है।

श्री कृष्ण भक्ति परम्परा ही ब्रज का गौरव है। श्री कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों की उपासना का मूल आधार रस,है जो मधुर, उज्ज्वल तथा शृंङ्गार रस के नाम से जाना गया है- इसी की प्राप्ति लक्ष्य है। श्यामा-श्याम तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा ब्रजाङ्गनाओं में यह महोज्ज्वल रस अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। रसिक प्रेमी भक्तों का जीवन इसी के परिप्रेक्ष्य में पूर्णता को प्राप्त होता है। यह कहीं इयत्ता में बंधा नहीं है। अनुभूति एक स्वतंत्र भाव है। श्यामा-श्याम की सतत प्रत्यक्ष तथा प्रकट बरसती कृपा ममता पाकर किसी भी अन्य माध्यम की न तो कोई अनिवार्यता ही दीखती है और न ही कोई औचित्य। परम्परागत चली आ रही मान्यताओं के अतिरिक्त भी एक क्रम है, जो उनका विरोध तो कदापि नहीं है, उसकी भी एक परम्परा है, क्रम है तथा शास्त्र साम्य है, वह सिद्ध क्रम उसी के परिप्रेक्ष्य में आस्वादनीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ लावण्य माधुर्याम्बुधि की रस तरङ्गों में सतत आस्वादन-रता, कभी तन्मयता और विमुग्धता में सरसाती और कभी उस मधुर रसाम्बुधि की लोल-लहरियों में डूब-उतराती मधुर रस सम्पन्ना का इति वृत्त है। जहाँ एक ओर अपने पूर्वाश्रम में इन महाभागा ने उस परिव्यस सत्ता की इच्छा के निमित्त

अपने कर्तव्य का निर्वाह कर उसे पूर्ण समादर दे अपने प्रादुर्भाव के हेतु का समादर किया है, वहीं साथ-साथ उनका हृदय रस-तरङ्गिणी के विक्षुब्ध प्रवाह की भांति अखण्ड माधुर्याम्बुधि में सतत अवगाहन-रत रहा है, दूसरी ओर रस-पिपासा, उर की विगलन तथा पूर्वास्वादित को पुनः पुनः पान करने की लालसा इनके उर में करवटें लेती मचलती रही है- ऐसी ही भाव-दशा से ओत प्रोत जीवन इस भक्त गाथा का प्रतिपाद्य विषय है ।

वृन्दावन चले आने के उपरान्त, उनका मन यहाँ पर सतत गतिमान चिन्मय लीला-रस-विहार-विलास, निकुञ्जान्तर्गत रस-विनिमय की मधुर झांकियों में मग्न रहा है, यमुना-तटीय वन-निकुञ्जों में विक्रीड़ित हुआ है, रस निमज्जित इन ब्रजाङ्गनाओं के प्रिया-प्रियतम सहित विहार में मग्न हुआ है तथा यमुना जल में बिखरा यही मधुर रस प्रवाह शीतल विलेपन बन उनके मन-प्राणों को सरसाता रहा है । अनेक बार रसोच्छलन के मिस छिटकी यह माधुरी अपने रस कणों से सिक्त कर निकटतम हो अपनी अन्तरङ्गता से अनङ्ग रङ्ग रञ्जित करती रही है । यह गाथा, रस गाथा ही है ।

यह रसमयी स्थिति अनेक बार उनके श्रीमुख से निसृत हुई है और अनेक बार उनके हाव, भाव, चेष्टाओं ने यत्किञ्चित् **इसका** भान कराया है । जहाँ एक ओर यह रस वैभव वृन्दावन की रस-स्थली में बिखरा-सिमटा है, वहीं गिरि गुहाओं में, एकान्तिक निकुञ्जों में यही रस अपनी माधुरी से आप्लावित करता रहा है । इन महाभागा की पिपासा वृषभानुपुर में गह्वर वन, सांकरी खोर, दान, मान तथा विलास गढ़ की एकान्तिक स्थलियों, ऊंचे ग्राम की नीरव स्थली में, नन्दग्राम में, ललिता कुण्ड, नन्दबाग, नन्द सरोवर की सुरमणीय स्थली तथा गोकुल के एकान्तिक बीहड़ों में सदा-सदा शमित हुई सी, धन्य होती रही है ।

यही विहार-विलास वैभव उन अनाज्ञात महामानव की रसमसी स्थिति से सर्वत्र सिक्त और सिञ्चित करता, निज में सकुचा-सिमटा एक लम्बे समय तक सभी में बड़ी ही सहजता से विचरण करता रहा है । अनेकों महज्जनों ने उनकी यह रसमसी स्थिति, अद्भुत सामर्थ्य तथा अभूतपूर्व अभिनिवेश का आस्वाद लिया है ।

ऐसे ही शास्त्र सम्मत राजमार्ग का अनुसरण अभीप्सित तथा ग्रहणीय है । प्रेमी भक्त परम्परा के इतिहास में एक कड़ी बन यह भी समादरणीय हो गया है ।

विजय एम. ए.

पुरोवाक् *

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में अग्नि[१] के आख्यान के द्वारा यज्ञ की देव-संस्कृति का विस्तार से वर्णन, अग्नि से यज्ञ को अभिहित करके सृष्टि नियन्ता की जिस महिमा का गान हुआ है, उसके प्रति आकांक्षा एवं अभीप्सा तथा रह-रहकर यज्ञ के पुरोधा के अग्नि-संकल्प का समर्पण यज्ञ के प्रति किया गया है। पुरोधा की इसी आकांक्षा को उपनिषदों के निकटतम तादात्म्य में ज्ञान एवं अभीप्सा के साथ जोड़ते हुए "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥"[२] का उल्लेख श्वेताश्वतर में हुआ तो भूमा विद्या के जिज्ञासु देवर्षि श्रीनारद को ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु श्री सनत्कुमार ने २४ अल्प ब्रह्मों की शिक्षा देने के उपरान्त प्राणों से भी ऊपर 'भूमा' की ओर इंगित किया। श्री नारद की जिज्ञासा जहाँ शान्त हो गई, वहाँ भूमा के प्रति जिज्ञासा को जगाकर भूमा का उपदेश किया।[३] जो प्राणों का भी प्राण है, सर्वत्र व्याप्त है, जिसका बोध होने पर बोध भी समाप्त हो जाता है, स्वयं भूमा ही रह जाता है, वही जीवन का परम अभीष्ट है। यम और नचिकेता के प्रसंग में कठोपनिषद् का आख्यान मृत्यु से अमृत की ओर की जिज्ञासा है, जिसे लेकर नचिकेता यम के समक्ष उपस्थित हुए।[४] और भी अनेक प्रसंगों द्वारा उपनिषदों में इसी अग्नि की सूक्ष्म प्रतिष्ठा के रूप में अभीप्सा व जिज्ञासा को

१. अग्निसूक्त ; ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, प्रथम सूक्त।

२. श्वेताश्वतरोपनिषद्, अ० ४ मंत्र ६ ।

३. श्रीसनत्कुमार द्वारा श्री नारदजी को महाविद्या का उपदेश छान्दोग्योपनिषद् अध्याय ७, प्रथम खण्ड से २२ खण्ड समाप्ति पर्यन्त; पुनः भूमा तत्त्व का उपदेश खण्ड २३ से अध्याय समाप्ति पर्यन्त।

४. कठोपनिषद् अध्याय १, वल्ली १, मंत्र १ से ग्रन्थ समाप्ति पर्यन्त। सदाशिवाश्रम, गंगोत्री द्वारा अनूदित -

"सुरपुर वरदायी अग्नि सो आपको है
विदित, वह मुझ श्रद्धालु को बोलिएगा।
४. अमरपन जिसीसे भोगते स्वर्गवासी
वरद ! वर वही मैं दूसरा माँगता हूँ।" १/१३

यम ने उत्तर दिया-

सारी भी जब हृदयस्थ कामनाएँ
विद्वान् की सुनिरवशेष छूट जातीं।
मर्त्यात्मा अमर तभी सुसिद्ध होता
सो ब्रह्मामृत रस भोगता यहीं है। ६/१४
अज्ञानोत्पन्ना बुद्धि की ग्रन्थियाँ जो
जीते ही सारी छिन्न होती अभी है।
होता निर्मृत्यु ब्रह्म तत्काल मर्त्य
सारे वेदान्तों की यही शासना है ॥ ६/१५

* पुरोवाक् : श्री श्रीपाद बाबा, वृन्दावन

स्थापित किया गया है, अन्ततोगत्वा जिसकी परिणति उप + निषद् = पास बैठना अर्थात् ब्रह्म के समीप अवस्थित होने की धारणा में वैदिक ऋषियों ने प्रतिष्ठित की ।

ब्राह्मण ग्रन्थों, आगमों एवं पांचरात्रों की समीक्षा से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि अग्नि को शुद्ध ज्ञान में प्रतिष्ठित कर अन्तः करण में निरन्तर परम तत्त्व की प्रतिष्ठा का अनुभव, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान के विलय में निरन्तर आनन्द की अवस्था की समाधि में अवस्थित होने का सम्बोधन साधकों के जीवन में 'अग्नि' की ही खोज की चरम परिणति थी । मुण्डक तथा माण्डूक्य एवं छान्दोग्य उपनिषदों में दहर विद्या,[५] और प्रणव उपासना[६] के रूप में जिसकी पराकाष्ठा अन्तः एवं बाह्य प्रज्ञा से भी परे एवं प्रज्ञान घन में इंगित है, अग्नि की वही खोज अन्ततोगत्वा श्रीमद् भागवत की भक्ति अवतरणिका में विरहाग्नि बनकर प्रकट हुई ।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में भक्ति एवं श्रीनारद के सम्वाद में वर्णित हुआ है कि द्रविड़ देश में उत्पन्न, कर्णाटक में संबर्धित किन्तु गुर्जर प्रदेश में छिन्नांगा भक्ति को अपने मुमूर्षु पुत्रों-ज्ञान और वैराग्य के साथ अत्यन्त विकल एवं दयनीय दशा में देखकर परम कारुणिक श्री नारदजी को दया आ गई और उन्होंने उन सभी को वृन्दावन में भेज दिया । श्री नारद ने पहले तो वेदमन्त्रों, तप के फल तथा अन्य उपायों द्वारा उन्हें स्वस्थ करने की चेष्टा की परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । तब श्री सनकादिक के उपदेश से उन्होंने श्रीमद्भागवत का ज्ञानयज्ञ प्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप ज्ञान-वैराग्य को अपने पूर्व स्वरूप की संप्राप्ति हो गई । वृन्दावन आकर, वृन्दावन का अवगाहन अपने उर अन्तर में करके पुनर्यौवनवती भक्तिदेवी के निश्चेतन तनय ज्ञान-वैराग्य ने श्रीमद्भागवती कथा के प्रभाव से अपने पूर्व वैभव को पुनः प्राप्त कर लिया ।

---

५. छान्दोग्योपनिषद् प्रथम खण्ड, अष्टम अध्याय मंत्र एक से द्वितीय खण्ड समाप्ति पर्यन्त दहर विद्या का आख्यान ।

६. माण्डूक्योपनिषद् आगम प्रकरण, मंत्र ८ से १२ तक प्रणव विद्या तथा मुण्डक में सदाशिवाश्रम, गंगोत्री द्वारा इसका अनुवाद है -

समझ इसे ऋषि लोग बोध वृक्ष, कृतमति, वीतरजा, प्रशान्त होते ।
सब-विधि सर्वगतात्मलाभ से वे, स्थिरमन धीर समरत में समाते ॥ ६/५
वेदान्तबोध-परिगम्यार्थ ईश यह जिन्हें सुनिश्चित रहा
संन्यास योग धर नित्य प्रयत्न कर जो शुद्ध बुद्धि रहते ।
वे ब्रह्म रूप निज आलोक कृतनुरूपान्धकार तजते
श्रेष्ठामृताब्धि बन, जन्मादिरूप-विष संताप से बिछुड़ते ॥ ६/६
(ज्ञानवृक्ष का मुक्ति फल, मुण्डकोपनिषद, मं. ६.४/६.५)
प्राज्ञ-तैजस-विश्व-रूप समस्त-दुःख-निवृत्ति में
तुर्य ही सुसमर्थ ईश्वर है सदा व्यय शून्य भी ।
अद्वयात्मक है अशेष पदार्थ के रहते हुए
नित्य दीप्ति बिखेरता विभु-सो श्रुति स्मृति-सिद्ध है । १/१०
(तुर्यका स्वरूप माण्डूक्य, आगमप्रकरण, १/१०)

तात्पर्य यह है कि पहले भक्ति श्रीमद्भागवत में प्रतिष्ठित हुई फिर उसमें अवगाहन करके भक्ति महारानी और उनके ज्ञान-वैराग्य पुत्र, जो जराजीर्ण एवं मुमूर्षु हो गये थे, पुनः चैतन्य, स्वस्थ तथा सबल हुए और विश्व कल्याण के निमित्त बने। भागवत-धर्म की यह प्राण प्रतिष्ठा, भागवत की भक्ति में और भक्ति की भागवत में प्रतिष्ठा, श्री वृन्दावन की महिमा को सुप्रतिष्ठित करती है। भक्ति स्वयं विरह आराधिका के रूप में वृन्दावन की शरण में आती है और उसके यहाँ प्रतिष्ठित होने पर विरह का उपशमन लीलाओं में हो जाता है। इसके कारण प्राणविहीन से हो रहे उसके पुत्रों में वृन्दावन-लीलाओं के अभिनिवेश से पुनः प्राणों का संचार हो जाता है। श्रीमद्भागवत में वृन्दावन-लीलाओं के अभिनिवेश की पराकाष्ठा दशम स्कन्ध की रासपंचाध्यायी में विकसित होती है। महारास से पूर्व-

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

के आप्त एवं रस-संकल्प से श्रीकृष्ण ने वंशी निनाद से महारास लीला का आमन्त्रण सन्देश दिया और काल स्थिर हो गया। दो विरुद्ध धर्माश्रयी ऋतुओं-शरद में वसन्त-का आगमन सम्भव हो गया। राका छह मास की हो गई और शरदोत्फुल्ल मल्लिका के चिन्मय वितान तले महारास क्रीडा का समारम्भ हुआ। मध्य रास में श्रीकृष्ण का अन्तर्धान हो जाना व्रजांगनाओं के हृदयों में विरहताप में परिणत हो गया, जिसने उन्हें प्रेमोन्माद की उस दशा में पहुँचा दिया, जिसमें वे स्वयं श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। यहीं श्रीमद्भागवत में श्रीराधा की प्रतिष्ठा परोक्षता से प्रत्यक्षता में आ जाती है और परमहंस श्री शुकदेव जी अपने गुरुतत्त्व श्रीराधा की गोपनीयता रख नहीं पाते। "अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वर:" कहकर श्रीराधा के चरण चिह्नों का अनुसरण करती हुई व्रजवनिताएँ उनके निकट आ पहुँचती हैं। श्रीराधा और सखियों के इस मंगल मिलन के पश्चात् ही महारास पुनः प्रवर्तित होकर नित्य रास में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ विरह मिलन में और मिलन विरह में समाहित होकर एक दिव्यातिदिव्य आनन्द की अनुभूति का उत्स बन जाता है एवं महारास की नित्यता अखण्ड रूप से बनी रहती है। रास की चरम परिणति के इसी रसतत्त्व को वृन्दावन के अनन्य रसिकों ने अपनी उपासना का विषय बनाया और भगवत्ता एवं ऐश्वर्य से विमुक्त रसराज का प्रवर्तन किया।

वृन्दावन की रसोपासना का आधार बनीं श्रीराधा- गुरुतत्त्व के रूप में और आधेय बने रसिक-शेखर रसराज श्रीकृष्ण। वृन्दावन की उपासना का सूत्रपात यहीं से होता है। रसोपासना के विविध आयामों, आचार्यों की रसपद्धतियों और सम्बन्ध बोधों का उन्मेष विविध रूपों में व्यंजित होता रहा। इसका ज्ञान एवं अनुभव श्रीराधा और श्रीगुरु की कृपा तथा साधक में अभीप्सा की उत्कट लालसा से होता है।

ऋग्वेद के अग्निसूक्तों से लेकर आगमों, उपनिषदों एवं श्रीमद्भागवत की गवेषणा इस अग्नि की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर प्रतिष्ठा को आगे बढ़ाते हुए वस्तुत: प्रेम में प्रतिष्ठित करती है। यह प्रेमतत्त्व वृन्दावन है, जिसकी प्रथम अवधारणा को श्री भक्ति महारानी ने सँजोया, जिसके आश्रय से ज्ञान-वैराग्य ने यहाँ नव जीवन प्राप्त किया। वृन्दावन की उपासनात्मक महिमा का अभिनिवेश हृदय के षोडशदल कमल पर विकसित होता है। तभी रस एवं रसराज का उन्मेष होने लगता है। मानव के मृण्मय देह में वृन्दावन के चिन्मय देह के शतदल कमल का विकास नित्य सम्बन्धों से प्राण को स्पन्दित कर देता है।

रस की यह धारा शताब्दियों से अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित है। महाकवियों एवं महान् रसिकों ने अपने अपने ढंग से इसमें अवगाहन कर इसका आख्यान किया है। महाकवि कालिदास ने अपने श्रेष्ठ महाकाव्य 'रघुवंश' में इन्दुमती से कहलवाया है कि मथुरा-नरेश से विवाह करने पर वह चैत्ररथ उद्यान की समता करने वाले वृन्दावन में आनन्दपूर्वक सहजता से प्रवेश कर सकेगी-

वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः ॥ ६-५०

यही रसधारा पुराणों तथा महाकाव्यों की केलिकुंजों को सम्वर्धित करती हुई 'गीतगोविन्द' से, ब्रजभाषा के रसिक सन्तों की वाणियों से वृन्दावन को सरस बनाती रही और रसिक शेखर श्रीकृष्ण अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधा के लिए अपने कर-कमलों से कोमल किसलय-कुसुम सेज सजाते रहे और उनके पद-पल्लवों को शिरोधार्य कर उत्तप्त तन-मन को शीतल करते रहे।

ऐसे चिन्मय वृन्दावन में प्रवेश पाने के लिए साधक को जिन सोपानों से आगे बढ़ना पड़ता है उनके क्रम का उल्लेख करते हुए श्री भगवतरसिक जी ने बताया है-

प्रथम सुनैं भागौत भक्त मुख भगवत बानी।
द्वितीय अराधै भक्ति व्यास नव भाँति बखानी॥
तृतीय करै गुरु समुझि दक्ष सर्वज्ञ रसीलौ।
चौथे होय विरक्त बसै वनराज जसीलौ॥
पाँचै भूलै देह सुध, छठे भावना रास की।
सातैं पावैं रीति रस श्री स्वामी हरिदास की॥

अर्थात् प्रथम श्रीमद्भागवत और गीता आदि का श्रवण, द्वितीय नवधा भक्ति, तृतीय रसिक गुरु की शरणापत्ति, चतुर्थ वृन्दावन में अखण्ड वास, पंचम देहाभास की विस्मृति, और षष्ठ सोपान पर रास की भावना में प्रतिष्ठित होने के बाद ही सप्तम सोपान पर नित्यविहार की प्राप्ति सम्भव है। इस नित्य विहार का प्राकट्य पार्थिव-वृंदावन और नित्य वृन्दावन दोनों के सम्बन्ध को लेकर हुआ है। पांचभौतिक देश-काल की परिधि से बाहर रसज्योतिर्मय वलय है, जो मानव चेतना को निरन्तर

रस की ओर आकृष्ट कर रहा है। उसका आह्वान सुन कर कोई सहृदय जन रुक नहीं सकता। यही पुकार महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य ने सुनी थी और अपनी ममतामयी वृद्धा माँ तथा नव परिणीता पत्नी को बिसार कर वृन्दावन की ओर निकल पड़े थे। महापण्डित श्री गदाधर भट्ट का पद "सखी हौं श्याम रंग रँगी," सुनकर श्री जीवगोस्वामी ने उन्हें जब श्लोक लिख भेजा-

'अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्मं
अनासाद्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्कम् ।
असंभाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्
कुतः श्यामसिन्धो रसस्यावगाहः ॥'

तब भट्टजी के कानों में वृन्दावन की वंशी बजने लगी और सर्वस्व त्याग कर वे चल पड़े उसकी ओर। महाप्रभु हित हरिवंश घर-परिवार छोड़कर युवावस्था में यहाँ आये तो यहीं के होकर रह गये यह कहते हुए "हित हरिवंश अनत सचु नांही बिनु या रजहिं लिये।" यही तो पुकार ओरछा-नरेश के गुरु रसिकवर श्री हरिराम व्यास ने सुनी थी- और यहाँ आकर गद्गद होकर कहा था-

अब मैं श्री वृन्दावन रस पायौ ।
श्रीराधा चरन सरन मन दीनौ मोहनलाल रिझायौ ॥
सोयौ हुतौ विषय मन्दिर में श्रीगुरु टेर जगायौ ।
अब तो व्यास विहार विलोकत सुक नारद मुनि गायौ ॥

उन्होंने व्यथित होकर यह भी कहा-

साँचौ धन वृन्दावन भैया ।
.... आरत व्यास पुकारत वन में थोरे हि लोग सुनैया ॥

ऋग्वेद के अग्निसूक्तों में पुरोहित द्वारा जिस अग्नि को प्रज्वलित करके यज्ञ का अनुष्ठान करते हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म गवेषणा का सूत्रपात किया गया तथा तत्त्वान्वेषण के पथ को प्रशस्त, वही अग्निरूपी परमतत्त्व वैदिक एवं आरण्यक साहित्य से चल कर उपनिषद्, षडदर्शन, पुराणों में होता हुआ श्रीमद्भागवत की रस-सरणि में पहुँचा। "निगम कल्पतरोर्गलितं फलम्" के द्रष्टा भगवान् व्यास ने समाधिस्थ श्री शुकदेव जी महाराज को समाधि से उतार कर रसाद्वैत की भूमिका में इसका रसास्वादन कराया। समाधि को समाहित करके नित्य लीला में प्रविष्ट शुक द्वारा आस्वादित यह हृदयावर्जक विशुद्ध रस उनके श्रीमुख से निर्झरित हुआ, जिसमें न छिलका था न गुठली और न कर्म के बीज। तैत्तिरीय उपनिषद् के सप्तम अनुवाक् में

"यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।"

यह रस वही तो है, जिसे प्राप्त कर वास्तविक आनन्द स्वरूप रस का निस्सन्देह साक्षात्कार हो जाता है। ज्ञान का विलय रस में हो जाता है और रस की प्रतिष्ठा लीला में हो जाती है। ये लीलाएँ बन जाती हैं व्रजलीला और निकुंज लीला। निकुंज लीला अर्थात् छना हुआ विशुद्धतम रस, जिसका परिपाक हुआ है वृन्दावन

के रसिक अनन्यों की रस पेशल वाणियों में, जिसमें न ज्ञान का बक्कल है और न कर्म के बीज । स्वामी ललित किशोरी देव जी ने इसकी विशेषता बताते हुए कहा है-

''नहिं बकुला नहिं बीज हैं, अद्भुत रस यह आहि ।
पावेगो सोई-भैया, देहि हरिदासी जाहि ।''

इस रसकी परमाचार्या और प्रदात्री श्री ललिता सखी मानी गई हैं । प्राय: समस्त रसोपासक मतों में यह स्वीकृत है । ललितावतार श्री हरिदास के सम्बन्ध में तो यहाँ तक कहा गया है कि-

कूँची नित्य विहार की श्री हरिदासी हाथ ।
सेवत साधक सिद्ध सब जाँचत नावत माथ ॥

वृन्दावन रस-रिक्थ की परम्परा को हृदय में संजोए हुए जीवन के रस उत्स का अनावरण 'महाजनो येन गत: स: पन्था' महाभारत के वन पर्व के इस वाक्य का अनुसरण प्रस्तुत करने का अभिनिवेश, प्रस्तुत ग्रन्थ के चरित्र नायक के जीवन की खोज, उसी प्रकार से अपने मार्ग, वृन्दावन के पथ की ओर प्रशस्त होती प्रतीत होती है जिस प्रकार कि दक्षिण भारत की महान् रसाराध्या भक्तिमती आण्डाल ने अपने प्राण-प्रियतम की पहचान को स्मृति पटल पर जगा लिया था, जो भक्तिमती आण्डाल को अन्ततोगत्वा श्री श्री रङ्गमन्नार के सान्निध्य में आराध्य ही नहीं, प्रियतम के रूप में प्राप्त करने की गाथा बन गयी । भक्ति का वह रोमाञ्च महाप्रभु चैतन्य देव के श्री जगन्नाथ भगवान् के श्री विग्रह में विलीन हो जाने पर उठा । भक्ति उन्मादिनी श्री मीरा जी के द्वारिका में पहुँच प्रियतम में विलीन हो जाने का प्रसङ्ग अब भी उसी रोमाञ्च को हृदय में जगाता है । उसमें देश-काल का सर्वथा अभाव है ।

भक्ति की इस धारा में अरब की सूफी प्रेमोन्मादिनी रबिया के जीवन पर दृष्टिपात करके प्रेम की विलक्षण अवस्था का दर्शन होता है । रबिया अपने प्राण प्रेमास्पद अल्लाह की ऐकान्तिक आराधना को अपने उर में सँजोए हुए मक्का शरीफ पहुँची । उसने प्रेमोन्माद की स्थिति में अल्लाह को पुकारा और कहा, ''यहाँ तक चल कर मैं आई हूँ और यदि मेरी इबादत कबूल है तो काबा चलो स्वयं आकर दर्शन दो, तभी मैं अपनी इबादत को सही मानूँगी ।'' आश्चर्य की बात थी, काबा, 'पवित्र काबा' रबिया को दृष्टिगोचर हो गया । आकाश से आवाज आई, ऐ रबिया ! मैं तुझसे बहुत खुश हूँ । जो चाहे माँग ले । रबिया ने कहा, ''अल्लाह ! यदि तू मुझ पर अधिक प्रसन्न है तो मेरे एक हाथ में पानी और दूसरे में आग दे दे, जिससे कि मैं इस आग से जन्नत को जला दूँ और पानी से दोजख की आग बुझा दूँ, जिससे तेरे चाहने वालों का रास्ता साफ हो जाए ।''

ब्रज की उपासना में 'तत्सुखे सुखित्वं' का भाव प्रेम की उसी बुलन्दी पर पहुँचाने का आदर्श स्थापित करता है । जहाँ-जहाँ, जिस-जिस तरह भक्ति,

विरह एवं रस का पदार्पण हुआ, वह सब व्रज का स्पन्दन तथा व्रजन का अभिनिवेश बन जाता है। भक्तिमती ऊषा बहिन जी के जीवन में यह सब मात्र घटना ही नहीं, यह उनके जीवन का आन्तरिक उन्मेष था, जिसका क्रम सतत उनमें चला आ रहा था। मात्र उसका अनावरण घटना क्रम में हुआ।

श्री बिहारिन देव जी इंगित करते हैं "कूँची नित्य विहार की श्री हरिदासी हाथ"। प्रेम के उन्माद में पगी हुई निकुंज रस की अनन्य उपासिका बहिनजी के जीवन में सम्बन्ध बोध ऐसे ही स्थापित हो गये जैसे कि उनके व्यक्तित्व में निहित उनकी वह सहज सम्पत्ति ही हों। उन्हीं के शब्दों में :-

"श्याम सुन्दर ! इस समस्त जगत के आधार एवं नियन्ता सृष्टि के उत्पादक, पालक तथा संहारक एवं पितामह चाहे जो भी हो किन्तु प्रियतम ! मेरी, जैसे कि मैंने पहले भी कहा, इस पूज्य-पूज्य चिल्लाने से पिपासा शान्त नहीं होती, कुछ कमी सी खटकती रहती है .... । यह ऐश्वर्य तो उन्हें ही मुबारक रहे, जिन्हें यह प्रिय हो। ....

मुझे तो तुम उसी ब्रजकिशोर रूप में भले लगते हो। मेरा प्राण सर्वस्व तो तुम्हारा राधाकान्त वाला मोर मुकुट धारण किये, हाथ में वंशी नचाते हुए, चंचल कमल नयनों से इधर-उधर निहारते हुए, मन्द मन्द मुस्कान ज्योत्स्ना बिखेर कर (प्रेमी) विश्व को विमुग्ध करने वाला रूप ही है।"

अम्बाला के भौतिक वातावरण को भी बहिनजी ने अपने आन्तरिक रस-सर्जन के पर्यावरण में वृन्दावन बना दिया था। उनके आस-पास सब कुछ वृन्दावन की अवतारणा में बदल गया था। उनका स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण, जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्त नित्य लीला के नर्तन में उन्मादित हो चुका था, उनके बालपन से ही उनमें प्रिया-प्रियतम की लीलाओं का उन्मेष होने लगा था, वे उसमें डूबकर, तन्मय हो जाया करती थीं। अपनी रस-स्थिति को उन्होंने उस समय भी इतना अधिक छिपा कर रखा कि सहज कोई भी उसका आभास तक न पा सका। नित्य लीला, प्रिया-प्रियतम का रस-वैभव उनके जीवन को बहुत पहले से ही धन्य कर चुका था। यही कारण था कि अध्यापन की कक्षा से लेकर ऐकान्तिक आराधना तक वे प्रियतम की सतत सन्निधि के तार को अपने पूर्वास्वादित सम्बन्ध से जोड़ चुकी थीं। जैसे-जैसे प्रगाढ़ता बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनकी स्थिति रस एवं रसराज मोदन एवं महामादन भाव की ओर बढ़ती गई। एक प्रसङ्ग में वे स्वयं अपने भाव को निम्न पंक्तियों में लिपिबद्ध कर कह रही हैं।

रुद्ध हो जाता गला तब
मूक हो जाती मुखरता,
क्या कहूँ जाती कहाँ वह,
बोलने की सब सुघरता !

थकित वाणी, नमित लोचन
प्राण ! यह प्रतिबन्ध क्या है ?
पूछते हैं लोग मुझसे
श्याम से सम्बन्ध क्या है ?

कालान्तर में यही स्वर उनके बाह्य अनुबन्धों को तोड़ता हुआ पुनः दूसरी पंक्ति में उनकी अन्तर्दशा को प्रकट करने लगा और वे गा उठीं :-

स्वर मधुरतम आ रहा है ।

....

गीत के मिस बाँसुरी में, आज मेरा नाम ले-ले,
वह मुझे तड़पा रहा है ।
रोक मत आली मुझे, मेरी प्रतीक्षा में कन्हैया
आप भी अकुला रहा है । ..... स्वर ....

सच तो यह है कि प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद के बीच का सम्बन्ध एकांगी न होकर उभय पक्षीय हो जाता है । अतः उस मर्मान्तक वेदना को उन्होंने निम्न शब्दों में दर्शाया है :-

आ सखी उस ओर चल तो,
देख झुरमुट में छिपा वह कौन रस बरसा रहा है ?

श्रीमद्भागवत की रास पञ्चाध्यायी की रस सरणि में गोपिकाओं ने श्री कृष्ण-लीलाओं का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया । वे स्वयं को श्री कृष्ण ही मानने लगीं ।

महाप्रभु चैतन्य गया स्थित चिन्मय श्री विष्णुपाद का स्पर्श कर महाभाव की भूमिका में आविष्ट हुए थे और वही आवेश सतत बन गया था । नवद्वीप लौटने पर वह परिपक्व और प्रगाढ़ हो चुका था । उनकी वह महायात्रा अब पाठशाला में व्याकरण के सूत्रों का अध्यापन कराने में श्रीकृष्ण विरह के मौन से वातावरण को गम्भीर करने लगी थी । अनेक विद्यार्थियों के प्रश्न करने पर भी वे बहिर्मुख न हो पाते थे । 'अब मैं व्याकरण पढ़ा न सकूँगा'- अतः अश्रुपात में ही वातावरण आन्दोलित हो उठता ।

स्वामी रामतीर्थ संन्यास से पूर्व क्रिश्चियन कालेज, लाहौर में गणित के अध्यापक के रूप में कार्य कर रहे थे । उनके प्रेमातिरेक का अवतरण हो चुका था । वे उससे आन्दोलित रहा करते थे । रावी-तट पर अपनी एकान्त भावना में मग्न हुए, वे सजल घनों को सम्बोधन कर अपने व्याकुल हृदय की उमड़न को श्यामसुन्दर तक पहुँचाने की प्रार्थना करते थे । रावी के तट पर वृन्दावन के वितान की सृष्टि करते हुए वे सूरसागर के पदों में रह-रह कर अवगाहन करते हुए कालबाधित सीमाओं को लांघ वृन्दावन के पटल पर पहुँच जाते । अध्यापन के समय उनकी यही

अवस्था बाधक होती रही । वे कहते ....

"हे कृष्ण ! तू सब जानता है, फिर मुझसे पूछ रहा था !" विद्यार्थियों की समस्याएँ स्वतः हल हो जातीं । 'श्री कृष्ण' मेरे अध्यापन कार्य की चिंता करने लगे हैं यह जान उन्होंने अवकाश लेने की घोषणा कर दी ।

उधर बनारस विश्व विद्यालय में दर्शन शास्त्र के सर्वप्रथम प्रो० रोनाल्ड निक्सन (कृष्ण प्रेम) भी रागानुगा भक्ति के शिखर पर पहुँच चुके थे । उनके मन की लहरियाँ निरन्तर सात्विक भाव के झरोखे से निर्झरित होने लगी थीं । दर्शन के महान् पण्डित वे अध्यापन से विमुख हो पं. मदनमोहन मालवीय जी से बोले, "अब मैं अध्यापन में असमर्थ हूँ, विद्यार्थियों से अन्याय करना ठीक न होगा ।" मालवीय जी ने अध्यापन का प्रस्ताव पुनः रखा, किन्तु उस धारा के कारण पुनः अध्यापन का प्रस्ताव वे स्वीकार न कर सके । फलतः उनकी वृन्दावन से हिमालय की आध्यात्मिक यात्रा का सूत्रपात हुआ ।

साठ के दशक में ही समानान्तर घटना की पुनरावृत्ति बहिन ऊषा जी के जीवन में देखी जा सकती है, जब वे अपने प्रिय छात्र-छात्राओं के बौद्धिक आदान-प्रदान के द्वार से जिज्ञासुओं के भावनात्मक द्वार खोल चुकी थीं और स्वयं को अप्रसक्त पाती थीं कि वे पाठ्यक्रम जारी रख सकें । अनेक बार अपने आराध्य को ही कार्य सम्पादन में देखतीं, उनकी अनेक लीलाओं का अनुभव कर तन्मय हो जातीं, अपने साथ उनको संलग्न और रत देखतीं । एक अपूर्व स्पन्दन उनके अध्यापन में था, जिससे सुवासित समाज मुग्ध रहता ।

अपूर्व स्नेह और आत्मीयता से सराबोर उनके विद्यार्थी मन्त्र-मुग्ध रहा करते थे । सहज प्रीति से आन्दोलित अपने प्रियतम को इस प्रकार देख वे कैसे कार्यरत रहतीं ? अन्ततोगत्वा उन्होंने विद्यालय के न्यास के सामने अपना अभिप्राय स्पष्ट कर दिया । वही उनके जीवन का बुद्धि के द्वार बन्द करने का उपक्रम था । वे प्रेम के संन्यास में दीक्षित थीं । यह घटना इसी दशक की थी, जब गंभीर संकेत मिलने लगे थे और नित्य सखी स्वरूपा सखा जी महाराज का प्रादुर्भाव उनकी स्मृति में प्रकट हुआ था । वे नित्य साम्राज्य की भाषा से अधिकाधिक परिचित हुईं । तभी उनकी बौद्धिक प्रतिभा के आवरण का पटाक्षेप हुआ । उनके जीवन में आध्यात्मिक नव जागरण हुआ जो उनके जीवन की प्रेमपाठशाला के रूप में उन्हें चिरकाल से अभीप्सित था । सखा जी महाराज के आगमन से उसमें अतिरिक्त सरसता आ गई ।

जीवन की साधना के पूर्वार्ध काल के लगभग तैंतीस वर्ष श्री श्रीमन्महाप्रभु चैतन्य की भाँति उनके घर (अम्बाला) में ही व्यतीत होने पर भी बहन ऊषा जी 'समग्र' से स्वयं को जोड़े हुए, अपनी प्रणय-पिपासा को, प्रज्ज्वलित विरहाग्नि को, उस क्षण के लिये अपने उर में संजोए थीं, जब अपने जीवन के उत्तरार्ध समयावधि सहित सत्रह नवम्बर १९५९ को पिता की अत्यन्त दुलार दृष्टि, अपने

विद्यार्थियों के स्नेह बन्धन एवं लोक मङ्गल की प्रवृत्तियों को लांघ विक्षुब्ध रस-तरङ्गिणी की भाँति श्री वृन्दावन में आ पहुँचीं, श्री कृष्णावगाहन की उत्कट इच्छा लिये, तटीय कुञ्ज-निकुञ्जों में रास-विलास-विहार में सम्मिलित होने की प्रबल लालसा लिये, उस चिन्मय वृन्दावन के हीरक मणिमय रज से अभिषिक्त, अभिलिप्त होने के लिये। श्रीवृन्दावन बिहारी जी महाराज की दृष्टि से दृष्टि मिली और दृष्टि मिलते ही वृन्दावन उनमें समा गया। वह अवस्था जिसकी वे एक-एक क्षण बाट जोहा करती थीं, वही तो इस क्षण की अक्षुण्णता थी।

चैतन्य महाप्रभु के नीलाचल की ओर प्रस्थान से पूर्व श्री अद्वैताचार्य के घर शान्तिपुर में नित्य ही नीलाचल प्रस्थान का कार्यक्रम बनता, परन्तु टल जाता। भक्तों और स्वजनों के कष्ट की सीमा न थी, एक दिन वह दु:खद समय आ ही पहुँचा। भक्तजन पछाड़ खा-खा कर रोदन करने लगे। ऐसे करुणामय दृश्य को देख अद्वैताचार्य जी ने कहा, प्रभो ! मेरा हृदय ही कठोर है। मुझ में आपके श्री चरणों के प्रति अनुराग का अभाव है। प्रभु ने कहा, ''मैंने आपके प्रेम की गाँठ बना कर अपने वस्त्र में बाँध रखी है, और लो ! खोल रहा हूँ।'' उसे खोलते ही आचार्य मूर्च्छित हो गिर पड़े।

कुछ यही अवस्था बहिन जी के जीवन में अम्बाला से प्रस्थान करते समय देखी जा सकती थी। उनके अनेकानेक शिष्य, स्वजनों के भीतर यह घटना प्रेम का कारण बनी और अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तों के अनुसार जिस बात का आग्रह परमात्मा से जोड़ने का बना, प्रतिपादित हुआ, वह साधक के जीवन में घटित होता है। वह केवल वैचारिक अथवा काल्पनिक नहीं दीखता। जीवन-पटल पर जब प्रेम का प्राकट्य होता है तभी सिद्धान्त और साक्षात्कार का संगम होता है और 'समझ' को समझ आती है।

उन्हें कतिपय दिवसों पश्चात् वृन्दावन के एक रसिक साधक श्री मनोहर दास जी दर्शनोपरान्त मदनमोहन मन्दिर के पार्श्व स्थित नीरव स्थान पर ले गए, जहाँ विराजमान एक विलक्षण रस-विभूति श्री बालकृष्ण दास जी महाराज अपने कतिपय भक्तों के सहित उस नीरव रात्रि में मौन संलाप मग्न थे। ऊषाजी के मन में पूर्व से ही यह सब 'वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे' की भाँति महारास का चिन्तन मनन चल रहा था।

इस प्रकार श्री धाम की पावन सरस भूमि में रात्रि-दिवस व्यतीत होने लगे। इनके वृन्दावन आ जाने की बात अनेक रसिकों और भक्तों के लिये भी आनन्द का कारण बन गई। ऊषा जी के पदचाप की आहट अम्बाला से वृन्दावन को ध्वनित करने में सतत काम कर रही थी। उनकी मूक साधना ने अनेकानेक भाई-बहनों के जीवन को वृन्दावन का मूक आमन्त्रण दिया, जो वृन्दावन की सूक्ष्म आन्तरिकता को जानने वाला पाथेय बन गया। वृन्दावन में उनके निरन्तर सान्निध्य युक्त

सरोवर में, सरस रस कालिन्दी में विहार करने वाली अष्टयाम उपासना बन गई । वे अपने उपास्य ठाकुर श्री राधाकृष्ण (सेव्य स्वरूप) को लेकर उनके साथ ऐकान्तिक संलाप में ही रहा करती थीं । वृन्दावन में भी उनका जीवन एक परिव्राजक के रूप में बना रहा । एक स्थान पर वे अधिक समय न रहती थीं ।

मेघाच्छन्न नभ मण्डल में कौंधती सौदामिनी की भाँति उनके हृदय की तरङ्गें प्रकट हो-होकर भी छिपी ही रहतीं ।

देश-काल कहीं उनसे दूर खड़ा उनके सम्बन्ध बोध की आहट पाने को निरन्तर प्रतीक्षा करता रहता और ऊषाजी आठों याम प्राण-द्रवण सेवा में इतनी अधिक निमग्न रहा करतीं कि इन्हें देह की सुधि बहुत कम रहती । अपनी बेसुधि में वे अन्यावश्यक कार्य ही करतीं । प्रियतम ने जैसे सब कुछ ले बाह्य आचरण सीमित ही कर दिया था ।

नित्य लीला में उनका अनुसन्धान, रसकी चरम ऊँचाइयों में पहुँच गया था । एक विलक्षण घटना जो एक युगीन सन्दर्भ में आश्चर्य किन्तु सत्य को लेकर प्रकट हुई, वह थी, ३० जुलाई सन् १९५४ वर्ष में नित्य लीला परिकर की एक सखी का प्रादुर्भाव ।

भौतिक जगत् में घटित होने वाली विलक्षण घटनाओं के साथ-साथ पराभौतिक घटनाओं का यदा-कदा पटाक्षेप होता रहता है ।

परमहंस योगानन्द जी ने अपनी आत्मकथा में नित्य सिद्धावस्था में विराजमान महायोगी श्री बाबाजी महाराज के साथ श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय की भेंट के सन्दर्भ में ३४वें परिच्छेद में उल्लेख किया है :-

'परम कारुणिक बाबाजी महाराज ने करुणाकर उन्हें हिमालय की उपत्यका में उस सन्ध्या वेला में, जब रात्रि, चैतन्य के उस लोकान्तर परिवेष की ओर थी, एक कम्बल की ओर संकेत कर कहा-

"उस आसन को पहचानते हो ?"

"नहीं महाराज ! मैं नहीं पहचानता ।" भयविह्वल होकर लाहिड़ी महाशय ने कहा ।

बाबा जी महाराज की दिव्य दृष्टि को पाकर लाहिड़ी महाशय कुछ देखने में समर्थ हो सके और उनके भीतर वह महास्मृति जाग्रत हुई, जो देश-काल से परे थी । प्रसङ्ग लाहिड़ी महाशय के जीवन में बाबा जी महाराज के रूप, विचार को सतत ज्योतिर्मय कर देने वाला था, जो कालान्तर में योगिराज लाहिड़ी महाशय के जीवन का मार्ग प्रशस्त करता रहा और उनके द्वारा अनेक साधकों के जीवन में प्रकाश दर्शाता रहा । लाहिड़ी महाशय को उत्तराधिकार प्राप्त हो गया। *कालान्तर में योग की परम्परा वृन्दावन की कात्यायिनी पीठ से स्वामी केशवानन्द द्वारा प्रचलित हुई ।*

क्रियायोग की सिद्धि को लेकर जाग्रत करने में समर्थ हुई मानव की स्मृतियों में ऐसी बहुत सी विलक्षण घटनाएँ इतिहास की पृष्ठभूमि में निश्चय ही एक आनन्द निकेतन है ।

श्री विजय कृष्ण गोस्वामी को उनके परम गुरुदेव ने हिमालय में जिस अवस्था में योगारुढ़ किया, उनके मस्तिष्क में सहस्त्रदल कमल खिल उठा और अमृत का आस्वादन हो गया तब उन्होंने आदेश दिया- वृन्दावन जाकर लीलानुसन्धान करो, तभी तुम्हें सखी स्वरूप की सिद्धि मिलेगी। यहाँ, वृन्दावन आकर वे रस का अनुसन्धान करने लगे । उन्होंने पूछा, इस अवस्था में प्रवेश पा पुन: पठन क्यों ? उन्होंने उत्तर दिया, 'यदि पहले करते तो बुद्धि आड़े आती। अब इसलिये कि, जो साक्षात्कार हुआ है, उसकी पुष्टि शास्त्रों में वर्णित है ।'

इसी प्रकार का एक अनूठा सङ्गम ऊषा जी के जीवन में सखी देह अवस्थित सखा जी महाराज के प्रादुर्भाव से हुआ था, जिसका अध्याय अम्बाले में प्रारम्भ हो वृन्दावन में सम्पूर्णता को प्राप्त हुआ ।

सखा जी का आविर्भाव बहिन जी के वृन्दावन उपासना जीवन में निश्चय ही एक विलक्षण घटना है ।

शास्त्रों में जो कुछ प्रकाशित हुआ और साधकों ने जिसे अपने जीवन-पटल पर उतारा है, उसकी कालजयी पुनरावृत्ति ऊषाजी की वृन्दावन उपासना की उत्तर जीविका में परिपूर्णत: देखी जा सकती है जबकि उनका पूर्व जीवन भी इसी से साङ्गोपाङ्ग परिपूर्ण था। ऊषाजी का जीवन एक ऐसे सुपुष्ट तथा प्रकट रस प्रकाश से प्रारम्भ हुआ है, जहाँ प्रिया-प्रियतम का अमित अगाध लाड़-प्यार तो बरसता ही रहा- उन्होंने अपनी अत्यन्त सन्निकटता तथा आत्मीयता निरन्तर बनाए रखी । यदि कहा जाए कि वे अत्युच्च, श्रेष्ठ सिद्ध महानुभावों की भाँति नित्य लीला-परिकर में विशिष्ट स्थान लिये अत्यन्त अनन्या सखी थीं तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । क्षण भर का अलगाव भी ऊषाजी को असह्य हो जाता था- वे नित्य उसी सामीप्य और रस लालसा के लिये कातर, आकुल, व्याकुल बनी रहतीं। नित्य संयोग में मग्ना अपनी अभिन्नप्राणा सखी की ऐसी व्याकुलता देख, प्रिया-प्रियतम ने उन्हें आश्वासन प्रदान करने, अपने लीलास्वादन का सौभाग्य प्रदान करने, निकुञ्ज लीला रस से अभिषिञ्चित करने हेतु अभूतपूर्व लीला सुयोग जुटा चिन्मय शरीरी सखी रूप में श्री सखा जी महाराज को भेजा। सुरस लीलाओं का यह क्रम सन् १९५४ से सन् १९९१ तक चलता रहा, यद्यपि करुणा-वरुणालय शिव गुरु रूप में पूर्व में ही प्रतिष्ठित हो चुके थे ।

नित्य सिद्ध देह से श्री कृष्ण आदेश से प्रकट हो सखा जी महाराज का सत्संग निरन्तर वर्षों तक चलता रहा। सखा जी महाराज की नित्य सञ्चारी लीला

एवं बाह्य संचारी सम्बन्धों का गाम्भीर्य, वृन्दावन पथिकों के लिये अभूतपूर्व सन्देश बन गई, जिसके प्रत्येक भाव क्रम का प्रारम्भ एवं उपसंहार 'जय जय राधिका माधव' के साथ हुआ है।

सघन घनाच्छादित नभ से प्रकृति का आँचल सरका और सूर्य की किरणें भूतल पर आ विश्राम करने लगीं :-

१. *''आज सर्वथा यह नई बात हुई कि प्रियतम अब भी यों ही खड़े, प्राण प्रेयसी को अवलोक रहे थे। दौड़ कर उन्होंने प्रिया को प्रणयदाम बद्ध नहीं किया। अब श्री राधिका ने नयन खोले और एक बार चारों ओर देखा, फिर एक निःश्वास ली और कुछ सोच कर पास ही के वर्षा विहार कक्ष में, प्रविष्ट हुईं। प्रियतम देखते रहे। कु छ ही क्षणों में प्रिया जी बाहर आ गईं। उनके कुसुम कोमल करों में दूर्वादल सी हरी महीन जाली देख प्रियतम विस्मय में भर गए।''*

२. *एक अन्य प्रसंग में 'मध्याह्न के समय श्यामसुन्दर किसी निकुञ्ज में रसाधीर हो उस विशाल शिला पर बैठ गए। एक बार जी चाहा कि वंशी के रस-ग्राही, रस-प्रवाही रन्ध्रों में अपनी विकल प्रणय बेबसी का संदेश भर अपनी प्रियतमा, प्रेयसियों को खींच लें पर आज उनकी दशा विचित्र थी .... उधर अपने कक्ष में तोषक के सहारे आधी लेटी श्री राधिका सामने के खुले वातायन से बाहर देख रहीं थीं .... उसी भाव-मयंता में खोई सी प्रणय-मत्ता श्री राधिका चल पड़ीं, कहाँ ? यह उन्हें भी ज्ञात न था। वह चलीं और चलती चलीं गईं, एकाकिनी, रसोन्मादिनी। रागानुराग का हर पथ प्रिय मिलन वीथिका में ही लय होता है। प्रणय में पगा प्रत्येक पग प्रिय-मिलन मन्दिर में ही पहुँचता है। सर्वथा अनजान में गमन करती हुईं श्री श्री राधिका उसी उद्यान में जा पहुँची, जहाँ नारंजी परिधान-वेष्ठित उनके प्रतीक्षाकुल प्रियतम बैठे थे।'*

विमुग्धता और तन्मयता में प्रेमी हृदय अपने ही गन्तव्य पर जा पहुँचते हैं। लीला में विमुग्धता, तन्मयता तथा सजगता का समन्वय तथा सामञ्जस्य नित्य उपासना की सतत सरिणी थी। यही कारण था कि सखा जी महाराज की कृपा समय-समय पर आकर नित्य लीला को प्रकाशित करती तथा विमुग्धता और सजगता की संधिनी शक्ति के रूप में संचारित व निर्झरित होती रहती थी।

एक अन्य प्रसङ्ग में ''संध्या की सुरमयी सुषमा, सौन्दर्य सुधा निलय की सुरीली स्वर लहरी से कूजित हो उठी। वे रसिक नागर वंशी के रन्ध्रों में सुधा रस उँडेल अपने उर अन्तर की रस लालसा का संदेश दे रहे थे- सखियों सहित श्री राधिका की वह सुखद वार्ता उस स्वर लहरी में लय हो मूक हो गई! उनके प्रतीक्षारत सरस नयन द्वार पर लग गए। किसी ने उठ कर वातायन से झाँका, कोई अलिन्द में आ खड़ी हुई, पर दो, चार बालायें और श्री राधिका भीतर ही बैठी रहीं। कुछ ही क्षणों में वह सरस नाद बन्द हो गया, पर उसके स्रष्टा वे रसिक शेखर स्वयं ही (अपने

अनजाने में) वहाँ उपस्थित हो गए।"

इस प्रकार का अद्भुत संदेश, सत्संग व लीला का प्रवाह भौतिक रूप में ऊषाजी की करुणामय उपस्थिति में सुलभ हुआ, *पात्रता के अनुसार स्वजनों तथा अन्य महानुभावों ने उसे ग्रहण किया।*

वे संजो गईं एक निखिल रस ब्रह्माण्ड को, एक अव्यक्त-रस सिद्धान्त को जो सदा-सदा के लिये मुखरित होता रहेगा और जब-जब साधकों के हृदय में इसकी प्रबल लालसा होगी तो पुनः यही सम्वाद सखा जी द्वारा दोहराया जाएगा। जिन्हें, जब, जहाँ इसकी माँग होगी उन्हें मिलेगा, यह अकाट्य सत्य है। सजग प्रहरी की भाँति अथवा आलोक स्तम्भ की भाँति पथ प्रशस्त कर, इस भवाटवी से हट उस रसाम्बुधि नित्य रसराज का सभी कुछ अत्यन्त सुखद आश्चर्यमय है, उसके प्राकट्य और संवरण की बात निराली ही होती है, उसकी अपनी मौज और अनुशासन होता है, वह सब उनकी कृपा से ही सुलभ हो पाता है।

कठोपनिषद् की आख्यायिका ठीक ही कहती है :-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम्॥

समय बीतते देर न लगी। उनको १९९१ वर्ष दिसम्बर मास तक सखा जी ने अपनी अन्तिम किन्तु नित्य नूतन उपस्थिति का परिचय दे लीला संवरण कर लिया। वह सन्देश जो वर्णित हुआ, वह प्रियतम श्याम सुन्दर की अपनी कृपामयी सौगात जो ऊषाजी के लिये उनकी छियासठवीं वर्ष गाँठ पर उसी रस निलय से प्राप्त हुई :-

जय जय राधिका माधव।
रहहु प्रफुल्लित रैन दिन, युगल प्रेम लवलीन।
प्रेम सरोवर मँह पलहु, जैसे जल मँह मीन॥

(नित्य सिद्ध देह प्राप्त श्री सखा जी)

यह आशिष नित्य सिद्ध देह में विराजमान सखा जी से प्राप्त हुई, जो सदा सर्वदा के लिये उषा बहिन के उपास्य ठाकुर प्रिया-प्रियतम के रूप में आज भी अनुगुञ्जित है।

नित्य सिद्ध देह में अवस्थित श्री सखा जी महाराज की दृष्टि में, किसी का भी विरोध न होकर एक समन्वयात्मक दृष्टि, रस में सावचेत रहकर यह विमुग्धता निरन्तर आगे बढ़ती रही है। 'प्रतिक्षण वर्द्धमानं' ही प्रेम का स्वरूप है। गौड़ीय दर्शन का परकीया भाव, नित्य तथा निकुञ्ज विहार-विलास, पुष्टि मार्ग का राग-भोग, सेवा तथा शृंगार, श्री सम्प्रदाय की वृन्दावन की रस-उपासना पद्धति के अनुकूल गोदा- रङ्गमन्नार की मधुर उपासना तथा वृन्दावन के रसिक हरित्रयी की निकुञ्जोपासना

अलग-अलग भावना होकर भी उनमें सभी कुछ पूर्णतः पूर्णरूप में समाविष्ट था ।

सखा जी महाराज के अनुभवों को 'समन्वय दर्शन' कहा जा सकता है, जो अपने आप में प्रतिपादित है, सब कुछ के साथ प्रतिपाद्य है, सभी सिद्धान्तों के साथ समान एवं प्रतिपादित है ।

यही नहीं वृन्दावनीय उपासना में, रसिक अनन्यता के सोपान में, रसोन्मादिनी ऊषा बहिन के जीवन में कुछ विलक्षण क्रम है और यह सम्पूर्ण रस एवं शास्त्रोक्त, अनुशासन से अनुस्यूत है ।

'शिव पुराण' की एक आख्यायिका से श्री पार्वती कृष्ण, शिव श्री राधा रूप में विरुद्ध धर्माश्रयी भाव से प्रकाशित हैं । पार्वती-क्षेत्र का वर्णन है जहाँ पुरुष भाव का प्रवेश नहीं है, वहाँ पुरुष जाति व संज्ञा समाप्त हो जाती है । वृन्दावन के महारास में शिव-पार्वती का अभिनिवेश इसी आधिकारिक तथ्य की स्थापना करता है । बहिन जी के गुरु रूप भगवान् शंकर ने प्रकट होकर उन्हें सखी भाव प्रदान किया तथा अपने आराध्य श्री कृष्ण की भक्ति ।

ऐश्वर्य विमुक्त नित्य रस के एकमात्र उपभोक्ता हैं- शिव । पार्वती का कृष्ण रूप में और शिव का राधा रूप में परिवर्तन वृन्दावनीय उपासना को ही पुष्ट करता है । वे नित्य केलि में निमग्न हैं । वृन्दावन ही पुरुष संज्ञा की वर्जना का केन्द्र है- सखी देह से ही इसमें अवगाहन किया जा सकता है ।

'व्रज विभव की अपूर्व श्री' ग्रन्थ की संरचना का श्रेय उन्हीं के कृपावारि सिञ्चित, उनके श्रेयस् अभ्युदय से पोषित जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन के कारण साधुभक्त महात्मा विजय को जाता है । वे अति किशोरावस्था के अध्ययन काल से एक विद्यार्थी के रूप में गुरु चरणों में आकर जुड़े और यह एक शिक्षा के माध्यम और विकास की कड़ी थी, जो बहुत गहरे किसी सुदूर अध्याय से उनको जोड़े हुए थी, जो अबोध में बोध की संरक्षक बन कर कालान्तर में जीवन में स्थायी, त्याग एवं वैराग्य के जागरण के साथ स्थिर हो गई । जीवन में परिवर्तन की बात एक सापेक्ष्य अध्ययन है । साधकों के जीवन में विलक्षण परिवर्तन की घटनाएँ महापुरुषों की जीवन गाथा से प्रकट होती आई हैं । यही बात युवक विजय के पूर्वाश्रम के हृदय में लग गई थी । श्री राधा-कृष्ण के नयन-सायकों से विद्ध इनके हृदय में ऊषा बहिन जी जैसी कारुणिक गुरु एवं स्नेहमयी बहिन तथा वात्सल्यमयी माँ के रूप में त्रिपथगा बन गईं, जो ज्ञान-गङ्गा एवं भक्ति-कालिन्दी तथा रस-सरस्वती की त्रिवेणी के रूप में जीवन में सङ्गम बनी । अपने आराध्य गुरु तथा आराधक चरित्र नायक भक्तिमती उषा जी के इतिवृत्त को जिस विलक्षण प्रतिभा से अंकित करने का महात्मा विजय ने प्रयास किया है, वह निश्चय ही बौद्धिक सामर्थ्य से बाहर है । घटनाओं के इतिवृत्त के साथ पूर्ण न्याय करते हुए इन्होंने भाषा-शैली, साहित्यिक-सौष्ठव तथा अद्भुत भावाभिव्यक्ति प्रदर्शित की है ।

जीवन में जिस आर्ष परम्परा को श्रेष्ठ गौरव प्राप्त हुआ है, इसका प्रारम्भ त्याग से ही हुआ है और पर्यवसान सम्पूर्णता में बदल गया । उपनिषद् की उद्गीथिका में शान्ति पाठ है :

वह पूर्ण प्रभु, यह पूर्ण जगत् उठ पूर्ण से पूर्ण यही पड़ता ।
कर पूर्ण से पूर्णपना ग्रहण परिपूर्ण परेश्वर ही रहता ॥ ***

इस ग्रन्थ का लेखन, सम्पादन इसी विलक्षण कृपा एवं प्रतिभा से उपकृत है ।

श्री रामकृष्ण परमहंस देव के सान्निध्य में आने वाले उनके अन्तरङ्ग जनों की पहचान का उल्लेख स्वयं परमहंस देव द्वारा किया गया है, एक बार उन्हें महाप्रभु चैतन्य के महासंकीर्तन में दर्शन हुआ और यह सारा चिन्मय दृश्य उनके अन्तर्वपु में समाहित हो गया । अपने समक्ष आने वालों के चेहरे उन्होंने महाप्रभु के परिकर से पहचाने, इसका उल्लेख उनकी जीवनी में मिलता है । तत्कालीन युवा पीढ़ी के एवं बुद्धि जीवियों के अग्रणी युवक नरेन्द्र, परमहंस देव की महा-अमोघ दृष्टि से प्लावित विवेकानन्द बन गए । उनकी समाधि अवस्था की माँग को अपने महाप्रस्थान से पूर्व उत्तराधिकार के रूप में दे कहा, ''मैं इसे बन्द कर ताली माँ के हाथों में दिये जा रहा हूँ और वह तभी खुलेगा जब तक तुम्हारा लोक मंगल का कार्य पूरा न होगा।''

अन्यथा न होगा कि प्रत्येक आध्यात्मिक घटना अपने को युगान्तरकारी प्रभाव से दोहराती रहती है । अपने चरित्र नायक, इस जीवनी के हृदय कमल, बहिन जी के अध्यापन काल में एक ऐसे ही मेधावी छात्र का उनके पास प्रवेश हुआ, जो बौद्धिकता से खुलते-खुलते प्रज्ञा के दरवाजे से रागानुगा भक्ति के प्राङ्गण में पहुँच गया । यह हैं अपने विद्यार्थी काल में १९ वर्ष के साधुभक्त विजय कौशल, जो आध्यात्मिक विकास के पथ में उनकी करुणा स्नेह से सिञ्चित महात्मा विजय बने और फिर ब्रजवासी बन गए ।

ऐसो मन कब करिहौ हरि मेरौ ।
कर करवा कामरि काँधे पर कुञ्जन माँझ बसेरौ ।
ब्रजवासिन के टूँक भूख में घर घर छाछ महेरौ ।
भूख लगे जब माँगि खाउँगो, गनों न साँझ सबेरौ ॥
रास विलास वृत्ति कर पाऊँ, मेरे खूँटन खेरौ ।
व्यास विदेही वृन्दावन में हरिभक्तन को चेरौ ।

ब्रज के रस ब्रजन में बहिन जी ने इनके हृदय का द्वार खोल दिया और वह थाती सम्हला गईं, अपने ब्रज उपासना के संजोए अनुभव से । पूर्वकाल की

*** ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वृहदाण्यक उपनिषद् ।

प्रतिभा का परिचय इनकी प्रथम पुस्तक 'ब्रज भूमि मोहनी' से स्पष्ट है। पढ़ते ही ब्रज चौरासी कोस का दृश्य खुलने लगता है । इसमें ब्रज भाषा के साथ-साथ चेतना, उपासना और लीलाओं का जो वर्णन हुआ है, वह अद्वितीय है । अपनी गुरु स्नेहिल 'बोबो' के कृपा-वारि से पोषित-सिञ्चित तथा पल्लवित-अनुप्राणित लेखनी से इन्होंने अपने चरित्र नायक के जीवन को अंकित करने में जिस धैर्य एवं अन्तर्भावना के साथ-साथ भाषा साहित्य तथा अभिव्यक्ति का समन्वय रखते हुए काव्य व्यञ्जना के साथ-साथ अचिन्त्य के चिन्तन को रखकर चिन्तन किया, वह लेखनी में निश्चय ही स्तुत्य एवं प्रेरणाप्रद है ।

वे इसी अनुसन्धान की अवतारणा के साथ वृन्दावन की उपासना में अवगाहन करते हुये, वृन्दावन साधन परम्परा को आत्मसात् कर, अपने चरित्र नायक के जीवन में घटित अघटित क्रमों किन्तु घटित विलक्षण सम्वाद को संजो सके हैं ।

वे स्नातकोत्तर जीवन से लेकर साधक जीवन तक की भौतिक एवं आधिभौतिक यात्रा का सम्बन्ध बहिन जी की ऐकान्तिक उपासना के इंगित में निरन्तर अन्तर एवं बाह्य भूमि पर वर्षों तक सतत बनाये रहे । इस ग्रन्थ के लेखक, सम्पादक के रूप में वे अपने जीवन में विलक्षण घटनाओं को गुजरते देखते रहे हैं।

महाप्रभु हरिवंश जी के महाप्रयाण के पश्चात् श्री राधावल्लभ मन्दिर में पधारने पर गोस्वामी वनचन्द्र जी ने श्री राधावल्लभ लाल जी के नेत्र सेवक जी की ओर घूमते देखे तो वे समझ गये कि श्री हरिवंश जी महाराज की धरोहर के सच्चे अधिकारी यही महानुभाव हैं ।

अन्तिम क्षणों में बहिन उषा जी उस अवस्था में प्रवेश कर चुकी थीं, जहाँ से लौटना सम्भव न था । श्री गोवर्द्धन की उपत्यका में श्री सूरदास जी से गुंसाई श्री विट्ठलनाथ जी ने उनके नयनों की वृत्ति पूछी तो उन्होंने :-

''खञ्जन नैन रूप रस माते ।
अतिशय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥''

कहते हुए जिस नित्य लीला में प्रवेश किया कुछ वैसा ही क्षण अपनी आँखों से विजय भी बहिन जी के अन्तिम लीला प्रवेश के समय आँखों की पुतलियों का एक बार नहीं दो बार बाँये से दाँये- पूरी तरह घूम कर युगल से अन्तिम विदायगी ले पूर्ववत् आ-जाना, देखते रहे । यह एक ऐसा चिरन्तन अध्याय है, जिसका पाठ कभी पूरा न होगा ।

अपने महाप्रयाण के समय महाप्रभु चैतन्य 'हा प्राणनाथ !' कहने के साथ ही पुजारी के देखते-देखते जगन्नाथ जी में लीन हो गए । यह समाचार

प्रज्ज्वलित अग्नि की भाँति समस्त स्वजनों में फैल गया । इस दुःखद संवाद को सुन स्वरूप दामोदर का विरह व्याकुल हृदय अधीर हो उठा और चारों ओर अन्धकार से आक्रान्त हो उन्होंने महाप्रभु जी का अनुसरण किया । ऐसी ही घटना की पुनरावृत्ति समय के साथ-साथ पुनः हुई । बहिन जी का प्रिया-प्रियतम से स्थायी मिलन हो गया। वे श्यामा-श्याम की माधुरी में खो तन्मय हो गईं । अपनी उस चिरनिधि से जा मिलीं- अपने सर्वस्व का सतत सामीप्य उन्होंने पा लिया । यह संवाद अग्नि-स्फुलिंग की भाँति चारों ओर फैल गया, उन्हीं की एक कृपापात्री, जो उनके हृदय से सतत तादात्म्य बनाए थीं, उनके पास जींद में ही जा पहुँचीं । बहन कामदा, जिनके मन का योग सतत बना था, जैसे-तैसे स्वयं को सम्भाले वृन्दावन पहुँचीं । बहिन जी के पार्थिव शरीर को चिर तथा स्थायी विश्राम देने के लिये उन्हीं की इच्छानुसार श्री यमुना की सरस लोल लहरियों को समर्पित करने ले जाया जा रहा था । कामदा ने आकर प्रार्थना की "बोबो ! मुझे भी साथ ले चलो ।" और वे सदा-सदा के लिये उन्हीं के साथ चली गईं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ उनके प्रेमियों की ओर से उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि है जो प्रचलित वर्ष १९९४ की ३० जुलाई को उनकी आराध्या चरित्र नायक की उन्हत्तरवीं जन्म तिथि पर वृन्दावन के रसिकों एवं सुधी साधकों के समक्ष कृष्णार्पित होने जा रही है ।

अन्त में नमन है नित्य सखी देह में विराजमान सखा जी महाराज को, जिन्होंने अपनी परिचायिका इस ग्रन्थ में दी और नमन है बहिन ऊषाजी को, जो नित्य लीला में अनुवर्तन करती विराजमान हैं । जैसा उन्होंने किया और जैसी प्रेरणा दी वह सदैव साधकों के लिये चेतना स्वरूप बना रहेगा ।

ब्रज के वन्दनीय पुरुषों को नमन है, जिनके आशीर्वाद से इस ग्रन्थ की रचना गरिमा के अनुकूल बनी । यह बहिन जी के युगल श्री की ही कृपा का द्योतक है ।

२० फरवरी १९९२ की गोधूलि वेला में श्रीकृष्ण गोचारण से लौट निकुञ्ज लीला की तैयारी में संलग्न थे । वे इन्हें भी साथ-साथ ले गए और अपने रास विहार एवं रस विलास लीला में सम्मिलित कर लिये । उसी आवनि का अपनी अन्तिम पंक्तियों के रूप में उषा जी ने कुछ समय पूर्व ही वर्णन किया था-

प्रिया लाड़िले श्याम घन,
लाल लड़ैती बाल ।
हँसत हँसत आवत चले
मन्द मनोहर चाल ॥

इसी गोविन्द घाट समीपस्थ रासमण्डल सन्निकट वट वृक्ष तथा अन्य नित्य चैतन्य प्रकृति ने, श्री ध्रुवदास जी, श्री सेवक जी तथा नरवाहन जी की

निकुञ्ज- चिर-मिलन लीला का दर्शन किया है। ये आज ऊषाजी के चिर मिलन का साक्ष्य अपने उरमें संजोए उसी रस विहार में निमग्न हैं।

अपनी कायव्यूह स्वरूप ब्रजाङ्गनाओं सहित श्यामा-श्याम अपनी इस नवीना किन्तु चिर परिचिता सखी को निकुञ्ज में ले गए। वहाँ की रस विहार विलास, ऐकान्तिक केलि स्वरूप रसमयी स्थिति का उल्लेख कर अघाता रह गया रसिक सखी समाज। उसी नव निकुञ्ज केलि मंदिर का ब्योरा श्री व्यास जी महाराज ने निम्न पद में दिया है :-

नव नृपति चक्र चूड़ामनि साँवरौ,
राधिका तरुनि मनि पट्टरानी।
सेस गृह आदि वैकुण्ठ पर्यन्त
सब लोक थानैत वन राजधानी॥
मेघ छ्यानवे कोटि बाग सींचत जहाँ,
मुक्ति चारौ जहाँ भरत पानी।
सूर्य ससि पाहरू पवन जन इन्दिरा,
चरन दासी भाट निगम बानी॥
धर्म कुतवाल सुकसूत नारद चर
फिरत चराचर सनकादि ज्ञानी।
सत् गुन पौरिया काल बन्धुआ कर्म,
डांडिये काम रति सुख निसानी॥
कनक मरकत धरनि कुंज कुसुमित
महल मधि कमनीय सयनीय ठानी।
पल न बिछुरत दोऊ जात नहिं तहाँ कोऊ,
व्यास महलन लिये पीकदानी॥

अक्षय तृतीया (वै० शु० ३)
सम्वत् २०५१ विक्रमी)

भूमिका

अद्वैत वीथी पथिकै रुपास्याः

स्वानन्दसिंहासन लब्ध दीक्षा ।

शठेन केनापि वयं हठेन,

दासी कृता गोपवधू विटेन ॥ ***

गोप रमणियों की शुद्ध प्रेमा भक्ति को, मधुरा भक्ति की संज्ञा दी गई है । ब्रजाङ्गनाओं की परिष्कृत समस्त रागानुराग पूर्ण भावनाओं से 'तत्सुखे सुखी' भाव का आदर्श, सिंहनी का वह दूध है, जो स्वर्णपात्र में ही सुरक्षित रह सकता है अथवा कोई सिंह शूर ही उसे धारण करने में समर्थ हो सकता है । वह आदर्श प्रेम कैसा है? श्री नारद जी ने 'यथा ब्रज गोपिकानाम्' कह कर उसी महोज्ज्वल रस का उत्कर्ष दिखलाया है । श्याम सुन्दर, उनकी आह्लादिनी शक्ति श्री राधा तथा उन्हीं की काय-व्यूह स्वरूपा यह ब्रजाङ्गनाऐं अलग अलग नहीं हैं । वह अखण्ड माधुर्य अनेक रूपों में विभक्त हो उसी रस का आस्वादन करने को यावत् प्रकृति में परिव्यास हो रहा है, उसे अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है । प्रेमी भक्तों की रस लालसा ने ही तो उस अखण्ड मधुर रस सिन्धु को, कुञ्ज निकुञ्जों में, हाट-बाट, रसघाट, तथा ब्रज भुवि की एकान्तिक वन्य स्थलियों में रस माधुरी का विनिमय करते देखा है ।

अहा ! जिनके मस्तक पर लहराता मयूर पिच्छ काम विजय पताका फहरा रस वर्षण कर रहा है, श्यामल सिन्धु की अनगिन रस तरङ्गों को उद्वेलित कर रहा है, जहां कैशोर्य और तारुण्य एक ही समय में प्रकट हो रहे हैं, यौवन श्री अनवरत प्रकट हो रही है, उस पर भी अपने अरुणिम अधरों से वंशी में स्वर भरने को किञ्चित् कुञ्चित कर अलाप ले रहे हैं, प्यार की ऐसी अगाध पुञ्जीभूत मूर्ति गोपिकाओं के हृदय स्थलों से अपने सहज स्वभाव वश उनकी कामनाओं का अपहरण कर मद में छकी रागमयी भावनाओं को विविध भांति से पोषित करती- किसे न स्पृहा लगा देगी ।

*** अद्वैत मार्ग के पथिकों द्वारा उपास्य और आत्मानन्द सिंहासन पर दीक्षा पाये हुए हमें गोप रमणियों के किसी कुटिल कामुक ने हठात् अपनी दासी बना लिया है ।

यह स्पृहणीय स्वरूप समस्त रागानुरागमयी भावनाओं से पूजित हो यावत् जगत को अपनी माधुरी से बौरा रहा है ।

मन की यह रागात्मक उमड़न, हृदय की विवशता, रागमयी भावनाओं का सहज प्रवाह–सिमट कर जब अपने प्रेमास्पद के प्रति समर्पित होता है, वही उज्ज्वल रस, माधुर्य रस अथवा रागत्मिका भक्ति के नाम से जाना जाता है ।

श्री रूप गोस्वामी पाद कहते हैं

इष्टे स्वारसिको रागः परमावेष्टिता भवेत् ।
तन्मयी या भवेद्भक्ति सात्र रागात्मिकोच्यते ॥

भ० र० सिन्धु

इष्ट के प्रति प्रीति–पगी प्रगाढ़ ललक और उसमें तन–मन प्राणों का समर्पण, ऐसी ही रागमयी भक्ति का नाम रागात्मिका भक्ति है । इसके मुख्य आश्रय नित्य सिद्ध भक्तजन ही हैं । ब्रजवासियों के राग की अनुगामिनी भक्ति को ही रागानुगा भक्ति की संज्ञा दी गई है । यथा :-

'रागात्मिका भक्ति मुख्या ब्रजवासी जाने'

चै० च०

श्यामा–श्याम के प्रति अविरल भक्ति तथा उतने ही सहज भाव से जिनका मन उनमें आकृष्ट हो जाता है वे सम्पत्तिशाली महाभाग्यवान, उस अमिय रस सुधा से धन्य हो स्वयं तो उस अखण्ड माधुर्य का रसास्वादन करते ही हैं, अन्य सभी को अपने साथ उसी प्रणयार्णव में अवगाहन करा सराबोर करने में समर्थ होते हैं । ऐसे महाभाग्यवानों को श्री नारद जी ने :-

'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति' *

ना० भ० सू० ५०

कहा है ।

अपने चितवन सायकों से बिद्ध करती, दोलित पीताम्बर की फहरान से मधुर छवि को प्रकाशित कर उन्नत स्कन्धों की सबलता का परिचय देती, रस सुधा को बिखेर अपनी सन्निधि की ललक लगाती श्यामलोज्ज्वल सुषमा बरबस ही मिस बना अपने समीप करती जा रही हो तो कोई क्या करे ?

माधुर्य भाव की आह्लादमयी प्रेमा भक्ति, विवशता ही 'गोपी भाव' है । इसी भाव से पोषिता इन ब्रजाङ्गनाओं ने ही प्रणय साम्राज्य की धरोहर अपने लिये सुरक्षित कर ली है । ऐसी ही महाभागाओं में श्री ऊषा जी स्मरणीय हैं ।

* वह तरता है, वह तरता है, वह लोकों को तार देता है ।

प्रारम्भिक जीवन से ही उनमें रस का वह अनवरत प्रवाह छलकता रहा है, माधुर्य की अजस्र सरिणी एक परिपक्व और पुष्ट धारणा बनी गाम्भीर्य की ओर विकासोन्मुखी होती रही है। जैसी वे थीं, सर्व साधारण के लिये भी वैसी ही उपलब्ध होती रहीं।

उनकी विलक्षण रहनी, श्यामा-श्याम की सेवा में मन का सहज द्रवण, समय समय पर प्रकट होती अनुभूतियां, प्रेमास्पद से प्रतिक्षण मिले आश्वासन- सभी एक महान रसिक भक्त के लक्षण हैं, जो उनमें स्वभावगत थे। भाव एक वैयक्तिक भावना है। यह बात तो निर्विवाद है कि अनुभूति की गहराई तथा गाम्भीर्य का मूल्याङ्कन न तो सर्वथा सम्भव ही है और न युक्ति युक्त ही, फिर भी एक प्रस्फुटित पुष्प की भांति वह स्वत: ही प्रकट होता चला जाता है, सौरभान्वित करता चला जाता है, सुमनरजातुर अलिगणों को आकृष्ट करता चला जाता है।

उनकी प्रेममयी सेवा, हृदय में भरा अनुराग, उससे पोषित, समस्त रागमयी भावनाओं से सिंचित, हृदय में उमड़े भाव घनों के एक मात्र आलम्बन सेव्य युगल, सेवा में अभूतपूर्व अभिनिवेश का जय घोष तो कर ही रहे हैं, साथ-साथ पूर्वाचार्यों के सेव्य स्वरूपों की भांति जो सदैव उन के लिये प्रत्यक्ष और प्रकट बने रहे, आज भी सभी को अपनी उसी सजीव माधुरी से आकर्षित किये ले रहे हैं। पू. बोबो के हृदय में उच्छलित प्रेमार्णव ही अपने रसकणों से सभी को सिक्त कर अपने वैभव का प्रसार कर रहा है।

सबसे अप्राकृत, अभूतपूर्व तथा अप्रतिम सुयोग जो श्रीकृष्ण की प्रेरणा से ही बना, उनकी अकारण कृपा ममता का द्योतक है जिसका दूसरा उदाहरण आज के युग में देखने को नहीं मिला, वह है श्यामा-श्याम द्वारा अपनी ही अत्यन्त आत्मीय नित्य सिद्ध परिकर (श्री सखाजी) को स्वेच्छा से संकेत कर अपनी अनन्य प्रिया श्री ऊषा जी के लिये लीलाओं का सुलभ कराना। वैसे तो परोक्ष और अपरोक्ष रूप में सन्तों और महज्जनों का इस प्रकार मार्ग निर्देशन/पथ प्रदर्शन का सीमित तथा बद्ध सा क्रम सर्वदा चलता आया है, परन्तु एक लम्बे अन्तराल तक इस प्रकार अत्यन्त गोपनीय तथा प्रकट एवं नित्य, कुञ्ज तथा निकुञ्जान्तर्गत विहार-विलास का ऐसा अप्रतिम तथा अनुपमेय सुयोग असम्भव ही कहा जावेगा। उनकी अनुभूति तथा लीला का दर्शन/आस्वादन, समाधि भाषा में ऐसा अपूर्व वर्णन, मौलिक विचारधारा, शास्त्र सम्मत धारणा, रस परिपाटी का मौलिक चिन्तन सभी अपने में अनुपमेय हैं।

अनेक लीलाओं में वे (नित्य सिद्ध संत तथा अन्तरङ्ग सखी) सम्मिलित हो अपने दिव्य सखी स्वरूप में कहीं शृङ्गार बना रही हैं तो कहीं धारण करा रही हैं, कहीं गुलाल से युगल के कपोल रञ्जित कर रही हैं तथा कहीं सखियों में सम्मिलित उस लीला विहार विलास के आस्वादन में मग्न हैं, पू. बोबो के लिये वे सर्वत्र दर्शन दे कृतार्थ करती रही हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ, एक परम रसिक प्रेमी संत के प्रति अत्यन्त आत्मीयता से सिक्त शिष्य की श्रद्धाञ्जली है जिसे पढ़ कर लगा जैसे किसी समर्पित तथा निष्ठावान साधक ने अपने समर्थ गुरु को श्रेष्ठतम उपहार श्रद्धासुमन अर्पित किये हैं । इसका कारण है, लेखक का एक लम्बे अरसे तक श्री ऊषा जी की सतत तथा अनवरत सन्निधि में रह उनकी कृपा ममता बटोरना ।

प्रथम भाग में जीवनी का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है । दूसरे भाग में अनुभूति के कतिपय अंश हैं । अनुभूति-स्वानुभव का विषय है- अत: ये सभी प्रसङ्ग अत्यन्त सरस बन पड़े हैं ।

पुस्तक के तृतीय भाग में श्री ऊषा जी की कविताओं/पदों का संक्षिप्त विवरण है । भक्तों की अनुभूति ही अभिव्यक्ति का स्वरूप धारण कर जब प्रकट होती है तो उसकी गरिमा, चित्रमयता, सरसता से मन का सहज तादात्म्य हो जाता है- तथा पाठक रसाभिभूत हो जाता है- इन सभी गुणों से सम्पन्न है श्री ऊषा जी का काव्य ।

चौथे भाग में श्रद्धाञ्जलियों में से संक्षिप्त अभिमत प्रस्तुत किये गए हैं ।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी वर्णन शैली । प्रत्येक वर्णन में आध्यात्मिकता सतत झलकती है तथा भावात्मक वर्णन मन को छूते हैं- उतनी ही मधुर भावाभिव्यक्ति से, प्रसङ्गों में और और आई सरसता से मन का तादात्म्य हो जाता है- और वह रसास्वादन अतृप्ति का द्योतक बन सतत जिज्ञासा की ललक लगाए रहता है ।

ग्रन्थ की उपयोगिता और उपादेयता सर्वमान्य है ।

सुशीला शर्मा एम. ए.

प्राक्कथन

अपनी बात

मैं लेखक नहीं हूं। लिखना मुझे नहीं आता। मेरे अनजाने में कृपा अवश्य हुई। भगवान ने माध्यम बनाया, वे तो बनाते ही हैं। संत की दृष्टि पड़ गई। अपने पास अपनाकर रख लिया। मातृवत वात्सल्य दिया, बहनवत स्नेह तथा सखी सहेलीवत आत्मीयता दी। गुरुवत पथ प्रशस्त कर अखण्ड माधुर्य रस निधि का अता-पता दे, उन्हें सौंप दिया। उसी वातावरण और स्थिति के संरक्षण में शैशवावस्था की तोतली बोली प्रारम्भ हुई। डगमगाते पगों से खड़े होने के प्रयास में स्थिर तथा स्थायी मार्ग पर गिरता पड़ता चलने लगा- यह मेरा बालपन था। 'मार्जारि न्यायवत', निश्चिन्त था। उसी अप्रतिम श्रद्धास्पद की सन्निधि ने सहज सुयोग जुटा रसभूमि में डाल दिया। स्वभावत: कमलपत्रमिव बना रहा। एक सिद्ध संत की दृष्टि कैसे सूना रहने देती ! उसने मुझे खड़ा होना सिखलाया, चलने की प्रेरणा दी, भाव दिये, विचार दिये तथा वह सब दिया जो देना चाहिये था। सभी सहज और सुगम दीखने लगा। ब्रज और वृन्दावन की श्री से सम्पन्न होने के लिये जो भी अनिवार्य और अभीप्सित था, वह सब सुलभ कर दिया- परन्तु मेरी तोतली बोली अभी मुखरित न हो पाई और बाल चापल्यवत चेष्टा मैं अवश्य करने जा रहा हूँ।

यह चरित्र, मात्र चरित्र नहीं है। यह एक अगाध रस सागर है, एक अनाज्ञात समर्थ महामानव का इतिहास है, जिसमें एक महान विरक्त आदर्शमयी गाथा है, एक अप्रमेय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का प्रयास है, सरस रस माधुर्याम्बुधि से सिक्त रस तरङ्गों की स्निग्ध माधुरी है, प्रणय पगी पिपासा की विक्षुब्ध रस तरंगिणी का प्रवाह है; मधुर रस सम्पन्ना बावरी का प्रतिपल रस पगा अनुराग है और माधुर्य रस सम्पन्न समर्थ जीवन की आंख मिचौनी लीला का इतिवृत्त है।

'लीला' शब्द अत्यन्त गम्भीर है। सभी वर्णन साभिप्राय हुए हैं। मैं तो केवल लिखिया मात्र रहा हूँ। जो सुझाया, लिखवाया, लिखता गया। मुझ में

साहस नहीं था। कृपा की सामर्थ्य अद्भुत है। मन के साथ लेखनी बही, और लेखनी के साथ मन द्रवित हुआ। अनेक जगह लेखनी सरसा गई, द्रवित होती रुकती रही- अनेक जगह इसका स्रोत सूख गया; जाने कहां से पुन: द्रवण होने लगा। प्रसङ्ग वर्णन में भी मैंने अकथ को कहने का प्रयास किया है। सुनता था, जिन महानुभावों का चरित्र हम लिखते हैं- वे स्वत: ही शक्ति प्रदान करते हैं, जो चाहते हैं, लिखवा लेते हैं। लेखक का कर्तव्य और मर्यादाऐं अत्यन्त सीमित होती हैं, चरित्र लिखते समय यह तथ्य चरितार्थ होता मेरा पथ प्रशस्त करता रहा है। मैंने सभी मर्यादाओं का पालन कर यथावत प्रस्तुती का प्रयास किया है, पूरी ईमानदारी बरती है। कहीं भी किसी प्रकार की रञ्च मात्र भी स्वतंत्रता नहीं ली, प्रत्युत यह स्वीकारने में मुझे संकोच नहीं हो रहा कि यथार्थ की प्रस्तुती भी मुझ से पूर्णत: नहीं हो सकी।

ज्ञान का अगाध तथा अथाह भण्डार है। पू० बोबो का चरित्र विशाल सागर के रूप में मेरे सामने लहरान्वित होता रहा है- जिसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं हो सका- मैंने अधिक से अधिक प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य किया है- बहुत कुछ कहने के पश्चात् भी लगता है- उतना ही विस्तृत अभी शेष रह गया। गत वर्ष एक बहन डा. निशा की टिप्पणी स्मरण कर अपनी भूल सुधारने का अवसर मिला। उन्होंने कहा था "सम्पूर्ण अभिव्यक्ति कदापि सम्भव नहीं हो सकती।" अत: उस विशाल समुद्र के तल में सम्पूर्ण खोज पाने का प्रयास ओछा ही रह गया। बहुत प्रसङ्ग छूट गए होंगे। इसमें सर्वथा मेरी ही कमी रही है। मैंने जानकर एक पंक्ति की भी कमी- बेशी नहीं की फिर भी जो प्रसङ्ग रह गए होंगे यदि कोई भी स्वजन मुझे स्मृति कराऐंगे तो आभारी होऊं गा।

मुझे याद आती है पू० बोबो की एक बात। अनेक बार विनोद में वे कहा करती थीं, 'महात्मा! जब मेरा चरित्र लिखेगा तो अमुक प्रसङ्ग अवश्य लिखना।' बात केवल विनोदवश होती थी परन्तु इस असह्य तथा दारुण बिछोह के वर्णन का निमित्त मुझे ही बनना था। उनकी सतत तथा अनवरत बरसती कृपा ममता में प्रतिक्षण सिक्त पैंतीस वर्ष तक सरसाता हृदय इस अग्राह्य और अवाञ्छित प्रसङ्ग का वर्णन किस प्रकार कर सकेगा, पाठकगण स्वत: अनुमान लगा सकेंगे। आज कराह उठता है मन; मैं शून्य में चला जाता हूँ- और वही सुशीतल, सुकोमल क्रोड़ मेरी स्मृतियों में साकार हुई ढाढ़स बंधाने लगती है। काश- यह प्रसङ्ग अभी न आया होता। भावुकता अश्रु बन धारावत बहने लगती है और अतीत की स्मृतियां मुझे थपकियां दे, दे सहलाने, सुलाने का प्रयास करती दीखती हैं। धन्य हैं वे सब स्वजन जो जैसे तैसे स्वयं को सम्हाले हैं।

प्रेरणा

मुझ में न तो सामर्थ्य थी और न योग्यता ही । मेरे सीमित साधनों पर बड़ा अङ्कुश स्थायी लगा है । जीवन चरित्र की चर्चा कई जगह चली, परम पूजनीया श्री ललित बहन जी ने इसकी अनिवार्यता का अत्यधिक आग्रह किया । अन्य सभी बहन भाइयों ने भी प्रस्ताव रखा– परन्तु निर्णय अभी कुछ भी न कर पाया । एक दिन आंध्र वाले संत श्री राधिका प्रसाद राव (नाना गारु) भूतपूर्व जिला शिक्षा निदेशक, आंध्र प्रदेश विद्या विभाग, से चर्चा चली, उन्होंने भी स्नेहाग्रह सहित साधक जगत के हितार्थ पू० बोबो के चरित्र लिखने की प्रस्तावना की । वे तो इतने आतुर हुए कि पूर्व वाले पू० बोबो के चरित्र का तेलुगु भाषा में अनुवाद करा मुद्रित करवाने जा रहे हैं। इधर श्री चक्रपाल भाई साहब तथा परम आदरणीया श्री ललित बहन जी के पुन: आग्रह तथा प्रोत्साहन ने मुझ में शक्ति का संचार अवश्य किया। कुछ, कुछ मन भी बनने लगा । अनेकानेक विचार अब भी प्रश्न चिह्न बन सामने थे। जहां एक ओर पूजनीया सुशीला बहन जी तथा अन्य पूज्य जनों ने प्रोत्साहित किया वहीं अपने स्नेही अनुज श्री शान्तनु राणा के उत्साहवर्धक विचारों और समन्वयात्मक धारणा को मैं भूल नहीं पाऊँगा ।

परम पूजनीया श्री ललित बहन जी की प्रेरणा और क्षण क्षण पर बरसते उत्साहवर्द्धक लाड़ प्यार ने मुझ में संजीवनी शक्ति का सञ्चार कर दिया ।

प्रयत्न

मैंने संकलन प्रारम्भ कर दिया । मार्ग दर्शन चाहा, कहीं विपरीत परिस्थितियां भी आईं, परन्तु सभी अनायास स्पष्ट होता चला गया । परम पूजनीया बोबो के श्रीमुख से निसृत वाणी, पूजनीया श्री सुशीला बहन जी जिन्होंने पू० बोबो तथा युगलाराध्य के प्रति जीवन समर्पित कर वर्षों उनकी सन्निधि सुख का आस्वादन किया; श्री धर्म बहन जी, जो विद्यालय तथा उसके बाद भी उनकी आत्मीया रहीं; श्री ललित बहन जी, श्री सन्तोष बहन जी और सरला बहन जी जिनका आत्मीयता के साथ-साथ पू० बोबो के प्रति एक वात्सल्य विशेष भी बना रहा, तथा सभी बहन-भाइयों से प्राप्त सामग्री, उनकी विचारधारा, तथा अन्य घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती गई। लगभग डेढ़ वर्ष बाद पुस्तक का प्रारूप तैयार हो सका । चाहता था यह चरित्र अति शीघ्र प्रकाशित हो जाता परन्तु मेरा आलस्यपूर्ण प्रमादी स्वभाव सदा सदा आड़े आता रहा और पाण्डुलिपि तैयार करने में समय बढ़ता चला गया ।

परामर्श

इसके अतिरिक्त मेरा मार्ग प्रशस्त करने में श्री भाई साहब, सदाशिव सत्संग स्थली, अम्बाला छावनी, श्री श्रीश मोहन भटनागर एम. ए. नई दिल्ली श्री लक्ष्मी नारायण वत्स एम. ए. बी. टी. नई दिल्ली तथा प्रोफेसर नन्द किशोर अग्रवाल एम. ए. एच. ई.एस. फरीदाबाद ने अपना सा पूरा सहयोग दे मुझे प्रोत्साहित किया है ।

मेरे बहुत से विचारों को समन्वयात्मक रूप देने में श्री बिहारी दास जी वृन्दावनी, श्री मनोहरदास जी, श्री सुशीला बहन जी तथा बहन उर्मिल राजेश्वरी का योगदान सदा सदा मुझे सान्त्वना देता रहा है ।

पुस्तक की सजावट हेतु श्री चक्रपाल भाई के अमूल्य सुझावों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ ।

ग्रन्थ परिचय

पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय पू० बोबो का जीवन चरित्र कतिपय अनुभूति प्रसङ्ग, काव्य तथा श्रद्धाञ्जलियों में से कुछ भावोद्गार चार मुख्य भागों में विभाजित है ।

प्रथम भाग इक्यावन परिच्छेदों में और इक्यावन परिच्छेदों को क्रमानुसार द्वादश अध्यायों में बांटा गया है । वर्गीकरण क्रमिक रखने का भरसक प्रयास किया गया है । प्रथम अध्याय में जन्म प्रसङ्ग, अध्ययन आदि; द्वितीय में परिवार संक्षिप्त परिचय, विवाह के लिये प्रस्ताव तथा अद्भुत अनुभूति; तृतीय अध्याय में स्वजनों से मिलन, अध्यापन; चतुर्थ अध्याय में श्री ठाकुर जी द्वारा इहलौकिक बन्धनों से मुक्ति, उपासना-निज स्वरूप, श्री ठाकुर सेवा आदि का वर्णन; पञ्चम अध्याय में प्रेमा भक्ति, एक दिव्य सन्त से परिचय; षष्टम में वृन्दावन चले आने की उत्कट इच्छा पिता एवं भाई की पत्नी और पुत्र का निधन, वृन्दावन के लिये प्रस्थान- हाहाकार; सप्तम अध्याय में अपने घर वृन्दावन आगमन- प्रिया प्रियतम का अगाध लाड़; अष्टम अध्याय में वृन्दावन पुनरागमन, श्री गिरिराज दर्शन- श्री कृष्ण प्रेरणा से मौन तथा रसानुभूतियां; नवम अध्याय में वृन्दावन पुनरागमन- वृषभानुपुर में सखियों का दर्शन; दशम अध्याय में पू० बोबो की हृदय सरसि में उठी विभिन्न तरङ्गें, एकादश में श्री जगन्नाथ यात्रा, पू० गया प्रसाद जी से मिलन, गोकुल महावन यात्रा- श्री नन्दग्राम यात्रा तथा द्वादश

अध्याय में वृषभानुपुर श्री नंदगांव यात्रा, परमहंस स्थिति, दिव्य स्वरूप- निकुञ्ज प्रवेश का अपूर्व दृश्य तथा अद्भुत सामर्थ्य का वर्णन है ।

द्वितीय भाग में पू० बोबो की अनुभूतियों के कतिपय प्रसङ्ग दिये गए हैं। अनेक प्रसङ्ग विस्तार भय से छोड़ देने पड़े हैं, अनेकों में भाव और भाषा में समन्वय न हो पाने के कारण मौन रह कर ही अभिव्यक्ति की गई है । यह अनुभूतियां पू० बोबो के महान व्यक्तित्व की द्योतक है तथा नित्य सिद्ध स्वरूप की प्रतीक । प्रिया-प्रियतम, उनकी लीलाऐं, चिन्मय वृन्दावन, वहां प्रवाहित रस की सुरस केलि आज भी अविरल तथा अनवरत प्रवहमान है, उसे देखने के लिये जिन नेत्रों की आवश्यकता है- वह किसी रसिक भक्त की अनायास कृपा से प्राप्त होंगे । इन अनुभूतियों को, पू० बोबो की अभूतपूर्व स्थिति को, देख रसिकों के मत- आस्वादन तथा शास्त्र वाक्यों की प्रामाणिकता जो स्वतः सिद्ध है, स्वीकार कर मोहर लगाने का सुयोग बना ।

किसी भी कृति का सही मूल्याङ्कन, तदनुरूप विचारधारा तथा सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है । अनुभूति स्वानुभव का विषय है- अतः स्वयं उसी स्थिति में पैठ कर अथवा उसी वातावरण में अपने को ले जाकर ही उसका अध्ययन करना होगा ।

तृतीय भाग में पू० बोबो की रसानुभूतियों की अभिव्यक्ति है । काव्य अनुभूति से युत होने पर ही स्वीकार्य होता है । अनुभव पूर्णतः व्यक्त नहीं किया जा सकता, फिर भी रसिकों के आस्वादन- उनकी तन्मयावस्था में अवश्य ही छलक छलक कर सिक्त करते रहे हैं- नेत्रों से बरसी अमिय सुधा धारा, दिव्य अनुभूति अनेक माध्यमों से अभिव्यक्ति के स्रोत ढूंढती रही है । मन की विगलित स्थिति, रसानुभवों को भी विस्तारभय से संक्षेप में, बानगी स्वरूप ही हमने प्रस्तुत किया है । उनकी कविताओं का विशाल संग्रह अलग से प्रकाशित करने का प्रयास हम शीघ्र ही करेंगे ।

चौथे भाग में श्रद्धाञ्जलियों में से कतिपय अंश निकाल कर दिये गए हैं ।

आभार

इस ग्रन्थ के प्रणयन में अनेक स्वजनों ने सहयोग दिया है । अनेकों ने अपना अमूल्य समय दे ब्योरा उपलब्ध कराया है, अनेकों के परामर्श से मैंने इस ग्रन्थ को शृङ्गार मण्डित करने की अपनी सी चेष्टा अवश्य की है ।

चित्र प्राप्ति

चित्र प्राप्ति में श्री राहुल नेविल, नई दिल्ली तथा श्री शान्तनु राणा ज़कारता (इन्डोनेशिया) ने सहयोग दिया है।

पुस्तक की छपाई व्यवस्था हेतु जानकारी उपलब्ध कराने तथा व्यवस्था में सहयोग देने के लिये मैं श्री सुनील भटनागर, एसिस्टेंट मैनेजर, स्टेट बैंक पटियाला, नई दिल्ली, श्री अनिल भटनागर ब्रान्च मैनेजर, जीवन बीमा निगम नई दिल्ली तथा श्री विपिन अग्रवाल चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट, लक्ष्मीनगर दिल्ली का आभारी हूँ।

प्रूफ़ संशोधन में सहायक बहन दर्शन अग्रवाल बी. ए., बी. टी. श्री निर्मला शर्मा एम. ए., एल टी, श्री सन्तोष नारंग बी. ए. बी. टी. तथा भैय्या राकेश ने अपना योगदान दे पू. बोबो के प्रति अपनी निष्ठा का प्रतिपादन किया है।

भक्तों के जीवन चरित्र लिखते में भावात्मकता, उनकी अनुभूति को छोड़, प्राय: उनके जीवन प्रसङ्ग देश, काल, वातावरण को ही अधिकांश अंकित किया जाता है और उनका ग्राह्य तथा अभीप्सित पक्ष अछूता अथवा अत्यन्त सीमित रह जाता है। संतों के जीवन में अनुभूति का अभाव होता होगा ऐसा मानने को जी नहीं चाहता- परन्तु अभिव्यक्ति को देख लगता है या तो लेखक विषय वस्तु से तटस्थ होकर ही वर्णन करते हैं अथवा अभिव्यक्ति ठीक से हो नहीं पाती- प्रभु कृपा से इस ग्रन्थ में इस विषय का विशेष प्राधान्य स्वत: ही हुआ है।

अन्त में एक बार पुन: कहना चाहूंगा कि पू. बोबो का व्यक्तित्व एक ऐसा अलौकिक, अद्वितीय, अनुपम, अप्रतिम एवं अनुपमेय है जिसकी कोई तुलना नहीं, सीमा नहीं, समानता नहीं हो सकती, जो अपने जैसा अनूठा तथा अपूर्व स्वत: ही है। इतिहास साक्षी बना दोहराता रहेगा, पृष्ठ के पृष्ठ लिखे जाऐंगे, परन्तु यह अकथनीय विशाल गाथा, एक सामर्थ्यवान अपूर्व भक्त चरित्र, आलोक स्तम्भ बना, आने वाले समाज का पथ प्रदर्शित करता रहेगा। उनकी अद्भुत सामर्थ्य जो स्पर्श करते ही मधुर प्रेम सरिणी में आप्लावित करने में, सराबोर करने में सक्षम रही, को देख मुझे ललित किशोरी जी का निम्न पद स्मरण हो आता है।

नैननि की कोरें कोऊ लै हैं।
है कोई ऐसी रसिक रंगीली प्रान निछावर दै है!
पिय अमोल नूतन मधुराई छुअत खुमारी अै है।
ललितकिशोरी तत्छिन जियरा टूक टूक ह्वै जै है॥

रसिक श्याम सुन्दर के बंक चितवन शर सायकों से विद्ध होकर प्राण न्योछावर करने वाली कौन रंगीली बाला है ? उस अमूल्य निधि को स्पर्श करते ही खुमारी छा जाती है, और हृदय अपना सर्वस्व ही समर्पित कर देता है- अतः वे नयन सायक प्राणों को विद्ध कर अपना लेते हैं ।

सर्वोपरि श्रद्धेय श्री पाद बाबा जिनसे केवल उनके अभिमत की प्रस्तावना मैंने की थी, उन्होंने पुस्तक के कतिपय अंशों को अनुभूति प्रसङ्गों को, पू. बोबो के हृदय में उठी रस तरङ्गों को सुना, पुनः पुनः सुना, सुनते चले गए। उस समय की उनकी तन्मयता, भावपूर्ण स्थिति, ग्रीवा नत कर बरसते सजीले नेत्र; क्या कह कर चित्रांकित करूं और किस प्रकार सभी के सामने प्रत्यक्ष कर दिखलाऊं- काश ! पाठक गण वहां उपस्थित होते । उन्होंने कहा था, 'ऐसे अभूतपूर्व अगाध रस विभव को प्रकाशित करने में, अलंकृत करने में माधुर्याम्बुधि से प्राप्त सभी मुक्ताओं, अमूल्य रत्नों तथा अलंकारों को यथा स्थान सुसज्जित करना होगा ।'

इस बात की इति श्री यहीं नहीं हुई- अनेक छपे प्रसङ्गों को वे अपने साथ ले गए- उन्हें पढ़ कर कहने लगे "जैसे जैसे पढ़ना आरम्भ करता हूँ उन (पू. बोबो) की अलौकिक स्थिति सम्मुख झलकती प्रकट हो जाती है और मैं उसी में तन्मय हो जाता हूँ। संध्या रात्रि में परिणत हो जाती है, अनेक बार रात्रि एक सुहानी भोर में परिणत हुई, अगले दिन का भान कराने लगती है तथा वह प्रसङ्ग पृष्ठों पर लिपिबद्ध हुए पुनः पुनः पढ़ने के लिये उद्वेलित करते रहते हैं- एक, दो, तीन दिन नहीं- अनेकों दिवस, सप्ताह एक विलक्षण सरस रसानुभूति के अंक में लय होते चले गए- मुझे करते चले गए हैं।

उनकी पू. बोबो के प्रति अप्रतिम श्रद्धा, भाव साम्य, अनेक प्रसङ्गों से मेल खाती अनुभूति ही उनके इस प्रत्यक्ष सहयोग के मुख्य हेतु हैं । उनके इस उत्साह को देख यदि मैं यह कहूँ कि उनका अपने रूप में प्रत्यक्ष प्रकट सहयोग तो है ही, मेरे रूप में भी वे ही अपने दूसरे वपु से कार्य करवा रहे हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। उनकी इस सहृदयता, निष्ठा, आत्मीयता तथा महानता के प्रति स्वरूप मैं उनके विषय में क्या कहूँ ? कुछ शब्द नहीं सूझते- बस, यही लगता है कि उनके अकारण स्नेह ने एक विशेष स्फूर्ति तथा आत्मबल का सञ्चार मुझ में अवश्य उड़ेल दिया है और यह सब उन्हीं का आशीर्वाद ले मैं निभा रहा हूँ ।

अहा वह चरित्र, वह अप्रतिम सामर्थ्य ।

विजय

श्रद्धेय श्री बालकृष्ण दास जी महाराज, वेणु विनोद कुञ्ज, वृन्दावन।

॥ श्री राधा कृष्णाभ्याम् नमः ॥

रमणीय वन्य कोमल सरस अत्यद्भुत पथ....... रमणियों के वृन्द वहीं पर सुस्थिर देख रहे हैं। मधुप-माला, गुञ्जार करती हुई मध्ये उड़ती आ रही है। पक्षिकुल नन्हीं-नन्हीं शाखाओं पर कलरव कर रहे हैं। रसमय पथ में, हरिणियों के वृन्द में, मधुप गुञ्जार में, विहंग कुल कलरव में....... वह चलीं ! बिना प्रियतम के गमन संभव नहीं; एकाकी। लीलाएँ पूर्ववत् ही हो रही हैं, इसके साथ कृत लीला विहार विलास हो रहा है। ऐसी दशा, ऐसा गमन देखने से, वे साधारण नहीं दीखतीं, हाँ ! अन्तरंगतम मधुर सुन्दर स्वरूप में दीख रही हैं। संपूर्ण साम्राज्य ही वह, जहाँ पर स्थित हैं, न प्रारंभिकता, न परिणाम जनित समाप्ति की भयंकर कल्पना। मूल, निज प्रेम साम्राज्य की वहाँ पर चहल पहल है। वहीं पर सहज चलीं, बाहों में होकर वह चलीं, मन्द चलीं, बस चलीं ही चलीं। श्री श्याम तमाल विलुलित कनक वल्लरी, चारु चरण कमलों से अलंकृत वन्य भूमि में, अनुगताओं का गमन करना स्वभाव रहेगा। राधा-मुग्ध विदग्ध माधव से प्रेम विवश नटनागर के सर्वांगलास्य पूर्ण नृत्य गति में तन्मय, भटनागर ऊषा जी की मादक अनिर्वचनीय दशा में एक होकर सुदुर्लभ अलभ्य जीवन को धन्य होने देना, परमावश्यक है।

चिर संगिनी की स्मृति ध्येयोन्मुख हो परमोद्देश्योन्मुख हो जाने के मधुर मूक संकेत कर रही है।

केवल वल्लरी दीखती नहीं, केवल कमल दीखता नहीं, केवल चन्द्र दीखता नहीं, ऐसे 'केवल संगिनी' (अकेली) वह कदापि दीखती नहीं। अर्थात् श्याम सुन्दर भी सङ्ग सङ्ग, अङ्ग सङ्ग हैं।

तरु से लिपटी, रसोन्मद भृंगी से मण्डित, मुग्धा चकोरी से संयुक्त हो श्री नटनागर से मण्डित उषा भटनागर दीख रही हैं।

श्रद्धेय श्री श्री रामदास जी महाराज (करह वाले)

कैम्प : हनुमन्निवास

खैरागढ़ (आगरा)

परम भागवत श्री ऊषा जी का चरित्र छपने जा रहा है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है । गत कई वर्षों से श्रावण मास में तुलसी जयन्ती के सुअवसर पर बाबा आनन्द दास जी के स्नेहाग्रह को टाल पाने में, मैं अपने को असमर्थ पाता रहा हूँ । वहीं ऊषा जी से मिलने का सुयोग बनता रहा । उनकी शालीनता और अपूर्व विनम्रता ने मुझे सदैव प्रभावित किया ।

पूर्व में छपा इनका संक्षिप्त परिचय तथा इतिवृत्त सुन, लगा निस्सन्देह इनकी आध्यात्मिक अनुभूति अपूर्व रही है । वे प्रेमी भक्त थीं । प्रेमियों का संसार जहां एक ओर सम्मिलन सुख की अगाध स्रोतस्विनी में अवगाहन कर पल्लवित और पुष्पित होता है, उस दिव्य मधुरानन्द के आगे उन्हें सभी फीका भासता है वहीं विरह की सन्तप्त लहरियों से उच्छलित अश्रुकणों से धुल निर्मल हो जाता है उनका हृदय ! रसिक प्रेमी प्रियतम से विरह मांगते हैं क्योंकि-

हौं जानौं सखि मिलन ते, विरह अधिक सुख होय ।
मिलते मिलिये एक सों, बिछुरे सब ठां सोय ॥

जहां देखो वे ही प्रकट हो रहे हैं । विरह का सुख, मिलन सुख की भित्ति पर ही टिकता है । इस सुख का आस्वादन उन्हीं को होता है जिन्होंने संग-सुख समेटा हो ! जिसे संग का सुख नहीं मिला उसे वियोग क्षणों के मरणान्तप्राय: दु:ख का क्या स्वाद ? वियोग दु:ख में इतना सुख है, यह कल्पना भी वह नहीं कर सकता । अत:

विरह असी जा उर धसी, रसी रसीली प्रीत ।
चहत न मरहम घाव पर, यह प्रेमिन की रीत ॥

प्रेमियों का संसार ही निराला है । विरहाग्नि मन को स्वच्छ कर श्यामा-श्याम के चरणों में अनुरक्ति प्रदान करने में अत्यन्त सहायक है ।

'विरह जगावै जीव को और जीव जगावै पीव ।'

प्राणनाथ का जागरण तब होता है, जब रोम-रोम उनको पाने के लिये लालायित हो जाता है । यह भाव बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है । श्री ऊषा जी

के पदों को सुनकर लगा कि इनमें पिपासा का अभाव नहीं था परन्तु उनकी पिपासा बहुत जल्दी ही सम्मिलन सुख का आश्रय पा धन्य होती रही। विरह अथवा मान यदि उनके जीवन में कहीं दीखा भी तो वह कठिन 'मान' का प्रतीक नहीं हुआ। भक्ति की अनेक विधाऐं हैं। भक्ति मति श्री ऊषा जी का हृदय मधुरा भक्ति में तन्मय रहा। उनकी तन्मयता तथा तल्लीनता, तद्रूपता में पुरस्कृत होती रही। नवधा भक्ति, प्रेमाभक्ति तथा पराभक्ति, जितने वैष्णव उतनी प्रकार की भक्ति। भक्ति का कोई ओर-छोर थोड़े ही है, परन्तु पराभक्ति एक आदर्श है :-

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवण फेरि
रूप-सुधा मधि कीनो नैनहू पयान है।
हंसनि नटनि चितवनि मुस्कानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति पय पान है।
मोहि मोहि मोहन-मई री मन मेरो भयो
'हरीचन्द' भेद ना परत कछु जान है।
कान्ह भए प्रानमय प्रान भये कान्हमय
हिय में न जानी परै कान्ह है कि प्रान है।

यह पराभक्ति का स्वरूप है जिसमें पता ही न चले कि हमारे प्राण हैं अथवा हम हैं या श्यामसुन्दर ही हैं। तद्रूप हो जाना ही पराभक्ति का अभीष्ट है। तल्लीनता, तादात्म्य और तद्रूप हो जाना यह उच्चकोटि का लक्षण है।

श्री ऊषा जी की अनुभूति के कुछ प्रसङ्ग सुन कर लगा मानों वे अपनी बहुत छोटी आयु से ही इन सब भावों के प्रवाह में बहती रहीं।

रसिक होना अत्यन्त कठिन है। रसिक कौन है ?

जीव ईश्वर मिलि दोय, नाम रूप गुण परिहरैं।
रसिक कहावे सोय, ज्यों जल घोरे शर्करा॥

जल में 'शक्कर' घोल दो, नाम हो गया, शरबत। रूप बदल गया, तरल हो गई। गुण बदल गया। पहले उष्ण थी, अब शीतल हो गई। जिस प्रकार शक्कर जल में मिलकर नाम, रूप, गुण तीनों का परिवर्तन हो जाता है इसी प्रकार रसिक वे हैं जिनका ईश्वर से मिलके अपने नाम, रूप, गुण तीनों का परिवर्तन हो जावे। दूसरे शब्दों में इसी को तद्रूप भी कहा गया है। यह तद्रूपता श्री ऊषा जी की अनुभूतियों में जगह-जगह झलकती है। उनका भाव, उनका समर्पण, प्रिया-प्रियतम में आत्मीयता, निस्सन्देह अपूर्व रही है। प्रेमी-भक्तों का हृदय सर्वदा उलझता और सुलझता रहता है। प्रेम की इसी उलझन और सुलझन में उनका मन श्यामा-श्याम के अनुराग में पगा रहा।

शब्द-लालित्य बहुत सुन्दर है, विद्वत्ता पूर्ण है, साहित्यिक है। प्रयत्नपूर्वक ऐसी शब्दमाला का सृजन नहीं हो सकता। यह तो कृपा ही है। जिनका ग्रन्थ लिखते हैं, उनके तपोबल का प्रभाव हृदय पर आ जाता है और वह अपने आप लिखवा लेता है। भक्तों का चरित्र काव्य ही होता है। ऐसी ही थीं भक्तिमति श्री ऊषा जी

भक्तों का गुणगान करना प्रभु की प्रसन्नता का द्योतक है। भक्तों के चरित्र, प्रभु अपने चरित्र की अपेक्षा सुनने में अधिक सुख पाते हैं। भक्त चरित्र बार बार श्रवण करते हैं। एक बार ज्ञानी और भक्त में परस्पर प्रेम-कलह हो गई। ज्ञानी बोले- 'हम बड़े' और भक्त बोले 'हम बड़े'। इस विवाद के निराकरण हेतु श्याम सुन्दर के पास पहुँचे और अपना मतभेद उनके सम्मुख कहा। भगवान बोले, ''ज्ञानी मेरी आत्मा है'' भक्त उठकर चल दिये। भगवान ने बुलाया, बोले, 'कहाँ चल दिये, इधर आओ।' भक्त ने कहा, हमारा विवाद था, आपने निराकरण कर दिया- इससे आगे अब कहने को कुछ शेष तो रहा नहीं।' श्याम सुन्दर बोले, 'इधर आओ तो सही, ज्ञानी मेरी आत्मा है और भक्त मेरा परमात्मा है।' भक्त का हृदय गद्गद हो गया। अत: श्री ऊषा जी का चरित्र सर्वथा ऐसे ही भक्तों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

आदि वैष्णवाग्रगण्य भगवान शंकर को इनका गुरु होने का गौरव प्राप्त है। उन्हीं के कृपानुग्रह से इनका स्वभाव भी अत्यन्त स्नेह और आत्मीयता का रहा है। श्यामा-श्याम की सेवा-पूजा में इनका अभूतपूर्व अभिनिवेश रहा है। इनके मन-प्राण ही उनमें रमते थे- फलस्वरूप, श्री ठाकुर इनके लिये प्रकट बने रहे।

अनुभूति एक स्वतन्त्र और निज सम्बन्ध की बात है, प्रचार तथा प्रसार का विषय नहीं। सुरभि तथा विभा को छिपा पाना असम्भव है। इसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक गुप्त रहने के प्रयास पर भी प्रस्फुटित कलिका की भाँति उनकी सुगन्धि तथा स्निग्धता सर्वत्र व्याप्त हो गई और वे सर्वज्ञात हो गईं।

श्यामा-श्याम में इनकी अनन्य निष्ठा थी। साथ-साथ भगवान राघवेन्द्र और किशोरी जी के चरणों में इनका दृढ़ अनुराग रहा। ऐसी अनेक अनुभूतियों से उनका जीवन संयुत रहा।

वे प्रिया-प्रियतम की अनन्य कृपा पात्र रहीं। देह बन्धन की मात्र औपचारिकता से मुक्त कर श्याम सुन्दर ने अपनी सतत सन्निधि में सदा-सदा के लिये बुला लिया।

चिरस्मरणीया वे, साधकों के लिये प्रेरणा स्रोत बन चिरस्पृहणीय और स्मरणीय रहेंगी- ऐसी मेरी धारणा है।

श्रद्धेय स्वामी हितदास जी महाराज, 'रसिक पद रेणु', हिताश्रम सत्संग भूमि वृन्दावन

श्री राधा

जीरन पट अति दीन लट, हिये सरस अनुराग ।
विवस सघन वन में फिरै, गावत जुगल सुहाग ॥
नैंननि प्रिय मूरति बसै, तेहि रस रहे समाय ।
ये लच्छन सुन प्रेम के और न कछू सुहाय ॥
और न कछू सुहाय फिरै अपने मद मातौ ।
कुटुम्ब देह सौं जाय छूटि, सबही बिधि नातौ ॥

गत वर्ष एक संक्षिप्त जीवन वृत्त देखने को मिला। एक महान चरित्र को देख प्रसन्नता हुई। सहसा दो-एक जनों से तत्सम्बन्धी चर्चा भी हुई थी। प्रिया-प्रियतम की लीला-चर्चा में मन का इतना सहज द्रवण, श्री ठाकुर सेवा में अभूतपूर्व अभिनिवेश तथा प्रिया-प्रियतम से आत्मीयता-ओह ! उस महान विभूति के सेव्य स्वरूप प्रिया-प्रियतम के दर्शन की लालसा भी अकुलाती रही ।

बहुत समय से भोर में रमणरेती जाने का अभ्यास सा रहा है । जाते लौटते जिस विभूति की प्रिया-प्रियतम छवि से सरसाई तरल दृष्टि, साधारण श्वेत वस्त्रों में दबी-ढकी शालीनता, अद्भुत प्रेम रस प्रवाह, उन्मत्तों की सी चाल ने प्रथम दृष्टि में ही बरबस कुछ क्षण को ठिठका दिया था, मन श्रद्धावनत हो गया था- चर्चा कर कुछ कह सुन लेना चाहता रहा था- उसी का इति वृत्त देख नेत्र सरस हो गए। अन्तराल की गहराइयों में खोया सत्तर के दशक में लौट गया ।

उन दिनों रमण रेती की एकान्तिक स्थली ही मेरी संरक्षक थी । विरक्ति सहज चली आ रही थी। अचल-विहार की सन्निधि में मन सुखी होता था। वहाँ जाते समय जिस विभूति की मत्त चाल ने प्रिया-प्रियतम के प्रेम में छलकते अनुराग ने, एक वैराग्य पूर्ण आवेश ने श्री ध्रुवदास जी की उक्त कुण्डलिया को चरितार्थ कर हठात् मुझे आकर्षित किया था- विशेष परिचय के अभाव में सम्पर्क बढ़ा पाने का संकोचवश साहस न कर सका था, आज इतिवृत्त में समाई उस विभूति को किञ्चित् और जानने का सुयोग बना ।

प्रेम पथ कहीं भी इयत्ता में बंधा नहीं है । कहां किस वेष में, कितनी गरिमा भरी है, सम्पर्क में आने पर ही यत्किञ्चित् अनुमान हो सकता है ।

निश्चय ही श्री ऊषा जी के हृदय में प्रिया-प्रियतम के अनुराग में उठी रस तरङ्गों को कुछ अधिक देखनेका अवसर मिला। उससे उनकी सहृदयता,

वैराग्य, तथा श्यामा-श्याम के चरणों में दृढ़ अनुराग, श्री राधावल्लभ जी के प्रति आस्था, श्री ललिता चरण जी महाराज से आत्मीयता- सभी ने मेरी आस्था को और-और पुष्ट किया है। उनका व्यक्तित्व पूर्वाग्रह रहित था, निष्पक्ष तथा स्वच्छंद विचार धारा जो सभी सम्प्रदायाचार्यों के प्रति सम भाव से श्रद्धावनत रही, प्रशंसनीय है। आदि गुरु वैष्णवाग्रगण्य भगवान शंकर ही इन्हें गुरू रूप में प्राप्त हुए होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रिया-प्रियतम की लीलाओं में नित्य सिद्ध देह धारी श्री सखा जी की सतत स्थिति, अभिनिवेश, प्रिया-प्रियतम के संकेत से श्री ऊषा जी के लिये उन्हीं लीलाओं का सहज दर्शन प्राकट्य एवं सुलभता एक ऐसा अप्रतिम, अद्वितीय अभूतपूर्व सुयोग है जिसे पूर्वाचार्यों की चिन्तन/दर्शन प्रणाली में आगे का योग ही कहा जावेगा।

हमारे शास्त्र पुराण साक्षी हैं, सन्तों ने, प्रिया-प्रियतम के निज परिकर ने, विविध मिस से परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप में समय-समय पर स्वयं को उपलब्ध करा अपने जनों का पथ प्रशस्त किया है-उन्हें मार्ग दर्शन दिया है, अत: (उन श्री सखा जी) द्वारा प्रदत्त लीलाओं के अंश सुन कर लगता है, उन महानुभाव की स्थिति/भावाभिव्यक्ति नित्य सिद्ध जगत की अवश्य रही है। भाषा का इतना सुललित, सरस तथा मर्म स्पर्शी वर्णन उन जैसे सन्त की ही गरिमा है।

विजय जी मेरे स्नेही अनुज हैं। मैं इनसे अवश्य आग्रह करूंगा कि इन लीलाओं को शीघ्र प्रकाशित कर रसिक भक्तों का हित सम्पादन करें। श्री प्रिया-प्रियतम की प्रेरणा से ही यह सुयोग श्री ऊषा जी के जीवन में प्रकट हुआ- उनके विषय में कुछ भी कहना अपर्याप्त ही है। वे रसिक प्रेमी भक्त थीं। रास मण्डल समीपस्थ गोविन्द घाट पर स्थित लता विटपों ने श्री ध्रुवदास जी, श्री सेवक जी तथा नरवाहन जी की नित्य मिलन लीला का दर्शन किया है, आज श्री ऊषा जी के निकुञ्ज लीला प्रवेश को निरख साक्षी दे रहे हैं, अपने दलों से व्यजन कर, विराजित पक्षियों के स्वर में स्वर मिला कर। ऐसे रसिकों के गीत गाए हैं श्री ध्रुव दास जी सरीखे महान रसिक प्रेमियों ने, भक्तों ने।

रस भीज्यौ रस में फिरै, रसनिधि जमुना तीर।
चिंतत रस में सने दोउ, स्यामल गौर सरीर॥

श्री स्वामी चैतन्य कृष्णाश्रय तीर्थ (श्री अतुल कृष्ण गोस्वामी)

सन्त शान्ता तीर्थ आश्रम, मोती झील, वृन्दावन ।

आज मैं एक ऐसे व्यक्तित्व के विषय में अपना अभिमत देने जा रहा हूँ, जो ऊषा जी के नाम से वृन्दावन में एकान्त, शान्त साधिका और अनन्य रसोपासिका के रूप में गोपनीय रहने की चेष्टा में रत रहने पर भी अप्रकट और अनवगत नहीं रह सका, जैसे सुरभि और विभा को नहीं लुकाया जा सकता । सुतरां उनके व्यक्तित्व, कृतित्व पर भी उनके शील और संकोच का आवरण नहीं टिक सका । वे अज्ञात होकर भी सर्वज्ञात हो गईं और अपने समय की निश्चित ही एक सक्षम अवदात विभूति बन गईं । श्री मद्वाल्मीकि रामायण में 'सिद्धा-सिद्ध सम्मता' शबरी के प्रसङ्ग में वर्णित है अर्थात्- समस्त ऋषि इनको नमन् करने में गौरवान्वित होते थे तथा आनंद प्राप्त करते थे, उन्हें वैराग्य भक्ति की प्रतीक मानते थे- यह बात ज्यों की त्यों श्री ऊषा जी में आदर्श रूप से परिलक्षित होती है ।

अम्बाला छावनी में सनातन धर्म कन्या विद्यालय को इन्होंने प्रारम्भ कर सुचारू रूप से चलाया । वहां की प्रधानाध्यापिका बनी रहीं । राजनीति में भी इनका योगदान रहा- महिला कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में ।

काव्य उनका नैसर्गिक स्वभाव था । अपने पूर्व जीवन में अन्य विषयों पर भी लिखा परन्तु उनकी मूल भावना जन्म से ही अध्यात्म परिपूर्ण रही अतः उनके हृदय के उद्गार ही, अनुभूतियां ही काव्य का रूप ले प्रकट हुए । मुझे याद आती है मतवाली मीरा की- उन्हीं की मुक्त भावनाओं से मेल खाता श्री ऊषा जी का काव्य प्रवाह न तो किसी पूर्वाग्रह से प्रभावित रहा और न ही किसी प्रकार की व्यवस्थाओं अथवा स्पष्टीकरण से; प्रत्युत मन का एक सहज प्रवाह आध्यात्मिक अनुभूति के परिप्रेक्ष्य में प्रस्फुटित हुआ ।

सन् १९५८ में यह ब्रज में अपने सांसारिक इतिवृत्त से मुक्त होकर चली आईं । अनेक सन्तों, भक्तों तथा गोस्वामी कुलीन विद्वत् समाज में इनकी अटूट श्रद्धा रही । इन्हीं प्रसङ्गों में इनसे सम्पर्क हुआ । यह सम्पर्क इतना विनय और श्रद्धा पूर्ण था कि इसकी अमिट छाप आज भी मेरे हृदय पर बनी है ।

अधिक सम्पर्क तो मेरा अवश्य ही इनसे नहीं हो सका, परन्तु जितना भी हुआ उससे लगता है कि उनकी अनुभूति अध्यात्म के शिखर पर थी । वैसे तो अनुभूति को किसी सीमा में बांधा नहीं जा सकता और न ही एक सन्त दूसरे सन्त

के अनुभव के स्तर की कोई कसौटी हो सकता है, सभी अपने अपने स्थान पर पूर्ण हैं फिर भी श्री श्री चैतन्य महाप्रभु की सी विरक्ति और मधुरा भक्ति, पुष्टिमार्गीय सेवा, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी तथा रूप सनातन जी की भक्ति उपासना का उत्कृष्ट उदाहरण आज के युग में समन्वित रूप से उनमें देखने को मिला।

उनके सम्पर्क के अनेक उच्च शिक्षा प्राप्त साधक आज भी वृन्दावन वास कर अपने साधन में रत हैं, यह उन्हीं का कृपा प्रसाद है।

मेरा ऊषा जी से बहुत सन्निकर्ष तो अवश्य नहीं था, कथा तथा सत्संग के माध्यम से जितना सम्पर्क हुआ उससे मुझ में एक स्थायी आस्था उत्पन्न हो गई जो अद्यावधि अन्तर में सुरक्षित है तथा स्फुरित और आनन्दित करती है।

चिर स्मरणीया वे साधकों के लिये प्रेरणा स्रोत बन चिर-स्पृहणीय और स्मरणीय रहेंगी।

श्रद्धेय श्री आनन्ददास जी महाराज आनन्दाश्रम, वृन्दावन

॥ सीतारामाभ्याम् नमः ॥

'सन्तन यह निर्णय कियो, मथि पुराण इतिहास ।
भजबे को दोई सुघर, कै हरि, कै हरिदास ॥'

'नाभादास जी'

भक्त-परम्परा का इतिहास बड़ा ही अनूठा है । भक्तों के सामर्थ्य की तो कोई सीमा ही नहीं है । भगवान श्री मुख से सन्तों के चरित्र का वर्णन करते हैं; वे भक्तों के, सन्तों के अधीन हो, उनके संकल्प के सामने स्वयं को समर्पित कर देते हैं । श्री नाभा जी ने 'कै हरि, कै हरिदास' कह कर 'हरि' एवं 'हरिदासों' के प्रति समभाव ही प्रदर्शित किया है परन्तु भगवान ने तो 'अहं भक्त-पराधीनः' कह कर भक्तों के गौरव को और भी बढ़ाया है ।

ऐसी ही परम भागवत थीं, श्री ऊषाजी । मेरा उनसे वर्षों का सम्पर्क रहा है । अगर सर्व गुण सम्पन्न भक्त मेरे जीवन में कोई मिला, जिसमें गुण प्रकट हो स्वयं की सार्थकता मानते रहे, तो वे श्री ऊषाजी ही थीं । वे अपनी सी आप थीं । उनमें वैराग्य था, तितिक्षा थी, त्याग था, स्नेह था, प्रेम था, शालीनता थी, विद्वत्ता थी; उनका सम्पूर्ण मर्यादापूर्ण जीवन सभी के लिये अनुकरणीय था । इसके अतिरिक्त उनका सर्वोपरि गुण था, प्रिया-प्रियतम के श्री चरणों में एकान्तिक सुदृढ़ अनुराग ।

श्रीराम जी तथा जानकी जी के प्रति उनकी भावना को देख गुसाँई जी की पंक्ति 'हरहु भेद मति' स्मरण हो आती है । भेद-बुद्धि उनमें तनिक भी न थी।

उनका अनुरक्त हृदय प्रेमाभक्ति से लबालब भरा था जो बीच-बीच में द्रवित होता, अनेकों बार मैंने देखा है । श्री रामजी और जानकी जी की कृपा ममता को मैंने उन पर बरसते प्रत्यक्ष देखा है । उनके विषय में क्या लिखा जाये !

जिस प्रकार 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता,' ठीक इसी प्रकार प्रेमी भक्तों का चरित्र अनन्त से भी शतगुणाधिक होता है । इसका कोई ओर-छोर थोड़े ही है । मुझे गर्व है कि मुझे एक ऐसी भागवत से मिलने का सुयोग मिला । मैं दावे से कह सकता हूँ कि वे श्री राधाकृष्ण की प्रेममयी सेवा में नित्य मग्न रहती थीं और अब भी उन्हीं की सतत सन्निधि में सहज चली गईं ।

उनकी महानता का सबसे अपूर्व अद्भुत एवं अद्वितीय सुयोग प्रिया-प्रियतम द्वारा अपनी निज परिकर, एक सखी को श्री ऊषा जी के पास भेजना है । यह एक ऐसा सुयोग है जिसका उदाहरण दुर्लभ है । वैसे, सन्तों के परोक्ष अथवा

अपरोक्ष रूप से, भक्तों, निज जनों का पथ प्रशस्त करने के अनेकानेक उदाहरणों से वैष्णव समाज गौरवान्वित होता रहा है परन्तु इस प्रकार का सुयोग सहज, सम्भव नहीं है। उनके मुखारविन्द से पदों और लीलाओं का जो वर्णन हुआ है, वह अत्यन्त गोपनीय है।

श्री शीला जी तथा भैया विजय को मैंने वर्षों से उनके साथ देखा है। सेवा भी इन्होंने अपूर्व की, उनका प्रेम भी इनके प्रति विशेष रहा।

प्रेमी भक्तों के चरित्र का कौन सा प्रसङ्ग छोड़ें और कौन सा वर्णन करें। विजय भैया उनका चरित्र अंकित कर सकते हैं- ऐसा हमारा आशीर्वाद है। वे आगे-आगे विजय भैया को संकेत करती जाऐंगी।

जय जय सीता राम।

सो सुख जानहिं मन अरु काना,
रसना पै नहिं जाइ बखाना।

वाणी वर्णन करने में मूक हो जाती है, स्तब्ध रह जाती है।

फरवरी, १९९३

पूजनीया श्री सुशीला बहन जी

श्रीधाम वृन्दावन

श्री हरिः

मेरे ममतार्णव युगल सुन्दर ने मुझे अपनी प्राणों की अमित अनुपम निधि सौंपी थी, उसे संभाल पाने में मैं सर्वथा असमर्थ रही, उसका संरक्षण करने में सर्वथा अक्षम रही; वही अद्भुत निधि मुझ असमर्थ को अपने तन-मन-प्राणों की सुदुर्लभ निधि, अपने सर्वस्व युगल सुन्दर को सौंप गयीं। मुझ अक्षम की क्षमता, वही अभिन्न प्राणा अपनी सौंपी निधि का संरक्षण पोषण अपने मृदुल-तरल हृदय से सेवा-शृँगार, लाड़ प्यार से करती रहें, प्रफुल्लित रखें।

अक्षय तृतीया २०५१ सुशीला

श्री राधे

परम पूज्य श्री प्रेमानन्द जी महाराज, बांके बिहारी कालोनी, वृन्दावन ।

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुः निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥

श्री मद्भागवत ११.२०.३५

"निरपेक्षता ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व महान निश्रेयस (परम कल्याण) है । अतएव निष्काम एवं निरपेक्ष ही को भक्ति प्राप्त होती है ।"

निरपेक्षता अर्थात् स्वसुख के लिये देश, काल, वस्तु, व्यक्ति इत्यादि किसी की भी अपेक्षा न रखना यही स्वरूप निष्ठा का असाधारण लक्षण है, सर्वोत्तम परिचय है ।

इसकी, ज्वलन्त जीवन्त उदाहरण हैं, पूजनीया श्री ऊषा जी ।

प्रेमानन्द

× × ×

परम गोप्य जो रस रहस्य
सुर मुनि गण जान न पाएँ ।
अज्ञ मनुज मति गति अगम्य
सर्वज्ञ वृन्द ललचाएँ ।
उस अनुपम निधि के प्रतिनिधि
की गाथा किस विधि गाएँ ।
बन्धु कहो ब्रजविधु कलंक
इस शिशु को भूल न जाएँ ॥

– श्री बिहारीदास 'वृन्दावनी'

परम पूज्य मनोहर दास जी, वेणु विनोद कुञ्ज।

जिनके लिये दो शब्द लिखने जा रहा हूँ, लिखना अत्यन्त कठिन लग रहा है। जिनकी स्मृति मात्र से ही हृदय उमड़ने लगता है, उनके लिये दो शब्द क्या, एक शब्द भी लिखना कैसे संभव हो सकता है? साहस है, पर व्यर्थ। परम आत्मीयता का स्वरूप सामने आते ही कलम रुकने लगती है। जिनके हृदय में स्नेह का सागर लहराता रहा है, उसका वर्णन किस तरह किया जाये? जिनके शुद्ध आध्यात्मिक स्नेह पाश में हजारों हृदय सहज आकर्षित होकर सदा सदा के लिये भक्ति सरिता में निरन्तर बहने लगे हों- व निरन्तर अकाट्य प्रीति बन्धन में बन्ध गये हों, उनके अगाध कृष्ण प्रेम का किस तरह वर्णन किया जाये? जिनकी जीवन धारा जन्म से ही श्री कृष्ण-प्रीति को लेकर प्रकट हुई हो व उस प्रवाह में अगणित प्राणी अद्यावधि अवगाहन कर रहे हों, तो उसका वर्णन कैसे संभव हो! आध्यात्मिक जीवन के साथ साथ, स्नेहपूर्ण सम व्यवहार का पालन जिनके रोम रोम से होता रहा हो, उसका वर्णन लेखनी क्या करे?

जिनके जीवन का एक, एक क्षण, एक, एक श्वास श्रीकृष्ण के लिये ही हो, क्या वर्णन करे जड़ लेखनी उनका। जिन्होंने जीवन में कभी भी अपने शरीर सुख के लिये एक भी कार्य न किया हो, । सब कार्य श्रीकृष्ण सुख के लिये ही हुए हों, दृष्टव्य यावत् वस्तु, व्यक्ति, पारिवारिक, सामाजिक जनों का सम्बन्ध कदापि न चाहा हो, कैसे वर्णन किया जाय उनका?

भगवत् अनुराग से जिनका तन, मन, प्राण लबालब भरा हुआ हो, उनके बारे में मैं क्या लिखूं? उनके स्नेह की स्मृति कर बस हृदय उमड़ता ही रहता है व उमड़ता ही रहेगा।

आज मैं ही नहीं, उनका सब परिकर तथा जो भी उनके सम्पर्क में आये, उनकी स्मृति से द्रवित हो उठते हैं तथा उनकी स्वरूप स्मृति में खो जाते हैं। इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। उनकी यह जीवन धारा साधकों के लिये पथ प्रदर्शन करने वाला राजपथ ही सिद्ध होगी।

वे क्या थीं? रस धारा की लहलहाति लतिका थीं, कि रसमई

सरिता थीं। श्री कृष्ण-कम्बु कण्ठ में लहराती वनमाला थीं, या प्रेम-पीयूष मद की मदिरा थीं, कि नीलघन किशोर की प्यासी चातकी थीं। क्या थीं क्या थीं, जो भी थीं, वे वहीं थीं।

याही रस में रहे मगन, नहीं जाने निशि भोर।
वृन्दावन में प्रेम की, नदी बहे चहुँ ओर ॥

× × ×

श्री कृष्ण चैतन्य भट्ट गोस्वामी, पीठासीन आचार्य एवं अध्यक्ष

मदन मोहन जी का मन्दिर, अठखम्बा

॥ श्री मन्मदनमोहनो जयति ॥

'उपासना' शब्द का तात्विक अर्थ है- अपने प्रेमास्पद के निकट से निकटतम स्थिति में पहुँच जाना। यह अलौकिक विशुद्ध भावमयी रागमूला अन्तर्यात्रा है जिसे बाह्य बुद्धीन्द्रिय प्रधान ईक्षणशक्ति से न तो देखा जा सकता है और न मूल्यांकित। ऐसे साधक-साधिकाओं के सन्निकट रहकर ही उसका आस्वादन किया जा सकता है और अनुभव भी। श्री धाम प्राप्त बोबो जी का, श्री विजय जी ने जिस सूक्ष्मता, अनुसन्धान वृत्ति और गहरी आत्मीयता के साथ परिचय वृत्त प्रस्तुत किया है, वह अति संवेदनशील, प्रेरणाप्रद एवं उदात्त चेतना से ओतप्रोत है। इस वृत्त के अवगाहन से प्रमाणित होता है कि श्री श्री हरिराम व्यास जी की वाणी में लीला-सन्निधि और उसका नित्यत्व स्वयं परिज्ञापित हो सकता है यदि अन्तर्चक्षु उस चिन्मय रस प्रकाश को झेलने को तैयार हों-

'बैठी रहौं कुञ्जन के कोने स्यामराधिका गाऊँ'

Hail all Glory to their Lordship Śrī Śrī Rādhā Kṛṣṇa

Sri Radhika Prasad, Maharajji,
District Education Officer (Retd.), Andhra Pradesh.

From times immemorial, India is famous for its women saints and seers. We read in scriptures about the lives of saints like Gārgī and Madālasā who flourished in India even during Vedic times. By reading about their lives earnest seekers of Truth gain deep insight into the invisible spiritual glories and beauties of the higher spiritual realms.

Due to advancement in science in the modern times an average man is not easily accepting the Truth revealed in ancient scriptures by great seers like Vālmīki, Vyāsadeva, and others for the benefit of every seeker of Truth. He questions everything. He doubts everything. In fact there are some educated youths who doubt even the existence of God. Just at this time a great saint **Bhaktimatī Shrī Ushā Bahenji** whom I know personally for a number of years at **Srī Vrindāvan**, who flourished in Srī Vrindāvan for over half a century, attracted several educated youths, men and women, made them live a life of lifelong celebacy and lifelong Tapas. The saint refused self publicity and silently changed the lives of several highly educated youths, belonging to different regions of India. We cannot imagine a greater simplicity of life, a greater suppression of all her spiritual knowledge and spiritual glory, though she has reached great hights of spiritual realisation and spiritual vision; her life itself is a great sermon to all those who came to her. She was a powerful spiritual magnet who talked less but did more work than one can imagine. We reveal to worthy readers of this book a few **highlights** in her **spiritual life** and her spiritual achievements.

I can assure the readers that they will certainly gain spiritual faith, spiritual progress by simply reading this book with all their heart. There are no attempts in her life to create spiritual puzzles in our minds by her talks or writings. Everything is clear and plain as broad day light. A stone can be turned into sand by several hammer blows. The same can be accomplished by the touch of flowing water of a river which moves silently converting all stones into soft sand. This example aptly suits the way of her spiritual life. I will now reveal a few highlights:-

(1) An average educated modern youth questions about the reality and existence of higher spiritual planes and about the existence of spiritual adepts, who move in the higher spiritual planes and create spiritual inspirations in the hearts of earnest seekers of God or Truth. This fact is now clearly proved in the spiritual life of the great saint. *One great saint moving on higher spiritual plane and belonging to the inner circle of* ***Lord Śrī Rādhā Krisṇa*** *as a great* ***Sakhī,*** *was occasionally coming down to this plane and contacting* ***Ushājī*** *and was revealing certain great truths to her - truths revealing certain esoteric secrets relating to* ***Śrī Krisṇa*** *and* ***Śrī Rādhā*** *and other spiritual matters. This book contains the great messages given in the silent language of that great spiritual adept. Every reader is advised to read these messages seriously.*

(2) It is a fact that great souls attract to themselves certain chosen deserving followers belonging to this mundane plane and keep them as their followers even on the higher planes. This saint **Śrī Ushāji** belongs to that calibre of higher spiritual adepts.

Exactly at the time when the physical body of this saint was being taken in a boat for immersion in the holy river ***Yamunā,*** *a blessed lady follower of this saint who had just come from* ***Jind (Haryana)*** *embraced the body of* ***Ushājī*** *and cried out in piteous tone "Oh! Bobo (Sister) where are you going alone without taking me, I cannot bear your separation". Thus saying this, she immediately fell down and left for her heavenly abode. Oh! What a great power Ushaji possessed !*

We read in the life of Śrī Chaitanya Maha Prabhu that one of his followers Swarup Damodar fell down dead as soon as he heard about the final departure of Srī Chaitanya from this world. Similarly a famous follower of Śrī Hita Harivaṁśa Mahaprabhu of Vrindāvan who had been working as Prime Minister of Junagadh State left the physical body as soon as he heard physical disappearance and transformation of Śrī Hita Harivaṁśa Mahāprabhu of Vrindavan as a Sakhī of Śrī Rādhājī. This incident happened in Vrindavan on the holy Śarat Purṇimā-day in the midst of thousands of spectators during 16th century.

It is my duty as one of the readers of this holy book to convey my heart-felt gratitude to ***Śrī Vijay Bhaijee*** who took great pains in collecting all material and publishing this book at considerable cost.

A Tribute to Venerable Usha Bobo
On the Occasion of her 69th Birth Anniversary

Prof. S.P. Singh
Sanskrit Department,
Aligarh Muslim University, Aligarh

Continuity as well as antiquity is the hall-mark of the Indian tradition. It is truer of matters spiritual since they stood beyond the reach of marauders of the cultural heritage and formed the core of the perceptive vision of the Indian genius. Spiritual Sādhanā in this holy land has its beginning in the invocation of Agni which reads as follows:

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ Ṛgveda I.1.1.

Apparently this Ṛgvedic mantra is a simple prayer addressed to Agni, the god of fire. But what is specially curious is that in this mantra Agni is addressed not only as the deity but also as the sacrificial priest, *purohita,* he regular sacrifices, *ṛtvija*, the invoker, *hotā* and the benefactor, *ratnadhā.* Here in the very first mantra of the Saṁhitā identity has been visualized between the deity on the one hand and human agency devoted to it variously on the other. It is with the same sense of his identity with the deity that Viśvāmitra, the celebrated seer of the gāyatrī mantra observes that he is Agni, the Jātavedas by birth and that luminous is his eye and immortality is on his tongue; that he is the sun, the bearer of the three worlds, the measurement of the starry firmament as well as the inexhaustible source of oblation:

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्त्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥RV.III.26.7

This type of vision, being obviously couched in sacrificial terms, forms the corner-stone of the edifice of sacrifice in the Brāhmaṇas, the Āraṇyakas, the Upaniṣads and the Bhagavadgītā, sacrifices are performed to symbolize mutual give and take amongst the individual, the universal and the transcendent. Thus the sacrifice was a means to discover man's intimate relationship with the highest as well as the universal reality. In the Bhagavadgītā, for instance, the sādhanā involved in the discovery of one's oneness with the Supreme Being is termed as Yajña as well as Yoga. The same Agni as is enkindled by the sacrifices to transform the material into the spiritual is also meditated upon by the

yogin as the unflinching flame of the lamp symbolizing the essential form of the spiritual being enclosed in the mortal coil:

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ Bhagvadgītā VI.19

It is in this spiritual fire that all the sacrifices culminate. It is here that the offering, the oblation, the fire, the sacrifice and the destination all coincide in Brahman as the gītā says:

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ Bhagvadgītā IV.24

As all sparks of fire seek to return to the all-pervading fire, even so all the individual souls strive to come back to Brahman, the identity of Brahman and Ātman established in the Upanisadic mahāvākyas, namely अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म is the final culmination of the sādhanā started by the aspirant with the enkindling of the sacrificial fire in the cultural history of India as well as in his own life.

This oneness attained in the state of samādhi though immeasurably blissful, seems and even tends to be exclusive of the world which too is after all a manifestation of the same Reality. The samādhic *beatitude* has eventually to be brought, therefore, to the external world also so that those who are not in a position to attain to samādhi may avail themselves of it. If अयमात्मा ब्रह्म is an axiomatic truth of the highest order, सर्वं खल्विदं ब्रह्म is no less so. In view of this the gifted seers and sages have a responsibility towards the society to make available to it the benefits of their visions and realizations not only in its peripheral form but in its crux also. It is this divine imperative which has led the custodian of higher realizations to make the Divine descend in various forms and be tangible even to the common man, live with him, play with him and work with him for the salvation of him.

This transition from samādhic experience to actual manifestation of the Divine is very much evident in Kṛṣṇa Dvaīpāyana Vyāsa's vision of the highest divinity in Kṛṣṇa and deputation of his son Śukadeva to enlighten king Parīkṣita with this awareness, Vyāsa was well versed in the vedic lore and had already skimmed the quintessence of the upaniṣads in the form of the gītā. He was perfect yogin too. Transporting all this equipment in Kṛṣṇa he projected the latter in such a fascinating way as made the perfection attained already in the Vedas and the upaniṣads more perfect. Being imparted to Śukadeva, the embodiment of wisdom and renunciation, this new insight got him interested in the well-being of the

world. The fruit of the vedic tree was ambrosial already no doubt, but by passing through the mouth of Śuka, the parrot, it became much more relishable, as the Bhāgavata puts it:

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुका : ॥
Bhāgavata I.1.3

This fascinating development made by Vyāsa over the vedic wisdom gave a new lease of life to Bhakti and brought rejuvenation to Jñāna, (knowledge) and Vairāgya, (renunciation). It resulted in the restoration of balance amongst these three tendencies of the mind. The consequence was a unique cultural resurgence resulting in the flow of the same stream in the life of the common man as well as in literature, art and culture. Emanating from the Samādhic consciousness, the sonorous note of the flute of Kṛṣṇa became audible in all walks of life and human creativity. Vrindāvana, the abode of the Lord's sportive actions came to form the centre of this creative resurgence. Men of wisdom, renunciation and higher creativity thronged to it en masse and through their sādhanā and creative expression of higher experiences they made to flow out of it mightly streams of celestial joy or *Rasa*. Active participation in the *mahārāsa* being perpetually staged in Vrindāvan made them immerse in the *rasa* and generate the same *rasa* in the hearts of others through various media of communication.

That this process of attraction to Vrindāvan, experiencing the joy and making others rejoice in it is continuing even until now, is made evident by the life of such saintly personages as the late Usha Bobo. She was born in Ambala in the year 1925. Her parents Sri Manamohan and Śyāmā showered upon her the best of their love and care. She was educated in the best traditions of the city. She got a fairly good job of a teacher and subsequently principal of a certain school. But all these felicities did not prove strong enough to keep her tied down to Ambala. from the very beginning she had earnest liking for Vrindāvan. She felt as if she really belonged to Vrindāvan and that it was by way of a sojourn that she happened to be born elsewhere.

It was in course of this unusual inclination to Vrindāvan that an interesting incident took place on July 30, 1954, the 30th birth day of Bobo. While she was wondering over the meaning of the term *nīla pariveṣṭita*, used by a friend of hers in their company, a saintly figure dropped in all of a sudden uttering the words *jaya jaya rādhikā mādhava.* His presence created a peculiar vibration in the room. On being enquired about him, the saint replied mystically enough that he was *Charana sakhā*,

friend of the feet, and that he lived at Kusuma Sarovara in Vraja where Uddhava also lived. Being asked as to how he came to Ambala, he said that it was by the biddings of Lord Kṛṣṇa. All, including Ushaji, were surprised on his replies. He narrated to them various life-stories of Kṛṣṇa and kept the audience spell-bound through them. This process continued for years. He kept visiting Usha's house regularly for years. Whenever she would think of him, he would appear before her from nowhere and would communicate to her various things about the Lord. All these mystic communications had such a tremendous effect on Ushaji that inspite of all persuations of her parents and friends she decided to leave Ambala for Vrindāvan and put up there permanently. Eventually she left for her chosen destination on Nov. 17, 1959 leaving behind her parents, friends, students, institution and the job.

Visit by the saint is the most curious part of her life. As is evident even circumstantially, he was not an ordinary human. He was an ethereal being embodying himself and coming to Usha ji on the biddings of Lord Kṛṣṇa so as to draw her closer to the latter which proved to be her destiny as well as destination. He was possibly a Siddha manifesting himself to her in an unusual way. According to the Yoga-Sūtra of Patañjali, a Siddha can no doubt be seen but only after rising to a higher state in Yoga. That state is called *saṁyama,* complete control over oneself. Saṁyama is attained when *dhāraṇā* merges in *dhyāna* and the latters matures into *samādhi,* when this saṁyama is established in the cerebral light, maintains Patañjali, one can have the vision of Siddhas:

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् Yoga-Sūtra III.32.

But in the case of Usha ji all this happened not only as a vision but as a concretely tangible presence with all its undeniable objectivity and in the glaring presence of a host of friends and well wishers. In her case the Siddha did not remain a dreamy archetypal figure casting its shadow over the mind of the subject but acted as a real three-dimensional personage appearing in broad day-light and conversing in commonly understandable idiom. Moreover, for this appearance, she did not have to undergo any intricate yogic process of stilling the working of the conscious mind and rising into the super-conscious. And even then the effect was the same and rather much more profound. Understandably the tool at her disposal in this respect was unflinching Bhakti, devotion to the Lord.

This incident in the life of Usha ji bears out remarkably the effectiveness of Bhakti even in matters taken to be exclusively yogic. She has demonstrated conclusively how a *bhakta* can enjoy all those felicities or the supramental which are supposed to be exclusive preserve of the yogin.

***
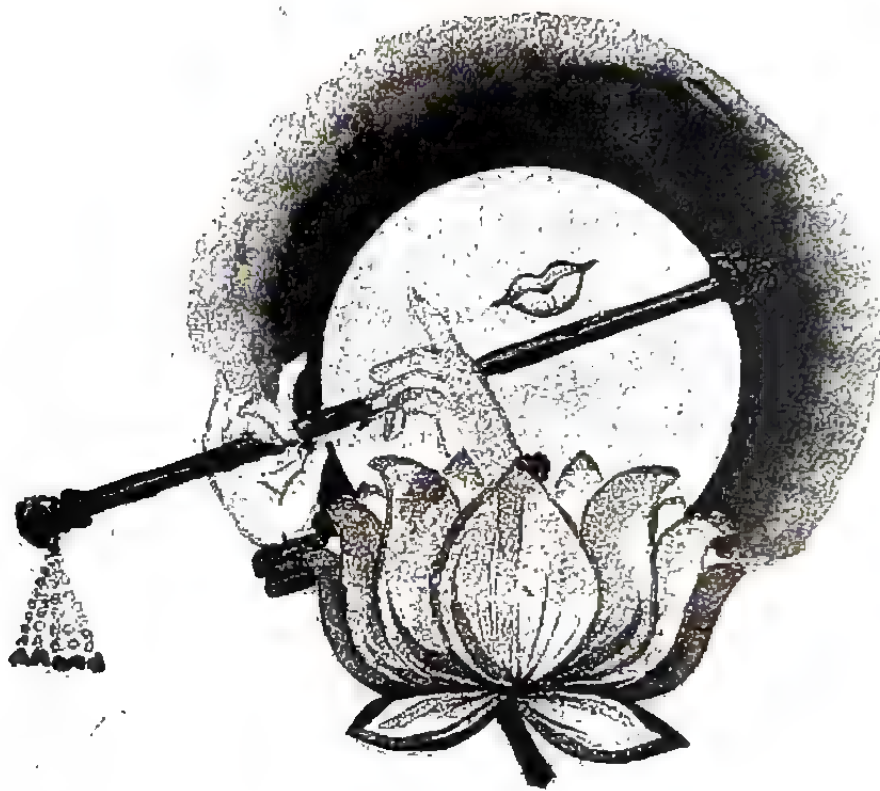
जीवन–सर्वस्व तन, मन प्राणों की निधि

ब्रज विभव की अपूर्व श्री

प्रथम भाग

जीवन परिचय

भक्तिमती ऊषा बहनजी

(पू० बोबो)

सरसावहु मन-प्राण-दृग
बरसावहु रस रंग।
अंग संग लगि डोलऊं
भरि नित नवल उमंग ॥

प्रथम भाग

प्रथम अध्याय

पृष्ठ ५ से ३८ तक

मधुर रसीली राधिके,
रसिक रसीले श्याम ।
रसमय कर दो हृदय मम
युगल नयन अभिराम ॥

आज सखी अतिभोर में,
देखे युगल किशोर ।
पुनि पुनि रस क्रीड़ा करें,
माते प्रणय झकोर ॥

एक ‖ माधुर्य की ओर

चैतन्य, प्राणी मात्र का मूल-भूत आधार है । प्रकृति चेतन है, पशु-पक्षी भी चेतन हैं । यावत् चराचर उसी चैतन्य से युक्त है, परन्तु मानव में उद्भासित वह चैतन्य किञ्चित् अलग अस्तित्व लेकर है। स्नेह और प्यार का स्रोत यावत् प्रकृति में विद्यमान है, परन्तु मानव को जो वैशिष्ट्य भगवान ने स्वयं प्रदान किया है, उसके लिये उसे उस अखण्ड सत्ता के प्रति आभारी होना ही होगा । अपने प्रति की गई इस विशेषता से उऋण होना मनुष्य अवश्य चाहता है परन्तु अपने प्रेमास्पद के श्री चरणों में अपने श्रद्धा सुमन वह किस प्रकार समर्पित करे-- इससे वह अनभिज्ञ सा ही रहता है, और वह आभार प्रकट करने के जाल में उलझ जाता है ।

सत्य को जब हम प्रेमास्पद के रूप में स्वीकार करते हैं, तो जीवन में सरसता भर जाती है । माधुर्याम्बुधि का अजस्र प्रवाह ठाठें मारने लगता है । देखना यह है कि वह सत्य क्या है ? यावत् प्रकृति में परिव्याप्त है वह अखण्ड सत्ता । श्रुतियों ने उसी को ''रसो वै स:'' कहा है। भक्तों के लिये त्रिभङ्ग रूप धारण कर 'वह श्यामलोज्ज्वल छवि' अपने एक चरण पर चरण धरे, कराङ्गुलियों से वंशी के छिद्रों पर नर्तन करती, विकम्पित अधरों से उसमें रस भरती, बंक चितवन से, मधुर मुस्कान से, नेत्रों के सरस संचालन से, क्या-क्या कहें, अपने रोम-रोम में परिव्याप्त सौन्दर्य-माधुर्य से सरसता का सञ्चार कर उसी रसपान को अकुलाई श्यामल सुषमा ओह ! सम्पूर्ण जगत को अपनी रूप-माधुरी के जादू से बौरा रही है ।

प्रेमास्पद अकुला रहे हैं, वे उपलब्ध हो रहे हैं, अपने पास बुला रहे हैं, मिलने के लिये आतुर हैं । प्रेमियों का संसार उसी से फलीभूत होता है अन्यथा उनकी करुणा-कोर तो जीवमात्र पर ही अनवरत, अखण्ड बरस रही है । ''Why was man created if not for the embraces of the Lord'' वे सम्मुख हैं तो फिर ज्ञान के बीहड़ जंगलों में भटकने का कोई हेतु नहीं है । क्यों न भक्ति की सरस, उत्फुल्ल वाटिका में सुखपूर्वक विचरण करें ?

प्रकृति गतिशील है । शीत की भयंकर ठिठुरन बसंत बहार बन हमारे मन-प्राणों को चंचल कर देती है और छा जाती है सरस चञ्चलता । यह चाञ्चल्य कभी बौराता भी है । धीरे-धीरे ग्रीष्म की ओर प्रवाहित कर ले जाता है । प्राणों में ताप भर जाता है । मन-प्राण तप्त हो जाते हैं । एक ओर इस भीषण ताप के फलस्वरूप कजरारे मेघों में एक सुनहरी आशा-किरण झलकती है, जिसे देख सभी आशान्वित हो जाते हैं । ग्रीष्म का वह प्रकोप पावस ऋतु के स्वागतार्थ अपना संभार त्रिविध समीरण को, प्रकृति के अलबेलेपन को, पक्षियों के कलरव को तथा झूमती इठलाती-मदमाती वृक्षवल्लरियों को सौंप, स्वयं वहीं विलीन हो जाता है ।

सजग हो उठती है तब प्रकृति । सभी नवोल्लास में भर जाते हैं । कोकिला का स्वर मुखरित हो जाता है, पपीहे की आशाकिरण सरसा जाती है, नृत्य-निरत हो जाता है केकी और मृगशावक कुदक कर अपना उल्लास व्यक्त करने लगते हैं । नृत्य की यह सरस झङ्कार यावत्-प्रकृति में भर जाती है । अनेक बार यह झंकार प्रकृति में सरसता बन समा जाती है । इसी से प्रफुल्लित हो मुखरित हो उठती है प्रकृति । मानव-मात्र के जीवन में बहार छा जाती है ।

रस का एक अगाध समुद्र है । प्रेमाम्बुधि में हिलोरें उठ रही हैं । अतिवाद वहां नहीं है । सम्यक् साम्य और समन्वय मणिसूत्रमिव अनुस्यूत हैं । अतः आइये इसी रस-साम्राज्य में चलें, प्राणों को सिक्त कर अमिट जीवन पा लें । अथाह प्यार के समुद्र के तट पर चलें । वह तट भी उतनी ही पूर्णता और सरसता से आप्लावित करने को अकुला रहा है, जितना वह रस समुद्र सरसता से भरा ठाठें मार, अपनी उत्तुङ्ग हिलोरों से सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो रहा है । उस माधुर्याम्बुधि की लोल-लहरियों में अवगाहन करें, जहाँ प्राणों के लिये शीतल विलेपन है, नेत्रों के लिये मधुर सौन्दर्य है तथा जिह्वा के लिये मधुर पेय । ओह ! सरस भावनाओंका मर्यादा में बद्ध अमर्यादित वह रसाम्बुधि ।

वह रसाम्बुधि अगम्य नहीं है । वह देखो ! सामने से संकेत दे दे तुम्हें मुझे और हम सभी को बुला रहा है । वह मधुर 'श्री' ब्रज की इन वन्य-स्थलियों में, हाट-बाट में, यमुना तट पर-वंशीवट पर विलुण्ठित हुई संकेत दे रही है । रसिक सिद्धसन्त की वाणी है :-

"श्याम रंग में रँगे जाने पर अन्य कोई रंग नहीं चढ़ता। यह रंग ही राग है । वह राग, जिसकी लय पर मन, प्राण, अन्तर नाच उठते हैं। यही वह राग है, जिसकी नशीली भावभूमि में एक बार धँस जाने पर फिर निकलना नहीं बनता । इस रंग में राग है, इस राग में रंग है । राग-रंग और रंग राग । कैसा सुन्दर, कितना मदिर, सुरस रसनिधि है ! इसी में रंगी गई थीं ब्रज-बावरियाँ, आज भी रंगी जा रही हैं उसी प्रकार । उन्हीं के रंग का कोई बिन्दु यदि जीवन में झलक उठे तो जीव कृतार्थ हो जाता है । इतना ही नहीं, उन्मत्त हो जाता है, रसमत्त हो जाता है । निर्मलता की उच्चतम स्थिति है यह ।

ब्रज गोपिकाओं के राग की झंकार आज भी रसिकों के हृदय में गूँज रही है । आज भी उसी राग मदिरा के कुछ बिन्दुओं को अपनी हृदय-प्यालियों में भर प्रेमियों का जीवन मद-प्लावित, अनुराग-रंजित हो रहा है । गोपिकाएँ, ब्रज की यह ग्वालिनें श्याम रंग में रंगी हैं और इनके प्रियतम श्यामसुन्दर इनकी प्रीति-रस में छके हैं । राग-रंग दोनों ओर से उमड़ता है । उमड़-उमड़ कर धावित होता है एक दूसरे की ओर, और उस वेग को फिर विविध विधि से विश्राम मिलता है । श्रम-विश्राम के उस गतिमान चक्र में यह प्रेयसी-प्रियतम झकोरें लेते रहते हैं ।"

श्यामसुन्दर की रसीली प्रेरणा ने एक मिस बनाया, एक बहाना बनाया, अपनी प्राणों की निधि, प्राणों की प्राण, अपनी निज परिकर अनेक-ऐसी रस विभूतियों में एक को यह भार सौंपा, तुम्हें बुलाने का, अपने सन्निकट बुलाने का ।

तुम उनकी अत्यन्त अपनी सखी रही हो, सहेली रही हो, उन्हीं की निज परिकर रही हो । उसी वाटिका का एक पुष्प रही हो, अब भी हो, बस अन्तर केवल इतना है कि उसको भूल चुकी हो तुम। केवल उस विस्मरण का विस्मरण करना होगा । स्मरण करते ही वह माधुरी श्यामल सुषमा तुम्हारे सामने होगी । घूमकर जब हम देखेंगे तो प्यार का वह लहराता समुद्र ठाठें मार रहा होगा । अपनी मृदुल सरस बाँहों में भर प्यार में सराबोर करने को अकुला रहा होगा । जीव मात्र की युग-युगों की तृषा का शमन वहीं उन्हीं की सन्निधि में जाकर होगा ।

प्यार की अगाध स्रोतस्विनी, शृंगार रस सरोवर की मरालिका, ब्रजचन्द्र चकोरी, यह रसमयी विभूति तुम्हें भान कराने आई थी,

अपने प्रेमास्पद का सन्देश देने आई थी, उस विस्मृति से सजग करने आई थी–उसे एक नया मोड़ देने आई थी। सर्वोपरि वहाँ चलने का सन्देश और मार्ग निर्देश करने। सभी के सम्मुख प्रस्तुत हो, सभी में घुल–मिल उस अखण्ड प्यार की सतत–धारा से आप्लावित करने। हम समझ कर भी समझ न सके, उसकी स्वाभाविकता में उसे पहचान न सके। हाय रे विडम्बना ! एक अमूल्य निधि, एक अमूल्य रत्न, प्रेम का मूर्त सरोवर, आदर्श का उत्तुङ्ग शिखर, धैर्य का गम्भीर समुद्र, तितिक्षा का महान आदर्श, भक्ति का अनुपम प्रकाश, प्रेमवाटिका का मनोहारी सर्वश्रेष्ठ पुष्प, जिसे न कोई समझ सका, न ही कोई उचित समादर दे सका, वह अनबूझ पहेली बन सरस भक्ति का मुक्त हस्त से वितरण करती रही एक बिल्कुल साधारण व्यक्तित्व बन। ओह ! उस असाधारण, अलौकिक व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन न कर सका कोई–समझना तो बहुत दूर की बात थी, परन्तु वह एक मर्यादित, शास्त्र सम्मत–पूर्ण शोभा जहाँ गई, वहीं अपनी सुषमा से स्नात करती रही, अपनी सौरभ का प्रसार करती रही। अपने सम्पूर्ण गुणों के कारण एक आलोक स्तम्भ बनी रही–जिसमें मार्गदर्शन पाते रहे, लहराते रहे, डूबते उतराते रहे, अनेकानेक महज्जन। उस रसमयी विभूति का यह खेल था। उसके जीवन में छलकता रस का वह स्रोत सभी को सिक्त करता रहा–एक प्रशस्त पथ बन, शास्त्र–सम्मत पथ का (जो उसका स्वाभाविक गुण था) निर्देश देता रहा। प्यार की उसी राह का अता–पता देता रहा।

ब्रज की वह अपूर्व निधि, उस खेल का अभिनय कर सिमट गई, वहीं लौट गई –जहाँ से वह आई थी, क्योंकि उसकी आवश्यकता वहाँ अधिक थी। यहाँ रहकर, अपनी स्थिति में बनी रहकर, उस रस विभूति ने, ब्रज की निधि ने अपने उस लम्बे समय में, अपनी उस स्वाभाविकता में जिन उच्चादर्शों का प्रतिपादन किया, अनुमोदन किया, वह सराहनीय तो हैं ही, ग्रहणीय भी हैं। उस विभूति ने अनेक उपदेश दिये, अनेक संकेत किये, अनेक प्रेरणाएँ दीं, निर्झर की भाँति श्यामा–श्याम की झरती उस रूपमाधुरी का अता–पता दिया। उसमें अवगाहन कराया, उसमें सराबोर कर दिया। जो–जो लोग किसी न किसी मिस से उनके सम्पर्क में आए, वे धन्य हो गए, जिनसे आत्मीयता का सम्बन्ध हुआ, अवश्य ही कृतार्थ हो गए। श्याम–रसपिपासु हृदय की पिपासा का शमन हुआ उन्हीं रसिकेन्द्र–मौलि के सामीप्य और सान्निध्य में।

उनका व्यक्तित्व स्वच्छ दर्पण था। वे चातक के लिये स्वाति नक्षत्र का लबालब भरा मेघ थीं, जिसकी अनवरत पुकार से बरबस खिंच आती है स्वाति की वर्षा; मयूर के लिये कजरारे मेघों की घुमड़न थीं; जिसकी सुशीतल गम्भीर गर्जना को सुन नृत्य-निरत हो जाता है वह, दिनकर की वह उद्भासित प्रथम किरण थीं; जिसका स्पर्श पाते ही कमल में जीवन खिलखिला जाता है। कुमुदिनी के लिये श्यामल इन्दु की सुशीतल किरण थीं, समुद्र के लिये पूर्णिमा का पूर्णचन्द्र थीं। क्या-क्या कहें . . . . वे जो भी थीं, पूर्ण थीं . . . और वह पूर्ण ही उनका सर्वस्व था। वह पूर्ण सर्वदा पूर्ण ही बना रहता है। संजोने के नाम पर जो कुछ उनके पास था, उसी परिपूर्ण प्रियतम श्यामसुन्दर की धरोहर को, मुक्त हस्त से वितरण कर सभी में रस सञ्चार करती रहीं।

❑❑❑

दो तत्कालीन परिस्थितियाँ

पूजनीया बहन जी का जन्म ३० जौलाई सन् १९२५ को हुआ। राजनैतिक दृष्टि से उस समय की परिस्थितियाँ कुछ विशेष सुखद नहीं थीं। अंग्रेजों का राज्य भारत पर बड़े लम्बे अरसे से चला आ रहा था। स्वतंत्र भारत तथा स्वतंत्रता का बिगुल कांग्रेस के गठन के साथ-साथ बहुत पहले से बज चुका था। महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, गोपाल कृष्ण गोखले, पट्टाभिसीतारमैया, वल्लभ भाई पटेल प्रभृति अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजी सत्ता के विरोध में भारी प्रचार तथा सत्याग्रहों का आयोजन किया। इधर पंजाब में पहले लाला हरदयाल तथा पीछे लाला लाजपत राय, भगत सिंह, सुखदेव आदि का योगदान हो रहा था। अमृतसर के जलियाँ वाले काण्ड को अभी पंजाब की जनता भूल नहीं पाई थी, फिर भी जनाक्रोश शांन्त अवश्य दीखता था, परन्तु भीतर से स्वतंत्र भारत की कामना जन-जन को पुनः पुनः उद्वेलित कर देती थी।

यह युग वास्तव में गान्धी युग ही माना गया। भारतीय राजनीति में गांधी जी पूर्णतः छाए रहे। गोखलेजी को लगता था निश्चय ही इस समय हमारी उपलब्धियाँ कम हो सकती हैं परन्तु आने वाला भारतीय समाज निःसन्देह इसी भित्ति पर एक सुखद भविष्य का निर्माण कर गौरव को बढ़ाने वाला होगा। इधर लाला लाजपत राय की विचार धारा जन-जन के मन में घर कर चुकी थी। दास्य की शृंखलाओं के विरोध में उनके विचार अनुकरणीय तथा माननीय थे। उनकी धारणा 'दास की आत्मा नहीं होती इसी प्रकार दास की कोई जाति नहीं होती।' आत्मा के बिना मनुष्य केवल पशु है,' इस प्रकार की विचारधारा समाज में रोष बन घर कर गई। विवशता अवश्य सामने दिखलाई देती रही। गांधी जी की विचारधारा बड़ी ही समन्वयात्मक थी। उनकी किसी भी क्रिया में उग्रता नहीं थी। असहयोग और अहिंसात्मक स्वरूप जो उन्होंने आदर्श रूप में समाज के सामने रखा उसकी सराहना सभी ने की। कई जगह इसका विरोध भी हुआ

परन्तु इस समय और किसी विकल्प के अभाव में महात्मा गांधी ही उदार तथा उग्रवादी दोनों ही दलों की राजनैतिक परम्पराओं के उत्तराधिकारी बने।

उक्त राजनीतिक परिस्थितियों से श्री मनमोहन जी (बहन जी के पिता) भी प्रभावित हुए, वे घोर राष्ट्रवादी थे। विदेशी सामान जलाना, अंग्रेज़ों का विरोध तथा सरकार का असहयोग उनमें भी दृढ़ता से पनपा। कालान्तर में इसका अनजाना सा प्रभाव पू. बहन जी पर भी पड़ा।

इधर सामाजिक परिस्थितियां भी अपने में महत्त्वपूर्ण थीं। लोगों में एक रोष तथा असहयोग का विचार तो था परन्तु धर्मभीरू होने के नाते कुछ क्रियान्वयन उनके सामर्थ्य की बात न थी। भारत में चली आ रही कुछ रूढ़िगत प्रथाओं का समाज में विरोध तो पहले से ही चलता आ रहा था अब उसमें पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से अधिक सक्रियता दीखने लगी। अनेक बड़े-बड़े लोग निहित स्वार्थ वश अंग्रेजों से मिले ही थे, कुछ अन्य लोगों पर भी पाश्चात्य सभ्यता की सुख सुविधाओं को लेकर प्रभाव पड़ने लगा। विदेशी समाज, सभ्यता तथा धर्म के सम्पर्क में आने से वे कुरीतियां अधिक चुभने लगीं। जीवन के प्रति पाश्चात्य मानवतावाद, युक्तिपूर्ण तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समाज में बराबरी के सिद्धान्त का उत्थान हुआ। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग हिन्दु सामाजिक रचना, धर्म, रीति-रिवाज तथा परम्पराओं को तर्क की तराजू पर तोलने लगे। इससे सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन का जन्म हुआ।

ब्राह्म - समाज, प्रार्थना समाज तथा थियोसोफिकल सोसायटी आदि पूर्व से ही कार्य करते आ रहे थे। आर्य समाज अपने शिखर पर था। आर्य समाज जहाँ एक ओर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में संलग्न था वहीं ईसाई धर्म का विरोध कर, हिन्दुओं को ईसाई बनने से रोकने के कार्य में भी रत था।

श्री केशवचन्द्र सेन की अनेक अव्यवस्थित और अग्राह्य नीतियों के कारण ब्राह्म-समाज अपने नाम बदल-बदल कर सांस लेने के प्रयास में क्षीण प्राय हो गया।

महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज आदि का काफी प्रचार हुआ। इसमें पिछड़े वर्गों की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा इसका प्रचार, प्रसार पंजाब में दयालसिंह ट्रस्ट ने प्रारम्भ किया।

पाश्चात्य संस्कृति तथा प्रभाव के विरोध हेतु आर्य समाज का प्रतिक्रिया के रूप में प्राकट्य हुआ। इसके प्रवर्तकों ने 'वेद की ओर चलो' का नारा दे अन्य सभी धर्मों को झूठ तथा पाखण्ड की संज्ञा दी। इन्होंने अंग्रेज़ी भाषा को भी अपनाया, अर्थात् प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान का सर्वोत्तम समन्वय इनमें मिलता है। इन्होंने मुसलमान बने राजपूतों तथा अन्य हिन्दुओं को पुनः हिन्दु बनाया। अन्ततः अंग्रेज़ी का विरोध तथा सामाजिक कुरीतियों के परिवर्तन में इन्होंने प्रचुर योगदान दिया।

उधर बङ्गाल में रामकृष्ण आन्दोलन का जन्म हो चुका था। श्री रामकृष्ण परमहंस सभी धर्मों को सत्य मानते थे, उनके अनुसार श्रीकृष्ण, राम, ईसा, अल्लाह सभी एक ही ईश्वर के नाम हैं। मूर्ति पूजा में उनकी आस्था थी और उसे शाश्वत, सर्वशक्तिमान ईश्वर को प्राप्त करने का एक साधन मानते थे। चिह्न तथा कर्मकाण्ड की अपेक्षा आत्मा पर अधिक बल देते थे। उन्होंने तान्त्रिक, वैष्णव और अद्वैत तीनों ही प्रकार की साधना की तथा अन्त में निर्विकल्प समाधि की स्थिति को प्राप्त कर लिया। समाज में वे परमहंस के रूप में विख्यात हो गए।

उनकी शिक्षाओं को साकार करने का श्रेय श्री विवेकानन्द जी को ही है। विश्व के धार्मिक मानचित्र पर भारत का नाम अंकित करने का मुख्य श्रेय भी इन्हीं को जाता है। इनका मत था जो धर्म विधवा के आँसू नहीं पोंछ सकता अथवा किसी अनाथ को रोटी नहीं दे सकता उसका स्वरूप ग्राह्य कैसे हो सकता है ? उन्होंने कहा, 'मैं उसी को महात्मा मानता हूँ जिसका मन निर्धन के लिये रोता है। उनके धन से विद्या प्राप्त कर जो उनकी ओर नहीं देखता, वह व्यक्ति देश द्रोही है।'

साकार उपासना तथा मां की प्रत्यक्ष प्राप्ति कर गुरु राम-कृष्ण परमहंस के भक्ति प्रधान जीवन की धारा का दो भागों में विभाजन सा प्रतीत हुआ। परमहंस जी की निर्विकल्प समाधि को पूर्णतः अपने जीवन में समेटने में समर्थ हुए स्वामी ब्रह्मानंद (राखाल) तथा नागमहाशय; ज्ञान प्रधान स्वरूप अपनाया स्वामी विवेकानन्द जी ने। अन्ततः यह धर्म भी समाज सुधारक का रूप ले रह गया, अद्यावधि अपने कार्य में संलग्न है।

थियोसोफिकल सभा के नाम से एक अन्य सभा का गठन ऐसे पश्चिमी विद्वानों द्वारा हुआ जो लोग भारतीय संस्कृति से विशेषतः प्रभावित थे। एक जर्मनवासी रक्त की महिला ने इसकी नींव रखी

थी । इसके अनुयायी ईश्वरीय ज्ञान को आत्मिक हर्षोन्माद तथा अन्तर्ज्ञान द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे । ये लोग पुनर्जन्म तथा कर्म में विश्वास रखते और सांख्य तथा उपनिषदों से प्रेरणा प्राप्त करते रहे ।

इसी की आचार्या श्रीमती ऐनीबेसेन्ट जिनका ईसाई मत से विश्वास उठ गया था, भारतीय संस्कृति तथा विचारधारा से पूर्व परिचित थीं । वेदान्त में उनकी आस्था थी । यद्यपि इस सोसायटी की प्रवर्त्तक मैडम ब्लावेटस्की का मुख्य बल अलौकिकवाद (Occult) पर था, आध्यात्मिकता पर नहीं तथापि श्रीमती ऐनी बेसेन्ट भारतीय संस्कृति से इतनी अधिक प्रभावित हुईं कि शनैः शनैः वे हिन्दू हो गईं । न केवल विचारों से अपितु वस्त्र, भोजन, मेल-मिलाप तथा सामाजिक शिष्टाचार से भी। उनकी देख-रेख में यह सभा भारत में पुनर्जागरण का आन्दोलन बन गई । भारत के प्राचीन धर्म में उनकी अनन्य आस्था थी जिसके फलस्वरूप लोगों में आत्म विश्वास की भावना जगी । इन्होंने सैन्ट्रल हिन्दु कालेज की नींव रखी, जो बनारस हिन्दु विश्व-विद्यालय के नाम से अद्यावधि कार्यरत है ।

समयानुसार सामाजिक परिस्थितियों का अपना ही महत्व था । इसका प्रभाव जग व्याप्त था । इसके साथ-साथ समाज सुधार के मूल में परिव्याप्त था धर्म । प्रत्येक क्रिया में धर्म का रूप मणिसूत्रमिव जुड़ा था। भारतीय संस्कृति तथा धर्म सभी क्षेत्रों में इतना प्रभावी था कि विरोध होने पर भी उसे समाज से अलग कर पाना सर्वथा असम्भव था ।

वेदों, पुराणों, श्रुतियों, उपनिषदों का अपना ही महत्त्व चला आ रहा था । अनेक अन्य सम्प्रदायवादियों के यहाँ आ जाने, कड़ा विरोध करने तथा अत्याचार करने पर भी धर्म को किसी भी प्रकार समाज से अलग किया नहीं जा सका, प्रत्युत कहना होगा कि विरोध होने से धार्मिक भावनाएं, सुदृढ़ होकर और गहराई से पनपती रहीं ।

आर्य मर्यादाओं से जुड़ा वह धर्म, समाज द्वारा पुष्ट होता अपने चरम शिखर पर जा पहुँचा था १५०० ईसवी में । उन दिनों तो भक्ति की बाढ़ सी ही आ गई थी । अत्यन्त सुगम तथा सुस्पष्ट बना उसके रूप को हमारे सामने पूर्वाचार्यों ने परोस कर रख दिया था । श्री निम्बार्काचार्य महाराज का योग अपने स्थान पर बना था । उधर दक्षिण में श्री रामानुजाचार्य जी महाराज ने धर्म प्रचार का बीड़ा उठा आमूल परिवर्तन कर दिया । महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज ने श्री कृष्ण भक्ति का प्रचार-प्रसार समस्त

भारत में किया, मुख्य रूप से गुजरात, राजस्थान में उनके अनुयायी अधिक हुए । उधर बङ्गाल में श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री कृष्ण रस तरंगिणी प्रवाहित कर दी । अनेकानेक आचार्यों, सन्तों का प्रादुर्भाव केवल धर्म प्रचार हेतु ही हुआ । श्री तुलसीदास जी, कबीर जी, वृन्दावन रस की उपासना में स्वामी श्री हरिदास जी, श्री हरिवंश जी , गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी, सूरदास जी तथा अष्टछाप, रूप जी, सनातन जी, जीव गोस्वामी जी ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन कर भक्ति पथ को और सुगम बना दिया था । धारा का क्रमिक प्रवाह अद्यावधि भावुक भक्तों पर अपरोक्ष रूप में कृपानुग्रह बरसा रहा था।

दक्षिण में आलवार संतों ने पूर्व से ही एक वातावरण का निर्माण कर दिया था । मधुर उपासना में रता आण्डाल को भक्त जन अवश्य ही जानते हैं । महाराष्ट्र में भगवान विट्ठल ने संत तुकाराम और एकनाथ जी जैसे महान संतों पर अपनी मोहिनी का जादू डाल दिया। बङ्गाल में श्री चैतन्य महाप्रभु जी का प्रभाव नवद्वीप और जगन्नाथ पुरी सहित समस्त प्रदेश में पूर्व से ही छाया था । राजस्थान में भक्तिमति मीरा जी के श्री कृष्ण चरणों में समर्पण से राजघराने में मची धूम, जगत में सर्वत्र फैल गई थी । राजघराने के अभूतपूर्व सुख-सौन्दर्य का परित्याग कर नित्य तथा शाश्वत सौन्दर्य की झाँकी कर, प्रेम दीवानी बन मीरा सर्वत्र उसी खोज में विचरण करने लगी थीं । उत्तर में श्री गुरु नानक देव तथा अन्य गुरुओं, सन्तों की नामानुराग सुदृढ़ता ने एक प्रेमपूर्ण वातावरण का संचार कर दिया । वास्तव में कोई भूमि, कोई वंश तथा कोई जाति जहाँ श्री कृष्ण भक्त प्रकट हो अपने सहज स्वभाव वश भक्ति का संचार कर देते हों, श्यामा-श्याम के चरणों में दृढ़ अनुराग का सन्देश देते हों वही धन्य हैं । पंजाब की रसीली भूमि में सरसता का बीजारोपण कर उसे पल्लवित पुष्पित करने वाले अनेक महज्जन हुए हैं जिनका शाश्वत वातावरण सभी को परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से सहज आप्लावित करता रहा है ।

भक्तों-संतों की परम्परा ब्रज में आ अपना भक्ति पूर्ण सरस प्रचार करने लगी । अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ । महाकवि जयदेव का 'गीत गोविन्द' श्री कृष्ण भक्ति की एक अमूल्य निधि रही है, इधर चण्डीदास का काव्य, श्री बिल्वमङ्गल जी का श्रीकृष्ण-कर्णामृत तथा विद्यापति का काव्य बहुत ही प्रेरणादायक रहा है । उधर अष्टछाप में, सूरदास, नन्ददास तथा अन्य भक्त कवियों ने अपने काव्य से रस धूम मचा

दी । श्री व्यासदेवाचार्य जी तथा इन्हीं की परम्परा के अनेक रसिकों के पद संग्रह उपलब्ध हुए । स्वामी हरिदास जी की पदावली, श्री हरिवंश जी के पद, श्री ध्रुवदास तथा चाचा वृन्दावन दास जी प्रभृति अनेक भक्तों ने अपनी अनुभूतियों को लेखनी बद्ध किया तथा वे प्रकाशित हुईं । श्री रूप जी, जीव जी, श्री प्रबोधा नन्द सरस्वती तथा श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने अनेक ग्रन्थों का सृजन किया । श्री कृष्ण-कर्णामृत, सूरसागर, श्री राधा-सुधानिधि, वृन्दावन शतक, ललित-माधव तथा विदग्ध-माधव, सङ्गीत-माधव आदि अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ। कालान्तर में वे प्रकाशित हुए ।

इधर मीराजी के गेय तथा मुक्त पदों में उनके हृदय का द्रवण, उनकी भावनाओं की पिघलन सभी को रस विभोर करने लगी । भक्ति युग में प्रकट हुई रसिकों की अनुभूतियाँ मूर्त हो कुछ-कुछ सहज उपलब्ध होने लगीं । वृन्दावन इन सभी सम्प्रदायों का केन्द्र रहा-अतः इसकी महत्ता स्वतः जागृत हो गई ।

इसी मध्य श्री चैतन्य-चरित्र, नीलाचल में ब्रजमाधुरी, श्री रामकृष्ण वचनामृत, चरितामृत तथा अन्य ग्रन्थ सहज उपलब्ध होने लगे ।

भक्ति की सरस लहरियों से, पद पदावलियों से सर्वथा प्रभावित हुआ समाज । भक्तों की आगे की पीढ़ी में श्री स्वामी रामतीर्थ, श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री विवेकानन्द जी, श्री उड़िया बाबा, श्री ग्वारिया बाबा, श्री आनन्दमयी मां, श्री हरिबाबा, श्री गङ्गेश्वरानन्द जी, श्री शरणानन्द जी महाराज, श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार तथा श्री चक्रधर बाबा प्रभृति अनेकानेक भक्त हुए ।

इन सभी आचार्यों महानुभावों के प्रयास से सुनिर्मित वातावरण ने सम्पूर्ण समाज को एक सुव्यवस्थित आचार-प्रधान तथा धर्म परायण होने में अभूतपूर्व योग दिया । परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में इन परिस्थितियों ने समाज को जिस प्रकार प्रभावित किया यह कहने में कैसे आ सकता है ? भक्ति युग का वह रस समुद्र इतने वेग तथा गहराई से प्रवाहित होता रहा कि उसका प्रभाव अद्यावधि समाज में भक्ति भाव बना सिक्त करता चला आ रहा है ।

अनेकानेक अन्य विभूतियाँ भी इतनी ही पूर्णता से ऐसी ही स्थिति में रहने तथा सिक्त होने पर, अपनी सहज रहनी वश, लोकेषणा

से सावधानी पूर्वक अलग रहकर छिपी की छिपी रहीं। उसका कारण था, जग की इस ख्याति से वे स्वभावतः दूर ही रहीं। प्रभावित हुए वे सभी जन जिनका मन यत्किञ्चित् भी निर्मल था अथवा जिनकी हृद्भूमि उस बीज को अंकुरित, प्रस्फुटित करने के लिये सर्वथा उपयुक्त थी, यों उस वातावरण से प्रभावित किसी न किसी रूप में सभी हुए। इसके साथ-साथ उस अखण्ड सत्ता ने अपनी महती कृपा द्वारा, अपने जनों को, निजजनों को प्रेरित करने, उनका मार्ग निर्देशन हेतु, कुछ विभूतियों को एक हेतु से एक लक्ष्य देकर भेजा। वे सब भी इस परिस्थिति से प्रभावित अवश्य हुए परन्तु उनका व्यक्तित्व एक स्वतंत्र सत्ता लेकर भूतल पर प्रकट हुआ। ऐसे महद्जनों को साधन सिद्ध अथवा प्रयास सिद्ध तो नहीं कहा जा सकता, वे जहाँ से भगवदादेश लिये आते हैं, उन गुणों से सर्वथा सम्पन्न होते ही हैं। उनके जीवन के कृत्यों से उनकी अनुभूतियों तथा व्यवहार में जो अलौकिक और दिव्य धारा झलकती है वह हमें उनका अता पता दे, हमारे गन्तव्य की ओर अग्रसर करने में अवश्य ही सहायक होती है। उनके चरित्र का साम्य हम ढूंढते हैं पुराणों, श्रुतियों और स्मृतियों से। शास्त्रों का वहाँ अतिक्रमण कदापि नहीं है परन्तु उस प्रेमार्णव में शास्त्रों की मर्यादा तथा तर्क नहीं है। बुद्धि का वहां प्रवेश नहीं है-जहाँ प्रेम ही प्रेम लबालब भरा है, रसकी तरङ्गें उठ रही हैं, वे निर्झर सोलह आने खरे दीखते हैं- इसका कारण है कि वे उसी दिव्य धाम से भूतल पर किसी दिव्य हेतु को लेकर ही प्रादुर्भूत होते हैं। ऐसी अनेक विभूतियों में संस्कारवश, पात्रतावश जिनसे हमारा सम्पर्क हो जाता है-यह कैसे कहें? यों कहना सङ्गत होगा वे महज्जन जिन-जिन को अपनाना चाहते हैं-मातृ शिशु प्यार सिद्धान्त पर हमारे नगण्य से प्रयास को महत्त्व दे हमें स्वीकार लेते हैं। वही हमारा गन्तव्य स्थल हैं। अपनी दोनों भुजाऐं फैलाए हमारी प्रतीक्षा में खड़े हैं, हमें निमन्त्रण दे रहे हैं श्यामसुन्दर। वही श्यामलोज्ज्वल छवि श्री यमुना तट पर सुकोमल बालुका में एक कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़ी, कभी अपने बाऐं और कभी दाऐं तथा कभी सामने के झुरमुट में सचकित निहारती प्रतीक्षारत है।

❑❑❑

तीन || प्रादुर्भाव

कृतार्थौ पितरौ तेन धन्यो देशः कुलं च तत् ।
जायते योगवान् यत्र दत्तमक्षयतां ब्रजेत् ॥ ***

ब्रह्मवैवर्त पुराण

विश्व में सन्तों का कभी अभाव नहीं होता । समय-समय पर वे इस धरा धाम पर जीवों के कल्याणार्थ प्रादुर्भूत होते हैं । इसमें उनका अपना कोई हेतु होता हो, ऐसा नहीं है । भगवान अपनी ओर अग्रसर होने वाले जीवों के लिये, अपने पास आने के मार्ग-निर्देशन हेतु अपने जनों को इस भूतल पर भेजते हैं । ऐसे महज्जन जहाँ भी प्रकट होते हैं, उन माता-पिता का, उनसे जुड़े लोगों का, उस स्थान का गौरव बढ़ जाता है । ऐसे भक्तों के आविर्भूत होने से समाज धन्य हो जाता है, पृथ्वी पुलकित हो जाती है तथा धर्म की गरिमा और भी बढ़ जाती है । उनका व्यक्तित्व, उनका वातावरण, उनका व्यवहार, उनके उपदेश शास्त्र-सम्मत होते हैं । वे जो कुछ भी कहते हैं, उसी का अनुमोदन शास्त्रों में वर्णित है; वे जो करते हैं, वही शास्त्रों का मूल विषय होता है । एक शब्द में उन महानुभावों के विषय में कहा जा सकता है कि साधारण जन वाणी का अनुसरण करते हैंऔर वाणी भक्तों का, महज्जनों का अनुसरण करती है । उनका चरित्र, आचार-विचार और व्यक्तित्व, धर्म की गरिमा को लेकर ही होता है । ओह! धन्य हैं, ऐसे भक्त जन ।

कलिमल हारिणी माँ जाह्नवी का अवतरण अनेक जनों के पापों को क्षय करने हेतु ही हुआ था । भूतल पर प्रकट होने की बात जब भगवान विष्णु ने कही तो कर-बद्ध प्रार्थना कर उन्होंने भगवान विष्णु से पूछा, ''कलिकाल के प्राणीमात्र मुझ में स्नान कर, अपने पापों को क्षय कर सकेंगे, भगवन् ! मेरे उद्धार का भी कोई उपाय बतलाइये।'' भगवान मुस्करा कर बोले, ''हे देवि ! जब मेरे भक्त आकर, तुम्हारे जल में अवगाहन करेंगे तो तुम सर्वथा, सभी पापों और दोषों से मुक्त हो जाओगी ।'' जिन भक्तों की गरिमा का बखान भगवान स्वयं श्री मुख से कर रहे हों, उनके विषय में क्या कहा जा सकता है, वास्तव में उनकी महिमा कहाँ तक गाई जा सकती है?

*** जहाँ कोई योगी उत्पन्न हो जाता है, उसके माता-पिता धन्य हो जाते हैं, वह देश और कुल धन्य हो जाता है और उस योगी को दिया हुआ अक्षय हो जाता है ।

तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि ।
सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ॥

ना. भ. सू.

ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सत् शास्त्र बना देते हैं ।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' नन्हें से बीज में निहित विशाल वृक्ष की कल्पना पहले से ही विद्यमान होती है, घनों के घिरने के साथ-साथ अगाध जल-स्रोत की कल्पना सामने दीखने लगती है और एक महान् व्यक्तित्व का परिचय उसके बालपन की चेष्टाओं से, उसकी मनोवृत्ति से पूर्व में ही आभासित होने लगता है । इन सबसे परे एक और तथ्य है, एक और स्थिति है । भक्तजनों अथवा महज्जनों के प्राकट्य से पूर्व भी इस प्रकार के आभास अनेक बार देखने में आते हैं । उन विभूतियों के पूर्वजों में उनके माता-पिता में अथवा घर की परिस्थितियों में तदनुकूलता आने लगती है । जिस घर में किसी भक्त का प्रादुर्भाव होना होता है, तदनुकूल वातावरण का निर्माण हो जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है ।

श्री मनमोहन स्वरूप भटनागर, अपने पिता तहसीलदार श्री विष्णु स्वरूप जी, कैराना (मुजफ्फरनगर) निवासी के इकलौते पुत्र थे। उनकी एक बहन वर्तमान में अपने पुत्र के साथ निवास कर रही हैं । श्री विष्णु स्वरूप जी के कई सन्तानें हुईं परन्तु भाग्य से दो ही बचीं। श्री मनमोहन जी इकलौते पुत्र थे । अंग्रेजी राज्य में सरकारी पद पर पिता के प्रतिष्ठित होने से घर में अर्थ का अभाव न था । आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु लाहौर रहे । उस समय शिक्षा का मुख्य केन्द्र लाहौर ही था ।

लाहौर से उच्च शिक्षा प्राप्त कर मनमोहन जी अम्बाला लौट चुके थे । उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता थी कि अत्यधिक आधुनिक साधनों के साथ-साथ, पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित लोगों से व्यवहार रखने पर भी भारतीय संस्कृति, भारतीय वाङ्मय में उनकी अटूट श्रद्धा थी। शास्त्र-अध्ययन एक व्यसन सा बन उनके जीवन में समाया था ।

पढ़ाई कर लेने के पश्चात् उचित समय पर श्री मनमोहन जी का सिकन्दराबाद बुलन्दशहर के रईस की पुत्री श्री श्यामा जी से विवाह हो गया । श्री श्यामा जी का जीवन भी भक्ति भाव पूर्ण था । अतः विवाह के उपरान्त शास्त्र चर्चा, आध्यात्मिक जीवन, साधुओं के प्रति श्रद्धा विशेष रूप से उनमें दीखने लगी ।

पिता को स्थानान्तरण पर जगह-जगह जाना पड़ता था और श्री मनमोहन जी के नाना परिवार के लोग अम्बाला ही में निवास करते थे, और भी अनेक स्वजन वहाँ रहते थे- अतः श्री मनमोहन जी, इनकी माता और पत्नी अम्बाला में ही एक स्थान पर रहने लगे। बहन का विवाह हो ही चुका था।

हाँ, तो श्री मनमोहन जी अपनी माँ और पत्नी सहित अम्बाला छावनी (पंजाब) में निवास कर रहे थे। घर में अध्यात्म प्रधान वातावरण था ही। उनकी माँ भी सन्तों और भक्तों के प्रति आस्थावान थीं। मन्दिर में दर्शनार्थ जाना, सन्तों की कथा, प्रवचन आदि सुनने में उनकी अभिरुचि थी। घर में महाभारत और रामायण तो पढ़ी जाती ही थीं। इसके अतिरिक्त शास्त्रों और पुराणों की कथाएं, आदर्श चरित्र भी पढ़े जाते थे। किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक वातावरण बना ही रहता। बालिका जिस समय गर्भ में ही थी, श्री मनमोहन जी अपनी पत्नी को वह सब आदर्श कथाएं सुनाया करते, जिनका प्रभाव गर्भ में ही बालिका पर पड़ा और बालिका की अप्रतिम प्रतिभा को देख हमें यह स्वीकार करना ही होगा। प्रमाण स्वरूप ऐसी अनेक घटनाओं को हम आगे यथा-समय और यथा-प्रसङ्ग वर्णन करेंगे।

इनकी इन अभूतपूर्व घटनाओं को देख अभिमन्यु के चक्रव्यूह भेदन वाले प्रसङ्ग की पुष्टि होती है।

इस आध्यात्मिक वातावरण में अनायास ही कुछ विशेष गम्भीरता छा गई। इधर हमारी चरित्र नायक श्री ऊषा जी का प्रादुर्भाव होने वाला था। शास्त्र चर्चा, धार्मिक कथाओं, सन्तों और साधुओं के प्रति आस्था में और-और दृढ़ता आने लगी। यह सब घर में अनायास इस प्रकार घटित हो गया, मानों श्री ऊषा जी के आविर्भूत होने के पूर्व ही यह परिस्थितियाँ घर में सहज निर्मित हो गई हों। जिस घर में महज्जनों का आविर्भाव होना होता है, भगवद्भक्त का प्राकट्य होता है, वहाँ मंगलमय वातावरण का बनना कुछ अस्वाभाविक नहीं है।

वर्तमान में सनातन धर्म मन्दिर के पास ही, बंगाली मुहल्ले के निकट वाली गली में श्री मनमोहन जी निवास कर रहे थे। विशेष आधुनिक मकान तो अवश्य नहीं था, परन्तु तत्कालीन गृहस्थ की सभी सुविधाएँ घर में सहज उपलब्ध थीं। उस भवन के आँगन में एक ओर

श्री ठाकुर जी को अर्पित करने हेतु कुछ पुष्पों के पौधे लगे थे । एक ओर श्री तुलसी महारानी का बिरवा विराजमान था । नित्य ही जल / अर्ध्य देना माँ का सहज स्वभाव था । इधर पत्नी श्री श्यामा जी भी नित्य ही तुलसी पूजन, नियम-व्रतादि का बड़ी दृढ़ता से पालन करती थीं । शास्त्रीय परिपाटी के अनुरूप आध्यात्मिकता और नियम व्रतादि का कार्य सुचारू रूप से चलता रहता था । पास ही के घर में एक और भक्त परिवार रहता था । उनकी भक्ति-भावना का संयोग प्रायः अनायास मिलता ही रहता था ।

इस प्रकार वहाँ रहते-रहते सभी सुख-सुविधाओं और आध्यात्मिकता के वातावरण में संवत् १८८२ वर्ष का प्रारम्भ हुआ । चैत्र मास में छाया चहुँ ओर का सुगन्धित वातावरण धीरे-धीरे अपने आप में लीन होता चला गया । निम्ब पुष्पों की सुगन्धित समीरण, भोर और रात्रि में एक विशेष उन्माद भर, स्वयं अपने में सिमट गई थी । ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ । बदली परिस्थिति में जिस किञ्चित् ग्रीष्मता के कारण शीत से राहत मिली थी, अब अपना उग्र रूप धारण करने लगी ।

आषाढ़ मास के अन्तिम दिनों में प्रकृति ने पुनः करवट ली। कहीं-कहीं आकाश में शशकशावक दौड़ते दीखने लगे । धूप किञ्चित् हल्की होने लगी । और लो ! प्रकृति ने थके पथिक की भाँति अपने पाँव पसारे और घनों में श्यामलता छाने लगी । प्रकृति में चेतनता भर गई । वृक्ष प्रफुल्लित हो, सघन दीखने लगे । लताएं झूमने लगीं, उमंग-तरंग में भर गईं। बीच-बीच में घनों ने प्रकृति का अभिषेक करना प्रारम्भ कर दिया । वर्षा ऋतु के स्वागतार्थ अपना सम्भार प्रकृति को सौंप, ग्रीष्म ने विदा ली ।

प्रकृति की आवभगत से रीझ, घनों ने अभिषेक किया। पपीहे की "पी कहाँ" को स्वर दिया । कोकिला मुखरित हो गई । केकी-समूह बौरा से गए, उमंग-तरंग में भर नृत्य-निरत हो गए । चारों ओर मयूर ध्वनि गूँज उठी । मृगशावक कूदने और फुदकने लगे ।

श्रावण मास प्रारम्भ हो गया । घन घने होने लगे । गली-गली में वृक्षों पर झूले उल्लसित हो गए । रंग-बिरंगे वस्त्रों से सज्जित किशोरियाँ, वधुएं झूलन में उमगी अपनी भावनाओं को, उमंग-तरंगों को, चहल-पहल को बिखेरने लगीं, अपनी पायलों की ध्वनि में प्रकट करने लगीं, जन-जन के मन में भरने लगीं । उनकी इन उमंग-तरंगों से प्रकृति

खिल उठी, हृदय प्रफुल्लित हो गए, लताएं लहरा उठीं, वृक्षों में झूम भर गई. धूम भर गई ।

एक-एक कर, दिन बीतने लगे । बीच-बीच में घनाच्छादित दिवसों का सौन्दर्य अनुपम प्रतीत होता । प्रकृति में नव जीवन का संचार हो गया । श्रावण मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी थी, उधर, पंद्रह दिन पश्चात् भाद्रमास की अष्टमी श्री कृष्ण प्राकट्य के लिये सर्ववन्द्य है । आज, भोर से ही घनों ने कृपा-कण बरसा, वातावरण सरसा दिया था । साथ-साथ त्रिविध समीरण प्रवहमान हो, सभी को गुदगुदाती, सम्पूर्ण वातावरण को स्निग्ध किये दे रही थी । प्रथम नवजात शिशु के आविर्भाव का समय पास आता जा रहा था । घर के लोगों में, सगे-सम्बन्धियों में तथा स्वजनों में एक आनन्द मिश्रित लहर व्याप्त थी। वर्षों बाद घर में बाल-लीला सुखास्वादन हेतु सभी आनन्द में भरे उल्लसित हो रहे थे । कभी वर्षा रुक जाती और भुवन भास्कर की मन्द सी द्युति छिटक जाती । धूप-छाँह की इस आँख-मिचौनी ने सभी स्वजनों में एक ऊहा-पोह सी भर दी । तुलसी महारानी में छाई बहार उसकी उमगन बन प्रकट हो गई । प्रकृति का आंचल पुनः सरका । धूप और छांह की आँख मिचौनी के खेल में मग्न हो गई प्रकृति और इधर मध्याह्न में एक बज कर छः मिनट पर सभी में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई । एक कन्या-रत्न का जन्म हुआ ।

प्रथम कन्या होने के कारण विशेष उमंग और उल्लासपूर्ण वातावरण हो गया । पास के भक्ति-भावपूर्ण परिवार वालों के यहाँ अनजाने में, अनायास ही घन्टों का निनाद होने लगा ।

चारों ओर से बधाइयाँ आने लगीं । सभी स्वजन उमंग विशेष में भरे थिरकने लगे । श्री मनमोहन जी का उल्लास तो देखने ही योग्य था । भाँति-भाँति के लोग आते-सभी प्रसन्नचित्त और आनन्द मग्न। कुछ लोगों में एक मन्द सी कानाफूसी का सा स्वर भी सुनाई पड़ता 'यदि लड़का होता तो अच्छा था,' परन्तु श्री मनमोहन स्वरूप जी का उत्साह उन लोगों की इस प्रकार की बातों को प्रोत्साहन ही न देता।

गीत गाए जाने लगे । मिठाइयाँ बाँटी गईं । एक पुत्र रत्न की प्राप्ति पर जितनी प्रसन्नता होती होगी, उससे कुछ कम प्रसन्नता न दीखती थी। कन्या रत्न के जन्म पर इस प्रकार की उमंग और उल्लास विरले ही देखने को मिल सकता है । सम्भवतः यह स्वतः ही पूर्व में निर्मित होना प्रारम्भ हो गया था ।

बालिका के ग्रह आदि दिखा, जन्म कुण्डली बनवाई गई, जिसे देख सभी लोग आश्चर्य-चकित हो गए । बृहस्पति का योग-उच्च शिक्षा, सूर्य का-परम यश, चन्द्रमा-का-धर्म की प्रगाढ़ता तथा शनि का उत्कट वैराग्य पूर्ण योग, अभूतपूर्व था ।

जन्म के समय बालिका रोई, बहुत रोई । सभी लोग चिन्तित से भी हो गए । उनके इस रुदन को देख कर लगा कि अपने पूर्व जीवन में वे जहाँ थीं, वहाँ अत्यन्त सुखी थीं । कदाचित् उस परम सुख से विलग होने के पश्चात् एक सहज अभाववश उसे यह सब खला होगा ।

गौर वर्ण, विशाल नेत्र, उन्नत भाल, सुन्दर नासिका, मुकुरजयी कपोल, घुँघराली केशावली । ऐसा रूप, ऐसा लावण्य, ऐसा माधुर्य किसके मन को सहज आकृष्ट न कर लेगा ।

नवजात बालिका की दीर्घायु के लिये अनेक उपाय किये जाने लगे । ये इतनी सुन्दर थीं कि सभी सहज आकृष्ट हो जाते । बालिका के अधरों पर बिखरती मन्द मुस्कान तथा अधरों की किञ्चित् विकसन-सभी मोहक था । बालिका को नजर न लग जाए, दादी ने षष्टी पूजन के दिन अम्बाला में माँ काली के मन्दिर में पूजन करवाया तथा इतर अला-बला के प्रभाव को समाप्त करवाने हेतु, काली माँ का प्रसादी वस्त्र धारण कराया । दादी कहा करती थी, वस्त्र धारण कराते ही, बालिका का रंग काला हो गया। काला रंग होने पर भी एक स्वाभाविक लावण्य और सौन्दर्य बना रहा । उसी से खिंचे अनेक जन इनके प्रीति पाश में बंधे रहे । वास्तव में, उस बाह्य वर्ण का कोई महत्त्व न था। इनके अन्तर की जिस उमड़न का, अन्तर के जिस दिव्य भाव का स्रोत बाद में प्रस्फुटित होकर सामने आया, वह मूलभूत इनमें विद्यमान था ही जो अपरोक्ष रूप से सभी के अन्तर को छूता था और आकर्षित करता रहा ।

आठ वर्ष की वय नेत्रों में प्रतीक्षा मुख पर विस्मय

चार || बाल्य भाव तथा बाल चरित्र

शृणु सखि कौतुकमेकं, नन्द निकेताङ्गणे मया दृष्टं।
गोधूलि धूसराङ्गो, नृत्यति वेदान्त सिद्धान्तः ॥ ***

बाल्य-भाव की मनोहरता का वर्णन करने में कौन समर्थ है भला ? अखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान श्री कृष्ण भी अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से वात्सल्य रस के भक्तों के भाव की पुष्टि करते हैं। यह वय, यह भाव, सर्वथा स्वतंत्र, सर्वथा स्वच्छंद ही होता है । बालक को भगवान का स्वरूप ही माना गया है । क्योंकि उसकी चेष्टाऐं इतनी सरल, इतनी निष्कपट होती हैं कि वह भगवद्रूप ही होता है । एक अंग्रेजी कवि ने शिशु को Mighty Prophet, seer Blessed की संज्ञा दी है । वास्तव में है भी ऐसा ही । बाल्य-भाव इतनी सुकोमल और निश्छल वृत्ति प्रधान होता है कि उसे भगवान के अत्यन्त निकट होने का सौभाग्य प्राप्त रहता है । संसारी वातावरण से प्रभावित होने के पश्चात् हीं बालक के भाव और वृत्ति में जब संसार घर कर लेता है- तभी उस परम चिन्मय सत्ता से दूर हो जाता है ।

हां, तो वर्षा ऋतु अपनी पौगण्डावस्था में प्रवेश कर चुकी थी । दिन-प्रतिदिन प्रकृति यौवन मद से भरी इठला रही थी । इधर षष्टी पूजनोपरान्त नवजात कन्या घर में प्यार से 'मुन्नो' नाम से पुकारी जाने लगी थी । घर में, आसपास तथा स्वजन सम्बन्धियों में अपनी शैशव की चेष्टाओं से एक सुख का प्रसार करने लगी । चुटकी बजा घर के सभी लोग श्री राधे, श्री राधे, तथा श्री कृष्ण श्रीकृष्ण कह उस बालिका का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा में रत रहते । विस्फारित नेत्रों से जब कभी वह बालिका उनकी ओर अपनी दृष्टि स्थिर कर लेती तो वे अत्यन्त विभोर हो जाते । शनैः शनैः बड़ी होती वह बालिका अपने अधरों को विकसित कर, नेत्र स्थिर करने लगी थी । अब सभी लोगों का आह्लाद अपने आनन्द शिखर पर पहुँचने लगा । सभी में एक नवीन उत्साह छा गया ।

*** अहा ! अहा ! क्या ही कौतुक की बात है, मैंने श्री नन्द राय जी के आँगन में समस्त वेदान्तों के सिद्धान्त नन्द नन्दन को धूलि-धूसरित अंगों से नृत्य में निरत देखा है ।

मुन्नो का रंग काला अवश्य हो गया था परन्तु उसमें एक प्रकार की लुनाई सभी को आकृष्ट करती थी। इनके मामा को काले रंग से बहुत चिढ़ थी। एक बार वे इन्हें देखने आए। वे बहुत दुःखी हुए। इनकी मां (अपनी बहन) को कहने लगे, "नन्हीं ! यह बालिका तेरी गोद के लायक नहीं है।" वे देख रहे थे इस बालिका का बाह्य रूप उसे देखने पर भी उनके अनजाने में एक आकर्षण उन्हें खींच रहा था। इनकी दादी इन्हें गोद में ले खिलाती सदा कहा करतीं 'काली है तो क्या-मेरी लौंडिया में एक लुनाई है।' अनेक बार इन्हें गोद में ले वे गाया करतीं –

"चन्दा मामा दूर के, पूए पकावें बूर के,
दूध में बताशे, मेरी मुन्नो करे तमाशे"

वह तमाशे क्या थे ? कोई बाह्य आकर्षण तो था नहीं। जिस बालिका के तमाशे और बाल सुलभ चापल्य देख दादी खुश हो जाया करती थीं, भोली-भाली दादी को क्या पता था कि यह बालिका कोई साधारण बालिका नहीं है। यह बाला है, ब्रज बाला है, श्रीकृष्ण के निज परिकर की एक सखी है। उनकी अत्यन्त प्रिय सखी है– सहेली है और है अनन्या जो उन्हीं की प्रेरणा से उन्हीं के हितार्थ इस जगत में आविर्भूत हुई है। विशाल विकसित नेत्र, रेशम से केश और उस पर अधरों की कुञ्चित सिकुड़न में बंधी मन्द हास रेखा तथा उसके भीतरी माधुर्य ने अपने आस-पास के लोगों में एक विशेष आकर्षण बनाया हुआ था।

बालिका, माता-पिता को, अपनी दादी तथा अन्य स्वजनों को अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से सुख प्रदान करती रही। दिन बीतने लगे। यह बालिका मुन्नो नाम से विख्यात हो बड़ी होने लगी। माता का आकर्षण इन्हें कुछ विशेष नहीं भाया। वास्तव में साधारण बालक की सी कोई चेष्टा, माता के प्रति इनमें नहीं दीखी। बाल्यावस्था की पुष्टि मात्र के लिये जिस अनिवार्य सम्बन्ध की आवश्यकता रहती है, उतना भी शायद इन्होंने नहीं निभाया। इनमें सहज और स्वाभाविक जो प्रीति थी उससे मां का वात्सल्य-सुख अधिक पोषित नहीं हो सका, और जल्दी ही 'मुन्नो' एक सुख विशेष में भरी इस सम्बन्ध से अधिकांश दूर ही होती गई। दिन और बीते, हाथों और पैरों की चेष्टाओं में अधिक गाम्भीर्य दीखने लगा। कुछ ही मासों में घिसटने, घुटरूं चलने लगीं। आनन्द का जो स्रोत अभी तक गोदी

में अथवा बिछौने पर उमड़ता था- अब उस चलते फिरते आलम्बन के पीछे-पीछे घूमने लगा। इतना ही नहीं हास्य की वह मन्द धारा कभी-कभी किलकारियों में भी मुखरित होने लगी। बैठना जैसे ही प्रारम्भ हुआ कि मां का सामीप्य छूट सा गया।

माँ अपने गृहस्थी के कार्यों में रत रहती और इनका अपनी दादी के पास अधिकांश समय व्यतीत होता। साथ-साथ एक विशिष्ट चरित्र के विकास की कल्पना झलकने लगी। बाल्यावस्था में ही जैसे अभी से अलग रहने की भावना इनमें ओत-प्रोत दीखने लगी। घिसटते-घिसटते जब कभी यह कहीं बैठतीं तो जमीन पर न बैठतीं- कहीं भी ऊंची जगह देख कर बैठतीं। यहाँ तक कि कहीं से कोई ईंट का टुकड़ा ढूंढ लातीं और यदि वह भी न मिलता तो कहीं से कोई अखबार आदि अथवा कागज का टुकड़ा ही ले आतीं। प्राय: बालक दो वर्ष की अवस्था तक बोलना प्रारम्भ करते हैं, परन्तु ये लगभग आठ नौ मास में चलने लगीं तथा एक वर्ष के कुछ समय बाद ही भली-भांति बोलने लगीं।

घर में बालक चलना सीख गया हो, बोलने का क्रम भी प्रारम्भ कर चुका हो तो- वह घर सदैव गूंजता ही रहता है। प्रसन्नता के क्षण घर में घरवालों के लिये क्षण-क्षण पर उपस्थित होते जाते हैंऔर यदि वह किसी विशेषता को लेकर हो तो फिर क्या कहना।

किलकत उठि चलत धाय, गिरत भूमि लटपटाय
धाय मातु गोद लेत, दशरथ की रनियां।

'राम जी की किलकारियां सुन, उठ कर तीव्र गति से भागते देख महाराजा दशरथ की सभी रानियों में भी आह्लाद का स्रोत उमड़ता रहा था।' उच्च स्वर से किलकारियों से आंगन गूंजने लगा, बीच-बीच में भूमि पर गिर जाती हैं- परन्तु उस बाल सुलभ चंचलता में न तो चोट का भान होता है और न ही कोई कष्ट, प्रत्युत आनंद का यह स्रोत स्वयं तो मग्न होता ही रहा- अपने स्वजनों के लिये अत्यन्त प्रसन्नता का प्रसार करता रहा।

मां (श्यामा जी) का जीवन भक्तिपूर्ण था। पति का सहयोग प्राप्त कर उनकी भक्ति में निखार आया। अपने पाठ-पूजा के लिये समय निकालने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती थी। वे भोर में जल्दी जग जातीं, मुन्नो भी उन्हीं के साथ-साथ उठ जाती। पाठ-पूजा में मां जब

भी संलग्न रहतीं तो उनके समीप बैठी मुन्नो उन्हें बड़ी ही सावधानी से देखती रहती–लगता बड़े मनोयोग पूर्वक यह उसका आस्वादन कर रही हो। वह एकाग्रता, वह शान्ति, वह धैर्य अवश्य ही किसी विलक्षण भाव का द्योतक होता। जब यह बैठतीं तो प्रायः पद्मासन से ही बैठतीं और बहुत ही शान्ति से श्री ठाकुर जी की ओर निहारती रहतीं।

किञ्चित् और बड़ी होने पर मां तो अपने कार्य में व्यस्त हो जातीं और सहज जैसा आज भी दादी और बाबा का वात्सल्य अपने पोते–पोतियों पर देखने में आता है, उसका सुख इन्हें भी मिला। घर में दादी अपने पास लिटा अथवा गोद में ले इन्हें खिलातीं, कभी राम–राम और कभी श्याम–श्याम अथवा राधे–राधे कह प्रसन्न होती रहतीं। इस प्रसन्नता के सुख में दोनों ही मग्न हो जाते। इनके नेत्रों की भङ्गिमा विचित्र हो जाया करती। मैंने सुना है जैसे किसी विशेष वस्तु जिसके प्रति हमारा लगाव होता है, प्राप्त होने पर अत्यधिक प्रसन्नता के कारण जिस जड़ता की स्थिति को हम प्राप्त हो जाते हैं बाल्यावस्था में इनकी दशा, प्रायः हो जाया करती।

यह कहना अनुचित न होगा कि माता और पिता की शिक्षा के पश्चात् बच्चे पर जो अमिट और स्थायी प्रभाव पड़ता है– वह है उसके बाबा और दादी का। जिस प्रकृति, प्रवृत्ति और स्वभाव के वे लोग रहते हैं वही अमिट छाप बच्चों पर पड़ती है– क्योंकि बालकों का अधिकांश समय उन्हीं की सन्निधि में व्यतीत होता है, हुआ भी ऐसा ही। दादी धार्मिक थीं उन्हीं का विशेष संग इन्हें मिला।

इधर अनेक बार पिता गोद में ले इन्हें कथाऐं सुनाते, लाड़ में भर प्रायः कहा करते। 'मैं अपनी मुन्नो' को सीता और सावित्री नहीं प्रत्युत ज्ञान में गार्गी तथा भक्ति में मीरा बनाना चाहता हूँ।

अब यह कुछ और बड़ी हो गई जिस सुख का प्रसार पृथ्वी पर घिसट कर तथा घुंटरू चल कर होता रहा था अब किसी छोटे से आश्रय के माध्यम से लड़खड़ाते खड़े होने में मिलने लगा। वे कभी गिर जातीं, पुनः खड़ी हो कर चलने का अभ्यास करने लगती और देखते–देखते कुछ ही दिनों में पूरे आंगन में घूम आना, कोई चीज उठा कर ले आना, कभी श्री ठाकुर जी की ओर धावित होना, उनके समीप तक पहुंचने की चेष्टा करना सहज हो गया। उनकी इन बाल सुलभ चेष्टाओं में रस का जो

प्रवाह होता उससे निश्चय ही सभी में आनन्द का स्रोत फूट पड़ता। वात्सल्य सुख के आस्वादन में एक नया ही मोड़ आ गया वे कभी हाथ बढ़ा पिता के पास चली जातीं, पूजा गृह में बैठी मां तथा दादी के चारों ओर घूम घूम कर प्रसन्न होतीं, कभी बोलने का प्रयास करतीं, कभी संङ्कीर्तन में स्वर में स्वर मिला उच्च्व स्वर में गाने की चेष्टा करतीं। आंख बन्द कर हाथ जोड़ एक विशेष मुद्रा में बैठे जिन लोगों ने इन्हें देखा है, वे निश्चय ही यह स्वीकारते रहे हैं कि इनका पूर्व का जीवन अवश्य ही असाधारण रहा है। वे साधारण जगत की नहीं रहीं, अन्यथा इतनी छोटी अवस्था में ऐसी सजगता, इस प्रकार की मुद्राऐं, इस प्रकार की चेष्टाऐं, पूजागृह में इतनी शान्ति और उल्लासपूर्ण गतिविधियाँ, क्या किसी साधारण बालक की हो सकती हैं ? अध्यात्म के विशेष स्रोत धार्मिकता का विशेष प्रभाव-प्रसार, मानवता के प्रति विशेष सौहार्द, जन-जन के प्रति प्रेम, तथा जीव-जन्तुओं के प्रति करुणा का जो स्रोत जल्दी ही इनके जीवन में दीखने लगा और सभी को प्रभावित करने लगा वह सब पूर्व में ही उनमें विद्यमान था जो समय पाते ही प्रकट होता चला गया।

कुछ समय और बीता। अब यह वात्सल्य सुख घर की चार दीवारी से निकल तुलसी महारानी के समीप धूप दीप अर्पित करते हुए, मन्दिर की परिक्रमा करते हुए, भगवान शंङ्कर को जल अर्पित करते हुए, मंदिर प्राङ्गण में चंचलता पूर्वक सीढ़ियों पर कूद-कूद कर चढ़ते उतरते हुए तथा दोनों हाथ बांध अपनी दादी से सिमट सट एकाग्रता पूर्वक श्रवण करते हुए दीखने लगा। मां के पास सोने का क्रम लगभग समाप्त प्रायः हो चुका था। दादी के सामीप्य में और प्रोत्साहन मिला। अध्यात्म का वह स्वरूप जो इनमें मूलभूत था अब प्रकट होकर सामने आने लगा। दादी की ही संगति में इतनी अधिक रम गईं कि सदैव उन्हीं की सन्निधि में रहने लगीं। देखने मिलने वाले प्रायः कहा करते, 'दादी ने ऐसा रंग चढ़ाया है कि उन्हीं के जादू में बंधी रहती है मुन्नो' और कभी कोई कहता- हां जी, क्यों न हो? लगता है दादी तो इसकी मां है तथा मां को तो कुछ पूछती ही नहीं। वास्तविकता यह थी कि मां, दादी अथवा पिता से इनका जो भी सम्बन्ध था, वह था केवल अध्यात्म को लेकर अतः दादी के साथ श्रीकृष्ण वार्ता के आकर्षण में ये उनका संग करतीं, उन्हीं के साथ मंदिर जातीं तथा लगी-लिपटी रहती थीं।

यह बड़ी ही कुशाग्र बुद्धि थीं । इनकी प्रतिभा अप्रतिम थी । ज्ञान का तो मानो भंडार ही थीं । स्तोत्र पाठ के समय माता-पिता की सन्निधि में बैठे रहने के कारण बहुत छोटी सी अवस्था में ही अनेक श्लोक कण्ठस्थ हो गए थे । वे जब श्लोकों का उच्चारण करते अथवा स्तोत्र पाठ करते तो अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से उनके संग-संग उच्चारण करतीं । कभी-कभी स्वतः ही जब यह श्लोक उच्चारण करतीं तो श्रोता देखते के देखते रह जाते। अभी यह दो ढाई वर्ष की रही होंगी, एक बार अपने नाना के यहाँ सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) गईं । उन्होंने पुकार कर कहा, ''राधे! तू कुछ पढ़ना जानती है, कुछ याद हो तो सुना।'' उनका यह बड़ा ही स्वाभाविक सा प्रश्न था कि इन्होंने धारा प्रवाह निम्नश्लोक सुना दिया :-

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने ॥

श्री राम रक्षा स्तोत्र के श्लोक का उच्चारण इतनी स्वाभाविकता से सुन वे मुग्ध और चकित रह गए । इतनी अवस्था में तो बालक बोलना ही प्रारम्भ करते हैं, स्मृति के साथ-साथ इतना शुद्ध उच्चारण । प्रसन्नता में भर इन्हें गोदी में उठा चिपटा लिया उन्होंने और बड़े ही लाड़ में भर कहने लगे, 'अरे यह लड़की तो परम भागवत होगी। हमारे कुल का उद्धार करने वाली होगी ।'

इधर-उधर की बात करना, बच्चों के साथ व्यर्थ के खेल खेलना इन्हें कभी सुहाया ही नहीं । अपनी छोटी सी अवस्था में ही जो जो कथाऐं इन्हें याद हो गई थीं बालकों को बिठा कर आप किसी ऊंचे स्थान पर बैठ कर उन्हें सुनाया करतीं । श्री राम और श्री कृष्ण कथा का प्रायः वर्णन करतीं । उस अवस्था में भी इनकी कहने की शैली, भाषा की रोचकता तथा वाणी इतनी प्रभावात्मक होती कि वे बालक स्तम्भित से कथाऐं सुनते रहते ।

एक बार अपने ननसाल में यह कथा कह रही थीं । इनके नाना सुनकर मुग्ध हो स्तब्ध रह गए । उन्होंने कहा, 'राधे ! तू पूर्णिमा व्रत की कथा कह सकती है, इन्होंने हां कर दी ।' इनके दोनों छोटे भाई भी वहीं थे। पूर्णिमा का दिन था । कथा का सभी आयोजन किया गया । एक विशेष स्थान पर मंच आदि की व्यवस्था की गई । नाना ने भोग आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था करवाई । सभी स्वजनों को निमन्त्रण भिजवाए गए । श्रोता एकत्र

हो गए । इन्होंने सत्यनारायण व्रत की कथा तथा माहात्म्य का वर्णन किया। इतना शुद्ध तथा सारगर्भित वर्णन सुनकर सभी श्रोता मुग्ध से रह गए । भोग लगा सभी में प्रसाद वितरण किया गया । इनके नाना तथा अन्य सभी लोग इतनी छोटी अवस्था में इनकी भक्ति भावना, सुस्थिर विचारधारा, अध्यात्म-प्रधान जीवन और विलक्षण प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि वे प्रायः इनका प्रशस्ति गान किया करते ।

यह कुछ और बड़ी हुई, पढ़ने का आकर्षण इन्हें था ही। कुशाग्र बुद्धि, अप्रतिम प्रतिभा इनके बालपन से ही इनकी सहायक हुई । जहाँ एक ओर शास्त्रों और पुराणों की सारगर्भित कथाओं का, दिनों, वारों और मासों के माहात्म्य से इनका जीवन ओत-प्रोत था, वहीं हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषा का प्रारम्भिक ज्ञान इन्हें अपनी मां श्यामा जी से प्राप्त हुआ । वे पास बिठा इन्हें बतलाती रहतीं । इनकी बहुमुखी प्रतिभा और एकाग्रता के फल स्वरूप बहुत जल्दी ही इन्होंने यह सब अर्जित कर लिया ।

अनेक बार इन्हें एकान्त में अपनी ही विचारधारा में मग्न देखा जाता । इनकी यह एकाग्रता जाने किस विचार को लेकर होती। श्यामल घनों को देख इनके नेत्र सजल हो जाया करते । श्रावण मास प्रारम्भ होते ही इन्हें अन्दर ही एक बेचैनी बाल्यकाल से ही हो जाया करती थी । प्रेमियों के जीवन में नव-नव आशाऐं प्रदान करती वर्षा ऋतु इन्हें अत्यन्त प्रियकर थी । जब कभी वर्षा होने लगती तो यह निरन्तर इन नीलघनों की छटा में, उनसे झरती अनवरत रसधारा में, वर्षा की फुहारों में अपनी अनजानी चाह का, अन्तर की मांग का निदान ढूंढतीं । ऐसे समय इन्हें कुछ भी अच्छा न लगता । सभी काम काज छोड़ कर बैठ जातीं ।

चाञ्चल्य

बाहर बच्चों के साथ कई बार इन्हें कबड्डी, गुल्ली-डंडा आदि खेलते देखा गया । खेल में हार न जाऐं, इसके लिये भी एक ही आश्रय और एक ही दृढ़ विश्वास रहता । उसके लिये भी देवताओं को मनाती, हनुमान-चालीसा का पाठ करतीं, भगवन्नाम का आश्रय लेतीं, जिससे खेल में इनकी विजय हो । परिणाम सदैव इनके अनुकूल ही होते। छोटा सा कद, इकहरा बदन देख लगता स्फूर्ति ही जैसे पुञ्जीभूत हो मूर्त हो गई हो । इनकी क्रियाओं में इतनी चंचलता और चपलता दीखती कि लोग

समझ न पाकर स्तब्ध हो जाया करते। छोटी अवस्था में प्रायः लड़कों के वेष में कुर्ता, धोती धारण करतीं।

अब यह कुछ और बड़ी हो गईं। इनकी अभूतपूर्व बहु-मुखी प्रतिभा ने आसपास के लोगों को सकते में डाल दिया। बाल्यावस्था में बड़े ही विद्वत्तापूर्ण प्रश्नोत्तरों को सुन लगता निश्चय ही इनकी पूर्व की स्मृतियाँ प्रकट होती जा रही हैं। संस्कृत के अनेक श्लोकों को इनके मुख से सुन कर बड़ा ही अच्छा लगता, ऐसा लगता मानों यह सब इन्हें पूर्व से ही कण्ठस्थ हैं। भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है यह बात पता न होने पर भी, अनेक बार भविष्य स्वतः ही कहीं-कहीं प्रकट होकर बोलता है। वे सभी योग धीरे-धीरे पास आते चले गए। इनके यह अभूतपूर्व योग क्रमशः भगवान श्री कृष्ण के चरणों में दृढ़ अनुराग बन दीखने लगे। इस सब की कल्पना सम्भवतः किसी को न हो पाई थी। यह बालपन अभी इतनी प्रारम्भिक स्थिति में था कि भविष्य का आभास निरन्तर होते रहने पर भी स्नेह वश अपने मन की कल्पनाओं, शङ्काओं की चरितार्थता को दर गुजर करने को ही मन चाहा करता था, परन्तु भगवदिच्छा सर्वोपरि है- अतः श्यामा-श्याम के प्रति अनुराग, भाव में परिणत हुआ तथा यह भाव परिपक्व होकर सम्बन्ध का भान कराने लगा। यह सम्बन्ध पूर्व की स्मृतियों को मानस पटल पर झलकाने लगा तथा नित्य और शाश्वत धारा में प्रवाहित कर, ले गया उसी मधुर पथ पर जो गन्तव्य था। जिस हेतु से आगमन हुआ था वह अभी अप्रकट ही था। भूमिका तैयार हो रही थी सभी संयोग आ जुड़े तथा श्यामा-श्याम निकटतर होते चले गए।

श्री राधाकृष्ण में इनका प्रगाढ़ अनुराग था। बालपन में सहज झुकाव को देख सभी में यह विश्वास परिपक्व सा हो गया था, अवश्य ही इनका पूर्व का श्यामा-श्याम से सम्बन्ध, उनके प्रति अनुराग प्रगाढ़तम होता जा रहा है, अन्यथा छोटी अवस्था में इस प्रकार का भाव क्या कोई साधारण बालक के लिये सम्भव है ? सभी की यह जिज्ञासा जल्दी ही विश्वास में परिणत हो गई और इसी की सम्पुष्टि करती एक घटना का योग प्रकट हुआ, जिसे मैं यथावत् प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अभी यह छः वर्ष की रही होंगी। अपने नाना के यहाँ गईं। वहाँ इनकी ममेरी बहन और इनमें घनिष्ठता हो गई। दोनों ही साथ-साथ खेलतीं, परन्तु मुन्नो (ऊषाजी) में एक तन्मयता-विशेष वश, कई बार

निश्चेष्टता को देख इनकी ममेरी बहन स्तब्ध अवश्य हो जाया करती। इससे आगे उसके बालपन ने न तो कोई उत्सुकता ही दिखलाई और न ही, कोई जिज्ञासा। *एक बार दोनों अपने मकान के ऊपर के कमरे में खेल रही थीं कि पू० बोबो (ऊषाजी) सहसा उठ खड़ी हुईं। दशा इनकी विचित्र हो गई। कान आतुर हो गए, नेत्र सजल हुए, दृष्टि सजग हो गई, हृदय अकुला उठा और एक विचित्र सी परिस्थिति में अपने बरामदे से होती हुई सामने के वातायन से झांकने का उपक्रम करने लगीं। जाने क्या था वहाँ ? हां ! हां ! वहाँ से किसी का मादक स्वर इन्हें झकझोर रहा था, इन्हें व्याकुल कर रहा था। सामने की उस दीवार के पीछे वाले वृक्ष के पीछे से किसी का मन्द मधुर रव (Rav) हृदय को व्याकुल कर देने वाला मधुर रव (Rav) किन्हीं श्याम वपुधारी नव किशोर की बांसुरी पर थिरकती कराङ्गुलियों से निःसृत मधुर स्वर लहरी ने इन्हें बौरा दिया। वे चौंकीं और उस रवकारी को निरखने, निरखने ही नहीं, अपने में भर लेने को। उसने इनकी सभी इतर वृत्तियों को आकर्षित कर लिया था और विवश परवश सी यह किसी विशेष भाव में भर, उसी मनोहर छवि पर न्यौछावर होने को अकुला उठीं। स्वर सुना, वादनकारी ने अन्तर को झकझोर दिया। उस अनुभूति से इनमें बहुत समय तक एक भाव विशेष बना रहा। सोई भावना जागृत हो गई। पूर्व की स्मृति साकार हो गई, लगा जैसे किसी नील सिन्धु की रस लहरी ने इन्हें उद्वेलित कर दिया, आकुल-व्याकुल कर दिया।*

जब कुछ चहल-पहल सी हुई, इनकी बहन ने इन्हें झंझोड़ कर पुकारा, सोये से जगे व्यक्ति की भांति, यह सजग हुईं। समवयस्क इनकी ममेरी बहन अनेक प्रश्नोत्तर कर चुप हो गई और उधर इनकी पूर्व की स्मृतियों से जुड़ी अनुभूति ने इनके जीवन में एक और ही सरसता का संचार कर दिया। धीरे-धीरे प्रकट होने लगी इनकी श्यामा-श्याम में दृढ़ रति।

इनकी पौगण्डावस्था की एक और सरस अनुभूति का वर्णन कर हम इस प्रसङ्ग को यहीं विश्राम देंगे। पिता एक बीमा कम्पनी में व्यवस्थापक के पद पर आसीन थे तथा लाहौर (पंजाब) में थे। स्वाभाविक ही यह भी उन्हीं के पास थीं। बाहर की सफाई नौकर करता था परन्तु श्री ठाकुर जी के कमरे की सफाई अपने ही हाथों करने का इन्होंने एक नियम सा ही बना रखा था। श्री ठाकुर जी के कमरे की सफाई के पीछे इनका जो

हेतु था वह उस समय तो स्पष्ट नहीं हो सका था–परन्तु बाद में जब यह बड़ी हो गई तो कुछ कुछ प्रकट हुआ । घर में सत्संगी भाई बहनों, साधु सन्तों का इनके पास आना जाना बना रहने लगा । संध्या में जब वे चले जाते तो यह उसी स्थान पर रात्रि में विश्राम करतीं । इस भावना से कि इनकी चरणरज से मन सहज निर्मल हो जाता है । ठीक यही हेतु इनकी सेवा में पूर्व में भी निहित था । हां तो यह कमरे की सफाई कर रही थीं । बीच-बीच में स्थान–स्थान से अपने प्रेमास्पद श्री ठाकुर जी को देखती जातीं । अरे यह क्या ? सहसा यह क्या हो गया ? इनकी क्रियाऐं रुक गईं । हाथ से सफाई वाला वस्त्र छूट गया। दीवार की टेक लगाए एक ओर को लुढ़क गईं। मुंदे नेत्र, निश्चेष्ट सी यह कब तक इसी प्रकार बैठी रहीं, इन्हें कुछ भी पता न रहा । घर में हुई हलचल और ध्वनि सुन सजग हुई तो पुनः कार्य में रत हो गईं । बाद में अपनी अनन्या सखी, सहेली श्री सुशीला बहन जी को जो घटना इन्होंने सुनाई उसे मैं यथावत प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

"इन्होंने जब श्री ठाकुर जी की ओर मुड़कर देखा तो इन्हें दीखा एक पीपल का सघन वृक्ष है । उसकी हरियाली बड़ी ही लुभावनी लग रही है । उसी के नीचे एक कच्चा चबूतरा बना है, उस पर अपनी बांकी छवि से कोई श्यामलोज्ज्वल माधुरी किसी भाव विशेष में भर अपनी बांस की पोर से अटखेलियां कर रही है । उनके नयनों में एक तन्मयता है, विचारों में गाम्भीर्य । किसी निगूढ़ विचार में मग्न नेत्रों में एक शरारत पूर्ण भाव भरा है। अधरों पर विक्रीड़ित मन्द हास्य ओह ! बरबस ही मन का हरण कर लिया उन्होंने । तन्मय सी हुईं, उस रूप माधुरी का पान कर छकी सी देखती रह गईं । पक्षियों का कलरव इन्हें सुनाई दे रहा है, यह देख रही हैं उनके पीताम्बर की फहरान, उरमाल की लहरान । इस पर भी, जब वे किञ्चित् मुस्कान–रश्मियों का प्रसार करते दीखे तो .... तो..... वह विह्वलता, वह आह्लाद मिश्रित आश्चर्य ! यह स्तम्भित सी हो गईं और . . .। वह रस–प्रवाह . . ।"

❑❑❑

पांच || विद्याध्ययन

विद्यानाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनुः कामदुहा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा ।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु ॥***

भर्तृ० हरि नी० श० २०

मेधा संस्कारगत विषय है । उपार्जित करके इसका वर्द्धन तो अवश्य किया जा सकता है– परन्तु मूल रूप में भगवत्प्रदत्त ही होती है। इसी के अनुसार अध्ययन में रुचि भी सम्भवतः पूर्व संस्कारगत ही होती है। बाल्यपन में यह प्रवृत्ति स्पष्ट होने लगती है, झुकाव तो प्रकट हो ही जाता है । अनेक बालकों की आकांक्षाएँ अध्ययन के साथ–साथ मुखरित होने लगती हैं । आकांक्षाओं का सार तो परम ब्रह्म चिद्घन श्याम सुन्दर के चरणों में प्रीति पगा अनुराग ही है । जिन बालकों में यह स्वभावगत है अथवा प्रकट होकर पल्लवित तथा पुष्पित हो परमोच्च उपलब्धि की ओर सतत प्रवाहित होता दीखता है उनके सौभाग्य का वर्णन करने की सामर्थ्य भला किसमें है ? पूजनीया बहन जी की जीवन लता का प्राकट्य, भक्ति की विकासोन्मुख धरती में हुआ था– उसी के परिप्रेक्ष्य में लालन–पालन भी, अतः उसी भाव में सराबोर उनका व्यक्तित्व अत्यन्त सुस्पष्ट तथा सशक्त होकर सभी के सामने सौरभान्वित पुष्पों की भांति प्रस्फुटित हुआ–होता चला गया ।

हम पूर्व में कह आए हैं कि हिन्दी तथा अंग्रेज़ी का प्रारम्भिक ज्ञान इन्हें इनकी मां श्री श्यामा जी से ही हुआ । उर्दू भाषा पढ़ाने के लिये एक मौलवी साहब इनके पिताजी के मित्र, आया करते थे । उसका

*** विद्या मनुष्य की अतुलनीय कीर्ति सम्पदा है । भाग्यक्षय होने पर यही एक मात्र आश्रयदात्री है । सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु, विरह में रति तथा मनुष्य के तृतीय नेत्र (ज्ञान) के समान है। सत्कार की खान है, कुल की महिमा को बढ़ाने वाली और बिना ही रत्नों के सर्वोत्तम भूषण है । सम्पूर्ण विषयों की अपेक्षा एक विद्यामें ही अधिकार करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

भी इन्हें सम्यक् ज्ञान हो गया। पुस्तकें पढ़ने में रुचि हुई और अपनी बाल्यावस्था में ही इन्होंने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ डालीं। पढ़ना न कहकर यदि हम गुनना कहें तो इनके विषय में अधिक उपयुक्त होगा। यह पढ़तीं, बीच-बीच में खेलने भी चली जाया करतीं। जब कभी मौलवी साहब पढ़ाने आते और किसी विशेष कारण जैसे मौसम का सुहावनापन अथवा किसी अन्य कारण से पढ़ने का मन यदि न होता तो मन ही मन मनाया करतीं कि वे न आवें, उसके लिये श्रीहनुमान जी को मनातीं, हनुमान चालीसा का पाठ करने लगतीं, कभी श्याम-सुन्दर की लीलाओं में मन तन्मय हो जाता और पढ़ने में कुछ अन्यमनस्क भाव होता तो मौलवी सा० यह जान स्वतः ही छुट्टी कर दिया करते। भीतर की बात तक तो मौलवी साहब की पहुँच कहां थी परन्तु संयोग ऐसे अवश्य बन जाते।

दिन व्यतीत होने लगे। अध्ययन के प्रति यह जागरूक थीं ही। कुशाग्र बुद्धि होने के नाते बहुत जल्दी याद कर लेती थीं। मैंने सुना है कि एक बार पुस्तक पढ़ने मात्र से इन्हें स्मरण हो जाया करता था। घर में अध्ययन चलता ही था। बाद में अपने पिता जी के मित्र श्री जगदीश चन्द्र जोश जो एक बड़े ही योग्य अध्यापक थे तथा अपना ही अपनी शैली पर एक कोचिंग विद्यालय चलाते थे, वहां पढ़ने लगीं। अधिकांश वहाँ लड़के ही पढ़ते थे- यह भी उन्हीं के साथ पढ़ने लगीं। श्री जोश सा० प्रधानाध्यापक इन्हें अपनी लड़की ही मानते थे और घर में इनका घर ही के सदस्यों की भाँति सभी जगह प्रवेश भी था। अपनी कक्षा में सदा प्रथम रहतीं। केवल सुनने मात्र से ही सभी विषय इन्हें याद हो जाया करते थे।

इनका छोटा कद और भोलापन जो इनका नैसर्गिक गुण था, के कारण सभी विद्यार्थियों और अपने अध्यापकों का स्नेह भाजन बनी रहीं। सदा सत्य बोलतीं तथा सर्वथा उचित ही कहतीं। अध्यापक के कक्षा में न होने पर यदि कोई विद्यार्थी शरारत करता और अध्यापक को पता चल जाता, स्नेह और ममता की यह मूर्ति सदा उसे बचाने के लिये अपने ऊपर ले लेतीं क्योंकि अध्यापक इनके व्यवहार से, इनकी योग्यता से और इनकी सत्यवादिता से अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। एक बार एक सहपाठी को मास्टरजी के कोप का भाजन होते होते इन्होंने बचा लिया, उस दिन से वह विद्यार्थी इनके इस मृदुल स्वभाव से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसका इनके प्रति स्नेह तथा समादर भाव हो गया।

कक्षा में कुछ शरारती तत्व भी प्रायः होते ही हैं, परन्तु उनका भी इनके प्रति स्नेह और वात्सल्य रहता था। एक बार इन्हीं के एक

सहपाठी अनवर नाम के विद्यार्थी ने एक कागज पर इन्हें लिख कर दिया 'I Love You' यह अत्यन्त प्रसन्न हुईं यह जानकर कि अमुक विद्यार्थी का इनके प्रति स्नेह है । जब प्रधानाध्यापक पढ़ाने के लिये आए तो इन्होंने कागज़ के उस टुकड़े को दिखलाते हुए उनसे कहा, 'मास्टर साहब, देखिये ! अनवर भैया मुझे प्यार करते हैं।' यह तो अत्यन्त भोली थीं परन्तु प्रधानाध्यापक ने अनवर को बुला कर दो-चार बेंत जमा दिये । देख कर यह रोने लगीं और पुस्तकें उठा अपने घर चली आईं । असमय में घर आया देख पिता जी ने पूछा, "आज छुट्टी जल्दी कैसे हो गई ?" इन्होंने सच-सच कहा, "छुट्टी तो अभी नहीं हुई परन्तु मैं ही जल्दी चली आई हूँ ।" कारण पूछने पर इन्होंने सारी परिस्थिति पिताजी से कह दी और बोलीं, "मुझे यह समझ नहीं आता, जब भैया अनवर कहता है कि वह मुझे प्यार करता है, तो इसमें बुराई क्या है तथा मारने की आवश्यकता ही क्या है? मैं कल से पढ़ने नहीं जाऊंगी ।" वाह रे भोला पन ! ऐसा निर्मल हृदय किसी साधारण बालक का कैसे हो सकता है ? शुद्ध प्रेम के गायक की ही यह शोभा है ।

इनके पिता एक सुशिक्षित और योग्य व्यक्ति थे । चारों ओर उनकी ख्याति थी - वे न्यायप्रिय थे । इनको समझाने के लिये जिस भांति उन्होंने इनकी शंका का समाधान किया वह भी उनके निर्मल हृदय का एक उदाहरण ही है । उन्होंने कहा, "मुन्नो देख ! मैं तुझे प्यार करता हूँ ?" इन्होंने, हां कर दी । वे बोले तेरी माँ तुझे प्यार करती है, इन्होंने हाँ कह दी। वे पुनः बोले तेरा भाई शक्ति तुझे प्यार करता है । सकारात्मक उत्तर देकर यह चुप हो गईं । वे पुनः बोले, "हम सब तुझे प्यार करते हैं, अपने मन में । कभी यह लिख कर थोड़े देते हैं कि हम तुझे प्यार करते हैं । वह लड़का तुझे प्यार करता है यह बात लिख कर देता है- इससे लगता है कि वास्तव में उसका तेरे प्रति स्नेह नहीं है । जब स्नेह नहीं है तो लिख कर झूठ क्यों कहता है ? क्योंकि वह झूठ बोलता है, और यह बात अध्यापक जानते हैं- इसी कारण अध्यापक ने उसे मारा है ।"

यह बात इनके भोले मन में सहज समा गई और दूसरे दिन से स्कूल जाने लगीं ।

इनके पिता बड़े ही सत्यवादी थे । उनकी अमिट छाप इन पर भी पड़ी । एक बार इनकी वय के कई बच्चे बैठे थे । इनके हाथ में एक कलाकृति थी । दूर से देख पिता जी ने पूछा, "मुन्नो ! यह क्या है ।"

दिखलाने की प्रबल उत्सुकता वश इन्होंने उनके सामने कर दी । उन्होंने पूछा, ''यह किसने बनाई है'' जाने किस कारणवश इनके मुख से सहज निकल गया, ''मैंने'' । एक सादा कागज इनकी ओर बढ़ाते हुए वे बोले, ''बना कर दिखला सकती है ।'' इन्होंने कागज ले तो लिया, परन्तु बनाना नहीं आया। समझाते हुए वे बोले ' सत्य मानव का आदर्श है ।'

बस वह दिन सम्भवतः प्रथम तथा अन्तिम था । इन्होंने कभी हंसी में भी अन्यथा नहीं कहा । बड़े होने पर हम लोगों के इधर-उधर की बात कर बहाना बनाने पर वे सदा कहा करती थीं, ''झूठ से मुझे घृणा है । भगवान सत्त्व प्रधान हैं । अच्छे से अच्छे और बुरे से बुरे कर्म को वे प्रकट कर ही देते हैं- अतः झूठ बोल कर छिपाने के पाप की अपेक्षा सत्य बोल कर झूठ का प्रायश्चित कर लेना अच्छा है ।''

समय और बीता । एक बार सभी ऋतुएँ अपने क्रम के अनुसार पुनः बदल गईं । आयु का निश्छल भाव, बाल्यावस्था का भोलापन एक विशेष कौतूहल वश जिज्ञासा बन सामने आने लगा । सारगर्भित बातों की सजगता ने प्रवेश किया और वह भोलापन गाम्भीर्य में प्रवेश पा गया । एक अनजानी चाह अपना मूर्त रूप ढूंढने लगी- एक प्रबल जिज्ञासा अपने प्रश्नों का निदान चाहने लगी- तथा आकांक्षाओं ने अपने हृद्धन का परिचय मांगा ।

पढ़ाई में अधिकाधिक रुचि बढ़ती गई । विद्यालय की बड़ी कक्षाओं में प्रवेश हुआ । विचारों में तदनुसार ठहराव आया । पढ़ने में अब और ही गाम्भीर्य का अभिनिवेष हो गया । विद्यालय का सभी कार्य समय से करके जातीं । समय के विषय में बहुत ही दृढ़ थीं । असत्य कभी किसी से कहती ही न थीं । अपनी कक्षा में इतनी अधिक निपुण और दक्ष थीं कि अध्यापक के प्रश्न करते ही उत्तर देने की योग्यता इनमें थी । ऐसा अवसर कभी भी न आया होगा जब इन्हें अपना पाठ याद न रहा हो । खेलों में भी रुचि थी । बहुत ही इकहरा बदन, होने से एक छत से दूसरी पर चढ़ जाना, उससे दीवार पर उतर आना, वहाँ से छलांग लगा देना, इनके अदम्य साहस का ही प्रतीक था । क्रिकेट और कैरम खेल खेलतीं । सहपाठियों के कहने पर ऊंचे से ऊंचे स्थानों से निर्भीक सी कूद जाया करतीं । अपने शिक्षकों तथा सहपाठियों की अत्यन्त स्नेह भाजन मुन्नो ने अपनी स्कूल की शिक्षा पूर्ण कर ली ।

हम पहले कह आए हैं कि पढ़ाई में यह बड़ी प्रवीण थीं।

दसवीं कक्षा की तैयारी कर लेने पर भी आयु कम होने की वजह से परीक्षा न दे पाईं- उस समय में इन्होंने हिंदी-साहित्य की परीक्षा दी । बहुत जल्दी पढ़ने का अभ्यास हो गया था । हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू तथा संस्कृत भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था । बंगला भाषा का भी इन्होंने सम्यक् अध्ययन कर लिया था । जहाँ कहीं भी कोई ग्रन्थ उपलब्ध हो जाता अवश्य पढ़तीं। इन्होंने अनेक ग्रन्थ पढ़े, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ीं, उपन्यास पढ़े, नाटक पढ़ डाले। शास्त्र-पुराणों से लेकर काव्य-महाकाव्य, धार्मिक पत्रिका- कल्याण, कल्पतरु से लेकर माया, मनोहर-कहानियाँ, इलस्ट्रेटिड वीकली तक, धार्मिक पत्रिकाएँ उर्दू काव्य, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान और भी न जाने कौन-कौन से साप्ताहिक, मासिक तथा अन्य ग्रन्थ जो सहज उपलब्ध हुए, इन्होंने पढ़ डाले । पढ़ने का व्यसन, इन्हें इतना अधिक था कि एक बार इनके अध्यापक ने अपनी किसी आकांक्षा पर लेख लिखने को दिया । इन्होंने लिखा, "एक बहुत बड़े कमरे में जहाँ पुस्तकें ही पुस्तकें रखी हों, उसमें बैठी रहूं और पढ़ती रहूं- यही मेरे जीवन की मुख्य आकांक्षा है ।"

इधर अपने प्राणों के प्राण, जीवन की संजीवनी शक्ति प्रदान करने वाले धार्मिक ग्रन्थों में सभी शास्त्र, सभी पुराण, गीता, उपनिषद् तथा श्री मद्भागवत महापुराण को सम्यक् पढ़ा, गुना तथा वे उनके जीवन का अंग ही बन गए थे ।

अनेक भाषाओं पर इनका अधिकार हो चुका था । अंग्रेजी बहुत ही धारा प्रवाह बोलती थीं । घर की परिस्थिति में एक बदलाव आ चुका था । पिता जी को अपनी गृहस्थी के लिये धन का अभाव हो चला । उन्होंने नौकरी के लिये एक बीमा कम्पनी में प्रार्थना पत्र दिया । संयोग से उसी कम्पनी के एक बड़े अधिकारी का किसी कार्यवश अम्बाला आना हुआ । उन दिनों नौकरियाँ ढूंढने वालों की बहुतायत नहीं थी, प्रत्युत ऐसे लोगों की तलाश कम्पनियों को रहती थी, उन्होंने श्री मनमोहन जी से इस विषयक बात कर लेना उचित समझा । जब वे घर आए तो सर्वप्रथम मुन्नो से भेंट हुई । छोटे से कद की इस नन्हीं सी बालिका से अंग्रेजी में वार्तालाप कर तथा उसके मुख से धारा प्रवाह अंग्रेज़ी में प्रश्नोत्तर सुन वे स्तब्ध से रह गए । उन्होंने पूछा, "बेटी यह प्रवाह और इतना शुद्ध उच्चारण तुमने कहाँ से सीखा है ?" बड़े ही सहज भाव में अपने पिताजी का परिचय देते हुए इन्होंने सब स्पष्ट कह दिया । वे बंगाली अधिकारी इनसे बहुत ही प्रभावित हुए । कुछ ही दिनों में श्री मनमोहन जी को इन्हीं के

कारण व्यवस्थापक के पद पर लाहौर में नियुक्त कर लिया गया । वहीं श्री ठाकुर जी का कमरा साफ़ करते समय इन्हें श्री कृष्ण की मधुर मुस्कान, मदपूर्ण बंक अवलोकन युत रूप माधुरी ने रस विवश कर सराबोर कर दिया था । इस प्रसङ्ग का हमने इनके बाल्य भाव तथा बाल चरित्र वाले अध्याय में सविस्तार वर्णन किया है ।

अपनी स्नातक परीक्षा के साथ-साथ इन्होंने हिन्दी में आचार्य की परीक्षा दी तथा बड़े अच्छे नम्बर लेकर उत्तीर्ण हुई । इधर पंजाब विश्वविद्यालय से ही इन्होंने एम. ए. परीक्षा पास कर ली तथा विश्व-विद्यालय में द्वितीय स्थान पर रहीं । पढ़ाई का हेतु, मात्र प्रमाण पत्र नहीं रहा- अतः इन्होंने गहराई से मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया तथा सम्यक् ज्ञान उपार्जित कर लिया ।

पूजनीया बहनजी की तर्क सङ्गत शैली, अप्रतिम-प्रतिभा तथा मधुर वाणी, स्नेह पूर्ण स्वभाव, आत्मीयता पूर्ण व्यवहार, अपनों से बड़ों के प्रति समादरणीय दृष्टिकोण के साथ-साथ, श्यामा-श्याम के प्रति सतत सजगता पूर्ण हृदय का प्रवाह । ओह ! एक ही समय में सम्पूर्णता - निस्संदेह अभूतपूर्व योग कहा जावेगा ।

प्रत्येक क्षेत्र में दक्षता तथा प्रवीणता उनमें नैसर्गिक गुण बन कर समायी थी । किसी भी डिज़ाईन को चलते-चलते देख बना लेना उनके लिये सहज था । नए-नए डिज़ाईन बनाने का उनमें कौशल था । चाहे कला हो, चाहे कोई कार्य, चाहे किसी भी प्रकार का कुछ भी काम हो- उनकी दक्षता के सामने सुगम दीखता था । प्रत्येक कार्य में वे निपुण थीं, नफ़ासत उनकी प्रकृति में थी, कलात्मकता उनका स्वभाव था, सौन्दर्य उनका स्वाभाविक गुण था, उनकी चाल-ढाल, बात-चीत, स्नेह-सौहार्द हृदय की उमड़न सम्पूर्ण पूर्णता लिये होती थी- यही कारण था कि एक बार मिलने के पश्चात उनके व्यक्तित्व के आकर्षण में लोग बंध जाया करते थे । सर्वोपरि था उनका भग्वल्लीला कथा में अभिनिवेश । उनकी सम्पूर्ण चातुरी की परिणति प्रिया-प्रियतम के प्रति समर्पित थी । चित्रकला में निपुणता इनमें जन्म जात थी । संगीत कला का सम्यक् ज्ञान था । कठिन से कठिन पदों को बड़ी ही सुगमता से राग-ताल में बिठा लेना इनके लिये सहज था ।

ब्रज में आकर ब्रज भाषा पर भी इनका अधिकार हो गया था ।

❑❑❑
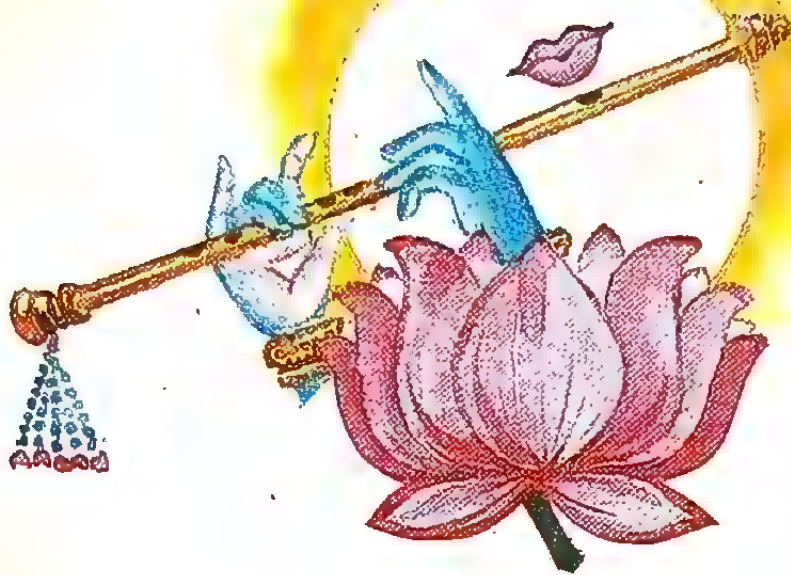
अद्‌भुत अनूभूति

स्वर मधुरतम आ रहा है।
दूर उस सुनसान तट पर
वृक्ष के नीचे खड़ा हो,
गीत कोई गा रहा है। – स्वर–
आ सखी! उस ओर चल तो,
देख झुरमुट में छिपा वह
कौन रस बरसा रहा है? – स्वर –
छीन कर सुख साज जग के,
कर विकल मन प्राण मेरे
जीत पर इठला रहा है। – स्वर –
लोक लज्जा, आन कुलकी,
अब नहीं रोके रुकेगी।
होश मेरा जा रहा है। –स्वर–
गीत के मिस बंसरी में
आज मेरा नाम लेले
वह मुझे तड़पा रहा है। – स्वर –
रोक मत आली मुझे,
मेरी प्रतीक्षा में कहैन्या
आप भी अकुला रहा है। – स्वर –

प्रथम भाग

द्वितीय अध्याय

पृष्ठ ४१ से ६३ तक

वे रसिया, सखि ! रस धनी,
रसनिधि सुरस अथाह ।
रस ही में विलसें तऊ,
और और रस चाह ॥

वे मोतन झुकि झांकहीं,
नयननि भरे निहोर ।
तब रोके हू न रुके,
उठत अनङ्ग हिलोर ॥

छः परिवार- संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ में क्या सुख है तथा उसका स्वरूप क्या कहा जा सकता है- इस विषय में सैद्धान्तिक दृष्टि से विभिन्न विचारधारा हो सकती हैं परन्तु यह धारणा तो निर्विवाद सही मानी गई है कि जहाँ जागतिक प्रपञ्च से रहित परस्पर स्नेह सौहार्द, आध्यात्मिकता, सुशिक्षण तथा आत्मीयता का समावेश है, भक्ति का सम्पुट लगा है- तो उस गृहस्थ को श्रेष्ठ ही माना जावेगा ।

उत्तर प्रदेश के पश्चिम भाग में मुज़फ्फरनगर जनपद एक प्रसिद्ध स्थान है । उसी की तहसील है, यमुना तट निकट स्थित कैराना। श्री विष्णु स्वरूप भटनागर यहीं के निवासी थे । यहीं प्रचुर मात्रा में इनकी ज़मीन भी थी । वे स्वयं अंग्रेज़ी सरकार में तहसीलदार के पद पर आसीन थे । स्थानान्तरण पर इन्हें जगह-जगह जाना पड़ता था । इनकी अनेक सन्तानें हुईं परन्तु एक पुत्री जो वर्तमान में हैदराबाद (आन्ध्र) में अपने पुत्र के पास निवास कर रही है- तथा एक पुत्र श्री मनमोहन स्वरूप जी को ही हमारी चरित्रनायक श्री ऊषा बहन जी के पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । श्री मनमोहन स्वरूप जी अपने अध्ययन हेतु पंजाब में तत्कालीन अध्ययन केन्द्र लाहौर में ही क्रिश्चियन फोरमैन कालेज में अपनी स्नातकोत्तर शिक्षा पूर्ण कर अम्बाला आकर निवास करने लगे थे । इनका विवाह हुआ सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) के रईस श्री मनमोहन जी की पुत्री श्री श्यामा जी से । वे भी अध्यात्म प्रधान थीं ।

श्री मनमोहन जी के यहाँ तीन कन्याऐं तथा चार पुत्र हुए। उनमें श्री ऊषा बहन जी सबसे बड़ी थीं । उनका परिचय ही इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है । बड़ी होने के नाते इन्हें अनेक ज़िम्मेदारियाँ निभानी पड़ीं। व्यावहारिक जीवन में पिता लगभग असफल से ही रहे । काव्य सृजन का उन्हें शौक था । कविताऐं लिख कर वे बड़े ही प्रसन्न होते थे । उन्होंने हिंदी तथा उर्दू भाषा में लिखा परन्तु उर्दू काव्य ही उनका प्रधान रहा । उनके काव्य में उर्दू शायरों के परम्परागत गिले, शिकवे, नाले, फ़रहादों के साथ-साथ 'इश्के हकीकी' का पुट भी दीखता है ।

माँ श्री श्यामा जी का जीवन भक्ति प्रधान था। गृहस्थ के साथ-साथ अपने नियम सेवा, पूजा को पूर्णतया निबाहती रहीं। एक आदर्श गृहस्थी थीं। सभी को उनमें मातृवत् प्रतीति होती थी- इसमें मुख्य कारण उनका वात्सल्य पूर्ण स्वभाव/व्यवहार ही था।

सभी बहनों तथा भाइयों में अत्यन्त स्नेह था। एक बार घर की आर्थिक व्यवस्था ठीक न रही। घर के सभी कार्य स्वयं ही करने पड़े, यहां तक कि बर्तन मांजने तक के लिये भी सब स्वयं ही करना पड़ा। सभी ने सहर्ष निभाया। श्री ऊषा बहन जी को समय का प्रायः अभाव तो रहता ही था- उनके हाथों में, बर्तन मांजने से तकलीफ हो जाया करती थी। पू. बहन जी से छोटे परन्तु भाईयों में सबसे बड़े श्री शक्ति मोहन ने यह बात जान बड़े ही स्नेह और आत्मीयतावश बहन जी से कहा, "मुन्नो ! बर्तन मैं मांज दूंगा तू धो लिया करना," यह कह उनका मन भर आया। इस अगाध स्नेह और आत्मीयता से पूर्ण व्यवहार से बहन जी का मन भी पसीज गया। स्नेह का ऐसा स्वरूप, प्यार और अपनत्व का यह भाव पारस्परिक आत्मीयता के बिना कहाँ सम्भव था ? इस स्नेह में छिपा सम्मान और मर्यादा का स्वरूप प्रशंसनीय ही है।

दूसरे नम्बर के भाई श्री श्रीश मोहन की काव्य में रुचि है। अच्छे वक्ता भी रहे। बहन जी के छोटे भाई होने के साथ-साथ परस्पर मैत्री का भाव भी बना रहा। अपनी कविताऐं लिख कर सुनाना तथा परामर्श लेना अत्यन्त स्वाभाविक बना रहा। अपनी सद्गृहस्थी ले देहली में निवास कर रहे हैं।

तीसरे और चौथे दोनों भाईयों ने विवाह नहीं कराया। तीसरे भाई साहब (श्री श्याममोहन) कुछ समय कालेज में पढ़ाते रहे, आत्म निर्भरता का भाव उनमें प्रारम्भ से ही रहा। कुछ समय घर पर भी पढ़ाया। कालेज के इस शिक्षा केन्द्र ने अध्यात्म का रूप ले एक आदर्श जीवन की नींव रखी तथा यह शिक्षा केन्द्र पूर्णतः अध्यात्म का केन्द्र बन गया। अनेक बहन भाईयों को प्रश्रय मिला। अपनी छोटी आयु में ही इन्होंने भारतीय वाङ्मय का सम्यक् ज्ञान उपार्जित कर लिया था।

अध्यात्म की विचारधारा पू० बहन जी की सन्निधि तथा मार्गदर्शन में पल्लवित हुई, एक स्थायित्व की ओर उन्मुख होने लगी।

आने-जाने वालों पर प्रभाव भी पड़ा। उसी से प्रभावित अनेक बुद्धिजीवी अपनी आध्यात्मिक बुभुक्षा का निदान पाने लगे। 'सदाशिव कालेज' से, 'सदाशिव सत्संग स्थली' में परिणत हुई वह स्थली अनेक जिज्ञासुओं के लिये अद्यावधि आश्रय स्थली बनी है।

सबसे छोटे श्री श्रुति मोहन अनेक राजकीय महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। उसी में हृदयगति रुक जाने से अपनी छोटी ही आयु में परलोक सिधार गए।

दो बहनें बड़ी श्रीमती उमा तथा छोटी श्रीमती उत्तमा अपनी छोटी-छोटी सद्गृहस्थी ले क्रमशः देहली तथा हिसार में निवास कर रही हैं। पू० बहन जी के अत्यधिक व्यस्त जीवन में उनके शरीर की, उनकी निजी सर्वोपरि उनके मन की सेवा जितनी सजगता और उत्साह पूर्वक इन दोनों ने की वह अपने में अद्वितीय है। पदगान, श्यामा-श्याम का कीर्तिगान करने में भी इन दोनों का विशेष योगदान रहा। श्री ठाकुर सेवा में भी बीच-बीच में हाथ बटाती रहीं।

पूरा परिवार उच्च शिक्षा प्राप्त, एक आदर्श परिवार होने के साथ-साथ स्नेह, गरिमा तथा मर्यादापूर्ण विचारों से प्रभावित बना रहा।

❑❑❑

सात || गुरु वन्दना

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥ **

(वृ० स्तो० र०)

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररुपिणम्।
यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥ ***

(श्री राम. च. मा.)

बोध तथा 'प्रबोध' शब्द केवल भगवत्परक ही माने गए हैं। श्रीकृष्ण प्राप्ति में सहायक समस्त तत्त्वों का निरूपण करने वाले, अपनी अहैतुकी कृपा से उन सभी साधनों को सहज प्रदान करने वाले– तथा उनका फलरूप स्वयं भगवान शिव ही हैं। श्री कृष्ण द्वारा वरदान मांगने का आग्रह करने पर जो केवल 'आपकी भक्ति में लगा रहूं, आपके चरणों का दासत्व प्राप्त कर सेवा करता रहूँ। आपके नाम जप से तथा आपके चरण कमलों की सेवा से मुझे कभी तृप्ति न हो'– कहकर संतुष्ट हो गए थे। सहर्ष तथाऽस्तु, कह, वरदान प्रदान कर भगवान श्री कृष्ण बोले :–

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परा
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञान-हीना विचेतनाः।
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥

हे शिव ! तुमसे बढ़कर अत्यन्त प्रिय मेरे लिये दूसरा

** जो ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं, परमसुख के देने वाले हैं, उनके अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं। जो मूर्तिमान ज्ञान हैं, द्वन्द्वों से परे हैं, गगन के समान सर्वत्र व्यापक हैं, 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के लक्ष्य हैं। जो एक हैं, नित्य हैं, मल रहित हैं, अचल हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धि के साक्षी स्वरूप हैं, जो भावों से परे हैं, तीनों गुणों से रहित हैं, इस प्रकार के अपने सद्गुरु के लिये मैं नमस्कार करता हूं।

*** जीव को प्रबोध कराने वाले, शंकर रूप में नित्य विराजमान आदि गुरु भगवान शंकर की मैं वन्दना करता हूं। वक्र होने पर भी जिन का आश्रय प्राप्त करने वाले चन्द्रमा सर्वत्र पूजे जाते हैं।

कोई नहीं है । तुम मेरी आत्मा से बढ़कर हो । जो पापिष्ठ, अज्ञानी और चेतना हीन मनुष्य तुम्हारी निन्दा करते हैं, वे तब तक कालसूत्र नरक में पकाए जाते हैं, जब तक चन्द्रमा और सूर्य की सत्ता रहती है ।

शान्तो विमत्सरः कृष्ण भक्तोऽनन्य प्रयोजनः ।
अनन्य साधनः श्रीमान् क्रोध लोभ विवर्जितः ॥
श्रीकृष्ण रस तत्वज्ञः कृष्ण मन्त्रविदां वरः ।
कृष्ण मन्त्राश्रयो नित्यं मन्त्रभक्तः सदा शुचिः ॥
सद्धर्म शासको नित्यं सदाचार नियोजकः ।
सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते ॥

(पद्मपुराण-पा. ख. ८२/६/८१)

जो शान्त हों, जिनमें मात्सर्य का नितान्त अभाव हो, जो श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हों, जिनके मन में श्रीकृष्ण प्राप्ति के सिवाय दूसरी कोई कामना न हो, जो भगवत्कृपा के बिना दूसरे किसी साधन का भरोसा न करते हों, जिनमें क्रोध और लोभ लेशमात्र भी न हो, जो श्री कृष्ण रस के तत्वज्ञ और श्रीकृष्ण मंत्र की जानकारी रखने वालों में श्रेष्ठ हों, जिन्होंने श्री कृष्ण मंत्र का ही आश्रय लिया हो, जो सदा मन्त्र के प्रति श्रद्धा भक्ति रखते हों, सर्वदा पवित्र रहते हों, प्रतिदिन सद्धर्म का उपदेश देते हों और लोगों को सदाचार में प्रवृत्त करते हों, ऐसे कृपालु और विरक्त महात्मा ही गुरु कहलाते हैं ।

भगवान शंकर समस्त मंगल करने वाले हैं, शरणागत वत्सल हैं, औढरदानी हैं तथा भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति प्रदान करने वाले हैं, योगीश्वरों के भी गुरु हैं- वे महायोगीश्वर हैं । वैष्णवाग्रगण्य हैं । समस्त वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं । इनके अतिरिक्त भौतिक देहधारी जिन्हें हम गुरु रूप में स्वीकार करते हैं, उनमें भी व्यापक रूप में ये ही विराजमान रहते हैं । ये ही आदिगुरु के रूप में पूजनीय हैं । श्रीकृष्ण रास दर्शन करने की लालसा से जिन्होंने प्रिया-प्रियतम की अनुगता काय-व्यूह-स्वरूपा इन ब्रजाङ्गनाओं की कृपा से गोपीदेह प्राप्त कर उस अमिय रस सुधा-धारा में अवगाहन किया है, वे ही आदिगुरु भगवान शंकर समस्त चर और अचर के, यावत् प्रकृति में विराजमान सत्ता अर्थात् सभी के गुरु हैं । परम वैष्णव, सहज ही प्रसन्न होने वाले, अपने जनों की समस्त कामनाओं को सहज ही पूरा करने वाले आदिगुरु भगवान शंकर को ही पूजनीया बहिन जी का गुरु होने का गौरव प्राप्त है । उन्होंने सम्मुख प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर, इन्हें इसका बोध कराया ।

यह बात निर्विवाद है कि साधकों को सुचारू रूप से पथ पर अग्रसर होने के लिये महदाश्रय परमावश्यक है । जिन महानुभावों में हमारी श्रद्धा हो जाती है, उन्हीं के प्रति हमारा समर्पण भी अनायास ही हो जाता है । जिनकी आज्ञा हम शिरोधार्य करते हैं, जिनकी वाणी में हमारा विश्वास होता है, जो हमारे लिये सभी प्रकार से माननीय हो जाते हैं, जो हमारा सभी प्रकार से समस्त भार अपने ऊपर लेने का सामर्थ्य रखते हैं अथवा हमारी समय-समय पर उठी शंकाओं का समाधान करने में समर्थ हों, वही गुरु धारण करने योग्य हैं अथवा उन महज्जनों के प्रति जब हमारा पूर्ण समर्पण हो जाता है- वे ही हमारे मार्गदर्शक, पथ-प्रदर्शक 'गुरु' रूप में वन्दनीय हो जाते हैं । एक शब्द में, जो हमारे आध्यात्मिक चरित्र का निर्माण कर प्रिया-प्रियतम की प्रत्यक्ष अनुभूति एवं सतत सन्निधि के लिये उचित मार्ग निर्देश करते हैं अथवा दे सकते हों वे हमारे लिये प्रणम्य तो हैं ही, सर्वथा गुरु रूप में पूजनीय हो जाते हैं ।

अब प्रश्न एक उठता है- अनेक बार इस मरणधर्मा शरीर में, व्यापक रूप में स्थित उस अखण्ड सत्ता के आदेशों का पूर्णरूपेण परिपालन करने में हमें संकोच होता है, उसमें अनेक इस प्रकार के कर्मों का योग हो जाता है, जो सहज मान्य नहीं लगते, उस विषय में साधक के लिये परमावश्यक है कि वह उन उपदेशों का शास्त्र-वाणी से मिलान करें अथवा अन्य महज्जनों से परामर्श करें ।

जब नित्य और अखण्ड साक्षात् पूर्ण ब्रह्म ही गुरु रूप में प्राप्त हो रहे हों- वह दिव्यातिदिव्य स्वरूप हमें अपने चरणाश्रय में रखने को तत्पर हो रहा हो, प्रत्यक्ष होकर हमें स्वीकार रहा हो तो फिर इस मरणधर्मा शरीर में स्थित उस व्यापक सत्ता का आश्रय ग्रहण क्यों करें ?

जब अविनाशी और अखण्ड सत्ता हमारे लिये सहज सुलभ हो रही है, हमें अपने चरणों का आश्रय प्रदान करने को सम्मुख खड़ी है- तो हमारे परम पूजनीय गुरु वे ही हैं । यह बात सर्वसाधारण के लिये तो अनुकरणीय नहीं कही जा सकती । साधारणतः तो चतुः सम्प्रदायों में चली आ रही वैष्णवीय पद्धति ही अनुकरणीय है । महज्जनों के लिये कहीं-कहीं अपवाद अवश्य दीखते हैं । श्री दत्तात्रेय जी महाराज ने अपनी निष्ठाओं के आधार पर चौबीस गुरु किये ।

श्यामा-श्याम द्वारा अपनी परिकर अनन्या सखी (श्री सखा जी) को श्री मुख से आदेश कर, अपनी लीला-वार्ता का परमोच्च

प्रत्यक्ष लीला-दर्शन

पहिर पीयरो पट चटकीलो
आवत चले भानुजा तीर
विस्मय कबहुँ सघन द्रुम छहिंया
कबहुँ हिलोरत श्यामल नीर।।
मंजुल मुख पै बिथुरी अलकें
चपल होत जब चलत समीर।
हौं ठाड़ी तरू ओट लख्यो उन
छवि लखि भूली तन सुधि बीर।।
मो तन मुरि अवलोकि हंसे वे
फूँकि जगाई मनसिज पीर।
लाज सकुच सब काम बिगार्‌यो
भरकी जद्दपि भावनि भीर।।
वे सुजान सुन्दर सब जानत
हृदय पारखी प्रणय प्रवीर।।
निकट आय झकझोरि जगाई
कर मेंह कर लै झटक्यो चीर।।

सुखास्वादन कराने हेतु अपनी अभिन्न प्राणा सखी (पू. बोबो) के पास भेजना, कोई साधारण बात नहीं है, प्रत्यक्ष रूप में उनका योगदान एक वैशिष्ट्य को लेकर अभूतपूर्व कृपा का परिचायक है। इस कृपा रस में जो अद्भुत रस सिद्धान्त, परम गोपनीय भाव धारा अथवा माधुर्य के चरमोत्कर्ष का वर्णन हुआ है, उसकी भाषा-शैली, भाव गाम्भीर्य, उसका सूक्ष्मतम विश्लेषण, रस पेशलता तथा वाणी का इतना सरस प्रवाह निस्संदेह प्रिया-प्रियतम की गोपनीय रस-परिपाटी तथा अनङ्ग माधुरी से आप्लावित करता-श्याम सुन्दर के प्रीतिपूर्ण अनुराग की रसीली वर्षा है, जो अपने अत्यन्त अपने जनों के अतिरिक्त कहीं हो सकती है- इसकी सम्भावना ही नहीं है।

इतनी प्रत्यक्ष अनुभूति और स्थिति के पश्चात् जहाँ स्वयं श्याम सुन्दर सम्मुख प्रत्यक्ष होकर सहज सुलभ हो रहे हैं, गुरु अथवा परम्परा की अनिवार्यता सम्भावित सी नहीं लगती। ऐसे रसीले क्रम द्वारा माधुर्याम्बुधि में सीधे ही कूद पड़ना, किसी अज्ञात प्रेरणा और शक्ति के कृपा प्रसादवश स्वयं को उसी रस समुद्र में डूब उतरते देखना अथवा तन्मयता विशेष में किञ्चित् सजगता का भान होने पर उस रस समुद्र में निमग्न पाना, वहाँ पहुंचने के क्रमादि से सर्वथा अनभिज्ञ होने पर भी इस दशा में सराबोर होना इसे क्या क्रम कहें और क्या उपक्रम ?

मधुर रस सिन्धु की ओर सरिता का सहज प्रवाह और माधुर्याम्बुधि का सतत प्रवाहमान सरिणी को आत्मसात करते जाना जहां सरिता, फिर भी सरिता ही दिखलाई दी और सिन्धु सिन्धु ही। इसका क्या क्रम कहें ? यह तो स्वभाव है और यह स्वभाव ही जहां स्थायी भाव हो तो उसमें किसी की सिफारिश अथवा कृपा की अपेक्षा किसे रहेगी ?

जहाँ से हम कुछ भी ग्रहण करते हैं वे ही हमारे गुरु हैं। अत: मूलरूप में अविनाशी और जन्ममरण के चक्र से रहित वह अखण्ड सत्ता ही गुरु-रूप में वन्दनीय है।

बात कुछ अधिक पुरानी नहीं है। पू. बोबो श्री वृन्दावन आ चुकी थीं। श्री यमुना जी से स्नान करके लौट रही थीं। साथ में पू. सुशीला बहिन जी, विजय तथा कुछ अन्य बहनें भी थीं। गुरु पूर्णिमा का दिन था। श्री युगलघाट के सम्मुख खेतों में चलते-चलते पू. बोबो के मन में विचार आया "आज श्री गुरु पूर्णिमा है। सभी कहते हैं कि गुरु के बिना गति नहीं है- तो मेरे गुरु " अभी विचार पूरा हुआ भी न था कि सामने चबूतरे से कुछ ऊंचाई पर आकाश में प्रत्यक्ष रूप में स्थित, आदि

वैष्णवाग्रगण्य भगवान शंकर अपनी अर्द्धाङ्गिणी पार्वती जी तथा बालरूप में गणेश जी के साथ दीखे । मां पार्वती जी लाल साड़ी धारण किये तथा नखशिख शृंगार किये हैं । अपनी बालसुलभ चेष्टाओं में रत छोटे से गणेश जी भी हैं । इनके प्रति इनका भ्रातृभाव पुष्ट हुआ । भगवान शंकर की तपाए हुए स्वर्ण के समान कान्तिमती पीली जटाऐं हैं, गौरवर्ण की सी अङ्ग कान्ति है । अनन्त और अविनाशी भगवान शंकर के मस्तक पर गङ्गाजी तथा भाल पर चन्द्रमा का मुकुट विराज रहा है । कण्ठ में सुन्दर नीलिमा है । नागराज के हार से अलंकृत हैं, मन्द मधुर स्वर में कह रहे हैं, 'मैं हूं तुम्हारा गुरु।' इन्होंने वहीं श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया । भगवान शंकर ने अपने देदीप्यमान त्रिशूल से पू. बोबो के मस्तक पर बार-बार स्पर्श करा आशीर्वाद दिया । ये गद्गद हो गईं और चुप-चुप घर चली आईं । अतः भगवान शंकर की वे कृपापात्र रहीं ।

उनसे युगलमन्त्र के सम्बन्ध में कभी-कभी चर्चा होती। 'मन्त्र चिन्तामणि' उनका अभीष्ट था । महामन्त्र का वे प्रतिक्षण जप करती रहती थीं । यद्यपि यह बात निर्विवाद थी कि उनसे व्यक्तित्व के लिये जप आदि किसी प्रतिबन्ध की, बात की अनिवार्यता न थी- वे एक ऐसी स्थिति में थीं जहां जप का प्रतिबन्ध नहीं, ध्यान का कोई क्रम नहीं, जहां आस्वादन ही आस्वादन है। प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में, मधुर रसीली निकुञ्ज लीलाओं में अभिनिवेष होने पर किसे सुधि रहेगी जप करने की, हाथ में माला लेने की । उरमाल बनी यह मृणालिनी भुजाऐं किसी की कण्ठमाल बन रस में डूब ही गईं; मुख से नामोच्चारण होता ही कैसे ? किसी रसोद्गम स्थल से निसृत सुधावर्षिणी में स्नात महाभागा को नामोच्चारण की सुधि? बस, जहां मधुर, मधुर ही है सब; उसी माधुरी में भर केवल कहते ही बना:-

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो,
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।
मधुगन्धि मृदुस्मित मेतदहो,
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ॥

'श्रीकृष्ण कर्णामृत

उनका गीत मधुर है, मुखचन्द्र से माधुर्य की धारा प्रवाहित हो रही है, और उनकी मधुर स्मित किसी सुगन्धि से सराबोर कर

रही है- इतने सब पर अलग से कुछ भी कहने की सुधि ही कहाँ रही ! केवल 'मधुर', 'मधुर' और 'मधुर' ही कहते बना।

श्यामसुन्दर प्रत्यक्ष हैं, उनकी माधुरी स्वतः सराबोर कर रही है, ध्यान में उनकी सन्निधि सतत बनी है और जब मन किञ्चित् बाह्य हुआ, उस समय उन्हीं की लीलाओं का ध्यान, चिन्तन और मनन। अतः पू० बोबो जीवन का क्षण-क्षण उन्हीं 'प्रेमास्पद' को समर्पित कर धन्य होती रहीं। 'युगल मन्त्र' (मन्त्र चिन्तामणि) इनका अभीष्ट था ही। उन्होंने रुढ़ि रूप में चली आती मन्त्र-दीक्षा प्रणाली का विरोध कभी नहीं किया, परन्तु स्वयं कभी इस प्रणाली से कुछ बहन-भाईयों के अतिरिक्त, साधारणतः किसी को भी यह मन्त्र जपने के लिये प्रदान नहीं किया, उसका कारण प्रणाली की अवमानना न थी। उनका जीवन, दैन्य से इतना ओत-प्रोत था। ये बड़ी हैं' इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, उनके मन में कभी विचार ही नहीं आया। अत्यन्त सहज और साधारण रूप में उपलब्ध होती रहीं, इसी कारण आयु तथा गरिमा में बहुत बड़ी होने पर भी सभी लोगों में वे सहज रूप से बोबो अथवा बहिनजी सम्बोधन से ही जानी जाती रहीं। इतनी आत्मीयता और अपनत्व से, सहज उपलब्ध, उनके प्रेमिल स्वभाव से आत्म विभोर सभी बहन भाई, गुरु सम्बन्ध होने पर भी उन्हें अपनी 'बड़ी बहन' के अतिरिक्त अलग से कुछ भी प्रदर्शित नहीं कर सके। वे हमारे लिये मात्र 'बोबो' ही न होकर हमारी सर्वस्व थीं। गुरु और शिष्य के नाते वे हमारी सद्गुरु थीं। बहन-भाई के नाते वे हमारी परम पूजनीया बहन थीं, अध्यापक और विद्यार्थी के नाते वे हमारी श्रद्धेय अध्यापिका रहीं, भाव के नाते वे हमारी सहेली थीं, सखी थीं, सहचरी थीं, मित्र थीं, वात्सल्य पूर्ण व्यवहार देतीं, हमारी मां थीं। अलग से यह कहना कठिन होगा कि वे हमारी क्या थीं ? अगर एक शब्द में उत्तर देना हो तो यही कहना होगा कि वे हमारी क्या नहीं थीं-वे हमारी सर्वस्व थीं। विश्व में जितने भी पवित्रतम तथा समादरणीय नाते सम्भावित हो सकते हैं, वे वही थीं।

भगवान शंकर के चरित्र का इन्होंने विशद गुणगान किया है, उसी संग्रह में से एक स्तुति प्रस्तुत है :-

श्रीहरि के प्रिय पार्वती-पति
शिवशंकर भोले भण्डारी।
वैष्णव जन अरु शैव जनन के,
इक समान सांचे हितकारी॥
शिव शङ्कर भोले भण्डारी।

अति उदार गुरुदेव हमारे,
आशुतोष करुणाविस्तारी ।
मो औगुन प्रभु चित्त न दीजे,
करिये कृपा निज बान विचारी ॥
शिव शङ्कर भोले भण्डारी ।
चरण-कमल दृढ़ निष्ठा दीजे,
अम्ब सहित कैलाश विहारी ।
प्रीति प्रगाढ़ श्याम चरणन महँ
दीजे छिन-छिन वर्द्धन कारी ।
शिवशङ्कर भोले भण्डारी ॥
श्रीहरि के प्रिय पार्वती पति
आशुतोष करुणा विस्तारी
शिवशङ्कर भोले भण्डारी ॥

नाम तथा वेष के लिये कोई अलग से किसी प्रकार के आवरण तथा स्वरूप के लिये भी उनका कोई दुराग्रह नहीं रहा । साधारणतः रूढ़िगत मान्यता में उनकी श्रद्धा थी । उसी के अनुसार सादगी से जीवन यापन करना, शास्त्रीय नियमों का पालन करना, भगवन्नाम तथा स्वरूप चिन्तन, मनन के लिये उनका विशेष आग्रह रहा ।

जिन महज्जनों की चित्तवृत्ति का प्रवाह सहज प्रिया-प्रियतम के श्रीचरणों की ओर निरवधि तथा सतत गतिमान है, जिनके प्राण अपने प्रेमास्पद की रूप तरंगिणी से स्पंदित होते हैं जिनका श्वास--प्रश्वास उन्हीं को समर्पित है, जिनका मन तद्रूपता को प्राप्त कर माधुर्य सिन्धु की अगाधता में सदैव डूबा रहता है, जो उसी श्यामल सुषमा से सदैव आभासित होते रहते हैं, जो सदैव उसी रस में डूबे रहते हैं, किञ्चित् बाह्य जगत में आ पुनः पुनः रस समुद्र में तैरते रहते हैं, उन सिद्ध कोटि के महानुभावों के लिये न तो वैष्णव चिह्न धारण करने की सुधि रहती है, और न कभी किसी अन्य कण्ठी मालादि का ध्यान । वे सदैव अपनी मस्ती में डूबे रहते हैं :-

लिखन्ति भुज मूलतो न खलु शङ्खचक्रादिकम्
विचित्र हरि मन्दिरं न रचयन्ति भालस्थले ।
लसत्तुलसि मालिकां दधति कण्ठपीठे न वा
गुरोर्भजन विक्रमात्क इह ते महाबुद्धयः ॥
(श्रीराधासुधानिधि-८१)

श्री गुरु के भजन रूप पराक्रमयुक्त व कोई महाबुद्धिमान (जो बुद्धि भगवच्चरणारविन्दों में रत है) पुरुषगण इस पृथ्वी पर विरले ही हैं, जो न तो अपने बाहुमूल में कभी शङ्ख चक्रादि (वैष्णव चिह्न) धारण करते हैं और न कभी ललाट-पटल पर विचित्र हरि मन्दिर (तिलक) ही रचते हैं और न उनके कण्ठ में सुहावनी तुलसी की माला ही होती है, वे सर्वदा अन्तरङ्ग रस में डूबे रहते हैं, बाह्य किसी भी लक्षणादि की उन्हें सुधि ही नहीं होती ।

वे कर्मों का, नियमों का उल्लङ्घन नहीं करते, सहज इस स्थिति में स्वत: ही उनसे ऐसा हो जाता है ।

किसी भी बाह्य प्रपञ्च अथवा प्रतिष्ठा से वे सदा सावधान करती रहती थीं । वेष के विषय में उनका अभिमत था कि किसी भी प्रकार का वेष बनाकर लोगों की दृष्टि में आने से बचने के लिये एक सहज स्वरूप में रहते हुए प्रिया-प्रियतम की प्राप्ति में सहायक सभी नियमों तथा मर्यादाओं का पालन करना चाहिये ।

उनकी परम्परा तथा प्रणाली नीचे उद्धृत की जा रही है :-

गुरु परम्परा तथा प्रणाली :-

❑❑❑

आठ

काव्य तथा कृतियां

वि भावानुभाव संचारी संयोगाद् रस निष्पत्ति' भरत मुनि ने भाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति का सूत्र दिया है। यह सब ठीक होने पर भी हमें देखना होगा कि रस है क्या ? श्रुतियों ने 'रसो वै स:' कहकर स्पष्ट कर दिया- अर्थात् रस का मूर्त रूप श्री कृष्ण ही हैं। इधर श्री रूप गोस्वामी पाद ने 'भक्ति रसामृत सिन्धु' में 'विभाव, अनुभाव, सात्विक एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा श्रवण-मनन के सहयोग से स्थायी भाव 'श्री कृष्ण रति' का भक्त जब अपने हृदय में आस्वादन करते हैं, वही भक्ति, रस कहलाती है,' कहकर काव्य की भक्ति-पूर्ण व्याख्या की है। रस की अखण्ड अनवरत धारा का स्रोत (आलम्बन) भगवान श्री कृष्ण के होने के कारण रस की निष्पत्ति पूर्णत: उन्हीं में सम्भव है, इसलिये काव्य का नैसर्गिक प्रवाह यदि अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्ण की ओर है तो उसे ही सत्साहित्य कहना होगा।

श्री ऊषा बहन जी के काव्य का आलम्बन श्री राधा-कृष्ण ही रहे हैं, उनके काव्य को मात्र काव्य न कहकर उनके हृदय सरोवर में समय-समय पर उठती ऊर्मियां, उनकी अनुभूतियाँ ही लिपिबद्ध हो हमारे लिये प्रकाशित हुई हैं।

हाँ ! तो काव्य में इनकी सहज रुचि थी। यह गुण इनमें नैसर्गिक था। पूर्वजों से पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुआ था। श्री बनवारी लाल शोला इन्हीं के पूर्वजों में से थे। इनकी दादी कविता लिखती थीं। इनके पिता ने 'हातिल कैरानवी' नाम से उर्दू में लिखा। 'बारिशें' नाम का वह संग्रह देव नागरी लिपि में प्रकाशित भी हुआ। पिता की काव्य प्रतिभा ने प्रोत्साहन अवश्य दिया। उनकी पुत्री तथा साथ-साथ एक मित्र के नाते अनेक काव्य सम्मेलनों में, उर्दू के मुशायरों में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ बोलने का अवसर भी आया। घर में समायोजन प्राय: होते ही रहते थे अत: अनेक शायरों से परिचय भी हुआ। अपनी छोटी सी आयु में इन्होंने लिखना प्रारम्भ कर दिया था। अपनी अभिन्न हृदया सहेली श्री सुशीला जी (जिनके विषय में हम आगे वर्णन करेंगे) से एक बार बातों ही बातों में

इन्होंने कहा था कि सबसे पहले कविता इन्होंने जब ये पांचवीं कक्षा में पढ़ती थीं तो लिखी थी। उसके पश्चात् तो जैसे काव्य का स्रोत ही फूट पड़ा हो। इन्होंने राष्ट्रीय, ऐतिहासिक विषयों पर तत्कालीन परिस्थितियों वश लिखा अन्यथा इनके जीवन की धारा आध्यात्मिकता को लेकर ही विकसित हुई, प्रत्युत कहना होगा कि वही इनकी मूल धारा थी।

सामाजिक तथा राष्ट्रीय भावनाओं के साथ-साथ अध्यापन काल में व्याकरण, भूगोल तथा गणित की पुस्तकें भी लिखनी पड़ीं। इनकी कविताओं का एक विशाल हस्त-लिखित संग्रह हमारे पास सुरक्षित है, उसे हम यथा सम्भव प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे। इनके काव्य में भाव- गाम्भीर्य, भाषा लालित्य, अभिव्यञ्जना तथा अनुभूति के गाम्भीर्य के साथ मौलिकता तथा एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। जहाँ समर्पण के साथ-साथ वैराग्य की नींव, उज्ज्वल रस प्रवाह में तन्मयता के साथ-साथ केलि तथा मुग्धता हाथ में हाथ लिये सहेली के रूप में ही प्रकट हुई हैं- मुग्धता के साथ-साथ केलि का अपना ही अस्तित्व बना रहता है। रसका अन्तरङ्गतम विहार पुनः गतिमान हो एक मुग्धता की झलक अवश्य प्रकट करता है, परन्तु इति श्री वहीं नहीं होती- पुनः केलि आ रसवर्द्धन हेतु सजग कर देती है। दोनों का अद्भुत सङ्गम बहन जी की गरिमा तथा अधिकार का द्योतक है। वास्तव में इनकी अनुभूति ही मन के द्रवण के रूप में लेखनीबद्ध हुई है। इन्होंने अनेक स्तोत्रों, पदों, श्लोकों की बड़ी ही भावपूर्ण, मधुर रस सम्पन्न व्याख्याऐं की हैं, जो हमारे पास संग्रहीत हैं। इनका जीवन बहुत ही सादा था। प्रसिद्धि के प्रति ये सर्वथा उदासीन रहीं अतः वे सब छपवाने का उत्साह ही नहीं हो सका।

शरीर से दुबली-पतली, कद में छोटी परन्तु जहां तक गरिमा और विवेक का प्रश्न है वहाँ इनकी समता ही नहीं। अपने समान वालों में तो इनका काव्य श्रेष्ठ होता ही, बड़े-बड़े साहित्यकारों में भी वे लोकप्रिय होती चली गईं। कभी कांग्रेस मंच से अनाज मंडी में धूम मचा देतीं और कभी Study circle के हाल में लोग उत्साह में भरे इनके करिश्मे को देखने के लिये उमड़ पड़ते। जब कभी ये कविता बोलतीं उसमें इतना आत्म-विश्वास और सहज भाव होता कि जन-जन में लोकप्रिय हो गईं। एक अनजाने आकर्षण में बंधे लोग चले आया करते, जहाँ भी पता लगता श्री ऊषा बहन जी बोलेंगी, वहीं पहुंच जाते। श्रोताओं की प्रायः मांग होती कि वे अपनी कविताऐं पुनः पुनः पढ़ें। इनके विचारों को सुनने के

लिये लोग व्यग्र रहा करते । काव्य प्रवाह में इतना सहज भाव, इतना आकर्षण इनकी असाधारण प्रतिभा का ही द्योतक था ।

पूजनीया बहन जी की बहुज्ञता, अनेकानेक ग्रन्थों का अध्ययन सभी सम्प्रदायों के लगभग प्रत्येक रस ग्रन्थ का अध्ययन/मनन उनकी सुस्पष्ट विचारधारा, अति सारयुक्त वाणी, नपे-तुले सुस्पष्ट उत्तर, विवेक तथा शास्त्र सम्मत मत, सभी कुछ उनकी शोभा थी, उनका नैसर्गिक गुण था । यह सब एक छोटी सी देह तथा सशक्त व्यक्तित्व में निहित विशाल भंडार उनकी वाणी से झरता था, उनके नेत्रों से छलकता था तथा उनकी मुख माधुरी पूर्ण गरिमा से बरसता था । अनेक बार जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान करतीं । इनका सा विशद अध्ययन एक जीवन में असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य ही मानना होगा । अध्ययन के साथ-साथ उनमें रोपित संस्कारों का बाहुल्य उनकी पूर्व की प्रतिभा, शास्त्रों तथा पुराणों की विज्ञता जो उन्हें जन्म से ही विरासत में मिली थी, उनके पूर्व जन्म की धरोहर के रूप में उनके पास थी ।

श्री वृन्दावन चले आने के पश्चात् काव्य की स्वतः प्रवाहित सरिणी केवल ब्रज तथा वृन्दावन की चिन्मय स्थली, उसमें विक्रीड़ित गौर-श्याम सिन्धु में उठती सरस वीचियों, मधुर हिलोरों, कुंज में गतिमान रस की अजस्त्र प्रवाहिनी ब्रज तथा वृन्दावन की अनुपम माधुरी की ओर ही सिमट गई । रस-विहार-विलास में स्नात उज्ज्वल रस भूषिता बहन जी के काव्य की धारा श्याम सिन्धु में समा गई । उन्हीं की सतत सन्निधि का आस्वादन, चिंतन, मनन तथा पुनः लीला माधुरी- जहाँ देखो रस, रस, रस ही रस ।

श्री वृन्दावन आने के उपरान्त अनेक सन्तों, विद्वानों, गोस्वामी गण से समय-समय पर परिचय हुआ । इनके विशद ज्ञान तथा ग्रन्थों के अध्ययन को सुन वे लोग प्रायः कहा करते "वृन्दावन से बाहर रहने पर भी वाणी तथा रस ग्रन्थों का इतना विस्तृत अध्ययन कल्पनातीत है ।"

श्री अतुल कृष्ण गोस्वामी, श्री जगन्नाथ प्रसाद भक्तमाली जी, श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, श्री कृपासिन्धु दास बाबा जी प्रभृति महद्जनों ने इनकी विद्वत्ता की सर्वदा सराहना की ।

इसके अतिरिक्त बात लगभग २८, ३० वर्ष पुरानी है । एक बार गौड़ीय ग्रन्थों के विज्ञ श्री दीनशरण बाबा से मिलने का संयोग

अभिन्नमना पूजनीया बोबो तथा पू० सुशीला बहन जी

बना। एक सिद्धान्त को लेकर उनसे चर्चा हुई तो वे स्तब्ध रह गए। उन्होंने पूछा, "अमुक ग्रंथ आपके देखने में कहां आए।" उस समय तक गौड़ीय ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद अधिक नहीं हो पाया था। राजकीय महाविद्यालय, होडल की प्रधानाचार्य डा० मिस सन्तोष गुप्ता इनके साथ थीं, अत्यन्त विनम्रता पूर्वक इनका उत्तर 'अम्बाला में ही' जान वे देखते के देखते रह गए। उनके द्वारा पूछे गए लगभग सभी ग्रन्थों को बहन जी पहले ही सम्यक् देख चुकी थीं– यह जान उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के विद्वान श्री ललिता चरण जी गोस्वामी, इनकी विद्वत्ता, भावाभिव्यक्ति तथा श्री ठाकुर सेवा से अत्यन्त प्रभावित थे। वे सदा कहा करते "बिना पूर्वाग्रहों के पदों का निष्पक्ष भावार्थ बहन जी की ही शोभा है।"

पू० श्री आनन्द दास बाबा जी महाराज व्याकरण के अच्छे विद्वान थे। वे सदा-सदा इनकी विद्वत्ता तथा विशद अध्ययन की प्रशंसा करते।

इसके अतिरिक्त श्री विहारी दास जी वृन्दावनी, डा० अच्युत लाल जी भट्ट, श्री किशोरी रमणाचार्य, श्री गोकुलदास जी शास्त्री प्रभृति अनेक विद्वान वक्ता इनकी शैली तथा मौलिक विचारधारा से प्रभावित रहे।

श्री राधाकृष्ण साहित्य तो इन्होंने सहज देखा ही, साथ साथ भगवान राघवेन्द्र के चरणों में इनकी प्रीति थी। उनसे सम्बन्धित लगभग सारा साहित्य देखने का संयोग इन्हें मिला।

इनकी निम्न कृतियों की पाण्डुलिपियां हमारे पास सुरक्षित हैं:-

१. व्याकरण, भूगोल तथा गणित अपने अध्यापन काल में ही लिखे। पंजाब विश्वविद्यालय में मान्यता प्राप्त विद्यालयों में पढ़ाए जाते थे।

२. मुक्त पदों, जिसमें राष्ट्रीय भावना, सामाजिक प्रभाव धार्मिक, श्री ठाकुर के वर्षोत्सवों, अष्ट प्रहर सेवा तथा ब्रज-वृन्दावन रस के लगभग २५०० पदों का विशाल संग्रह।

३. गद्य में कुछ लेख

४. अध्यात्म के नाते बहन-भाइयों को लिखे लगभग २५०० पत्र, अनेक स्तोत्रों की भावात्मक व्याख्या ।

क श्री राधा-कृष्ण कृपाकटाक्ष
ख श्री यमुनाष्टकम् — श्री शङ्कराचार्य जी महाराज
ग श्री कृष्णस्य आनन्दाख्यं स्तोत्र — श्री रूप गोस्वामी
घ श्री कृष्ण लीलामृताख्यम् स्तोत्र — श्री रूप गोस्वामी
च श्री ब्रजानन्द कन्दम् स्तोत्र — श्री विट्ठलनाथ जी
छ प्रात: स्तवन — श्री मन्निम्बार्काचार्य जी
ज श्री राधिकाष्टकम् — श्री रघुनाथ दास जी
झ सखि हे ! गोकुल राजकुमारम् — श्री प्रबोधानन्द जी सरस्वती
ट ब्रजराज सुताष्टकम्
ठ श्री माधवाष्टकम्
ड श्री चरणे विधेहि
ढ गोपी गीत
ण प्रणय गीत

हम पूर्व में कह आए हैं कि पूजनीया बहन जी के लिखने का हेतु कोई प्रयत्न पूर्वक काव्य सृजन नहीं था । प्रत्युत समय-समय पर उनके हृदय सरोवर में उठती तरंगों से छलके रस कण ही उनके काव्य का रूप ले हमारे लिये प्रकाशित हुए हैं । क्योंकि यह उनमें एक नैसर्गिक प्रवाह था- अत: काव्य के विभिन्न पहलुओं से तो वे श्रेष्ठ हैं ही उनकी गरिमा भी अतुलनीय है ।

कुछ अधूरे रहे स्तोत्रों/ग्रन्थों का विवरण हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं :-

अ. श्री कृष्ण लीलामृत रसायन स्तोत्र — श्री वल्लभाचार्य जी महाराज
आ. श्री कृष्णकर्णामृत — श्री विल्बमङ्गल सूरदास जी
इ. श्री राधा सहस्त्रनाम
ई. श्री गोपाल सहस्त्रनाम
उ. उप-राधा सुधानिधि
ऊ. स्पृहा-नेत्र-श्रवण-स्पर्श तथा नासिका
ए. वृन्दावन शतक
ऐ. हंस दूत

❑❑❑

नौ

विवाह के लिये प्रस्ताव - बीमारी तथा अद्भुत अनुभूति

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनरमणीनां मण्डलमखिलं हरिर्जयति ॥ ***

कवि कर्णपूर

प्रेम का परिष्कृत स्वरूप ब्रज बीथियों में, यहाँ के हाट-बाट तथा पनघट पर बिखरा पड़ा है । उसका उच्चादर्श हैं, ब्रज की यह आभीरिका वृन्द । इनके प्रेमास्पद श्याम सुन्दर, किशोरी श्री राधा तथा गोपाङ्गनाओं का नित्य तथा शाश्वत सम्बन्ध बना है । वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को न तो जानती हैं- और न जानने की कामना ही करती हैं । अपने जन्म-जन्म के प्रियतम की चरण रज्जु से इन बालाओं का मन बंधा है । श्याम सुन्दर के चरणों की प्रीति में जिनका मन पगा है, चित्त अटका है, उन्हें श्याम सुन्दर के अतिरिक्त कुछ रुचिकर ही कैसे हो सकता है ? पूजनीया बोबो की जीवन धारा का नैसर्गिक प्रवाह श्यामा-श्याम के प्रेम रस से ओत-प्रोत रहा- फिर उन्हीं की शरणागति के अतिरिक्त सोचना ही कैसा ?

हमारी चरित्र नायक की आयु अब लगभग १५, १६ वर्ष की हो चुकी थी ।

बाल्यावस्था का भोलापन, पौगण्डावस्था के कौतूहल पूर्ण प्रश्नों के समाधान चाहता, कैशोर्य की सजगता में प्रविष्ट हो चुका था । इसके साथ-साथ जीवन की धारा किन्हीं नील-सिन्धु का प्रबल आश्रय पा, स्थिर हो गई थी । जीवन की धारा का क्रम निश्चित हो चुका था । वे श्री कृष्ण की थीं, श्री कृष्ण से ही उनका चिर-परिचय था, उन्हीं के लिये जीना चाहती थीं । श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी के प्रति न तो उनकी कहीं

*** जो वृन्दावन की रमणियों के कानों का नील-कमल, आँखों का अञ्जन, वक्ष-स्थल के लिये इन्द्रनील मणि का बना हुआ हार एवं समस्त आभूषण रूप हैं उन भगवान श्री कृष्ण की बलिहारी है ।

आसक्ति ही थी और न कहीं मन का द्रवण । उस अतुल माधुर्य को पा करुणावश उसी का उन्होंने आजीवन वितरण किया ।

विवाह के विषय में कई बार बात चलने लगी । बहुत से लोगों से सम्पर्क होने के नाते, रिश्तों के सुझाव आने लगे । पिता जी से अनेक लोग इस विषय में परामर्श करने लगे । घर के लोगों ने आग्रह किया, परिवार वालों के सुझाव आए, रिश्तेदारों तथा अन्य स्वजनों ने आग्रह किया। नाना जी ने तो यहाँ तक कहा, कि, "इसके विवाह का पूरा खर्चा मैं देने को तैयार हूँ ।" वे देना चाहते थे, परन्तु अन्दर सर्वथा जानते थे इनके स्वभाव को, इनकी धारा को । इनके व्यक्तित्व से वे परिचित थे ही, प्रभावित भी थे। इतनी ख्याति प्राप्त कर लेने पर भी इतना सादा जीवन, असाधारण व्यक्तित्व और नैष्ठिक प्रवृत्ति, किसी साधारण व्यक्ति की नहीं हो सकती, फिर भी उन्होंने सुझाव रखा । इधर तो कोई प्रतिक्रिया होती ही कैसे ? ये तो अपने 'सांवरिया रंग राची' श्याम सुन्दर की प्रीति के रंग में रंगी थी, उन्हीं की सुधि में पली थीं, उन्हीं के निज परिकर में से किसी विशेष कार्यवश आई थीं। उसी उद्देश्य पूर्ति हेतु जीवन धारण किये थीं । वे प्रायः एक पंक्ति दोहराया करतीं 'सिंह वधुहिं जिमि ससक सियारा' अर्थात् उन नरकेशरि की प्रिया की ओर आँख उठा कर कौन देख सकता है ? उसे ठौर सदा-सदा उन श्री हरि के चरणों में ही है- वे वहीं की थीं । अपनी बहुत छोटी वय में एक जगह कह रही हैं :-

जन्म भर से युग युगों से चल रही है रार ये ही ।
प्रेम का उत्कृष्ट साधन, साधना का सार ये ही ।
जीत है संघर्ष में ही, जान ले इतना अरे तू,
रार से ही बढ़ सकेगा नित निरन्तर प्यार नाविक ।

जन्म-जन्मान्तर और युग-युगों के प्यार से सिक्त-सिंचित उसी के बल भरोसे निश्चिन्त रहीं ।

सगे-सम्बन्धियों में भी बात चली । पिता जी इनके सुदृढ़ मत से, परिपक्व विचार-धारा से, परिपुष्ट भक्ति भावना से सर्वथा परिचित थे- अथवा श्री कृष्ण, अपनी अनन्या सखी की, सार सम्हार कर, उनमें इस भाव की पुष्टि करते रहे थे । पिताजी सदा कहते, "मेरी मुन्नो इतनी भोली है, यह तो विवाह का अर्थ भी नहीं जानती । इसे किसी अन्य के साथ भेज कर मैं इसके साथ अन्याय नहीं करूँगा, और हाँ यदि यह चाहेगी तो मैं रोकूँगा नहीं ।" इधर मुन्नो पर न तो इस सबकी कोई प्रतिक्रिया ही हुई और न उसे

कोई चिंता । अनेक सम्बन्धियों तथा स्वजनों से सुन एक बार पिता ने अपनी भोली भाली, परन्तु सर्वथा सजग, सुदृढ़मना पुत्री से कहा, "मुन्नो जो लोग विवाह के लिये प्रस्ताव रखते हैं मैं सर्वथा उन्हें मना कर देता हूँ । तेरे मन में यदि विवाह के लिये यत्किञ्चित् भी स्थान हो तो हम उसी प्रकार की व्यवस्था करें । सुन्दर से सुन्दर लड़का मिल सकता है ।" उन्हीं दिनों इन्हीं की चाची के एक भाई के सौन्दर्य की चर्चा परिवार वालों में चलती थी । वे सुन्दर तो अवश्य थे, पुरुषों में इस प्रकार का सौन्दर्य कम ही देखने में आता है । एक दिन वे सामने से जा रहे थे । इन्होंने देखा, कैसी विडम्बना है? अवश्य ही उस अनुपम सौन्दर्य से अनभिज्ञ अपरिचित कोई इस सौन्दर्य का प्रशंसक हो सकता है– अन्यथा जिस चिर सुन्दर के किसी कणांश से यह जगत सौन्दर्यमय हो रहा है– उसके सामने जागतिक सुन्दरता का क्या अस्तित्व ? उन्होंने स्वयं कहा था– उन्हें देख इनका मन अन्यमनस्क हो सांसारिक प्रशंसकों के मापदण्ड से विक्षुब्ध हो गया । क्यों न हो ? जिसका सम्बन्ध माधुर्य लावण्य परिपूर्ण अगाध सिन्धु से हो चुका हो वह उस अंश का उसी अंशी की सत्ता होने के कारण आदर तो कर सकता है परन्तु अंश ही सर्वतोभावेन स्वीकार्य कैसे ? उनका सम्बन्ध तो नित्य और शाश्वत सौन्दर्य से ही था ।

एक बार आईने के सामने खड़ी यह अपने केश संवार रही थीं, इनके बाल स्वभाव को देख पिता देखते के देखते खड़े रह गए । इन्हें कुछ भी पता न चला । इन्हें सजग करते हुए थोड़ी देर बाद बोले, "सब लोग विवाह करने का मुझसे आग्रह करते हैं, परन्तु इसका भोलापन देख, विस्मय विमुग्ध तथा कौतूहलपूर्ण स्वभाव को देख, भला कैसे उनकी बात मान लूं । विवाह के लिये, सांसारिक कृत्यों के लिये तो यह बनी नहीं। मेरी बिटिया ज्ञान में गार्गी तथा भक्ति में मीरा होगी ।"

इनके दृढ़ निश्चय के आगे किसी को कुछ भी कहने का साहस न हुआ । बातें चलीं– धीरे-धीरे सभी लोग समझ गए । सभी धीरे-धीरे समय के प्रवाह के साथ विलीन हो गया । अब यह चर्चा कभी-कभी की रह गई । कुछ समय बीतते-बीतते सर्वदा के लिये विलीन हो गई । उस व्यक्तित्व के, उस दृढ़ संकल्प के, उस अडिग सुदृढ़ता के आगे उस अखण्ड आनन्द स्वरूपा को प्रणाम कर सभी शान्त प्रायः हो गए ।

अस्वस्थता

इधर कुछ दिन बाद इनका स्वास्थ्य बिगड़ा । छोटी-मोटी

बीमारी को तो इन्होंने कभी बीमारी माना ही नहीं । उसमें तो पूर्व की सी स्फूर्ति और सजगता से कार्य करती रहतीं । ज्वर का वह रूप इनके लगातार परिश्रम करते रहने से म्यादी बुखार में बदल गया । वह ज्वर अभी ठीक होने न पाया था कि रिलैप्स हो गया । इस बार का ज्वर इक्कीस दिन का था। अन्न तो अब डाक्टर की सलाह से छोड़ ही चुकी थीं । धीरे-धीरे कमज़ोरी बढ़ती गई । उसमें भी जैसे-तैसे अपने कृत्य बड़ी ही सजगता से करती रहीं। लेटी-लेटी अपने प्राणों के प्राण, जीवन सर्वस्व की सुधि में खोई रहतीं । अब आराम भी करना पड़ता । ठीक होते-होते इनके परिश्रम और व्यस्तता वश एक बार पुनः रिलैप्स हो गया । इस बार का ज्वर नियम से नब्बे दिन का था । कमज़ोरी होती ही जा रही थी । शरीर दुर्बल हो गया और यह शय्यासीन हो गईं । परन्तु एक निष्ठा, एक आशा और एक विश्वास इन्हें सर्वदा बना रहा- कि प्रभु जी का मङ्गलमय विधान सर्वथा मङ्गलमय होता है । सामर्थ्यानुसार वे अपने में मग्न रहतीं । प्रसाद के प्रति इनकी अटूट श्रद्धा देख कर माता-पिता स्वजन स्तब्ध हो जाया करते थे । जो भोग श्री ठाकुर जी को समर्पित किया जाता उसको प्रसाद रूप में यह अवश्य ग्रहण करतीं। सदा कहा करतीं ''प्रसाद सभी प्रकार से मङ्गल करने वाला है- यदि केवल इसी भावना से ग्रहण किया जाय, जिह्वालोलुपता से नहीं ।'' यही भावना इनकी अन्त समय तक बनी रही । अपने ज़रा से कष्ट से अच्छे-अच्छे साधक, अनेक महद्जन अपनी स्वास्थ्य रक्षा हेतु प्रसाद तक की अवमानना कर देते हैं, परन्तु बहन जी का जीवन, उनकी भावना इतनी अधिक परिपक्व थी कि वे भयंकर बीमारी में भी प्रसाद की अवहेलना करना तो दूर- उसे ग्रहण कर एक आदर्श स्थापित करती रहीं । उनकी इस भावना का पोषण उनके सेव्य स्वरूप युगल सरकार सदा-सदा करते रहे- उनके मन की रखते रहे- जिसका वर्णन हम आगे यथा-स्थान, यथा-प्रसङ्ग करते रहेंगे ।

हाँ ! तो, इस बार पुनः रिलैप्स हो गया । अब तो धैर्य की सीमा कहां रहती ? कष्ट की सीमा न रही, दुर्बलता बढ़ती चली गई । इस महान कष्ट के विषय में उस व्यक्ति से पूछे कोई, जिसने महीनों से अन्न ग्रहण न किया हो । उसके माता-पिता से पूछे जो स्वयं जैसे-तैसे आहार पा अपने पोषण हेतु उदर पूर्ति कर रहे हों- परन्तु इनकी ओर देख कर कैसे कह दें कि इनका आत्म-बल कम हुआ होगा । वे कृश होती गईं शरीर से परन्तु उनका मुख दीप्तिमान होता रहा । शरीर में अशक्तता अवश्य आई, परन्तु मुख छबि और सप्रभ होती गई । श्याम सुन्दर के प्रेम में पगा इनका हृदय मग्न रहा ।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई।
घटहिं तेज बल मुख छबि सोई ॥　　　　रा. च. मा

यह मुख पर छिटकने वाली आभा- आत्मानन्द में मग्न हो उसी रस से पुष्ट परिपुष्ट होने का परिणाम थी। उन्हें जिस आहार की आवश्यकता थी- वह उनकी आत्मा को मिल रहा था- जिस मधुर पेय की आवश्यकता थी वह श्याम-सुन्दर की नयन-प्यालियों से, उनकी मुस्कान मधुरिमा से निसृत था, उनकी मुख छबि का पान कर वे उसे प्राप्त कर रही थीं अतः देह कृश होने पर भी आत्म- बल, सशक्त और पुष्ट होकर, उनकी रस मग्नता की बात कहता रहा।

हां तो ये पुनः बीमार हो गईं। हिलना-डुलना भी कठिन हो गया। शरीर की एक-एक अस्थि गिन लो, धमनियों में प्रवाहित रक्त की गति देख लो। चाह कर भी अपना हाथ हिला न सकतीं थीं। करवट लेने के लिये भी किसी की सहायता की आवश्यकता होती थी। माता और पिता अपने मतानुसार सदा भगवद्विश्वास की बात कहा करते और यह चुपचाप एक ही वृत्ति में तन्मय, एक ही स्थिति में मग्न हुई लेटी रहतीं। वे सदा कहा करतीं 'यह बीमारी, यह कष्ट मेरे जीवन की एक प्रगाढ़ स्मृति और आध्यात्मिक उन्नति लेकर आए हैं। यह काल सर्वथा मेरे जीवन का स्वर्णिम काल था। मेरे जीवन की अनुभूति थी, मेरे जीवन का आश्रय बना, एक सबल सम्बल बना, एक उस ठहराव में, उस स्थिति में ले गया जिसने मुझे सम्पूर्ण जीवन बिताने के लिये सम्पुष्ट आहार दे दिया।' समय परिवर्तनशील है। संसार में सुख और दुःख परिधि के छोर के समान चलते रहते हैं। इतनी लम्बी बीमारी में इस छः महीने के ज्वर के कारण शरीर दुर्बल अवश्य हुआ परन्तु जिस आत्म सुख की प्राप्ति हुई वह अवर्णनीय ही है, धीरे-धीरे वे स्वस्थ होने लगीं।

स्वस्थ होने के कुछ समय बाद उन्होंने स्वयं कहा था, "इस अस्वस्थता के दिनों में जिस आत्मानन्द की अनुभूति हुई है- वह कहने की बात नहीं। बीमारी के उन दिनों में भगवान का दैदीप्यमान सुदर्शन चक्र सर्वदा मेरे चारों ओर घूमता रहता था, एक क्षण भी ऐसा नहीं जब मेरी दृष्टि से वह ओझल हुआ हो। वह मुझे आश्वासन देता था, मेरे चिर संरक्षक को मेरी स्मृति बनी है, इस बात का। उन्हीं श्री हरि की इच्छा से अनेक देवी-देवताओं के दर्शन हुए। इन्हीं नेत्रों से आकाश में स्थित

सरस्वती देवी तथा भक्ति देवी के दर्शन किये । तुलसी महारानी के दर्शन हुए, वीणा लिये श्री नारद जी के दर्शन हुए, ऋषि अङ्गिरा, श्री वेद व्यास भगवान, भोलेनाथ, श्री मन्नारायण तथा दोनों हाथ बांधे अभिवादन की मुद्रा में अनेक ऋषियों और महर्षियों ने, महज्नों ने दर्शन देकर कृतार्थ किया। यह स्थिति कभी-कभी की नहीं प्रत्युत निरन्तर बनी रहती थी- उसी के सम्बल से वह बीमारी सहज बीत गई ।''

श्री प्रिया जी के दर्शन तथा श्याम सुन्दर के चरणों में अनुराग का वरदान

हां ! तो बहन जी बीमार रहीं । इन्हीं दिनों उन्हें अनेक अनुभव हुए । रुग्णावस्था में भी अपने प्राण सर्वस्व की प्रबल कामना / आवेग वश इस भौतिक दृष्टिगोचर शरीर को वहीं अम्बाला छावनी में पड़ा छोड, आप श्री यमुना तट पर प्रिया जी की सन्निधि में आ विराजीं उनका अभिवादन कर, उनकी कृपा और उनका सम्बल पूर्ण आश्वासन पा परम धन्या हो गईं । उस प्रसङ्ग को यथावत् उद्धृत कर, उन पर बरसी अपार कृपा-ममता, उनके आत्म-बल, उनकी असाधारण स्थिति, उनका दिव्य स्वरूप, प्रेम स्वरूपा प्रिया जी की अकारण स्नेह ममता से पाठकों को अवश्य अवगत कराना चाहूंगा ।

हां ! तो पू. बहन जी कैशोर्य में पदार्पण कर चुकी थीं । आयु लगभग १५, १६ वर्ष की रही होगी । बीमारी के कारण शरीर कृश अवश्य हो गया था । इतनी अधिक दुर्बल हो गईं थीं कि करवट भी स्वयं न ले सकती थीं । अपनी उसी अर्ध तन्द्रावस्थासी में, भाव निमग्नावस्था में लेटी रहतीं । शरीर के सभी आवश्यक धर्म निभा ही रही थीं । इस सब दुर्बलता के साथ मन पूर्णतः स्वस्थ था तथा आत्मबल पूर्णतः सशक्त और स्फूर्त था । रोग का प्रभाव केवल पञ्च भौतिक शरीर पर ही हो सकता था । मन का सम्बन्ध जिस मधुर लीलानन्द पेय से था वह उन्हें सहज, अनायास और स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो रहा था ।

उन्हीं दिनों इन्होंने देखा-इनका यह रुग्ण तन तो वहीं अम्बाला में पड़ा रहा और यह अपने दिव्य स्वरूप से, नित्य सिद्ध देह से, श्री कालिन्दी तटवर्ती वर्तमान गोविन्द घाट पर एक सघन तथा विशाल वृक्ष के नीचे चली आईं । *श्री ठाकुर को सम्बोधन कर वे स्वयं लिख रही है । ''मुझे आज भी प्रत्यक्ष की भांति स्मरण है वह दृश्य, उनका हास भरा । चन्द्रानन, युगल विशाल नयनों से झरती हुई ममता-करुणा और अपनत्व की*

नयनों में प्रतीक्षा हिय में उमगा अनुराग, समस्त रागानुराग–मयी भावनाएँ श्यामा श्याम के श्री चरणों में समर्पित कर विरक्ति के लिये आतुरमना, सभी रंगीन वस्त्र आभूषणों को छोड़ने के संकल्प सहित

शत-शत रश्मियाँ। हां ! यह शरीर तो यहीं पड़ा था रोगी और कृश, पर जाने किस प्रबल प्रेरणा से सूक्ष्म शरीर (दिव्य) से वहां पहुंच गई थी। स्वामिनी शायद भूल गई हैं वह दिन। तुम ज़रा उन्हें शीघ्र ही एक बार स्मरण करा दो, अपने वचन की लाज बचा लें।'' कुछ ही पलों में किशोरी श्री राधा की पालकी वहीं पास आ कर उतरी। उस पालकी को कौन लाया, यह सब यह देख न सकीं। स्वामिनी श्री श्री राधा जी उस पालकी से बाहर आईं और आकर इन्हें अपने हृदय से लगा लिया। वह संस्पर्श, वह दिव्य प्रेमोन्माद, वह अगाध रस प्रवाह, वह माधुर्य की अजस्र धारा- ओह ! सभी ने एक साथ रस माधुरी में सराबोर कर दिया। इन्हें सजग करती हुईं प्रिया जी ने पूछा, 'अब क्या चाहती हो ?' चाहने को अब और क्या शेष रह गया था। वह उस अखण्ड रस धारा के अजस्र स्रोत श्याम सुन्दर में अनुरक्ति की रसीली याचना कर मौन हो गईं। प्रिया जी ने इनके शीश के पृष्ठ भाग पर लाड़-प्यार से अपने कर कमल द्वारा रस उंड़ेलते हुए कहा, 'अच्छा ! होगी, होगी।' बस फिर क्या था ? वह रसीला उन्माद छा गया, पुलक और आनन्दाश्रुओं की झड़ी लग गई- वे तन्मय हो गईं। प्रिया जी के लाड़ प्यार भरे उसी आश्वासन को स्मरण कर के प्रायः गद्गद् हो उठतीं। उनके वर्ण तथा कान्ति का वर्णन करती प्रफुल्लित हो उठतीं। उनका सिन्दूरी लहंगा, हल्की आसमानी ओढ़नी, गुलाबी कंचुकी जिसकी बांहों पर ज़री का काम है- उसे स्मरण कर विशेष भाव में निमग्न हो जातीं।

अब क्रमशः स्वास्थ्य सुधरने लगा। बीमारी शनैः-शनैः दूर होती चली गई। अनुभूति में एक नए आश्वासन ने कुछ जादू सा कर दिया। एक नया उत्साह स्फूर्त होने लगा। बहन जी पूर्णतः स्वस्थ हो चुकी थीं। आहार भी ठीक से करने लगीं थीं। शीघ्र स्वस्थ हो गईं। मन्दिर में आना-जाना सहज हो गया। इधर सनातन धर्म सभा वालों को एक कन्या विद्यालय खोलने की आवश्यकता लगी। बहन जी पर उन्हें विश्वास था। इनसे आग्रह किया तथा यह मान गईं।

इन आंखिन्ह को फल युगल रूप ।
रस रासेश्वरी रसिक भूप ॥

यमुना तट फूलीं विटप बेलि ।
राधामोहन भुज कण्ठ बेलि ।
निज संग लिये सखियां नवेलि ।
हिलि मिलि दोउ जन करत केलि ।

रस रंग भरी बतियां अनूप ।
इन आंखिन्ह को फल युगल रूप ॥

रस केलि कलित रस झर अभंग ।
नव नव विलास नव नव उमंग ।
रस अरस परस उपजत अनंग ।
विहरत बहु भांती करत रंग ।

नित विमल चांदनी, अमल धूप ।
इन आंखिन्ह को फल युगल रूप ॥

३०-७-६८

सखी ! मेरे तन मन को विश्राम ।
छबीली राधा, सुन्दर श्याम ॥

कबहुंक मोद भरे दोउ गावत,
कबहुंक नृत्य निरत छवि पावत,
कबहुंक विटप तरे बिरमावत,
कबहुंक नवल केलि मन भावत,
रसीले कौतुक ललित ललाम ।
सखी ! मेरे तन मन को विश्राम ॥

कबहुंक हास भरे बतरावत,
कबहुंक अरस परस सचुपावत,
कबहुंक उरझे पट सुरझावत,
कबहुंक रस संकेत जनावत,
रंगीले बंधे मनोभव दाम ।
छबीली राधा सुन्दर श्याम ॥
सखी ! मेरे तन मन को विश्राम

२९-९-६८

प्रथम भाग

तृतीय अध्याय

पृष्ठ ६७ से ९७ तक

सखियन संग करहिं रसिक
विविध हास परिहास ।
उर उमगत अनुराग रस
नयननि वीचि विलास ॥

अद्भुत तान तरंग सों,
करत मनोभव गान ।
तब पन छूटे ही बने
बिसरि जात कुल कान ॥

दस || अध्यापन- पूर्व की स्मृति

तावत्कर्माणि कुर्वीतन निर्विद्येत यावता ।
मत्कथा श्रवणादौवाश्रद्धा यावन्न जायते ॥***

(श्रीमद्भा० ११/२०/९)

भक्ति तथा मुक्ति का मुख्य कारण कर्म ही है । कर्म दो प्रकार से माना गया । एक श्री कृष्ण की प्राप्ति में सहायक, उनकी कथा लीला में रुचि निष्काम कर्म से तथा स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति हेतु सकाम कर्म का विधान है । निष्काम कर्म से, भक्त अपने इष्ट / प्रेमास्पद को रिझाते हैं, उनके प्रति क्रमशः श्रद्धा, रति तथा भक्ति प्राप्त कर लेते हैं । आचार्यों और महानुभावों ने भक्ति में भी दो विभिन्न मार्गों का आश्रय ले, त्याग के स्थान पर ग्रहण करने को ही प्रधानता दी है । त्याग का सतत स्मरण तथा हठपूर्वक प्रतिपालन, सम्भव है हमारी वृत्तियों को समय मिलने पर अधिक वेग से उभार दे, परन्तु जब हम त्याग के स्थान पर ग्रहण करने की प्रवृत्ति अपना लेते हैं तो उसे प्रिया-प्रियतम के चरणों में सम्पूर्ण रूप से अर्पित कर, इतर तथा अतिरिक्त समय के अवकाश से स्वतः निवृत्त हो जाते हैं- वहाँ हमें छोड़ने का प्रयास नहीं करना पड़ता, अपितु अपनी वृत्ति को श्यामा-श्याम के चरणों में पूर्णतः अनुरक्त करना होता है । यह अनुराग निश्चित ही वैराग्य की भित्ति पर टिकता है- अतः इस वैराग्य के लिये हमें प्रयास नहीं करना पड़ता- जब तक वैराग्य का यह स्वरूप स्वतः प्रकट नहीं हो जाता तब तक कर्मों का प्रतिपालन करना अनिवार्य ही होता है ।

पूजनीया बहन जी को विद्यालय खोलने का प्रस्ताव मिल ही चुका था । इनके पिता जी बड़े ही स्वतंत्र विचारों के थे । बीमा कम्पनी के किसी भी अन्यथा कार्य का समर्थन वे नहीं कर सके, जो उनके

*** वर्णाश्रम विहित कर्मों को तब तक करते रहना चाहिये जब तक उनके प्रति पूर्ण रूप से वैराग्य न हो जाय अथवा भगवान् की कथा के श्रवण में जब तक पूर्ण रूप से दृढ़ भक्ति न हो जाय । तात्पर्य यह कि, वर्णाश्रम में विहित कर्मों के करने के दो ही हेतु हैं या तो उनके द्वारा वैराग्य उत्पन्न होकर ज्ञान हो और ज्ञान के द्वारा मुक्ति अथवा भगवान् के कथा कीर्तन में दृढ़ श्रद्धा द्वारा रति हो जाय और रति से भक्ति की प्राप्ति हो ।

सिद्धान्तों से मेल न खाता हो। उनकी यह प्रवृत्ति सदा-सर्वदा उनकी सफलताओं में आड़े आती रही- अतः यह नौकरी छोड़ देनी पड़ी।

हम पूर्व में कह आए हैं कि बहन जी ने दसवीं परीक्षा पास कर ली थी। अनेक भाषाओं पर इनका अधिकार था। इनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। अम्बाला छावनी के सभी सम्भ्रान्त लोग इनसे परिचित थे। इनके आत्म विश्वास और योग्यता को देख सनातन धर्म सभा वालों ने विद्यालय प्रारम्भ करने के लिये पुनः आग्रह किया। इन्होंने स्वीकार कर लिया। उद्घाटन में वृन्दावन के सुप्रसिद्ध सन्त श्री गंगेश्वरानन्द जी महाराज को आमंत्रित किया गया। उन्हीं दिनों पू० श्री महाराज जी से बहन जी का परिचय हुआ। सन् १९४२ में उन्होंने सनातन धर्म कन्या विद्यालय की नींव रखी। कुछ ही दिनों में प्रवेश प्रारम्भ हो गया। बहन जी के मृदुल स्वभाव और सर्वाङ्गीण प्रतिभा वश अनेक विद्यार्थियों का, उनके माता-पिता का सहज आकर्षण हो गया तथा सुचारू रूप से विद्यालय चलने लगा। लगभग चार वर्ष तक यह कार्यरत रहीं। साथ-साथ इनका अपना अध्ययन भी चलता रहा। सन् १९४६ में इन्होंने बी. ए. की परीक्षा दी। इनका अध्ययन बहुत ही विशद था। कोर्स की पुस्तकों के अतिरिक्त भी अनेकों ग्रन्थ समय-समय पर बड़ी ही रुचि तथा जिज्ञासा पूर्वक पढ़ती रहतीं। बी. ए. का परीक्षा परिणाम घोषित हुआ तो अंग्रेजी में मात्र ४४/१५० नम्बर होने के कारण पास नहीं किया गया, किसी भी व्यक्ति को ऐसा विश्वास नहीं हो सका। विश्वविद्यालय से पता लगवाया गया। नम्बर ९४ थे परन्तु भूल से ४४ लिखे गए। सभी ने आवश्यक कार्यवाही करने का आग्रह किया। इनके पिता तुरन्त तैयार हो गए। जिस लिपिक से उतारने में भूल हुई थी, उसने आकर अपनी नौकरी चले जाने तथा परिवार की आर्थिक कठिनाई की बात इनसे कही और कार्यवाही न करने की प्रार्थना की। इनका करुणामय हृदय पसीज गया तथा पुनः परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुईं।

अपने विद्यार्थियों में, सहयोगी अध्यापकों में, आस-पास के मोहल्ले वालों में, वहाँ के काव्य प्रेमियों में, स्वतंत्र भारत के पोषक नेताओं में, कांग्रेस कार्यकर्ताओं में, सभी विद्वत् समाज में आध्यात्मिक श्रद्धावानों में, सामाजिक सेवकों में अर्थात् सभी में वे इतनी लोकप्रिय हो गईं कि इनके पास प्रायः समूह जुटा ही रहता। जहाँ देखो इन्हीं की ख्याति और प्रशस्ति का गान होता रहता।

कहीं कोई प्रवक्ता न आया हो तो सनातन धर्म सभा वाले बोलने के लिये इनसे आग्रह करते, अपनों से बड़ों के प्रति जो एक शास्त्रीय मर्यादा के प्रतिबन्ध बने हैं, इनका जीवन पूर्णतः उन्हीं के अनुकूल ढला हुआ था। उनको समुचित सम्मान देतीं। बिना किसी पूर्व तैयारी के किसी भी विषय पर किसी भी समय बोल सकती थीं। इनके इतने सटीक और प्रभावशाली प्रवचन होते कि सुनते ही बनता था। कवि सम्मेलनों में गरजती आवाज़, सामाजिक उत्सवों में सुव्यवस्थित ढंग, सभा के जलसों और उत्सवों में सारगर्भित प्रवचन, राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत प्रवचन, प्रत्येक समय, प्रत्येक अवसर पर मौजूद रहतीं। सामने आते ही सभी समस्याओं का सहज निदान कर देतीं।

एक बार एक विचित्र घटना घटी। सनातन धर्म मंन्दिर तथा विद्यालय का प्राङ्गण एक ही था। ऐसा होने से इनकी ज़िम्मेदारी अधिक बढ़ जाती। विद्यालय के आयोजन भी होते साथ-साथ सभा के आयोजन भी। दोनों ही समय इनका होना अनिवार्य रहता। एक बार एक धार्मिक आयोजन चल रहा था। बड़े-बड़े सन्त और महात्मा आमंत्रित थे। प्रवचन के समय तक अतिथि शङ्कराचार्य जी महाराज पहुँच न सके। उनके प्रवचन सुनने को उमड़ी भीड़ अस्त-व्यस्त तथा उतावली होने लगी। सभा वालों ने अपनी स्नेह पात्री मुन्नो से निवेदन किया। अपने उस छोटे कद पर, गम्भीर व्यक्तित्व सहित जब वे मंच पर जा कर खड़ी हुईं तो सभी वातावरण शान्त हो गया। इन्होंने बोलना प्रारम्भ किया। उस गम्भीर विषय पर इतना सारगर्भित प्रवचन जगह-जगह एक आवेश में उपनिषदों तथा पुराणों के श्लोकों का उद्धरण, ओज भरी वाणी और धारा प्रवाह इनके मुख से निसृत उन विचारों को सुन सभी सुविज्ञ पंडित, सभा के भावुक सदस्य तथा श्रोतागण मन्त्र मुग्ध हो गए।

भाषण समाप्त हुआ- लोगों की परस्पर चर्चा का विषय बन गया इनका प्रवचन। वहीं एक बड़े ही सुयोग्य विद्वान पंडित लब्बू राम जी विद्यालय में रहते थे। उन्होंने विस्मित होकर इनसे पूछा, "मुन्नो ! जिन उपनिषदों और पुराणों के श्लोकों का उद्धरण देकर इतनी सारगर्भित बातें तुमने कहीं हैं, वह सब तुमने पहले पढ़े हैं क्या ? अन्यथा यह किस प्रकार सहसा सम्भव हो गया।" यह चुप रहीं, परन्तु सभी के मन में यह प्रश्न एक जिज्ञासा बना रहा। सभा के अन्य सदस्यों को लेकर इनके पिता से यही प्रश्न किया गया तो उन्होंने बड़े गर्व से कहा था, "जब इस बालिका का जन्म

होने वाला था, मैं शास्त्र तथा पुराणों के प्रसङ्ग पढ़कर इसकी मां को सुनाता रहता था, कदाचित् वही प्रसङ्ग और श्लोक इसकी स्मृति में इसके अनजाने में जब कभी आवेश में अथवा किसी अभिनिवेष में भर यह बात कहती है तो स्पष्ट रूप से स्मृति में न रहने पर भी प्रसङ्गवश स्वतः इसके मुख से निसृत होने लगते हैं । यही कारण है कि समय-समय पर यह प्रसङ्ग प्रत्यक्षवत् वर्णन कर देती है । पूर्व की स्मृति स्वतः स्फुरित हो जाती है ।

इनकी अध्यापन की शैली तथा विद्यालय की कार्य प्रणाली इतनी निपुणता से चली कि इनका प्रभाव चारों ओर छा सा गया । तिस पर भी इनकी विद्वत्ता तथा बातचीत करने की शैली इतनी मधुर थी कि सभी इनके प्रशंसक बनते चले गए । इधर सहसा एक ऐसी घटना घटी कि इन्होंने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया । बात यों हुई इनके पिता बड़े स्वाभिमानी तथा न्यायप्रिय थे । कभी-कभी कुछ बातों को लेकर मत भेद होना कुछ अस्वाभाविक न था । सनातन धर्म सभा का कार्य, व्यवहारिकता को लेकर भी करना पड़ता था- अतः कुछ मत भेद के कारण उन्होंने सभा से त्याग पत्र दिया । यद्यपि सभा वाले चाहते न थे, परन्तु इनके पिता अपने निश्चय पर अडिग रहे- उनकी बात ठीक थी- अतः इसी कारण को लेकर, बहन जी भी सच्चाई का समर्थन करते हुए अपना कार्यभार सभा वालों को सौंप अपने पद से अलग हो गईं । सभा के लोग सकते में आ गए । इनकी पढ़ने की शैली तथा एक आत्मीयता की भावना जिसमें सभी छात्राऐं और इनकी सहयोगी अध्यापिकाऐं एक सूत्र में बंधी थीं, उनमें बिखराव सा आने लगा । सभा वाले कदापि न चाहते थे कि यह विद्यालय से मुक्त हों परन्तु ये अपने विचारों पर दृढ़ रहीं । विद्यालय में यदि लोग पूछते तो सभा वाले 'छुट्टी पर हैं' कह कर इस बात को गुप्त ही रखते क्योंकि त्याग पत्र उन्होंने स्वीकार किया ही न था । इनसे किये गए सभी आग्रह व्यर्थ ही हुए । धीरे-धीरे यह बात चारों ओर फैल गई । छात्रों तक भी पहुँची । एक-एक कर अनेक छात्र जो किसी आकर्षण में बंधे अध्ययनरत थे वहाँ से अलग होने लगे । इसी दौरान इनके घर आने जाने वालों का तांता लगा रहता। सभी को ठीक से व्यवहार करने की प्रेरणा देतीं परन्तु विद्यालय के वातावरण में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आने लगा । सनातन धर्म सभा वालों ने आकर पुनः इनके पिताजी से आग्रह किया । उनके कहने से इन्होंने पुनः कार्य भार सम्हाल लिया ।

भारत स्वतंत्रता के आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा ही था। स्वतंत्रता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लिया गया था। भारत का विभाजन निश्चित हो गया था। हिन्दुओं के वर्तमान भारत में और मुसलमानों के वर्तमान पाकिस्तान में निवर्तमान होने का क्रम प्रारम्भ हो गया। अनेक लोग पाकिस्तान के लिये इधर से प्रस्थान कर गए और पाकिस्तान से अनेक लोगों का इधर आना प्रारम्भ हो गया। उसमें एक डाकतार विभाग के कर्मचारी पंडित जयनारायण शर्मा सपरिवार अम्बाला आए। उन्हीं की सुपुत्री श्री सुशीला शर्मा, जो बहन जी की एक घनिष्ट मित्र बनीं, साथ-साथ बनीं उनकी अभिन्न हृदया सखी, सहेली, सह-अध्यापिका तथा शनैः शनैः उनकी विचार धारा से मेल खाती उनक़ी भावधारा घुल-मिल, जल और बिन्दुवत् एक हो गई। उन्हें उनका संग मिला, साथ मिला तथा वह सब मिला जो मानव जीवन का चरम लक्ष्य है, उसकी सर्वोच्च उपलब्धि है, जीव का परमोच्च पुरुषार्थ है तथा जीवन का मधुर आश्रय है, आलम्बन है। उस मधुर आश्रय को, मधुरातिमधुर आश्रय को पाकर वे धन्य हो गईं, कृतकृत्य हो गईं। उनकी धरोहर, उनके जीवन की परम निधि (सेव्य ठाकुर) लगता है इन्हीं के लिये पूर्व से ही सुनिश्चित थी। अद्यावधि वे ही सम्हाल रही हैं।

ग्यारह

शारीरिक रुग्णता-मसूरी यात्रा

प्रिया-प्रियतम की लीला का प्रत्यक्ष दर्शन

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽति गम्भीरता ।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽति विज्ञानिता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता सत्स्वेव संदृश्यते ।।***

भर्तृहरेर्नीति शतकम्

महान पुरुष अपने सभी गुणों के सहित प्रकट होते हैं । उन्हें किसी भी गुण को उपार्जित करना नहीं पड़ता, प्रत्युत वह सब उनमें नैसर्गिक ही रहते हैं । धर्म-परायणता तो उनका विशेष भाव रहता ही है । साथ-साथ सभी के प्रति हित की भावना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भाव से व्याप्त रहती है । उनके सभी अपने होते हैं । अपनों से बड़ों को समादर देना उनका भूषण रहता है । वे किसी से कपट नहीं करते । वे सभी के सामने खुली पुस्तक के समान होते हैं, नम्रता तथा गाम्भीर्य उनमें विद्यमान रहता है, गुण ग्राहकता, दक्षता के साथ-साथ सर्वोपरि भगवान के श्री चरणों में अनुराग के कारण वे सर्ववन्द्य हो जाते हैं । पूजनीया बोबो के जीवन में यह सभी गुण एक साथ विद्यमान थे । स्नेह की व्यापकता, निष्कपटता तथा विनम्रता के साथ-साथ उनकी आध्यात्मिक अनुभूति अपने में अपूर्व थी । रोम-रोम से वे श्यामा-श्याम के प्रति समर्पित रहीं ।

हम पूर्व में कह आए हैं कि बहन जी का स्वास्थ्य अब अधिक बिगड़ने लगा था । ज्वर का प्रकोप तो हो ही गया था, इधर दुर्बलता ने रोग को बढ़ाने का ही कार्य किया । इनकी कर्तव्य परायणता तथा शरीर के प्रति अनासक्ति वश, शरीर और कृश होता चला गया । मात्र विश्राम के और कोई ठोस उपचार का साधन नहीं दीख रहा था । सभी उपाय कर लेने पर भी जब कोई विशेष सुधार होता न दीखा तो, सभी अभिभावकों ने तथा

*** धर्म में तत्परता, वाणी में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों से निष्कपटता, गुरुजनों के प्रति नम्रता, चित्त में गाम्भीर्य आचार में पवित्रता, गुण ग्रहण में रसिकता, शास्त्र में विद्वत्ता, रूप में सुन्दरता और हरि स्मरण में लगन- ये सब गुण सत्पुरुषों में ही देखे जाते हैं।

घर के सम्बन्धियों ने कुछ दिन पहाड़ पर रहकर एकान्त में विश्राम करने की सम्मति दी क्योंकि अम्बाला के व्यस्त जीवन में यह सब सहज सम्भव होना कठिन था। वहाँ विश्राम भी हो जावेगा और जलवायु परिवर्तन की सुविधा हो जायेगी। यह सब विचार कर मसूरी जाने का निर्णय हुआ। सन् १९५४ के जून मास में आप बहन श्री विमला टण्डन तथा संयुक्ता मिश्रा के साथ मसूरी गईं।

मसूरी का भौतिक सौन्दर्य, वहाँ का पहाड़ी वातावरण यद्यपि एक स्वच्छ और सादगी तथा भोलेपन से युत था, फिर भी इनका मन कुछ अधिक रम न सका। लम्बे-लम्बे वृक्षों की सघनता, रंग-बिरंगे पुष्पों का अलबेलापन, चारों ओर की नीरव प्रकृति तथा एकान्तिक वातावरण का आनन्द, मन अवश्य लेता। यद्यपि उस प्रकृति में, उन वृक्षों की सघनता में, उन छोटे-छोटे पौधों की रंग-बिरंगी विहँसन में, वृक्षों और लताओं की उस झूम में इन्हें वृन्दावन ही भासित होता तथापि वृन्दावन की सरसता आकुल करती। श्री ठाकुर जी की सन्निधि के लिए, उनकी भावनाओं में सरसाया मन मचल उठता। वृन्दावन भाग आने की लालसा और तीव्र हो जाती। कजरारे मेघों में श्याम का सौन्दर्य झलकता, इस सबसे उद्वेलित हो श्याम सुन्दर से ही प्रश्न करने लगतीं, वहाँ ले जाने का हेतु पूछतीं। कभी पास ही से सुनाई देती, यह ध्वनि सुन 'मुझे तुम्हारी ज़रूरत है', अपनी युग-युग की आकांक्षा वश अकुला उठतीं, और कभी मीरा जी की पंक्ति दोहरातीं, 'माई री म्हारी श्याम न बूझी बात' और कभी उर्दू के कवि उमर खैय्याम की रूबाई का अंग्रेजी अनुवाद गुन-गुनाने लगतीं :-

And Thou,
Beside me singing in the wilderness-
And wilderness is paradise now.

वाह रे प्रेम वैचित्र्य ! एकान्त में उत्तरोत्तर सरसता वश आकुल हृदय- ऊर्मियां, जाने अनजाने में किन-किन विचारों से आलोड़ित कर देती हैं। कभी मीरा जी की पंक्ति का विचार कर, भाव निमग्न हो, श्याम सुन्दर से कहतीं, 'केवल तुम्हीं हो जो बात पूछते हो' जून मास की पूर्णिमा को, रात में, एकान्त में बैठी चन्द्रिका-स्नात शोभा को निहार सहसा मौन हो गईं। एक जगह लिखती हैं 'एक वाक्य अन्तरतम में खुभ सा गया था। महाप्रभु (श्री चैतन्य देव) जी ने कहा था, 'आज पूर्णिमा है- यह चांदनी रात अपने प्रीतम से मिलन की रात है' आह ! पूर्णिमा की शुभ्र ज्योत्स्ना प्रिय

मिलन की पिपासा को भड़का देती है, इसकी शीतलता शान्त नहीं करती मन को, उद्वेलित कर देती है। कल पूर्णिमा थी– वही पूर्णिमा। प्रियतम से मिलने की नीरव निशा, गोपिकाओं को मिले आश्वासन का स्मरण कर, पूर्णिमा देख व्याकुल हो जातीं– उन्हीं के साथ अपनी भावनाओं को व्यक्त कर उपालम्भ देतीं।

विचारों की भिन्नता, एकान्त का सुख तथा मन की प्रसन्नता– सभी का सहयोग मिला और धीरे–धीरे स्वास्थ्य में सुधार आता गया। अधिक दिन वहां रुक सकना सम्भव न था– अतः अम्बाला लौटना निश्चित हो गया। मन प्रसन्नता से भर गया। परन्तु सहसा दो दिन के लिये कार्यक्रम का स्थगित होना भी इन्हें रुचिकर न लगा।

मसूरी में कुछ समय यापन कर आप अम्बाला लौट आईं। मन में एक खलबली, सम्भवतः उस अव्यक्त प्यार का आश्रय, और व्याकुल करता रहता। कई बार ऐसा लगता जैसे श्याम सुन्दर पधारे हैं और अनेक बार प्रत्यक्ष देख मग्न हो जातीं। इतना ही नहीं एक बार श्री ठाकुर से अपने मन की अनेक भावनाओं को, हाव–भावों को एकान्त में ही कह रही थीं, वर्ष १९५५ के मास मार्च की बात है। सहसा विद्यालय का काम आ गया। वार्षिक–परीक्षा परिणाम जांचना था, संध्या में छः बजे के लगभग निपटीं। कहीं से रामायण की ध्वनि अनजाने ही हृदय में सरसता भरने लगी। अनचाहे से उसे ऊपर ऊपर से सुनती रहीं। इसी समय इन्होंने एक दृश्य देखा– उसे उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने की चेष्टा करूँगा–

''यह नेत्र कभी खुल कर और कभी बन्द होकर जो दृश्य देख रहे थे– कैसा सुन्दर, सरस, मनहारी था वह दृश्य। अपने पर तुम्हारी ममता, तुम्हारा अनुराग तथा तुम्हारी करुणा देख कर गद्गद हो उठी मैं।

उस दृश्य को देख कर तुम्हारी चालाकी पर बड़ी हँसी आ रही थी। कितने नटखट और चतुर हो तुम। तुम्हारी खोज में श्री राधिका किसी कुञ्ज की सघन झाड़ियों को चीरती हुई बढ़ रही थीं और तुम– धीरे धीरे दबे पांवों से उनका अनुगमन कर रहे थे। भोली–भाली राधाजी तुम्हारा आगमन जान ही न पाईं। हां ! जब वह उस अत्यन्त घनी कुञ्ज के ठीक मध्य में पहुँच कर भ्रमित सी हो गईं, तो उनके स्कन्ध पर हाथ रख कर चौंका दिया तुमने उन्हें। वह भयभीत हो गईं पर भय की सीमा तो देखो,

भीत होकर तुम्हीं से लिपट गईं । वहां इतना अन्धकार था कि मैं कुछ देख ही न पाई । हां इतना अवश्य देखा तुम उन्हें लेकर बैठ गए हो, उनका समस्त भार तुम्हीं पर है ।

सहसा सखियों के मन्द रव ने तुम्हें चौंका दिया और मैंने देखा कि श्री राधा उसी कुञ्ज के किसी लता मण्डप में से झांक कर सखियों को देखने लगीं और तुम पिछली ओर से बाहर निकल गए, फिर द्रुतगति से बढ़े और कुञ्ज के दूसरी ओर से सखियों में आ मिले । सखियों ने तुम्हें देखा और खिल उठीं । उन्होंने पूछा, ''कन्हैया ! किशोरी कहाँ है ?'' ''तुम कैसे चालाक हो । बोले खोज लो । चलो मैं भी ढूंढता हूँ तुम्हारे साथ । देखें किसे मिलती हैं पहले ।'' सखियां मुस्करा कर बोलीं, ''किसे मिलती हैं, क्या मतलब ?'' तुम्हें ही मिलेंगी । आप बोले, 'मुझे तो तुम्हारी सहायता और तुम्हारे ही सहयोग से मिलती हैं ।' ''अच्छा चलो अब ढूंढें ।'' तुम चालाक शिरोमणि ! जानकर थोड़ी दूर किसी अन्य कुञ्ज में जा बैठे और सखियों को बिठाने के लिये कोमल-कोमल हरी-हरी घास के आसन तैयार कर लिये । इधर यह सखियां संयोग से उसी कुञ्ज में जहां राधिका जी थीं, जा पहुंची और पकड़ लिया उन्हें, बोलीं ''किशोरी ! कन्हैया भी खोज रहे हैं तुझे ।'' राधिका जी मुस्करा कर बोलीं, ''चलो अब हम उन्हें देखें, कहीं ढूंढते-ढूंढते दूर न चले जाऐं ।'' राधाजी आखिर तुम्हारी ही तो प्रतिछाया है । वह क्या कम चतुर हैं । सम्भवतः जानती थीं कि कहां मिलोगे- अतः सखियों को ले वह उसी कुञ्ज में पहुँच गईं । इन सबने देखा, बड़े शान्त से तुम एक शिला पर लेटे हो टेढ़े । वह बिचारी सरला बालाऐं समझीं कि तुम खोजते-खोजते निराश होकर थक कर लेट गए हो । पास आईं, हाल पूछा, आप बोले, ''मुझे लग रहा था कि तुम यहाँ आओगी । खोजते-खोजते श्रमित भी हो रही होंगी । वह देखो मैंने सबके लिये आसन तैयार किये हैं। सात, आठ सखियाँ तो थीं हीं, बैठ गईं । सहसा तुमने मुरली निकाली और लगे उसे अधरामृत पिलाने । गूंज उठी वह बांस की पोरी । उसी समय न जाने राधाजी ने सचमुच ही एक बांस की पोर हाथ में ले, अधरों पर रख ली, पर वह भी झट बांसुरी के रूप में बदल गई और बज उठी । ध्वनि से खिंची कुछ और ललनाऐं भी परवश सी वहां आ गईं और तुम उन सभी को लिये खुले वन प्रदेश में आ गए । सखियां तुम्हें घेर कर बैठ गईं, कुछ खड़ी भी रहीं । सहसा किसी ने प्रस्ताव किया जल विहार का । 'इस समय कुछ

ठण्ड है' कहकर किसी ने नौका विहार की सम्मति दी । सभी सखियां सहमत हो गईं ।

मुझे ठीक स्मरण नहीं कि सभी एक नौका में बैठीं या श्री राधिका और पहले वाली गोपिकाऐं एक में, शेष सब दूसरी में रहीं । खैर .... कुछ भी हो पानी थोड़ा-थोड़ा उछालते, हँसते-खिलखिलाते रहे तुम सब । सहसा चन्द्रमा उदय हो गया पर पूर्णिमा तो थी नहीं जो चन्द्रमा पूर्ण होता, आधा ही था चन्द्रमा - उसे लेकर परस्पर हास परिहास और टीका टिप्पणी होती रही । किसी ने या शायद तुम्हीं ने ...... मेरे विचार में तुम्हीं ने कहा था, यहाँ तो अनगिन पूर्ण चन्द्र हैं, यह अर्धचन्द्र क्या समता करेगा इनकी । सहसा उसी समय किसी सखी की रसीली ध्वनि गूंज उठी,

'कहो सखि केहि कारण जल, श्याम-
यमुन जल केहि कारण ते श्याम ?'

तुम तथा अन्य सखियां भी उसी स्वर में अपना योग देने लगे । कुछ सखियों ने गाया :-

श्याम अंग ये परसत निशि दिन
या कारण अभिराम
भयो यह कालिन्दी जल श्याम-
सखी ! यही हेतु जमुन जल श्याम ।

इसी समय सब स्वरों को मन्द करता हुआ श्री राधिका का अत्यन्त सुरीला स्वर गूंज उठा :-

सब सखियन की दृष्टि श्याममय
निरखत हर पल, याम ।
श्याम दृष्टि ते लखत यमुन जल
या ते भयो जल श्याम ।
सखी री ! इहि कारण जल श्याम ॥

अभी वह सखियां कुछ भी न कह पाई थीं कि तुम्हारा हृदय हारी स्वर सुनाई पड़ा :-

सखिजन मेरी अतिहि सुन्दरी
अमित रूप छवि धाम ।
तिहि आगे छवि मन्द भई, अरू
तरणि तनूजा श्याम ।

सखी ! सच याही ते ये श्याम ।

जमुन जल इहि कारण ते श्याम ।

यह छवि देखते और गीत सुनते सुनते मैं चौंक उठी और वह सुहावना दृश्य मेरे नेत्रों से ओझल हो गया । काश ! यह बना ही रहता ।''

उपरोक्त दृश्य देखकर बहन जी गद्गद होती रहीं । लीला दर्शन और पान कर इनकी उमंग तरंगे देखते ही बनती थीं ।

हृदय में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती । कई बार दैन्य इस सब पर भारी हो जाता । प्रिया-प्रियतम के नित्य सामीप्य हेतु मन मचल जाता । ऐसे में फिर वही अपना राग; अपने पर क्षुब्ध सी हो जातीं । पूर्व की स्मृतियां दोहराने लगतीं । पूर्व में दिये आश्वासनों की स्मृति कराने लगतीं, उनकी पूर्ति के लिये निवेदन करतीं, श्याम सुन्दर को सम्बोधन कर कहतीं, ''अतीत की इन मधुर स्मृतियों और तुम्हारे इस प्रकार सम्मुख रहने से ही जीवन यापन कर पा रही हूँ, वरना-''

पुनः बोलीं,

''स्वामिनी बड़ी करुणामयी हैं । सभी में तुम्हारा प्रेम रस वितरित करती हैं, पर उन्होंने भी मुझे छोड़ा हुआ है । उस रस की दो बिन्दु भी क्यों नहीं देतीं अपनी इस अपात्र सखी सेविका को । प्राण ! उन्हें ज़रा स्मृति दिलाना उस दिवस की जब मेरी रुग्णावस्था में मेरे सिर पर अपना वरद हस्त रख कर उन्होंने मुझे तुम्हारे प्रेम का- अहैतुकी प्रीति का अमर वरदान दिया था ।''

प्रेम का पथ भी बड़ा ही विचित्र है । सदा अतृप्त बने रहना इसका स्वभाव है और निरन्तर वर्धमान इसका स्वरूप । इस अतृप्ति में ही अनेक बार प्रलाप भी अपना योग दे इसका वर्द्धन करता है । एक बहुत ही स्वाभाविक क्रिया है- प्रेम प्रगल्भता । पाने के उपरान्त जहाँ तृप्ति है- वहाँ सीमित होने पर प्रेम नहीं माना जा सकता । पाकर, तृप्त होकर, प्रेम-प्रलाप से युक्त होकर, दैन्य से भूषित प्रेम, 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पोषित होकर ही और-और की कामना वश निखरता है, परिष्कृत होता है। वहाँ इति नहीं है । श्री नारद जी, भगवान के हृदय, सभी के परम हितकारी हैं कह रहे हैं । 'यथा ब्रज गोपिकानाम्' ब्रज की इन गोपाङ्गनाओं में ही प्रेम का परिष्कृत स्वरूप दर्शनीय है अतः वे पा रही हैं, आस्वादन कर

रही हैं, जिन श्यामलेन्दु को अपने सामने पा, अपनी युग युगों की तृषा का शमन कर रही हैं उसी को और-और पाने की लालसा वश पुनः पुनः याचना कर रही हैं। वाह रे प्रेम वैचित्र्य ! जिसको मिला, आस्वादन कर, और-और की पुनः पुनः याचना की।

अनेक बार मन भारी हो जाता। पिघल कर नेत्रों के मार्ग से बरसने लगता। नींद उचट जाती। प्राणों को न जाने क्या-क्या की मांग होती और सभी स्मृतियाँ एक सबल ढाढ़स बंधातीं- और यह अपनी मधुर स्मृतियों के आवर्तों में किञ्चित् भूलने का प्रयास सा करतीं।

श्री गीता पढ़ने के लिये अनेक बहनें इनके पास आया करतीं। अपनी भरपूर व्यस्तता में जो भी अतिरिक्त समय होता उसे गीता चर्चा में व्यतीत करतीं। शरीर कृश था ही। पिता जी का वात्सल्य उमड़ा। इन्होंने एक बार अत्यन्त स्नेहवश गीता पाठ के लिये मना कर, विश्राम करने की सलाह दी, परन्तु इन्हें सहन कैसे होता। गीता चर्चा तो इन्हें श्रमित नहीं करती थी, प्रत्युत शीतल विलेपन द्वारा श्रम निवारण करती थी। इनकी आस्था थी, इनकी श्रद्धा थी, अतः उसका प्रभाव स्वाभाविक ही अनुकूल होना अनिवार्य था।

एक बार पिता जी ने तेज़ी से यही बात कही, समझायी भी। पहले भी अनेक बार कह चुके थे, विश्राम करने के लिये आग्रह कर चुके थे। 'सारा दिन काम करते-करते थक जाती है, आधा घण्टा जो गीता पाठ में व्यतीत करती है, उस समय आराम कर लिया कर।' यह अपने पिता जी को कैसे समझातीं कि 'शरीर और मन को विश्राम देने के लिये ही तो गीता पाठ करती हूँ। वे कुछ अधिक तेज़ी से बोले 'इसी चर्चा से आराम मिलता है' यह बात कहनी बड़ी सुगम है- बड़ी उम्र में पता चलेगा- जब इन्द्रियों में शिथिलता आ जावेगी। यहीं बात समाप्त हो गई। सुनकर बहन जी को बहुत ही ग्लानि हुई। संध्याकालीन कीर्तन प्रारम्भ हो गया। बहन जी के मन में विचित्र बवंडर उठ रहे थे। उनके मन में तो कष्ट हुआ ही था परन्तु श्री ठाकुर जी के प्रति कहे गए अन्यथा वाक्य उन्हें सालने लगे। मन ही मन श्री ठाकुर जी से अपनी कहने लगीं। मन में ग्लानि भी हुई- और- क्षोभ भी।

इधर संकीर्तन प्रारम्भ हो ही चुका था। समाप्त होते ही पिता जी का वात्सल्य उमड़ा, बोले, 'मुन्नो ! इधर आ।' यह सहमी सी

उनके पास जा पहुँची। इस समय का भाव, कुछ समय पहले के वातावरण से सर्वथा विपरीत था। वे साश्रु नयन बोले, कीर्तन में ठाकुर जी ने मुझसे एक बात कही है। सुनकर ''मैं भीत सी हो गई'', अब पुनः वह अप्रिय प्रसङ्ग न छिड़ जावे, पर मेरे आह्लाद पूर्ण आश्चर्य की सीमा न रही, जब बाबूजी ने मुझे तुम्हारी (श्री ठाकुर द्वारा) कही बात सुनाई।'' तुमने उनसे कितना सुन्दर कहा। वे कहने लगे, 'श्री ठाकुर जी ने कीर्तन में मुझसे कहा, कि तू वृथा उसे डांटता-फटकारता है। अरे! लौकिक कर्मों का श्रम और मेरी चर्चा दोनों में बड़ा अन्तर है। महाभारत युद्ध में अर्जुन के तीर लगते थे, क्योंकि मैं उसका सारथी था, मेरे सहलाते ही उसके व्रण तत्क्षण ठीक हो जाते थे, इसी प्रकार मेरी चर्चा से लौकिक थकान दूर हो जाती है। मेरे साथ रहने पर श्रम कहाँ? तू क्यों व्यर्थ चिन्ता करता है इसकी' गद्गद कण्ठ वे और कुछ न कह सके। मेरे नेत्र छलछला आए।

श्री श्री ठाकुर जी उनकी सभी चर्चाओं के, कृत्यों के साक्षी रहे। वास्तव में उन्हीं की इच्छा से, उनके ही कृत्यों की पूर्ति हेतु इनका प्रादुर्भाव हुआ था, उन्हीं के द्वारा प्रदत्त अनुबन्धों का इन्होंने निर्वाह किया और वे श्याम सुन्दर इनके प्रत्येक कर्म के, प्रत्येक क्षण के साक्षी रहे। इन्हें पग-पग पर आश्वासन देते रहे। स्वप्न में, प्रत्यक्ष में अपनी लीला माधुरी का आस्वादन करा कर। उनके पग-पग पर मिले आश्वासनों और अनुभूतियों का सबल सम्बल पाकर निस्संकोच और उत्साह पूर्वक यह अपने पथ पर अग्रसर होती रहीं, अनेकों के जीवन को, पथ को आलोकित करती रहीं, प्रशस्त करती रहीं एक आलोक स्तम्भ बनीं।

❑❑❑

बारह || प्रधानाध्यापिका अध्यापन- अनेक संतों से सम्पर्क

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्र विद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति।
यशोदा किशोरे मनो वै न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥
***

अध्ययन कर, सम्पूर्ण पांडित्य उपार्जित करने, जगत में ख्याति प्राप्त करने, अच्छे से अच्छे लोगों से सम्पर्क करने अथवा संसार के समस्त वैभव प्राप्त करने के साथ-साथ यदि भगवान के श्री चरणों में प्रीति नहीं हो सकी अथवा श्यामा-श्याम की रूप माधुरी में अटक, मन उनकी सन्निधि हेतु न मचलता हो, उनके प्रीति पूर्ण अनुराग में पगा क्षण प्रति क्षण उनके नयन बाणों से विद्ध हो उन्हीं प्रणयी अहेरी के मुस्कान पाश में, रस विलास में, मधुर हास में आबद्ध हो- केवल उन्हीं अपने प्रेमास्पद के प्रति सम्पूर्णता से समर्पित नहीं हुआ तो जीवन व्यर्थ ही बीत रहा है ऐसा समझना चाहिये।

मानव मात्र का चरम लक्ष्य भगवान की प्राप्ति है। जब हम समस्त रागभरी भावनाओं के स्वामी श्यामा-श्याम की प्राप्ति के लिये किञ्चित् सा प्रयास करते हैं- तो वे बड़ी ही व्यग्रता से हमें सम्हाल, तदनुकूल वातावरण सजा देते हैं। सजी सजाई उसी वाटिका में प्रवेश करने पर ही शान्ति उपलब्ध होती है, सन्तों का संग अनायास प्राप्त हो जाता है। महज्जन कृपा करने के लिये अकुला उठते हैं। भक्तजन अपना बोध करा देते हैं। अपने पूर्व संस्कारवश, कर्तव्य कर्म का पालन करते रहने के साथ-साथ मन का तार श्यामा-श्याम से जुड़ जाता है।

पूजनीया बहनजी ने अपनी बहुत छोटी सी वय में ही ख्याति विशेष प्राप्त कर ली थी। कार्य संचालन की प्रतिभा उनमें बचपन से ही विद्यमान थी। भारतीय वाङ्मय में उनकी अटूट श्रद्धा थी। अपने जन्म से पूर्व ही शास्त्रों और पुराणों की ज्ञान-वैराग्य पूर्ण कथाओं, उनके तर्क पूर्ण समाधानों, उनकी वस्तु स्थिति में विवेक, सहज प्राप्त हो गया था। इतनी

*** छहों अङ्गों सहित वेद और शास्त्रों को पढ़ा हो, सुन्दर गद्य और पद्यमय काव्य रचना करता हो, किन्तु यदि यशोदा नन्दन में मन नहीं लगा तो उन सभी से क्या लाभ है?

छोटी आयु में इतना अधिक अध्ययन, शास्त्रों पर अधिकार तथा उनमें पूर्ण श्रद्धा उनमें संस्कारगत थी । यह सब ज्ञान उपार्जित कर लेने पर भी उनकी एक विशेषता थी श्यामा-श्याम के चरणों में प्रीति पगा अनुराग । रागानुराग की रसीली भाव लहरियों में उनका हृदय तरंगित होता रहता था।

इसके अतिरिक्त काव्य में अभिरुचि, अभिव्यक्ति अपने विचारों की शास्त्रीय तथा सैद्धान्तिक प्रतिपादन शैली उनमें अपूर्व थी । विद्वत्ता के साथ-साथ सर्वोपरि गुण जो उनमें स्वभावगत था- वह था प्रिया-प्रियतम श्याम सुन्दर के प्रति मन का सहज द्रवण । यह इतना सहज और स्वाभाविक था कि अलग से इसे उनके प्रयास अथवा किसी क्रिया के अधीन कहा नहीं जा सकता। श्वास लेना, मानव की अनिवार्यता है, जल, मीन के प्राण हैं, सूर्यातप जलज का जीवन है, जिस प्रकार श्वास-प्रश्वास में मानव का कोई प्रयास नहीं है, वह उसकी स्वाभाविक मांग है- ठीक यही भाव प्रेमी भक्तों का अपने इष्ट-प्रेमास्पद के प्रति जीवन की नैसर्गिक धारा बन प्रकट रहता है । उसके लिये उन्हें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। केवल उनके जीवन की अनिवार्यता कह कर स्पष्ट नहीं किया जा सकेगा । वह तो उनका जीवन ही होता है- प्राण उसमें बसते हैं, उनका रोम-रोम इतनी स्वाभाविकता से ओत-प्रोत होता है कि यह कहना भी कठिन है कि वे आकृष्ट होते हैं अथवा प्रेमास्पद । यह भाव इतना अन्योन्याश्रित होता है कि दोनों ही एक दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं ।

श्याम सुन्दर अपने अनन्य जनों की भाव दशा और स्थिति देख उसी के अनुसार वातावरण का संयोग तो जुटा ही देते हैं, अपनी दृष्टि में रख, सभी सहयोग दे, अपने जनों को अनायास अपनी ओर अग्रसर होने के लिये अनुकूल परिस्थिति जुटा देते हैं । किन्हीं उर्दू कवि के उद्गार हैं :

निगाह उनकी मुझ पे है तो लेकिन
निगाह मेरी बचा के निगाह करते हैं ।

उनका सम्पूर्ण लाड़, स्नेह, प्रेम अपने जनों के लिये सुलभ हो जाता है- तथा उसी के अनुरूप वातावरण भी अनायास बनता चला जाता है ।

पू० बहन जी अपनी अध्यापन शैली के कारण अत्यधिक ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं । इनकी अप्रतिम प्रतिभा का प्रचार-प्रसार भी चारों

ओर हो गया था। सनातन धर्म सभा वालों का बहुत सन्निकट तथा सामीप्य का संग निरन्तर ही बना रहता था। सभा के समायोजन स्कूल प्राङ्गणमें ही हुआ करते थे। बहन जी प्रधानाध्यापिका के पद पर कार्यरत थीं। इसके अतिरिक्त अध्यात्म में उनकी विशेष अभिरुचि थी, साथ-साथ शास्त्र-पुराणों का सम्यक्-ज्ञान तथा श्री मद्भगवद्गीता पर इनके सुलझे हुए विचार इनमें स्वभावगत थे। अध्यात्म पर इनके इतने सुलझे और सुदृढ़ विचार होते कि प्राय: बाहर से आने वाले महज्जन छोटे से कद में निहित चंचल, चपल स्फूर्ति तथा विद्वत्तापूर्ण शास्त्रीय अभिमत को सुन सदा प्रभावित होते। इनके प्रवचनों में जिस आत्म विश्वास और तर्क सङ्गत मत का सुदृढ़ प्रतिपादन होता, वह उनकी परिपक्व विचारधारा का ही प्रतीक था। इनके इस आत्म विश्वास और सम्यक् ज्ञान के कारण सभा के बड़े से बड़े अतिथियों, आगन्तुकों के स्वागत-सत्कार करने का सुअवसर इन्हें प्राय: मिलता ही रहता था।

इस बार भी सभा के वार्षिक उत्सव में अनेकानेक महात्माओं, विद्वत्समाज, प्रवक्ताओं को आमंत्रित किया गया था। तत्कालीन सिद्ध श्रेणी के महात्मा पूज्यपाद श्री उड़िया बाबा, श्रीहरि बाबा, श्री आनन्दमयी मां, वेदों के धुरंधर विद्वान् श्री गङ्गेश्वरानन्द जी, श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, श्री स्वामी गणेश दत्त जी, मानस मर्मज्ञ श्री बिंदुजी महाराज, सङ्कीर्तन सम्राट श्री मुकुन्द हरि जी महाराज प्रभृति अनेकानेक महज्जनों ने उपस्थित हो सभा के गौरव को बढ़ाया। सनातन धर्म सभा अम्बाला की ओर से उनके प्रतिनिधि के रूप में पू० बहनजी का योगदान अपने अतिथियों के स्वागत सत्कार के रूप में हुआ। एक विशेष आत्मीयता वश उनके विचारों, सिद्धान्तों का अत्यन्त समीप से श्रवण करने तथा अपने विचारों के आदान प्रदान का सुयोग बना। यह सुयोग इतना स्वाभाविक था कि उन सभी महज्जनों के विचारों से पू० बहन जी का मन प्रभावित भी हुआ और श्रद्धावनत भी। अनेक प्रसङ्गों में इनसे बातचीत होती, सिद्धान्तों का निरूपण होता, परस्पर अनेक धार्मिक विषयों पर व्यक्तिगत चर्चा का योग भी बनता। उस सबमें बहुत ही साधारण से वेश में, उनकी सेवा मे, सहज भाव से व्यवस्था के संयोजन जुटाती, विशाल नेत्र, सौम्य स्वभाव, विनम्रता में भरी पू० बहनजी के अभूतपूर्व विचारों को सुन वे सभी गर्वित होते।

पू० बोबो के विरक्ति पूर्ण व्यक्तित्व ने, श्री ठाकुर सेवा सम्बन्धी एक सुस्पष्ट भावना ने, श्री महाप्रभु जी के प्रति श्रद्धा तथा विरक्ति

पूर्ण विचार धारा के समर्थन ने, वृन्दावन की उपासना ने, ब्रज के प्रति आकर्षण ने तथा अनेकानेक ग्रन्थों पर हुए परस्पर विचारों के आदान प्रदान ने सभी को विमुग्ध सा कर दिया। गीता पर इनकी सारगर्भित वाणी तो अद्वितीय ही होती थी। इनकी इस प्रतिभा ने, उपहार स्वरूप, इन सभी सन्त महात्माओं की अत्यन्त आत्मीयता का अभूतपूर्व योग तथा कृपा भाजन बना दिया।

श्री पूर्णानन्द तीर्थ जी महाराज

श्रद्धेय श्री उड़िया बाबा की अन्नपूर्णा की सिद्धि का योग अम्बाला में भी सहसा सभी के सामने प्रकट हो गया था। सामग्री की प्रचुर व्यवस्था की गई थी, परन्तु आगन्तुकों की भीड़ के सामने लगा जैसे पूर्ति न हो पावेगी। पू० श्री श्रीमहाराज जी से निवेदन किया गया। श्री उड़िया बाबा ने सभी सामग्री को एक वस्त्र से ढक देने के लिये कहा– कुछ समय बाद 'कपड़ा न हटाकर परोसते जाओ' कहकर बाबा एक ओर बैठ गए। बड़े ही मुक्त हस्त से सामग्री का, प्रसाद का वितरण किया गया– तिस पर भी प्रचुर मात्रा में शेष रह गया। अपने आँखों देखी यह घटना पू० बहनजी ने स्वयं सुनाई थी– बाबा ब्रह्मनिष्ठ तो थे ही, अपनी स्थिति में भी पूर्ण थे। सभी की बड़ाई करना सन्तों का स्वभाव ही होता है, परन्तु जब एक आत्मीयता विशेष से सम्बन्ध हो जाता है तो प्रशंसा के साथ-साथ मन का एक योग, आभार प्रदर्शन तथा आशीर्वचन के रूप में स्नेह और अपनत्व से सराबोर कर देता है– ऐसा ही घटित हुआ पू० बोबो के प्रसङ्ग में।

पूज्यपाद श्री हरिबाबा

पू० श्री हरिबाबा के दर्शन करने का सुयोग अम्बाला में कई बार हुआ था– यहाँ श्री धाम आने के उपरान्त भी अनेक बार महाराज जी के दर्शन करने जातीं।

पू० श्री महाराज जी के प्रति आकर्षण का प्रधान हेतु बना श्री चैतन्य महाप्रभु जी की भक्तिभावना तथा सङ्कीर्तन प्रचार। इस भाव को लेकर वे उनके प्रति श्रद्धावनत हो जाती थीं। समय का सुदृढ़ता से परिपालन, सङ्कल्प का सप्रयत्न क्रियान्वयन भक्ति भावना से ओत प्रोत हो एक बार बहन जी ने कहा था "वे ऐसे भगवद्भक्त थे जिनसे पृथ्वी धन्य होती है, युग गौरव पाता है, पथ पर चलने वालों को प्रकाश मिलता है। वृन्दावन के अनेक उत्सवों की शोभा उन्हीं से रही।"

माँ आनन्दमयी

श्रद्धेय मां के जीवन-वैशिष्ट्य तथा गाम्भीर्य से अध्यात्म में रुचि रखने वाला कौन व्यक्ति अपरिचित होगा ? उनका चरित्र, उनका व्यक्तित्व स्वयं में ही अनुभूति तथा साधक वर्ग के लिये प्रेरणा का स्त्रोत था।

पूज्यपाद उड़िया बाबा, श्री हरिबाबा के साथ-साथ पूज्या मां का भी आगमन हुआ था। सभी महज्जनों की सेवा सत्कार व्यवस्था के कारण उनका सन्निकट से दर्शन का सुयोग बन गया था। पूज्यपाद श्री उड़िया बाबा, श्री हरिबाबा के सार गर्भित व्यक्तित्व ने सभी को प्रभावित किया था। इधर मां के स्नेहिल स्वभाव तथा आत्मीयता ने एक और ही सरसता में सराबोर कर दिया। एक बार मां के पास उनकी सन्निधि सुख में सतत मग्न एक बालक को देख पू० बोबो मुस्करा दीं। उसकी चंचलता और चपलता ही इसका मूल हेतु था। अपनी उसी बाल चेष्टाओं में संलग्न उस बालक ने पू० बोबो से नाम पूछा। इन्होंने विनोदवश अपना नाम 'क्रोधोमयी' कहा और शान्त चित्त उसे देखती रहीं। इधर सहज ही माँ उधर चली आईं। बड़ी ही प्रसन्नता में भर दूर से वह बालक चिल्लाया, "माँ ! माँ ! तुमी आनन्दमयी इनीं क्रोधोमयी।" माँ रुकीं, खड़ी हो गईं बड़े ही लाड़ से पू० बहन जी की ओर देखा, मुस्कराती रहीं। पू० बोबो ने स्वयं कहा था उनके देखने में जिस आत्मीयता और अपनत्व का बोध हुआ- वह इस धरातल की बात न थी। बहुत ही सुख हुआ उस समय।

इधर महाप्रयाण से कुछ वर्ष पूर्व मां का सन्देश मिला। वे अस्वस्थ तो अवश्य रहती थीं- उसी में पू० श्री सन्तोष बहन जी,* श्री धर्म बहन जी,** सुशीला बहन जी तथा कुछ और बहनें उनके दर्शनार्थ वृन्दावन आश्रम गईं- उनकी आत्मीयता तथा स्नेह से सभी को परम सुख हुआ।

श्री गंगेश्वरानन्द जी

परम पूजनीय श्री महाराज जी भी सभी सन्तों के साथ-साथ अम्बाला सनातन धर्म सभा के वार्षिक सम्मेलन में पधारे थे। प्रज्ञा-चक्षु होने पर भी इनकी विद्वत्ता तथा वैदिक ज्ञान अपूर्व था। भारतीय वाङ्मय को लेकर बहन जी से चर्चा कर परम प्रसन्न होते। पू० बोबो के श्रद्धा और विश्वास तथा विनम्रता से सदा प्रभावित हुए। इस उत्सव के अतिरिक्त भी

* ** पू० बहन जी की सहेली। इनके विषय में हम आगे वर्णन करेंगे।

वे अनेक बार अम्बाला आए– इसी कारण इनसे व्यक्तिगत परिचय भी हो गया था। वे सदैव इनकी शालीनता और सादगी की प्रशंसा किया करते।

एक बार पाण्डीचेरी (दक्षिण) की एक बहन पू० बोबो, श्री महाराज जी के दर्शनार्थ गईं। विजय भी साथ था। प्रणाम–अभिवादन कर बैठ गए। अपनी मुक्त आवाज़ में उन्होंने सभी का समाचार पूछा। जब पता चला कि अम्बाला से सनातन धर्म विद्यालय वाली श्री ऊषा जी आई हैं तो बहुत ही प्रसन्न हुए। पुनः यह जानकर कि अम्बाला छोड़, वृन्दावन में स्थायी रूप से निवास करने चली आई हैं तो इनकी भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे। अपना वही वात्सल्य दर्शाते कहने लगे 'ऊषा तेरा क्या है– वहां भी तेरे लिये सब समान ही था। वृन्दावन चली आई यह अत्यन्त सुख की बात है।'

गोस्वामी श्री बिन्दु जी महाराज

गोस्वामी जी की रामायण कहने की शैली सर्वत्र प्रशंसनीय रही है। श्री महाराज जी का अम्बाला आगमन प्रायः होता ही रहता था। रामचरित मानस पर पू० बोबो भी, एक प्रकार से एक अधिकार प्राप्त अध्यापिका रहीं। लगभग समस्त रामायण तथा तुलसी साहित्य इन्हें कण्ठस्थ था। श्री रामचरित मानस में इनकी श्रद्धा थी। आध्यात्मिकता इनके स्वभाव में थी– अतः अनेकानेक बार पाठ की आवृत्ति वे कर चुकी थीं।

श्री बिन्दु जी महाराज इनकी कुशाग्र बुद्धि तथा परिपक्व विचारधारा से सर्वथा प्रभावित रहे। वे सदा कहा करते ऐसा तितिक्षापूर्ण जीवन यापन करना असम्भव ही है। वास्तव में यह स्थायित्व एक महान व्यक्तित्व को ही विरासत में प्राप्त होता है।

श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

चैतन्य चरितावली ग्रन्थ को पढ़कर पूजनीया बोबो का मन श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी के प्रति कृतज्ञता से भर गया। निश्चित ही इस चरित्र का प्रणयन कर साधक जगत के प्रति, एक बहुत बड़े प्रेरणा दायक इतिहास का सृजन हुआ है। पू० बोबो की महाप्रभु जी के प्रति आस्था थी– अतः सहज इतना सरस वर्णन पढ़ कर सुख में निमग्न हो जातीं। इनके अम्बाला आगमन पर अपनी श्रद्धाञ्जली/अभिवादन करने तथा उनके दर्शन करने गईं।

पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय, उसकी भाषा शैली तथा भावों का सरस अंकन, उसकी प्रशंसा निश्चित ही उसका पुरस्कार है। वे भी अत्यन्त प्रसन्न हुए। जहां मन और भावों का योग होता है– वहां रस प्रवाह सुनिश्चित ही हो जाता है।

वृन्दावन में महाराज जी के आश्रम में भी पू० श्री सुशीला बहन जी, श्री दर्शन बहन तथा श्री उमा बहन के साथ दर्शन करने गईं। विजय भी साथ था। उन्होंने पहचान लिया और बड़ी ही आत्मीयता से मिले। वे वृन्दावन आकर स्थायी रूप से वास कर रही हैं– यह जानकर बहुत ही प्रसन्न तथा प्रभावित हुए। उपरान्त भी दो एक बार घर आकर कृपा की।

दीनानाथ दिनेश जी का श्री मद्भगवद्गीता का हिन्दी खड़ी बोली में पद्यानुवाद बड़ा ही सराहनीय था। पू० बोबो का गीता– पर स्वयं का अधिकृत वक्तव्य, सुन अनेक लोग इनसे पढ़ने चले आया करते थे। श्री दिनेश जी सदैव इनके इस आधिकारिक अभिमत की प्रशंसा किया करते थे। पू० बोबो के प्रति उनका अत्यन्त आत्मीय स्नेह रहा।

श्री मुकुन्द हरि जी महाराज की सङ्कीर्त्तन शैली बड़ी ही प्रभावात्मक थी। श्री राधाकृष्ण कृपा कटाक्ष की लय तथा गति में जो ध्वन्यात्मकता थी उसे सभी सराहते। पू० बोबो भी इनकी इस शैली की सदा सराहना करतीं।

❑❑❑

तेरह || श्री सुशीला बहन जी से मिलन

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं ना पुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गि सङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ***

श्री मद्भागवत १/१८/१३

जो जहाँ के लिये बना है- इच्छा न रहने पर भी वहाँ पहुँचेगा ही । जो वस्तु आपके लिये निर्मित हुई है- आपको प्राप्त होगी ही। श्री कृष्ण चरणों में आसक्त भक्तों का गन्तव्य श्री कृष्ण चरणों में रति होना है तथा भगवान राघवेन्द्र की कृपा वर्षा भगवान राम के चरणों में अनुरक्त भक्तों पर अनायास बरसेगी ही ।

प्रायः एक विचार, एक मन, एक भाव तथा एक इष्ट के प्रति समर्पित जनों का सहज एकत्रित हो जाना बहुत ही स्वाभाविक है । वहाँ विचारों का तादात्म्य सहज हो, रस की निष्पत्ति स्वाभाविक ही होती है । उस रसानन्द के आस्वादन में रता, मधुर भाव सम्पन्ना इन गोपाङ्गनाओं के विचार, भाव तथा समर्पण, मन की जिस सहज धारा को लेकर हुए, तदनुसार ही श्याम सुन्दर ने उन्हें अपने अत्यन्त सामीप्य में, मधुर रस में सराबोर कर दिया । इसी सुरस भाव साम्य की भित्ति पर हुआ पू० बहन जी का श्री सुशीला बहन जी से मिलन ।

सन् १९४६ के प्रारम्भ में ही इनके पिता पं. जयनारायण लाहौर छोड़, स्वेच्छा से डाक तार विभाग अम्बाला कार्यालय में आ चुके थे । आकर अपने भाई के यहाँ रहने लगे थे । उनकी दो कन्याऐं, एक तो वे जिनका संदर्भ हम देने जा रहे हैं और दूसरी छोटी निर्मला शर्मा जिसे प्रथम कक्षा में प्रवेश हेतु श्री सुशीला बहन जी सनातन धर्म कन्या विद्यालय में ले गईं । वहीं एक अध्यापिका से उनका परिचय हुआ । इधर जिस भवन में पंडित जयनारायण जी आकर ठहरे थे, उन वकील साहब की भी एक कन्या श्री सुशीला बहन जी को अपने साथ लेकर सहेली बनाने के लक्ष्य से श्री

*** यदि भगवान में आसक्त रहने वाले संतों का क्षण भर भी सङ्ग प्राप्त हो जाए तो उससे स्वर्ग और मोक्ष तक की तुलना नहीं कर सकते फिर अन्य अभिलषित पदार्थों की तो बात ही क्या है ?

ऊषा बहन जी से मिलवाने लाई। जिस अध्यापिका से सुशीला जी विद्यालय में मिली थीं वह भी संयोग से श्री ऊषा बहन जी के घर पर मिल गईं। ऊषा बहन जी से चर्चा हुई, मनों में आकर्षण बढ़े और ये दोनों एक दूसरे के निकट हो गईं।

हमारी चरित्र नायक कांग्रेस की अध्यक्षा थीं। उन्होंने वकील साहब की लड़की से, श्री सुशीला जी को कांग्रेस की सभा में ले आने के लिये आग्रह किया। अगले दिन सभा में सभी सदस्य उपस्थित हुए, साथ-साथ सुशीला जी भी पहुँचीं। अनेक चर्चाऐं वार्ताऐं चलीं। देश-भक्ति, राजनीति तथा आध्यात्मिक विषयों पर भी वार्ता हुई। श्री ऊषा जी की मधुर वाणी, मृदुल स्वभाव तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व ने सुशीला जी को भी प्रभावित किया। परिचय प्रगाढ़ मैत्री में परिणत हो गया परन्तु इनके राजनैतिक जीवन से सुशीला जी विशेष प्रभावित न हो सकीं।

इधर विद्यालय में व्यवस्था की सहसा कमी हो गई। कुछ अध्यापिकाओं की आवश्यकता थी, सभा के लोगों द्वारा प्रयास कर सुशीला जी को विद्यालय में कार्य करने हेतु मना लिया गया। सभा वालों ने विद्यालय की अव्यवस्था की बात श्री ऊषा बहन जी के पिता जी से भी की तथा पिता जी के कहने पर ऊषा बहन जी ने भी विद्यालय का कार्य भार पुनः सम्हाल लिया। दोनों सहेलियाँ अब साथ-साथ अध्यापन का कार्य भी करने लगीं। यह मिलन घनिष्ठता में परिणत हो ही चुका था, अब यह घनिष्ठता आत्मीयता का रूप ले इतने अपनेपन से परिपूर्ण हो गई कि एक दूसरे का अभाव खटकने लगा। विद्यालय में तो मिलन होता ही था, बाहर भी मिलते, विद्यालय के समय के उपरान्त सत्सङ्ग में मिलते। देवालय में दर्शनार्थ आते तो भेंट होती। एक चाव, एक उमंग सदा उद्वेलित करती रहती। अवसर खोजते रहते परस्पर चर्चा हेतु।

वह चर्चा क्या थी? किस हेतु को लेकर थी? कुछ पूरी तरह स्पष्ट न होने पर भी अपनी कहने की और उनकी सुनने की व्यग्र लालसा, हर समय बनी रहती। जल्दी ही इस मैत्री में एक नया मोड़ आया और यह चर्चा अध्यात्म तक ही सीमित होने लगी। राजनीति का आवरण अनेक बार ऊबाने लगा। चर्चा का विषय बने सुनील श्यामघन, उनकी लीलाऐं, उनकी अभिन्न प्राण प्रिया श्री राधा तथा उनकी काय-व्यूह स्वरूपा यह ब्रज बालाऐं। उनकी लीलाओं की, उनके शृङ्गार की चर्चा, उनकी सरस

उक्तियों तथा भावानुभावों को लेकर मन एक अभाव का विशेष पूरक अनुभव करने लगा। चर्चा में निहित विषय तन-मन प्राणों में समाया ही था, हृदय का तार जुड़ गया और दो तन एक ही भावापन्न हुए, दो होते हुए भी अत्यन्त आत्मीयता वश एक ही दीखने लगे। साथ-साथ रहने का सुअवसर भी मिला।

एक बार कांग्रेस की मीटिंग का आयोजन रखा गया। श्री सुशीला जी उसमें न पहुँची। दूसरे दिन मन्दिर में वैशाख माहात्म्य सुनने के उपरान्त जब परस्पर भेंट हुई, तो बहन जी ने मीटिंग में न आने का कारण जानना चाहा। सुशीला जी ने बड़े ही संकोच से वैशाख माहात्म्य में अधिक रुचि दिखलाई। बहन जी तभी बोलीं, 'तुमने पहले से ही यह बात क्यों न कह दी।' निश्चित ही धर्म का महत्त्व राजनीति से अधिक है। वे स्वयं इन्हीं विचारों की थीं- बस अब मैत्री आध्यात्मिकता का संग जुड़ने से और प्रगाढ़ हो सत्संग में परिणत हो गई।

परस्पर मिलतीं, श्री ठाकुर जी का शृङ्गार कहतीं, उनकी लीला चर्चा होती, यह चर्चा केवल वाणी का विषय ही नहीं, अपितु प्राणों का आधार थी, जीवन्त शक्ति थी। भगवान केवल भगवान न रहकर अपने सम्बन्धी रूप में भासने लगे थे, उनकी प्रतीति होने लगी, 'वे तो हैं हमारे ही, हमारे ही, हमारे ही और हम उनही की, उनही की, उनही की हैं' अन्योन्याश्रय का भाव पुष्ट हो कर प्रत्यक्ष हो, प्राकट्य का भान कराने लगा था। श्री कृष्ण अब कोई देवता न थे, भगवान न थे और न ही विश्व के स्रष्टा और संहारक रूप में रह गए थे। वे प्राणों के प्राण थे, जीवन की जीवन्त शक्ति थे, नेत्रों का शृङ्गार थे, सामीप्य के सङ्गी थे, हृदय का धन थे। वे श्यामलेन्दु, अपनी श्यामलता और सरसता लेकर, मृदुलता और पोषण लेकर, इनके जीवन में उदय हो गए थे, पूर्णतः छा गए थे। वे श्याम-घन अब हृदयधन बने सबल सम्बल तथा मधुर आश्रय बन गए थे।

इधर पंडित जयनारायण जी का जीवन भी भक्ति पूर्ण था। वे श्री पूर्णानन्द जी गिरि से दीक्षित थे। गृहस्थ में अधिक रुचि न होने के कारण एक वैराग्य पूर्ण जीवन यापन करने का प्रबल आवेग बीच-बीच में उन्हें उद्वेलित करता रहता था। इसी आवेग वश उन्होंने अपने कार्यालय से त्याग पत्र दे दिया। समस्त परिवार को अपने निजी पैतृक ग्राम, कांधला आ जाना पड़ा। श्री सुशीला बहन जी को एक परीक्षा देनी थी। वही हेतु

बना, श्री ऊषा बहन जी की सन्निधि में रहने का । दोनों अभिन्न हृदया सहेलियों को साथ-साथ रहने का सुयोग मिला । परस्पर चर्चा होती । श्री कृष्ण कथा कहते-कहते रातें भोर में परिणत हो जातीं, दिवस छोटे लगते- और यह न समाप्त होने वाली चर्चा और-और लम्बी होती चली जाती, एक विशेष सुख में सराबोर रखती । यन्त्रवत् सभी चलता रहता, एक विशेष भाव में, एक खुमारी में तथा श्यामसुन्दर की लीला कथा के मद में ।

हमारी चरित्र नायक श्री ऊषा बहन जी अपने एकान्त में सुख में मग्न रहतीं । कार्य व्यस्तता अत्यधिक हो गई । काव्य सृजन उनमें एक दैवी गुण था, भगवच्चर्चा उनका स्वभाव था प्रत्युत जीवन ही था । राष्ट्र- प्रेम के कारण कांग्रेस का कार्य उन्हें करना ही पड़ता था, उधर विद्यालय का समस्त कार्य, सारा ही दिन भारी व्यस्तता में बीतता । इस सबके साथ-साथ जीवन की मूरि अध्यात्म धारा क्षण-क्षण में मिले प्रणय पगे आश्वासनों से ओत-प्रोत होती रहती ।

परीक्षा देकर श्री सुशीला बहन जी को अपने पैतृक गांव कांधला (मुजफ्फरनगर) जाना पड़ा । अध्यात्म की अजस्र लीला चर्चा जो दोनों में परस्पर प्रवहमान थी, उसमें एक नया मोड़ आया । प्रत्यक्ष चर्चा ने अब पत्रों का माध्यम अपना लिया । भगवच्चर्चा का जो सुख समीप रह कर सुलभ हो रहा था अब शारीरिक सामीप्य से उठ मन से युक्त हो उसी सुख में सराबोर करने लगा । प्रतिदिन पत्र लिखा जाता- और पोस्ट कर दिया जाता । उधर से उत्तर और इधर से प्रतिउत्तर । इन पत्रों के माध्यम से प्रवाहित होती रही सुखमयी चर्चा । श्री कृष्ण को लेकर निज स्वरूप और सम्बन्ध का जो पोषण हुआ उससे एक विचित्र सी दशा हो गई । शरीर कब तक टिकेगा यह भी सन्देह सा लगने लगा । अमूल्य निधि स्वरूप उन पत्रों को अग्नि-देव ने आत्म सात कर लिया । उनको अपने में समेट कृतार्थ हो गया वह ।

इधर किसी कारणवश श्री सुशीला जी सपरिवार अपने चाचा के पास देहली आकर रहने लगीं । श्री कृष्ण में उनकी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई । जिस लीला चर्चा का बीजारोपण तथा सम्बन्ध का भान श्री ऊषा बहन जी की सन्निधि में हो गया था- आज वह प्रीति-लता अपने पूर्ण विकास पर थी- जो सन्निधि सुख अम्बाला में प्राप्त था उत्तरोत्तर पत्रों के माध्यम से तथा अब शारीरिक दूरी होने पर भी मन का मन से तादात्म्य होने के कारण एक और ही भाव में परिणत हो अत्यन्त नैकट्य का बोध कराने

लगा। बेतार का तार सदैव जुड़ा रहने लगा। श्री कृष्ण लीला-चर्चा तथा मधुर भाव से जीवन ओत-प्रोत था ही, प्राणधन को अत्यन्त निकट पाने को उमड़ा आवेग अब शरीर का साथ छोड़ भागने को विवश करने लगा।

अक्टूबर मास १९५० की एक सुबह बेअर्ड रोड स्थित उस मकान में सन्नाटा छा गया। लोग आकुल-व्याकुल हो गए। इधर-उधर खोज होने लगी। अपने सम्बन्धियों से पूछा गया। उधर अम्बाला छावनी में श्री ऊषा बहन जी के यहाँ भी पता करवाया गया- परन्तु श्री सुशीला जी का कहीं पता न लग सका। अपनी आकुल-व्याकुल बेबसी में वे अपने जीवनधन से मिलने, उनकी नगरी, उनके निजधाम श्री वृन्दावन धाम चली आईं। किसी से पूर्व परिचित तो थीं नहीं- उनका परिचय केवल नन्दनन्दन से ही था। श्याम सुन्दर ही उनके एक मात्र संरक्षक थे- अतः उन्हीं की छत्रछाया में, उन्हीं की सन्निधि में यहाँ आने पर, उन्हीं की खोज में श्री यमुना तटवर्ती मदन मोहन मन्दिर के सामने खेत में अपनी भरपूर युवावस्था में रात्रि भर पड़ी रहीं। न तो इन्हें कोई भय ही लगा और न आहार ही की कोई चिन्ता हुई। एक अपरिसीम सुख में मग्न-मत्त, इन्होंने बिना किसी गर्म वस्त्र के, इस ठंडी रात्रि को सहर्ष बिताया। उन्हें सभी कुछ सुखद लगा। श्री बिहारी जी के दर्शन करते समय एक बंगाली परिवार से सम्पर्क हो गया। वे इन्हें अपने साथ ले गए। इनके भावावेग और प्रेममयी स्थिति को देख वे बड़े ही प्रभावित हुए और यन्त्र-चालक की भांति इनके कहे अनुसार उन्होंने दिल्ली का टिकट दिलवा दिया। कुछ दिन वृन्दावन/मथुरा निवास कर श्री सुशीला जी दिल्ली लौट गईं। यहाँ आकर श्री सुशीला जी को जिस सुख की अनुभूति हुई, प्रिया-प्रियतम के अनुराग पूर्ण अनुभव हुए, उसने इनके जीवन को सरस तथा मधुर तो बना ही दिया, एक नवीन रस का संचार तथा एक स्थायित्व भी प्रदान किया।

एक उन्माद, प्रिय मिलन का उन्माद श्री सुशीला जी पर छाया रहने लगा। वे सीधी अम्बाला हमारी चरित्र नायक श्री ऊषा बहन जी के पास पहुँची। सभी जगह समाचार भिजवा दिये गए। सभी स्थान पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। भगवान का विधान कुछ विचित्र ही होता है। श्री सुशीला जी के इस आवेग में एक ठहराव लाने के लिये, एक स्थायित्व लाने के लिये श्री ऊषा बहन जी ने जो व्यवहार किया- उसका सुखद परिणाम भविष्य में जल्दी ही सामने आ गया। इनके इस आवेग से वे अधिक प्रसन्न न हुईं। इस विचार को भी उन्होंने अधिक प्रकट होने नहीं दिया। अपनी निधि को गोपनीय रखना चाहिये उनकी यह धारणा थी। वे

सदैव कहा करती Don't toss your heart in the street. सेव्य श्री विग्रह स्वरूप ठाकुर जी को वे प्रत्यक्ष मानती थीं वास्तव में उनका जीवन था भी ऐसा ही, अतः बड़े ही सरल स्वभाव से उन्होंने श्री ठाकुर जी की ओर संकेत कर कहा, इनमें तुम्हें श्री ठाकुर जी प्रत्यक्ष नहीं दीख रहे क्या ? श्री ऊषा बहन जी क्या थीं ? कहाँ तक उनकी स्थिति थी ? वे प्रिया-प्रियतम की कितनी कृपा भाजन थीं ? कहाँ और कितनी सीमा तक उनका लीला में अभिनिवेश/प्रवेश, था यह बात उनके साथ रहने पर, उनसे मिलने पर, उनसे चर्चा करने पर, उनकी स्थिति देख लेने पर भी जानना पहचानना कठिन था। उनकी रहनी इतनी सरल और साधारण थी कि इस सबकी झलक पाकर भी सर्वथा सभी भुलावे में ही रहते रहे । उच्च कोटि के संतों से, भक्तों और सिद्ध कोटि के महानुभावों से उनका सम्पर्क रहा । इतना ही नहीं अपने दिव्य स्वरूप में विराजमान सन्तों तक भी उनकी सहज गम्यता थी । वे सब इनको यथोचित सम्मान देते रहे परन्तु यह अत्यन्त गोपनीय बनी उनके अत्यन्त निकट होने पर भी एक अनबूझ पहेली ही रहीं ।

हाँ ! तो श्री ऊषा बहन जी ने श्री सुशीला बहन जी के इस आवेग की सराहना तो बाह्य रूप में अवश्य नहीं की क्योंकि वहाँ हेतु कुछ और ही रहा, परन्तु अन्दर-अन्दर उनके भाव का समादर करती रहीं। श्याम सुन्दर के सम्मुख अपनी भावना प्रकट करती हुई एक स्थान पर कह रही हैं *'मेरे प्राण ! तुम उन्हें अपने साथ ले गए, अच्छा किया । इससे अधिक सौभाग्य सुख और क्या होगा ..... उन महाभाग्यशालिनी से ईर्ष्या भी कैसी .... ।'*

इनकी अत्यन्त निकट श्री सुशीला बहन जी द्वारा ज्यों की त्यों सुरक्षित लेखनी बद्ध कर ली गई अनुभूतियों को देखकर ही यत्किञ्चित् अनुमान लगाने में हम लोग समर्थ हो सके । इन अनुभव लहरियों को छिपा कर ज्यों का त्यों श्री सुशीला बहन जी ने संग्रहीत किया, इस प्रयास में वे सर्वथा सफल रहीं क्योंकि एक बार कुछ पन्ने पलटते हुए यह डायरी हमारी चरित्र नायक के हाथ लगी । उन्होंने पढ़ा तथा अपनी संस्तुति सूचक इस पर कहीं कहीं सहसा संशोधन कर एक दो शब्द लिख दिये । उसी से अनुमान हुआ कि उन्होंने यह सब पढ़ कर ही एक आध स्थान पर किसी शब्द को बदला अतः इसकी सम्पुष्टि सहज हो गई । अन्यथा प्रचार तथा प्रसार के प्रति तो वे इतनी उदासीन थीं कि उनके रहते उन्हें कोई जान ही न सका । श्री सुशीला बहन जी का प्रयास ही हम सभी के लिये एक प्रेरणा स्रोत बनकर सामने आया है ।

सामने आने पर उन्हें यही कहा कि 'इस प्रकार चले जाने की आवश्यकता क्या थी ? अपने उस भावावेग को रोक पाने में असमर्थ हो श्री ऊषा बहन जी वहाँ से उठ कर चली गईं । श्री सुशीला बहन जी को प्रथम बार अनुभव हुआ ओह ! जिन प्राणधन को लेकर मन मचल रहा था, जिनका सामीप्य पाने को हृदय अकुला रहा था, जिनको पाने की लालसा व्यग्र कर रही थी, जिस मधुर आश्रय के लिये यह शरीर बना था- सेव्य स्वरूप में प्रत्यक्ष मूर्त हो वे इन्हीं चक्षुओं के लिये सुलभ होने लगे । अपने रसीले नयनों से, मधुर मुरली वादन से, सुमधुर मुस्कान से, प्रीतिभरे आश्वासनों से प्राणों में रसका संचार करने लगे । ओह ! वह श्यामल सुषमा, आत्मसात करती जा रही है । यह अनुभूति, रस में सराबोर कर गई श्री सुशीला बहन जी को, उन्हें सर्वस्व ही प्राप्त हो गया ।

कई दिन बीत चले, भाव वैसा का वैसा बना रहा । पिता जी को समाचार मिल ही चुका था । श्री सुशीला बहन जी को लेने इनके पिता अम्बाला चले आए । उन्हीं भावों में निमग्ना श्री सुशीला बहन जी देहली और पुनः अपने ग्राम कांधला आकर माता-पिता के पास रहने लगीं।

धीरे-धीरे गम्भीरता छा गई । भावों में स्थिरता आ गई । बाह्य वृत्ति और स्वरूप अन्दर ही सिमट अन्तर्मुखी हो गया । इस ठहराव विशेष ने सदा-सदा के लिये प्राणों को सतत बांध दिया । ज्ञानियों ने उसे अजपा जप की परिमित कहा, नैयायिक और वेदान्तियों ने अखण्ड ब्रह्म ज्योति कहा, परन्तु प्रेमियों का संसार ही निराला है । वहां द्वैत में अद्वैत और अद्वैत में द्वैत की स्थिति बनी रहती है । वही भक्तों का आधार है :

वंशीविभूषित करान्नव नीरदा-भात्
पीताम्बरादरुण बिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्द नेत्रात्
कृष्णात् परम किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ ***

पूजनीया ऊषा बहन जी तथा श्री सुशीला बहन जी का आजीवन सम्बन्ध बना रहा, उसका वर्णन हम समय समय पर विशेष रूप से आगे करते रहेंगे ।

❑❑❑

*** करों में वंशीधारण किये, पके बिम्ब फल सदृश ओष्ठ हैं जिनके जो पीताम्बर धारण किये हैं, नव नीरद के समान आभा वाले कमल सदृश्य नयन, पूर्णेन्दु के समान सुन्दर मुख वाले श्री कृष्ण परम तत्त्व के अतिरिक्त मैं कुछ और नहीं जानता ।

चौदह

क्रान्तिकारी युवकों का हृदय परिवर्तन

घोड़े की आत्मा का उद्धार

मलयाचलगन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते ।
तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सज्जनायते ॥ ***

सु० र० भा० ९०/४

द्वन्द्वमय इस संसार में दुःख के साथ सुख जुड़ा है, अच्छाई के साथ बुराई जुड़ी है, दिन के साथ रात भी है और संध्या के संग प्रभात भी है, यहाँ तक कि हर पहलू में जहाँ आशा, अभिलाषा अपनी सुखद भोर से मानव को प्रोत्साहन देती है- वहीं इसके विपरीत परिस्थितियाँ उसे सुखद नहीं लगतीं। प्रश्न एक ही उठता है, यदि दिन ही दिन रहे, अथवा भोर ही भोर रहे तो इन सबका अपना अस्तित्व समाप्त ही हो जाए। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है- यदि संसार में सभी शालीन, धनवान और सज्जन हो जावें तो जगन्नियन्ता का सारा खेल ही विपरीत हो जावे। हिंसा और अहिंसा दोनों एक चक्र के दो छोर, प्रकृति के नियम से सदैव गतिमान रहते हैं। जहाँ अच्छाई का एक पहलू सभी को सुखद लगता है, उसका दूसरा पहलू कोई नहीं चाहता। दूसरे पहलू की भी अपनी कुछ सीमाऐं हैं। अनेक बार परिस्थितियाँ भावनाऐं जीव को प्रेरित करती हैं। जो लोग अपरिपक्वावस्था अथवा अनजाने में इस ओर अग्रसर होते हैं- भान होने पर वे सजग हो प्रायश्चित भी कर लेते हैं (अधिकांश लोग इसी प्रकृति के होते हैं।) जैसे-तैसे यदि वे सन्मार्ग पर आरुढ़ हो जाते हैं- तो सौभाग्यशाली ही हैं।

पूजनीया बोबो का व्यक्तित्व बड़ा ही विलक्षण रहा है। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे, भिन्न-भिन्न प्रकृति के, विभिन्न भावनाओं वाले, रुढ़िगत मान्यताओं के समर्थक वृद्ध, आधुनिक विचारधारा से प्रभावित युवा वर्ग, कैशोर्य में पदार्पण करते तथा अपनी भावनाओं से अठखेलियाँ करते किशोर अथवा छोटे से छोटे बालक और यहाँ तक कि शिशुओं तक का उनके प्रति सहज ही स्नेह हो जाता था। यह स्नेह कब

*** मलयाचल की सुगन्ध से ईंधन भी जिस प्रकार चन्दन बन जाता है वैसे ही सज्जनों के संसर्ग मात्र से दुर्जन पुरुष भी सज्जन बन जाते हैं।

आत्मीयता में परिणत हो जाता वे लोग सर्वथा इस सबसे अनभिज्ञ ही रहते। इनके आस-पास अनेक लोगों का जमाव ही रहता था । सभी इनमें अपनत्व अनुभव करते । अपनत्व मात्र नहीं, सभी अनुभव करते जैसे पू० बोबो का स्नेह उन-उन के प्रति पूर्णता को लेकर ही है । क्यों न हो ? वे पूर्ण जो थीं, उन पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म से उनका नित्य तथा शाश्वत सम्बन्ध था । श्रीकृष्ण प्रेम में सिक्त-सिञ्चित् उनका जीवन उस रस से परिपूर्ण था , आप्लावित था तथा परिप्लावित था । प्रेम का वही रस-स्रोत उनके रोम-रोम से सतत झरता था । जो महानुभाव उनसे किसी भी प्रसङ्ग वश अथवा किसी मिस से उनसे परिचित रहे हैं- वे अवश्य ही उनकी सरलता, भावुकता और तन्मयता, सहृदयता, सुशील, शान्त और कोमल प्रकृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके होंगे । अतः उनमें जाने क्या भरा था कि उनका वह व्यक्तित्व अनजाने में आत्मीयता का प्रसार करता रहता था ।

एक बार अम्बाला छावनी, सनातन धर्म मन्दिर के एक पंडित जी ने इनकी लग्न-पत्रिका देख कहा था, "लाली ! तू चाहे जङ्गल में एकान्त में जाकर भी बैठ जावेगी तो भी तेरे पास समाज उमड़ा चला आवेगा ।" आखिर वह आकर्षण, वह निर्मलता, वह स्नेह तथा अपनत्व और सर्वोपरि उनकी श्री राधाकृष्ण के चरणों में प्रीति, प्रिया-प्रियतम से प्राप्त प्रेम की अनवरत प्रवाहित रस धारा जिसे मुक्त हस्त से वे श्याम-सुन्दर के आदेश से जन-जन में लुटातीं रहीं । उनका वह प्रेम भाव सीमा के समस्त बंधन तोड़ विकसित हो चुका था । उनका राग, प्राणी मात्र के प्रति सम भाव में विकसित हो चुका था । उनकी यह भावना प्रिया-प्रियतम के प्रश्रय में उन पर पूर्णतः निर्भर हो गई थी- और इन्हें स्नेह और अपनत्व के अतिरिक्त कुछ अन्यथा विचार ही न आता था ।

अहिंसा भाव इनके जीवन का एक मुख्य अङ्ग रहा । किसी के प्रति वाणी से भी इन्होंने कुछ कटु नहीं कहा । यहाँ तक कि अध्यापन काल में प्रधानाध्यापिका होने के नाते विद्यालय में बच्चों को दण्ड भी देना पड़ता था । मारना तो इनके स्वभाव में था ही नहीं, कभी-कभी खड़ा कर दिया करती थीं । प्रसङ्ग वश उन्होंने एक बार पाठ में जहाँ सभी बहन-भाई उपस्थित थे, कहा था, अगर दण्ड देने के लिये किसी बालिका को खड़ा कर दिया करतीं तो भगवद्स्वरूप मान "मैं उस बालिका के लिये भगवान से प्रार्थना करती, कहा करती, प्रभुजी ! मैंने केवल विद्यालय के व्यवस्था सम्पादन हेतु तथा इसके हित के कारण ही इस बालिका को

खड़ा किया है। आप मेरे हृदय की जानते ही हो'' उतने समय स्वयं भी खड़ी रहतीं, किसी न किसी मिस से। वह बालिका तो इस सबसे सर्वथा अनभिज्ञ ही रहती होगी– परन्तु इनकी स्नेहशीलता की सीमा न थी।

इधर जिस प्रसङ्ग का वर्णन हम करने जा रहे हैं वह है उनकी अहिंसा भावना, जो उनके सूक्ष्म परमाणुओं में समायी सहज ही लोगों को प्रभावित करती थी। उनकी यह वृत्ति इतनी विस्तृत हो चुकी थी कि अणु–अणु में उनकी सहृदयता छलक जाया करती। एक बार उनके साथ जाने का संयोग लेखक को भी हुआ। रास्ते में एक गधा आड़ा खड़ा था, हटाने पर भी वह नहीं हटा। लेखक ने एक छोटा सा पत्थर उठा कर उसके ऊपर फैंक दिया। सहज ही वह उसके लगा। हर समय डंडे खाते रहने वाले जीव को तो निःसन्देह एक पुष्प के आघात से अधिक कष्ट नहीं हुआ होगा। इधर पू० बोबो के मन की क्या कहूँ– उन्होंने इस प्रसङ्ग वश खूब ही डांटा, बोलीं यह चोट मेरे लगी है। आज जल ग्रहण नहीं करुँगी– कहते–कहते वे रोने लगीं। उन्हें मनाया– एक साधारण से जीव के प्रति भी उनका मन सहज और कोमल हो जाता था। किसी वृक्ष से एक पत्ता भी उन्होंने तोड़ा हो, ऐसा कभी नहीं हुआ।

एक बार अपने पिता जी के साथ देहली से रेल से लौट रही थीं। उसी डिब्बे में कुछ युवक भी बैठे थे। अपनी बहादुरी की गाथा परस्पर दोहरा प्रसन्न हो रहे थे। यह घटना भारत स्वतंत्र होने के बाद की है। अभी लोगों के रक्त और विचारों में गर्मी शेष थी। बीच–बीच में छुट–पुट घटनाऐं होती रहती थीं। यह युवा मण्डली भी अपने किसी ऐसे ही कृत्य की चर्चा कर आनन्द मग्न हो रही थी।

पू० बोबो सदा से अहिंसा प्रिय रही हैं। एक चेंटी के प्रति भी उनकी जीवन्त भावना थी। यहाँ तक कि वृक्ष–वल्लरियों पेड़–पौधों के प्रति उनकी भावना सजीवता को लेकर रहती। उन युवकों की बात सुनती रहीं। जब वे तनिक शान्त से दीखे तो इन्होंने बड़े ही तर्क तथा Logic से, अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से उन्हें जैसे अपना ही बना लिया। वे लोग बहुत ही शर्मिन्दा हुए।

इसी दौरान अम्बाला का स्टेशन आ गया और पू० बोबो उतरने की तैयारी करने लगीं। उनमें से एक युवक ने एक छुरा भेंट देते हुए इनसे कहा, ''बहन हमें गर्व है कि हमारे देश में आप जैसे महान व्यक्तित्व विद्यमान हैं। आज के बाद हम ऐसे दुष्कृत्य को कभी न करेंगे। आप हमारी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें।'' सम्भव है आपको कभी इसकी

आवश्यकता पड़े । उसे देखते ही इन्होंने कहा, "भैया ! इस सबकी आवश्यकता नहीं होगी । अहिंसावादी वृत्ति और व्यक्तित्व इतना सशक्त होना चाहिये कि सामने वाला उससे प्रभावित हो जावे । वाणी की आवश्यकता तो पीछे की बात है– अतः इसे आप अपने पास ही रखें ।" "अपने भाइयों के जीवन में आए परिवर्तन स्वरूप यह भेंट आप अवश्य स्वीकार करें ।" वह व्यक्ति बोला, 'और यही प्रतीक होगा हमारे जीवन में आए नए मोड़ का ।'

कई भाई–बहनों ने उनके पास वह छुरा बाद तक रखा देखा । उसे उपयोग में लाने की तो बात ही कहाँ होती ?

घोड़े की आत्मा का उद्धार

बात लगभग सन् १९७५ की है । पू० बोबो कृष्णानगर से तांगे से लौट रही थीं । साथ में थीं पू० सुशीला बहन जी, दर्शन तथा विजय। बिरला मन्दिर से कुछ आगे जब तांगा निकला तो उस घोड़े की आत्मा पू० बोबो के सामने करबद्ध दयनीय स्वरूप में उपस्थित हो गई और अपने उद्धार हेतु प्रार्थना करने लगी । तांगा चलता जा रहा था और उस घोड़े की आत्मा भी सम्मुख मुख किये साथ–साथ ही चलती जा रही थी । तांगे वाला अपनी मस्ती में चलाता जा रहा था । पू० बोबो का मन अत्यन्त करुणा से भर गया । जब तक तांगा वृन्दावन पहुँचा यह दृश्य उसी प्रकार स्थायी बना रहा । उतर कर सभी घर चले आए । पू० बोबो ने उस काले घोड़े के विषय में पूछने के लिये विजय को अगले दिन कहा ।

यह बात तो पहले ही पता लग चुकी थी कि वह तांगा मथुरा का है । घोड़ा भी हृष्ट पुष्ट था तथा तांगे वाले की सहज मस्ती और ब्रजवासी उत्फुल्लता ने एक सामान्य सा परिचय भी करवा दिया था । विजय ने अगले दिन तांगे वाले से पहचान बता कर उस घोड़े के विषय में पूछा तो उन्होंने बतलाया वह घोड़ा तो बहुत ही कीमती था उसका मालिक सेवा भी खूब करता था । सहसा एक दिन पहले उसे न जाने क्या हो गया । बिल्कुल स्वस्थ दीखते उस घोड़े ने प्राण छोड़ दिये । हम सभी आश्चर्य चकित हैं कि बिना किसी बीमारी के ऐसा कैसे हो गया ? घोड़े वाला भी अत्यन्त दुखी है ।

यह बात जब पू० बोबो से जाकर कही तो उन्होंने उस सारी घटना को पू० सुशीला बहन जी, दर्शन, उमा के सामने कहा था ।

❑❑❑

राग रस सौरभ लुटाते हैं तुम्हारे नयन क्यों ?
लालसा फिर से जगाते हैं तुम्हारे नयन क्यों ?

चाहती हूं भूल जाऊं वह सभी बातें पुरानी ।
खिलखिलाते दिन सजीले रस भरी रातें सुहानी ।
जब कभी निश्चिन्त होकर बैठ जाती हूं ज़रा,
हूक सी उर में उठाते हैं तुम्हारे नयन क्यों ?
लालसा फिर से जगाते हैं तुम्हारे नयन क्यों ?

सोचती हूँ, अब न आगे, और कुछ तुमसे कहूंगी ।
और जितना हो सकेगा दूर ही तुम से रहूंगी ।
जब कभी उद्विग्न मन को शान्त करती हूँ ज़रा,
इंगितों से फिर बुलाते हैं तुम्हारे नयन क्यों ?
लालसा फिर से जगाते हैं तुम्हारे नयन क्यों ?

९.२.६८

ये रूप के भार दबी सी रहें,
वे नेह के भार झुके से रहें ।
ये नाह के नेह पगी सी रहें,
वे प्यार प्रिया के छके से रहें ।
ये प्रीत नई सकुची सी रहें
वे राग नये में पगे से रहें ।
ये भाव विवश ठिठकी सी रहें,
नव चाव भरे वे ठगे से रहें ॥

७-१०-६८

प्रथम भाग

चतुर्थ अध्याय

पृष्ठ १०१ से १५१ तक

युगल रूप रस माधुरी,
अधिक अधिक अधिकाय ।
निरखि नैन व्याकुल रहैं,
सिन्धु न सीप समाय ॥

वे बोलहिं रसमय वचन,
मैं रिस वचन सुनाऊं ।
पै उनकी रस रीति पै,
मन ही मन बलि जाऊं ॥

पन्द्रह

श्री ठाकुर द्वारा इहलौकिक बन्धनों से मुक्ति का समय निर्धारण-प्रधानाध्यापिका पद से निवृत्ति

बालोऽयमालोल विलोचनेन,
वक्त्रेण चित्रीकृत दिगमुखेन।
वेषेण घोषोचित भूषणेन,
मुग्धेन दुग्धे नयनोत्सवं नः।***

श्री कृष्णकर्णामृत ६९

श्याम सुन्दर की रूप माधुरी का जादू ही कुछ ऐसा है वे जिसे अपनाते हैं, आकृष्ट किये चले जाते हैं। उनके यह नव-नव रसाकर्षण किसे न अपनी माधुरी से सराबोर कर देंगे। उसी रूप माधुरी में छका हृदय फिर इस जगत् के कृत्यों में किस प्रकार लगा रहेगा। श्याम-सुन्दर के नयन सायकों से बिद्ध हृदय, मन्द मधुर मुस्कान रश्मियों में सरसाया तथा, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में उलझा मन उनके अतिरिक्त कुछ और सोचने योग्य रह ही कैसे सकता है ?

सेव्य स्वरूप युगल सरकार पू० बहन जी के सभी कृत्यों के साक्षी रहे, उनके प्रत्येक कर्म में, उनकी प्रत्येक क्रिया में समाए, उनके जीवन में ओत-प्रोत रहे।

अब यह तीस वर्ष की हो चुकी थीं। मन की स्थिति विचित्र रहती। श्री कृष्ण लीला-चर्चा ही सुखमयी लगती। अन्य कृत्यों से मन उपराम सा होने लगा। अपने सभी प्रतिबन्धों का भार अब छोड़ देने को मन होता। एकान्त में रहने की कामना प्रबल होती जाती। प्रायः श्री ठाकुर जी की सन्निधि में रहतीं, वह भी मौन .....। घंटों एकान्त में, जाने किस चिन्तन में मग्न रहतीं। इनके मन की इस विकलता को, विवश-परवश स्थिति को, सभी प्रतिबन्धों से मुक्त होने की प्रबल लालसा को, इनके मन की सरस बेचैनी को श्याम सुन्दर देख ही रहे थे। अपनी अनन्या प्रिया को उसकी समस्त रागानुराग पूर्ण भावनाओं को- उसके उर की सरस बेचैनी को एक प्रेम भरा आश्वासन देने- एक प्रीति पगा विश्वास दिलाने-इनकी

*** ये किशोर कृष्ण अपने चञ्चल नयन कटाक्षों द्वारा, सर्व दिशाओं को सुशोभित करती अपनी मुख माधुरी द्वारा, ब्रज तथा वन्याभूषणों से मण्डित हमारे नयनों को आनन्द से परिपूर्ण किये दे रहे हैं।

लालसाओं का सत्कार करने श्याम-सुन्दर स्वयं चले आए। इनकी प्रेम भरी निर्भरता को वे देख रहे थे, उन्होंने आश्वासन दिया, समय का निर्धारण भी कर दिया। अनुमान से बात सितम्बर मास सन् १९५५ के आस-पास की रही होगी। श्याम सुन्दर ने सब ओर से सिमट निवृत्त होने की अवधि डेढ़ वर्ष निर्धारित कर दी। मन में एक प्रसन्नता भर गई। समयावधि और प्रियतम के आश्वासन ने जीवन में नवीन उत्साह और स्फूर्ति भर दी। नेत्रों के सामने, वृन्दावन की रसीली स्थली, श्री यमुना तटवर्ती अलबेली प्रकृति तथा श्याम सुन्दर की चरण रज से अभिषिक्त स्थली और उसके वातावरण ने एक नवीन आशा किरण से जीवन लता को सरसा दिया। उस समय की विकलता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगी।

प्रतीक्षा के यह दिवस युग से बीतने लगे। विकलता बढ़ती गई। हृदय अनजाने में जाने क्या-क्या चाहने लगा। उस दिवस को स्मरण कर प्रसन्न हो जातीं, उत्फुल्ल हो जातीं। "अब इन सभी इतर अनुबन्धों और प्रतिबन्धों से निवृत्त हो जाऊंगी। श्री ठाकुर जी की सरस स्मृति और सन्निधि में ही समय बीतेगा। उन्हीं की सेवा-पूजा में रत रहूँगी। उनसे लड़ूँगी- झगड़ूँगी, उनकी मान-मनुहार करूँगी। उनका शृङ्गार करूँगी, उन्हें लाड़ लड़ाऊंगी, और....और वे मेरे प्राण, प्राणों के प्राण, मेरे प्राणधन मेरे सर्वस्व का इसमें योग है इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है भला ! मेरा सौभाग्य ! ओह ! युगों से उन्होंने मुझे इतर धन्धों में उलझा अपने से .... दूर रखा है। उन्हें मेरा ध्यान ही नहीं आया। ओह! दैव ही मेरे विपरीत रहा अन्यथा उनकी ममता, उनका लाड़, उनका वह मृदुल स्वभाव, अहैतुकी-करुणा- सभी तो समय-समय पर मेरे इस अभाव की पूर्ति कर मुझ में सरसता भरते रहे- आशा बंधाते रहे, सराबोर करते रहे- अन्यथा जगती के यह सब कार्य निबाहने की सामर्थ्य अकेले मुझमें न थी। वे तो मेरे प्रतिक्षण के साक्षी रहे न"। इस प्रकार की अनेकों भाव धाराऐं उठतीं और विलीन हो जातीं। श्याम सुन्दर द्वारा प्रदत्त उन सभी कार्यों को कुशलता से निबाहती रहीं, परन्तु लक्ष्य के प्रति सर्वथा सजग, पथ के प्रति जागरूक और अपनी सुदृढ़ता से भूषित हुई। समय अब निर्धारित था। इन सब व्यस्तताओं में एक वर्षगांठ और निकल गई- समय और समीप आ गया- अब भान था तो केवल श्याम-सुन्दर का; स्मृति थी, तो उन्हीं की।

निर्धारित अवधि एक-एक दिन कर समीप आती गई। सम्भवत: विद्यालय के कार्यकाल का यह अन्तिम सत्र था। इनकी भावपूर्ण

मनः स्थिति, उसमें उठती रस तरंगें-उमंगें, बड़े वेग से, बड़े उत्साह से गतिमान थीं। विद्यालय के काम काज से मन उपराम हो गया। बाह्य सभी प्रतिबन्धों से सर्वथा मुक्त हो चुकी थीं। इतर कृत्यों में मन का योग न के समान होता था। जैसे-तैसे समय व्यतीत होने लगा तथा वह सुखद अभीप्सित दिवस धीरे-धीरे पास आने लगे।

पाठशाला के कार्यकाल का अन्तिम वर्ष और उसका भी अन्तिम सत्र चल रहा था। वह निर्धारित समय भी आ पहुँचा। इन्होंने प्रबन्धक समिति को अपना त्याग पत्र सौंप दिया। सभी में निराशा छा गई। जिस सबकी कल्पना करने में सभी भीत हो रहे थे- आज गाजवत् गिरा देख सभी सन्न रह गए। बात अभी दबी रही। शिक्षक वर्ग तक ही पहुंची थी। उनमें भी एक असन्तोष सा छा गया। अपने प्राणों से भी प्रिय-अत्यन्त आत्मीय प्रधानाध्यापिका से अलग होने को किसी का भी मन न होता था। अध्यापक वर्ग में एक विचित्र स्थिति बन गई। उनके मन द्रवित हो गए। सजल नयन और अस्त-व्यस्त भावों से बहन जी के पास जाकर अपनी भीति में किसी आशा किरण को देखने को अकुला उठे। उनके पास जा, जा कर सभी ने आग्रह किया- अपने त्याग पत्र देने की बात भी कह डाली। सभा वालों ने भी आग्रह किया, प्रबन्ध समिति ने भी अपना सा अटूट प्रयास किया। अनेक सदस्यों ने दबाव भी डाला- परन्तु बहन जी की सजग गम्भीरता में सब विलीन हो गया। लोगों की भीड़ की भीड़ उमड़ने लगी। अपने नयन नत किये बहन जी सभी की प्यार भरी भावनाओं को, अश्रुओं के मिस उछल कर बरसे प्यार को, उनकी विवश-परवश स्थिति को देखती रहीं- मूक अभिवादन करती रहीं- उन्हें आश्वासन प्रदान करती रहीं। करुणा की वह साक्षात् मूर्ति जो किसी के हृदय का क्षण भर का द्रवण भी न देख सकती थी, आज गम्भीर तथा सन्तुलित मन से सभी को धीरज बंधाती रही।

धीरे-धीरे यह बात विद्यार्थियों में भी फैल गई। सभी अपनी-अपनी कक्षाओं से भागे चले आए और फूट-फूट कर रोने लगे। करुणा पूर्ण यह दृश्य जिसे देख साक्षात् करुणा का हृदय भी पसीज उठा। आज का दिन बहन जी के जीवन में एक सरस और सुखद आह्लाद लेकर आया था, परन्तु अनेक हृदयों में वह विषाद बन कर छा गया। अनेक हृदय दीप टिमटिमाने लगे। स्नेह, अश्रुओं के मिस बहने लगा। दीपक का स्रोत धीरे-धीरे क्षीण होने लगा, अंततः स्नेह के बिना कैसे जले रहते। लड़कियों के समूह बहन जी से जा-जाकर पूछने लगे। अनेकों ने बहन जी की

गम्भीर मुख-मुद्रा से इस बात का विश्वास कर साहस ही न किया। बहुतों को विश्वास होता ही न था। बालक, वृद्ध सभी मौन हुए अश्रु बहाते रहे। टोलियों में एकत्रित लड़कियाँ सिसक-सिसक कर रो रही थीं। अध्यापक वर्ग भी अपने अश्रुओं को पोंछते बार-बार कभी बाहर और कभी अन्दर जा-आ रहे थे। सम्भवतः सभी आशावान थे कि किसी न किसी के द्रवण से पसीज बहन जी का हृदय उन्हें अपनी इस विचारधारा को बदलने में सहायक हो जावेगा। ऐसा बहुत कम ही होता है जिसके जीवन का लक्ष्य स्थिर हो चुका है, जो श्याम सुन्दर के अनुराग में डूब चुका है- जिसे वृन्दावन और ब्रज की इन रसीली कुञ्जों और लताओं का आस्वाद मिल चुका है, जिसके नयन उस त्रिभङ्ग छवि का पान कर चुके हैं, उससे निसृत माधुर्य से सराबोर हो चुके हैं, उन प्रेमी रसिक महानुभावों की गति, मति और रति केवल वे श्याम सुन्दर ही हैं। श्याम सुन्दर की माधुरी में पगे श्री बिल्वमङ्गल जी महाराज कह रहे हैं :-

मारः स्वयं नु मधुरद्युति मण्डलं नु
माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं नु।
वेणी मृजो नु मम जीवित वल्लभो नु
बालोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय। ***

श्रीकृष्णाकर्णामृत ६८

जिसके जीवन का रोम-रोम श्री कृष्ण के चरणों में समर्पित हो चुका है- उन्हीं के प्रीति और अनुराग में पगा, तितिक्षा की भित्ति पर निर्मित एक समर्पित जीवन यापन करने का निश्चय कर चुका है, करुणा, ममता अथवा कोई भी प्रतिबन्ध उसके आड़े नहीं आ सकता। यह सब प्रयत्न साध्य न होकर मन की एक सहज उमड़न और उमगन बन इतना पूर्णता से जीवन में ओत-प्रोत हो जाता है कि उसके सामने, जगत के सभी सम्बन्ध, सभी अपनत्व फीके लगते हैं, अतः सभी की भावना वैसी की वैसी रह गई, सभी की आशा-अभिलाषा एक गाम्भीर्य में समा गई, सभी का विश्वास, धीरज खो बैठा।

समय अधिक हो चुका था। धीरे-धीरे बहन जी उठीं और घर के लिये चल पड़ीं। चीत्कार का स्वर एक बार पुनः गूँज गया।

*** यह क्या स्वयं कन्दर्प है ? या मधुर द्युति मण्डल ही है अथवा मूर्तिमान माधुर्य ही है ? यह मन नयनों का अमृत-जीवन है ? क्या यह मेरी वेणी मोचन करने वाले मेरे (प्राणनाथ) ही हैं- अथवा मेरे जीवन वल्लभ किशोर कृष्ण ही हैं जो मेरे नेत्रों के सामने प्रकाशित हो रहे हैं।

सभी के नेत्र सजल थे । इधर प्रकृति भी निस्तब्ध हो गई, वृक्षों पर पक्षियों का कलरव शान्त हो गया । विद्यालय के प्राङ्गण में निस्तब्धता छा गई । कमरों में सूनापन अपनी विकलता का आभास कराने लगा । सत्संग भवन की वह स्थली, जहां युग–युगों तक लीला कथा चलती रही थी– उस चर्चा से भीगी–भीगी आज भी आकर्षित करने का अपना सा प्रयास कर रही थी। सामने के वृक्ष और लताऐं अपना मुख नीचे किये उस विछोह की कल्पना में खोए जा रहे थे । वह कमरे, दफ्तर की चार दीवारी, वहां रखी कुर्सी और मेज़ भी आज मूक हुई, उदास हो रही थी । अब तक की अपनी सभी प्रसन्नता को भूल सा गई थी । जड़ तथा चेतन सभी, प्रकृति तक एक व्याकुलता से आक्रान्त दीख रही थी । पू० बहन जी जब उठ कर चलीं तो सामने रास्ते में एक नन्हें से पौधे में उनकी धोती का छोर उलझ गया, सभी का वात्सल्य भाजन वह पौधा मानों सभी की अन्त: प्रेरणावश अपनी बाल चपल चेष्टा से अठखेलियाँ कर, उसमें उलझा उन्हें रोकने का प्रयास कर रहा हो । यह दिवस, यह वातावरण, समस्त प्रकृति एक अपूर्व सुख की भूमिका संजो चुकी थी, एक उज्ज्वल भोर की आशा किरण बन चुकी थी, कमल के लिये प्राची दिशा में नवोदित सूर्य की किरणों की भांति तथा पपीहे के लिये स्वाति नक्षत्र की बूंद की भांति एक संजीवनी मूरि बन चुकी थी ।

बात अभी भी वर्तमान में ही थी । वातावरण अभी शान्त न हुआ था । अपने विद्यार्थियों में इतना स्नेह वितरण करने वाली, उनको ज्ञान का प्रकाश देने वाली, प्यार और स्नेह से सींचने वाली, अध्यापन के साथ–साथ एक अपनत्व, एक आत्मीयता का प्रसार करने वाली, मात्र अध्यापिका न होकर वे उनकी बहन थीं, मां थीं– एक परम हितैषिणी मित्र थीं– इसीलिये उन्होंने बच्चों में, अपने समवयस्कों में, कर्तव्य परायणता वश पढ़ाई के साथ–साथ एक स्नेह का स्रोत उंडेल दिया, अध्यात्म का बीजारोपण किया । मूलत: वह उन सबको उनके अनजाने में ही प्राप्त हुआ, जिसका रोपण अनायास ही उन लोगों की हृद्‌भूमि में हुआ । जो विद्यार्थी भिज्ञ थे उनका तो कहना ही क्या ? जिनका मन सहज इस ओर न भी खिंचा, वे भी एक निधि पा धन्य हो गए, कृतकृत्य हो गए । भक्ति का यह बीज समय आने पर अंकुरित होगा ही, इसे रोकने की सामर्थ्य विश्वनियन्ता में भी नहीं है ।

शिवालय, पंच देवताओं का प्रांगण, जो बाल्यावस्था से ही इनकी दौड़–धूप से, अनेकों परिक्रमा करते इनके गम्भीर पगों से, पूजन

हेतु सहज मिली इनकी सन्निधि से, विशेष भावानुभावों से स्पृष्ट थे- निश्चेष्ट से देखते रह गए। लक्ष्मीनारायण मन्दिर का परिक्रमा मार्ग, मन्दिर में विराजमान श्री लक्ष्मीनारायण ठाकुर जी, जो इन्हें सदैव श्री राधाकृष्ण रूप में ही दीखते रहे, एक बार भीड़ में थकी मांदी जब ये वहाँ पहुँची तो श्री कृष्ण वेष धारण कर, इन पर अपना पटका डाल, इन्हें उठा भीतर मन्दिर में ले गए थे, उनका वह प्राङ्गण, परिक्रमा करते समय अलग-अलग वातायनों से अलग-अलग झांकियों का आस्वादन करती, बहन जी की साक्षी वह स्थली, सभी कुछ उस करुणामय वातावरण से भर गए, आप्लावित हो गए। सभी को दीखते चतुर्भुज नारायण और लक्ष्मी जी ने एक बार पुनः श्री राधाकृष्ण रूप में इन्हें अपने उसी रस में, सिक्त-सिंचित कर, सराबोर कर दिया, जिस हेतु को लिये ये जीवन यापन कर रही थीं, किसी की धरोहर भक्ति का सभी में संचार कर रही थीं, वह भी पूरा सा हो गया था।

आज दूसरा दिन हो गया, वातावरण अभी भी शान्त न हुआ था। सभी में एक सहमापन वातावरण को और गम्भीर बना रहा था। विद्यार्थियों की विकलता सहन न होती थी। एक बालिका ने सभी विद्यार्थियों को एकत्रित किया, एक बैनर हाथ में ले, 'बहन जी को वापिस लाओ, बहन जी मान जाओ' के नारे लगाती विद्यार्थियों की भीड़ उस बालिका विमला वैद्य के नेतृत्व में बहन जी के घर पहुँची। वही करुणा, वही क्रन्दन पुनः छा गया। इस अशान्त भीड़ के सामने बहन जी अपनी गम्भीर मुद्रा में आकर खड़ी हुईं। एक बार सभी के नेत्र छलछला गए। उसी अस्फुट ध्वनि में नारों की गूंज एक बार पुनः छा गई- और दूसरे ही क्षण निस्तब्धता का साम्राज्य व्याप्त हो गया।

बहन जी ने सभी का अभिवादन स्वीकार किया, उन्हें समझाया। यह कहकर कि "मैं तो यहीं हूँ तुम लोग जब चाहो चले आया करना। यह आश्वासन सम्भवतः उस आवेग को किञ्चित् शान्त करने में सहायक हुआ। उसी रुदन और गम्भीर वातावरण में, अपने नेत्रों को पोंछती यह बालिकाऐं जैसे-तैसे वहाँ से लौट गईं।

बहन जी अब घर पर ही रहने लगीं। बालिकाओं के उमड़े हृदय जब-तब इनके पास आने लगे। आने-जाने वालों का तांता ही लगा रहता। समय बड़ा बलवान है, अतः कुछ समय बीतने के साथ-साथ सभी के भावावेग में ठहराव सा आया। इस आशा से कि बहन जी से मिलने की सुविधा तो बनी ही है, मन कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ होने लगे, स्थिर होने लगे।

पाठशाला के कार्य से अब यह पूर्णतः मुक्त हो चुकी थीं । सभा वालों ने भी ननु-नच के साथ त्याग पत्र स्वीकार कर ही लिया था । विद्यालय की बालिकाओं के करुण क्रन्दन से अब भी इनका मन द्रवित हो जाता, धीरे-धीरे उसका भी शमन हो गया । श्री ठाकुर-सेवा उनकी लीला-चर्चा में ही समय बीतने लगा । इधर-इधर की बातों में कभी मन रमा ही नहीं । वृन्दावन चले आने की लालसा अपनी सीमा के सभी बांध तोड़ क्रियान्वित होना चाहती । घर में विद्यार्थी पढ़ने आने लगे- उन्हीं दिनों उनकी परीक्षा लेते, निरीक्षण करते समय इन्होंने अपने खुले नेत्रों से देखा, क्या देखा ! वह सब उन्हीं के शब्दों में "लड़कियाँ परीक्षा दे रही थीं, और साथ-साथ यह देख रही थीं प्रिया-प्रियतम की नवीन लीला !"

"तुम (श्याम सुन्दर) श्री राधा का शृङ्गार करने में तन्मय हो रहे थे और श्री राधा तुम्हारे स्पर्श से पुलकित हो रही थीं । उनका शृङ्गार कर उन्हें और बेसुध करके अपना काम बनाने में कितनी-कितनी सुन्दर नृत्य मुद्राऐं दिखलाईं तुमने उन्हें, पर कम चतुर नहीं हैं यह सब सखियां । कैसा रंगे हाथों पकड़ा तुम्हें । ग्वाल-बालकों ने भी तुम्हारी चोरी देख ली, पर भोले बालक कुछ भी तो समझे नहीं ।"

श्री कृष्ण लीला इनके नेत्रों के सामने मूर्तिमान थी और उसी रसास्वादन में मग्न थीं पूजनीया बहनजी । इधर बालिकाऐं परीक्षा दे रही थीं । भगवच्चिन्तन तथा लीला दर्शन किसी भी समय अथवा नियति के बन्धन में नहीं है । सन्तों की, महज्जनों की मनःस्थिति इस प्रकार की हो जाती है जहाँ भी उनके नेत्र देखते हैं, जहाँ भी उनकी दृष्टि उठ जाती है- वहीं, 'जित देखौं तित श्याममई हैं' अतः एक ही समय में शरीर, मन और नेत्र स्थूल रूप से सामने दृष्टिगोचर हो रही बालिकाओं का निरीक्षण कर रहे हैं और दूसरी ओर सूक्ष्म देह से, दिव्य नेत्रों से प्रिया-प्रियतम की रसीली लीला का आस्वादन कर रहे हैं- आस्वादन ही नहीं अनेक बार दिव्य शरीर से लीला-पात्र बन उसी में सम्मिलित हो रहे हैं । यह अनुभूति न तो किसी बुद्धि के तर्क की कसौटी पर मापी जा सकती है और न ही शंका-कुशंकाओं के वृत्त में फंसे मानव के लिये यहाँ कोई स्थान है । भगवदानुभूति स्वानुभव का विषय है- और वह अखण्ड सत्ता सर्वत्र व्याप्त होने पर भी केवल स्वानुभव द्वारा ही जानी जा सकती है ।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्र मूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥***

भर्तृहरि नी श. १

हां ! तो वृन्दावन चले आने की भावना इन्हें उद्वेलित करने लगी। इनकी विकलता देख, एक दिन इनके पिता जी ने सहसा कह दिया, ''वृन्दावन चली जा तू, दो दिन में लौट आइयो'' 'चली जा' तो अच्छा लगा- पर 'दो दिन बाद लौट अईयो' खटकता रहा। मैंनें उन्हें मना कर दिया। वृन्दावन जाऊंगी, लौटना कठिन होगा। वह न जाने क्या अर्थ समझे इसका, पर मुझे उस दिन बार-बार ध्यान आने लगा- अच्छा सुयोग है, चली जाऊँ। लौटूँगी नहीं- यह तो मैंने इन्हें बतला ही दिया है कि लौटना कठिन होगा। जाने की आज्ञा मिल ही गई है।

चोरी से किसी भी कार्य को करने के पक्ष में यह कदापि न थीं। वे सदा कहा करती थीं 'मैंने अपने जीवन में कोई कर्म छिपा कर नहीं किया है, जो भी किया, वह डंके की चोट किया। अब वृन्दावन जाऊंगी तो सबसे कहकर, सबके सामने- आज्ञा लेकर।' पिताजी में इनकी पिता भावना तो थी ही, साथ-साथ बहुत ही परिपक्व तथा सन्तुलित विचारधारा होने से, उनका इनके प्रति एक मैत्री भाव भी रहता था। घर में सबसे बड़ी थीं तथा पूर्णतः सुयोग्य भी- अतः यह अतिरिक्त अधिकार इन्हें अनायास ही प्राप्त था। एक बार उन्होंने इनसे यह प्रण करने के लिये आग्रह किया था, 'मेरे रहते तू वृन्दावन नहीं जाऐगी, और यदि जाएगी तो मुझे भी साथ लेकर।' अपनी छोटी और भोली-भाली अवस्था में, अथवा अपनी माता-पिता के प्रति कर्तव्य परायणतावश, किस विचार से इन्होंने सहज हां कर दी थी ! यह विवशता और प्रण सदैव इनके आड़े आता रहा जब-जब भी इन्होंने वृन्दावन चले आने का सोचा- वास्तव में 'भगवदिच्छा बलीयसी' इस बार भी ऐसा ही हुआ और आने का विचार स्थगित करना पड़ा। देहली आकर भी पुनः अम्बाला लौटने का विचार बना लिया। इन्हीं दिनों देहली में सहसा इन्हें हिचकियाँ आने लगीं- और इतनी प्रबल हिचकियां कि भय सा ही लगने लगा। इनकी प्रकृति और स्वभाव इतना सरल था, हृदय इतना भोला था कि चली आ रही रूढ़िगत भावना

*** उस अनन्त चैतन्य मूर्ति, शान्त और तेज स्वरूप परमेश्वर को नमस्कार है, जो सब दिशा और काल में व्याप्त है, परन्तु स्वानुभव से ही जाना जा सकता है।

'हिचकियाँ यदि इस प्रकार आती हों तो अवश्य ही कोई अत्यन्त आत्मीय, अपना, प्राणों से भी अधिक अपना याद करता है' इनके मन में घर कर चुकी थी। सहसा मन में समाऐ अपने प्राणधन का स्मरण हो आया। यह विचार आते ही हिचकियाँ बन्द हो गईं। इनकी वह अन्यमनस्कता, वह स्थिति, एक विस्मय पूर्ण आह्लाद में बदल गई, और यह विश्वास, एक सुदृढ़ आत्मीयता से पोषित हुआ तथा अपरिसीम सुख-सिन्धु में मग्न हो गईं। ''सचमुच ही स्मरण करते हैं क्या वे?'' प्रमाण की आवश्यकता न रही थी।

❑❑❑

सोलह ‖ उपासना – निजस्वरूप

कृष्ण भक्ति रस भाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्म कोटि सुकृतैर्न लभ्यते ॥ ***

रामानन्द राय

लौल्यमपि मूल्यमेकलं की प्राप्ति कैसे हो ? इसका सबसे सुगम उपाय उपासना है । उप + आसन, अतः अपने इष्ट के निकट बैठना। यह सामीप्य मन से होना अनिवार्य है, शरीर से भी हो तो अति उत्तम है । अपने मन की समस्त वृत्तियों को केन्द्रित कर अपने इष्ट को लाड़ लड़ाना तथा पूर्ण रूपेण अपनी वृत्ति का समर्पण ही भक्ति है । जिन महानुभावों की यह स्थिति सहज है, स्वभावगत है, उन नित्य सिद्ध परिकर की बात तो मुझ सा अज्ञ क्या कह सकता है, पर प्रयत्न पूर्वक भी इसका अभ्यास होना ही चाहिये । पू० बोबो का यह भाव इतना सहज, स्वाभाविक था कि श्यामा-श्याम की ओर से सदा-सदा सत्कृत और पुरस्कृत होता रहा। श्री ठाकुर कोई दूर के हैं- यह बात उन्हें पता न थी । श्री ठाकुर और वे इतने निकट थे, इतने समीप, जहां दूरी नाम का शब्द अपना अस्तित्व ही नहीं रखता और अभाव की कल्पना के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता- अतः प्रेम के आदर्श और मर्यादा का स्वरूप जितना निकटतम हो सकता है, इतनी निकट वे थीं । वे हमारे प्रेमास्पद हैं और हम उन्हीं की अपनी, अत्यन्त अपनी प्रेयसी हैं, यह अपनत्व इतनी घनिष्ठता को लेकर होता है कि वहां संसार की गन्ध का लेश भी नहीं रहता अथवा दीखता । वहाँ प्रेम का उच्चादर्श, 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में परिष्कृत हुआ सामने आता है । प्रेमास्पद के प्रति प्राणों का प्रीति पूर्ण समर्पण ही मधुरा-भक्ति है । इस प्रीतिपूर्ण समर्पण, (रतिभाव) का पूर्ण आस्वादन मधुर भाव में ही सम्भव है । इसी भाव से परिपुष्ट पू० बोबो का मन अपने सम्पूर्ण राग और अनुराग के एक मात्र स्वामी के प्रति पूर्णतः

*** मनुष्य को श्री कृष्ण भक्ति रस से भावित मति जैसे भी प्राप्त हो सके, प्राप्त कर लेनी चाहिये । उसे प्राप्त करने का मूल्य क्या है ? उसके प्रति लोलुपता, लोभी भाव, हृदय में सदा उसी की इच्छा बनी रहना । मनुष्य उसे कोटि जन्म के सुकृतों से भी प्राप्त नहीं कर सकता ।

उपासना-निजस्वरूप

रूप रस से पोषिता हूँ,
राास रस से सिन्चिता।।
प्रीति से पालित सदा हूँ
नेह रस में मज्जिता।।
राग रस से सिन्चिता।।
स्मित सुधासव तोषिता हूँ
दृष्टि मधु रस प्लाविता।।
लाड़ में संतत पगी हूँ
मृदुल अंक समाश्रिता।।
दृष्टि मधुरस प्लाविता।।

समर्पित था । यही उनकी उपासना का रूप था । श्यामा-श्याम के प्रति जिस कोमलतम भाव से उनका मन सहज जाता था, वह सब दर्शनीय तथा अनुभव का ही विषय रहा । जिन महानुभावों को यत्किञ्चित् भी उनका संग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे अवश्य ही उनके भाव से परिचित हैं । उनका यह भाव अत्यन्त संकोच पूर्ण था । भाव कोई प्रदर्शन की वस्तु नहीं है और न ही यत्र-तत्र बिखेर, प्रकट करने की बात है। यह है मन का द्रवण, हृदय की प्रीति पगी पिघलन। जिसके प्रति यह होती हैं, वे प्रेमास्पद उससे खिंचे चले आते हैं 'इश्क सच्चा होगा तो ऐ साकी कच्चे धागे से बंधे आऐंगे सरकार मेरे' अपनी इसी तरंग को यत्किञ्चित् अभिव्यक्त करती एक स्थान पर वे कह रही हैं :

नयन हो उठते सजल
मुस्कान अधरों पर बिखरती
और फिर बातें पुरानी
सब हृदय पट पर निखरतीं ।
थकित वाणी नमित लोचन,
प्राण यह प्रतिबन्ध क्या है ?

भक्तमाल के रचयिता श्री नाभा जी ने चौबीस निष्ठाऐं कहीं । प्रत्येक निष्ठा पूर्णता को लेकर है- अतः उपासना (सेवा) का रूप भी उतना ही पूर्ण है । पू० बोबो की भावना उज्ज्वल रस के परिप्रेक्ष्य में पूर्ण थी। तदनुसार उनका समर्पण भी पूर्ण था । माधुर्य उनका जीवन था, समर्पण उनका स्वभाव था, तथा इष्ट निष्ठा उनमें नैसर्गिक रूप में विराजमान थी । यह समर्पण प्रयत्न पूर्वक न होकर, एक सहज लगाव वश स्वभावगत था । जहाँ इस प्रकार का भाव है, निस्संदेह वहीं भक्ति है ।

उनका यह समर्पण कोई स्वतंत्र अथवा स्वच्छंद हो ऐसी बात नहीं है । शास्त्र तथा आचार्यों द्वारा अनुमोदित एक मर्यादा में पगा, पनपा भाव, जो नारी हृदय की कोमलतम भावनाओं से प्रवाहित तथा प्रशस्त राजपथ की कसौटी पर परखा, खरा भाव, जिसे देख हमें शास्त्र वाक्यों को प्रमाण मानने का अवसर मिला, उनके हृदय का मुक्त प्रवाह था । इस पर भी उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी सभी सम्प्रदायों और सम्प्रदायाचार्यों के प्रति समादरणीय विनम्र दृष्टिकोण । सेवा-पूजा तथा शुचि में उनके विचारों का सहज मेल दीखा, आचार्य रामानुज की विचारधारा तथा परम्परा से, श्री व्यासदेवाचार्य की निकुञ्ज उपासना से और भाव-शावल्य तथा प्राणों का

द्रवण, आचार्य वल्लभ तथा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की लाड़पूर्ण सेवा पद्धति से तथा वैराग्य और मधुरोपासना शैली श्री चैतन्य महाप्रभु की गौड़ीय उपासना से । उनके उज्ज्वल रस की धारा जहाँ माधुर्य के सभी अनुकूल आयामों से पुष्ट हुई-वहीं किसी एक सम्प्रदाय की इयत्ता में न बंध, मन, के सहज द्रवण से निर्मित, सभी सम्प्रदायों की परम्परा के पुष्पों से सौरभान्वित, आलोक स्तम्भ के रूप में प्रकाशित तो करती ही रही, सौरभान्वित भी करती रही । ब्रज परम्परा की यह महान विभूति, सर्वथा सभी को समान रूप से रस-सिक्त एवं सिंचित करती रही । उन्होंने न तो परकीया अथवा स्वकीया भाव का एक पक्षीय समर्थन कर, मधुर रस को इयत्ता में बांधा और न ही नित्य विहार के गीत गा केवल निकुञ्ज उपासना को ही रसोत्कर्ष का आधार माना । रस वर्धन हेतु परकीया भाव एक विधा बन कर सहायक अवश्य होता है, इसी प्रकार निकुञ्ज विहार तथा एकान्तिक विलास, रसमय केलि में पोषक है, परन्तु भाव किसी भी इयत्ता में बंध पल्लवित और पोषित हो, ऐसा अनिवार्य नहीं है । वहाँ एक सिद्धान्त और मर्यादा का उल्लंङ्घन सर्वथा नहीं है , प्रिया-प्रियतम के प्रति मन का सहज प्रीति पगा द्रवण है । किसी भी परम्परा अथवा आचार्यों की धारणा का उन्होंने विरोध नहीं किया। पू० बोबो के मन का सहज प्रवाह, मृदु मुस्कान तथा स्नेह पूर्ण चितवन में विलीन हो गया । श्याम-सुन्दर के अनियारे नयनों से निसृत अनुराग, अनङ्ग को भी विमोहित कर देने वाले रूप ने बस जादू ही कर दिया । वैजयन्ती माला धारण किये, अनेक मधुर भावों में भरे, वे धीमे स्वर में अलाप ले इनके गृह द्वार के सामने से निकले । वे खड़ी की खड़ी निर्निमेष देखती रह गईं । मत्त गजेन्द्र गति विलज्जक उनकी मतवाली पग गति की लटकन में उनका चित्त उलझ गया । श्याम-सुन्दर उनकी ही ओर देखते हुए चले गए । अपनी मृदु बोलनि से उन्होंने पू० बोबो को भरमा लिया । ओह ! वे उनके सन्निकट हो, जाने क्या कह गए- उसे सुन वे बौरा गईं ।

प्राणों को सुशीतल करने के लिये वे रसिया नए-नए मिस खोजा ही करते हैं । कब आ पुनः उन्होंने, इन्हें रस में सराबोर कर दिया वे जान ही न सकीं । पू० बोबो कह रही हैं :-

सखि ! हौं उनकी काह कहौं री,
मृदु मुस्काई विलोकि नेह सों-
मेली रूप ठगौरी ।

पग गति मत्त गयन्द लजावनि,
कटि लचकनि मन प्राण लुभावनि,
औचक ही हौं उन तन निरख्यो,
उन मोतन चितयो री ।
सखि हौं उनकी काह कहौं री ।
हौं भोरी वे चतुर शिरोमणि,
उन भुरई मो मृदु मधु बोलनि,
निकट आय कछु स्रवन कह्यो उन-
ता छिन ते भई बौरी ।
सखि हौं, उनकी काह कहौं री ।

'ये यथा माम् प्रपद्यन्ते' श्री गीता

जो जिस भाव से श्याम-सुन्दर का भजन करते हैं उसी के अनुरूप वे फल प्रदान करते हैं । भक्ति का कोई ओर छोर थोड़े ही है। जितने वैष्णव उतने ही प्रकार की भक्ति है, इसकी अनेक विधाऐं हैं । इसमें भी तन्मयता, तल्लीनता तथा तदाकार वृत्ति । मधुरा भक्ति की निर्मल सरिणी में पू० बोबो की तदाकार वृत्ति सर्वथा रस स्नात रही । जहाँ मन का सहज द्रवण हो रहा है, श्याम-सुन्दर द्वारा दुलारा जा रहा है, पोषा जा रहा है उनसे प्रीति पूर्ण आश्वासन पग-पग पर प्रत्यक्ष रूप में मिल रहे हैं, उन्हीं से हमारा जीवन सिंचित हो रहा है, इसे कोई भले ही परम्परा के बंधन का रूप दे, अथवा सम्प्रदाय तथा आचार्य परम्परा की इयत्ता में रखे, जो भी है स्पष्ट है।

मुझे याद आती है ब्रज रस के प्रसिद्ध सन्त 'श्री प्रिया शरण दास' जी की । वे गोवर्द्धन में निवास कर रहे थे- एक बार प्रसङ्ग वश उन्होंने कहा था- 'सम्प्रदायों के बन्धन, उनकी श्रेष्ठता, उनकी शैली तथा पद्धति सभी प्रारम्भिक साधकों के लिये है- भजन में किञ्चित् अभिनिवेष होने पर, किञ्चित् मन की वृत्ति स्थिर होने पर ही साधक इन बंधनों से उठ जाता है- उसके सम्मुख नाम रस से लबालब भरा सिन्धु जब ठाठें मारने लगता है तो किसी भी इयत्ता में मन बंधा नहीं रहता । जिस प्रकार श्री जी के मन्दिर प्राङ्गण में जाकर यदि हम नीचे देखते हैं तो हमें सभी कुछ समतल दिखलाई देता है परन्तु जब नीचे जाते हैं तो वहाँ रास्ते में ऊँची-नीची स्थली, टीला, गढ़ा तथा मकान का अवरोध दीखता है ।' ठीक यही बात पू० बोबो कहा करती थीं । अतः मर्यादा के घेरे में, शास्त्र और पुराणादि से अनुमोदित होने पर जब हम प्रिया-प्रियतम की सतत सन्निधि अनुभव

कर रहे हैं, नित्य निरन्तर उन्हें अपने समीप देख रहे हैं, उनसे चर्चा कर रहे हैं, वहाँ न तो किसी सम्प्रदाय की ही बात है, और न किसी शास्त्रीय परिपाटी का अनुकरण। वहाँ यदि कोई रस है तो मधुर रस है, कोई सम्प्रदाय है तो श्री राधा-कृष्ण सम्प्रदाय और शास्त्र है तो वह श्री राधा-कृष्ण शास्त्र। इसी में सभी रस, सभी भाव, सभी पद्धतियाँ तथा सम्बन्धों का पूर्ण रूपेण विलय हो जाता है। इस विलय का अलग से अपना अस्तित्व है- जो प्रणय समुद्र में उठे ज्वार-भाटे का प्रतीक है। तात्विक दृष्टि से यदि हम देखें तो सभी सम्प्रदाय श्री राधा-कृष्ण को इष्ट रूप में स्वीकार कर लगभग एक ही भाव की पुष्टि करते हैं। सामने खड़े अपने प्रेष्ठ को देख, उमड़ कर जैसे भी हमारा मन उन्हें स्वीकार, अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है वही हमारा भाव है। इसी सम्बन्ध में श्री भगवद् रसिक जी महाराज कहते हैं :-

नाहीं द्वैताद्वैत हरि, नहीं विशिष्टाद्वैत।
बंध्यो नहीं मतवाद में, ईश्वर इच्छाद्वैत।

अपनी भावधारा की ओर संकेत करती पूजनीया बोबो कह रही हैं :-

"प्रियतम ! मेरी तो इस पूज्य-पूज्य चिल्लाने से पिपासा शान्त होती नहीं। कुछ कमी सी खटकती रहती है। यह ऐश्वर्य तो उन्हें ही मुबारक रहे जिन्हें प्रिय हो। मुझे इससे कुछ सरोकार नहीं।

मुझे तो तुम ब्रज किशोर रूप में भले लगते हो। मेरा प्राण सर्वस्व तो तुम्हारा राधाकान्त वाला, मोर मुकुट धारण किये हुए, हाथ में वंशी नचाते हुए, चञ्चल कमल नयनों से चहुँ ओर निहारते हुए, मन्द-मन्द मुस्कान ज्योत्स्ना बिखेर कर विश्व को विमुग्ध करने वाला रूप ही है, औरों के लिये चाहे पूज्यतम, चाहे पिता हो, चाहे पितामह; पर मेरे लिये तो तुम चुलबुलाहट से परिपूर्ण वही गोप किशोर हो।"

अनुभूति, भाव की स्वतंत्र और स्वच्छन्द विधा है। जो अनुभूति किसी सम्प्रदाय विशेष की सिद्धान्त प्रणाली के क्रमानुसार हो रही है, उसे तो सम्प्रदाय का प्रभाव अथवा एक क्रमिक चिन्तन की धारा से प्रभावित कह सकते हैं। मन की प्रथमावस्था में साधने के लिये, उस माधुर्य रस सिन्धु तक पहुँचने के लिये, इन साम्प्रदायिक क्रमों से साधना तो समझ आती है पर उस रस समुद्र के समीप पहुँच किसी भी तट से, किसी भी छोर

से पान करने पर माधुर्य से परिपूर्ण ही आस्वादन होगा। इसका आस्वादन भी अपनी-अपनी भाव, ललक तथा स्थिति पर ही निर्भर करता है। यद्यपि अनेक रसिकों ने क्रमिक प्रतिबन्धों से आस्वादन अवश्य किया है तथापि अनुभूति अपने आप में, स्वतंत्र, स्वच्छन्द तथा मौलिक क्रम है, इसे मर्यादा अथवा इयत्ता की परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता।

निज-स्वरूप तथा नित्य स्वरूप

'गोपी भाव' अथवा 'सखी भाव' के बिना लीला की पूर्णता नहीं है। यह गोपीभाव तथा सखी भाव लगभग समान तथा पर्याय है। गोपिकाओं के दो भेद अवश्य माने गए हैं। एक है- साधन-सिद्धा तथा दूसरा नित्यसिद्धा। भगवान गोलोक धाम से लीला हेतु जब इस धरा धाम पर अवतरित होते हैं तो नित्य सिद्ध परिकर भी साथ ही साथ अवतरित होता है। यह गोपीवृन्द प्रिया जी की काय-व्यूह स्वरूपा हैं। श्री ललिता जी को सभी सम्प्रदायों अथवा ग्रन्थों में प्रधाना सखी के रूप में माना गया है, यहाँ तक कि एक स्थान पर श्रीकृष्ण स्वयं को श्री ललिता रूप ही कह रहे हैं :-

'अहं च ललिता देवी तुर्यातीता च निष्फला'

पद्म पु० पा० ख० ७५/३५

ललिता जी पूर्ण दक्ष, सर्वप्रधाना प्रिय सखी हैं श्री राधा जी की।

पूजनीया बोबो का स्वरूप क्या रहा, उनकी भावधारा क्या रही ? प्रिया-प्रियतम की नित्य लीला में कहाँ तक उनका अभिनिवेष रहा? उनके सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व के आधार पर उनकी कहाँ तक पहुँच रही। उनकी स्थिति के विषय को समझने हेतु उन्हीं की कुछ अनुभूतियों, भाव लहरियों, रस दशाओं का यत्किञ्चित् अध्ययन करें।

प्रातःकालीन कीर्तन के बाद कुछ समय लेटे रहने का उनका एक स्वभाव सा ही था। इस लेटने के पीछे विश्राम अथवा कोई अन्य हेतु नहीं होता था। वे इन अपने एकान्तिक क्षणों में प्रिया-प्रियतम के लीला चिन्तन में मग्न रहती थीं। उनका यह चिन्तन अनेक बार लीला-स्वादन का हेतु तो बना ही, लीला में नित्य-स्वरूप अथवा निज स्वरूप से अभिनिवेष तथा प्रवेश का स्वरूप भी बना। उनकी यह अनुभूतियाँ सदा-सदा प्रिया-प्रियतम के सामीप्य में परिवर्तित होतीं। इन एकान्तिक क्षणों में

कब वे लीला में तन्मय हो जाया करतीं यह कहना अत्यन्त कठिन है । ऐसी ही रस स्थिति में मग्न एक स्थान पर वे कह रही हैं :-

भोरकालीन संकीर्तन के उपरान्त आज भी वे लेटी रहीं। इनकी पूर्व की स्मृति ने इन्हें आलोड़ित-उद्वेलित सा कर दिया । इन्होंने देखा:

"भौतिक रूप में दृष्टिगोचर देह नहीं रहा । ये अपने निज स्वरूप, दिव्य स्वरूप में हैं । इसी नित्य सिद्ध देह के अनुरूप शृङ्गार धारण किये हैं । चमकदार लहंगा और कंचुकी धारण किये, सिर पर दुपट्टा, हाथों में कई-कई चूड़ियाँ पहने, ग्रीवा में पुष्पों की माला के साथ-साथ अन्य शृङ्गार धारण किये, कर्णों में कुण्डल, कटि में करधनी, सम्पूर्ण शृङ्गार से सज्जित, कैशौर्य की सजगता तथा विभोरावस्था में रत किसी खुले वन्य प्राङ्गण में अन्य सखियों की खोज में इधर-उधर घूम रही हैं । बड़ी ही व्यग्र हुई कभी किसी निकुञ्ज में झांकती हैं तो दूसरे क्षण दूसरी में । उनके चरणों की व्यग्रता, पदन्यास तथा पायल झंकृति से प्रतीत हो रही है ।

उधर कुछ अन्तरङ्ग सखियों की भीर रंग-बिरंगी वेषभूषा से सज्जित, इनकी खोज में व्यग्र हुई छम-छम ध्वनि से उस एकान्त स्थली को मुखरित करती इन्हें ढूंढ रही है । सहसा पास ही की बांई ओर की निकुञ्ज वीथि से जाती सखियों की, सामने से आती दिव्य रूप धारिणी इस सखी (पू० बोबो) से भेंट हो गई । अत्यन्त प्रफुल्लित हुई यह सखी (दिव्य देह धारिणी पू० बोबो) बोली, "कब से तुम सबको खोज रही हूँ तुम सब मुझे अकेले छोड़ कहाँ चली गईं थी ? वे सब भी अपनी इस प्रिया सखी को देख हर्षोल्लास में भरी पूछने लगीं हम सब तुझे खोजती कब से घूम रही हैं । तू कहाँ थी अब तक ?" ऐसा कह उनमें से दो सखियाँ आगे बढ़ीं और अपनी इस सखी का कर थाम अपने समीप करतीं, इनसे लिपट गईं । अन्य सखियाँ भी खिलखिलाती हुईं इनसे चिपट गईं । प्यार भरी चर्चा में मग्न हुई वे सभी सखियाँ अपनी इस सखी को ले, प्रिया-प्रियतम के पास चली आईं । सोफा-नुमा उस स्वच्छशिला पर प्रिया-प्रियतम आसीन हैं । उन सखीवृन्द सहित अपनी इस अनन्य प्रिया को आते देख, प्रिया-प्रियतम दोनों भुजा उठा, उछल पड़े तथा प्रसन्नता में मग्न हुए खड़े हो गए । अपने अत्यन्त निकट कर बहुत ही लाड़ तथा राग उंडेल रस में सराबोर कर दिया। किशोरी श्री राधा इन्हें अपनी दोनों सुभग टांगों से आवृत्त कर, सुकोमल पाश में आबद्ध कर प्यार से झुलाती रहीं कुछ देर, पुनः इस सखी (पू० बोबो) को अपने पास बिठा लिया । इनके कर, अपने कर कञ्ज में थाम, प्रियतम श्याम सुन्दर के कर सरोरूह में दे दिये ।

अपनी इस अत्यन्त प्रिया सखी की भावनाओं का सरसीला सत्कार करते हुए श्याम सुन्दर ने इनकी अदम्य पिपासा का किस-किस प्रकार, अपनी सन्निधि में सत्कार किया यह तो ये दोनों ही जानें-अथवा वह स्वच्छ सुचिक्कण शिला पर उच्छलित रस रङ्ग लहरियाँ । ''

श्याम-सुन्दर के चरणों में प्रीति तथा उनसे अपने नित्य सम्बन्ध की बात पर एक जगह अपनी किसी सरस उच्छलन में, अपने मन की बात पू० बोबो ने ही श्याम-सुन्दर को सम्बोधित कर, अपनी दैनन्दिनी में एक पत्र लिखा है, उसे मैं पाठकों के सामने उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ :-

''सम्बन्ध के नाम से मुझे एक पुरानी, कई वर्ष पुरानी घटना याद आ गई । शायद तुम्हें भी स्मरण होगी । उस दिन रात को कीर्तन में बैठी थी । सहसा एक अपरिचित बहन के प्रश्न ने मुझे चौंका दिया । ''बहन ! क्या तुम विवाहिता हो ?'' आश्चर्य चकित होकर मैंने उसके मुख की ओर देखा, फिर न जाने कैसे अचानक स्वीकृति के लिये मेरा सिर हिल गया । दूसरा प्रश्न हुआ, 'वे कहाँ रहते हैं ?' अब तक मैं सम्हल गई थी । पर न जाने किस अज्ञात शक्ति ने मुझसे ऐसा दुस्साहस करा दिया । क्षण भर रुक कर मैंने कहा, 'यहीं । ' प्रश्नों की इति श्री यहीं नहीं हुई । वे मुस्करा कर बोलीं, मुझे भी दिखाओगी, मिलवाओगी उनसे ।' एक सर्वथा अपरिचित के मुख से निकली हुई यह बातें मुझे बड़ी विचित्र जान पड़ीं । किञ्चित् विस्मित होकर मैं उनकी इस उदार हृदयता पर हँस पड़ी । हँस कर मैंने कहा, ''अवश्य ! पर कीर्तन समाप्त होने पर'' यह कह तो दिया पर मेरा मन पता नहीं कैसा होने लगा । उस समय के अनुभव को व्यक्त करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है । घबराहट में मैं उठ खड़ी हुई । अब तक कीर्तन भी समाप्त हो गया था । वह बहन भी मेरे साथ ही खड़ी हो गई । (सम्भवत: यह भी तुम्हारी ही कोई लीला थी जो अपरिचित होने पर भी उसने ऐसी बातें कीं) उसे साथ लिये मैं तुम्हारे द्वार पर तुम्हारे सामने आ खड़ी हुई, क्योंकि मेरे सर्वस्व तो एक मात्र तुम्हीं हो पर यह क्या ? मैं जड़ की भांति निश्चल खड़ी रह गई । तुम्हारी हँसी और प्रिया जी की रहस्यमयी मुस्कान मुझ से छिपी न थी । पता नहीं कितनी देर मैं वहाँ खड़ी रही । शायद मुझे पागल, अल्हड़ सी जान, अथवा तुम्हारे ही चमत्कार से वह बहन चली गई, क्योंकि जब मैं लौटी तो वह बहन वहां से जा चुकी थी ।

उस समय तुम्हारी और प्रिया जी की हँसी को समझी नहीं थी- लौट कर सभी स्पष्ट हो गया ।''

ऐसे ही एक बार किञ्चित् संत्रस्त सी पू० बोबो भागी-भागी मन्दिर में श्री ठाकुर जी के गर्भगृह के सम्मुख चली आईं। पट बन्द होने पर भी वहीं प्रकट होकर श्री ठाकुर जी अपनी प्रिया (पू० बोबो) को उठा अन्दर ले गए। उस घटना का प्रकाश अपनी सखी श्री सुशीला बहन जी से मिलने पर इन्होंने किया था। श्री सुशीला बहन जी की पू० बोबो से सन् १९४८ में भेंट हुई। हम पूर्व में कह आए हैं कि इन दोनों सहेलियों में आत्मीयता इतनी अधिक थी कि पू० बोबो सदा सुशीला बहन जी को अपना ही दूसरा वपु कहा करती थीं, इसमें कारण था श्री सुशीला बहन जी का पूर्ण समर्पण। दोनों ही दो तन होने पर भी अभिन्न प्राण होकर रहती रहीं। पू० बोबो यह घटना सुनाते-सुनाते आनन्दातिरेक में भर आत्म विह्वल हो गईं तथा उस मिलन सुख की तन्मयता में उनके मुख से चीत्कार निकली। लेटे-लेटे उनका शरीर लगभग डेढ़, दो फुट हवा में उछल गया। उन्हें चेतना न रही। सुशीला बहन जी नई-नई मिलीं थीं, घबरा उठीं। उच्च स्वर में महामन्त्र की आवृत्ति करने लगीं। इनकी इस अद्भुत भाव दशा को देख उसे शमन करने का सर्वोत्तम साधन नाम लेना ही इन्हें लगा- धीरे-धीरे पू० बोबो का भाव शमित हुआ और वे किञ्चित् बाह्य दशा में आ गईं।

एक स्थान पर वे स्वयं लिखती हैं :-

"हाँ! लो, याद आ गया। मैं कह रही थी कि तुमने अपने भुवनमोहन, उन्मत्तकारी रूप लावण्य से प्राण हरण कर लिये और फिर निष्ठुरता सी दिखलाने लगे फिर भी तुम्हारी करुणा ही विजयी हुई और तुम हार गए। मुझे जोर-शोर से जग झंझटों में लगा कर, गृह सम्बन्धी अनेकानेक उत्तरदायित्त्व मुझ पर डाल कर, जहाँ तुमने निर्ममता सी की, वहां मुझे सम्हालने के लिये, आश्वासित रखने के लिये यदा-कदा (पहले की भांति तो नहीं) अपनी प्राणहारिणी माधुरी रूप छटा का पान कराते ही रहे, वह दिन तुम्हें याद है न प्राण! जब उस दिन जग तिमिर के भीषण अंधकार से घबराई हुई, अनेक चोर ठगों (अपने जैसे चोर ठग तो तुम अकेले आप ही हो, यह जगत के चोर ठगों की बात कह रही हूँ) से संत्रस्त सी मैं भागती-भागती तुम्हारे मन्दिर (गर्भगृह) में आ गिरी थी और तुमने झट अपने पट खोल कर मुझे अपने चरणों में बिठा लिया था। सबसे मुझे बचाकर तुम अपने-बिल्कुल अपने पास ले आये थे। मैं तुम्हारे चरणों-नहीं-नहीं टांगों से लिपट गई थी, भूमि पर घुटने टिका अपनी क्षीण भुजाओं से तुम्हारी टांगों को लपेटे, तुम्हारे ऊपर मस्तक टिकाए मैं अपने में खो गई

थी । अश्रु-पूरित नेत्रों से तुम्हारी ओर देख कर मैं जैसे ठगी खोई सी रह गई थी, और तुमने .... वरद हस्त से मुझे आश्वासन दिया था ...... सच बतलाओ भूले तो नहीं हो तुम वह दिन ?

× × ×

पुनः एक दिन प्रातःकालीन सङ्कीर्तन के पश्चात् लेट गईं पू० बोबो । श्री ठाकुर ध्यान, लीला-चिन्तन और एकान्त का सुहावना समय सदा-सदा से इनकी अनेकानेक अनुभूतियों का द्योतक रहा है । ऐसे ही एकान्तिक समय में इन्होंने देखा वसन्त के मादक दिवसों में वासन्ती समीर ने सभी सुभगाओं की प्रणय ऊर्मियों को झंकृत कर दिया। वसन्त के उन्माद भरे दिवस व्रजाङ्गनाओं की रंग-रंगीली स्मृतियों के द्योतक, स्रष्टा तथा उन्हें आस्वादन कराने वाले हैं ।

"हाँ, तो पू० बोबो ने देखा वसंतोत्सव (मदनोत्सव) की रङ्गस्थली है । वासन्ती पुष्पों की महक से समस्त प्रकृति प्रफुल्लित हो इठला रही है । भोर का मृदुल सुरमीला समय है । अपने आगमन की सूचना देते सूर्य देव प्राचीदिशा में अरुणिमा का धीरे-धीरे प्रसार करने लगे हैं । अत्यन्त सुहावना मनभावना समय है । पुष्प गन्ध लिये समीरण अपने सौभगमद में भरी बौराई सी इठला रही है । वह रङ्गस्थली चारों ओर से वृक्ष झुरमुटों से आवृत्त है । बीच में एकान्तिक खुला प्राङ्गण है । उसके मध्य में भी लता विटपों से आवृत्त प्राकृतिक शोभा से मण्डित वह रङ्ग स्थली शोभायमान है। एक ओर सुन्दर लताओं और विटपों से मण्डित तथा आच्छादित एक कक्ष है । अनेक सखी वृन्द मदनोत्सव की तैयारी में संलग्न अत्यन्त व्यस्त हुईं इधर से उधर तीव्र गति से आ व जा रही हैं । उन्हीं में एक अत्यन्त प्रसन्न वदना सखी (पू० बोबो) रंग बिरंगे वस्त्रों से सज्जित पीत कञ्चुकी तथा अरुणिम लहंगा पहने, गुलाबी रंग का दुपट्टा कञ्चुकी के अग्रभाग में उरसे, छम-छम ध्वनि करती, अपने दिव्य स्वरूप में चली आ रही है । उसके हाथों में एक चमकीली तश्तरी में लाल-गुलाल है, उस पर कहीं-कहीं अभ्रक चमक रहा है, बड़ी ही उमंग में भरी उसी रङ्ग -स्थली की ओर चली आ रही है । कुछ ऊंचाई पर चढ़ने को पग धरा ही था कि श्याम सुन्दर ने पीछे से आ उसकी भुजा पकड़ ली । अपनी श्यामलोज्ज्वल आभा से समस्त स्थली को उद्भासित करते श्याम सुन्दर वसन्त के रस-रङ्ग भरे वातावरण में तरंगित हो रहे हैं । वह बाला भीत न हुई । उसका जाना-पहचाना, सिहरन तथा पुलकन से भरता रोमाञ्चकारी स्पृहणीय स्पर्श था वह।

वह ठिठकी, सकुची, भृकुटी मरोर किञ्चित् पीछे की ओर अनखा कर, देखती रह गई। न जाने इस सबमें क्या निहित था। नयनों में भर गई वह रतनारी खुमारी। प्रसन्नता उसके मुख पर अनायास बिखर गई। कपोलों पर रक्तिम छटा छा गई। अधरों पर मुस्कान और .... उस समय की वह माधुरी- उसके आगे .... लेखनी का विषय नहीं। अनुरागी हृदयों की रस-मग्नता का भी कोई क्रम अथवा सीमा है क्या ?''

× × ×

''किशोरी जी को पू० बोबो प्राय: ''स्वामिनी स्वामिनी'' कहकर पुकारतीं। ऐसे ही एक बार इन्होंने प्रिया जी को स्वामिनी कहकर पुकारा तो प्रिया जी ने प्यार में भर एक समानता का भाव दर्शाते हुए अपनी इस प्रिया सखी का कर अपने कर में ले लाड़ से सहलाते हुए कहा, ''प्रत्येक समय 'स्वामिनी', 'स्वामिनी' नहीं।'' अपने प्रति आदर सूचक यह भाव प्रियाजी को अधिक नहीं सुहाया। प्रेम के वशीभूत हो जो कुछ सम्बोधन करने को कहा, वह इनके प्रति अत्यंत आत्मीयता का ही भाव रहा।''

× × ×

''एक बार सङ्कीर्तन कराते हुए पू० बोबो को दीखा कि इनका नित्य स्वरूप, (सिद्ध स्वरूप) इनके इस भौतिक दृष्टिगोचर शरीर से अलग है। यह देह तो सङ्कीर्तन करा रहा है। नित्य सिद्ध स्वरूप से दिव्य शृङ्गार धारण किये पू० बोबो प्रिया जी के समीप एक शिला पर विराजमान हैं- तथा इस शरीर से सब देख रही हैं। शरीर की कान्ति अपूर्व है। प्रिया जी अपने पास बिठा, अपनी अङ्क में इनका शीश टिकाए, लाड़ में भरी, मधुर रस कणों से इन्हें आप्लावित कर रही हैं। एक सघन वृक्ष के पीछे छिपे श्याम-सुन्दर यह सब देख रहे हैं। प्रिया जी का लाड़ इन पर उमड़ा पड़ रहा है। प्रिया जी ने नयनों में ही श्याम-सुन्दर से कुछ बात भी की, और श्याम सुन्दर समझ गए। प्रियतम अब और अधिक छिपे न रह सके, पास आकर प्रियाजी के दांई ओर उसी शिला पर बैठ गए। उसी समय प्रिया जी ने श्याम सुन्दर की दांई ओर दिव्य स्वरूप धारिणी अपनी इस सखी (पू० बोबो) को बिठा दिया। वे तीनों ही कुछ समय पर्यन्त वहां विराजमान रहे। तीन-तन, एक मन हो अत्यन्त मग्न होते रहे। प्रिया जी ने प्रियतम के नयनों से निसृत रस संकेतों को जान समीप की सघन निकुञ्ज में विश्राम हेतु प्रस्थान किया। श्याम सुन्दर इनके समीप ही बैठे रहे। सुख के उस महाम्बुधि की तरङ्गों का अता-पता लेखनी कैसे दे ....?''

अन्यान्य सखी वृन्द भी इस रसमसी दशा का पान करती रहीं।

एक दिन अपनी क्षुब्ध सी दशा में पू० बोबो के मुख से प्रियाजी की कृपा ममता की आकांक्षावश अनायास ही कुछ शब्द अपने दैन्य भाव में निकल गए। प्रिया जी की अपार कृपा ममता का स्रोत इन पर इस प्रकार बरसा।

× × ×

सन् १९६८ की बात है पू० बोबो प्रिया-प्रियतम के इच्छानुग्रह से उन्हीं के प्रीत्यर्थ काष्ठ मौन हो गईं। न किसी से बोलतीं और न ही किसी की ओर देखतीं। धीरे-धीरे इनकी बाह्य चेष्टाऐं तथा वृत्ति भी अन्तर्मुखी होती चली गई। श्यामा-श्याम को लाड़ लड़ाना, उन्हीं की सेवा-पूजा, उन्हीं की सेवा में अपनी पूरी दिन चर्या व्यतीत करतीं। प्राय: एकान्त में ही रहतीं तथा अनेक बार, बाह्य जगत से इतनी तटस्थ तथा शून्य में चली जातीं, लगता जैसे इनका मात्र देह यहां प्राण विहीन सा पड़ा है। एकान्त का सुअवसर पा संध्या में प्राय: श्री यमुना जी की सन्निधि में विचरण हेतु चली जातीं।

इसी वर्ष के मास सितम्बर के अन्तिम सप्ताह की बात है कि पू० बोबो श्री यमुना जी की लोल लहरियों में डूब-उतरतीं पास ही पुलिन पर घंटों रस-मग्न बैठी रहीं। सहसा उठीं और घर के लिये चल दीं। अनायास ही पग दूसरी ओर मुड़ गए और श्री राधारमण मन्दिर मार्ग पर चलने लगीं, अपनी किसी रस भावना में पगी चलती चली गईं। श्री राधा रमण जी के दर्शनार्थ मन्दिर में जा पहुँचीं। वहाँ दर्शन कर बड़े ही आह्लाद में भर प्रफुल्लित हो गईं। श्री गोपाल भट्ट जी की समाधि को पहले ही नमन कर आईं थीं। मन में एक विशेष आह्लाद भरा था- प्रसन्नता में भरी पहले से ही उत्फुल्लित हो रही थीं। श्री राधारमण जी के दिव्य दर्शन करके भी अभी अतृप्ति बनी थी। तभी इच्छा भोग आ गया तथा दर्शन खुलने की प्रतीक्षा में पू० बोबो वहीं बैठी रहीं। बैठे-बैठे इन्होंने देखा :-

"परम सुन्दर एक विशाल प्राङ्गण है। उसमें अण्डाकार वृक्षों की सघन पंक्ति दीख रही है। इन वृक्षों पर तथा लताओं में कहीं-कहीं पुष्प गुच्छ लटक रहे हैं। कभी-कभी पक्षियों का मन्द रव सुनाई देता बड़ा ही भला लगता है। चारों ओर बड़ी ही मनोहर सुगन्धि परिव्याप्त है। उन वृक्षों में एक के नीचे बड़ा ही सुन्दर रमणीक चबूतरा बना हुआ है। उस चबूतरे के चारों ओर कहीं-कहीं पुष्पों की डालियाँ दीख रही हैं। उस चबूतरे पर अपने दिव्य वपु से पू० बोबो बैठी हैं- और अपने सिद्ध स्वरूप को, इस जगत में स्थित स्वरूप से देख रही हैं। लहंगा, दुपट्टा तथा कञ्चुकी धारण कर रखी है। दुपट्टे के दोनों छोर ब्रजवासियों की भांति अपनी कञ्चुकी

के अग्रभाग में उरस रखे हैं । ब्रज किशोरियों की सी वेषभूषा है । दुपट्टा पीला तथा लाल रंग का मिश्रित सा है । झमझमाते, चमकदार वस्त्र हैं । सभी आभूषण धारण कर रखे हैं । ग्रीवा की शोभा बढ़ाती सुनहरी कण्ठी, अत्यन्त मनोहर लग रही है । हाथों में दोनों ओर स्वर्णिम कङ्गनों के मध्य लाल रंग की चूड़ियां भली लग रही हैं । उस वृक्ष पंक्ति के एक वृक्ष के पीछे से और कभी दूसरे वृक्ष के पीछे से छिप कर कभी प्रकट होकर, परम उल्लास में भरी, उमंग तथा उत्साह में फूली, आशा-प्रतीक्षा में मग्ना, आश्चर्य तथा हर्ष से चकित सी भावानुभावों में भरी नृत्य-निरत पूजनीया बोबो, मानों लुका-छिपी का खेल, खेल रही हैं । इसी में वे प्रिया-प्रियतम को खोज रही हैं । सुरमयी सांझ का वह समय अत्यन्त सुहावना लग रहा है । नृत्य निरत पू० बोबो उन्मुक्त, उन्मत्त आनन्दोल्लास में भरी मग्न हुई, दुपट्टे के बायें छोर को नीचे की ओर बड़ी ही अदा से थामे, दायें कर में दायां छोर लिये, हाथनृत्य की मुद्रा विशेष के कारण ऊपर किये नृत्य की इस अद्भुत मुद्रा में प्रतीक्षोन्मत्ता सी हैं, उसी समय पीछे से आकर श्याम सुन्दर ने, इनको अपनी सुकोमल, सुडौल भुजाओं में भर, चौंका दिया । विस्मय विमुग्ध तथा हर्षमग्न, दिव्य स्वरूपिणी पू० बोबो स्तम्भित सी रह गईं । इतने में बड़ी ही लाघवता से श्याम सुन्दर ने ठीक इन्हीं की मुद्रा में इनके पीछे से ही अपने झिलमिलाते पीताम्बर के दोनों छोरों को थाम इन्हें पूर्णतः आवृत्त कर लिया और स्वयं भी इन्हीं की भांति नृत्य की मुद्रा में इनके पीछे शीश से अपना शीश लगाए, शोभायमान होते रहे । "उस समय की वह मनोमुग्ध कारी छवि शोभा नेत्रों का ही विषय रही । वाणी तथा लेखनी क्या व्यक्त करे उस सबको । उस सुख को तो वे दोनों ही जानें । इसके पश्चात् अत्यन्त लाड़ में भर श्याम सुन्दर ने इनके शीश पर अपना शीश टिका दिया । वहीं खड़े-खड़े इनकी सी नृत्य मुद्रा में अपनी एक भुजा से इन्हें उठा पास ही की एक भीतरी कुञ्ज में प्रविष्ट हुए । वहाँ पर दुग्ध फेन सी श्वेत, उज्ज्वल चांदनी सी स्निग्ध, मृदुल स्थली निर्मित थी ।" एक गोलाकार सुन्दर चबूतरा युगल सरकार के विराजने के लिये निर्मित था । उसके पास ही अर्ध- चन्द्राकार एक ओर को रिक्त स्थान था । ठीक उसी के पीछे अन्य सखियों के लिये परम सुन्दर मृदुल-स्निग्ध, उज्ज्वल अत्यन्त निर्मल श्वेत अर्ध चन्द्राकार विशाल स्थली निर्मित थी । सिद्ध स्वरूपा पू० बोबो को उठा श्याम सुन्दर वहीं ले गए । एक ओर से, प्रिया जी परम प्रसन्न, स्वभाव से अत्यन्त प्रफुल्लित हुईं प्यार-दुलार बिखेरतीं सी, ममतावश उमगतीं-उमड़तीं सी, वृक्ष- झुरमुट में से आती दिखलाई दीं । ऐसा प्रतीत हुआ जैसे प्रियाजी ने उमड़ कर इन पर रीझ कर श्याम सुन्दर को इनके पास जाने के लिये प्रेरित

किया था। प्रियाजी ने बादली से रंग का लहंगा तथा लाल दुपट्टा ओढ़ रखा है, त्वरित गति से आ मानों इन दोनों को अपने युग्म तटों में आबद्ध कर लेना चाहती हों। इस नवीना सखी (पू० बोबो) की चिबुक अपने कर किसलय से उठा इनके नयनों में अपने नयनों से ही जाने क्या भर देना चाह रही थीं। अपार ममता, लाड़-प्यार, हास विनोद, छेड़-छाड़ में यह सकुचाईं सी, सिमटी सी, गद्गद, पुलकित, रोमांचित सी सिहरतीं न जाने कैसी-कैसी हुई जा रही थीं।

प्रिया जी ने लाड़ में भर इनके (पू० बोबो) शीश पर अपना शीश टिका दिया। प्रियतम ने इन्हें आवृत्त किये किये ही अपने बायें कर को प्रिया जी के मृदुल स्कन्ध पर धर दिया। उस समय की वह उल्लासमयी मुग्ध स्थिति में मानों तीनों की ही प्रणय परिणति हो रही हो। उसमें भी और-और की सतत मांग .... उस समय की वह शोभा। ...... ओह ! पुनः यह सम्हलीं। अत्यन्त कृतज्ञता में भरी (विशेषतः किशोरी जी के लिये, लग रहा था उन्होंने ही यह आयोजन किया है जान बूझकर) सकुचायी सिमटी सी हैं यह। इन्होंने पूर्व निश्चित स्थली पर प्रिया-प्रियतम दोनों को ही विराजमान कराया। तत्क्षण देखती हैं कि आसपास के झुरमुटों के मध्य मार्गों से अनेक सखियां वहाँ चली आईं। विविध रंगों के परिधान पहने वह सखी मण्डली बड़ी ही भली लग रही थी। हास-विनोदों की धूम से वह स्थली मुखरित हो गई। उनकी विनोद वार्ताओं से वह स्थली गूंज उठी। उन सखियों की प्रसन्नता में और और रसमय योग देते प्रिया-प्रियतम भी मुस्कराने लगे। उनकी उमंग-तरङ्गों का सत्कार करने लगे। यह सखी समूह परम उल्लास में भर उमंग-उत्साह में चहकने लगा, बहकने लगा। मदमाती सी चली आ रही है यह सखी मण्डली, माङ्गलिक शृङ्गार के कुछ वस्त्राभूषण आदि हाथ में लिये। इन्हें (पू० बोबो को) संकोच हो रहा है कि सखियाँ अब छेड़ेंगी, हास विनोद करेंगी। इसी भीति वश यह सबसे पीछे, सकुची-सिमटी, भीत सी, शंकित पर हर्षित तथा विस्मित सी बैठी हैं। सभी सखियों की छेड़ भरी दृष्टि सहसा इनकी ओर गई। सभी परस्पर कुछ-कुछ कह सुन, विनोद कर प्रिया-प्रियतम को रिझाने लगीं।''

दर्शन कब खुले इन्हें भान न था। अपनी उसी अर्ध-बाह्य दशा में ये उठ कर चल दीं। अनुभूति का क्रम अब भी चल रहा था- रास्ते में ही इन्होंने देखा श्री सुशीला बहन जी, जिन्हें ये अपना ही दूसरा रूप कहा करती थीं, सिद्ध देह से (सम्पूर्ण शृङ्गार मण्डिता) पान की तश्तरी लिये

जिन पर स्वर्ण तथा रजत के वर्क लगे हैं, श्यामा-श्याम के सन्निकट हो उन्हें पान समर्पित कर रही हैं ।

उस दिव्य सुखानन्द में सराबोर हुई पू० बोबो कब तक रस मग्न रहीं- कौन कहता ? अनुभूति के विषय को लेखनी कैसे व्यक्त करे ?

हृदय का सहज भाव अथवा सेवा ही भक्ति है । उपासना जब अनुभूति में बदल जाती है तो जिस सन्निधि सुख में हृदय मग्न हो जाता है, आनन्द मग्न हो अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है, अनुभूति का क्रम तद्रूपा भक्ति में परिणत हो जाता है, वहाँ कोई भेद ही नहीं रहता । सब ऐक्य में परिणत हो जाता है- यही द्वैता-द्वैत है । इसी में पूर्णता है । जहाँ मन पूर्णतः केन्द्रित होकर प्रिया-प्रियतम के प्रति समर्पित होने के साथ-साथ रसास्वादन हेतु अपनी स्थिति अलग भी बनाये रहता है परन्तु समर्पण भी पूर्ण होता है- वही परिपक्व स्थिति, रस की परमोच्च स्थिति है । उसमें वृत्ति तद्रूप, हो जाती है । अगाध-अखण्ड माधुर्य रसाम्बुधि की रस तरङ्गों में डूब-उतरते उन महज्जनों की क्या स्थिति कहें और क्या भाव ? मन के सहज द्रवण का न तो कोई मापदण्ड है और न कोई आकलन ही । उसे किसी भी इयत्ता में बांधा नहीं जा सकता । अनुभूति की कोई क्रम बद्धता नहीं हो सकती । साधारणतः साधकों के मन को नियम बद्ध करने के लिये अष्टयाम- सेवा तथा चिन्तन प्रणाली का प्रकाश हुआ है, उसमें भी आस्वादन के किसी एक स्तर पर पहुँच कर अनुभूति में किञ्चित् स्वतंत्रता आती है, परन्तु उच्च कोटि के भक्तों, महज्जनों तथा सिद्ध परिकर के लिये यह क्रम सर्वथा अपरिहार्य नहीं माना जा सकता । अपने प्रेष्ठ सामने प्रकट हो सहज सुलभ हो रहे हैं । उस समय क्या-क्रम अथवा क्या नियम- उस मधुरानन्द शृङ्गार सर्वस्व को अपनी सुकोमलतम भावनाओं से पूर्णतः समर्पण बस पुनः-पुनः समर्पण । वहाँ न कोई क्रम और न कोई मर्यादा और न कोई प्रतिबन्ध- बस यही भाव है, यही स्वरूप है और यही सम्बन्ध है । प्रेम और नेम एक दूसरे से विलग होकर भी सर्वथा मणिसूत्रमिव जुड़े हैं- अतः प्रेम, नेम की भित्ति पर ही टिकता है परन्तु कहीं-कहीं नेम का अतिक्रमण कर जाता है प्रेम ।

पू० बोबो का हृदय मधुरा भक्ति में तन्मय रहा । उनकी तन्मयता, तदाकार तथा तद्रूप वृत्ति से समर्पित पोषित होती रही । उसी के अनुरूप था उनका सिद्ध-स्वरूप जो गोपी भाव से सम्पुष्ट था ।

❑❑❑

सत्रह

इतर बन्धनों से मुक्ति-- श्री कृष्ण सेवा पूजा में दृढ़ रति

चन्द्रोदये चन्द्र कान्तो यथा सद्यो द्रवी भवेत् ।
कृष्णभक्त्युदये प्रेम्णा तथैवात्मा द्रवीभवेत् ॥***

(श्री ताराकुमारस्य)

ज्ञान नम्रता का द्योतक है, विनय का प्रतीक है और सन्तोष का अर्जक । वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सभी गुण भूषण के समान जीवन में समा जाते हैं, सुशोभित होने लगते हैं । नम्रता ज्ञानी का सहज स्वभाव है । प्रायः हम देखते हैं नदियाँ स्वयं जल नहीं पान करतीं और वृक्ष स्वयं फल ग्रहण नहीं करते । परोपकार हेतु ही उनका जीवन होता है । फल लगने के पश्चात् वृक्ष झुक जाते हैं, भरा हुआ घड़ा छलकता नहीं। इसी प्रकार सज्जनों का जीवन गम्भीर होता है । मानवता के सभी आवश्यक सोपान उनके जीवन में विद्यमान रहते हैं । सन्त जनों की बात तो बिल्कुल ही अलग है । प्रतिष्ठा उन्हें चाहिये नहीं, ईर्ष्या और द्वेष उनके जीवन में होता ही नहीं, जगद् ख्याति से उन्हें कोई प्रयोजन ही नहीं रहता- अतः सन्तों का जीवन परहिताय ही होता है । पहले तो वे किसी प्रकार के विवाद का विषय बनते ही नहीं और यदि कहीं इस प्रकार की गन्ध उन्हें मिलती है तो अपने को वहाँ से स्वतः ही अलग कर लेते हैं । जहाँ सभी के हित की भावना एक स्वभाव बन स्थाई हो जाती हो तो किसी के कष्ट का हेतु बनने का प्रयोजन ही क्यों ?

बहन जी के जीवन में एक ऐसी ही घटना का योग सहज बना । परिस्थितियों के अनुकूल सब सहज हुआ परन्तु लोकैषणा के प्रति सर्वथा उदासीन बहन जी ने स्वयं को वहाँ से तटस्थ कर हटा लिया ।

अध्यात्म प्रधान जीवन यापन करने के साथ-साथ भी अनेक कार्य श्री ऊषा बहन जी को करने पड़े । अनेक कर्तव्यों का सोत्साह

*** चन्द्रमा के उदय होने पर जिस प्रकार चन्द्रकान्त मणि स्वयं द्रवीभूत हो जाती है उसी प्रकार कृष्ण भक्ति के उदय होने पर चित्त, प्रेम से पिघल जाता है ।

निर्वाह भी किया। भारत स्वतंत्र हो ही चुका था। राष्ट्रीय भावना तथा कांग्रेस के कार्यों में अब मन उतना नहीं लगता था। लक्ष्य विशेष 'स्वतंत्रता' प्राप्त हो ही चुकी थी। वहाँ से मन हटने लगा था। इधर काव्य जगत् में भी प्रचुर ख्याति हो चुकी थी- प्रायः ऐसा देखा गया है कि जब एक व्यक्ति की प्रशंसा अथवा ख्याति चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है, जहाँ अनेक जनों में वह सब प्रसन्नता का विषय बन सराहनीय हो जाती है- वहां कुछ ऐसे लोग भी सदैव उनसे जुड़े रहते हैं जिन्हें यह सब सालता है और जब कभी वह सब एक ही क्षेत्र के दो व्यक्तियों में स्पर्धा का विषय बन जाती हो तो ईर्ष्या का भाव हो जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है।

अम्बाला छावनी में ही एक अन्य परिवार, उनकी वयस्का पुत्री, उसका नाम तो मैं नहीं देना चाहूँगा, की कविता लिखने में अभिरुचि थी। बिना शक वे बहुत अच्छा लिखती थीं परन्तु बहन जी के काव्य के सामने उस सबको कोई स्थान नहीं मिल सका। उस लड़की के भीतर दावानल सुलगता रहता। 'हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि-हाथ।'

जो लोग ख्याति और प्रसिद्धि के पीछे दौड़ लगाते हैं- प्रायः वे इस सबसे वंचित ही रहते देखे गये हैं और जिन्हें इस सबसे कोई सरोकार नहीं रहता, ख्याति उनके चरणों में विलुंठित हो धन्या होने की बाट जोहती रहती है। यही सब बहन जी पर पूर्णतः लागू हुआ। उनका काव्य, उनकी अनुभूति, उनके हृदय के भाव एक स्वाभाविकता में उनके हृदय से प्रस्फुटित हुए, जिसका प्रभाव चारों ओर छा गया और उनके व्यक्तित्व के सामने अन्य कोई भी उतनी गहराई से न टिक सका। उनकी यह ख्याति उस परिवार के लिये ईर्ष्या और द्वेष का कारण बनती चली गई। उस परिवार वालों को अन्दर ही अन्दर बहुत कष्ट होता परन्तु निदान उन लोगों के हाथ में कुछ भी न था। ईर्ष्या उस परिवार में एक घुन सा बन सालने लगी थी। बात फैलती हुई धीरे-धीरे श्री ऊषा बहन जी तक भी पहुँची। यह बात इन्हें सह्य ही किस प्रकार होती- उनके कारण से किसी को दुःख हो यह सब बहन जी सहन ही कैसे करतीं, अपने न्याय ग्रन्थ को देखते-देखते मां जाह्नवी की लोल लहरियों को जिस प्रकार श्री श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने समर्पित कर दिया था, बहन जी ने भी अपने सभी सामाजिक पदों से त्याग पत्र दे दिया, कांग्रेस का अध्यक्ष पद वे छोड़ ही चुकी थीं। अपने

सभी प्रतिबन्धों से मुक्त हो बहन जी श्री ठाकुर जी की सेवा पूजा में अधिकाधिक रत रहने लगीं ।

उनके बाह्य तथा सामाजिक प्रतिबन्धों से तटस्थ होने में सहायक एक और योग हुआ । लोक-ख्याति से वे सर्वथा दूर रहती ही थीं। अपनी कर्तव्य परायणता वश उन्हें भले ही कुछ प्रतिबन्धों को निबाहना पड़ा परन्तु अन्दर से उनकी भावना सर्वथा विरक्ति-प्रधान रही । इधर इनकी लग्न-पत्रिका देख एक सुयोग्य पंडित जी ने भविष्यवाणी की थी 'इन्हें समुद्र पार जाना पड़ेगा और वहाँ ख्याति विशेष होगी ।' राजनीति एक ऐसा क्षेत्र दीख रहा था ज़िसके कारण इनको बाहर जाना पड़ सकता था ।

इन्हीं के समकालीन अनेक कांग्रेस कार्यकर्ता आज राज्य तथा केन्द्र सरकार में महत्त्वपूर्ण पदों पर अपनी भूमिका निबाह रहे हैं । पंडित श्री केशवानन्द जी ने कहा था या तो इसे विदेश जाना पड़ेगा अन्यथा यह वैराग्य तथा तितिक्षा पूर्ण, निश्छल तथा प्यार से ओत-प्रोत अपनी विचारधारा से सभी को प्रभावित कर एकान्त साधन में रत एक पूर्ण सिद्ध सन्त का जीवन यापन करेगी । वही हुआ, अपनी समस्त ख्याति तथा ऐश्वर्य का परित्याग कर जिस आदर्श रहनी से व्रज में ये रहीं, वह अत्यन्त कठिन तो थी ही प्रत्युत इसका दूसरा उदाहरण आज के युग में खोजने पर भी मिल पाना दुर्लभ है ।

पंडित जी की बात इनको लग गई । वे अवसर की खोज में रहती ही थीं । अकस्मात् यह संयोग बना और उन्होंने इस अग्राह्य प्रशंसा के प्रति उदासीन हो अपने को सभी प्रतिबन्धों और अनुबन्धों से अलग कर लिया । मंच पर न जाने का लगभग निर्णय ले लिया । एक बार जगन्नाथपुरी में भगवान जगन्नाथ के तथा समुद्र स्नान करने के उपरान्त इन्होंने कहा था- विदेश जाने का योग अब समुद्र दर्शन मात्र से पूर्ण हो गया है ।

श्री ठाकुर सेवा

उपासना के क्षेत्र में जहाँ ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है वहीं साकार उपासक भक्तों के लिये उनके इष्ट श्रीराम और श्रीकृष्ण की उपासना को ही प्रधानता दी गई है । अतः उन्हीं श्री राम और श्री कृष्ण की सेवा का विधान पूर्ण रूप में स्वीकार किया गया है । जिन श्री विग्रह स्वरूप की, हम निष्ठा पूर्वक सेवा करते हैं वहाँ उनका प्राकट्य हो

जाता है। प्राकट्य ही प्रत्यक्ष हो हमें हमारे इष्ट रूप की सतत सन्निधि प्रदान करता है। वे श्री कृष्ण वहीं (हमारी भावनाओं को केन्द्रित कर वहीं) से प्रकट हो हमारी भावनाओं को पोषित करते हैं। हमारे पास आकर, इतना पास, इतना पास, जितना हम एक दूसरे के हो सकते हैं।) भक्त माल के रचयिता श्री नाभा जी द्वारा चौबीस निष्ठाओं में एक पूर्ण निष्ठा श्री ठाकुर सेवा भी स्वीकार की गई है। इसी की पुष्टि शास्त्रों और पुराणों ने भी की है। तन-मन से जब हम अपने प्राणप्रेष्ठ की सेवा में रत हो जाते हैं तो सेवा ही प्रीति में परिणत हो जाती है, प्रीति प्रगाढ़ होकर हमें उनका भान कराती है और अधिक पुष्ट होकर उनकी सन्निधि का योग जुटाती है, फिर होती है उनकी मधुर रसमयी वार्ता, संस्पर्श और, और .... ।

हाँ, तो हमारी चरित्र नायक श्री ऊषा बहन जी सामाजिक अनुबन्धों से तथा अन्य प्रतिबन्धों से, कांग्रेस के कार्य से उपरत प्रायः हो चुकी थीं और इधर सहसा ही एक घटना घटी। श्री ठाकुर सेवा के लिये उन्हें अधिकांश समय मिलने लगा। बात यों हुई कि श्री ऊषा बहन जी की दादी का परलोक गमन हो गया। सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर जी की सेवा पूजा दादी की रुग्णावस्था में ही इन्होंने सम्हाल ली थी। अब वह सेवा की सम्पूर्ण व्यवस्था सहसा इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली थी। सेवा में एक नवीनता का उदय हो गया। श्री ठाकुर जी का उत्थापन उनका शृंगार, भोग, राग तथा शयन तक की पूरी सेवा का सुअवसर इन्हें प्राप्त हो गया। कभी-कभी जब किसी कार्य विशेष से बाहर जाना पड़ता तो यह सुअवसर पिता तथा बहनों को भी प्राप्त होता। मुख्य रूप से श्री ठाकुर जी के सभी कार्य नियमित रूप से स्वयं ही करती थीं। इनके सेवा भाव को जान पाना किसी के भी सामर्थ्य की बात नहीं है। यह सेवा केवल कर्तव्य-भर न थी। उसमें इनके मन का योग था, प्राणों का अभिनिवेष था और आत्मा का समर्पण था, तन स्वतः अनुगामी होकर कार्यरत रहता था। श्री ठाकुर जी के लाड़ चाव में ही समय बीत जाता। अन्य कार्य करने पड़ते थे, करती भी थीं, परन्तु हृदय का एक विशेष लगाव, मन का तारतम्य सदैव बना रहता था। यदि यह कहूँ कि प्रियतम श्याम-सुन्दर की सन्निधि इन्हें सतत बनी रहती थी तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। परोक्ष रूप से तो वे साथ रहते ही थे, साथ-साथ अनेक बार हृदय के धन, प्राणों के प्राण, जीवन-सर्वस्व यह युगल सुन्दर, चलते-फिरते, कार्य करते, विद्यालय में पढ़ाते, अपने मधुरे संकेतों से, प्रणय पगे आश्वासनों से, नव-नव जीवन प्रदान करते रहते थे।

हाँ, तो श्री ठाकुर सेवा में बहुत समय बीत जाता । श्री ठाकुर जी को स्नान, शृंगार धारण करातीं तथा उसी भाव में रत रहतीं । इसी में प्रायः योग देतीं श्री सुशीला बहन जी, इनकी अभिन्न हृदया सखी । सेवा में अधिक समय लगता देख कभी-कभी पिता जी कहा करते, "तुम लोग सेवा में इतनी देर क्या करते रहते हो ?" परन्तु नारी हृदय की इस कोमल भावना को, प्रणय पगे कोमलतम नारी सुलभ आश्वासनों को अपने प्राणों के प्राण इन मधुर प्रणयी प्रिया-प्रियतम से हृदय का क्या सम्बन्ध हो सकता है ? कितना मार्मिक और हृदय स्पर्शी यह संबंध हो सकता है- यह कल्पना, बिना नारी हृदय के भला कौन जान सकता है ? अब तक जिस सेवा का आनन्द अकेली ले रही थीं, श्री सुशीला बहन जी के पुनः अम्बाला चले आने के पश्चात् उस सुख में और अधिक वृद्धि होने लगी ।

❑❑❑

अट्ठारह

मृदुल स्वभाव- सभी में प्रेम भाव - उच्च शिक्षा तथा श्री विमला नेविल से परिचय

अपनों से बड़ों को स्नेह समादर और समुचित मर्यादा पूर्ण व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न करती मुन्नो, अपने समवयस्कों में तथा परिवार के सदस्यों में बहन जी तथा पू० बोबो नाम से जानी जाती थीं । अब हम उन्हें बहन जी तथा पू० बोबो और अन्य उनके सम्पर्क में आने वालों को केवल अन्तर दर्शाने हेतु, नाम से सम्बोधित करेंगे ।

हां ! तो बहन जी का मन्दिर जाने का नियम था । वहाँ अनेक जनों से भेंट होती । भगवच्चर्चा होती । आप विश्वास कीजिये, लोग इनसे मिलने को आकुल-व्याकुल हुए समय की प्रतीक्षा में रहते थे । विद्यालय की छात्राऐं बहन जी के दर्शनों के लिये उमड़ पड़तीं । इन्हीं विद्यार्थियों में से अनेक बालिकाओं का इनके प्रति समादर तो था ही, साथ-साथ मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि उनका इनसे कतिपय पूर्व का सम्बंध भी अवश्य रहा होगा अन्यथा स्नेह, अपनत्व और आत्मीयता का जो स्वरूप, इन सब के प्रति, प्रकट रूप में उमड़ता रहा, उसके आधार पर यह निर्णय लेना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । बहन जी की अनुगता, उनकी भक्ति से प्रेरित, धर्म शिक्षा में प्राप्त, श्री कृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत उन सबको क्या पता था कि यह सम्पर्क एक नित्य और शाश्वत सम्बन्ध बन जावेगा । बहन जी सर्वथा जानती थीं, उन्हें इस प्रशस्त पथ पर लाने का जो भी उचित साधन अनिवार्य था वह उन्होंने किया । वास्तव में, बीज आरोपित होने पर भी अनुकूल परिस्थिति और समय पर ही उसका प्रस्फुटन सम्भव होता है । हृदय में दबी-पड़ी चाह, और पूर्व संस्कारों को आश्रय मिला, उनका प्रस्फुटन हुआ, इसी वातावरण में भरण और पोषण मिला, एक सुदृढ़ लता की भांति अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का । वह सब सुयोग अनायास ही प्राप्त हो गया, जो ग्राह्य था, वांच्छित था तथा अभीप्सित था । घर वालों ने विरोध किया; अपना सा प्रयास भी किया परन्तु श्री राधाकृष्ण भाव के जिस रसास्वादन हेतु उन बालिकाओं का जीवन बना था वह पोषित और पल्लवित हुआ बहन जी की सन्निधि में, उन्हीं के संग से। बहन जी उनके जीवन में मात्र अध्यापिका बनकर ही नहीं आईं थीं, वे आईं

उन्हें उच्च शिक्षा देने हेतु, इस मरण-धर्मा जगत् से उठा सुदूर किसी अमरत्व को प्रदान करने । वह अमरत्व मिला, जग जंजाल छूटा और उनका संग ही सुदृढ़ भित्ति बना उस वातावरण की, जो उन्हें एक विरक्त जीवन यापन करने, श्यामा-श्याम की अनुरक्ति में पग, उन्हीं के धाम, अपने घर, चले आने के संयोग का । सम्पर्क में सहस्रों विद्यार्थी आए । उनके स्वभाव से, उनके व्यवहार से, उनके स्नेह और प्रेम के आश्रय में पल, अपने गन्तव्य पर आ जुड़े । कुछ अपना सद्गृहस्थ लेकर रहने लगे, अनेकों में अध्यात्म के बीज रोपित हुए- जाने कब समय पा कर प्रस्फुटित हो गए होंगे । साधारण सा दीखता, अत्यन्त सादगी से परिपूर्ण, सुदृढ़ विचारधारा लिये यह असाधारण व्यक्तित्व जाने कितने दीपकों को प्रज्ज्वलित करता रहा । यह प्रज्ज्वलन एक जागृति को लेकर था, संसार की विडम्बनाओं से दूर ले जा, किसी श्यामल रससिन्धु के अंक में विश्राम पाने की ।

टप-टप-टप सैंडलों की ध्वनि दूर से सुनाई दी । किसी ने घूम कर देखा, इकहरे बदन में, दबी ढकी, साक्षात् स्फूर्त्ति ही मानों चली आ रही है । प्लक्ष का कोट पहने सड़क पर चारों ओर से मिलने वालों, अपने से बड़ों का अभिवादन करते हुए तथा छोटों का अभिवादन स्वीकार करते हुए प्रेम की मूर्ति चली आ रही हो, सड़क पर बैठी, एक माई ने पुकार कर कहा, "बीबी ! आहार के लिये मुझे कुछ चाहिये ।" इनका हृदय वहीं द्रवित हो गया । इधर-उधर देखा । पास ही से भागी चली आई एक बालिका बोली, "बहन जी ! अभी यह कुछ कह भी न पाई थीं कि उसने इनकी ओर देखा, स्वभाव से पूर्व परिचित ही थी । ऐसा दयामय कौन होगा भला ?" पास से जाता एक व्यक्ति देखकर स्तब्ध रह गया । कल कवि सम्मेलन में, और परसों राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत विचारों से जो व्यक्तित्व मंच पर सारगर्भित प्रवचन दे, लोगों में उथल-पुथल मचा रहा था, उसके पास इतना समय है कि एक सड़क पर अभाव ग्रस्त महिला की भावना से विशेष साधारणीकरण कर दीन-दु:खियों की कहानी सुन रहा है, अपने से बड़ों का अभिवादन कर रहा है- सभी से प्यार भरी बात कर रहा है ।

प्रति दिन नई साड़ी पहन कर जातीं । यद्यपि मन से वे पूर्णत: विरक्त थीं तथापि शरीर रक्षण हेतु पिता जी द्वारा उपलब्ध कराऐ गए, सभी प्रसाधनों का उपयोग वे करतीं । बालों में नेट लगातीं, अन्य सभी प्रसाधनों का प्रयोग अवश्य करतीं एक अत्याधुनिक तो नहीं परन्तु अनिवार्य सभी प्रसाधनों का प्रयोग अपनी अवस्था के अनुसार करती रहीं । एक बार इन्हीं के अध्यापक महोदय ने इनसे पूछा, "मुन्नो ! तेरे पास कितनी

साड़ियाँ हैं?'' इन्होंने संख्या बतला दी वे सुन कर चुप रह गए, कहा कुछ नहीं। ये समझ गईं। उसके बाद से, चाहे कोई जलसा हो अथवा विद्यालय का कोई आयोजन, सभा के मंच पर हों अथवा कालेज में अध्यक्षता करनी हो, इन्होंने मात्र-दो साड़ी के अतिरिक्त नहीं रखीं। एक पहनती दूसरी धोकर सुखा देतीं। मोटी साड़ी, साधारण पादुका, बिखरे बाल श्री ठाकुर जी के प्रसादी चन्दन की बिन्दी धारण किये, मोटा ब्लाऊज, सुविशाल नेत्र, एक साधारण वेश में विचरती वह विशिष्ट प्रधानाध्यापिका, प्रसिद्ध कवियित्री तथा सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में जिन्होंने उन्हें देखा है, वे अवश्य ही जानते हैं उस असाधारण व्यक्तित्व को, जो सभी के बीच उनके विचारों से साधारणीकरण कर विचरण करता रहा है।

एक बार अम्बाला शहर के एक कालेज में अध्यक्षता हेतु उस कालेज के प्रधानाचार्य ने प्रस्ताव रखा। जैसे-तैसे उनके आग्रह को स्वीकार करना पड़ा, अन्यथा इस सबसे अब इन्होंने स्वयं को तटस्थ सा ही कर लिया था। सभी व्यवस्था कर ली गई। कॉलेज के द्वार पर, बाहर से अनावश्यक लोग भीतर न आ सकें, सुरक्षा हेतु कुछ विद्यार्थियों को तैनात कर दिया गया था। सभी श्रोता तथा दर्शक बहन जी की प्रतीक्षा में बैठे थे। प्रधानाचार्य महोदय भी व्यस्त थे। समय हो गया। अभी तक ये नहीं पहुँची, एक बेचैनी और अस्थिरता का वातावरण बनता जा रहा था। किसी ने प्रधानाचार्य महोदय से जा कर कहा। वे यह कहते हुए इधर-उधर खोजते बाहर दरवाजे की ओर भागे कि समय का प्रतिबन्ध उनके जीवन का एक सुदृढ़ अनुबन्ध बना है- अतः अवश्य ही द्वार पर उन्हें पहचानने में भूल हुई है। जाकर बाहर देखा- तो गुदड़ी में ढका वह लाल जिसकी बड़ी आतुरी से प्रतीक्षा हो रही थी सड़क के किनारे एक वृक्ष के नीचे अपनी मस्ती में इधर से उधर टहल रहा है। सभी भागे गए। उन्हें लेकर आए। आकर जब वे मंच पर बैठ गईं तो दोनों विद्यार्थी क्षमा मांगते हुए उनके पास पहुँचे। बहन जी !''हमने आपको पहचाना नहीं, आप क्षमा कर दें आपने अपना परिचय भी नहीं दिया अन्यथा ऐसी धृष्टता हम लोग कदापि कर नहीं सकते थे।'' उन बच्चों की पीठ थपथपाते हुए इन्होंने कहा था जब तुम लोग पहचानते ही न थे तो अन्दर न आने देने में तुम्हारा कोई दोष नहीं है, प्रत्युत, मुझे प्रसन्नता है जिस कर्तव्य के लिये तुम लोगों को वहाँ खड़ा किया गया था, उसका निर्वाह तुमने ईमानदारी से किया है।

इतनी व्यस्त होने पर भी आपने घर में नियम ले लिया कि एक समय की रसोई स्वयं बनाऊँगी तभी खाऊंगी। यह नियम इन्होंने वर्षों निभाया। अपनी भरी व्यस्त दिनचर्या के साथ, कॉलेज के कार्य के

साथ-साथ, घर में पुस्तकें लिखने के साथ और अपने प्राणों के प्राण जीवन की निधि इन सेव्य स्वरूप श्री राधा-कृष्ण की सेवा के साथ-साथ, (जो इन्हें जीवनी शक्ति प्रदान करते रहे, इस सारे श्रम पर शीतल-विलेपन बन इनके श्रम का निवारण करते रहे ।)

श्री विमला नेविल से परिचय

बहन जी अपने निश्छल प्यार से जन-जन में आध्यात्मिकता का बीजारोपण कर रही थीं । देवालय में दर्शन हेतु जाने का उनका नियम ही था । एक दिन एक बहन इनसे मिलने पधारीं और बोलीं, "आपको नित्य मन्दिर में दर्शन करते देखती हूँ ।' लम्बे-लम्बे समय तक श्री ठाकुर जी के दर्शन करते देखती हूँ । आपके दर्शन करना चाहती थी- अत: चली आई ।" यह बहन थीं श्री विमला नेविल । पिता डाक-तार विभाग में कार्यरत थे । लाहौर से स्थानान्तरित होकर अम्बाला चले आए थे। सत्संग और संकीर्तन में वहाँ भी रुचि रही । यहाँ आकर भी श्री विमला जी ऐसे ही किसी स्थान की खोज में थीं । हमारी चरित्र नायक श्री ऊषा बहन जी के सम्पर्क में आईं । बहन जी के प्रति इनका वात्सल्य सा ही बना रहा। संकीर्तन हुआ ही करता था, अत: आना-जाना प्राय: का हो गया । बहन जी के संग में आने पर इनके संकीर्तन के स्वरूप में किञ्चित् निखार आया । बाह्य प्रदर्शन बहन जी को बिल्कुल ग्राह्य न था- श्री विमला जी के भावों में ठहराव आने लगा । अपनी अमूल्य निधि को जगत् में क्षण-भङ्गुर और ह्रासोन्मुखी प्रतिष्ठा वश संसार में बिखेर उस महासुख से वंचित होना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है ।

बहन जी के साथ ही सह-अध्यापिका के रूप में विद्यालय में कार्यरत रहीं ।

हम पूर्व में कह आए हैं कि शास्त्रीय मर्यादाओं में विकसित बहन जी का जीवन पूर्ण रूप से मर्यादाओं के घेरे में ही पुष्पित-पल्लवित होता रहा ।

ब्राह्मण वर्ग के प्रति वे समादर रखती थीं । वे सदा कहा करती थीं कर्म से ब्राह्मण-धर्म का पालन न करने पर भी, ब्राह्मण बालक पूजनीय है । भगवान ने स्वयं 'ब्राह्मण' और 'गौ' को अपना श्री मुख कहा है। इस मर्यादा का पालन उन्होंने आजीवन किया । अत्यन्त आत्मीयता वश दो चार ऐसे व्यक्तियों में अपवाद अवश्य रहा जो बहुत ही स्वाभाविक था।

विमला बहन जी इन्हीं की सन्निधि में अपनी भक्ति साधना में रत रहीं- अंततः श्री वृन्दावन धाम पधारीं । इनकी कृपा भाजन बनीं, नित्य धाम प्राप्त कर गईं ।

श्री राजदुलारी

इन्हीं के साथ-साथ बहन जी के सम्पर्क में आईं एक अन्य बहिन श्री राज दुलारी। सादगी मूर्तिमान होकर खड़ी हो जैसे। दैन्य परिपूर्ण किसी भी बात को यथावत् स्वीकार कर लेने का बहुत ही सुन्दर स्वभाव जो विवेक के अभाव में हानिकर भी हो सकता है। वकील साहब की एक लड़की बहन जी से मिलवाने लाईं। मन की साफ थीं। बहन जी ने देखा इनका भीतरी निर्मल हृदय। बहन जी के पास आने-जाने लगीं।

इनका अपना भी आध्यात्मिक परिवार था। सम्भवतः पूर्व संस्कार वश ही मिलन हुआ था। वह संस्कार पुष्पित और पल्लवित हुआ बहन जी की सङ्गति में। बहन जी की सङ्गति का लाभ उठाया- वे भी इन पर पूर्ण विश्वास करती थीं।

अन्ततः एक बहुत बड़े विद्यालय की प्रधानाध्यापिका पद का त्याग कर वृन्दावन वास कर रही हैं- उत्कट वैराग्य तथा श्रेष्ठ साधन में रत रहकर।

× × ×

बात कुछ अधिक पुरानी नहीं हुई थी। बहन जी विद्यालय में पढ़ा रही थीं। उसके साथ-साथ बहुत व्यस्त हो गईं थीं। हिन्दी भाषा का इन्हें विशद ज्ञान हो चुका था, फिर भी पढ़ने का इतना चाव था कि जहाँ कहीं कोई पुस्तक पातीं अवश्य पढ़कर ही छोड़तीं। मात्र पन्ने पलटना ही नहीं आप कभी भी उस विषय में पूछ लें तो आपको बड़ा ही सार गर्भित उत्तर देने की क्षमता इनमें थी।

एक बार एक विचित्र घटना घटी। एक पुस्तक पढ़ने के लिये एक व्यक्ति इनके पास आए। इन्होंने पुस्तक ले ली। पुस्तक काफी बड़ी थी। बहन जी ने कहा कुछ समय के लिये आप छोड़ जाइये- कुछ समय की बात तो दूर वे कुछ घंटे छोड़ने को बड़ी कठिनाई से माने। इन्होंने पुस्तक देखनी प्रारम्भ की- लेटे-लेटे थोड़ी देर में कब यह तन्द्रा सी में हो गईं- और जब सजग सी हुईं तो पुस्तक के पूरे पृष्ठ पलटे हुए थे तथा बन्द पुस्तक इनके समीप रखी थी। वे व्यक्ति बिल्कुल ठीक समय पर वहां चले आए और पुस्तक पूरी पढ़ी जा चुकी है, इस बात पर उन्हें विश्वास नहीं हो सका। कुछ कौतूहल और जिज्ञासा वश किये गए अनेक समाधान जब उन्होंने पुस्तक के आधार पर देख लिये तो स्तब्ध रह गए।

बहन जी को एम. ए. की परीक्षा देनी थी। मात्र बीस दिन शेष रह गए थे। कोर्स की पुस्तकें देखने का इन्हें समय ही न मिलता

था। पुस्तकें पास थीं भी नहीं। इन्हीं की एक सहेली जो बाद में इन्हीं से गीता ज्ञान अर्जित कर वर्तमान में अमेरिका में अपने सारगर्भित प्रवचनों के लिये विख्यात है, श्री विमला जी तीन वर्ष पूर्व यहाँ इन्हें मिलने पधारी थीं। वे पुस्तक लाकर देतीं, इनके पढ़ लेने के पश्चात् लौटाकर आने तक की जो सेवा उसने की वह अविस्मरणीय तो है ही, लगता है इसी सेवा के कृपा प्रसाद से धन्या हुई, आज गीता प्रचार में संलग्न हैं। मात्र उन पंद्रह दिनों की पढ़ाई कर लेने के बाद इन्होंने परीक्षा दी। पंजाब विश्व विद्यालय की हिन्दी एम. ए. का परीक्षा-परिणाम जब घोषित हुआ तो सभी विस्मित हो गए। इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। विश्व विद्यालय में यह दूसरे नम्बर पर थीं।

एक ओर जहाँ विद्वत्ता और ज्ञान के कारण बहन जी लोक प्रिय हो गईं थीं वहीं इनकी सादगी का पुट लगने पर उस ख्याति में और और निखार आया। आप पहले पढ़ चुके हैं इनके त्याग-तितिक्षा और सादगी के विषय में। जिनका सम्पर्क इनसे पूर्व में हुआ है, निश्चित ही उनके नेत्र अधिक सजल हो जावेंगे इनकी इस छवि का स्मरण करके- क्या व्यक्तित्व रहा इनका, कितनी सादगी तथा कितना भोलापन !

एम. ए. की परीक्षाऐं उन दिनों अम्बाला में नहीं होतीं थीं। केन्द्र बना था, पटियाला (पंजाब)। मारकीन की जिस मोटी धोती को धोकर, दूसरी पहना करती थीं- आज इनके वैराग्य को देख वह भी पसीजी और पहनने के समय तक गीली ही रह गई। घर में बहनों को चिन्ता हुई अब कैसे और क्या करेंगी ? परीक्षा हेतु तो पटियाला जाना ही था। जैसे-तैसे कह सुनकर एक छोटी सी अटैची, कुछ धोतियाँ रख इनके लिये तैयार कर दी, परन्तु जब यह जाने लगीं तो अपनी उसी धोती को पहन कर चल दीं। जब सभी ने आग्रह किया तो उनका मन रखने के लिये वह छोटी सी अटैची इन्होंने अपने साथ रख तो अवश्य ली, परन्तु जब तक वहाँ रहीं इन्होंने उस बक्स को खोला तक नहीं। आप स्तब्ध हो जावेंगे यह जानकर कि उसी प्रकार से बन्द अटैची लाकर इन्होंने वापिस दे दी। इनका त्याग और तितिक्षा पूर्ण जीवन एक आदर्शमय था, वैराग्य इनका भूषण था और विवेक इनके जीवन में परिपूर्ण था, वे मन से पूरी तरह विरक्त थीं। संसार का कोई भी प्रलोभन, मृग मरीचिका के बड़े से बड़े आकर्षण, तथाकथित सांसारिक सुख का लेश मात्र भी कभी इन्हें इनके विचारों से, इनके निर्णयात्मक सुदृढ़ निश्चय से, इनकी अडिग निष्ठा से, विवेक पूर्ण आदर्शों से विचलित कर पाया हो, ऐसा अवसर खोजने पर भी नहीं मिलेगा।

❑❑❑

उन्नीस || श्री ठाकुर सेवा

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृत्यो विभिन्ना
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्था ॥***

महाभारते वनपर्वणि

भगवत्प्राप्ति के लिये विभिन्न आचार्यों द्वारा अनेकानेक मार्गों तथा सिद्धान्तों का निरुपण किया गया है। कर्म तथा ज्ञान की अपेक्षा आज के युग के लिये भक्ति मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। भक्ति पथ में भी अनेक धारणाऐं तथा अभिमतों का निरुपण हुआ है। अपने इष्ट के प्रति मन का समर्पण ही रागानुगा मार्ग की उपासना के अन्तर्गत माना गया है। श्यामा-श्याम की प्राप्ति हेतु जिस भाव से हमारा मन सहज द्रवित हो जाता है वही हमारा भाव है, वही हमारा स्वरूप है, उसी मार्ग से हमारी साधना पूरी होगी यह सुनिश्चित ही है। वही मार्ग हमें गन्तव्य पर ले जाने वाला है तो अन्य सभी भावों, मार्गों से विवेक पूर्ण सिमट कर हमें अपने निर्धारित मार्ग पर चल अभीष्ट को प्राप्त करना होगा- जब लक्ष्य स्थिर है, मार्ग सुनिश्चित है गन्तव्य स्थल पर सीधे पहुंचने का संकेत मिल चुका है तो फिर अन्यत्र किसी भी विचार, कामना तथा लोभ का कोई औचित्य नहीं दीखता। भजन में अभिनिवेष हो जाने पर कहीं अन्यत्र आकर्षण हो ही नहीं सकेगा।

श्री ठाकुर सेवा तथा प्रकट चरित्र

भज् धातु सेवा के अर्थों में प्रयुक्त होती है। सेवा को ही भजन कहा गया है। सेवा और भजन का अन्योन्यश्रित सम्बन्ध है। इसका रूप और परिभाषा स्वतः भजन ही है। यह एक कार्य नहीं है, एक बन्धन नहीं है, और न ही है वाणी का विलास। यह एक सम्बन्ध है, एक निष्ठा है,

*** श्रुति और स्मृतियाँ अनेक तरह की हैं, एक मुनि नहीं है जिसका वचन प्रमाण माना जाए, धर्म का तत्त्व गूढ़ है इसलिये महात्माओं ने जिसका अनुसरण किया है वही सत्य मार्ग है।

एक भाव है, और सर्वोपरि है मन का सहज द्रवण । इसका कोई बद्ध स्वरूप नहीं है- प्राणों का अपने प्रेमास्पद सेव्य श्री विग्रह स्वरूप ठाकुर के प्रति जिस कोमलतम, 'तत्सुखे सुखित्वं' की भावना, से प्रीति पूर्ण समर्पण हो जाता है, वही हमारे अपने सेव्य स्वरूप के प्रति हमारा भाव है । यह भाव अत्यन्त आत्मीयता में पगा प्रगाढ़तम होकर जैसे-जैसे परिपक्व होता जाता है- वैसे-वैसे ही वे सेव्य श्री विग्रह स्वरूप साकार हो जाते हैं- यही है भाव की परिपक्व अवस्था ।

श्री ठाकुर सेवा में जितनी प्रगाढ़ता से मन जाता है अनुभूति की प्रगाढ़ता भी तद्नुसार होती जाती है । श्री विग्रह-सेवा निष्ठा परिपूर्ण निष्ठा तो है ही साथ-साथ अनुभूति की जिस गहराई तक हमें ले जा सकने की क्षमता इसमें है वह अनुभवगम्य ही है ।

भक्तों की प्रगाढ़ अनुभूतियां मूर्तिमान होकर क्षण-क्षण पल-पल उन्हें आश्वासन देती रहती हैं तथा उनके जीवन की संजीवनी मूरी बनी, पथ प्रदर्शक भी । श्री श्री रामानुजाचार्य जी ने रङ्गनाथ भगवान् को मूर्त किया, भगवान् श्रीमन्निम्बार्काचार्य जी महाराज के लिये शालिग्राम जी सर्वेश्वर रूप में प्रकट हो, उनके जीवन के प्रेरणा स्रोत बने रहे । इधर श्री श्री मन्महाप्रभु चैतन्य देव की लोक विख्यात गाथा भक्तों को आज भी श्री जगन्नाथ भगवान् की लीलाओं का दिग्दर्शन करा रही है । ब्रज की निधि श्री श्री नाथ जी के विलक्षण चरित्र से कौन भक्त हृदय अपरिचित होंगे । श्री श्री मन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज, गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के लिये तो वे श्री ठाकुर प्रत्यक्ष थे ही, अष्टछाप के सखाओं में उनकी प्रगाढ़ मैत्री तथा आत्मीयता का भाव रहा । श्री नाथ जी उनके साथ खेलते, उन्हें मिलने के लिये जाते, स्वेच्छा से वहाँ जा दुग्ध आदि की सेवा ग्रहण करते। वे उनके सखा रहे, सुहृद रहे, उनके प्राणों के प्राण रहे तथा जीवन सर्वस्व रहे । इधर श्री मदन मोहन जी की लीलाओं की परिणति नहीं । सनातन जी का वैभव बढ़ाने में इन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी ।

वर्तमान में श्री वृन्दावन में विराजमान स्वयं प्रकट स्वरूपों में स्वामी श्री हरिदास जी के सेव्य श्री श्री बांके बिहारी जी, श्री गोपाल भट्ट जी के सेव्य श्री राधारमण जी और श्री हित हरिवंश जी के सेव्य श्री श्री राधावल्लभ जी तथा ब्रज में विराजमान श्री गोकुलनाथ जी तथा श्री गोकुल चन्द्रमा जी की मधुर लीलाओं से कौन ब्रज प्रेमी अपरिचित होंगे ।

ऐसे ही पूजनीया बोबो के सेव्य श्री ठाकुर जी के विलक्षण चरित्र, रसीली चेष्टाऐं तथा प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ अनेक भक्तों तथा महज्जनों ने अपने चर्मचक्षुओं से देखी हैं, अनुभव की हैं। भावुक भक्तों के लिये तो यह प्रकट हैं ही, बुद्धि जीवियों के लिये भी आकर्षण बने हैं। वे स्वयं तो प्रकट रूप में विराजमान हैं ही आज अनेक महज्जन भी हमारे सामने साक्षी स्वरूप विराजमान हैं। अनुभूति, भाव से सम्बन्धित है, अतः इस जगत की चर्चा इस जगत के परिप्रेक्ष्य में इसी सिद्धान्त की कसौटी पर चमकती है। ये श्री ठाकुर जिनके सेव्य रहे हैं, जिनके जीवन की संजीवनी मूरि रहे हैं, जिनके प्राणों के प्राण रहे हैं, जिनके जीवन सर्वस्व रहे हैं, उनकी बात क्या कहें और कैसे कहें ?

लगभग १२५ वर्षों से श्री ठाकुर सेवा घर में सुशोभित चली आ रही है। प्रारम्भ में पू० बोबो की पड़दादी सेवा किया करती थीं। पड़बाबा बहुत छोटी आयु में ही पधार गए थे। पड़दादी को कोई अन्य आश्रय था नहीं– वे बहुत दुःखी रहती थीं। उनके भाई आस्तिक विचारों के थे या यह कहें कि श्री ठाकुर जी आगे आ अपनी सेवा द्वारा कृत्कृत्य करना चाहते थे पू० बोबो को, इनके परिवार को तथा हम सब अध्यात्म के नाते बहन–भाईयों को, जो इनके प्रति पूर्णतः समर्पित रहे अथवा इन्होंने सेवा का सुअवसर दे अपनी सन्निधि में रखा। घर में चली आ रही सेवा एक रुढ़िगत सी ही चली आ रही थी, परन्तु विशेष रूप से उसका प्रकाश, शास्त्रीय पद्धति पर विकास हुआ पू० बोबो के सेवा ग्रहण करने के बाद से। उनके जीवन में अध्यात्म इतना ओत-प्रोत था कि उनका अपने सगे सम्बन्धियों से जो सम्बन्ध अथवा सम्पर्क बना रहा उसमें मूल में केवल अध्यात्म ही रहा। केवल अध्यात्म के नाते जो भी उनसे जुड़ा था उसी को उन्होंने अपनाया। अगर यों कहूँ कि अध्यात्म के नाते बहन भाईयों को ही उन्होंने अपने अत्यन्त निकट माना तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। अनेक बार इस प्रकार के प्रसङ्ग आए जिसमें वे स्वयं कहा करती थीं "अपने तथाकथित सगे-सम्बन्धियों तथा अध्यात्म के नाते जुड़े बहन–भाइयों में यदि चुनने के लिये विकल्प होगा तो प्राथमिकता अध्यात्म के नाते अपनों को ही दूँगी।" अध्यात्म के नाते अपने सभी बहन-भाई शरीर से भिन्न-भिन्न स्थानों पर जन्म लेकर भी श्री श्री ठाकुर जी की इच्छा से एक ही प्रेम सूत्र में बंध श्री ठाकुर द्वारा पू० बोबो को संकेत, अनुभव करा, आकर्षित हुए, इनके पास इनके संग हेतु, इनके आध्यात्मिक संग हेतु, एकत्र होते चले गए।

पू० बोबो में असाधारण प्रतिभा थी, इनके प्रति अनेकानेक लोगों का आकर्षण बना रहा। वे सदा कहा करती थीं, 'मेरा सम्पर्क कोई सांसारिक सम्पर्क नहीं है, श्याम सुन्दर के बिना कोई भी स्वतंत्र सम्बन्ध मेरा नहीं है। अपने श्याम-सुन्दर की साक्षी में, उन्हीं को लेकर मेरा सम्बन्ध जगत में परिव्याप्त है। जो व्यक्ति एक बार भी इस (पू० बोबो) के सम्पर्क में आ गया, वह निश्चित ही श्यामा-श्याम की सन्निधि को प्राप्त होगा- यह मैं श्याम सुन्दर से मिले आश्वासन पर ही डंके की चोट कहती हूँ।'

हां! तो सेव्य श्री ठाकुर अपनी सेवा से इन्हें कृतकृत्य करने सन् १९४८ में, इन्हीं की दादी से प्राप्त हुए थे। उससे पहले इनके अनन्य होने पर भी सेवा दादी ही किया करती थीं। इनके सेवा प्रारम्भ करने के साथ-साथ सेवा का स्वरूप बदला। अष्टयाम सेवा का क्रम प्रारम्भ हो गया। भोर, संध्याकालीन तथा शयन आदि के क्रम में एक विशेष सम्पुष्ट तथा शास्त्र सम्मत संयोग हो गया, और ये श्री ठाकुर केवल घर के ही ठाकुर न रह कर, घर पर रहते हुए भी नियमादि सेवा के सभी क्रमों से सेवा ग्रहण करने लगे। अध्यात्म के नाते अनेक बहन भाई जुड़ते चले गए। श्री ठाकुर सेवा में यथा सम्भव सहयोग उनका भी होने लगा।

श्री ठाकुर सेवा इनकी विलक्षण थी। वे अधिक से अधिक श्री ठाकुर जी की सन्निधि में समय यापन करने लगी थीं। घर में अध्यापन तथा अन्य कार्य करते हुए भी घंटों सेवा-पूजा, अर्चा तथा जप-नियमादि में बीतने लगे थे। इनके व्यस्त जीवन का सम्भवतः अनुमान लगा पाना सर्वथा असम्भव है- फिर भी जो समय पातीं, सेव्य युगल की सन्निधि में ही व्यतीत करतीं। कई बार अनेक कार्यों से बाहर भी जाना पड़ता परन्तु इनके हृदय का तार सदैव सेव्य युगल से जुड़ा रहता।

श्री ठाकुर सेवा में इनके मन का योग, इतना अधिक रहा कि सेव्य युगल प्रत्यक्ष हो इन्हें रसमय संकेत देकर, अपनी सेवा की प्रेरणा देकर, अनुभूति कराते रहते। इनके प्राण उन्हीं में बसते थे।

श्री सम्प्रदाय में श्री रङ्ग भगवान की सेवा में जिस मर्यादा तथा शुचि को प्रधानता दी गई है, निम्बार्क सम्प्रदाय में अष्टयाम सेवा का प्रिया जी को लेकर जो वर्णन हुआ है, गौड़ीय सम्प्रदाय में जिस वैराग्य और तितिक्षा के साथ सेवा का आदर्श स्थापित हुआ है तथा पुष्टि, मार्गीय में, सेवा में जैसी आत्मीयता, अपनत्व तथा भाव शावल्य है अथवा यों कहें हृदय की जिस उमड़न का वर्णन है तथा लाड़-चाव, प्यार-दुलार से सेवा

क्रम मिलता है और श्री राधा वल्लभ जी की जिस चोजमयी एवं लाड़मयी सेवा का दर्शन हम करते हैं अथवा सेवा के सभी आवश्यक आयाम जो हम यत्र-तत्र देखते हैं, यदि कहा जाए कि बहन जी में वे सभी राग-अनुराग, स्नेह, प्रेम, अपनत्व, प्यार-दुलार पुञ्जीभूत होकर मूर्त हो गए थे तो कोई अत्युक्ति न होगी। बहन जी की सेवा, मात्र सेवा न होकर, उनके हृदय का द्रवण था, प्राणों का स्पन्दन था अथवा उनका सर्वस्व ही सेवा मय था। उनके प्राण उनके श्वास-प्रश्वास उनके जीवन का प्रत्येक क्षण सेवा में पूर्णतः समर्पित था।

मुझे ठीक से स्मरण है इनके साथ पू० सुशीला बहन जी सहित श्री यमुना दर्शन, स्नान-पान हेतु जाते हुए श्री राधावल्लभ सम्प्र-दायान्तर्गत सुप्रसिद्ध गोस्वामी संत श्री ललिताचरण जी महाराज इनकी सेवा-निष्ठा का सुनकर बहुत प्रसन्न होते। कभी-कभी उनके दर्शनार्थ भी वे जाया करतीं- चर्चा में अपने विचारों और भावनाओं का अनुमोदन पा इन्हें आन्तरिक प्रसन्नता होती। अनेक पदों के अर्थ तथा भावों का सुन्दर विश्लेषण तथा भावपूर्ण चर्चा जो इनसे होती बड़ा ही सुखद लगता। पू० बोबो की श्री ठाकुर सेवा के विषय में, इनकी धारणा और निष्ठा के विषयमें प्रायः चर्चा करते, इन्हें सेवा का मूर्त रूप ही कहा करते थे।

इनकी सेवा से प्रसन्न श्री ठाकुर केवल सेव्य ठाकुर स्वरूप ही न रहे थे, प्रत्युत प्रत्यक्ष ठाकुर स्वरूप हुए इन्हें तो अपनी अनुभूति कराते ही थे, अनेक अन्य महज्जनों को भी इस प्रकार की अनुभूतियां समय-समय पर होती ही रहती थीं।

श्री ठाकुर सेवा के विषय में वे कहा करती थीं, यह कर्तव्य परायणतावश नहीं, एक अपनत्व वश होनी चाहिये। उसमें यदि मन का योग नहीं तो वह किस काम की। श्री ठाकुर उसे स्वीकार कर उसमें सहयोग न देते हों अथवा त्रुटियों का भान नहीं कराते तो इसे यन्त्रवत् ही कहना होगा। अपने सेव्य स्वरूप में यदि पूर्ण समर्पण और विश्वास हो तो श्री ठाकुर उन्हीं में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाते हैं। श्री ठाकुर इनके लिये प्रत्यक्ष बने रहे। वे इनसे बातें करते, इनकी प्रत्येक सेवा में सहयोग देते, प्रत्यक्ष अनुभूति कराते। एक बार वृन्दावन में किन्हीं सन्त ने श्री विग्रह सेवा को विशेष मान्यता न दे कुछ कहा। यह बात सुनने में भी इन्हें न सुहाई। ऐसी किसी बात को मानना तो दूर श्रवण करना भी इन्हें सह्य न होता था। इसी विवशता भरी खीझ में भर इन्होंने अपने श्री ठाकुर की ओर देखा।

उनके नयनों से बरसती अनुराग रश्मियों ने शीतल विलेपन कर इन्हें प्रेम भरा आश्वासन दिया ।

श्री विग्रह स्वरूप श्री ठाकुर ही हैं

श्री विग्रह स्वरूप में धातु, पाषाण अथवा कुछ भी अन्यथा कल्पना करना इन्हें सह्य न होता था । सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर ही हैं ऐसा इनका दृढ़ विश्वास था । एक बार दक्षिण के कुछ भक्त दर्शन करने पधारे । किसी ने सहज इनसे पूछ लिया । आपके ठाकुर किस धातु के बने हैं । इन्हें यह बात सहन न हुई बोलीं, श्री ठाकुर तो श्री ठाकुर ही हैं, धातु अथवा पाषाण की कल्पना करना श्री ठाकुर निष्ठा में कमी का परिचायक है। इससे प्रकट है कि हमारा विश्वास, निष्ठा, परिपक्व नहीं हो पाई अन्यथा हमें वे प्रत्यक्ष श्री ठाकुर ही दीखते ।

बात कुछ अधिक पुरानी है । पूजनीया बोबो सुशीला बहन जी तथा मां और वेणु विनोद कुञ्ज, वृन्दावन के एक महात्मा श्री मनोहर दास जी* गोवर्द्धन में मानसी गङ्गा पर स्थित एक मकान में ठहरे हुए थे । इस बार शिवरात्रि महोत्सव बहन जी ने गोवर्द्धन में ही मनाने का सुनिश्चित कर रखा था । अन्य भाई बहन भी वहीं आए थे । फागुन मास सन् १९६८ की बात है, श्री ठाकुर जी के सम्मुख बैठे अध्यात्म चर्चा में रत थे । सहसा इस चर्चा को सुन यही सेव्य श्री विग्रह स्वरूप बहुत ही प्रफुल्लित हुए । उनके विकसित कपोल तथा नेत्र और विकसित हो गए । उनके दर्शन कर सभी स्तब्ध रह गए । कई घंटे बाद हंसी का संवरण हो पाया तथा श्री ठाकुर जी अपनी पूर्व की स्थिति में आए ।

× × ×

एक बार लीला-कथा में सभी मग्न हो रहे थे । पद गान चल रहा था । पूज्या श्री रमा देवी जी (वृन्दावन की एक भक्त) श्री सन्तोष जी (वृन्दावन वासी भक्त) सरला जी भी उपस्थित थीं । जिन-जिन भाव और भङ्गिमाओं का वर्णन पदों में हो रहा था, ये श्री ठाकुर जी उन्हीं

---

* श्री मनोहर दास जी सदैव कहा करते कि श्री विग्रह स्वरूप में मेरी कोई विशेष आस्था नहीं होती थी । मंदिरों में जैसे सेव्य स्वरूप होते हैं, विग्रह सेवा को इससे अधिक महत्त्व मैं नहीं देता था परन्तु पूजनीया बोबो की सेवा के साकार स्वरूप युगल की प्रकट सेवा-निष्ठा ने मेरी धारणा ही बदल दी है । ये ठाकुर केवल विग्रह मात्र नहीं है । श्री ऊषा जी के मन-प्राणों से सेवित यह ठाकुर प्रत्यक्ष होकर प्रत्येक लीला में, चर्चा में यहाँ तक कि सभी कृत्यों में, हास-विनोद तक में प्रकट होकर भाग लेते हैं- आस्वादन करते हैं- इसमें बहन जी की सेवा का वैशिष्ट्य है ।

मुद्राओं-भङ्गिमाओं का अनुकरण/प्रदर्शन करते रहे । यह दृश्य इन सभी भाग्यवानों के लिये प्रत्यक्ष बना रहा था ।

× × ×

श्री घनश्याम जी* एक बार श्री ठाकुर जी के दर्शन करने पधारे । श्री युगल के दर्शन करके विभोर हो गए । उस घटना को मैं उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत कर रहा हूँ । उन्होंने इत्र की एक शीशी भेजी तथा साथ में यह पत्र भी ।

"राधा ! उस दिन युगल के श्री विग्रह रूप के दर्शन कुछ विचित्र से हुए । प्रिया जी के श्री अङ्ग तो हमेशा की भांति थे, पर श्री ठाकुर के मुखारविन्द एवं बांह, मुरली लिये अङ्गुलियों पर किञ्चित् श्यामलता अधिक दीख रही थी । मन ही मन मैंने पूछ लिया, 'ऐसा क्यों ?' मालिश करके नहलाने से ऐसा नहीं रहता, उत्तर मिला । मैंने कहा, 'मालिश तो गोपी चन्दन की भी होती है ।' वे बोले, 'नहीं । इत्र की कराओ ।' मैंने कहा, क्या मेरे द्वारा कराना चाहते हैं, इसीलिये यह रूप बनाया है । वे बोले, "और नहीं तो क्या ?" तो "मैं इत्र भिजवा दूँगा ।" वे, ठीक- आंखों से स्वीकृति देते हुए बोले ।"

संकोच वश मैं नहीं आ सका- इसी से इत्र की शीशी भिजवानी पड़ी । आप (पू० बोबो) की आज्ञा नहीं टाली जाती- इसी से कुछ संकेत कर दिया । अपने जीवन को देखते हुए तो ज़मीन में गड़ जाने जैसा संकोच होता है । कहां वे- कहां अपनी हीन अवस्था पर उनके प्यार को कोई क्या करे ?"

× × ×

पूजनीया श्री ललित बहन जी** की विलक्षण अध्यात्म

---

* श्री घनश्याम दास जी (ठाकुर) ब्रज के आस-पास के क्षेत्र के एक ब्राह्मण बालक जिनका परिचय रास मण्डली में ठाकुर बनने से प्रारम्भ हुआ । इनकी भाव तन्मयता और लीला में भावावेश के कारण ख्याति चारों ओर फैल गई । कल्याण सम्पादक श्री पौद्दार महाराज, श्री चक्रधर बाबा तथा श्रद्धेय श्री बालकृष्ण दास जी महाराज के कृपा पात्र बन अपना जीवन ही श्री कृष्णार्पित कर दिया ।

** मूलत- भारतीय परन्तु पिता की इंग्लैण्ड की नागरिकता होने से वर्तमान में इंग्लैण्ड की नागरिक । विदेशों में पली परन्तु पिता पूज्य श्री पन्ना लाल जी भाबूटा की असाधारण श्री राधा जी के चरणों, तथा ब्रज में निष्ठा के कारण, उस संस्कृति में रहते हुए भी, भारतीयता तथा यहाँ के धार्मिक परिवेष में अनन्य श्रद्धा सम्पर्क में आने वाले अनेकों को अपनी सिद्धस्थिति, सरल तथा प्रेमिल स्वभाव से जन-जन को आकर्षित करती स्नेह और प्यार की मूर्ति सभी में विख्यात है ।

प्रधान जीवन शैली ने अनेक लोगों को प्रभावित किया है । वे एक बार अपने यहाँ रसोई में खड़ी दही चला रही थीं । उन्हें आभास हुआ जैसे दाँई ओर कोई खड़ा है– परन्तु वे अपने कार्य में ही संलग्न रहीं । यही सोचकर कि वे तो यहाँ अकेली ही हैं । कुछ देर बाद पुनः उन्हें ऐसा ही लगा, सहसा उन्होंने घूम कर देखा तो यही श्री ठाकुर वहाँ खड़े मक्खन के लिये उनसे आग्रह कर रहे थे । श्री ललित बहन जी एक कटोरी में मक्खन तथा मिश्री लिये पू० बोबो के पास चली आईं, तथा भोग लगाने के लिये आग्रह करने लगीं । पूछने पर उन्होंने सारी घटना सविस्तार सुनाई । आज भी अनेक बार इन श्री ठाकुर के लिये वे मक्खन का भोग समर्पित करती हैं ।

× × ×

पूज्या बोबो का स्वभाव बड़ा ही संकोची था । वे कहीं से भी आई वस्तु के प्रति प्रायः उदासीन ही रहती थीं । उसे सेवा में स्वीकारने की तो बात ही क्या, उन्हें यह सब सुहाता भी न था । यदि कोई भोग आदि के लिये कुछ लाता, एक बार तो रख लेतीं, पर प्रोत्साहन कभी न देतीं । उनकी इस वृत्ति से सभी परिचित थे ।

कुछ समय बाद एक बार पू० श्री ललित बहन जी को अपने यहाँ दही चलाते में यही श्री ठाकुर जी पुनः दीखे और मक्खन के लिये आग्रह करने लगे । श्री ठाकुर जी उन दिनों बड़ी कुञ्ज में विराजमान थे । यह सोचकर कि मक्खन चुपचाप सौंप बाहर से ही लौट आवेंगी, श्री ललित बहन जी मक्खन लेकर चली आईं । अन्दर आते ही पू० बोबो को पता चल गया । श्री ठाकुर जी के स्नान सेवा के समय किसी को भी पास न आने देती थीं परन्तु आज पू० बहन जी को अन्दर बुला लिया– आने का हेतु जानने पर भी वे कुछ न बोलीं । बाद में उन्होंने बतलाया कि पू० ललित जी मक्खन ले कर आ रही हैं यह सब बात उन्हें पता थी । श्री ठाकुर जी ने पहले ही संकेत कर दिया था, इसी से वे चुप रहीं ।

× × ×

जेहलम नदी का जल प्यार से लबालब भरा है । वहाँ की प्रकृति प्यार से सिक्त है, उसी में बौराई अठखेलियाँ करती है । 'लैला-मजनूँ' और 'शीरी फरहाद' की दास्तान इसी स्थली ने सुनी है, देखी है, उसका आस्वादन किया है । यह वातावरण वहाँ के कण-कण में व्याप्त है, उसी वातावरण में एक सिख भक्त परिवार में जन्मी, उसी पानी से पोषित उसी प्रकृति से आलोड़ित, परम सुन्दर, श्री गांधी जी के सिद्धान्त से

प्रभावित, ऐश्वर्य प्रधान पिता की पुत्री श्री कृष्ण दीवानी हो वृन्दावन आने पर भी अनेक दिनों, महीनों जिन्होंने इस भौतिक दृष्टिगोचर होने वाले मकानों तथा पत्थरों को नहीं देखा, 'वे पू० सन्तोष बहन जी तथा सरला बहन जी एक बार भोग के लिये सामग्री बना रही थीं। सहसा विजय वहाँ पहुँचा तो उन्होंने जो सब्जी बनाई थी उसी को आटे में मिला तथा अतिरिक्त घी डाल एक रोटी बनाई। अधिक घी के कारण रोटी बन्ध न सकी और जैसे-तैसे टुकड़ों को सेक एक थाली में परोस दिया। मन में विचार आया कि विजय को तो यह रोटी भाएगी नहीं – हे ठाकुर ! तुम इसे ग्रहण करो। उनकी कातर भावना से द्रवित यह युगल सरकार तत्क्षण वहीं प्रकट हो ग्रहण करने लगे। उन्हें इस प्रकार भोग स्वीकारते देख पू. बहन जी गद्‌गद् हो गईं।

× × ×

एक बार पू० बोबो ने मन में विचार किया कि अमुक वस्त्र कुछ पुराने हो गए हैं, किसी को दे दूँगी। अभी यह बात उनकी जिह्वा पर ही थी कि यह युगल पूजनीया सन्तोष बहन जी के यहाँ पहुँचे और बोले, "हमारे वस्त्र देने को (पू० बोबो) कह रही हैं। वे हमें अत्यन्त प्रिय हैं।" पू. बहन जी भागी चली आईं–और सारी वार्ता कह सुनाईं– अन्ततः निर्णय हुआ कि यह वस्त्र नहीं देंगी।

× × ×

स्वतंत्र भारत के प्रथम दस मेजर जनरल में एक श्री अमरनाथ शर्मा की गुरु तथा भूतपूर्व सेना अध्यक्ष श्री वी. एन. शर्मा की बहन पूजनीया श्री धर्मजी जो अनेक सन्तों, महात्माओं में अपनी विलक्षण भाव तन्मयता के लिये प्रसिद्ध हैं, पू० बोबो की अत्यन्त आत्मीय सहेली रही हैं। वे सदैव श्री ठाकुर जी के दर्शनार्थ आतीं। इन श्री ठाकुर की विश्व मोहिनी रूप छटा ने उन्हें भी बौरा रखा है। उनकी अनेक अनुभूतियाँ इन्हीं युगल से जुड़ी हैं। वे सदा कहतीं बोबो की सेवा का स्वरूप विलक्षण रहा है। उसी से श्री ठाकुर अत्यन्त सजीव और प्रकट बने हैं। ऐसा भाव अन्यत्र दुर्लभ ही है। ऊषा जी की सी सेवा अन्यत्र असम्भव ही है।

एक बार इन्हीं श्री ठाकुर जी के विषय में श्री धर्म जी ने कहा था, 'मैं और ऊषा जी एक जगह बैठे इनकी चर्चा कर रहे थे। ये श्री ठाकुर विग्रह-स्वरूप, पूर्ण किशोर रूप में प्रकट हो दोनों के मध्य विराजमान हो गए। दोनों सहेलियाँ परस्पर चर्चा करती रहीं- इधर श्री ठाकुर जी अंगुली से कभी इन्हें तथा कभी मुझे (श्री धर्म जी) को छेड़ते, यह अनुभव

दोनों ने ही किया । श्री ऊषा जी की सेवा अत्यन्त आत्मीयता को लेकर है, जिसने श्री ठाकुर जी को सदैव प्रकट कर रखा है ।

× × ×

पूजनीया बोबो का श्री राधाष्टमी पर बरसाने जाने का नियम ही था । एक बार ठहरने की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी । पीली कोठी के व्यवस्थापक महोदय ने पूर्व परिचय न होने पर भी तुरन्त सेठ जी के निजी कमरे में ठहरने की व्यवस्था कर दी ।

दो दिन पश्चात् सेठ जी आ गए । पंडित जी द्वारा इस प्रकार उनके कमरे का उपयोग करना सेठ जी को अच्छा न लगा । बिचारे बड़े ही संकोचवश बहन जी के पास आए और कहीं अन्यत्र जाने के लिये प्रस्ताव किया । इधर सेठ जी को जाने, क्या सूझी, भागते-भागते पंडित जी को रास्ते में ही रोक लेना चाहते थे- परन्तु व्यवस्थापक (पंडित जी) अभी बहन जी के पास ही खड़े थे । श्री ठाकुर जी की मोहिनी का जादू उन पर ऐसा हुआ कि वे आह्लाद में भर उच्च स्वर में कहने लगे । 'सोणो ठाकुर' 'ऐतो सोणो ठाकुर' अहा ! .... पंडित जी ! "श्री ठाकुर जी इसी कमरे में बिराजेंगे। मैं दूसरे कमरे में ठहरूँगा ।" इस घटना को लगभग २६, २७ वर्ष हो चुके । उसी समय से प्रतिवर्ष श्री ठाकुर जी उसी कमरे में विराजमान होते हैं । परिस्थितियाँ बदल गईं, सेठ जी नहीं रहे श्री ठाकुर जी के दिव्य प्रभाव स्वरूप प्रबन्ध, उनकी व्यवस्था भाव पूर्वक आज भी पूर्ववत् चली आ रही है ।

× × ×

वृन्दावन धाम के एक सुप्रसिद्ध श्री मद्भागवत वक्ता की पू. बोबो के प्रति अनन्य आस्था थी । पू. बोबो के पास आने वाले सभी बहन-भाई इतने पढ़े लिखे हैं- यह जान उनके लिये वे श्रद्धावनत रहते। अनेक बार श्रीमद्भागवत पाठ के समायोजनों के पश्चात्, पूछते "बहन जी ! मैंने कुछ इतर अथवा अन्यथा तो नहीं कहा, कृपया सावधान करती रहा करें। वे श्री ठाकुर जी के दर्शन कर विभोर हो जाते । इतने प्रत्यक्ष, इतने प्रकट स्वरूप ...... सेवा की चरम सीमा है । धन्य हैं आप । वास्तव में आपके तन-मन-प्राणों की निधि मूर्त हो सभी को आकर्षित करती रहती है ।"

× × ×

इधर चन्द्र सरोवर निवासी पुष्टिमार्ग में दीक्षित श्री ठाकुर जी का चरित्र वर्णन करते समय तन्मयता में डूबते हुए श्री गोकुल दास जी

शास्त्री सदैव कहा करते, "बहन जी ! श्री ठाकुर जी की लाड़मयी सेवा के अनेक क्रम देखे और सुने हैं, परन्तु आप की सी भावमयता, लाड़मयी सेवा जिससे श्री ठाकुर मानों बोलते प्रतीत हो रहे हैं, ऐसी सजीव छवि आज तक देखने में नहीं आई ।"

डॉ० अच्युतानन्द भट्ट श्री मद्भागवत के परम्परागत विद्वान तो हैं ही साथ-साथ कॉलेज में प्राध्यापक भी हैं । श्री ठाकुर जी की सेवा, शृङ्गार पद्धति से अत्यन्त प्रभावित होकर कहते 'बहन जी की सेवा निष्ठा के कारण श्री ठाकुर जी का प्राकट्य अपूर्व है ।'

× × ×

दक्षिण के विख्यात सन्त श्री अभेदानन्द जी महाराज जिन्होंने केरल आदि दक्षिण प्रदेशों में श्री राधा अर्चना के माध्यम से अनेक धनिकों, बुद्धिजीवियों तथा अध्यात्म-प्रधान साधकों को अपनी चमत्कार युक्त शैली से इतना प्रभावित किये रखा कि सभी श्रद्धालु एक सूत्र में बंध, उनकी वाणी उनके सत्संग का लाभ उठाने के लिये व्यग्र हुए उनकी सङ्गति के लिये लालायित बने रहते । जब भी उनका वृन्दावन आगमन होता पू० बोबो से मिलने अवश्य पधारते । युगल सरकार के सामने बैठ श्री ठाकुर जी की ओर निहारते, पदगान करते, वे सदा कहा करते थे 'इतना सजीव लावण्य माधुर्य केलि हैं श्री ठाकुर जी कि देखकर, आत्म विभोर हो जाता हूँ ।'

× × ×

हां ! तो पू० बोबो के सेव्य श्री ठाकुर विग्रह रूप ही न रह कर इन से प्रत्यक्ष बोलते, अपनी कहते, सेवा स्वीकारते, अपनी इच्छा से आदेश दे सेवा करवाते इन्हें देख लगता निज जनों के लिये श्री ठाकुर सेवा में प्राणों का समर्पण होने पर वे प्रकट हो प्रत्यक्ष हो जाते हैं ।

हम आगे श्री युगल सरकार के प्रत्यक्ष/प्राकट्य के कुछ प्रसङ्ग देकर इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे ।

२३.४.७८ की बात है कि श्री ठाकुर जी को खिचड़ी भोग समर्पित किया जा रहा था । पू० बोबो तकिये के सहारे एक ओर बैठी देख रही थीं कि श्री ठाकुर जी ने अपने हाथ से खिचड़ी का कौर ले श्री किशोरी जी के मुख में दिया पुनः स्वयं पाने लगे । इसी प्रकार पुनः कौर ले श्री जी के मुख के समीप ले गए । प्रिया जी ने मुस्कराते हुए कौर अपने

मुख में ले लिया तथा पू० बोबो की ओर देखती रहीं। पू० बोबो आह्लाद में भर गईं- दोनों को ही इस प्रकार खिचड़ी आरोगते देखकर।

× × ×

बात तेईस अक्टूबर सन् १९७८ की है। सर्दी का गुलाबीपन प्रकृति में छाने लगा था। अनुरागी हृदयों में कुछ खलबली सी मचने लगी थी तथा इन गोपाङ्गनाओं में किसी रसोन्माद का उदय होने लगा था। ग्रीष्म ऋतु को निर्वासित कर शीत ने अपने पांव जमाने प्रारम्भ कर दिये थे। हल्की गुलाबी ठंड के कारण ओढ़ना सुहाने लगा था। पू० बोबो ने मन में सोचा, 'मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं अतः ओढ़ना चाहिये अथवा नहीं यह निर्णय कठिन लग रहा है- श्री युगल सरकार ही कुछ प्रेरित कर देंगे तो ठीक है।'

इन्हें शयन करा वे भी सो गईं। मध्य रात्रि के समय मधुर मृदुल स्वर लहरी सुन चौंक गईं। शत-शत वीणा स्वर को विनिन्दित करती स्वर लहरी सुनाई दी 'हमें ओढ़ा दो' एक बार पुनः कहा, 'अब ओढ़ा दो' ध्वनि सुन आश्चर्य के स्थान पर हर्ष तथा प्रसन्नता में भर गई तथा प्रिया-प्रियतम की विशेष रस वर्षा, तथा कृपा पर रीझ, मग्न हो गईं। केलि कानन कुञ्ज में, इन युगल के सामने बैठी पू० सुशीला बहन जी सखाजी* द्वारा प्रदत्त लीला पढ़ कर सुना रही थीं। किसी की मधुर स्वर लहरी से निसृत शब्द सुनाई दिया, 'जरा जोर-जोर से' पू. बोबो चौंक सी गई यह ध्वनि सुनकर, 'जरा जोर से' पुनः सुनाई दिया। चौंक कर पू० बोबो ने किशोरी जी की ओर देखा- यह वीणा विनिन्दित स्वर लहरी उन्हीं की थी। प्रिया-प्रियतम दोनों अपनी ही लीला का श्रवण बड़े चाव से करते रहे। अतः सेव्य युगल लीलाओं का श्रवण तो करते ही हैं चर्चा में स्वयं भाग भी लेते हैं।

श्री युगल को भोरकालीन चाय का भोग एक अरसे से लगता चला आ रहा है। कई बार इसे बन्द करने के प्रयास भी किये परन्तु युगल रस विग्रह स्वयं ही कुछ ऐसा बानक बना लेते कि यह क्रम चलता चला आ रहा है। यह भोग केवल श्री ठाकुर जी के निमित्त से ही होता है- भोग सामने रख प्रायः इनसे पू० बोबो पूछतीं, "कैसी लगी।" आज भी जब इन्होंने पूछा तो वीणा स्वर को विनिन्दित करते अत्यन्त मधुर स्वर में प्रियाजी ने कहा 'नीकी मीठी'। उस दिन सभी को मीठा अधिक लगा था।

× × ×

* एक परम सिद्ध सन्त

आठ अक्टूबर सन् १९८५ की भोर में उठने में कुछ देरी हो गई। पू० बोबो बहुत खिन्न हुईं। इन्हें इस प्रकार देख प्रिया-प्रियतम ने बड़ी ही स्वाभाविकता से कहा 'हम ही देर से उठना चाहते रहे थे कुछ ठंड तथा वर्षा के कारण।'

२८ सितम्बर की बात है पू० बोबो ने एक कविता लिखी 'सांवरो नवरंगी, सखी री ...... सांवरो नवरंगी। अन्तिम पद में 'टेढ़ी चाल बंक झुकि झांकनि' पंक्ति तो लिख ली। उसके आगे कुछ नहीं लिख पाईं। ऐसे ही बैठी थीं कि इन्हीं श्री ठाकुर जी ने कहा' टेढ़े गीत पीय परिष्वङ्गी लिख दो।' यह सुझाया तथा खूब ज़ोर से हँसे।

अनेकानेक अन्य प्रसङ्गों में श्री ठाकुर जी प्रकट और प्रत्यक्ष होकर पू० बोबो की जीवन लता को सरसाते और अपनी माधुरी से उन्हें आत्मीयता और अपनत्व पूर्ण आश्वासन देते रहे। पू. बोबो, श्री ठाकुर जी की सेवा में संलग्न रहतीं। सेवा की संलग्नता शब्द सम्भवत: उनकी भाव गरिमा के अनुकूल नहीं है- मैं कहूँगा उन्होंने अपने ठाकुर को लाड़ लड़ाया। वह सब अत्यन्त भाव प्रधान रहा। इसका रूप और क्रम निश्चित ही अनुभूति का विषय है। जिन महानुभावों का मन यत्किञ्चित् भी युगल सेवा में डूबता है अथवा श्री ठाकुर सेवा में अभिनिवेष हुआ है, वे अवश्य ही इस दशा का अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार के अनुमान से भी शतगुणा अधिक थी पू. बोबो की सेवा निष्ठा जो लाड़ का, प्रत्यक्ष रूप बनी, उनके जीवन का अभिन्न अङ्ग रही। वास्तव में उनकी सभी भावनाऐं पुञ्जीभूत होकर उनकी सेवा निष्ठा में मूर्त हो गईं थीं।

भोर में पदगान के माध्यम से श्री ठाकुर जी का उत्थापन, समुचित प्रकाश की व्यवस्था, मुख प्रक्षालन आदि में ऋतु के अनुसार ठंडे तथा गर्म जल से मार्जन, स्नान आदि का क्रम देखते ही बनता था। भोरकालीन भोग व्यवस्था, शृङ्गार आदि का उनका अपना ही भावपूर्ण क्रम था। शृङ्गार में रङ्गों का तालमेल, गठन, सुन्दर तथा (फिट) वस्त्र देखकर लगता था किसी निपुण तथा भाव प्रधान सेवा को स्वीकार कर युगल, परम प्रसन्न हो रहे हैं, मन को आकृष्ट कर रहे हैं, नेत्रों को सुख दे रहे हैं।

वस्त्र बनाने, धारण कराने की उनकी अपनी ही शैली थी। पुष्टिमार्गीय सेवा में जब इसी प्रकार की भावना का पता चला तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं। 'अपने सेव्य स्वरूप में यदि हमें अपने प्राणों के प्राण तथा

जीवन्त शक्ति का अनुभव नहीं हो रहा, उनके लाड़ चाव के भाव हमारे मन में जागृत नहीं हो रहे तो निश्चय मानिये वह श्री ठाकुर सेवा न होकर मूर्ति सेवा का ही क्रम दोहराया जा रहा है, जिसमें सेवा का आडम्बर तो अवश्य है, इधर-उधर की भोग प्रणाली का बाह्य प्रदर्शन भी, जब मन का योग नहीं है- तो मूर्ति सेवा के अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नहीं है'- ऐसी उनकी धारणा रही। बिना मन की सेवा अपेक्षाकृत ठीक मानी जा सकती है- पर सेवा का चरमोत्कर्ष नहीं तथा उच्चतम अनुभूति नहीं। वहाँ फिर प्राकट्य ही कैसा? वहाँ मात्र यन्त्रवत् ही सबकुछ स्वीकारना होगा।

गर्मियों में मलमल से प्रारम्भ कर वर्षा ऋतु में Synthetic और पुनः साटन के वस्त्र। शरद् के प्रारम्भ में मोटे, शनील कॉट्सबूल फिर गर्म और इसी प्रकार उतरती ठंड में अनुकूल वस्त्रों का क्रम चलता था। इसी के अनुसार गर्मियों में श्वेत तथा सर्दियों में सुनहरी, श्रावण में हरे तथा वसन्त के दिनों में पीले वस्त्रों का चयन उनकी अपनी अनुभूति के अनुसार ही था।

शृङ्गार आभरण, श्यामा-श्याम का संस्पर्श पाकर केवल मात्र आभरण न होकर अंगों से स्पर्शित समादरणीय हो जाते हैं। पुष्टिमार्ग में तो उन वस्त्रों तक की सेवा की जाती है, यह अपने-अपने भाव की बात है। किसी प्रकार से देखा-देखी नकल करने का क्रम नहीं। शृङ्गार तथा वस्त्र धारण कराते समय इनकी वस्त्रों के प्रति समादर तथा सजीवता की भावना रहती। किसी क यदि कोई वस्त्र अथवा शृङ्गार कुछ दिन धारण न होता तो मन ही मन उनसे प्रार्थना करतीं- आश्वासन दिलातीं कि शीघ्र ही तुम्हारी बारी आवेगी और श्यामा-श्याम की मधुर सन्निधि प्राप्त कर सुखी हो सकोगे। उनसे प्रार्थना करतीं "तुम सब मुझ पर कृपा रखना उचित समय पर युगल की सन्निधि का योग तुम्हें प्राप्त हो सके मैं ऐसा प्रयास करूँगी।"

अपने हृदय पर हाथ, कपोल पर अंगुली रख तन्मय होकर यदि हम सोचेंगे तो इस प्रकार की सेवा का कोई उदाहरण कदाचित् ही कहीं देखने में आया होगा। यह भाव था पू० बोबो का। यह भाव परिपक्व होकर प्रिया-प्रियतम की सेवा में इतनी गहराई से, इतनी तल्लीनता से समा गया था कि श्री ठाकुर जी प्रकट होकर इन्हें जीवन्त शक्ति प्रदान करते, इन्हें संकेत देते, इनसे बातें करते अपनी कहते तथा इनकी सेवा को

स्वीकार कर इन्हें किसी रस विशेष में सिञ्चित तो करते ही- सराबोर कर देते, आप्लावित कर देते । शृङ्गार करने में समय का कोई प्रतिबन्ध न था । श्री ठाकुर जी स्वेच्छा से कई बार बहुत जल्दी तैयार हो जाते और अनेक बार घंटों लग जाते । यदि आप का श्री ठाकुर सेवा में यत्किञ्चित् भी अभिनिवेश है अथवा शास्त्रीय पद्धति में तनिक भी विश्वास है तो आपको मानना ही होगा कि सेवा का यही क्रम अभीप्सित है जो पू० बोबो का था।

उत्थापन, शृङ्गार, भोग-राग, ब्यारू तथा शयन आदि में इनके नियम को विश्व नियन्ता में भी बदलने की सामर्थ्य न थी । हम भाई-बहनों, जिन्हें कृपा कर अपने साथ रख, अथवा समय-समय पर सेवा का अवसर प्रदान कर किसी प्रकार समय के सुदृढ़ नियमों में शिथिलता आने देना तो दूर इस विचार को भी कभी प्रोत्साहित नहीं किया । हां ! गर्मियों में तथा सर्दियों के अनुसार इन क्रमों में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन अवश्य करती रहती थीं । इसी प्रकार से आहार आदि तथा भोग राग की व्यवस्था भी ऋतुओं के अनुकूल ही होती थी । गर्मियों में श्री ठाकुर जी के लिये पंखा चलेगा ही । उनका भरसक प्रयास रहता था कि प्रिया-प्रियतम की अधिक से अधिक सेवा स्वयं ही करें अतः अपने हाथों ही पंखा करतीं । उसमें भी उन्हें स्वयं के लिये पंखे का उपयोग करते कभी नहीं देखा प्रत्युत एकान्त में, भरी गर्मी में, बिना पंखे के ही रहतीं । सेवा, सेवा ही है इसमें बड़ी और छोटी सेवा का विचार नहीं करना चाहिये यह उनकी धारणा थीं । इस बात पर याद आती है श्री हित हरिवंश जी महाराज की । उनके पास आने वाले किन्हीं भक्त ने कहा, "महाराज आप तो अधिक व्यस्त रहते हैं, लकड़ी आदि लाने की सेवा किन्हीं अन्य से करवा लिया करें" उन्होंने ठीक यही बात कही थी । "सेवा का आदर्श, ऊंच-नीच के भाव में कदापि नहीं है ।" वास्तव में हम बहन भाइयों पर स्नेहानुग्रह कर वे अवसर देती रहतीं अन्यथा सेवा के विषय में वे किसी पर भी निर्भर न करती थीं ।

भोग गर्म है अथवा नमक अधिक या कम है यह देख कर ही समर्पित करना चाहिये । वे सदा कहा करतीं, यदि इस कारण से कोई दोष अथवा शास्त्रीय अपराध होता हो तो मैं भोगने को तैयार हूँ जब उन्हें पता चला कि श्री नाथ जी की सेवा में चखिया अलग से नियुक्त रहते हैं, तो वे बड़ी प्रसन्न हुईं । अधिक नमक, तीता अथवा गर्म भोग समर्पित करने से पूर्व, अच्छा है पहले चख लेना चाहिये, इसमें उनकी 'तत्सुखे सुखित्वं' भावना ही प्रधान रही । प्रिया-प्रियतम को किसी भी प्रकार की

असुविधा न हो यह उनका भाव रहता । इसी के वशीभूत प्रिया-प्रियतम इनके इस भाव से सर्वथा प्रकट ही बने रहे इनके जीवन का आधार बने रहे।

श्री ठाकुर जी कौन से वस्त्राभरण धारण करना चाहते हैं, अनेक बार वे कह कर ही पहनते थे । इनके हर दुःख-सुख के प्रत्येक कृत्य के साक्षी रहे हैं श्री ठाकुर जी तथा उन्हें लाड़ लड़ाना पू० बोबो का जीवन रहा । जिन महानुभावों ने यह सब देखा है, अनुभव किया है, उन्हें तो कुछ कहना ही नहीं है, जिन्हें भगवद्विश्वास है, श्री ठाकुर जी के चरणों में प्रीति है- उनके लिये श्री ठाकुर जी के प्रति इनकी सी अनन्यनिष्ठा तथा उसके रसीले सत्कार के प्रति सन्देह की कुछ बात ही नहीं है ।

श्री ठाकुर जी के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं में विशेष स्निग्धता और कोमलता आ जाती है । आप स्पर्श से पहचान सकेंगे कि यह इन्हीं श्री ठाकुर जी से सम्बन्धित है । सेवा को स्वीकार कर इन श्री युगल ने अपने प्राकट्य का भान कराया, भान मात्र नहीं, अपनी प्रतिक्षण पग-पग पर अनुभूति कराई, स्फुरित होकर, संकेत देकर तथा प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हो कर ।

येन-केन-प्रकारेण प्रिया-प्रियतम को लाड़ लड़ाना ही इनके जीवन का प्रधान लक्ष्य रहा । इन्होंने सेवा के लिये ही जीवन धारण किया था । वे सदा कहा करती थीं *'सेवा में मेरी निष्ठा है, सेवा मेरे प्राण हैं, सेवा मेरा जीवन है । जब कभी सेवा से किसी भी प्रकार से यह शरीर वंचित हो गया अथवा न कर सकी तो यह शरीर निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगा । जिस दिन सेवा न कर सकूँगी तो नहीं जीऊँगी ।* हुआ भी, ऐसा ही ! अपनी इहलौकिक लीला संवरण करने से पहले इन्हें कमज़ोरी अधिक हो गई । शरीर जाने के लिये किसी न किसी हेतु को बनना ही था अतः अधिक कमज़ोरी के कारण वे सेवा न कर सकीं और प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में सदा-सदा के लिये चली गईं ।

❑❑❑

सखि ! एक एक नख की छवि पर,
शत कोटि कोटि शशि बलिहारी ।
कर कमलनि की लखि कोमलता
किसलय दल ने मृदुता वारी ॥

x

मृदु पद तल की लखि अरुणाभा,
सकुची अरुणोदय की लाली ।
गति लास्य निरख कर चरणों का
ठिठकी गयन्द गति मतवाली ॥

x

जब देखी कटि कमनीय लचक
नव तरुण केशरी सकुचाया ।
कंकण, किंकिणी, नूपुर धुनि सुन,
कल हंस कलित रव शरमाया ॥

x

लोचन देखे जब अनियारे
मृग शावक दृग विस्मय व्यापा ।
जब चितवन शर सन्धान किया
नव पुष्प धनुर्धर मन कांपा ॥

x

मृदु मंजुल श्यामल तन छवि लख
मरकत मणि की द्युति मन्द हुई ।
श्वासों की सौरभ के सम्मुख
वासन्ती समीर निस्पन्द हुई ॥

x

यों मुग्ध चराचर विश्व सभी
लखि रूप छटा यह मतवारी ।
पै लाज गई, कुलकानि गई,
बिनु मोल बिकीं हम ब्रजनारी ॥

१५.१०.६८

प्रथम भाग

पंचम अध्याय

पृष्ठ १५५ से २२५ तक

प्राण हरण कर माधुरी,
मन मन्थन कर रूप ।
चित्ताकर्षक स्मित मधुर
शोभा अमित अनूप ॥

ये हँसिबो, हँसि देखिबो,
ये मादक संकेत ।
ये फहरनि पट-पीत की,
चित्त चैन हरि लेत ॥

बीस

प्रेमा भक्ति

श्री कृष्ण प्रेरणा से एक दिव्य सन्त द्वारा कृपा

सदा मुक्तोऽपि बद्धोऽस्मि भक्तेषु स्नेह रज्जुभिः ।
अजितोऽपि जितोऽहं तैरवशोऽपि वशीकृतः ॥ ***

आदि पुराण

पू० बोबो की भक्ति धारा और-और प्रगाढ़ होती चली गई। लक्ष्य तो स्थिर था ही, और निखरता गया। वृन्दावन चले आने की कामना विवश करती। श्याम सुन्दर की नगरी, (अपने घर) चले आने की लालसा तीव्र होती, जगत में मिले मान सम्मान के प्रति उदासीनता बनी रहती। घर के सभी कार्यों को निबाहने के साथ-साथ मन सर्वदा अनासक्त बना रहता। अनेक बार मौन हो जाने की इच्छा होती। आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त किसी से बात न करतीं। नितान्त एकान्त की त्वरा उद्वेलित करती रहती। अकेले ही घूमने चली जाया करतीं। घर पर होकर भी किसी से न मिलतीं, परन्तु कर्तव्य परायणता, एक अनुबन्ध बन इन्हें रोके रखतीं।

वे सदा कहा करतीं, 'श्री वृन्दावन से मैं आई हूँ। वहीं मेरा स्थाई निवास है। मैं वृन्दावन चली जाऊंगी, फिर लौट कर नहीं आऊंगी। कहीं घूमने के लिये कुछ समय के लिये आ जा सकती हूँ, परन्तु मैं वहीं की हूँ वहीं रहना चाहती हूँ।' उनका एक प्रण था, एक पण था, एक वायदा था, एक अनुबन्ध था जो उनके वृन्दावन चले आने में देरी करता रहा। इनकी मन:स्थिति को देख अनेक बार पिता आग्रह करते कि कुछ दिन वृन्दावन चली जा, फिर लौट आइयो। लौटकर चले आने को यह इच्छुक न होती थीं। स्थायी रूप से वृन्दावन आना चाहती थीं- इसीलिये विलम्ब होता गया।

एक-एक कर दिन बीतने लगे। दिनचर्या जैसे चलती थी, पूर्ववत् ही चलती रही। एक अन्तर विशेष रूप से दीखने लगा था। बाह्य जगत् से इनका मन सिमटने लगा। अनेक बार यह शून्य में चली जातीं। बाह्य रूप से बिल्कुल शान्त और निश्चेष्ट ही दीखतीं, अन्दर से मन एक सुख विशेष

*** सदा मुक्त हुआ भी मैं भक्तों में (उनकी) प्रेम रूपी डोरी से बंधा हुआ हूँ। अजित हुआ भी उनके द्वारा जीता जा चुका हूँ और अवश हुआ भी उनके वश में हूँ।

में मग्न रहता। श्री कृष्ण चरणों में प्रीति, अनुराग की प्रगाढ़ता में परिणत हुई, झलकने लगती। साथ-साथ विद्यालय के कार्य, पिता जी के तथा कवि सम्मेलनों के आग्रह टालने में असमर्थ हो जातीं, यद्यपि मन से वे कदापि न चाहती थीं। इधर राष्ट्रीय भावना के कारण कभी-कभी आयोजनों में जाना पड़ता था। सनातन धर्म सभा के सम्मेलनों में भाग लेना तो परमावश्यक होता ही था। अनेक बार व्यवस्था सम्हालनी पड़ती तिस पर भी संकीर्तन, कथा और सत्संग में जाना तो अनिवार्य ही था। मन अधिकाधिक डूबता चला गया। अनेक बार कुछ अभाव भी खटकता, श्री ठाकुर जी के सामने घंटों बैठी रहतीं। उनसे क्या कहतीं और क्या सुनतीं- यह बात इन्हीं तक सीमित रहती।

मुक्त तथा अजित होकर भी भगवान भक्तों की प्रेम डोरी से बंधे हैं, और भक्तों ने उन पर विजय प्राप्त कर ली है। वास्तव में प्रेम ही एक ऐसी रागानुरागमयी धारा है, मन की पिघलन है, प्राणों की पुकार है, अन्तःकरण की मांग है, जहाँ प्रेमास्पद अपने सभी बन्धनों और प्रतिबन्धों की परिसीमा में रह नहीं सकते- अतः बहन जी की इस प्रकार की मनः स्थिति देख, उनके प्राणों की बेकली देख श्याम सुन्दर का सिंहासन दोलित हो गया। प्रेम के वशीभूत हुए वे स्थिर न रह सके। प्रेम का स्वरूप ही है यह। प्रेम कभी एकांगी नहीं होता, प्रेमी पुकारें और प्रेमास्पद अडिग बने रहें, यह प्रेमियों के संसार की बात नहीं है।

हाँ, तो श्याम सुन्दर कैसे सहन करते अपनी इस अनन्या सखी की मनोदशा को। स्वेच्छा से अपने शेष कार्यों की आपूर्ति हेतु एक प्रणय पगा आश्वासन देने निज लीलाओं के रसास्वादन कराने का एक हेतु बना अपने निज परिकर की एक अनन्या सखी को प्रेरित कर इनके पास भेजा।

अब हम एक ऐसे सन्त की चर्चा करने जा रहे हैं, ऐसे महात्मा का परिचय देने जा रहे हैं, एक महान विभूति का परिचय देने जा रहे हैं, जिन्हें हम सर्व साधारण जन प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं सकेंगे, परन्तु दिव्य देह धारी उन सन्त का सामीप्य आप अनुभव कर सकते हैं, उनकी स्थिति को जान सकते हैं, उनसे बात कर सकते हैं, उनसे विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। उन्हीं दिव्य देह धारी श्री कृष्ण की अभिन्न - प्राणा सखी ने (श्री सखाजी) श्री कृष्ण की प्रेरणा से ही बहन जी के पास आना प्रारम्भ किया- श्री कृष्ण की लीलाओं को, उनकेअन्तरङ्गतम चरित्रों को दर्शाने/सुनाने का हेतु लेकर।

बात ३० जौलाई सन् १९५४ की है । बहन जी का जन्म दिवस था । सभी ने अपनी–अपनी शुभाशीष प्रदान की, शुभकामनाऐं कीं । श्री कृष्ण चरणों में प्रीति की आशीष दी । अपनी कुछ सहेलियों,सर्वश्री सुशीला जी, राजदुलारी तथा कुछ अन्य बहनों सहित बहन जी बैठी श्री कृष्ण चर्चा में रत थीं । पू० धर्म जी (जिनके विषय में हम पहले वर्णन कर चुके हैं) के एक पत्र की कुछ पंक्तियों को कह परस्पर हास–विनोद चल रहा था। शब्द नील–परिवेष्टित सभी को रुचिकर लगा– इसमें निहित भावानुभावों की गहराई में डूबते उतरते, इसी सखी समुदाय के विचार मूर्तिमान सभी को झंकृत कर रहे थे । परोक्ष रूप में विद्यमान वे सन्त भी उसी रास्ते से निकल रहे थे । उस शब्द को सुनकर अपना लोभ संवरण न कर सके । इसी सखी मण्डली मध्य आ विराजे । वहीं एक सरसराहट सी हुई और बहन जी को "जय जय राधिका माधव" की लहरी ने झंकृत कर दिया। यह देख उन्हें बड़ा आह्लाद हुआ । एक परम सुख की अनुभूति हुई। वह (Vibrations) वह दिव्योन्माद सारे कमरे में परिव्याप्त हो गया । पुलक और कम्प होने लगा– प्रसन्नता का स्रोत उमड़ पड़ा । 'जय जय राधिका–माधव' का स्वर गूंजता रहा । इधर 'श्री राधानाम' तथा 'महामन्त्र' की भी आवृत्ति होती रही। अत्यन्त कौतूहल वश परिचय पूछा । 'श्री चरण सखा' उत्तर मिला । 'कुछ स्पष्ट नहीं हो सका यह सब', पुनः पूछा । 'चरण सखा से आपका अभिप्राय क्या है ?' उन्होंने उत्तर दिया, श्री 'कृष्ण चरण सखा' आपका निवास कहाँ है? ब्रज में 'कुसुम सरोवर' के पास लता पतादि मध्य, वहीं श्री ऊद्धव जी भी विराजते हैं । आपका आगमन यहाँ कैसे हुआ ? 'पूछने पर उन्होंने सहर्ष कहा था, '*श्री कृष्ण द्वारा प्रेरित, उन्हीं की इच्छा से, उन्हीं की रसमयी लीलाओं का आस्वादन आप लोगों के लिये सहज हो जाए, अपनी प्रेम की किसी रस तरंग में भर श्याम सुन्दर ने आप लोगों की सन्निधि में मुझे भेजा है' । 'नील परिवेष्टित शब्द' सुनकर मैं अपना लोभ संवरण न कर सका– आप लोगों की सारी वार्ता मैंने सुनी है ।*

बात कुछ विचित्र अवश्य लगी । कौतूहल सा भी हुआ । बालवत् भोली बुद्धि अधिक सोच विचार न कर एक मग्नता में भर गई । श्याम सुन्दर के असीम प्रेम पूर्ण अनुग्रह ने शरीर रोमाञ्चित कर दिया । वे अपने हैं– अपने हैं– और हम भी उन्हीं की केवल उन्हीं की हैं– उन्होंने स्वीकारा है, यह विश्वास तो दृढ़ था ही; उस विश्वास में एक कड़ी बन यह घटना भी जुड़ गई । ओह ! उन्हें कितना ध्यान है हमारा ! उनके प्रेम के

सम्मुख हमारा अस्तित्त्व ही क्या है ? परन्तु प्रेम कोई लेन-देन का सौदा नहीं है। यदि अच्छाई और बुराइयों का माप-दण्ड कर भगवान् अनुग्रह करें तो जीव का निस्तारा ही कहाँ है ! वे अकारण कृपालु अपनी उदार प्रकृति वश ही प्रीति की रीति को निबाहते हैं- उसे (रंगीलो ही जानें) किस-किस प्रकार और किस मिस से अपने पास बुलाते हैं - यह सर्वोपरि उन्हीं के अधिकार की बात है। यह आनन्द और प्रेममय वातावरण जिस में सभी अपनी सुधि में न रहे, किञ्चित् सजग हुए, और अधिक परिचय जानने की जिज्ञासा हुई। प्रेम के उस प्रवाह में तनिक ठहराव आया- उनसे पुनः कहा, "आप अपना परिचय विस्तार से देकर अनुग्रहीत करें।" उत्तर में जो उन्होंने कहा मैं यथावत् प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ :-

"धन्य धन्य श्री राधिके, धन्य सकल गोपीजन।
धन्य धन्य चन्द्रावली, धन्य नील सघन घन॥
धन्य धन्य गोपीजन, धन्य कृष्ण गोपीश।
धन्य धन्य हैं पुनि सभी, धन्य धन्य सखीश॥
पुनि पुनि बन्दौं पद- कमल, पुनि पुनि करौं प्रणाम।
पुनि पुनि यह वर मांगहूँ, देहु भक्ति अभिराम॥
रसना निशिदिन रटा करे कृष्ण राधिका श्याम।
श्याम श्याम रटता रहूँ, हर घड़ी, हर पल याम॥
सदा यही रटता रहूँ, परै कभी नहीं भङ्ग।
देहु चरण अनुराग हरि, नवल कथा सत्सङ्ग॥
जय जय तेरी राधिका जय तेरी सब सखी गण।
जय जय वृन्दा विपिन है जय तेरे सब निज जन॥
जयति जयति जय जय जय जय, जय जय हे अभिराम।
जय जय जय जय जयति जय, नव शोभा घनश्याम॥
वृन्दावन प्रतिपल रहौं, भजौं, युगल सरकार।
कृष्ण राधिका भजता रहूं, कहूँ यह बारम्बार॥
मैं भूलूं भूलूं भले तू मत मुझे बिसार।
निशि दिन मेरा ध्यान रख, नागर नन्द कुमार॥
तेरा दास सखा सुहृद तेरी प्रिय हूँ श्याम।
तेरी हूं तेरी रहूं, मागूं हर पल याम॥
श्री राधा की शरण हूं, श्री राधा की दासी,
श्री राधा की सखी हूँ, जग सों सहज उदासी॥
अब मैं तेरी होके रही हूं, केवल तेरी तेरी भई हूं।"

अपने विषय में, कुछ बहन जी के और कुछ सखियों के विषय में वे पुनः बोले, 'उसके चरणों का माधुर्य गोपिकाओं के लिये ही है, चरणोदक जगत् के लिये और सेवा सेवकों के लिये। माधुर्य हृदय में हो तो वे चुलबुले चरण उछल कूद मचाते हैं।'

''सदा प्यासी रहो, पिपासा बढ़ती ही जाए, मरुस्थल बन कर घनश्याम को पुकारो, पर मरुस्थल मरु-मात्र नहीं। यह सलिल सिञ्चित मरुस्थल केवल 'और मिले' 'और मिले'- इसी पुकार के लिये मरुस्थल रहे 'भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे'- ऐसा मरुस्थल उसे (उन्हें) प्रिय है। ऐसे मरुस्थल पर वह छा जाता है, बरसता भी है, सरसा देता है भूमि को, पर फिर उसी क्षण प्यास लगा देता है।

वह असीम है, अनन्त है, अपरिमित है, 'घटै कबहुं नहिं' तुम मत डरो, मत घबराओ, मत संकोच करो; पग बढ़ाओ और देखो वह भुजाऐं पसारे तुम्हारा स्वागत कर रहा है। वह कह रहा है, ''कहाँ हो तुम, युग युग से बिछड़े मेरे प्रेमियो! मेरे अपने, बहुत अपने प्रियजनों ! तुम कहाँ हो ? आओ, आओ, मैं पलकें बिछाए तुम्हारी बाट जोह रहा हूँ। मैं तुम्हें लिपटा लेने को व्याकुल हूँ। मैं आतुर हो रहा हूँ। तुम आओ, बस एक कदम बढ़ाओ। यदि बढ़ाना नहीं आता तो केवल बढ़ाने की चाह पैदा करो। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में हूँ। आओ, आओ, आकर देखो तो सही।''

''हम उनकी कौन हैं ? यह वही जानते हैं हृदय धन। इस हृदय में बैठे वे ही तो गुदगुदा रहे हैं। अपने अव्यक्त स्वर से हमें रोमाञ्चित, पुलकित और प्रमुदित कर रहे हैं। जो मन के एक-एक तार को अपनी अंगुलियों से झंकृत कर रहे हैं, अब तुम ही कहो हम उनकी क्या हैं? सच कहो, कह सकोगी क्या ? नहीं कह पाओगी 'मैं जानती हूँ'। कैसे कहोगी ? शब्द कहाँ से लाओगी ? हां ! यदि कुछ मिल सकता है, वह आंखों से। आँखें भी क्या करें बिचारी। उस रूप मदिरा से मदोन्मत्त हो उठती हैं अपने अनजाने में, फिर कहो क्या है वे हमारे ? उन्हीं से पूछो- क्या कहते हैं वे। वह एक बार मुस्करा कर तुम्हारे नेत्रों में नेत्र डाल, एक नीरव भाषा में कुछ कह देंगे और तुम जानकर अनजान ही बनी रहोगी। क्यों ठीक है न ?

तुम उनकी अपनी, अपनी, बहुत अपनी 'अन्तरङ्ग और भी नहीं कह सकती कि क्या-क्या ?''

प्रथम दिवस उस दिव्य विभूति ने, श्रीकृष्ण की अन्तरङ्गतम

सखी ने, उन्हीं की लीला परिकर ने अपनी इस अभिन्न सखी को श्रीकृष्ण की अन्तरङ्गतम प्रिया सखी को, जो परिचय दिया उससे पाठक स्वत: अनुमान कर सकेंगे कि उन दिव्य देहधारी सन्त की क्या स्थिति रही तथा कहाँ तक उनकी गम्यता रही।

श्री कृष्ण लीला सुनाने का क्रम प्राय: नित्य का ही हो गया। अनेक बार, दो-दो बार भी आ जाते। बहन जी को उनके आने का भान हो जाता- जैसे ही यह उनका आह्वान करतीं, वे लीला सुनाना प्रारम्भ कर देते। बहन जी बोलती जातीं और पास बैठी एक बहन लिखती जाती। उनकी स्थिति, उनका वातावरण उन सभी बहन भाइयों ने अनुभव किया है जो उस समय उनके समीप होते थे। प्राय: ऐसा भी होता यदि उनसे कुछ कहने का विचार, आस-पास के परिचित जनों को भी आता तो अपने अन्तर्यामित्व से उनका अभिवादन अवश्य स्वीकार कर प्रत्युत्तर में अभिवादन करते। दिव्य संत (श्री सखा जी) का कृपा प्रसाद, आशीर्वाद अनेकों ने पाया है, आस्वाद लिया है- उनके उसी लाड़ प्यार का, उनके संस्पर्श का सुख, उनकी लीला चर्चा का सुख लेने का सौभाग्य बहन जी के अकारण करुणा और वात्सल्यमय स्वभाव वश, लेखक को भी प्राप्त हुआ है। आप विश्वास कीजिये, एक सुदृढ़ भावना पूर्ण विश्वास, साधकों के लिये उनकी अनुभूतियाँ बहुत बड़ा सम्बल बन प्रकाशित हुई हैं। लीला तो वे सुनाते ही थे- कभी-कभी बीच में बात भी करते थे। उनके द्वारा सुनाई अन्तरङ्गतम लीलाओं का एक विशाल संग्रह होता गया। मन पुन: आकुल हुआ और उनसे, उनका परिचय पूछने की कामना पुन: जगी। वे समझ गए- एक वर्ष बाद उन्होंने अपना परिचय पुन: सविस्तार दिया। उसे भी ज्यों का त्यों पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ :-

हाँ ! तो उन्होंने कहा, "कृष्ण चन्द्र मेरे प्राण जीवन उठा कर ले चले मुझे। मैंने क्या किया था, पुण्य ! नहीं, नहीं वह पुण्यों से कब रीझते हैं ? फिर क्या संस्कार ? नहीं संस्कार भी नहीं। सत्संगति ? सत्संगति के वश में भी नहीं है वह, चाहे सत्संग साधन अवश्य है, उन्हें रिझाने का। फिर मेरे कुछ भी न करने पर कैसे उठा लिया मुझे। मैं बौरा गया उस आनन्द में। मैं जागा पर इस बाह्य जगत से सो चुका था। हां, तो मैं जागा। क्या पाया मैंने ? मैंने क्या देखा ? ओह .... वह नील माधुरी! वह अद्भुत सौन्दर्य-लावण्य हृदय को हठात् अपने वश में कर लेने वाला आकर्षण पाश लिये उन्होंने मुझे बन्दी बना लिया। ओह ! .... वह रूप

सुधा। यह नेत्र जिसके लिये अब भी रह–रहकर मचलते हैं। हां! वही रूप–सुधा पान कर मैं उन्मत्त हो गया। पुरुषत्व का मिथ्याभिमान उस सौन्दर्य सागर में लय हो गया। मैं जान गई, पहचान गई। हां, यही मेरे प्राणधन प्रियतम हैं। मेरे जन्म–जन्म के साथी। ओह! मैं तुम्हें इतने दिन इतनी रातें भूली रही। मैं भूली रही कि तुम मेरे हो, मैं तुम्हारी हूँ। मैं भूली, मेरे सर्वस्व! पर तुमने याद रखा; हाय! ... कहीं तुम भी भूल जाते .... तो, ... तो .... । तुम मुस्कराये। तुमने अपनी .... सुधा मुझ पर बरसाई। तुम्हारी सुधा वर्षिणी दृष्टि ने मुझे आश्वासन दिया।

तुम बोले, "मैं .... और भूल जाऊं, अपनी इस हृदय सुषमा को। नहीं, नहीं, मैं भूल ही नहीं सकता। प्रयत्न भी करूं यदि तो भी मैं भूलने में सफल नहीं हो सकता। उस वाणी में क्या भरा था– हृदय ने अनुभव किया, श्रवणों ने उसे सुना और मेरी वाणी मूक रह गई।

फिर–फिर उन्होंने– फिर उन्होंने क्या कहा, क्या किया, मैं कुछ नहीं जानती। मुझे इतना पता था, मैं .... हां, उन्हीं की मैं, अपने उन प्राण–प्राण के उस सामीप्य सुख में .... मुझे नहीं मालूम कब मेरी बाह्य चेतना फिर लौट आई। मैंने अकुला कर चारों ओर देखा, पर वह नटखट खिलाड़ी आँख मिचौनी खेल कर जाने कहाँ छिप गया था। हां, तो मैंने देखा, "मैं निपट अकेली ब्रजभूमि की पावन रज पर पड़ी हूँ। सघन वृक्ष वल्लरियाँ मेरी रखवाली कर रही हैं। कलिन्द नन्दिनी अपनी कल–कल ध्वनि से मुझे सान्त्वना दे रही है। मैं उठ बैठी ..... मैं चकित ...... विस्मित रह गई। मैं तो उनकी .. हूँ। फिर .... फिर .... यह पुरुष वेष क्यों है मेरा ? मैं सोच में पड़ गई और फिर वही ... हां, वही प्राण हारिणी श्याम–ज्योति मेरे नेत्रों के सम्मुख झिलमिला उठी। अब मेरी बाह्य चेतना फिर पूरी तरह लौटी और मुझे सब कुछ याद आ गया। अब शरीर जगत् कृत्यों के योग्य नहीं रहा और .... और .... और .... फिर एक दिन उसी पावन ब्रजरज का धूलिकण बन कर ब्रज में ही रहने लगा। वहीं, उसी तट पर जहाँ प्रियतम ने आश्वासन देकर छोड़ा था मुझे। अब मैं वहीं रहता हूं– और जब कभी सत्सङ्ग मिले घूम आता हूँ। कभी–कभी वह सुघर चित्तचोर सांवरा मुझे बावरा करने के लिये अपनी छटा दिखला जाता है .... और मैं ...... फिरकी प्रतीक्षा में वहीं मंडराता रहता हूँ।"

यह था श्री सखा जी का संक्षिप्त परिचय, एक बार पुनः उनसे निवेदन करने पर उन्होंने कहा था, "वे हमारे प्राणों के प्राण हैं, जीवन

की जीवन्त शक्ति हैं, माधुर्य पूर्ण भावनाओं के सरसाश्रय हैं; मदगर्वीली भावनाओं के संगी हैं, एकान्त में भड़की रस पिपासा के साक्षी हैं, रागभरी कोमलतम भावनाओं के सबल अनुरागी प्रियतम, वे हमारे सभी कुछ हैं, और हम उनकी बिना मोल की चेरी, अतः हम सभी अनेक होने पर भी एक ही पथ की पथिका, एक ही लक्ष्य को लेकर उनके चरणों में समर्पित हैं, उनके रागानुराग से अनुरक्त हुई उन्हीं के सामने प्रस्तुत हैं।''

श्री कृष्ण की अत्यन्त प्रिय सखी हैं, हृदय सुषमा हैं उनकी लीला में सखा जी का प्रवेश है। उन्हीं श्री कृष्ण की, श्री राधा कृष्ण की निज स्वरूप भूता अन्तरङ्ग इन सखियों सहित विहार विलास का सरस वर्णन, जो सखा जी ने सुनाया है, उसकी भाषा, भाव गाम्भीर्य, अन्तरङ्ग विहार, एकान्तिक विलास का अत्यन्त सुरस मधुराति मधुर वर्णन इस जगत की बात नहीं है, अभिव्यक्ति नहीं है, वर्णन नहीं है।

हम एक बात पाठकों को स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि श्री कृष्ण काव्य, उनकी लीला कथा का वर्णन सिद्धावस्था की ही अनुभूतियाँ हैं। अनुभव तर्क से सिद्ध नहीं हो सकता, तर्क सङ्गत अवश्य होता है। श्री सखा जी के शब्दों में 'समस्त लौकिक कामनाओं का त्यागी ही श्रीकृष्ण काम भोगी हो सकता है'। एक अन्य जगह कहते हैं 'जहाँ भौतिक देह की गम्यता नहीं, सांसारिकता का प्रवेश नहीं, इन्द्रिय सुख की लालसा नहीं, वहीं प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं का रस उच्छलित हो सकता है।'

यह दिन ३० जौलाई १९५४ का था। उसी दिन से लीलाओं का आना प्रारम्भ हुआ। इसी तिथि को गर्व है बहन जी के भूतल पर प्रकट होने का। उनके जन्मोत्सव पर सभी ने भेंट समर्पित कीं। किसी ने उपहार में कुछ दिया, और किसी ने कुछ, श्री सखा जी ने श्री कृष्ण प्रेरणा से अनुग्रह कर लीला ही उपहार रूप में भेंट की। प्रिया-प्रियतम की यह भेंट बहन जी के जन्म दिवस पर एक प्रसन्नता के वातावरण में सराबोर करती, श्री सखा जी के माध्यम से आई। लीला गान के रूप में, उन्होंने अपनी इस अनन्या सखी को किस प्रकार से लाड़ लड़ाया होगा, वे तो वही जानें, प्रत्यक्ष रूप में हम सभी के लिये भौतिक चक्षु गोचर हुई यह कथा-वार्ता। तभी से अपनी इस वर्षगांठ का उत्सव मनाती लीला चर्चा का क्रम अनवरत चलता रहा सन् १९९१ वर्ष तक।

हां, श्री सखा जी, श्रीकृष्ण चरण सखा तो हैं हीं- वह

उनकी अभिन्न हृदया सखी हैं, हृदय सुषमा हैं श्रीकृष्ण का संस्पर्श पा अपनी भावानुकूल देह के अनुकूल ही उन्होंने स्वयं को सखी रूप में परिवर्तित पाया। वे उनकी सखी, अत्यन्त प्रिया-सखी तथा इसी सखी रूप से उनकी गम्यता है, लीला में प्रवेश है, लीलाओं के आयोजनों में, उसी सुख का पान कर, आस्वादन कर, उसी प्रसाद कणिका को श्री कृष्ण की प्रेरणा से, पू. बहन जी के लिये वितरण करना प्रारम्भ किया उन्होंने। वे एक बहुत ही अद्भुत और एक सिद्ध स्वरूप लेकर हम लोगों के सामने आए तथा पू. बहन जी के लिये प्रत्यक्ष बने रहे। निगूढ़तम लीलाओं का वर्णन कर अध्यात्म जगत में एक अलौकिक लीलाओं का सूत्र जोड़ा है। भाषा में इस प्रकार का वर्णन, असम्भव यदि कहूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जब उनकी लीलाओं का आस्वादन हम कर रहे हैं, उनका सामीप्य हम अनुभव कर रहे हैं- लीला रस में हमारा मन उच्छलित हो रहा है- तो उनकी स्थिति को स्वीकार करना ही होगा- इस प्रकार की घटना 'न भूतो, न भविष्यति' ही कही जावेगी।

प्रारम्भ में उन्होंने घटनात्मक लीलाऐं दीं। शैली में भी, जैसे-जैसे समय बीतता गया, गाम्भीर्य का समावेश होता गया- वर्णन में भावात्मकता आती गई, अनुभव की प्रगाढ़ता, प्रगाढ़तम होती गई। लीलाओं के क्रम में भी परिवर्तन आता गया। लीलाओं का रूप निकुञ्जान्तर्गत लीलाओं ने लिया। प्रिया-प्रियतम का सामूहिक विहार, अनेक बार युगल के एकान्तिक विहार का रूप ले प्रकट होने लगा तथा यह विहार, विलास में परिणत हो केवल वर्णनात्मक न हो कर भावात्मकता प्रधान हो गया। भाव और तन्मयता ने विशेष स्थान ले लिया, तन्मयता के कारण मत्तता बेसुधि में परिवर्तित अवश्य हुई, पर यह- बेसुधि, और तन्मयता में समाप्त नहीं हुई, सजगता ने पुनः प्रवेश किया और तन्मयता को झंकृत कर दिया। केवल रसवर्द्धन हेतु ही और वह रस वर्द्धन पुनः पुनः सामीप्य में परिवर्तित होकर तन्मयता में समा गया।

उनकी भाषा और शैली का माधुर्य केवल आस्वादनीय ही है, जिन्होंने उसे सुना है, गद्य में भाषा में इतनी गरिमा, भाषा सौष्ठव और भावों का इतना सूक्ष्म वर्णन, भावों के अनुकूल गाम्भीर्य ओह ! यह दिव्य जगत की भाषा है, समाधि भाषा है। उस जगत की बात की अभिव्यक्ति वहीं की भाषा में सम्भव हो सकती है। वह भाषा सभी प्रकार से अनुकूल तो है ही अपरिवर्तनीय भी है, चित्रात्मक है, सजीव है। प्रकृति का

मानवीकरण, अद्वितीय तो है ही– उसके समान अभिव्यक्ति सर्वथा असम्भव ही कहनी होगी ।

इस प्रकार से दो विशाल ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ, श्री सखा जी द्वारा वर्णित लीलाऐं तथा पू. बहन जी की रसानुभूतियाँ, श्री कृष्ण की इच्छा से ही संगृहीत एक उपलब्धि है– एक निधि हैं ।

श्रीसखा जी द्वारा प्रदत्त लीलाओं का पठन, पाठन चिंतन–मनन एक स्वभाव बन गया । अनेक भाई बहन मिलकर पढ़ते । अनेक अन्य सन्त भाई बहन भी साग्रह श्रवण कर मत्त हो जाया करते, भूरि–भूरि प्रशंसा करते । इस प्रकार के भाव गाम्भीर्य की, उस रस विहार–विलास की गहराई तक पहुँचने का प्रयास करते । वे तन्मय हो जाते किस गहराई तक जाकर, यह कहना अत्यन्त कठिन है । एक अगाध रस स्रोत की थाह पाने में समर्थ कौन है भला ? पू. बहन जी के आस्वादन के स्वरूप में वहाँ की पुष्टि पा, एक और ही नया गाम्भीर्य और भाव–परिपूर्ण हो गया । आस्वादन के स्वरूप में नित्य लीला का संयोग अपनी गरिमा से अपनी शाश्वत स्थिति का बोध कराने लगा । यह सब लीलाऐं श्री राधा कृष्ण तथा उनकी काय व्यूह स्वरूपा इन सखियों के आस्वादन हैं । मैं एक बात पाठकों के सामने विनम्र रूप में कहना अत्यावश्यक समझता हूँ कि यह सब सामग्री शास्त्र सम्मत है, संतों द्वारा अनुमोदित है. इसकी प्रामाणिकता संतों के अनुभव तथा प्रिया–प्रियतम का रसमय विहार है । इनके विषय में किसी भी प्रकार की जिज्ञासा का सरल और सीधा–सादा उत्तर है । यद्यपि सिद्ध सन्तों की अनुभूति के लिये प्रामाणिकता का कोई हेतु नहीं है, तथापि जहां अनुभूति शास्त्र सम्मत है संतों द्वारा अनुमोदित है तथा श्यामा–श्याम द्वारा पुष्ट है ऐसा अभूतपूर्व सुयोग आज तक देखने/सुनने में नहीं आया–अतः माधुर्य की इस अजस्र रसधारा में आस्वादन रत होकर क्यों न मग्न हो जाऐं ? हां तो यह लीलाऐं, नए उत्साह, उमंग और अनुभूति का योग जुटाने लगीं, एक दिव्य संत की अनुभूति से सम्पुष्ट होकर ।

श्री सखा जी के व्यक्तित्व के विषय में क्या कहूँ ? मेरी सामर्थ्य नहीं है । अनुभूति लेखनीबद्ध होनी कठिन है । वास्तव में अनुभूति तो अनुभव का ही विषय है । श्री सखा जी द्वारा वर्णित लीलाओं का क्रम, एक गम्भीर रस पद्धति का निरूपण, मधुर से मधुरतर रस स्थिति, निकुञ्ज विहार–विलास का ऐसा सहज तथा सरस वर्णन, भाव गरिमा,जो अभिव्यक्ति तथा भाव गाम्भीर्य में दबी रहने पर भी प्रकट है तथा प्रकट होकर भी गुप्त ही रही है, समाधि भाषा का गद्य में ऐसा निरूपण श्री सखा जी के अतिरिक्त

किसी भी रसिक के सामर्थ्य की बात नहीं हो पाई । मौलिक विचारधारा तथा रस सिद्धान्त का इतना सरस वर्णन, अध्यात्म की एक नई विधा, भाषा की भावोनुकूल गरिमा, भावों का सूक्ष्म तथा सरस विश्लेषण देख, श्री सखा जी की अभूतपूर्व स्थिति का आकलन कर पाना सुगम नहीं है ।

उन द्वारा प्रदत्त लीलानुभवों को देखकर लगता है उनकी अनुभूति सहज ही सर्वत्र रही है, निगूढ़तम, निभृत निकुञ्ज, एकान्तिक विहार विलास का वर्णन उसी रस स्थिति में पैठ कर ही सम्भव है, जिसका वर्णन भी अत्यन्त मौलिक तथा भावानुकूल अभिव्यक्ति निस्संदेह उनसे सामर्थ्यवान महत्जन, निज परिकर की ही अनुभूति हो सकती है । पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रकट आचार्यों द्वारा जिस रस पद्धति का निरूपण सहज और सुलभ हो भक्तों का प्रेरणा-स्रोत रहा, आते-आते सम्भवतः सामर्थ्यवान रसिकाचार्यों श्री हरिराम जी व्यास, श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद, श्री भगवतरसिक जी, चाचा वृन्दावन दास जी तथा अष्टाचार्यों तक समाप्त प्रायः हो गया दीखता है । परम्परागत रसिक अवश्य हुए, उनकी झलकियाँ भी देखने को मिलीं, विचारधारा भी सामने आई- और भी अनेकानेक महानुभावों ने बहुत कुछ कहा है, कहने का अपना सा सफल प्रयास अवश्य किया, परन्तु अनुकृति ही हो सकी । माधुर्यरस की जिस गहराई तक सखा जी की पैठ रही अभिनिवेष रहा, वहां तक की अभिव्यक्ति का माध्यम गरिमायुत नहीं हो सका, सम्भवतः वहां तक की कल्पना भी नहीं हो सकी। एक बड़े अन्तराल के बाद सखा जी की रस पद्धति निश्चित ही उन सामर्थ्यवान रसिकों की अनुभूति शृङ्खला में आगे की कड़ी बन अभूतपूर्व योग की सम्पुष्टि कर रही है । उनकी भाव गरिमा, मौलिक रस परिपाटी बेजोड़ है । भाव तथा भाषा का ऐसा अद्‌भुत सङ्गम सर्वथा श्यामा-श्याम की निज परिकर, उन्हीं की अनन्या सखी (सखाजी) के ही सामर्थ्य की बात है ।

उन्हीं की वाणी, अनुभूतियां, भाव लहरियाँ, रस विहार विलास, एक सुदृढ़ परिपक्व सिद्धान्त की कुछ झांकियाँ पाठकों के चिंतन हेतु नीचे उद्धृत की जा रही हैं :-

वाणी

एक आश्चर्य

'जय जय राधिका माधव'

जाती हुई संध्या के श्यामल आँचल को, अपने स्निग्ध

कर-स्पर्श से तनिक .... चपल प्रमुदित शशि ने नीलाम्बर हटा, झाँका। संध्या की नीरव रसमयता ने एक बार लौटकर देखा, तनिक लजायी, लजाकर मुस्करायी और घनी कालिमा के परिधान ओढ़ सिमट सी गयी। उसकी काली-काली कुन्तल केशराशि संपूर्ण वन पर छा गयी। तभी पूर्ण शशि की विहँसन ने प्रकृति के अंग-प्रत्यंग को पुलकित कर दिया। चंद्रमा की विहँसन से चपल हुई चंद्रिका, आकाश से उतर ब्रज निकुञ्जों में छिप बैठने का स्थान खोजने लगी। स्निग्ध कालिमा ने उसका स्वागत किया, दोनों सखियाँ गले लग खिल उठीं। कालिमा ने चंद्रिका को अपना वास दे स्वयं निभृत निकुञ्जों में वास किया। पूर्णचंद्र की विहँसन से सिहरती-पुलकती, मचलती, इठलाती वह चन्द्रिका कुञ्जों के बाहर-भीतर, सर्वत्र छलकती बिखरती सी विचरने लगी।

तभी उसने एक आश्चर्य देखा, स्तंभित रह गयी। उसकी वह बिखरती, मचलती चपल सुषमा वहीं स्थिर हो गयी। सघन वन प्रान्त के स्वच्छ प्रांगण में उज्ज्वल बालुका के बिछौने पर आसीन एक सजीव चन्द्रमा को अनगिन राकाओं से घिरे पाया। नभस्थ चंद्रमा का हास उसे मंद लगा, अपनी उज्ज्वलता फीकी जान पड़ी। नीरव निस्तब्ध खड़ी वह इस सरसीले, मदगर्वीले-मंडल को निहारती रह गयी। ऊपर से झाँकते विधुमंडल ने भी यह अद्भुत रस सृष्टि देखी। अपनी चपल गति भूल वह भी वहीं स्थिर रह गया। अनेकानेक वह चपल राकाएें और उनका वह प्रणय पुजारी श्यामल चन्द्र आश्चर्य पर आश्चर्य। शत-शत कमलसमूह की मधु सौरभ को अपनी अंग सुवास से पराजित सा करता वह मधुमय-मण्डल।

समीप ही हिलोरें लेती कलिन्द-नन्दिनी की लोल-धाराएँ, मंद मधुर स्वर में इन रस सम्राट से कुछ कहती सी नृत्य-निरत हो गयीं और परिहास-कल्लोलिता, रास रस श्रमिता अपनी वल्लभाओं पर प्रणय-स्निग्ध दृष्टिपात कर, वे अभिनव किशोर मुस्कराये। इस मुस्कान में मदिर हिलोरों का अद्भुत नर्तन था। उन प्रणय विदग्धा किशोरियों के अंग-प्रत्यंग में सिहरन हुई। उस सिहरन को उर-अन्तर में ही थामे रखने के प्रयत्न में संलग्ना, उन बालाओं को शीतल-समीर के झोंके ने झकझोर सा दिया। उनके संभलते आंचल विचलित हो गए, केशपाश विलुलित हो कपोलों और उरस्थलों पर विक्रीड़ित हो गए। आभरणों की सुखद झंकार थामे न थमी, प्रस्फुटित हो उस वनस्थली में प्यार के नव-नव तराने गा

उठी। प्यार के उस मधुर गीत को नाना तान तरंगों से भूषित करते वह रास रस रसिया, अनुराग-रस-वारिधि, खिलखिलाए, उठकर खड़े हो गए। पीतपट की उस तरल लहरान में शत-शत दामिनी समूह कौंध उठा। वनमाल की सुवासित लहरान पर कोटि-कोटि कमल-कुल न्यौछावर हो गए। विहँसते अधरों की मृदुल अरुणिमा में दमकती दशनावलि को देख चंद्रकिरणें चकित, हो चौंक उठीं। शत-शत चन्द्रमाओं की उज्ज्वलता कुण्डलों की झिलमिलाहट में आ समायी .....।

प्रणय स्तंभिता उन किशोरियों को इन राग रसाब्धि की उच्छलित सुहास-तरंग-मालाओं ने सचेत किया। उनमें प्राण मन्थनकारी मृदुल मन्मथ का संचार कर सुरतांत संकोच को झकझोरते हुए, उन नव-नव विलासी ने बालाओं को विविध उपायों, उपचारों से उठाया और भाँति-भाँति से प्रणय-प्रशस्ति गान करते हुए- उन्हें ले, यमुना सलिल में प्रविष्ट हुए। स्थल विहार की कोई कलाकृति इस जल विहार में अछूती न रही। हृदय की रागिनियों का सरस विनिमय (पल्लव और कलिकाओं का) रस वितरण-रस-सञ्चय, अंग-प्रत्यंग संचालन की जय-पराजय। .... रोम-रोम से छलकती अंगश्री का वह मदिरालय। संपूर्ण कंदर्प कलाऐं सहमी-सिमटी सी एक ओर खड़ी थीं। .... पारस्परिक महक झकोरों से मदोन्मत्त हुए वह केलिविलासी, प्रणयी-प्रियतम और श्याम विलासिनी रसविदग्धा वह किशोरिकाऐं। न जाने, कितनी-कितनी बार लज्जा-संकोच फिर उस प्रमदामंडल में चला आया। रसरणमत्त सांवर किशोर ने हर बार उसे भाँति-भाँति से दंडित किया। प्रियतम का सहयोग पा उन मृदुलाँगिनी बालाओं ने भी उसकी ताड़ना की। पर, वह गया नहीं। रतिरण बाँकुरे प्रियतम के भय से उन्हीं सुकुमारी बालाओं के अंग-प्रत्यंग में, उर-अन्तर में छिपकर जा बैठा और .... उस रसओट में छिपा वह इन सुन्दरियों को उनके अनजाने में ही प्रेरित कर रणारूढ़ हो गया। वे सब यन्त्र-चालित सी हो गयीं। रंग-बिरंगे कमल, कर कमलों में ले वह उन मृदुल-सबल-सुन्दर किशोर पर रसाक्रमण करने लगीं, पर वे पुरुष भूषण फिर भी अकेले ही विजयी हुए।

कलिन्द-कुमारी ने सजातीयता निभायी। उन किशोरियों को कंठ तक आवृत्त किए वह उनकी परिचर्या में लग गयी, पर फिर भी पक्ष प्रियतम का ही लिया।

जलान्तर्गत अन्तरंगतम केलि विलास हिलोरें लेता रहा। पता नहीं इन प्रियतम और इन प्रियाओं के नयनों में मदिरा भर गयी या

शृङ्गार मदिरा में ही वे अनगिन नयन मज्जित हो गए थे। नयन-नयनों के चितवन विलास ने फिर उकसाया फिर अंग-अंग की मुठभेड़ हुई फिर कुसुमधन्वा के सभी कुसुमशर काम में आए और रात्रि का वह चतुर्थयाम उस तरल हास में मज्जित, स्तंभित खड़ा रहा। रस रात्रियों से सेवित वह सरस प्रभात और शृंगार रससिन्धु की वह अदम्य उमड़न।

जय जय राधिका माधव

'वंशी की निस्पृहता'

जय जय राधिकामाधव

वंशी का महासौभाग्य अवर्णनीय है। न जाने इस बाँस की पोर में कौन सा जादू है कि त्रिभुवननायक, आनन्दघन नन्दनन्दन भी इसके हाथों बिक गए। इनकी वंशी कोई साधारण बाँस की पोर तो है नहीं। न जाने, कितने जन्मों के तप, कितनी तितिक्षा की होगी इस वंशी ने। यह तो श्री कृष्ण की नित्य सहचरी है। गोलोकधाम में भी इसकी धूम मची रहती है। इसका परम सौभाग्य तो देखो दिन-रात, आठों पहर, चौसठ घड़ी उन परम सुकुमार नन्दनन्दन की अंग संगिनी बनी रहती है। कौन कहता है इसे, यह जड़ है। यह तो उन नित्य चैतन्य को भी सदा चैतन्य रखने वाली अमृतमयी संजीवनी है।

यह एक गोपकुमारी के महासौभाग्य की प्रतीक है, प्रतीक नहीं, वह महाभाग्यशालिनी ललना स्वयं इस वंशी के रूप में इनके नित्य साहचर्य का आनन्द उपभोग करती है। यदि बाँस की पोर ही होती, तो नन्दनन्दन उसे इस प्रकार चौबीसों घन्टे सँभाले न फिरा करते। एक के खो जाने पर, दूसरी ले लेने में तब कोई भी आपत्ति न होती। सब तो नहीं, पर कुछ गोप बालाएँ इस रहस्य को जानती थीं। तभी तो वह जानबूझकर, नन्दनन्दन को खिझाने के लिये वंशी को उलाहने देतीं, नन्दनन्दन को परेशानी में देख कर मुस्करातीं और फिर आप ही उसे निकाल भी लातीं।

वंशी तो इनकी सखी है, अत्यन्त प्रिय सखी। व्यंग्योक्तियाँ तो दिखावे की हैं। आनन्दोपलब्धि का नवल सरस साधन है और इन कृष्ण प्रियाओं का रसीला कौतुक है। हाँ तो, यह मुरली नन्दनन्दन की प्रेयसी है। श्री श्री राधिका के बाद दूसरा नम्बर इसी का है।

बात यों थी कि गोलोक में नित्य की क्रीड़ाओं में कोई-कोई क्रीड़ा इस प्रकार की होती कि यहाँ भी उसका रसास्वादन किया जा सके, इसकी भूमिका तैयार हो जाती।

एक दिन नन्दनन्दन, वृषभानुनन्दिनी और अनेकानेक गोपकुमारियाँ किसी उपवन में बैठे नित्य की भाँति विहार कर रहे थे। वातावरण बहुत रसमय, आनन्दमय और खिलखिलाहट से परिपूर्ण था। उनमें 'वंशी' नाम की सखी भी थी। यह नन्दनन्दन की संगिनी तो है ही, पर तब तक इसका ऐसा परम सौभाग्य नहीं जागा था। बजने वाली वंशी तब स्वर्ण और मणियों से निर्मित थी। बजती वह भी थी, उससे आकर्षित भी सभी गोप-गोपी होते थे। पर प्यार-दुलार की यह पराकाष्ठा, उसके प्रति इनकी नहीं थी। उस दिन के विहार में यह ब्रजराज किशोर सभी से बोले, हँसे, केलि क्रीड़ाएँ कीं, सभी को खिझाया-रिझाया पर एक वंशी ही ऐसी रह गई जिससे यह न हँसे, न बोले और न कुछ और ही अनुराग की अभिव्यञ्जना की। नन्दनन्दन की कमल सदृश कमनीय आँखों ने देखा, बार-बार देखा कि वंशी के मुख पर किसी से न तो ईर्ष्या ही के भाव व्यक्त होते हैं और न उसमें कोप ही दिखलाई पड़ता है। वह सहज दृष्टि से उन सखियों और विपिन बिहारी की लीलाओं को देख कर सिहर रही है। प्राणी मात्र के हृदय के साक्षी, इन जगदीश्वर ने उसके हृदय में झाँक कर देखा। सचमुच ही, वहाँ न ईर्ष्या थी, न द्वेष, न झूँझल थी, न ही रोष, पर बस, एक लालसा वहाँ अवश्य थी, जिसे बड़ी कोमलता से उसने अपने हृदय में छिपा कर रख रखा था। इससे पूर्व भी इसे अन्य सखियों का सा मधुर मादक सौभाग्य नहीं मिला था। फिर भी कभी किसी के प्रति उसे द्वेष की भावना नहीं आई। यदि कभी ध्यान आता भी तो यही कि 'मुझ में कमी है। वह तो सभी को एक सा प्यार प्रदान करते हैं पर मेरा पात्र ही छोटा है।' उसे गोपियों से ईर्ष्या न होती, अपितु उसके हृदय से श्रद्धा और प्रेम की शत-शत धाराएँ निकल कर उन कृष्ण-प्रियाओं का अभिनन्दन किया करती थीं।

परीक्षा की भी कोई सीमा होती है। जाने कितने वर्ष इसी प्रकार बीत गए, बीतते चले गए पर न तो कभी उसकी आशा ही टूटी और न उसे किसी से शिकायत ही हुई। कभी-कभी रात्रि के निपट अन्धकार में, तारों की धुँधली छाया में अपने विकल मन को समझाया करती- 'अरे बावरे! क्यों अधीर होता है ? वह तेरी अच्छी प्रकार समझते हैं, जानते हैं। समय आने पर आप ही तुझे दुलारेंगे। तू अधीर होकर उन्हें अकुला मत, वह विकल हो जायेंगे। वह तुझ जैसे कठोर नहीं हैं। तू मूक रह, धैर्य से सब कुछ सहन करता जा, फिर वे आप सँभालेंगे।'

इसी प्रकार कई रात्रियाँ, कई दिन आते। उनकी नीरवता, चाँदनी का सरस हास, दिवस का उजाला, उसके हृदय में भाँति-भाँति की

कामनाओं को जगा देता। वह विकल हो उठती, पर फिर मन को समझा लेती। सभी अवसरों पर भाग भी लेती, पर जाने क्यों, इतने लम्बे वर्ष बीत जाने पर भी उसकी मनोदशा, उसकी वेदना, यह कृष्ण प्रियाएँ न जान सकीं। यह भी इस महामायावी की मोहिनी माया, इस कौतुकी का मधुर कौतुक है।

एकाध बार कभी किसी को यदि ध्यान आया भी और उसने इस बाला से कुछ जानना चाहा, उसने हँस कर बात टाल दी, मुख पर तनिक भी मलिनता न आने दी। कोई प्रिय से उसके अभाव की कथा कहे– छी ! छी ! क्या यह उचित है ! वह तो स्वयं ही सब कुछ जानते हैं। फिर भी जो ऐसे रख रहे हैं– इसमें कुछ विशेष कारण होगा। वह हँस कर बात उड़ा देती। सखियाँ भी जैसे उस भुलावे में आ जातीं।

पूर्णिमा की रात्रि थी। आज संध्या से ही विहार की विविध क्रीड़ाएँ हुई थीं। इसने भी भाग लिया था, पर नित्य-प्रसन्न नन्दनन्दन ने तब भी इस पर दृष्टिपात नहीं किया, अर्द्ध रात्रि की नीरवता में विहार समाप्त हुआ, सभी अपने–अपने शयनागार में चले गए। वंशी भी गई, पर वहाँ टिक न सकी। वह बाहर आकर एक वृक्ष की टेक लगा कर बैठ गई। हृदय में खलबली मच रही थी। वह अपनी उस अर्द्ध चेतना में नन्दनन्दन को अपने सामने खड़ा समझ कर, कह रही थी– 'जानती हूँ अपनी अपात्रता का भी ज्ञान मुझे नहीं है। अधिकार–अनधिकार समझने की बुद्धि भी मेरे पास कहाँ है ? पर, फिर भी यह तो कहो कि मुझे इस नित्य आनन्दमय गोलोक धाम में तुमने रखा ही क्यों ? मुझे क्यों बुलाया ? बुला कर भी कभी आँख उठा कर देखते क्यों नहीं ? लाख प्रयत्न करूँ पर फिर भी मेरे अनजाने में ही यह बावरा मन चीत्कार कर उठता है। जाने क्यों नहीं चाहती तुम तंग हो जाओ। पर मैं क्या करूँ? मेरा वश ही नहीं चलता। अब तुम्हीं इस नासमझ को समझा जाओ। इसी प्रकार प्रलाप करती हुई उसे, उषाकालीन समीर ने झकझोर दिया। वह जाग सी उठी। अपने (मन) को धिक्कारती हुई कहने लगी– 'ओ पगले ! तू क्यों गड़बड़ करता है ? उनकी प्रसन्नता में तू प्रसन्न क्यों नहीं रहता ? अधरो ! तुम मुस्कराते रहो। आंखों तुम भी प्रफुल्लित रहो। कहीं यह उदासी उन तक न पहुँच जाये। उन तक क्या, उनकी प्रियाओं तक भी इसकी छाया न पड़े।'

अब भोर हो गया। उसने अपने को सम्भाला। उठी, उसने धीरे से मुँह ही मुँह में कहा– 'प्रियतम तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारे सुख में ही सुखी हूँ। देखो, मैं मुस्करा रही हूँ, खिलखिला रही हूँ' – और सचमुच

वह खिलखिला दी पर उन नयनों ने उस मुस्कान पर मानों दो अमूल्य मोती न्यौछावर कर दिये हों । मन की कातरता को मुस्कान में छिपाए वह अपने कक्ष में आ गई । नित्य की भाँति सभी नित्य कर्म किये । शृंगार भी किया, फिर वही हास छटा उसके अधरों पर झलक उठी । नित्य की भाँति ही सब सखियों से भेंट हुई । हँसी-मज़ाक हुए, पर, उसकी मार्मिक वेदना हृदयस्थली से बाहर न आई ।

हाँ, तो उस दिन संध्या को नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी और कुछ सखीजन भी उस उद्यान में विहार कर रहे थे । उस दिन भी वंशी उसी प्रकार उपेक्षित सी रही, पर उसे क्या पता था कि इस उपेक्षा के बदले कितना बड़ा पुरस्कार उसे मिलेगा । वह नन्दनन्दन की सहचरी ही नहीं, अंग-संगिनी होगी । उस संध्या ने भी करवट बदली । रात्रि के उस तिमिर पर प्रतिपदा की चाँदनी खिल उठी । अर्द्धरात्रि बीतने पर विहार का क्रम स्थगित हुआ फिर सब अपने कक्षों में चली गईं ।

आज गोपसखा भी कुछ देर के लिये सम्मिलित हुए थे पर वे रात्रि के प्रथम पहर में ही अपने-अपने विश्राम स्थलों को चले गए थे । सभी अपने-अपने भवनों में विश्राम करने लगे पर वंशी को आज भी नींद नहीं आई । उसने निश्चय कर लिया चाहे कुछ भी हो, आज मैं बाहर न जाऊँगी। कहीं यह कौतुक प्रिय किसी कारण से वहाँ आ निकले तो क्या कहेंगे ? न सही नन्दनन्दन, कोई सखी ही, आ गई तो क्या कहूँगी । ओ मन । अब तू रोज ही इस प्रकार मुझे तंग करने लगा । नित्य उनके दर्शन होते हैं उनका प्रफुल्ल वदन निहारती हूँ-यही क्या थोड़ा है ? इस प्रकार मन को समझा-बुझा कर वह बाला अपनी शैया पर लेट रही । उसने नयन मूँद लिये । सोने का प्रयत्न करने लगी कि सहसा ही कपाट खुलने की आहट हुई, पर, न जाने, क्यों उसने आंख खोल कर देखा भी नहीं । एक बार जी चाहा भी, पर यह समझ कर कि मुझे भ्रम हुआ है, वह नयन मीलित किये ही पड़ी रही । अब उसे लगा कि कोई उसके पास आकर बैठा है । वह चौंक उठी, नयन खोले। ओह मेरे प्राणधन । आह्लाद भार से वह मूर्च्छित हो गई । नन्दनन्दन विविध उपचारों से उसे होश में लाए । अपनी विकलता और आतुरता पर उसे संकोच हो रहा था । इसी कारण से तो इस अर्द्धरात्रि में प्रियतम को विश्राम नहीं मिला और बातें तो यह दोनों ही जानें पर उसकी परीक्षा का अन्तिम प्रश्न यह था। नन्दनन्दन ने कहा- तुम्हें इन सखियों पर झुँझलाहट नहीं हुई ? इन्होंने ही मेरा ध्यान तुम्हारी ओर क्यों नहीं दिलाया । सखियाँ होकर भी ऐसी उपेक्षा क्या उचित थी ?

वंशी इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गई। उसने सरलता से निष्कपट भाव से उत्तर दिया- उन पर झुँझलाहट क्यों होती भला ? उन्होंने तो कभी भी मेरी उपेक्षा नहीं की। मैं ही सदा संकोच करती रही। हँस कर उनकी बातों को टालती रही। मेरा दोष उन्हें मत दो।

अब तो नन्दनन्दन बिक गए। अरे ! यह निश्छलता ही तो है जिससे वह मुक्त पुरुष बन्धन में आ जाता है। प्रेम यदि डोरी है तो निश्छलता इन परम प्रियतम की निवास स्थली। प्रेमरज्जू से बँधे यह निश्छलता में ही निवास करते हैं। उसकी निश्छलता पर रीझ कर अपना अत्यधिक प्यार उँडेलते हुए इन्होंने उससे उसकी मनोवाञ्छा पूछी। वह क्या कहती। उसकी मनोवाञ्छा तो इन्होंने बिना ही कहे पूरी कर दी।

श्री राधिका की दृष्टि से उसकी मनोदशा कब तक छिपती। आज उन्होंने इन्हें कह कर भेजा था कि परीक्षा काल की अवधि अब और लम्बी नहीं होनी चाहिये। नन्दनन्दन तो स्वयं आकुल थे। श्री राधिका के संकेत मात्र पर ही दौड़ आए थे।

उसकी उदारता, निस्पृहता, द्वेषहीनता और निश्छलता पर रीझ कर, नन्दनन्दन ने उसे नित्य कर कमलों का विहार यन्त्र बनने का वरदान दिया। उसके संकोच को देख कर उन्होंने उसे बाँस की पोर के रूप में सदा-सदा के लिये अपनी आहवायिका शक्ति बना कर, कर कमलों पर धारण कर लिया। इतने वर्षों की उपेक्षा के फलस्वरूप आज तक भी नन्दनन्दन उसे अधर-सुधा-रस पान कराया करते हैं। यह वंशी दोनों प्रकार से उस रस का आस्वादन करती है।

धन्य है यह वंशी। धन्य है वंशीवादन कारी जो सदा-सर्वदा के लिये उसके अपने हो गए। उसे अपनी कर लिया। हमें भी वंशी और वंशीधर ऐसी ही निश्छलता प्रदान करें कि यह पाषाण हृदय भी उनका आलय हो सके और यहाँ भी उस प्रेम-रस की धारा बह सके।

बोलिये, वंशी, वंशीधारी और उनकी उपेक्षा और उपेक्षा के पुरस्कार की जय। गोलोक धाम की जय। वृषभानुनन्दिनी की जय। सखीजन समूह की जय। उस महाभागा रात्रि की जय।

× × ×

जय जय राधिका-माधव

उसकी (उनकी) मुरली होने के लिये बड़े त्याग, सहनशीलता, कष्ट सहिष्णुता और उदारता की आवश्यकता है। इन सबसे

ऊपर है इन नन्दनन्दन की अहैतुकी कृपा। कृपा की अनवरत बहने वाली धारा का प्रत्यक्ष अनुभव कराने में यही गुण सहायक होते हैं। अपने को बिल्कुल खाली कर देना, अपना अपने में कुछ न रहना, जो स्वर वह भर दे उसी में मग्नता। मुरलीधर की मुरली बनने के लिये आवश्यक है हृदय की स्वच्छता; निष्कपटता को देख कर, उस पर रीझ कर यह कृपालु कृष्ण उसकी माला बनते हैं।

जय जय राधिका माधव

× × ×

कतिपय लीलाओं के आंशिक दृश्य

विरल रसिया

अब सभी हँसती-खिलखिलातीं, चहकतीं-लहकतीं अपने उन मधुरिम रसीले-रंगीले युगल को लिये उस गोलाकार मण्डप में आईं।

वहाँ की उस सज्जा को देख, प्रिया-प्रियतम मुग्ध हो गए। श्री राधिका की मधुमयी, रसरागमयी चितवन ने उन्हें दुलारा, मृदु मुस्कान ने उनकी सराहना की और होली फाग के विरल रसिया इन प्रियतम ने सौ-सौ छेड़ भरी वचन-मालिकाओं से, पुष्प पराग सी मञ्जुल अवलोकन छटा से, कमल दल से बिखेरती हास-मुस्कान की किरण कणिकाओं से, उन नवानुरागिणी बालाओं का स्नेह-सत्कार किया। फिर अनुराग-फाग मचा, रंगीली होली हुई।

कुछ समय बाद सब फिर उस बेसुध रंगरली से जगीं, उस (उन) प्रेष्ठ युगल को चौकियों पर ला बिठाया। आप सभी इधर-उधर आगे-पीछे, उठ-बैठ गईं। चौकियों के आसपास खड़े दो कदली स्तम्भों से लग कर कुछ सखियाँ खड़ी हो गईं। कुछ चारों ओर के विटपों के सहारे जा खड़ी हुईं, कुछ पुष्प स्तबकों के आस-पास जा बैठीं। विविध महक झकोरों से वह स्थली उन सबमें नवीन-संचार करने लगी।

सहसा ही पास खड़ी उन दो-चार सखियों ने, जाने क्या किया कि चौकियों के ऊपर आच्छादित सघन पुष्प-पल्लव खुल गए और उनसे अबीर गुलाल बरसने लगा, मानों वे नव विकसित पुष्प अपनी पराग से उनका अभिषेक कर रहे हों। पुष्प-कर्णिका-पराग, कुंकुम, केशर-चूर्ण और अबीर-गुलाल की बौछार होने लगी।

प्रिया जी ने दक्षिण कर में रुमाल ले, नयन ढाँप लिये और उन मत्त किशोर ने अपने कर-कमल से नयनों पर तनिक आड़ तो की पर मूंदे नहीं। दूसरे कर-सरोज से अपनी कुञ्चित केशावली झाड़ने लगे।

इतने में ही चारों ओर के पुष्प-पल्लव खुल गए। अबीर-गुलाल, कुंकुम-केशर, चोबा-चन्दन की सघन वर्षा होने लगी। उस धुँआधार में प्रिया जी पर अपना झिलमिलाता श्वेत पट डाल, उन्हें विशाल उरस्थल में समाश्रय दिया। समाश्रिता को स्नेह सम्मान प्रदान किया।

× × ×

फिर रसिक युगल सम्भले। प्रियतम उठ खड़े हुए। उनकी चपल अठखेलियाँ सवेग गतिमान हुईं। .... रसरंग माधुरी का स्वच्छन्द विलास, रसकेलि समूह का बेरोकटोक उद्दाम लास्य, नवल रस चेष्टाओं का क्षण-क्षण में नूतन विकास।

एक कुमारी ने नयी केलि का सृजन किया। कुसुम केशर करों में लिये वह श्री राधिका के समीप आई। प्रियतम तभी पास आकर बैठे थे। उस कुमारी ने प्रियाजी के एक कर कञ्ज में वह कुसुम केशर दे, उनका कर थाम, प्रिय के स्निग्ध कपोल को रञ्जित किया। चपल प्रियतम ने अति लाघवता से दोनों के कपोलों पर अपने कपोलों का रंग पोंछ दिया। पल्लव-दलों से उनके कपोलों पर रंग उंड़ेला, युगल अर्गलाओं में दोनों को बाँध पुनः-पुनः रसाभिषेक किया। सखी मण्डली में हास की धूम मच गई, परिहास वार्ताओं की बाढ़ आ गई।

× × ×

'मधु ऋतु विलास'

सूर्यास्त हो चुका था। सुरमीले वितान ने उपवन को आच्छादित कर लिया था।

रंग-बिरंगे दुकूलों से सज्जित वे किशोरियाँ। उनके मध्य में पीतपट की फहरान से और-और गात कान्ति छिटकाते, उन्मुक्त सौन्दर्य की बिखेर करते यह सौन्दर्य सुधा-निधि अब उपवन के मध्यवर्ती निकुञ्ज मन्दिर में आ गए।

प्रसून मण्डित उस निकुञ्ज में सजीव कुसुम सी ये किशोरियाँ और इनके मध्य में धूम मचाता, इनकी भाँवरें भरता वह मधुलम्पट, मत्त मधुकर।

रसोन्मादिनी किशोरी राधिका ने आज न जाने किस रसावेग में भर प्रियतम की वनमाल तोड़ दी। रस चतुर ने वही पुष्प करों में ले .... । किशोरी राधिका और किशोरिका मण्डल ने भी, न जाने कहाँ से अपने मृदुल करों में पुष्प भर लिये, मानों कुसुमाकर ने कुसुमशर सम्भाले हों। आज वे प्रियतम पर रसाक्रमण करने को कटिबद्ध हो गईं।

पुष्पों से यों रस कलह केलि करते देख, लतिकाओं ने उन पर पुष्प वर्षा की। तरुण तरु समुदाय ने अपनी मंजरियाँ इन पर न्योछावर कीं। खग समूह ने जयघोष किया।

पुष्प-बौछारों और हारों से टूटे मुक्ताओं द्वारा निकुञ्ज भूमि विलस उठी, मानों पुष्प और मुक्ताओं द्वारा इन नागरियों और रसिया नागर ने इसकी गोद भरी हो। समय की सुधि न थी। मधुऋतु विलास, मधुरिम हास-परिहास की रेला-पेली में समय खो गया था।

× × ×

'अपना रंग-अपने अंग'

समस्त रमणीयता के मूल, सम्पूर्ण कमनीयता के आधार, सौन्दर्य-सार, अभिनव किशोर ने केश संवारे, यत्र-तत्र पुष्प सजाए। वासन्ती ओढ़नी ओढ़, दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख दसनावली की दमक अरुणाधरों में यों कौंध उठी कि रसिक शेखर स्वयं ही मुग्ध हो गए। सुरंग कञ्चुकी पर जड़ाऊ काम झिलमिला उठा। तनिक गहरे पीले लहँगे में खचित स्वर्णिम-श्वेत तारों की जाली सी झमझमा उठी। मृदुल कलाइयों में जड़ाऊ कंगन, दोनों कमल करों की दो-दो अंगुलियों में पीत और अरुण मुद्रिकाएं, उनकी श्यामल आभा को पूजती सी अत्यन्त प्रफुल्ल विमल कान्ति छिटका रही थी। सुन्दर ग्रीवा में चन्द्रहार जगमगा रहा था, उनके सुअंगों की आरती सी उतारता। कटि मेखला में जटित स्वर्णिम पुष्प, कमनीय कटि में लिपटे अपनी प्रफुल्लता लुटा रहे थे। नीलारुण चरण-युगल स्वर्णिम नूपुरों की कान्ति में नहाए से, अत्यन्त मनोरमता का प्रसार कर रहे थे।

क्या जाने, क्या सोचकर, उन्होंने वहीं खड़े-खड़े एक ठुमका लगाया और वाम कर से लहंगे को तनिक फहरा और दूसरा कर-सरोज कटि पर धर, एक बार फिर दर्पण में झाँक खिलखिलाए।

× × ×

'झूम झकोर'

"फहराते पीत वसन, लहराती वन माला, प्रफुल्ल नयन-कमल, सदा विहँसते अधर दल, निर्मल कपोल सरसी, उनमें किलोल करते मकर कुण्डल, मृदुल मनोहर अंगों से सतत झरती उन्मत्तकारी सुवास ......। तुम तो स्वयं ही नित्य वसन्त हो।" किशोरी राधिका ने प्रियतम का कर कञ्ज अपने कोमल किसलय करों में ले, मुस्करा कर कहा,

रसिक किशोर हँस पड़े। कोमल करों की कमनीयता, मृदुलता को सत्कृत, पुरस्कृत कर कहा- 'और तुम, नित्य वसन्त की मदभरी झूम हो- सतत मधु लुटाती, मद बरसाती, रस छलकाती। झूमते वसन्त की मदिर झूम ! हे रस रंगिणी ! मदन तरंगिणी ! प्रियतमे ! एक बार तनिक लहरा कर, लहक कर वसन्त के अंग कानन को लहलहा दो, महका दो, झकोर-झकझोर दो।'

आज प्रिया जी वसन्त के उन्मद आह्लाद से भरी, चपल चञ्चल हो रही थीं। ईषद् हास बिखेर, झूमती सी बोलीं, "झकोरना-झकझोरना तुम्हीं को आता है। मैं भला, यह चतुराई क्या जानूँ।"

रसिक शेखर के सहज मदभरे नयनों में और मदिरा भर गई। चितवन छलक से रंगीली राधिका को सिक्त करते हुए बोले, "झकोरना- झकझोरना मुझे आता है, मान लिया; बटोरना तो तुम्हें भी आता है। चलो फिर यों सही। मैं झकझोरता हूँ, झकोरता हूँ, तुम झरते-छलकते उन मधुकणों को बटोर लो।"

× × ×

'श्याम सरोवर'

श्याम सरोवर में स्नान करतीं किशोरी राधिका ने सखियों से हँस कर कहा-

"सखियों ! तुम नित्य ही मुझ से विनोद पूर्वक कहती हो कि तू श्याम सरोवर में अवगाहन करती है, पर मैं तो तुम सभी को उसी में मज्जित होते देखती हूँ। फिर तुम मुझी से क्यों पूछती हो, छेड़ती हो ?"

सखियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं, बोलीं, "चल, मान ली तेरी बात कि तेरे संग से हमें भी श्याम सरोवर में अवगाहन का अवसर मिल जाता है, पर बात तो यह है कि हम सरोवर में स्नान करती हैं, और

तू करती भी है और कराती भी है । तुझ में वह सरोवर विविध विधियों से डुबकियाँ लगाता है, स्नान-पान करता है । .... विचित्र है वह सरोवर । कभी तो उसकी अगाधता-विशालता-सिन्धु की असीमता को भी छोटा कर देती है और कभी वह नील सुधासिन्धु- प्रीति पराजित हुआ, सिमट कर मदन सरोवर सा हिलोरें लेता अपनी पीयूष पयस्विनी में समा जाने को अधीर होता हमने देखा है । अब बता, तू क्या कहती है ।''

विकम्पित वपुषा किशोरी के परिधान करों में ही रह गए, नेत्रों में भरी रागमदिरा चितवन के मिस छलकी ।

सहसा किसी सखी ने किशोरी के करों से परिधान ले लिये और स्वयं पहनाने लगी ।

सखियाँ अब फिर चाञ्चल्य से भर पूछने लगीं- ''किशोरी तू निरुत्तर क्यों हो गई ? कुछ तो कह ।'' श्री राधिका सम्भलीं, बोलीं- ''निरुत्तर होने की तो कुछ बात नहीं है सखियों । पर तुम्हारी पहेलियाँ ही अद्‌भुत हैं । आप ही कहो, आप ही बूझो ।''

वस्त्र धारण कराती उस नवला बाला ने न जाने कैसी चितवन से किशोरी राधिका के नयनों में नयन डाल विहँस कर कहा ''निरुत्तर होने की कुछ बात नहीं ।''

सखियों ने उस नवल सुन्दरी बाला को आपादमस्तक निहारा और वे रस प्रवीणा किशोरियाँ सब समझ गईं और परिधान परिवेष्टन में स्वयं परिवेष्टित उन रसिया प्रियतम को अवलोक करतल ध्वनि पूर्वक खिलखिला दीं । .... सखियों ने हँस कर कहा- ''कह किशोरी ! हम सच्ची रही न ?''

किशोरी राधिका ने कुछ कहना चाहा, पर वाणी अधरों से बाहर न आई । उत्तर दिया उन सुजान सुन्दर ने-

''तुम सचमुच, सर्वथा, सच्ची हो । सरोवर सरिता की हर सुधा लहरी में अवगाहन करता है, हर मधुर हिलोर में मज्जित होता है, हर वीचि की शीतलता का पान करता है । तुम्हारा सरोवर उन्हीं से तरल, मधुर, सरस, सुखद है ।''

अब सखियाँ निरुत्तर थीं और रसालया किशोरी के छेड़भरे नयन बोल रहे थे । प्रश्न पूछ रहे थे ।

× × ×

दुलार दृष्टि

अब प्रियाजी भी उठीं और प्रियतम के दक्षिण स्कन्ध पर कमल कोमल कर धर आ खड़ी हुईं। उनके विशाल कजरारे नयनों से दुलारामृत उमड़-उमड़ कर उन्हें (सखियों को) प्लावित करने लगा। मणियों के मन्द-मन्द प्रकाश में सब स्पष्ट ही गोचर हो रहा था।

कैसी विचित्र बात हुई। जहाँ ये दोनों विराजित थे, उसी के पास की एक श्यामल शिला में तनिक कम्पन हुआ। वह तनिक खिसकी और फिर ठहर गई। रन्ध्र में से पीत मणियों का उजला प्रकाश वहाँ फैल गया। प्रिया-प्रियतम ने मुड़ कर देखा, क्षण भर को वे बालाएँ भी विस्मित सी हो गईं और फिर वे सब उसी पहले वाली शिला पर विराजित हो गईं अपने अनुरागी प्रेष्ठ-युगल के संग।

'निधिनिर्णय

नेह पोषिता श्रीललिता नेह-निर्झरिणी श्रीराधिका से लगी, लाड़ में ढुरकी-ढुरकी सी यों ही बैठी रही। और लो, किसी की परिहास झंकृति लहरान्वित हुई "निधि निर्णय की इस सुरस-सीमा में किसी और को भी प्रवेश पाने की अनुमति है या नहीं ?"

और तभी लता-डारों को सरकाते, वृक्ष शाखाओं को उठाते वे अनुराग-निधि प्रियतम आते दृष्टिगोचर हुए। उनकी कुञ्चित अलकावली बिथुरी थी, उसमें कहीं-कहीं श्वेत और पीत पुष्प उलझे थे। मोर पिच्छ ढुरक कर उन पुष्पों में उलझ गया था। उनके सुनील विशाल वक्षस्थल पर पचरंग प्रसून मालिका की छटा अद्भुत थी। श्वेतमुक्तादाम में नील झलक और उसमें कहीं-कहीं दमकती रंगीन छटा और भी मनमुग्धकर थी। कुण्डलों की झिलमिल कपोल सरसी में डुबकियाँ लगाती, न जाने, क्या कह रही थी। उन्नत अंस द्वय पर मौज से, झूलता पीत पट, सान्निध्य लालसा का संचार करता, अपनी उत्फुल्लता लुटा रहा था। कभी-कभी होने वाला आभरण नाद, मानों उस अनुपम सौन्दर्य-माधुर्य का प्रशस्ति गान कर रहा था।

प्रिया जी के विस्मय एवं आह्लाद से परिपूरित अनियारे नयन उस छवि मकरन्द पर विमोहित भ्रमर से एकटक रह गए पर उन रसिक सुन्दर की पुनः गुञ्जित हास झंकृति ने उन्हें सचेत किया।

× × ×

वर्षा का दृश्य

उस समय की वह उन्मुक्त शोभा । भीगे वस्त्रों में से झलकती, छलकती प्रिया की वह रसभीजी अंग कान्ति ! मदमत्त प्रियतम की रसलुभायी, सरसायी वह मदिर अवलोकन ! उनके गीले पीत पट में से झाँकती–झलकती वह श्यामल छटा !

उन्होंने अपना पीत पट उतार, प्रिया के श्रवणों में धीरे से कुछ कहा । प्रिया की वह अनङ्गजयी दृग–भंगिमा ! उनकी ओढ़नी उतार, रसीले कुँवर ने अपने ऊपर ही निचोड़ ली । प्रिया जी ने नयन तरेर उन्हें रोका, पर, अधरों पर मचल कर आती मुस्कान थामे न थमी । उन्होंने दोनों भुजायें उठा, प्रियतम की भुजा पकड़ अरुणाम्बर छीनना चाहा, पर इतने में ही एक नवल सृष्टि हो गयी । नव वयस भूषित उनकी वह उकसती, उभरती अंगश्री और उस श्री मद से मत्त वे मतवारे किशोर !

वर्षा का वेग बढ़ता जा रहा था । अब किसी के आने की आशंका न थी और उस कुसुम कक्ष में अनवरत रसझरी को आज विराम न था । प्रिया के अंग–अंग का सिञ्चन करती वह सुरस झरी आज अघा न रही थी ।

सुरस वर्षा से हार, सलिल वर्षा अब ठहर गयी ।

× × ×

वसन्त शोभा

यह लो, लता विटप ने उन पर प्रसून बरसाए, चपल समीर झकोरों ने उन्हें झकझोर कर चैतन्य किया । दोनों सुधि में आए, परस्पर अवलोकन पूर्वक मुस्करा दिये । (अञ्जन रेख, तांबोल रञ्जना, दलित पुष्प मालाओं के .... चन्दन और सिन्दूर के अवशेष ।)

क्या पता यह वसन्तोन्माद था । कौन जाने, यह होली–फाग की भूमिका थी । जो भी हो, जब सखियों ने निकुञ्जान्तर्गत पग धरे तो वे खिलखिला दीं ।

करों में वाद्य लिये, वे गा उठीं–

"कुसुमाकर की खुमारी, रस रंग भरी गारी ।"

वाद्यों की सुमधुर ध्वनि में उनके कल कण्ठ की स्वर झंकार और चपल प्रियतम का उस गान में योगदान । अहा ! मधुर,मधुर, मधुर, सब मधुर सिमट कर इक ठौर हो गए । गान की तान तरंगे, उर–अन्तर की नवल उमंगें ।

लो, पीछे के झुरमुट से निकल, कुछ सखियों ने सुरंग पिचकारियाँ छोड़ दीं। कुछ ने गुलाल-अबीर की वर्षा कर दी। किसी ने सुगन्धित द्रव्य छिड़क दिये। रंग-गुलाल की उस धूंधर में, इन रसिया किशोर ने कैसे-कैसे छकाया, छेड़ा, मज्जित किया, रंजित किया- यह वही जानें। पर हाँ, इस धूम ने प्रियाजी को चैतन्य कर दिया। वे अब सजग हो झपट कर उठीं और पार्श्व में खड़ी एक सखी के कर से पिचकारी छीन पहिले उसी को रञ्जित किया। दूसरी की कमोरी में से कुमकुम केशर चूर्ण मुट्ठी में भर प्रियतम पर फेंका। बस अब तो रसरंग रार, अनङ्गरार, उमंगरार, रार और रोर। आज कोई दल न था। सब स्वतन्त्र थीं। उन्मुक्त रंग बौछार स्वच्छन्द रसविहार।

× × ×

झाँकियाँ (सरस लीलाएँ)

आँख मिचौनी का एक दृश्य

प्रणयिनी राधिका, सखी समुदाय मध्य सकुचाई सी रूप लुभायी सी खड़ी थी किसी सखी के स्कन्ध पर दायाँ कर कमल धरे। वाम कर-सरोज कमनीय कटि पर धरे, उनकी बलखायी सी वह अपार शोभा राशि। लहलहाते पुष्प समूह में घिरी अद्भुत सौन्दर्य सम्पन्न सद्योत्फुल्ल कमलिनी सी उन मधुमयी, मदिरामयी नवल नागरी ने उन नित्य रसातुर नवल किशोर को अनायास ही झनझना दिया। उनके रागरसाम्बुधि उर अन्तर को मथित कर डाला, पर रसलालसा वेग की सबल झकोरों ने उन्हें स्तब्ध नहीं होने दिया। वे द्रुतगति से बढ़े और प्रिया के पीछे खड़े हो उनके नयन मूँद लिये अपने कोमल कर पल्लवों से। उनका शीश अपने (वक्षस्थल) से सटा, उस पर चिबुक धर धीमे स्वर में गुनगुनाया-

'मन्मथ विभव सँकेलैं, आंख मिचौनी खेलैं।'

गान उनके मधुराधरों से ही निसृत नहीं था, अपितु राग की तान तरंगे उनके उरस्थल से भी प्रवाहित हो-होकर रस-भीजी किशोरी के अंग-प्रत्यंग को और-और मज्जित-पुलकित कर रही थीं। सखियाँ उस मधुरिम दृश्य में पग रही थीं। उनके नयन-मीन उस रूप-रसधारा में कल्लोलित थे। भाँति-भाँति से प्रिया की रससिञ्चना करते हुए, रस संचरणशील उन सुकुमार सुन्दर ने अब अपने कराम्भोज युगल उनके प्रवाल नयनों पर से हटाए। उनका मुख अपनी ओर कर उनके नयनों में अपने

नयन उलझा, मधुरिम हास बिखेरते हुए कौतुकी प्रियतम ने उन्हें गुदगुदा दिया ।

युगल का पारस्परिक वार्तालाप

धूप छाया की श्यामलोज्ज्वल छटा सेवित, द्रुमाच्छादित निभृत निकुञ्ज में विराजित श्यामल सुन्दर किशोर ने शीतल बयार के झोंकों से रोमाञ्चितवपुषा प्राण-प्रेयसी, रूप राशि किशोरी राधिका को अपनी मृदुल कोमल कमली में लपेटते हुए, किसी अजस्र रस-प्रवाह से उन्हें सिञ्चित कर, झूमते हुए कहा-

'प्रिये ! एक बात पूछूँ ? बताओगी ? सच-सच बताना।'

आज नवेली राधिका न जाने किस रंग-तरंग में थीं । हँस कर, बलखाती-इठलाती बोलीं-

'सच पूछोगे तो सच बता दूँगी, नहीं तो .... ।' क्या पता क्या सोच कर वे चुप हो गयीं और कमली में मचलते रस लम्पट किशोर के चपल कर कञ्ज को अपने दोनों स्निग्ध कर-कमलों में बाँध, वह पुलक उठीं । रसिक शिरमौर ने सलोल चितवन से कुछ सरस संकेत व्यञ्जित कर, उनकी पुलकन में और-और मदमयता का संचार कर दिया । लगते-लिपटते बहुत कुछ बिखेरते-बटोरते, अपनी उस विहँसन में कोटि-कोटि मदन की विमुग्धता लिये बोले-

'नहीं तो .... नहीं तो मैं ...... नहीं .... नहीं तो तुम झूठ बोल दोगी । चलो, झूठ ही बोलो सही ।'

प्रियाजी की मुग्धता में नवल रस का संचार हुआ । उभय कर मध्य बद्ध कर-कञ्ज पर अपनी सुकोमल उँगलियों से कुछ लिखती सी मृदु मुस्कान से प्रियतम को और-और मुग्ध करती सी बोलीं-

'झूठ बोलना भला मैं जानती हूँ ? इस कला में भी तुम्हीं प्रवीण हो । चलो पूछो, देखूँ, क्या पूछते हो ।'

कोमल करजावली की थिरकन से उमगते रसावेग ने रसमज्जित सुकुमार सुन्दर को, क्या जाने कैसी-कैसी रसाविष्टता में पाग दिया । उस रसावेश में लहराते से बोले-

'सच पूछूँ ? सच-सच बताना पड़ेगा, नहीं तो मैं ......' बात अधूरी रही । रस-पगी रसीली राधिका बीच में ही कह उठीं,

'पूछो तो, फिर कुछ कहना ।'

कमली में लिपटी, अधलेटी प्राण-प्रियतमा की उन्मुक्त रसवर्षिणी उस मोहक छटा से और चपल हुए चितचोर प्रियतम बोले-

'अच्छा, तो बताओ, तुम सबसे अधिक किस से ...' और वे, उस करबद्ध कर कञ्ज से किसी नवल रस चेष्टा द्वारा पुलकितांगिनी प्रियतमा को पुलकाते हुए, उनके मदिर नयनों में झाँक, चुप हो गए।

आज श्री राधिका भी कुछ चपल थीं। क्षण भर में ही सम्भल, मोहक हास बिखेरती हुई बोलीं-

'किससे क्या ?'

प्रियतम भी खिलखिलाए, बोले-

'क्या'- मैं बता देता हूँ पर फिर 'क्यों' तुम्हें बताना पड़ेगा। मैं पूछ रहा हूँ कि तुम्हें सबसे अधिक किससे प्यार है ?

श्री राधिका की हास ध्वनि उस स्थली में झंकृत हो उठी, "बस यही बात ? सबसे अधिक प्यार मुझे अपनी प्यारी सखियों से है। अब 'क्यों' भी पूछोगे क्या ?"

नागर चूड़ामणि उनकी हास झंकार से और अधिक उमग उठे, बोले-

"हाँ, 'क्यों' तो बताना ही पड़ेगा। तुमने सच तो बोला पर सच, सच नहीं।"

किशोरी की हास छटा में सरस गाम्भीर्य का उन्मेष हुआ। उन्होंने मुखचन्द्र कमली में छिपा लिया और धीमे स्वर में बोलीं-

'मेरे प्यार से प्यार है उन्हें,
मेरे प्यार पर प्यार है उनका,
और मेरे प्यार को प्यार है उनसे।'

फिर उनसे अधिक और किससे प्यार होगा मुझे ? प्यार के वह सिन्धु अब और उमगे ....।

सखियों की आवनि छटा

मुरली-रव विनोदी का रव प्रवाह धावमान हो पहुँच गया उस रव की पिपासु इन बल्लवी-वृन्द के कर्ण कुहरों में। वे उन्मादिनी हो अपने भवनों से भाग चलीं देह गेहादि सभी शृंखलाओं को तोड़-फोड़ कर।

उन्हें कुछ पता न था- वे कहाँ जा रही हैं- क्यों जा रही हैं- किस पथ से जा रही हैं। उस रव-रज्जू से बँधी वे खिंची चली जा रही थीं।

उनकी कटि किंकिणियों का मधुर नाद, उनकी पायलों की छमछम झंकार, उस वंशी-रव की अनुगामिनी थी। उनके स्वर्ण कुण्डल झूम रहे थे, कण्ठहार झूल रहे थे। उनके कर-कंकण अपनी मन्द-मन्द झंकृति से अपने उल्लास को प्रकट कर रहे थे। उनके रेशमी दुकूल शीतल मन्द समीर में लहरा रहे थे। उनके कबरी भार खुल गए थे, उनसे फूल झर रहे थे। मुख पर आकर कोई लट, उनकी व्यग्र मधुरिमा का पान कर रही थी।

उनकी वह शोभा अवलोकनीय थी।

इधर वंशी के रन्ध्रों में अपने प्यार का मन्त्र भर यह रसीले प्रीतम, उस आमन्त्रण राग धारा को बहाए जा रहे थे। इस मदिर मधुर-स्वर लहरी में उनके हृदय की तरलता ही प्रवहमान हो रही थी। उनके उर प्रान्त में सरस उमंगें तरंगित हो रही थीं। उनका सहज अनुरागी हृदय अब अनुराग भार को भीतर ही संजो कर न रख सका। इस रव धारा में हिलोरें लेता इनकी प्रेयसियों के उर-अन्तर को सींचने लगा। उनके नयनों में अभिनव मद की अरुणिमा छलक रही थी। बंक ग्रीवा किसी मधुर प्रणय भार को वहन करने में असमर्थ हो मानों किसी प्रेयसी के स्कन्ध का सहारा लेना चाहती थी। उनका स्पन्दित वक्ष किसी की धड़कती उरस्थली में विश्राम पाना चाहता था। वे रस बरसाते से खड़े थे और उनकी यह प्रेयसियाँ रस में भीगी सी भागी चली आ रही थीं। अब वे समीप आ गईं। अब वंशी रव बन्द हो गया, पर कंकण-किंकिणी और पग नूपुरों की सरस झंकार तीव्रतर हो गई। प्रियतम ने देखा उन प्रेमोन्मादिनी-मदमत्त बालाओं को। वे अपनी बेसुधि में भागती हुई आ रही थीं। उनके उरों का स्पन्दन पा, कण्ठ में झूमते हार और-और इठला रहे थे।

× × ×

उत्फुल्ल आश्चर्य

कुछ ही क्षणों में रस बरसाते, मद-बौछार करते वह रसिक चूड़ामणि उसी फुलवारी में उनके संग-संग आ गए।

ओह आश्चर्य ! उत्फुल्ल आश्चर्य ! ज्यों ही उन्होंने उस बिछे वस्त्र पर पग धर आसीन होना चाहा कि वे दोनों चौंक गए। हर पौधे में से गान झंकृति फूट पड़ी। बसन्त राग छा गया और उस स्वर झंकार के साथ-साथ उन नव किशोरिकाओं की मधुर ध्वनि भी लहरान्वित हुई। एक ही आलाप ले वे सब मौन हो गईं, पर वाद्य झंकार लहराती ही रही।

अपने रस-विनोदी युगल को यों चकित-विस्मित देख, वह खिलखिला दीं। वह खिलखिलाहट भी मानों उसी राग लहरी की झंकार थी।

नवल कौतुकी, कौतुक-प्रिय, प्रिया-प्रियतम यह तो समझ गए कि इन्होंने स्वर मिला कर वाद्य कहीं छिपाए हैं पर यह न जान पाए कि कहाँ। वे झुक-झुक कर झाँकने लगे और यह लो, उन चित्रित, चित्रांकित वाद्यों को पहचान लिया उन्होंने। (सर्व कला प्रवीणा कुमारिकाओं ने वाद्यों का स्वर सन्धान कर, उन पर रंग-बिरंगे पुष्प चित्र बनाए थे, जो वास्तविक से जान पड़ते थे। उन्हें पुष्प-पौधों के मध्य सज्जित किया हुआ था)

फिर मदिर-मधुर हास झंकार, उस स्वर लहरी का अभिनन्दन करती गूँज उठी।

शोभा-माधुरी

मन्द स्मित, मधुर गन्ध, मदिर चितवन, सुधासिक्त अंग भंगिमा, अनङ्ग-रङ्ग-रञ्जित वक्ष प्रान्त, नीलमणि की द्युति को फीका करती श्यामल सुअंग-प्रभा, मणि-स्तम्भ-विनिन्दित सुपुष्ट बाहु-युगल, स्निग्ध जाह्नु पर नीलारुण चरण धरे उन त्रिभंग सुन्दर किशोर की मधुरिम छटा कुछ और ही है। नन्द-वाटिका की मध्य निकुञ्ज में लता द्वार के समीप की सुचिक्कण छोटी शिला पर राजित वे सर्वांग सुन्दर नन्द कुँवर किसी अद्भुत पर मुग्ध-मधुर तन्मयता में खोए-खोए से अपरिसीम लावण्य-लहरियों का प्रसार कर रहे हैं। शोभा-माधुरी की वह उच्छलित तरंग मालाएं ! सौन्दर्य-स्रोतस्विनी की उन्मुक्त धाराओं का वह सवेग प्रवाह ! वह स्वच्छन्द गति !

x x x

पर्याप्त समय पश्चात् जब वह रसाविष्ट युगल संभले, तो

वंशी प्रियतम के कर से ले, प्रिया किशोरी ने उनके अधरों पर धरते-धरते हँस कर अपने अधरों पर धर ली । ओह ! स्वर सरिता का वह समधुर प्रवाह ! प्रियतम भी ठगे से रह गए । उस शीतल स्पर्श को पा, वे चारों किशोरियाँ सजग हो उठीं और भीतर कुञ्ज में चली आईं, प्रिया के आमन्त्रण स्वर को सुन समझ कर ।

आज वह चहचहाईं नहीं, खिलखिलाईं नहीं । उनके उमगते उर-अन्तर रागरस सिक्त हुए ...... । सहसा ही उन सबने अपने-अपने संग उन अनुरागी प्राणप्रेष्ठ को पाया । सुरस चेष्टाओं के मेले में खोई-खोई सी, पर प्रिय अंक में समोई-सरसाई सी वह .... !

× × ×

शोभा-शृङ्गार

प्रेयसी मणि श्री राधिका के अधरों पर चपल मुस्कान, अनियारे नयनों में मदिर हास, मृदुल अंगों में मृदु पुलकावली की पुलकती शोभा, रह-रह कर सिहरते कोमल-वपु की प्रियमनहारिणी छटा माधुरी ! वक्षोज मण्डल पर दलित सुमन-माल की बलखाई सी- शिथिल करधनी की लटकीली हीरक द्युति, उनके सिन्दूरी लहंगे पर यों फब रही थी मानों अरुणोदय की सुन्दर लालिमा में उदय होते भानुमण्डल की जगमग-जगमग किरण मालिकाओं की बिखरती स्वर्णिम आभा ! हेमोज्ज्वल कान्ति ! किञ्जल्क ओढ़नी पर चन्द्रक एवं स्वर्णिम बूटियाँ ! हरित कञ्चुकी पर झिलमिल-झिलमिल जाल ! अधखुली वेणी ! चन्द्राभ आनन पर झूम कर आती कोई-कोई अलक लट ! शीश पर से खिसकती स्वर्ण-पट्टिका के नगों की द्युतित छटा ! आँचल खिसक कर स्कन्ध पर आ, पता नहीं उन कमनीय केलि कलाविद् रसिक नागर को .....

× × ×

उनका केसरी पीत पट रजत तारों से झिलमिलाता पर्यङ्क पर से लटक भूमि को छू रहा था । लाल कोर युत धोती पर शिथिलित मणिमय किंकिणी की कभी कभी रुनझुन ध्वनि, उनके कमल-कोमल कलेवर में होने वाली फड़कन का परिचय दे रही थी । उनकी श्लथ वनमाल एक ओर धरी थी, कमल माल एक ओर को ढुरक गई थी । उनकी बिथुरी-बिथुरी घुंघराली अलकावली, कर्णकुण्डलों की दमक को निखारती-पखारती सी, उनके रसोद्वेलित उर-अन्तर की परिचायक थी । आज स्वर्ण-

कंगनों का स्थान प्रिया की जगमग पहूँची ने ले लिया था और उनके स्वर्ण कंगन उनकी चूड़ियों में दमक रहे थे। इनका आधा-आधा सा तिलक और उनका अधपोंछा सा सिन्दूर !

× × ×

रूप माधुरी

नव किशोरियों ने रस रञ्जित युगल को घनी वृक्ष छाया में सज्जित मनोमुग्धकारी पर्यंक पर ला बिठाया। सामने दो विशाल दर्पण लगे थे। .... दोनों दर्पणों में अपनी उनींदी छवि का प्रतिबिम्ब देख उनके रतिरसरंजित मृदुल अधरों पर अभिनव मुस्कान माधुरी छिटक गई। ...... इधर-उधर खड़ी सखियों की ओर देखने लगे, पर वह विस्मित रह गए। सखियाँ वहाँ नहीं थीं पर पर्यंक पर एक ओर नव विकसित पुष्प, पुष्पाभरण और कुछ मुक्ताहार धरे थे। ....

× × ×

पीछे के लता जाल में छिपी सखियाँ दर्पण में उनकी वह चपल चेष्टाएँ, लोल मुख मुद्राएँ, सरस भंगिमाएँ अवलोकती रहीं। वे स्वयं किसी नव रस कामना से भर बेसुध सी होने लगीं। अब उनके नयन मुँद गए। उस सरस बेसुधि की अगाधता में उतर, वे रसमग्न हो गईं। उस रसमग्नता में उन्होंने प्रियतम को अपने समीप पाया। अनेक कुञ्ज निकुञ्जें नूतन रसोत्सव से उद्भासित हो उठीं।

इधर यह युगल रसमत्त किसी अत्यन्त गम्भीर विलास में रत थे।

× × ×

अब उस निकुञ्ज महल में प्रकाश होने लगा। उस मन्द प्रकाश में दोनों की वह अस्त व्यस्त मधुरिमा, अनस्थानीय वस्त्राभरण, मृदुल कलेवरों पर ....

सूर्य किरणों ने इन्हें सजग कर दिया था। सूर्य प्रभा ने अपनी उष्ण द्युतिमाल युगल रसिक के छविमान श्री अंगों पर चढ़ा दी।

उधर, वे नव किशोरियाँ भी प्रिय से रस संपत्ति पा, उसे समेट, अपने उर-अन्तर में भर अब तनिक सचेत हुईं .... उन्होंने अपने को निकुञ्ज मन्दिर के पिछले भाग में एकत्रित पाया। वे विस्मित सी, चकित सी थीं।

फिर उन्होंने देखा, उनके वे रसीले-रंगीले आराध्य युगल मुस्कराते, अभिनव छवि लुटाते पिछले द्वार से चले आ रहे हैं। श्री राधा अब तक पूरी तरह सम्भल गई थीं। उन्होंने सखियों की यह रस-विमुग्ध दशा देखी। वे मुस्कराईं, बोलीं- ''आज किस रसासव में छकी तुम यों बौराई सी बैठी हो ?''

अब सखियाँ भी सजग हुईं, बोलीं- जिसमें नित्य पगी रह कर भी तू नित्य तृषातुर बनी रहती है, उसी पीयूष धारा की कोई बूँद छलक कर हम तक भी आ गई। उसी से यों प्रफुल्लित हो रही हैं हम। सच सच कह तूने नव निकुञ्ज मन्दिर के मुकुरद्वय में सुधाब्धि की वह उच्छलित श्री देखी थी न ! अपनी छवि तरंगिणी को अंक में लिये जब वह किसी अदम्य रसालोड़न से अधीर हुआ उत्तुंग तरंगें ले रहा था। बस उसी समय कोई एक सरस कणिका छलक कर हम तक आ गई।''

प्रियाजी के अधरों पर संकोचपूर्ण मधुर मुस्कान छिटक गई और रस प्रवाही प्रियतम खिलखिला दिये। बोले -

''कणिका ने सम्पूर्णता का, बिन्दु ने सिन्धु का .... फिर भी वह बिन्दु 'बिन्दु' ही रही ! वह कणिका, 'कणिका' ही कहलाई। सिन्धु ही तुम्हारा नहीं, सरिता भी तुम्हारी ही है। तुम्हारे ही अधीन, तुम्हारे संकेतों के अनुवर्ती हैं यह सरिता सिन्धु।''

सखियाँ उस रसवार्ता में एक बार फिर अपनी सुध-बुध भूल पुलक उठीं।

अब सब उठ खड़ी हुईं। प्रिया-प्रियतम को अपने मध्य में लिये चल पड़ीं, वन से भवनों की ओर।

रस .... रस .... रस .... रस ही रस।

सिद्धान्त

प्रेम में नेम नहीं रहता परन्तु नेम की भित्ति पर ही प्रेम टिकता है। वहां नियम का उल्लंघन कदापि नहीं होता परन्तु नियम की मर्यादा का स्मरण नहीं रहता। इसका कारण है, प्रेम मन का सहज द्रवण है तथा हृदय का स्वतंत्र समर्पण। अत: प्रेम का उच्चतम स्वरूप अपने प्रेमास्पद के प्रति हृदय के सहज और स्वाभाविक सतत प्रवाह में ही झलकता है, जहां रसका अगाध समुद्र ठाठें मार रहा हो, प्रेम का उच्चादर्श परिलक्षित हो रहा है, जहां 'तत्सुखे सुखित्वं' का परिपक्व भाव झलक रहा है- वहां सिद्धान्तों की मर्यादा

का परिपालन न होने पर भी उल्लंघन अथवा अतिक्रमण कभी नहीं होता । रस समुद्र तक पहुंचने में सिद्धान्तों की मर्यादा बनी रहती है परन्तु उस माधुर्याम्बुधि की तरलता में मग्न होने के पश्चात् सिद्धान्तों की फांस चुभने लगती है । वहां रस ही रस है- रस ही रस की निमग्नता में सुधि ही किसे रहती है ।

महान् रसिक एक मौलिक रस-सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य तथा पूर्वाचार्यों की परिपाटी में किञ्चित् अवरोध प्राप्त रस धारा की आगे की कड़ी में आ जुड़े परम सिद्ध स्वरूप सन्त, श्री कृष्ण की अनन्या सखि-वृन्द में एक आधार स्तम्भ पू० श्रीसखा जी, जिनकी धारणा-शैली एक नवीनता लेकर आज के रसिकों के लिये आलोक स्तम्भ बनी दीख रही है। उसी का संक्षिप्त परिचय हम नीचे उद्धृत करने जा रहे हैं :-

१. प्रिया-प्रियतम के विषय में ब्रज तथा वृन्दावन भाव वालों ने कहीं श्याम सुन्दर को विशेषता दी है तथा कहीं प्रिया जी को, परन्तु सखा जी की धारणा में दोनों को ही समतूल दर्शाया गया है । लीला, समय, प्रसङ्ग, रसोत्कर्ष हेतु प्रिया-प्रियतम दोनों को ही विशेषता दी गई है ।

२. अनेक रसिकों ने मुग्धता में ही अपनी भाव लहरी को सीमित कर दिया है, लगता है उनकी धारणा का केन्द्र, मात्र मुग्धता के शिखर पर जा सीमित हो जाता है तथा रसास्वादन का सीमित सा लक्ष्य, सायुज्य की स्थिति की सी झलक में समाप्त हो जाता है, परन्तु सखा जी की भाव लहरियां माधुर्याम्बुधि की अतलता में निमज्जित होकर भी रसकी लहरी में, झकोरें लेती हैं तथा परिणत होती हैं, पुनः रस में मत्त हो जाती हैं- वह मुग्धता में सीमित नहीं होतीं रसावर्तों में पुनः पुनः सजग और निमज्जित होने लगती हैं ।

३. प्रिया जी के लिये जिस रस की प्राप्ति सदा-सर्वदा बनी रहती है, उनकी काय-व्यूह-स्वरूपा इन गोपाङ्गनाओं को भी उस रसका आस्वादन मिलता है । यदि दूसरों को खाते देख तृप्ति हो जाया करती तो लोग आहार ग्रहण ही क्यों करते ? रस-समुद्र में जहां प्रिया जी सदा सर्वदा आस्वादन रत रहती है, सखी वृन्द को भी उस आस्वादन का सौभाग्य प्राप्त होता है, इसमें प्रियाजी की अनुकम्पा ही मुख्य हेतु बनती है । (पृष्ठ १८६-८७ का रूप माधुरी वाला प्रसङ्ग देखें) अन्य आचार्य महानुभावों की भांति श्री चन्द्रावली जी को श्री सखा जी ने अनुकूल प्रेयसी के रूप में ही प्रधानता दी है । वहां परस्पर विरोध थोड़े ही है- यह भाव तो उस जगत में प्रवेश कर ही नहीं पाता ।

रसके अखण्ड तथा अगाध समुद्र में सिद्धान्तों का अलग से न तो कोई महत्व ही है और न ही अनिवार्यता। रस-माधुरी का वर्णन करते-करते, कहीं-कहीं इस प्रकार के प्रसङ्ग अवश्य आए हैं जिन्हें सिद्धान्तों के वृत्त में रखा जा सकता है- उन्हें सर्वथा रस सिद्धान्त ही कहना होगा। उनका वर्णन संक्षेप में हम उद्धृत कर रहे हैं :-

लीलाओं के अन्तर्गत रस सिद्धान्त

रवितनया पुलिने मुरलीवादन विभो।
कुरुते मन्त्र मुग्धं जड़चेतन सर्वान्॥

श्री कृष्ण की सभी क्रीड़ाऐं, अनोखी, अद्भुत, अलौकिक और आश्चर्य में आप्लावित कर देने वाली हैं। इनमें आप्लावित होना ही अमृतपान करके अमर हो जाना है। अखिल ब्रह्माण्ड का अखिल आनन्द इस अखिल सौन्दर्य निधि के अनवरत लीला पान करने में है। वे लोग धन्य हैं जो अत्यन्त आतुरतापूर्वक इनकी लीला माधुरी का आस्वादन करते हैं। चलो, इन्हीं माधुर्य कोष, लावण्य-सुधानिधि की परम पावन लीलाओं का गान, श्रवण और कीर्तन करें।

× × ×

श्रीकृष्ण तो साक्षात् प्रेम हैं- प्रेमी भी वास्तव में वही हैं, प्रियतम तो हैं ही। उनके अतिरिक्त प्रेम कहीं पूर्णता पा नहीं सकता।

× × ×

आर्य पथ, लाज, बड़ाई और कुल की मर्यादा-यह सब तभी तक सूझती हैं, जब तक उस नील माधुरी का आस्वादन नहीं किया। जहाँ उस रस का तनिक भी पान कर लिया, बस, वहीं उसी क्षण यह सब पलायन कर जाते हैं। सच ही तो है, एक म्यान में दो खड्ग कैसे रहें। यह लज्जा-संकोच, मान-मर्यादा छोड़ने नहीं पड़ते, स्वयं ही छूट जाते हैं। इनसे छूट कर एक मात्र उन सर्वस्व के अनुराग पाश में बंध जाना ही मोक्ष है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है बन्धन ही है।

× × ×

कृष्ण किशोर की सभी बातें अटपटी हैं। इनकी सभी बातों में रस है। इसी से इन्हें आचार्यों ने 'रसराज' कहा है। ब्रज की सभी लीलाऐं अत्यन्त रसीली हैं। व्रज में नित्य नव विहार, नव क्रीड़ा, नव आनन्द हिलोरें लेते रहते हैं। व्रज तो आज भी वही है। वह दिव्य लीलाऐं

भी होती हैं, पर उन्हें अवलोकने का सौभाग्य किसी-किसी महा-सौभाग्यशाली का ही होता है ।

× × ×

यह प्रेम जो भी करवा दे सो थोड़ा है । कहां तो भला यह त्रिभुवनपति और कहां ब्रज की यह आभीर बालाऐं, अनपढ़ और गंवार; पर, प्रेम की महिमा तो देखो कि इन महासौभाग्यशालिनी महिमामयी, व्रज ग्वालिनों ने उस त्रिगुणातीत अविनाशी भगवान को अपने संकेतों पर नचाया। उसे, जो जी में आया सुनाया, वेद आदि ग्रन्थ और ब्रह्मज्ञानी-मुनीश्वर जिनसे अनुनय-विनय करते थक गये, केवल तनिक सी झांकी पाने के लिये, वही ब्रह्माण्डनायक इन अपनी प्रिया गोपीजनों की एक झलक देखने के लिये लालायित रहा करता है; जिसकी स्तुति में सभी शास्त्र, पुराण और उपनिषद् रंगे हुए हैं, वेदज्ञ ऋषि भी जिसके गुणानुवाद गाते थकते नहीं, उसी सर्वेश्वर को यह अहीर कुमारियाँ 'चोर' 'ठग' 'छलिया' 'कितव' और 'कपटी' कह-कह कर पुकारती हैं, इन्हीं नामों से उसका सत्कार करती हैं।

× × ×

"सचमुच महाभागा हैं वे जन, जिन्होंने अपना चित्त जानकर या अनजान में ही इन नन्दपुत्र को सौंप दिया । बस जहां मन और चित्त पर इनका साम्राज्य हुआ कि वहां से अन्य सब कामनाऐं, कल्पनाऐं तिरोहित हो जाती हैं, या यों कहो कि इन सबका प्रवाह उस नील वारिधि की ओर अग्रसर हो जाता है । उनकी सभी वृत्तियां इन ब्रजराज कुमार की अनुगामिनी हो जाती हैं, पर ऐसा सौभाग्य अपने प्रयत्नों से, जन्म जन्म के पुण्यों से या दान तप आदि साधनों से नहीं मिलता । यह तो मिलता है केवल इन गोपीजन प्रिय और इनकी नित्य प्रेयसि श्री श्री गोपीजनों की अहैतुकी कृपा से । एक बार यह ब्रजदेवियाँ, भूल कर भी, कृपा-कटाक्ष कर दें तो यह सुर-दुर्लभ महाभाग्य उदित हो जाए । इन सबकी स्वामिनी नन्दनन्दन की अन्तरात्मा, जगदीश्वरी, श्रीश्री-राधिका रानी तो कहीं एक बार नेत्र उठा कर देख भर लें, फिर यह सौभाग्य मिलते एक क्षण का भी विलम्ब नहीं हो सकता । हम दीन हीनों की एक मात्र गति यह भानुनन्दिनी और इनकी नित्य सहचरी यह ब्रज बालाऐं ही हैं ।

× × ×

जीवन का मधुर अंश किशोरावस्था ही है और समस्त उत्तम, मधुरतम पदार्थों के एक मात्र भोक्ता यह गोपीजन प्रिय ही हैं । इसीलिये प्रेमीजनों ने जहाँ अपना कैशोर्य और उस से मधुर हुआ यौवन इन्हें विशेष रूप से समर्पित किया, वहाँ उनके आराध्य भी यह नित्य किशोर युगल सरकार ही रहे । प्रेम सदा सम आयु वालों में ही विशेष रूप से प्रस्फुटित होता है ।

× × ×

प्रिय से भी मधुर प्रिय की निरन्तर बनी रहने वाली स्मृति ही है । प्रियतम तो लीला के लिये चाहे कौतुक के कारण छोड़ भी देते हैं पर उनकी कसक भरी, वेदना भरी, मधुरिमा-मयी स्मृति तब भी साथ नहीं छोड़ती । यह भी प्रियतम के अनुपम प्यार का ही परिणाम है । वे जानते जो हैं कि मेरे बिना मेरे प्रेमी क्षण भर के लिये भी जी नहीं सकते । अतः जीने के लिये कोई न कोई आधार तो इन्हें चाहिये ही । सबसे मधुर, सबसे सरस आधार एकमात्र इनकी सुहावनी स्मृति ही है । यह करुणा करके अत्यधिक अनुराग के कारण अपनी यही मदभरी स्मृति अपने प्रेमियों को प्रदान करते हैं । इसी संजीवनी से विरहातुर प्रणय-पारखी जीते हैं ।

× × ×

प्रभु की कथा, इनका पावन चरित्र, वाणी का वशवर्ती नहीं है । यह तो इन्द्रियातीत, अनुपमेय, अनुपमान सुख है- किस सुख से उसकी तुलना करें, वहां लेखनी मूक और निस्तब्ध है । वाणी भी वहां चुप है पर हृदय का अतुल आह्लाद, इनकी लीला कथा से उत्पन्न अनिर्वचनीय उल्लास हृदय में समेटे रखना भी असम्भव सा ही है । उसे पुनः पुनः कहने में रस आता है, पर, इस रसकी अनुभूति केवल इनके निजी जनों, रस रसिकों की मण्डली में ही सम्भव है । सब इस गोपनीय रस रहस्य के अधिकारी नहीं हैं । यह अधिकार साधन-साध्य नहीं है । किसी नील गोपकुमार की अहैतुकी कृपा के अधीन हैं ।

करि हैं कृपा ब्रज जीवन नाथा

× × ×

'एकान्त और शान्ति' । एकान्त का सुख किसी की मदभरी निगाहों में उलझ जाने में है । अहा ! वह मद के प्याले सरसीले,

रसभरे, मस्ती भरे, कुटिल कटाक्ष से पूरित इन प्यालों से कैसा रस झर रहा है ! किसी के बावरे नयन उस रस को अपने में भरने को अकुला रहे हैं। यह नयन उस मधुर मिठास से भरते जा रहे हैं, पर फिर भी रिक्त हैं। और और भरे जाने की विकल कामना है। पी, पी कर पिपासा और बढ़ रही है। यह क्या हुआ ? नयन बन्द क्यों हुए जा रहे हैं ? किसी नील सुकुमार ने इनमें अपने मदभरे नयनों का इतना मद उंडेल दिया कि नयन अब उस मधुर रस से .... भारी होकर मुंद गए। पर मूंद कर चैन कहां, न खोले बनता है, न मूंदे ही।

× × ×

शान्ति हो, एकान्त हो, पर उस शान्ति-एकान्त को रंगीला-सरसीला बना देने वाले प्राणाभिराम कुसुम कोमल श्याम पास न हों तो शान्ति, एकान्त का क्या मूल्य ? एकान्त तो अन्त तक एक मात्र प्रियतम के साथ रहने पर ही सार्थक होता है।

× × ×

विकलता की डोरी उन निर्बन्ध को बांध लाती है। इसी रज्जू में बंधे यह सर्व-स्वतंत्र प्राण-जीवन नन्दनन्दन खिंचे चले आते हैं। गोपिकाओं की साधना, आराधना, पूजा-उपासना, अर्चना, वन्दना जो भी थी वह, यह प्रणय भीनी विकलता ही थी। यह केवल साधन ही नहीं है, सिद्धि भी है। स्नेह की सरल और सच्ची निशानी भी है, 'साधन सिद्धि रामपद नेहू'

× × ×

कृष्ण नाम सम मीठा आली और कछू ना।
कृष्ण चन्द्र सम आन छबीला और कहूं ना॥

कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण ! कैसा मीठा, रसीला, रंगीला नाम है। ठीक रूप के सदृश आकर्षण कारी है यह नाम। क्या कहें, रूप जैसा नाम है या नाम जैसा रूप। यह रूप ही नाम है या यह नाम ही रूप है। नाम रूप, अभिन्न हैं। नाम से रूप का और रूप से नाम का अनन्य सम्बन्ध है। नाम जपते रहो प्रेम से, हृदय के सम्पूर्ण प्यार को बटोर कर नाम लो। बिना देखे ही रूप नयनों में आप से आप ही झलकने लगेगा। यही नाम की महिमा है।

× × ×

राधा राधा राधा राधा ।
कृष्ण चन्द्र ने नित अवराधा ॥

राधा और कृष्ण, कृष्ण और राधा- एक ही बात है । दो नाम, दो वपु, पर एक प्राण, एक रुचि । बस देखने को ही दो हैं, वास्तव में एक ही हैं । एक ने ही दो होकर प्रेम रस पान और दान किया है । रसिकों को आकर्षित करने के लिये, उन्हें जीवन यापन को पाथेय देने के लिये, दोनों की केलि-क्रीड़ा नित्य निरन्तर होती रहती है । यह स्वयं रसमत्त रहते हैं और उसी रस के कण अपने जनों के लिये वितरित करते हैं ।

रसिक- रस भूषण, कमल कोमल, कन्दर्प-दर्प विभञ्जन केलि-प्रिय, कमनीय, गोप-किशोर ब्रजेन्द्र नन्दन की लीला सामग्री इस भौतिक जगत के पदार्थों से निर्मित नहीं है । इह जगत-भूत कोई भी वस्तु, पदार्थ, भाव विचार, विकार, उसकी छाया का भी स्पर्श नहीं कर सकते । उन्हीं रसीले रंगीले प्रियतम की कृपा से परिमार्जित बुद्धि विमल सरस मन और रसके पिपासु प्राण ही उसका आस्वादन कर सकते हैं ।

रस सागर की थाह लेने में आज तक कौन समर्थ हुआ है ! यों तो भक्त जन उस वारिधि में डुबकियां लगाते ही हैं पर उसमें निमज्जित होने का अधिकार केवल नारी हृदय को ही है । उसका पूर्ण उपभोग, अंग-अंग को, रोम-रोम को उस मद में सराबोर करना, बस यही गोप किशोरियां जानती हैं । यह सुख सौभाग्य उन्हीं की गुप्त प्रकट, निधि है। प्राणाधार प्रियतम को उसकी बौछारों से नित्य मदमत्त रखती हैं । इनके अवलोकन, नहीं-नहीं स्मरण से ही प्राणधन श्याम सुन्दर के नयन चञ्चल हो उठते हैं । उनमें मद भर जाता है । वह विवश हो जाते हैं उस मद को उन्हीं पर उंडेलने के लिये । मदपान का यह आदान-प्रदान, उससे विविध विकार विभंगी की मधुरिमा का विकास, विलास और फिर-फिर उसी मदिरा में छकी रहने की अधीर कामना । ओह ! कैसा है इन मदोन्मत्तों का उन्मादक संसार .... ।

× × ×

राग-अनुराग, प्यार-दुलार, स्नेह-सौहार्द, प्रीति-रीति रति-रंग, रस-रास, प्रणय-विनिमय के एकमात्र दाता, ज्ञाता और भोक्ता यह

साकार प्रेम-विग्रह प्राणाराम घनश्याम ही हैं। यह धन्यनामा ब्रज वनिताओं के प्राण सर्वस्व हैं और वे इनकी जीवन निधि। यह उनके मन प्राणों में बसते हैं और वे इनके अन्तर में रहती हैं।

× × ×

पू० बहन जी के लिये की गईं (कुछ) शुभकामनाऐं/आशीर्वाद

मिलें तुम्हें श्री कृष्ण पियारे।
सफल मनोरथ होहिं तुम्हारे॥ १९५७

अघ ओघ गए, अब नूतन मंगल।
कृष्ण कृपा-सुख पावहु अविरल॥
कृपा कोर करुणा को निर्झर।
नितपूरित नव नेह सलिल वर॥
सींचहिं हृदय वाटिका अविरल।
वनमाली श्रीकृष्ण चपल चल॥ १९६१

बरसहिं सरस श्याम घन सुन्दर।
ब्रज-रमणी-प्रिय काम पुरन्दर॥
मेटहिं ताप करहिं उर शीतल।
हुलसहिं विलसहिं ब्रज अवनी तल॥ १९६४

श्याम कथा की अविरल धारा।
करहिं निरन्तर उरसि विहारा॥
बसहिं श्याम, तन मन जिय मांहिं।
पुनि पुनि प्रणय विवश पुलकाहिं॥

देवहिं लेवहिं अमित सुख, रोम रोम रमि श्याम।
करहिं विविध विधि सांवरो, परिपूरित मनकाम॥

अब विलम्ब जनि, जिय डरहू
मिलिहैं पिय अविलम्ब।
सुफल देहिं, करिहहिं सफल,
नातो नेह कदम्ब॥

१९६७

श्याम प्रेम में पगी रहहु, लगी रहहु नित संग ।
रस मज्जित करती रहै, रस बौछार अभंग ॥
रीझि रीझि रसमय युगल, रहहिं सतत अनुकूल ।
ममता कृपा प्रसाद नित, वितरहिं मंगल मूल ॥　　१९६८

उमड़ि घुमड़ि नवनीलघन, करिहैं रस बौछार ।
सींचहिं बहुबिधि रंग सों, रस प्रवीण सुकुमार ॥
अमित रसासव की छलक, करिकै प्रणय विभोर ।
सुरत सिन्धु में पागि हैं, तन, मन प्राणनि बोर ॥　　१९७१

अनुरागी नेही युगल, सदा राखिहैं पास ।
दरस, परस बतरान सों, भरि भरि हृदय हुलास ॥　१९७२

सबहिं भांति अपनी कियो, रीझि अपनपों दीन्ह ।
अपनो पन नहिं छाड़ि हैं, जब अपनोपन कीन्ह ॥

१९७३

नवल सरस कल केलि कर पोषहिं तन-मन-प्राण ।
तोषहिं नित नव लाड़ भर, रसिया रसिक सुजान ॥

मदमाते गाते मधुर, इठलाते छवि ऐन ।
आइ कंठ भुज मेलिहैं, रसराते मदमैन ॥
१९७४

मुदित सखीजन संग लै, चलहिं प्राण प्रिय पास ।
अति सुख सों बतरावहिं करहिं विविध परिहास ॥
प्रिया दुलारहिं लाड़ सों, कर फेरहिं मुस्काहिं ।
कर मंह कर दै रसिक के हरखि निरखि पुलकाहिं ॥
रसिया अति रस सों भरे निरखि प्रिया की ओर ।
अति हित सों झकझोरहिं बोरहिं मदन हिलोर ॥
१९७८

मृणाल वल्लरी वेष्टित प्रिया-अरु पीय, रसमादक धंसे ।
नवकेलि कौतुक रस पगे संतत तुम्हारे नयन मन प्राणन बसें ॥

१९८५

सखिन सहित तुम पै सदा, दोऊ जन को अति नेह ।
सींचत हैं, सींचत रहैं अपने अमित सनेह ॥

३०.७.८७

तुम्हरे प्रति प्रीती सरस, मधुर ढुरनि लड़कानि ।
कर फेरहिं, दुलरावहिं प्रीतम प्रिया सुजान ॥

३०.७.१९९०

प्रेममयी श्री राधिका, प्रेममत्त सुकुमार ।
दुहुं मिलि तोषहिं, पोषहिं, वितरहिं प्यार दुलार ॥
प्रेमामृत सर में सदा, खिलो-पलो सरसाहु ।
प्रेम रंग रञ्जित रहहु, प्रेमहि में अवगाहु ॥

२.९.९०

सरस नेह को मेह, सिक्त करैं दिन रैन ।
पुलकावहिं हरषावहिं, कहि कहि रसमय बैन ॥
तुम्हरे उर मंह बसहिं वे, उनके उर तुव ठौर ।
तोऊ चाह बढ़ावहिं, और और पुनि और ॥
चातक मन की रटन को, नेक नहीं विश्राम ।
स्वाति बूंद रस पान करि, घटै नहिं रस काम ॥
स्वाति जलद रस बरसिकें और बढ़ावै प्यास ।
जाते सतत बनी रहै, और और की आस ॥
अपनी कीन्हीं जुगलवर, रह्यो काह अब शेष ।
रहैं, राखिहैं निकटतर, दूर नहीं लव लेष ॥
'झूलहु फूलहु भुज हिंडोर मंह' ।

१९९१

उपरोक्त परिचय से एक सत्व प्रधान, दिव्य तथा सिद्ध सन्त की जीवनी, उनकी रसपूर्ण अभिव्यक्ति, प्रिया-प्रियतम के चरणों में दृढ़ अनुराग, उनकी कृपा ममता के सरस आशीर्वाद, एक निस्पृह और मधुर रस में निमज्जित व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट हो रही है- ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि वे श्रीकृष्ण के निज परिकर हैं, उनकी हृदय सुषमा हैं उनकी सखी हैं- उनकी अत्यन्त अपनी अनन्या सखी हैं । उन्हीं के आदेश से पू० बहन जी के प्रति उनकी अगाध ममता-सरिता, प्रियतम की रसोच्छलन का रूप ले, अबाध गति से प्रवाहित होती रही है ।

❑❑❑

इक्कीस

सखाजी की रसधारा से साम्य-

प्रेम प्रवाह- श्याम से सम्बन्ध

बर्होत्तंस-विलास कुन्तल भरं माधुर्य मग्नाननम्,
प्रोन्मीलन्नवयौवनं प्रविलसद्वेणु प्रणादामृतम् ।
आपीनस्तन कुड्मलाभिरभितो गोपीभिरा राधितम्,
ज्योतिश्चेतसि नश्चकास्तु जगतामेकाभिरामाद्भुतम् ॥ ***

'श्रीकृष्ण कर्णामृत'

जिस लावण्य माधुर्य रसाम्बुधि की किसी एक तरङ्ग से तरङ्गयिगत हो कर हृदय सरसि में उत्तुङ्ग हिलोरें उठने लगती हों- अंग अंग उस अनंग माधुरी से सरसाया जाता हो, रोम रोम उस रस से आप्लावित होने को व्याकुल हो जाता हो- क्या, क्या कहें ! तन-मन किसी रस माधुरी में सराबोर हो- रस मग्न होने को व्याकुल हो रहे हों, उन श्यामच्छटा सौन्दर्य श्री से युत, नीलघन तथा उज्ज्वल रसालया प्रिया जी की रूप माधुरी के अतिरिक्त न तो कुछ सेवनीय है और न वरण करने योग्य ही । श्याम सुन्दर की सतत सन्निधि सहज प्राप्त हो रही है, उनका सामीप्य हमारे भावानुभावों को सरसा पुष्ट कर रहा है- तो किसी अन्य अथवा इतर की कल्पना कोई विज्ञजन तो अवश्य नहीं कर सकेगा ।

हां- तो श्रीकृष्ण प्रेरणा से सखा जी का योगदान प्रिया-प्रियतम की नित्य लीला के प्रत्यक्ष दर्शन/अनुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति तथा उसके आस्वादन, दर्शन के रूप में एक नए उत्साह और उमंग में भरने लगा। जहां एक ओर सरसता में भरा मन अपने आस्वादन में मग्न और मत्त रहता था- वहीं श्रीकृष्ण की इच्छा प्रत्यक्ष हुई एक सन्त के माध्यम से । यह योग इतना अभूतपूर्व बना कि इसकी अभिव्यक्ति करना अत्यन्त कठिन है-

*** जिनके मस्तक पर केश राशि मनोहर चूड़ा के रूप में बंधी हुई है, उस पर मयूर पिच्छ सुशोभित है, मुख कमल माधुर्य में निमग्न है, जिनमें नव यौवन का सतत विकास हो रहा है, जो वेणु में अमृत सदृश स्वर का प्रसार कर रहे हैं, चारों ओर से गोपाङ्गनाओं की हृद्‌ऊर्मियों द्वारा आराधित हैं, ऐसे एक मात्र जगदाभिराम अद्भुत ज्योतिः पुञ्ज श्री कृष्ण हमारे चित्त में प्रकाशित हों ।

आस्वादन ही किया जा सकता है। अनेक महत्‌जनों के आस्वादन का हेतु रहा है- और हो रहा है- श्रीकृष्ण की पूर्व में घटित, वर्तमान में हो रही लीलाओं के तत्कालीन अत्यन्त सुन्दर और उत्कृष्ट वर्णन जिन महानुभावों ने श्रवण किये हैं, वे सर्वथा जानते हैं कि उन सिद्ध सन्त की अनुभूति की गहराई कहां तक थी- अन्यथा मुझ सा अज्ञ व्यक्ति उस रस समुद्र की माधुरी से अनभिज्ञ सा, क्या अभिव्यक्त करे- और कैसे कहे !

यह लीलाऐं एक नए, उत्साह, उमंग और अनुभूति के योग जुटाने लगीं। शास्त्रीय समालोचना के आधार पर पूर्व की अनुभूति में एक विशेष प्रवाह का योग जुड़ गया। श्री कृष्ण की प्रेरणा से एक सन्त की अनुभूति से सम्पुष्ट हो भावधारा की परिपक्वता में और-और निखार आया। वह सब आस्वादन लीला-कथा, पाठ-संकीर्तन में घुल मिल जीवन का अंग बन गए।

एक ओर पू० बोबो की आध्यात्मिक अनुभूति जहां अपने उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसरित थी- जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी कर्तव्य परायणता उतनी ही सजगता से वे निबाह रही थीं। इस सबमें राष्ट्रीय भावना तो निहित थी ही, काव्य की अनुभूति भी अनेक बार प्रचार प्रसार हेतु मचल उठती- इसके सुयोग भी सहज जुट जाते। भारत स्वतंत्र हो ही चुका था। डा० राजेन्द्र प्रसाद स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। राष्ट्रपति कार्यालय ने स्वतंत्रता दिवस पर आयोजित राष्ट्र प्रेम के छः कवि सम्मेलन उत्सव स्वरूप मना लिये थे। सातवें का आयोजन चल रहा था। एक दिन डाक से राष्ट्रपति कार्यालय से स्वतंत्रता दिवस पर आयोजित कवि सम्मेलन में भाग लेने का साग्रह निमंत्रण मिला। इनके पिता जी, जो 'हातिल कैरानवी' के नाम से उर्दू में लिखते थे, उन्हें भी बुलाया गया था। सन् १९५५ वर्ष का आयोजन था अन्य गण्यमान्य सदस्यों में श्री मैथिलीशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट प्रभृति तथा उर्दू के अनेक शायर, एवं अन्य भाषाओं के कवियों को इस उपलक्ष्य पर बोलने के लिये आमन्त्रित किया गया था। अपने पिताजी के साथ बहन जी भी वहां गईं और अपनी पूर्व की लिखी कविता पढ़ी। इनका कहने का ढंग अपना सा निराला था। मैंने सुना है, उस कविता को रेडियो पर प्रसारित करने का आग्रह किया गया परन्तु अपनी ख्याति और सम्मान के प्रति सर्वथा उदासीन बहन जी ने अपनी कविता देनी तो अलग, अपना नाम तक प्रसारित करने के लिये मना कर दिया।

इधर वृन्दावन का सम्बन्ध, मात्र सम्बन्ध न रह गया था। उत्तरोत्तर प्रगाढ़ता और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। वह हृदय की पिघलन बन छलकने लगा, प्राणों की पुकार बन अकुलाने लगा, जीवन का आश्रय बन अधीर करने लगा, और हृदय की भावनाओं को प्रश्रय देता उन्हें सत्कारने को अकुलाई भावना बन साकार होने लगा। हृदय में ज्वार उठता, धीरे-धीरे शान्त करने के प्रयास में कई बार यह प्रस्फुटन इतने वेग से होती कि उफनती धारा बन विलुण्ठित हो जाती। हाय री विवशता .... । धीरे-धीरे कर्तव्यपरायणता वश समझाना पड़ता, ढालना पड़ता। ऐसी आकुल व्याकुल स्थिति, मानसिक उद्वेग में, एक ही सबल सम्बल था, सुदृढ़ आश्रय था, श्रीधाम से होकर, वहां का संस्पर्श पाकर, वहां की रज से सिक्त होकर वहां की भावनाओं से आलोड़ित होकर, यदि कोई बात सुनाता, वहां की चर्चा करता, तो धधकते उर पर एक शीतल विलेपन सा, एक स्निग्ध-सत्कार सा अवश्य लगता। उसी में क्षणिक सन्तोष करतीं- वे कई बार कहा करती थीं, 'ऐसे में वृन्दावन की चर्चा करने वालों में भाभी श्री कलावती, सुगनी भूआ प्रभृति अनेक माताओं ने ब्रज की, वृन्दावन की चर्चा, लीला सुना मुझे आत्म सुख प्रदान किया है।'

विरक्ति के भाव उत्तरोत्तर सुदृढ़ होते गए। सभी कुछ छोड़ वृन्दावन चले आने को मन उमड़ कर रह जाता। अनेक बार सभी बन्धनों से मुक्त होने की भावना इतनी प्रबल हो जाती कि भाग आने को मन होता। पाठशाला से भी वैराग्य होने लगा। वहाँ से भी मुक्त होने की चर्चा बीच बीच में करतीं। यह बात लोगों में भी चर्चा का विषय बनने लगी। सच्चाई की आशंका, मात्र आशंका बनी रहे, ऐसा सोच अधिक चर्चा न होती, फिर भी वह आशंका, वह भय, एक सच्चाई बन सामने प्रकट होने ही वाला था, उस सबकी कल्पना आस-पास के तथा सम्पर्क में आने वालों को विचलित अवश्य कर ही देगी- परन्तु जब तक यह अवश्यम्भावी, असहनीय परिस्थिति सामने न आवे उसकी भूमिका में सहयोगी होने का विचार सभी को खलने लगा- सालने लगा।

मन में एक सरस बेचैनी भरने लगी। कजरारे मेघों से मन-भावन की बात करतीं, अता-पता पूछतीं। उनका सन्देश सुनने को आतुर हो जाता यह बेकल हृदय, वह बेकली सर्वत्र व्यास हो जाती। प्रकृति के कण कण में उनकी सत्ता का भान होता। अदिति का अणु अणु श्याम-सुन्दर की सत्ता से ओत-प्रोत दीखता। परिव्यास प्रभु सत्ता से उन्होंने कभी

पलायन नहीं किया, प्रत्युत प्रियतम की सत्ता देख उसे अपनाया, और जितना अनिवार्य लगा उसका सत्कार किया। जगती सदैव सुख ही सुख को चाहती रही, वे कहती हैं, ''मैंने शूलों का भी वरण किया है, उन्हें अपनाया है'' एक जगह कहती हैं, ''कांटों को देखा है मैंने नित फूलों की रक्षा करते'' इन्हीं संसार रूपी कांटों की बाड़ से रक्षित इनकी जीवन लता का विकास सहज ही श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में होता चला गया। उन्हें भगवान से, जग के सर्जन हार से कोई विशेष प्रयोजन नहीं था, उन्हें चाहिये उनके प्राणों के प्राण, जीवन की जीवन्त शक्ति। उस परिव्यास सत्ता को यत्किञ्चित् उन्होंने सम्मान अवश्य दिया परन्तु अपने प्राणधन श्याम–सुन्दर के अतिरिक्त अन्य किसी भी आश्रय में भ्रमित होना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। *यहां तक कि एक बार श्री राम रूप में स्वयं श्री कृष्ण ही इनका स्पर्श करने को आगे बढ़े तो इन्होंने उनकी उसी सत्ता को प्रणाम कर उनका वर्जन करते हुए कहा था– ''श्याम चरणों में समर्पित यह तन, मन उसी सन्निधि के लिये बावरा है– उसी समय राम जी श्याम सुन्दर का रूप धारण कर इनके पास आए तथा हृदय से लगा लिया।'' उनकी यह सुदृढ़ भावना श्याम सुन्दर के आश्वासनों से, उनके प्यार की सतत उच्छलन से पालित हुई, पोषित हुई– और यह इस सबका आश्वासन पा गा उठीं :*

जब जब मैंने तुम्हें पुकारा
तब तब तुमने मृदुल भाव से मधुर चाव से मुझे दुलारा।
तुमने स्नेह सिक्त चितवन से हँस कर मेरी ओर निहारा॥

उनका यह काव्य प्रयत्न साध्य नहीं है और न ही इन कविताओं का सृजन– काव्य कला प्रदर्शन हेतु हुआ है। यह है इनके हृदय की चाह, मन की सहज मांग, अन्तस् की पुकार, मन के तारों से उच्छलित झंकृति, जो कविता के मिस अभिव्यक्ति बन सरिता सी स्थायी प्रवाहित हुई। सर्वोत्तम काव्य 'सत्यं, शिवं और सुन्दरम्' युक्त होने पर ही खरा दीखता है। पू० बहन जी की हृद्गत काव्य धारा सर्वथा इसी कसौटी पर खरी उतरी। उन्होंने यदि कहीं शिकायत की है तो अपने ही प्राणधन से, उन्हीं से अपनी दैन्योक्तियां कहीं हैं– अपनी भावनाओं को उन्हीं के श्री चरणों में समर्पित कर वे सदा सर्वदा के लिये निश्चिन्त हो गई हैं। उन्हें, उन्हीं के प्रण की याद दिलाती एक जगह कह रही हैं :–

'मत भूलो पर वह दिवस नाथ
अपनी कह जब स्वीकारा था।'

यही नहीं........... वह उसी सुपरिचित पथ जहां सदैव उनसे मिलन होता रहा था, वही चाह जो इन्हें प्रदत्त थी, रागानुगा भावना से ओत-प्रोत प्रियतम ने अपनी चाह से उस चाह को प्रदान किया, पोषित किया, उसी पूर्व परिचित पथ पर अग्रसर होने को नयन मन, प्राण अकुला रहे हैं, स्वीकृति की प्रतीक्षा में नयन बिछाए :

'एक दिन पहले कभी जो
निज सुशीतल छांह दी थी'

आज पुनः उसी वरद हस्त की सुशीतल छांह, श्याम तमाल की सुशीतल छांह- यही नहीं, उसी मधुराश्रय की सरस याचना, पुनः पुनः कर रही हैं, जिसका आस्वादन कर मग्न हो चुकी हैं ।

भिन्न भिन्न प्रकृति के लोगों से सम्पर्क होता । जो लोग आस-पास के थे वे सर्वथा जानते थे इनके विषय में, इधर उधर के लोगों में भी इनकी प्रतिभा व्याप्त थी, फिर भी ऐसे लोगों से परिचय होता जो, इस इकहरे बदन में निहित, सबल सशक्त व्यक्तित्व के विषय में जानने को उत्सुक होते । जगती के कृत्यों में इतनी कुशलता से लगा मन दूसरी ओर भक्ति पथ में भी इतना ओत-प्रोत हो सकता है- यह बात सहज विश्वास करना कठिन है । यद्यपि यह निर्विवाद है कि भक्त दक्ष होता है- वह जितना पूर्ण भगवत्पथ में होता है उतना ही कौशल उसकी सहज रहनी में, कृत्यों में स्पष्ट झलकता है । बहुत से लोगों में बहन जी के विषय में जिज्ञासा होती। इनसे ही पूछ लेते- ऐसे ही एक प्रश्न के उत्तर में यह कहती है :-

पूछते हैं लोग मुझसे, श्याम से सम्बन्ध क्या है ?
नयन हो उठते सजल
मुस्कान अधरों पर बिखरती
और फिर बातें पुरानी
सब हृदय पट पर निखरतीं
रुद्ध हो जाता गला तब,
मूक हो जाती मुखरता
क्या कहूं जाती कहां वह
बोलने की सब सुघरता ।
थकित वाणी नमित लोचन
प्राण ! यह प्रतिबन्ध क्या है ?

सीता जी से जब ग्राम वासिनी स्त्रियों ने इसी प्रकार पूछा था 'हे कोमलाङ्गी ! तुम्हारे साथ वन्य वेषधारी दोनों कौन हैं' तो उन्होंने बड़े ही संकोच वश लक्ष्मण जी को अपना देवर कहा और राम जी की ओर निरख कर मुस्करा दीं– यह कोई अभिव्यक्ति न थी परन्तु मर्यादा में पला नारीत्व– अपनी सब कहने में संकुचित हो परिचय देता भी कैसे ?

एक ओर काव्य उनके मन की, उनकी भावनाओं की प्रतिछाया बन हमारे विश्वास को पोषित कर रहा है, वहीं दूसरी ओर भक्ति-भावना की अजस्र सरिणी अपने सतत प्रवाह से, चारों ओर के वातावरण को रस–सिक्त कर रही है, तिस पर भी निपुणता से विद्यालय का कार्य निर्वाह ! इतना ही नहीं विद्यालय के वार्षिक सम्मेलनों, साथ–साथ सनातन धर्म सभा के आयोजनों, इन सभी में हमारी चरित्र नायक पू० बोबो एक आदर्श बनी रहीं। अपने विद्या गुरु आचार्य सेवती प्रसाद जी के विद्यार्थियों को लेकर– परीक्षा दिलवाने हेतु अनेक बार इन्हें देहली आना पड़ता। उसमें सहायिका बहनें स्नेह भसीन, विमला अरोड़ा तथा संयुक्ता मिश्रा की सेवा का वर्णन किये बिना नहीं रहा जा सकता। वे इनसे पूर्व परिचित थीं, घरेलू कारणों से देहली रहने लगी थीं। उनका प्रारम्भिक जीवन बहन जी की संगति में विकसित हुआ था। अध्यात्म के संस्कार थे ही, बहन जी की संगति का रंग चढ़ा। उसका स्वरूप जहाँ एक ओर परिष्कृत हुआ, वहीं उसमें दैन्य का समावेश हुआ तथा गाम्भीर्य का प्रवेश। उसी भाव धारा में पल्लवित और पोषित यह सहेली त्रयी, बहनजी के सत्सङ्ग हेतु मचलतीं और जब कभी सुयोग मिलता तो वे अपने सम्पूर्ण कर्त्तव्यों और प्रतिबन्धों को छोड़ बहन जी का संग करतीं तथा इनके अध्यात्म संग को पाने के लिये लालायित बनी रहतीं।

सेवा, मौन मूक सेवा और समर्पण की भावना जो इनमें पनपी, उसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता। बहन जी बहुत ही सादगी से रहती थीं और उसकी परिसीमा क्या कहूँ ? कई बार पादुका (खड़ाऊं) पहन कर ही देहली चली आया करतीं, और कभी वह भी नहीं। वास्तव में वस्तुओं के अस्तित्व के प्रति तथा पहनावे के ढोंग से उनका मन अलग ही रहता था। मैंने स्वयं देखा है, स्नेह भसीन को अपने बड़े पर्स में एक जोड़ा चप्पल लिये। जब बहन जी देहली आतीं, पता लगने पर वे इन्हें स्टेशन लेने आती। उसकी मूक साधना को बहन जी ने सदैव सत्कारा है। पू० बोबो उस मूक स्नेहाग्रह वश चप्पल पहन लिया करती थीं। आज भी स्नेह का वह चेहरा मेरी आँखों में घूम जाता है।

मन श्याम-सुन्दर के सामीप्य को तो लालायित रहता ही था, उनके धाम, अपने घर श्री वृन्दावन चले आने की त्वरा बार बार बेचैन कर देती। जग के सभी कृत्यों से मुक्त होने को अकुला उठतीं। "मेरे देव अब तो तुम बाहरी कार्यों को छुड़वा कर अपनी अन्तरङ्ग क्रीड़ा का उपकरण बना लो मुझे, चराचर विश्व में तुम्हीं व्याप्त हो, यह सब मानते-जानते हुए भी न जाने हृदय को क्या हो जाता है ?"

अपनी उसी अकुलाहट को अपने प्राणधन से कह किञ्चित् सान्त्वना पातीं। जगत में इसी कारण से स्नेह वितरण करती रहीं कि इसमें प्रभुजी की सत्ता व्याप्त है, यह प्रभु का ही विराट स्वरूप है, परन्तु बीच बीच में प्रभु जी के विराट स्वरूप की सेवा से मन ऊब जाता तथा श्याम सुन्दर के रसीले अंक में विश्राम पाने को मन उमड़ जाता- और वे कह उठतीं :-

"अपना प्रेम-सुधा-रस प्रियतम ! इस तन, मन, जीवन में भर दो" कभी कहतीं, "अब मुझे सम्हालो, जल्दी सम्हालो, मैं गिरी जा रही हूँ। शरीर टूटा जा रहा है- 'करावलम्बम मम देहि नाथ'। सहने की भी कोई सीमा होती है नाथ ! मुझे चरणों में ही स्थान दिये रखो।" प्रेम का रूप ही अतृप्ति पूर्ण है, पाकर भी और-और की चाह ही इसकी शोभा है।"

'प्रेम कलह' प्रेम की एक विचित्र अभिव्यक्ति है, रागानुराग की साभिप्राय याचना है, रस वर्द्धन का एक अनोखा ही ढंग है। प्रेमी कभी-कभी अपनी सतत चाह को, प्रेमास्पद तक पहुँचाने में न-न कर उससे अपने प्रेमास्पद को भिज्ञ तो कराना चाहता है, परन्तु प्रेम के उत्कर्ष की मर्यादा वश मांग का एक दुराग्रह उसमें नहीं होता। वे अत्यंन्त अपने हैं, उनसे न कह कर फिर किससे कहें भला ? कह कर अपने मन को हल्का करने की बात वहां निहित होती है, और फिर प्रेमास्पद पर पूर्ण निर्भरता बनी रहना भी प्रेमी का उत्कृष्ट गुण है- अतः अपने समर्पण को, हृद्गत राग को उनसे कहने के अनेक मिसों में कभी यही मिस सुखद लगता है। एक जगह वे कह रही हैं :-

अब हम तुम से नहीं बोलते।
रूठ गए हम नहीं मनेंगे, नहीं सुनेंगे बात तुम्हारी।
अपनी भी कुछ नहीं कहेंगे समझ गए सब घात तुम्हारी।
मधुर तुम्हारी मनुहारें हैं, ...

अपने रूठने की बात प्रेमास्पद से कहना, रूठना नहीं है और 'नहीं बोलकर' भी अन्दर अन्दर बोलने की उत्कट अभिलाषा, 'अपनी न कहने की बात' दोहरा कर भी उन्हीं से सारा वृत्तान्त कहना, प्रेम की एक विचित्र ही अभिव्यक्ति है- इसी को रस शास्त्र में वामाभिव्यक्ति कहा गया है। इसमें छिपी है मिलन की एक सबल मांग और सशक्त अपनत्व की सरस कहानी।

श्याम-सुन्दर से अपने अनजाने में ही मन की कहतीं। उनसे अनेक प्रकार की शिकायतें, शिकवे, गिले करतीं। प्यार की रसीली अर्चना करतीं, उसके रसकणों से सिक्त होने की प्रबल कामना करतीं, कभी अनजाने में ही अपने मन पर मोहिनी डाले हुए, "अन्तः करण की प्रत्येक क्रिया के साक्षी तुम्हीं हो," इन पंक्तियों को दोहरातीं कभी यह कह, *"अब मैं लुटाती हूँ, जानते हो, क्या ? तुम्हीं मेरे हो न ! फिर और क्या लुटा सकती हूँ ! यह सब क्यों आते हैं मेरे पास ? केवल इसीलिये न ! - यह जानते हैं मैं लुट चुकी हूँ, चोर-जार-शिखामणि ने मुझे लूट लिया है, और जीवन यापन करने को वह स्वयं .... युग युग के लिये .... सदा सर्वदा के लिये मेरा अपना हो गया है। यही आकर्षण उन्हें यहां लाता है - और मैं .... मैं .... भी तुम्हीं जो मेरे हो ...... मुक्त मन से इन सबके हाथों लुटा देती हूँ।" ****

प्रेम कलह की रसीली चेष्टाओं का अर्थ ही विचित्र होता है, वहां अभिव्यक्ति है- पूर्ण प्रेममयी। प्रेमी और प्रेमास्पद की बात गोपनीय रहती है- उन्हीं तक सीमित रहती है- अथवा समभाव भावित- उसी दशा में रत, अन्य प्रेमियों के लिये भी सुगम और सुबोध हो जाती है। प्रेम कलह वश प्रेमियों ने जहां एक ओर अपनी कह कर उपालम्भ दिये हैं कुछ रसीली अर्चना कर सुनाने में भी कमी नहीं की, वहीं प्रेमास्पद की इच्छा वश- उनका उन्हीं के प्रति पूर्णतम समर्पण भी देखने को मिलता है। उनकी सभी मान्यताओं को वे सहर्ष स्वीकारते हैं। उन्हीं की इच्छा जान, उन्हीं के कार्यों को पूरा करने की चेष्टा उनकी नित्य बनी रहती है। वहां समर्पण है- पूर्णतम समर्पण। "वे स्वयं आकर हाथ में हाथ ले, कह दें चलो प्रिये ! अब बहुत हो चुका। अब चलो वृन्दावन की सघन निकुञ्जों में, अपनी प्राण

*** यह सम्बन्ध केवल श्री कृष्ण, उनकी अनन्या श्री राधा तथा उनकी काय व्यूह स्वरूपा इन गोपीजन तक ही सीमित है- क्योंकि वहां अनेक तन एक ही मन होकर, श्याम सुन्दर के प्रति समर्पित हैं। जगत में इस सबकी कल्पना करना हानिप्रद है।

प्रिया सखियों के संग रहो''– यह प्रणयाभिमान बरबस ही उस प्रतीक्षा माधुरी में सराबोर करता रहता है जब :-

'कहा करौं वैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छांह ।
अहमद ढाक सराहिये, जे प्रीतम गल बांह ॥'

क़भी कहते कहते चुप हो जातीं, कभी मौन ही हो जातीं। ऐसा नहीं कि इनकी इन क्रियाओं से जिन्हें कष्ट होता, उनका इन्हें पता नहीं लगता था, अथवा जान बूझ कर उनसे ऐसा व्यवहार करतीं परन्तु मन की स्थिति सहसा इस प्रकार की हो जाती । इनका मन चाहता, किसी लम्बे चौड़े एकान्त और तपस्या हेतु नहीं, प्रत्युत मात्र कुछ समय एकान्त में रहतीं। वह एकान्त कैसा हो ? उसके विषय में एक स्थान पर कह रही हैं .... *''वह क्षण केवल मेरे और तुम्हारे ही हों । उन क्षणों में स्थूल रूप से ही नहीं सूक्ष्म रूप से भी कोई और न रहने पावे । समस्त जड़ चेतन की विस्मृति कर तुम्हीं में बेसुध हो जाऊं .... और .... और .... तुम .... तुम .... मुझे पागल करते हुए, अपनी उस अनन्त कोटि लावण्य सौन्दर्य मयी मूर्ति– साकार छवि में सामने होवो ।''*

एक बार इनके पिता जी ने इनकी मां से कहा, ''भगवान को दु:ख दर्द सुनाने से क्या लाभ ? वे तो सर्वज्ञ हैं सब जानते ही हैं ।'' बात इन्हें लग गई । भगवान को दु:ख दर्द सुनाना तो प्राणी मात्र का अधिकार है । साधारण मानव और कर भी क्या सकता है ? प्रेमी और प्रेमास्पद का सम्बन्ध– केवल भगवत्तत्व मात्र को लेकर ही नहीं होता– वह है दो प्रेमियों की रसमयी बात – वहां केवल व्यापकत्व का ही प्रश्न नहीं रहता, ''अपनी कहना और उनकी सुनना'' इतनी स्वाभाविक क्रिया है कि कोई जान ही नहीं पाता । जीवन सर्वस्व से बात करने की इच्छा होती है । राग–अनुराग की, मान–मनुहारों की, हृदय की बात अपनों से न कहेंगे तो और किससे कहने जावेंगे ?

कभी श्याम–सुन्दर को *''मेरे व्यक्ताव्यक्त प्यार'' सम्बोधन करतीं । प्यारे तो वे हैं हीं प्यार भी हैं वे ।* अव्यक्त सम्बोधन को सुन प्राय: खीज उठतीं । वे प्रेम भी हैं प्यार भी हैं परन्तु प्यार कभी व्यक्त नहीं किया जा सकता । यदि थोड़ा बहुत व्यक्त हो भी जावे तो उससे अनेक गुना अव्यक्त रहता है । यह तो सत्य है कि जब हृदय में प्यार भरा हो तो छलके बिना नहीं रहता । छलकने से दूसरों को कुछ कुछ अनुमान भी हो जाता है ।

उस समय प्यार व्यक्त होने पर भी व्यक्त सा प्रतीत नहीं होता, पर अभिव्यक्ति में जो है, उससे अनन्त गुणा अव्यक्त रह जाता है वही ह्रदय में कुछ खलबली मचाता रहता है- यह खलबली ही तुम्हारा 'अव्यक्त प्यार है' या इस अव्यक्त प्यार के रूप में तुम ही विद्यमान रहते हो स्वयं ।

अधिक व्यस्त रहने से शरीर उसे अधिक सहन करने में असमर्थ सा होने लगा । पूर्व से रुग्ण यह शरीर और-और रोगी रहने लगा, तिस पर भी अदम्य उत्साह और साहस की प्रकट मूर्ति, अपने सभी आवश्यक कार्यों को सुचारू रूप से निबाहती रहतीं । श्री गीता पढ़ने के लिये अनेक बहनें इनके पास आया करती थीं । शारीरिक अस्वस्थता को देख पिता वात्सल्य वश प्राय: कहा करते 'इतनी व्यस्तता के उपरान्त कुछ देर आराम कर लिया कर' परन्तु बहन जी के मन में सदा यही बना रहता कि 'गीता पाठ से तो मेरी थकान दूर होती है' तथा आध्यात्मिक चर्चा तो मेरे जीवन की मूरि है, औषधि है, प्राणों में रस संचार करने वाली औषधि है ।

❑❑❑

बाईस

हिन्दी की उच्च शिक्षा

भक्ति का प्रवाह- अनेक अपनों से मिलन

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ ***

सु० र० भां० / ४० / ७

विद्वत्ता, मात्र विद्याध्ययन से प्राप्त नहीं होती । अध्ययन जब व्यवहार तथा जीवन के उच्चादर्शों, मर्यादाओं आदि से युक्त हो जीवन का अंग बन जाता है तभी उसकी शोभा तथा पूर्णता है । फल लगने के साथ-साथ ही वृक्ष झुक जाते हैं- जहां नम्रता है, शालीनता है, दूसरे के दुःख से मन का सहज द्रवण है, सौहार्द है तथा समादर भावना बनी रहती है, तो समझो उसके जीवन में सभी सद्गुण एकत्र हो गए हैं ।

पूजनीया बहन जी में ये गुण उनके जीवन का एक अंग बन कर समाए थे । अभिमान उनमें था नहीं, दैन्य की वे मूर्ति थीं, वैराग्य उनके जीवन में परिपूर्ण था अतः अपने इन गुणों के कारण अपने विद्यार्थियों में उन्हें सम्मान मिला, सहयोगी अध्यापकों में आत्मीयता मिली, विद्वत्समाज ने उनका समादर किया, राजनीति में उन्हें उचित स्थान मिला तथा सन्त, महात्माओं ने एक अत्यन्त आत्मीयता से आप्लावित कर दिया । यह तो था उनके व्यवहारिक जीवन में मिला मान सम्मान । इस सबके साथ-साथ सर्वोपरि उनके जीवन में सरसता, आत्म सुख की वर्षा, तथा प्रिया-प्रियतम के चरणों में सुदृढ़ प्रीति पगा अनुराग जो मूलभूत था, समय-समय पर छलक-छलक कर सभी को, जाने अनजाने में सिक्त-सिंचित करता रहा, उनके उस स्नेह और आत्मीयता ने सभी को अपनी प्रीति रज्जु में बांध सा लिया । मान-सम्मान तथा आत्मीयता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध इतनी प्रगाढ़ता से बद्ध हो गया था कि उसे एक दूसरे से भिन्न कर पाना अथवा देखना भी कठिन था ।

*** विद्वान् तथा राजा की कोई तुलना नहीं है, क्योंकि राजा की मान-प्रतिष्ठा तो उसके अपने ही देश में होती है परन्तु विद्वान की प्रतिष्ठा जहां भी वह जाता है सभी स्थानों पर होती है ।

हां ! तो इनके विद्यागुरु परम विरक्त थे । उनकी रहनी का सहज भाव पू० बहन जी ने भी अपनाया । आचार्य सेवती प्रसाद जी से इन्होंने हिन्दी की उच्च शिक्षा प्राप्त की ।

वे अम्बाले की एक विभूति ही थे । स्वयं अधिक पढ़े न थे परन्तु हिन्दी भाषा का उन्हें पूर्ण ज्ञान था । बड़े बड़े साहित्यकारों से उनका सम्पर्क हुआ था । उनका संग किया था । उन्हें सांगोपांग समझा था । उन्हीं को गौरव प्राप्त है बहन जी के हिन्दी शिक्षा गुरु होने का । उनका जीवन भी आदर्श था । केवल एक कोपीन और अंगोछे के अतिरिक्त और कोई वस्त्र धारण न करते थे । रहनी में महान् विरक्त थे । विद्यार्थियों के लिये जाड़ों में चाय आदि बना कर पिलाना, कोई दूर का हो तो उसके भोजन तक की व्यवस्था कर रखना, अगर कोई न पढ़ने आया हो तो उसके घर तक उसकी खोज, खबर तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ता करना, उनमें सहज था । वे भोर में पढ़ाते, यदि कोई विद्यार्थी यह कह देता कि उसकी आंख नहीं खुलती, तो उसे जगाने तक में वे सहायक हो जाते थे । सर्दियों में तापने के लिये व्यवस्था कर रखते । पैसे के नाम पर उन्होंने अपने विद्यार्थियों से फीस आदि के लिये कभी नहीं कहा । यही भाव पू० बहन जी में पूर्णतः पनपा ।

आचार्य जी का, बहन जी के प्रति अत्यन्त लाड़, वात्सल्य रहा । उन्हीं के आग्रह करने पर बहन जी ने साहित्य रत्न की परीक्षा दी थी । एम. ए. वे कर ही चुकी थीं । साहित्य रत्न में भी बड़े अच्छे नम्बर लेकर पास हो गईं । बहन जी की विद्वत्ता, गुरुनिष्ठा, त्याग पूर्ण जीवन, भाषा–सौष्ठव तथा प्रभावात्मक शैली– इनके सम्पूर्ण गुणों को देखकर वे प्रायः कहा करते थे । ''हिन्दी भाषा का मुझे विशद ज्ञान है, परन्तु मुन्नो को जब देखता हूँ तो मुझे गर्व होता है, कम से कम कोई तो ऐसा निकला जो मुझ से भी श्रेष्ठ शैली से अपने विद्यार्थियों को पढ़ा सकता है ।'' एक गुरु के लिये इससे बढ़कर गौरव और क्या हो सकता है । भक्ति साहित्य, भक्तों के जीवन की जितनी सुन्दर व्याख्या और विवेचन तथा सही भावों की अभिव्यक्ति मुन्नो कर सकती है, और कोई नहीं, यहाँ तक कि मैं भी नहीं।''

''क्यों न हो भक्ति तो उनके अंग अंग में समाई थी । संतों और भक्तों में तथा उनके वाणी साहित्य में इनकी आस्था थी, उनकी परम्पराओं को यह समझती थीं तथा मन का एक सहज लगाव था । उनके पदों में आत्म सुखानुभव करती थीं । उनके काव्य में अपने ही भावानुभावों

की झलक पा तन्मय हो जाती थीं। जहां मन का इतना योग होगा, अभिव्यक्ति स्वतः अनुभूत ही होगी। अतः अनुभूति जब प्रकट होगी तो स्थायी प्रभाव अवश्यम्भावी ही होगा।

"श्री जगदीश चन्द्र जोश, जिनके विद्यालय में यह पढ़ती रही थीं, इनकी भूरि भूरि प्रशंसा तो करते ही थे, साथ-साथ सनातन धर्म कन्या विद्यालय की प्रधानाध्यापिका उनके यहां पढ़ी है, यह बात बड़े गर्व से कहा करते थे।"

अब यह एम. ए. तथा साहित्य रत्न कर चुकी थीं। बालपन से मिले सम्मान ने इन्हें स्वच्छंद नहीं किया प्रत्युत एक दैन्य और विनम्रता के भाव से ही पोषित किया क्योंकि अपने आदर्शों की निर्माता वे स्वयं ही थीं। वे सभी लोग जो आज तक इनसे 'मुन्नो' और अपनी छोटी सी बिटिया की भांति व्यवहार करते थे, अब इनकी गरिमा को देख श्रद्धा मिश्रित प्रेम तथा आदर दर्शाने लगे थे। सभा के उत्सवों में, धार्मिक समायोजनों में, बड़े बड़े सम्मेलनों में तत्कालीन महानुभावों को श्री ब्रह्मानंद जी सरस्वती शंकराचार्य, श्री गंगेश्वरानन्द जी महाराज, श्रद्धेय उड़िया बाबा, मां आनन्द मयी, श्री हरिबाबा, श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, गोस्वामी श्री बिन्दु जी महाराज, गोस्वामी गणेशदत्त जी, श्री मुकुन्द हरि जी तथा श्री दीनानाथ दिनेश प्रभृति अनेक संतों को प्रायः आमंत्रित किया जाता था। सुयोग्य प्रधानाध्यापिका तथा सम्मेलन के समायोजन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण सभी से विचारों का आदान-प्रदान होता, अनेक आध्यात्मिक विषयों पर एक आत्मीयता पूर्ण चर्चा होती।

इनकी प्रकृति बड़ी ही विनोदी थी। एक बार बाहर से कोई महानुभाव पधारे। एक विशेष आदर के नाते बहन जी को भी मंच पर ही स्थान मिलता था। उनका प्रवचन चल रहा था उन्होंने कहा, 'भाईयो और बहनो ! आप लोग कुछ नहीं जानते और जो मैं कहना चाहता हूँ जान नहीं सकते।' जब इस वाक्य को उन्होंने पुनः दोहराया तो पू० बहन जी वहां से उठकर चल दीं, बाद में जब बात चली और सभा वालों ने इनसे पूछा, 'यह कैसा व्यवहार किया तूने' इन्होंने बड़ी ही नम्रता तथा दृढ़ता से कहा था, "प्रवक्ता महोदय अपने प्रवचन में बार बार दोहरा रहे थे कि आप लोग कुछ नहीं जानते और जो वे कहना चाहते हैं उसे जान नहीं सकते" जिस विषय को न तो हम लोग जानते ही हैं- और न जान सकते हैं जैसा प्रवक्ता महोदय ने दोहराया, फिर वहां बैठकर, अपना समय ही क्यों गंवाऐं- सभी लोग ठहाका मारकर हँसने लगे।

श्री पुष्पा ग्रोवर से भेंट

इन्हीं दिनों पूज्या बहन जी के सम्पर्क में आईं एक अत्यन्त आधुनिक विचारों वाली बहन श्री पुष्पा ग्रोवर। वे इतनी प्रभावित हुईं कि सदा-सदा इन्हीं की सन्निधि के लिये लालायित रहने लगीं।

पंजाब का विभाजन होने पर पिता अम्बाला चले आए। श्री ठाकुर सेवा पहले से ही घर में चली आ रही थी। एक अत्याधुनिक परिवार तथा ऐश्वर्य में पालित-पोषित श्री पुष्पा जी का भोलापन, निर्मल हृदय तथा निश्छल प्रकृति ने श्री ऊषा बहन जी को आकृष्ट कर लिया।

परस्पर सम्पर्क, शीघ्र ही प्रगाढ स्नेह में परिवर्तित हो गया और श्री पुष्पा जी, पू० बहन जी के घर सत्संग में आने लगीं। कुछ दिन बाद ही विद्यालय में अतिरिक्त अध्यापिका की आवश्यकता हुई। परस्पर समीप रहने का सुअवसर मिल गया, यही मिस बना इस प्रगाढ़ स्नेह के आत्मीयता में बदलने का। भगवान सभी एक से विचार वालों को अनायास ही मिला, भक्ति की विशेष धारा में निमज्जित करने का सुयोग जुटा देते हैं। जहां सांसारिक विडम्बनाओं का प्रवेश नहीं, भौतिक सुख की चाह नहीं; जो कुछ भी है सब सत्त्वमय है, वहीं भगवान का प्राकट्य है।

संयोग यों हुआ, सनातन धर्म मन्दिर में शिवार्चन-पूजनोपरान्त बहन जी घर लौटने लगीं, रास्ते में एक अत्याधुनिक तथा फ़ैशनयुत लड़की से भेंट हुई। कद छोटा, भारी शरीर, विचारों से पूर्णतः आस्तिक, स्वभाव इतना भोला कि रात्रि को यदि दिन कहें तो सहज स्वीकार कर ले।

बहन जी को देखकर पहले से ही प्रभावित थीं। सम्भवतः वह पूर्वानुराग था। अब सामीप्य मिला। विचारों के परिष्कृत होने का सुअवसर मिला, और जीवन को परिपक्वता से ढलने का सम्बल मिला। इस सम्पर्क की प्रगाढ़ता हेतु विद्यालय की अवैतनिक सेवा करने तक को तैयार हो गईं।

जीवन में बहार छा गई। अपने में अपनापन तथा एक स्वात्म-प्रधान भावना, एक अहं, बहन जी के संग में कब और कैसे लय हो गया, कुछ भी पता न चला। मन के लगाव को एक आश्रय मिल गया। वह समय भी आ पहुँचा जिसके लिये जीवन मिला था, अथवा जन्म हुआ था। बहन जी की संगति में वह फैशन, वह स्वभाव स्वतः घुल मिलकर दैन्य में

समा गए। मन श्री कृष्ण चरणारविन्दों में अधिकाधिक संलग्न हो गया।

बहन जी से अधिकाधिक सम्पर्क हेतु एम. ए. हिन्दी की क्लास में प्रवेश ले लिया। बहन जी एम. ए. को पढ़ाती ही थीं। इनके पूछने पर विनोदवश उन्होंने हां कर ली और पढ़ाने का समय निश्चित हुआ रात्रि दो बजे तथा फीस जिसके लिये वे कभी न कहती थीं, विनोदवश रु. १००) मांगी। श्री पुष्पा जी मान गईं। पैसा आएगा कहां से ? इन्हें तुरन्त एक विचार आया और अपने सोने के कड़े तोड़ कर श्री सुशीला जी को साथ ले बेचने हेतु चली गईं। जब सुशीला जी को पता चला कि इनका यहां आने का हेतु अपने कड़े बेचना था- तो उन्होंने जैसे-तैसे इन्हें समझा कर दूसरे दिन आने की बात कही। उधर श्री ऊषा बहन जी मौन थीं फिर भी उन्हें सारी घटना जाकर जब सुनाई तो वे स्तब्ध सी रह गईं। पुष्पा जी के बालवत् स्वभाव को देख प्रभावित भी हुईं। पू० बहन जी के मन में उठे स्नेहोद्रेक से इनकी लगन, विशेष भाव में स्थायी हो गई जिसने श्री कृष्ण चरणों में मन को और और युक्त किया। वही उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई तथा भूमिका बनी श्री कृष्ण के निज धाम श्री वृन्दावन चले आने की।

श्री पुष्पा जी ने एक बार कहा था, ''बहन जी का वह जादू, वह नशा क्या था ? क्या कहूँ ? मन को आकृष्ट करता, सामीप्य की कामना को बढ़ाता, उनका संग, उनकी बात सुनने की उनसे मिलने की कामना प्रतिक्षण उद्वेलित करती रहती थी। अध्यात्म चर्चा सुनने के लिये उनके घर के पास चक्कर काटा करती थी। अपने आत्म भाव का इस प्रकार सहज समर्पण देख, जाने मुझे क्या हो गया था ? उन्हीं के आदर्शमय जीवन ने मुझ में जो बीजारोपण किया वही मुझे श्यामा-श्याम के निज धाम वृन्दावन में वास करने की सामर्थ्य प्रदान कर गया।''

× × ×

पू० बहन जी के जीवन के अमूल्य सत्ताईस वर्ष एक एक दिन कर बीत चुके थे। मान-सम्मान का भुलावा उन्हें लुभा न सका, जग में मिली ख्याति और अपनत्व ने उन्हें विचलित नहीं किया। अपने प्राणधन श्याम सुन्दर से प्राप्त रसकणों का वितरण कर अनेक साधकों को चेतनता प्रदान कर रही थीं। जो रस लालायित थे उनमें और-और त्वरा जागृत होने लगी, जिन्हें वहां की मांग थी उसमें नव रस संचार होने लगा,

अथवा यों कहूंगा परोक्ष रूप में श्री कृष्ण ही इस प्रेम प्रवाह के माध्यम से अपने जनों को आकृष्ट करना चाहते थे तथा इन साधकों की मांग को रागानुगा भक्ति के परिप्रेक्ष्य में स्थायित्व प्रदान कर अपनी नगरी में प्रस्फुटित होने का सुयोजन जुटा रहे थे। मन की सतत मांग, अनवरत रस धारा, हृदय की उमड़न, अनेक संकेतों में मिले प्रत्यक्ष आश्वासन, श्याम-सुन्दर की रसीली-रंगीली, हृदय को आकृष्ट कर लेने वाली भङ्गिमाऐं सभी खींचतीं। इन सभी बंधनों से मुक्त हो श्रीधाम वृन्दावन में साकार रूप से डोलती, उन्हीं की प्रणय नगरी के रसावर्तों में झूमती झूलती हृदय-ऊर्मियां उन नील सिन्धु से सिक्त होकर, सिञ्चित होकर, उसी-उसी-पूर्णतः उसी रसास्वादन के लिये आकुल व्याकुल कर देतीं। यह तन जाने किस प्रतिबन्ध में बंधा था ! हाय री विवशता ! कराह उठतीं वे, आह भर कर रह जातीं, अपनी इन भावनाओं को, अपनी इस हिलग को बहलाते, घंटों सभी ने उन्हें एकान्त में निश्चेष्ट, बेभान अवस्था में देखा है, मानों किसी और ही जगत में खो गई हों।

बहन जी का वातावरण, उन्हीं के शरीर से प्रस्फुटित भक्ति देवी की तरंगें अपने पास आने वालों को अनायास ही सिञ्चित करती रहतीं। उनका एक ओर राजनीति और सामाजिक बंधनों में विकसित व्यक्तित्व, भावपक्ष में भी, अपने प्राणों के प्राण, जीवनधन श्याम सुन्दर की लीला चर्चा में, सेवा पूजा में भी उतना ही सबल और सशक्त बना रहा। इतनी अधिक व्यस्त रहने पर भी दोनों ओर की पूर्णता, असाधारण व्यक्तित्व का ही प्रतीक है। वास्तव में जो महानुभाव उस अखण्ड-पूर्ण-तत्व से यत्किञ्चित् भी जुड़े हैं, जिनका मन उनकी प्रेम रज्जु में बंध उन्हीं का हो गया है, जिनका प्रत्येक क्षण सतत वहीं से युक्त है, वहीं से प्रतिक्षण मिले आश्वासनों से ही पोषित है और पुष्पित है, ऐसी सामर्थ्य विरले महज्जनों के अतिरिक्त कहां सुलभ और सम्भव हो सकती है भला !

बहन जी के वातावरण में एक रस सुधा प्रतिक्षण प्रवाहित होती रहती थी, उन दिनों जो भी उनके सम्पर्क में आ गया उस पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। वृन्दावन आने पर अनेक बार वे कहा करती थीं, 'अम्बाला रहते हुए मन की जो स्थिति विशेष थी, जिसमें किसी का भी संस्पर्श सुहाता न था, कोई भी उन्हें छू तक न सकता था। आने वालों का वातावरण तक उन्हें सह्य न होता था। उन दिनों उस मनः स्थिति में, उस प्रवाह में, उस रसावेग में उनके शरीर से प्रेम का स्रोत स्वतः निसृत होता रहा, जो भी सम्पर्क में आ गया, अपनी पात्रतानुसार अपने गन्तव्य पर

पहुँचने में उसे समय नहीं लगेगा । उसके न चाहने पर भी उसमें जो बीजारोपण हो गया- फलित अवश्य होगा ही । जगन्नियन्ता की भी टालने की सामर्थ्य नहीं है । भगवत्प्रेम- क्या कभी पात्रता अपात्रता देखता है ? उसका स्वभाव है सहज आप्लावित करना; कोई चाहे अथवा न चाहे ।

इसी प्रवाह में विद्यालय की अनेक बहनें जो उन दिनों छोटी कक्षाओं में पढ़ती थीं अब बड़ी कक्षाओं में आ गईं । संस्कारवश कुछ अन्य बहनें अध्ययन हेतु आईं- लगा परोक्ष में व्याप्त कोई सत्ता इस वातावरण के लिये प्रेरित कर सभी को यहां एकत्र करने लगी । विद्यालय में अध्ययन चलता ही था, साथ-साथ आध्यात्मिक सङ्ग, धर्म शिक्षा, रामायण पाठ, नाम जप तथा संकीर्तन, भक्तों के चरित्र आदि का पाठ होता था । उन शिक्षाप्रद घटनाओं को जीवन में अक्षरशः उतारने की प्रेरणा बहन जी देतीं। इन बहनों के हृद्गत भावों को जानने के हेतु से कोई स्वतंत्र प्रसङ्ग इनसे लिखवातीं, उन सबसे उन्हें प्रेरणा मिलती । संकीर्तन होता- अनेक बार मन का योग इतना प्रगाढ़ हो जाता, कि इनमें से अनेक बहनें उस आवेग को सम्हाल पाने में सर्वथा असमर्थ हो बेसुध हो जाया करतीं, एक विशेष स्थिति हो जाया करती । इस पर भी बहन जी सदा भावावेग को गोपनीय ही रखने के लिये प्रोत्साहित करतीं । प्रदर्शन को कभी प्रोत्साहन न देतीं श्री नारद जी की इस उक्ति को प्रायः सुनातीं, दोहराया करतीं :

'गोपनीयं, गोपनीयं, गोपनीयं प्रयत्नतः'

अर्थात् प्रेम को प्रयत्न पूर्वक भी अत्यन्त गोपनीय ही रखना चाहिये । इन में सर्व श्री उमाजी, दर्शन जी, विमला जी, आभा, तृप्ता विमला टंडन, शशि, शान्ता, स्नेह, इन्दु, सन्तोष, स्नेह भसीन, सन्तोष नारंग, सुमित्रा, सरोज, पुष्पा, निर्मला शर्मा, निर्मल गुप्ता, कौशल, मलका, कामदा प्रभृति बहनें श्री ऊषा बहन जी की प्रेरणा और सङ्गति में पोषित, पल्लवित हुईं। जो इनके सम्पर्क में बनी रहीं वे अपने गन्तव्य पर चली आईं, जो सम्पर्क से यत्किञ्चित् दूर हुईं अपना रास्ता लम्बा कर लेने पर भी वातावरण, तथा सत्संग से प्रभावित उनके जीवन को विश्व की कोई शक्ति विचलित नहीं कर सकती ।

धर्म तथा भक्ति का प्रचार, प्रसार तथा विकास बहन जी की संगति में उत्तरोत्तर बढ़ने लगा । आने वालों में इतना चाव और आतुरी रहती कि कब समय पावें और बहन जी की संगति का लाभ लें । घर से, पढ़ाई का बहाना बना, अपने छूटे पाठ को पूरा करने का मिस ढूंढ, किसी के माता-पिता बाहर गए हैं वह अकेली है इस प्रकार के अनेक मिस बना, बहन जी के सत्संग लाभ हेतु बहनें चली आया करतीं । संकीर्तन में आतीं,

कथा-वार्ता में अनायास किसी अनजाने आकर्षण में चली आया करतीं, मानों कोई अज्ञात शक्ति उन्हें प्रेरित कर रही हो । उनकी बात सच्ची करने को बहन जी उन्हें अवश्य पढ़ातीं परन्तु अधिकांश समय सत्संग में ही बीतता ।

'बोबो'

'बोबो' शब्द मुजफ्फर नगर तथा सहारनपुर के आस पास के क्षेत्र में बड़ी बहन के लिये प्रयोग किया जाता है । घर में सबसे बड़ी होने के कारण छोटे भाई बहन, बहन जी को बोबो के नाम से पुकारते थे । परस्पर इतना स्नेह और अपनत्व रहता कि बाहर से आने वाले सभी बहन-भाई भी प्रेम रज्जु में बंधे इतनी आत्मीयता पा स्वयं को उसी घर का सदस्य ही मानते थे। निस्संकोच घर में, घर की सभी वस्तुओं पर समान अधिकार अनुभव करते थे । कोई किसी प्रकार का भेदभाव मानता ही न था। हां ! तो बहन जी घर में सगे-सम्बन्धियों में, अपने से छोटों में 'बोबो' नाम से जानी जाती थीं । अन्य सभी ने यह कह कर कि जब घर में सभी समवयस्क तथा छोटे इन्हें बोबो नाम से पुकारते हैं, हमारा सम्बन्ध भी वैसा ही है अतः हम भी 'बोबो' ही कहा करेंगे । अतः आज अपनों से बड़ों के लिये 'मुन्नो' नाम से विख्यात तथा बाहर के लोगों में बहन जी कहलातीं, श्री ऊषा बहन जी 'बोबो' नाम से सभी में समादरणीया हो गईं । पूर्व के प्रसङ्गों में हमने उन्हें पू० बोबो, बहन जी तथा मुन्नो तथा श्री ऊषा बहन जी के नाम से सम्बोधित भी किया है, परन्तु अबसे आगे हम उन्हें पू. बोबो के नाम से ही सम्बोधित करेंगे ।

मर्यादा, जीवन में आदर्श बन कर समाई थी । जहां एक ओर पिता जी के आग्रह से व्यवस्थित रूप से रहना, बालों में नेट लगाए दीखतीं वहीं उन्होंने सदैव बन्द गले का पूरी बांह ढके ब्लाऊज ही पहना। इनकी ख्याति से किञ्चित् द्वेष-भाव वश एक बहन ने विद्यालय के व्यवस्थापक महोदय से इनके पहनावे को लेकर कुछ बात कही । उन्होंने प्रसङ्ग को वहीं समाप्त करते हुए कहा था, "आप उन बहन जी के लिये यह शब्द कहती हैं जिनकी बांह तक खुली किसी ने नहीं देखी । उनके विषय में कोई प्रतिवाद मैं सुनना नहीं चाहता । मर्यादा का जीवन्त रूप ही हैं वे ।"

इनका अपना व्यवहार इतना मर्यादामय था, पढ़ाने की शैली, आदर्शमय, जीवन इतना लोकप्रिय था कि उसका अनुसरण स्वेच्छा से अनेक बहनों ने किया और उनका जीवन स्वतः अनुकूल ढलता चला

गया । अलग से किसी विशिष्ट साधन के लिये दुराग्रह इनका न था । बात बात में, धर्म शिक्षा के समय, पाठ अथवा प्रवचन के समय, इतनी स्वाभाविक्ता से समझाती थीं कि उसे प्रवचन का ढंग ही नहीं कहा जा सकता। वह उनका स्नेह था एक अपनत्व था तथा परस्पर का सम्बन्ध था, जिसमें सहज और स्वाभाविकता से शास्त्र के ग्रहणीय प्रसङ्गों, गीता और पुराणादि का विवेकपूर्ण ज्ञान सहज हो गया । उनके सम्पर्क में आए बहन भाइयों ने अधिक ग्रन्थों का अलग से अध्ययन तो अवश्य नहीं किया पर सहज स्वाभाविकता में वह सब ज्ञान अर्जित कर लिया, जिसकी पथ में आवश्यक्ता हो सकती थी ।

एक बहन से प्रश्न कर, प्रभावित होकर किन्हीं ने एक बार कहा था, "बहन ! तुम लोगों को इतनी जानकारी है, इतना पता है, निस्संदेह हमारे विचारों की जो परिणति है वह तुम लोगों में सहज और स्वाभाविक प्रारम्भिकता बन कर दीखती है ।"

श्रीधर्म बहन जी से परिचय ***

हां तो श्री धर्म जी के विषय में विमला जी के माध्यम से चर्चा चला ही करती थी । पू. बोबो की सन्निधि में अम्बाला में मानों भक्ति का प्रवाह ही उमड़ रहा था । अनेक सन्तों का आगमन भी होता था । इधर घर घर में भक्ति का दीपक प्रज्ज्वलित हो गया था ।

श्री धर्म जी के आने का समाचार जान विमला जी इन्हें स्टेशन पर लेने गईं, परन्तु दोनों का समागम न हो सका तथा तांगा लेकर धर्म जी उनके यहां के लिये चली आईं । तांगे वाले से धर्म जी ने कहा, 'मुझे विमला जी के घर जाना है'- "तो वह बोला हां ! हां ! मैं जानता हूँ,

*** मेजर जैनरल ए. एन. शर्मा के नाम से सभी लोग परिचित होंगे । ये उन दस जैनरल में थे, भारत स्वतंत्रता के बाद जिन्होंने देश की बागडोर सम्हाली थी । इन्हीं के सुपुत्र श्री बी. एन. शर्मा पिछले दिनों सेना के सबसे बड़े अधिकारी रहे । श्री शर्मा पर सन्तों की कृपा थी, उन्हीं की सद्गुरु हैं 'श्री धर्म जी' ।

श्री कृष्ण के प्रति धर्म जी की अनन्य प्रीति, देखते ही बनती है । शर्माजी को स्वप्न में आदेश हुआ कि अमुक स्थान पर तुम्हारी सद्गुरु हैं । वे धर्म बहन जी का मकान ढूंढते ढूंढते लाहौर पहुँचे। सामने से वे आ रही थीं- वहीं इन्होंने साष्टांग प्रणाम किया । लगभग १०, ११ वर्ष की आयु की बालिका ने बड़ी ही स्वाभाविकता में कहा, "अमरनाथ ! तुम बहुत देरी से आए, । श्री धर्म बहन जी श्री कृष्ण प्रेम में छकी रहती हैं । किसी के स्कन्ध पर हाथ धरे अर्धमुद्रित नेत्र, श्री कृष्ण प्रेम में मत्त, जिन्होंने इन्हें वृन्दावन की बीथियों में विचरण करते देखा है, वे अवश्य ही जानते हैं कि उनकी स्थिति क्या रही है, श्री कृष्ण से इनका कितना सम्बन्ध है ? मैंने सुना है बालकों में प्रचलित एक प्रकार का खेल जिसे हम किक्ली कहते हैं दो बालक परस्पर हाथ पकड़ कर घूमते, नृत्य विशेष में मग्न हो जाते हैं- वह नृत्य प्रायः यह अकेली ही किया करतीं । एक बार मां के पूछने पर बड़ी ही स्वाभाविकता में इन्होंने कहा था मेरे श्याम सुन्दर साथ होते हैं ।"

ऊषा बहन जी का घर, मैं आपको वहीं लिये चलता हूँ ।'' इन्होंने पुनः अपनी बात दोहराई– वह चुप सा खड़ा रह गया– एक व्यक्ति इधर ही आ रहे थे पू. धर्म जी ने उनसे कहा, मुझे विमला जी के घर जाना है । उन्होंने कहा, ''हाँ मैं जानता हूँ उनका घर और साथ लेकर ऊषा बहन जी के घर की ओर संकेत कर बोला, वह सामने वाला घर ऊषा बहन जी का है ।'' अन्ततः पू. धर्म जी उतर कर अन्दर आईं और सामने मिली श्री ऊषा बहन जी । धर्म जी ने पुनः इन्हीं से पूछा ''आप ऊषा जी हैं,'' बस यह सुनना था कि प्रसन्नता में भरी पू. ऊषा बहन जी भागी चली आईं और बोली अहा ... अहा.. धर्म जी आ गईं – ऐसा लगा जैसे वे पूर्व से ही परिचित थीं । उत्साह और उमंग–पूर्ण वातावरण छा गया । दोनों का मिलन हुआ । कैसा था यह सब ! यह तो कौन कह सकता है, परन्तु श्री कृष्ण प्रेम दीवानी दो सखियों का सम्मिलन हुआ । श्रीकृष्ण चर्चा सहज प्रवाहित होने लगी जिसमें भीगीं यह श्रीकृष्ण प्रेम–दीवानी सखियां तथा अन्य बहनें । पू. बोबो की प्रबल धारणा– एकाग्रता कुछ ऐसी थी कि चाह कर भी, धर्म जी, विमला जी की बजाय श्री ऊषा बहन जी से ही मिलीं ।

पू. धर्म जी का एक बार पुनः अम्बाला आना हुआ । श्री ऊषा बहन जी को इस बात की सूचना मिली । वे तुरन्त मिलने गईं । बात चीत के उपरान्त पू. बोबो विमला जी से बोलीं, ''मुझे बहुत भूख लगी है। कुछ दो'' विमला जी के यहाँ उस समय तक सब समाप्त हो चुका था । उन्होंने अपनी असमर्थता दर्शायी, परन्तु श्री ऊषा बहन जी बार बार आग्रह करती रहीं । विचित्र बात यह थी कि वे कभी घर पर भी खाने के लिये न कहती थीं । आज अपने स्वभाव के सर्वथा विपरीत उनका यह आग्रह देख सभी स्तब्ध हो रहे थे । कुछ देर बाद श्री धर्म जी ने संकोच से कहा, 'मेरे पास कुछ परांठे अवश्य रखे हैं' । श्री धर्म जी ने यह घटना सुनाते हुए यह कहा था, 'मेरे पास रखे परांठों का बोबो को पूर्व में पता लग गया था । कदाचित् उन्हें ग्रहण करने के लिये ही उन्होंने इस प्रकार आग्रह किया । उनके इस स्नेह और आत्मीयता को देख मैं विभोर हो गई ।'

इस बार धर्म जी अम्बाला आईं तो यहीं रह गईं । लीला–कथा के सुख का आकर्षण तो था ही । इसी विद्यालय में जहां श्री ऊषा बहन जी प्रधानाध्यापिका थीं– इन्होंने भी कार्य करना प्रारम्भ कर दिया । मानों भक्ति स्रोत प्रवाहित होने लगा । क्यों न हो, श्री कृष्णानुराग मत्ता दो सखियों का सामीप्य; श्री कृष्ण कथा के अतिरिक्त हो ही क्या सकता है ! सत्संग के प्रति सभी में इतनी उमंग रहती कि छुट्टी के दिन, छुट्टी के समय

के बाद, पाठशाला के समय से पहले, यही नहीं, एक से दूसरे कमरे में जाते समय, लगता दो पाठशालाऐं साथ-साथ एक ही स्थान पर जहां कर्तव्य परायणता, सच्चाई और न्याय के प्रति सम्पूर्ण आग्रह है (पू. बोबो कहा करती थीं स्कूल के समय में यदि मेरे मन में कोई पंक्ति भी स्फुरित हो जाती तो अपनी कर्तव्य परायणता वश मैंने कभी उसे कागज पर नहीं लिखा) वहां बच्चों की पढ़ाई का ध्यान तथा अपने प्राणधन श्याम सुन्दर की स्मृति एक सामीप्य बन प्रत्येक समय कौंधती रहती । एक ही समय में दो, दो पूर्णताऐं असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हैं- प्रसङ्गवश एक बार पू. बोबो ने कहा था, 'एक ही समय में इसी मन और तन से कई कई कार्य मैंने किये हैं' एक ही समय में चार चार लोगों से बात करते, सभी का पूर्ण समाधान करते, देखने का सुअवसर लेखक को भी प्राप्त हुआ है दिव्य थी उनकी मानसिक तथा शारीरिक क्षमता ।

पू. बोबो के जीवन में श्री मद्भगवद्गीता का बहुत बड़ा योगदान था । श्रीकृष्ण की श्री मुख से निसृत इस दुर्लभ वाणी और उसके विषय के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी । बहुत छोटी आयु में ही इन्होंने उसका अध्ययन कर लिया था । अनेक बहन, भाइयों को तथा साधु सन्तों को भी इन्होंने इसका अध्ययन कराया । वास्तव में श्री गीता इनके जीवन में एक सुदृढ़ भित्ति बन उतर चुकी थी । इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का पाठ भी घर में चलता ही रहता था । समस्त पुराण, चैतन्य चरित्र, रामकृष्ण परमहंस चरित्र, उपनिषद् तथा अन्य अनेक ग्रन्थों का नित्य पठन-पाठन चलता रहता । श्री कृष्ण चर्चा स्वभाव बन जीवन में ओत-प्रोत हो गई थी।

श्री द्वारका सिंह जी से परिचय

अमृतसर निवासी तथा वृन्दावन के प्रेमी श्री द्वारका सिंह जी की श्रद्धा तथा संकीर्तन-प्रेम, विख्यात है । लाहौर (पंजाब) से ही वृन्दावन के प्रति उनकी निष्ठा रही । पू. बोबो के विषय में पता लगने पर दर्शनार्थ अम्बाला आए । पू. बोबो की आध्यात्मिक अनुभूति तथा प्रिया-प्रियतम के चरणों में दृढ़ अनुराग ने उन पर जादू सा कर दिया । इनके प्रति समादर भाव रखते थे । वृन्दावन दर्शन करने जब भी आते पू. बोबो से भी अवश्य मिलते । पद संकीर्तन द्वारा श्री ठाकुर जी को रिझाते ही थे ।

पू. बोबो के प्रति अगाध श्रद्धा बनी रही । श्री ठाकुर सेवा तथा इनके आत्मीयता तथा स्नेह के स्वभाव से बड़े ही प्रभावित होते ।

❑❑❑

तेईस	अनेक साधुओं से परिचय - श्री बंगाली स्वामी जी,

आन्ध्र वाले स्वामी जी, श्री बालकृष्ण दास जी (मामाजी) संत श्री सेवादास जी, गौ० बिन्दु जी महाराज, श्री सुदामा जी- पं. जयभगवान जी

— — —

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे -
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावदेशे त्वयि जायते मतिः ॥***

श्रीमद्भागवत १०/५१/५४

सूर्य कभी कमल से कहने नहीं जाता कि वह उदित हो गया है और न ही कभी चन्द्रमा ने चकोर से अपने उदय होने की बात कही। भ्रमर से कोई नहीं कहता कि पुष्प विकसित हो गया है, समुद्र को पूर्णिमा की तिथि स्मरण नहीं करानी पड़ती । जहाँ पराग होगा भ्रमर आएगा ही, चन्द्र उदय होने पर चकोर सजग हो ही जाएगा, सूर्योदय के साथ-साथ कमल खिल उठेंगे, और पूर्णिमा की रात को समुद्र अपनी उत्तुङ्ग हिलोरों के मिस चन्द्रमा को स्पर्श करने को अकुलाएगा ही । पुष्प विकसित होंगे तो सुगन्धि सभी जगह परिव्याप्त हो जावेगी- यह मारुत, सुगन्धि के इच्छुक जनों तक उसे अवश्य पहुंचा देगा। ठीक ऐसा ही रहा पूजनीया बोबो का जीवन ।

श्याम रंग में सिक्त-स्नात, उनकी श्याम सुन्दर में अनुरक्ति यत्र-तत्र-सर्वत्र ही छा गई । प्रेम की वह सरिणी अपने घर आने वालों को तो आप्लावित कर ही रही थी-अब उसका वेग बांध तोड़ बहा, तो आस-

***हे अच्युत ! संसार की नाना योनियों में घूमने वाले पुरुष के बन्धन का जब तुम्हारे अनुग्रह से नाश होने का समय आता है तब ही उसे सत्संग प्राप्त होता है । और जब साधु समागम होता है, तभी साधुओं के शरण्य कार्य कारणों के नियन्ता आप परमेश्वर में मति स्थिर होती है ।

पास के क्षेत्र में फैल गया, सराबोर करने लगा– उन सभी रसिक हृदयों को आलोड़ित करने लगा जिन्हें श्याम सुन्दर की रूप माधुरी ने यत्किञ्चित् भी आकृष्ट किया था। घर में आने जाने वालों का समागम होने लगा। अनायास ही अनेक संतों की कृपा बरसी। उनसे विचारों का आदान प्रदान हुआ। आध्यात्मिक चर्चा भी हुई। मिस कोई भी रहा हो, उनके वातावरण ने, उनकी सन्निधि ने घर में आध्यात्मिक वातावरण परिव्याप्त कर दिया। नीचे हम उनमें से कुछ महानुभावों के विषय में संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं :-

आंध्र वाले स्वामी जी

सत्संग में आने वालों में घर आने वाले बहन भाई तो होते ही थे, इधर विद्यार्थियों का भी श्रीकृष्ण चरणों में अनुराग प्रकट होने लगा। उनका घर आना जाना प्रारम्भ हो गया। इनके मधुर और मृदुल स्वभाव वश अनेक संतों, साधुओं का सान्निध्य बना रहता। इसी प्रसङ्ग में एक बंगाली सन्त से परिचय हुआ। सफेद वस्त्र धारण करते थे। इन्हें सफेद पोश स्वामी जी भी कहते थे। इन्हीं के साथ साथ एक अन्य महात्मा जो आंध्र वाले स्वामी जी के नाम से पुकारे जाते थे, वे भी आए। इन आंध्र वाले स्वामी जी को ही श्रेय है पू. बोबो के यहां, भोर में संकीर्तन प्रारम्भ करवाने का। वे सदा इनके पिता से कहा करते, "ओ मैन ! सुबह उठकर जो इधर उधर की बातें करता है, संकीर्तन क्यों नहीं करता।" पिता भगवद्भक्त थे, झट मान गए।

उनका बहन जी के प्रति अत्यन्त स्नेह तथा वात्सल्य था। साल में प्राय: एक दो बार अवश्य ही आकर कुछ दिन निवास कर चले जाते। बहन जी से अध्यात्म चर्चा कर बड़े ही प्रसन्न होते।

बंगाली स्वामी जी

बंगाली स्वामी जी का प्राय: वर्ष में एक दो बार आने का नियम था। कण्ठ सुललित था। संस्कृत श्लोक, गीत–गोविन्द की अष्टपदी उसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण लीला परक अनेक पदों का गान कर मग्न रहते। पू० बोबो अनेक बार कहा करती थीं 'जो सुख स्वामी जी महाराज के पद गान और संस्कृत श्लोकों को सुनकर होता था वह अवर्णनीय था।' बीमारी के दिनों में श्री स्वामी जी से पद सुनकर मन विभोर हो जाया करता था। बीमारी का विस्मरण प्राय: हो जाता। पू० बोबो की अत्यधिक व्यस्तता में, बीच–बीच में पदों का गान करते। इनकी प्रशंसा करते हुए एक बार पू० बोबो ने कहा था 'मेरी व्यस्तता में, पाठशाला की कापियां देखते समय, पुस्तक

लिखते समय बीच-बीच में इनके पदगान सुनकर मेरी सब थकान दूर हो जाया करती थी। एक जीवन्त शक्ति का संचार हो जाया करता था। इस स्फूर्ति को ले, उसके मूल में छिपी युगल की रस माधुरी का पान कर उसमें आप्लावित हो, यह शरीर एक नवीन उत्साह में भर जाया करता था, वरना यह शरीर इस प्रकार का बाह्य भार वहन करने योग्य कदापि न था।

श्री धाम वृन्दावन, वृन्दावन विहारी तथा उनकी सखियों की लीला-कथा, उनकी स्मृति इन्हें कई बार आलोड़ित कर देती, सराबोर कर देती। अनेक बार प्रत्यक्ष हुई अनुभूतियाँ आश्वासन प्रदान करतीं, इनकी रागमयी उमंग-तरंगों को सहलातीं, सत्कारतीं। कई बार वृन्दावन चले आने को, श्याम-सुन्दर के निजघर, अपने घर ब्रज में भाग आने की इच्छा इतनी प्रबल और आवेग पूर्ण होती कि शरीर से किसी प्रबल आवेग वश अपने को वृन्दावन में ही पातीं तथा प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में खो जातीं, आत्म विभोर हो जातीं। इनकी यह स्थिति कोई साधारण न थी। वे साधारण नहीं थीं, असाधारण थीं, वैसा ही असाधारण उनका चरित्र और व्यक्तित्व था।

श्री बालकृष्ण दास जी महाराज (मामाजी)

हाँ ! तो घर में साधु सन्तों का जमाव सा ही रहता था। चर्चा तथा सत्संग अनवरत चलता रहता था। यदि कोई वृन्दावन से आया है, तथा वहां की चर्चा करता है, इन्हें पता चलता तो अत्यन्त प्रसन्न होतीं। इस प्रकार अनेक महात्माओं से भेंट होती- और अनेक बार आत्मीयता वश बहुत से संत घर पर चले आते तथा ब्रज सम्बन्धी चर्चा करते। ऐसे अनेक महात्माओं में ब्रज के प्रसिद्ध संत श्री अवधदास जी के शिष्य श्री बालकृष्ण दास जी; वृन्दावन आते जाते प्रायः इनके यहां ठहरते। ये एक गौड़ीय महात्मा हैं, नाम निष्ठा, वृन्दावन भावना तथा वैराग्य इनके जीवन में भरपूर है।

श्रीकृष्ण चरणों में अनुराग-तथा ब्रज लीलाओं का परम सुख पू० बोबो के यहां प्रवाहित होता रहता था। पू० बोबो के मृदुल स्वभाव तथा अध्यात्म संग से इतने प्रभावित होते थे कि उनसे मिलने प्रायः चले आया करते और फिर लीला चर्चा का सुख प्रवाहित होने लगता। वे प्रायः कहा करते "अम्बाले में जिस सुख का अनुभव बहन जी के सान्निध्य में हुआ है वह वर्णनातीत है। इनके यहां प्रवाहित भक्ति धारा का स्रोत ही कुछ ऐसा चलता कि उससे अलग होने को जी नहीं चाहा करता था।"

श्री सुदामा जी

इन्हीं दिनों अम्बाला शहर निवासी, ब्रज-प्रेमी पं. कमल नयन जी से, जो सुदामा जी के नाम से विख्यात थे, परिचय हुआ। उनका सख्य भाव सिद्ध था। पं. कमल नयन जी, स्वभाव से बड़े ही विनोदी, प्रत्येक क्षण हाथ में माला लिये, सांसारिक प्रत्येक सौन्दर्य में भी उसी अखण्ड माधुर्य को देखने का उनका स्वभाव ही था। पू. बोबो की भक्ति भावना से बहुत ही प्रभावित होकर दर्शनार्थ चले आया करते थे। श्री कृष्ण चर्चा करते और सुनते भी। पू० बोबो के आदर्श जीवन, भक्तिपूर्ण भाव, युगल सेवा- सभी से अत्यन्त प्रभावित थे- प्राय: इन्हें श्याम सुन्दर की अन्तरङ्ग सखी कहकर सम्बोधन करते।

अम्बाला शहर से प्राय: इनके दर्शन करने चले आया करते तथा सत्संग के लिये वहीं दो चार दिन ठहर भी जाते। पिता तुल्य थे परन्तु पू० बोबो के प्रति श्रद्धा के साथ-साथ भाव और निष्ठा रखते थे।

पंडित जयभगवान जी तथा श्री स्वरूप जी

पू० बोबो का जीवन भक्ति भावना से ओत-प्रोत था ही। बाहर के लोगों में बहन जी के विषय में एक श्रद्धाभाव बना रहने लगा था। यह बात आस-पास वालों में विख्यात हो चुकी थी- अब दूर दूर तक फैलती जा रही थी। अम्बाला शहर निवासी पं. जयभगवान जी तथा श्री स्वरूप जी श्रीकृष्ण कथा के प्रेमी थे- उन्हें भी पू० बोबो पर श्री ठाकुर जी के कृपा-अनुग्रह की बात पता चली। इनके दर्शन करने की अभिलाषा मन में संजोए अम्बाला छावनी चले आए। बाहर के कमरे में पू० बोबो के पिताजी बैठे थे- दो मिनट रुक कर कुछ संकोच सा करते उन्होंने पूछा, "श्री ऊषा जी का मकान यही है" उन्होंने 'हां' कर दी। वे पास आकर बैठ गए, धीरे से बोले, "वे आपकी क्या लगती हैं ?" श्री कृष्ण चरणों में उनकी प्रगाढ़ प्रीति है और उन्हें श्री कृष्ण दर्शन हुआ है, हम उनके दर्शन करना चाहते हैं " पिता जी यद्यपि इस सब से भली-भाँति परिचित थे- अपनी पुत्री के विषय में सब कुछ जानते थे, परन्तु इस विचार से कि यह ख्याति कहीं पथ में बाधक न हो जाए, इसी वात्सल्यवश उन्होंने कहा, "ऊषा मेरी ही लड़की है, श्रीकृष्ण चरणों में उसकी प्रीति है अवश्य परन्तु श्रीकृष्ण साक्षात्कार उसे हो गया है, अवश्य ही आपको यह कह कर किसी ने बहका दिया है।" उन्होंने आवाज दी, और कूदती-फांदती उनकी मुन्नो

वहां चली आई। उन दोनों नवागन्तुकों ने अभिवादन किया– वे देखते के देखते रह गए। पं० जयभगवान जी ने एक बार बाद में मिलने पर कहा था, ''मैं देखता का देखता रह गया– उनके मुख के तेज को, नेत्रों के सौन्दर्य को, वाणी की माधुरी को और विनय की साक्षात् मूर्ति को। अवश्यमेव श्री कृष्ण कृपा प्राप्त भक्त ही इन सब अलंकारों से विभूषित हो सकता है।'' पुनः आने की बात कह कर वे चले गए।

इधर पिताजी ने श्री ऊषा बहन जी को पुकार कर कहा, ''देख मुन्नो ! मैंने तेरे श्रद्धालुओं को टिकने नहीं दिया। यह प्रतिष्ठा कई बार अत्यन्त बाधक हो जाती है।'' प्रसन्न होते हुए उनकी मुन्नो ने कहा, 'मुझ में प्रतिष्ठा लायक ऐसा है ही क्या ? आपने बहुत अच्छा किया।' यह बात सर्वमान्य है कि अविवेकी पुरुष प्रतिष्ठा मिलने पर ह्रासोन्मुख हो सकता है, क्योंकि पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकैषणा में सबसे घातक लोकैषणा को ही माना गया है। विवेकशील लोगों पर सहसा आई इस प्रतिष्ठा का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। पिता के लिये मुन्नो, पुत्री पहले थी और भक्त बाद में। उनकी मुन्नो, रस की उस प्रगाढ़ता से सिंचित थी जहां विवेक है, गाम्भीर्य है, ठहराव है, गरिमा है और है अविचलित वृत्ति। उस गाम्भीर्य को पवन चंचल नहीं कर सकता, वहां गहराई है तो नील सिन्धु की, सौन्दर्य है तो श्याम–घन का, विलास है श्यामचन्द्र की सुशीतल रश्मियों का, जहां आनन्द ही आनन्द है, मस्ती ही मस्ती है; तन्मयता है, परन्तु उस तन्मयता में सजगता सर्वथा बनी रहती है और यह सजगता पुनः पुनः तन्मयता को लेकर ही सराबोर करती है।

एक बार श्याम–सुन्दर की गीतोपदेश स्थली के दर्शन करने का कार्यक्रम बना। पू० बोबो के साथ अनेक स्वजन थे। पं० जयभगवान जी इनकी अगवानी हेतु पहले से ही ज्योतिसर (कुरुक्षेत्र) पहुंच चुके थे तथा प्रतीक्षा रत थे। इनके प्रति वात्सल्य तो था ही साथ–साथ स्नेह था और अन्तर में छिपी एक समादर भावना उन्हें सर्वदा उद्वेलित करती रहती थी। घोड़े की टप–टप ध्वनि के रुकने के साथ ही हम सब तांगे से उतरने का प्रयास करने लगे। दूर से ही देख पंडित जी प्रसन्नता में भर उछल पड़े। चलते–चलते प्रतीक्षा में खड़े, कच्चे कोयले से एक दीवार पर लिखा एक शेर पढ़वाया और बोले, 'बहन प्रतीक्षा करते करते जब थक गया तो यह शेर लिखा' :–

सरे राहे मुहब्बत कोई यों लिख कर लगा देवे।
यहाँ से बचके निकलें सैर ए दुनियां देखने वाले ॥ ***

आँखों में अश्रु प्रवाह था वाणी में कम्पन। ऐसा था पंडित जी का बहन जी के प्रति स्नेह, जो श्रद्धा के सुमन अर्पित कर धन्य होता रहा।

श्री सेवा दास जी

एक और महान विभूति से मिलन हुआ। काश्मीर राज्य के दीवान श्री चौपड़ा जी के सुपुत्र श्री सुख चैन चौपड़ा बाद में इंडियन नैशनल आर्मी में कर्नल चौपड़ा नाम से विख्यात हुए। अंग्रेजी सरकार ने वारंट जारी कर दिये थे। भूमिगत हो, कार्य में संलग्न रहे। पीछे मलाया सिंगापुर चले गए। भारत स्वतंत्र होने पर लौटे तो रमणमहर्षि से दीक्षित होकर सेवा दास के वेष में। पू० बोबो के यहां सत्संग में आते। संकीर्तन और उच्च स्वर से नाम जप करना, करवाना उन्हें अच्छा लगता था। बहन जी के यहां घंटों यह क्रम नियमित रूप में चलता। वे सदा कहा करते 'श्री ऊषा जी की संगति में नाम का जो रसास्वादन मिला, श्री कृष्ण लीला कथा का जो सुख मिला है– उसका अनुभव ही किया जा सकता है।' बहन जी का व्यक्तित्व जिसने अनेक महत्‌जनों को प्रभावित किया, निस्संदेह उत्कृष्ट था।

गोस्वामी बिन्दु जी महाराज

अयोध्या निवासी पंडित श्री अयोध्या प्रसाद जी के नाम से, रामायण के प्रेमी और श्री रामभक्त सर्वथा परिचित होंगे। यही श्री बिन्दु जी के नाम से विख्यात थे। श्री राम जी के अनन्य उपासक थे तथा मानस पर इनका अधिकार था। भव्य स्वरूप, गौरवर्ण, वाणी में चमत्कार, जहां कहीं कथा कहते, दरो-दीवार गूंज जाते। श्रोताओं के समूह उमड़ पड़ते। 'मोहन मोहिनी' पुस्तक लिखने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है, वास्तव में उसमें उनके हृदय के उद्गार ही व्यक्त हुए हैं।

वे पू० बोबो के पिता जी के मित्र थे। घर आना जाना रहता ही था। इधर सनातन धर्म सभा वाले, मन्दिर के उत्सवों में प्रायः इन्हें भी बुलाया करते। मानस के वक्ता तो होते ही थे, अनेक बार सभापतित्व का भार भी इन्हें सौंपा जाता। इधर पू० बोबो का भक्ति साहित्य पर

*** प्रियतम की गली के पास कोई विज्ञजन यह लिख देवे कि सांसारिक कामनाओं और भोगों का आस्वादन करने वाले इस रास्ते से होकर न जावें

अधिकार था- श्री राम साहित्य उनके लिये साहित्य मात्र न था, प्रत्युत उनकी जीवन धारा का एक अभिन्न अंग था। रामचरित मानस के आधार पर अंताक्षरी में एक ही प्रतियोगी समूह से चौपाईयों का धारा प्रवाह उच्चारण देख वे स्तब्ध और स्तम्भित रह गए। बहन जी से बोले, "मुन्नो ! तूने इतनी छोटी अवस्था में इतना अध्ययन और धारणा शक्ति कहां से अर्जित कर ली है।" वास्तव में यह कोई व्यवहारिक ज्ञान तो था नहीं, यह तो ईश्वर प्रदत्त दैवी गुण था। पू० बोबो की स्मृति और धारणा शक्ति को देख लगता था इतना अध्ययन एक जन्म में ही इतनी छोटी अवस्था में कर पाना, निश्चय ही समय-समय पर प्रकट होती उनकी पूर्व स्मृति का ही द्योतक है।

अन्ताक्षरी हो या प्रवचन, काव्य सम्मेलन हो अथवा उर्दू भाषा का मुशायरा, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, श्री राम नवमी तथा सभा के वार्षिक सम्मेलनों में बहन जी भी उन प्रतिभा सम्पन्न वक्ताओं में एक होतीं, जिन्हें आमन्त्रित किया जाता था। उनका यह ज्ञान ही विज्ञान के रूप में अनेक बड़े-बड़े लोगों में, विद्वत्-समाज में उनकी ख्याति का एक सूत्र बनकर सामने आया।

श्री बिन्दु जी विद्वान थे, इनकी विद्वत्ता का आदर करते थे। पिता के मित्र होने के नाते इन्हें अपनी पुत्री ही मानते थे। पू० बोबो का स्वास्थ्य बिगड़ने के उपरान्त एक बार इन्हें अपने साथ काश्मीर जलवायु परिवर्तन हेतु भी ले गए। एक बार वे बहुत ही चिन्तामग्न थे, पू० बोबो से पूछा, 'ऊषा जी ! मुझे क्या करना चाहिये' पू० बोबो ने बड़ा ही सरल सा उत्तर दिया था, 'महाराज जी ! मन: स्थिति बिगाड़ने में मूल जो धन है, आप इसका परित्याग कर दें, सब ठीक हो जावेगा।' वे थे तो बहुत ही विज्ञ, सजग हो इनके प्रति आभार प्रदर्शन करने लगे।

पू० बोबो में दिव्य शक्ति थी। वे अपने ध्यान की प्रगाढ़ता वश आपको शून्य में ले जा सकती थीं। (सिर चढ़ा होने के नाते उनसे अनेक बार रूठ इस स्थिति का अनुभव लेखक को भी हुआ है) बिन्दु जी महाराज को किसी घटना के परिणाम स्वरूप चिंता बनी थी। नींद आ नहीं रही थी, सिर में भयंकर कष्ट हो गया। पू० बोबो को भी पता चला। वे सहज वहां गई, उनसे सोने के लिये कहा और वात्सल्य वश उनकी पीठ पर हाथ फिराने लगीं। बिन्दु जी महाराज अपनी इस बिटिया से यह कह कर फूट-फूट कर रोने लगे- 'ऊषा जी ! मेरे पिता अत्यन्त क्रोधी थे। एक

बार कुछ गड़बड़ करने पर उन्होंने ताड़ना की, मारा। इतना मारा कि निज जननी को लगा मेरा जीवन नहीं रहेगा। वह भागी आई और मेरे ऊपर आकर लेट गई, मेरे मर्मों को सहलाने लगी। जो वात्सल्य सुख की अनुभूति मुझे जननी के उस स्पर्श में हुई थी, उसी का अनुभव जीवन में पुनः हुआ है। तुम मेरी मां हो, मेरी बेटी तो हो ही।' पू० बोबो की करुणा और प्रेम का स्रोत निसृत था किसी अखण्ड प्रेम-पुञ्ज से। उसी को पा- भगवत्भाव से उस स्नेह को उन्होंने जगत में वितरित किया।

पू० बोबो वृन्दावन चली आईं थीं। और बांके बिहारी कालोनी में रह रही थीं। श्री कृष्ण जन्माष्टमी का दिन था। गोस्वामी बिन्दु जी महाराज इधर से निकल रहे थे। साथ थे गण्य मान्य पंडित श्री बलराम मिश्र। सहसा इनके यहां चले आए। देखा कमरे में एक़ चटाई के अतिरिक्त कुछ भी न था- उसे पू० बोबो ने इन दोनों के बैठने के लिये सरका दिया। बिन्दु जी हंसते रहे- श्री कृष्ण चर्चा करते रहे। खांसी आने पर बोले, 'कुछ है ? पू० बोबो ने बड़े ही संकोच वश कहा ''महाराज जी........ यहां तो .....'' पूछने लगे 'इलायची है'। पू० बोबो ने असमर्थता दर्शाते हुए न कर दी। बोले, 'लौंग है तो वही दे दे।' वह भी उपलब्ध न थी। पुनः बोले, 'सौंफ हो तो वही दे दे।' पुनः वही उत्तर पा कर अश्रु प्रवाहित करते हुए कहने लगे, 'मिश्र जी ! सुनता था ब्रज में आकर अपने को रज में मिला देना चाहिये। आज प्रत्यक्ष में देख कर मैं धन्य हो गया हूँ। एक हाई स्कूल की प्रधानाध्यापिका एम. ए. तथा साहित्य रत्न कर लेने के साथ इतनी लोकप्रिय तथा एक सम्भ्रान्त परिवार की बेटी वृन्दावन में इतनी विरक्ति से रहेगी ! ओह ! धन्य है यह, जिसने प्रेम के साथ-साथ, त्याग का महान आदर्श स्थापित किया है। ठीक भी है प्रेम का मार्ग ही ऐसा है।' प्रेम त्याग की भित्ति पर ही टिकता है और त्याग प्रेम में ही सुलभ है। क्योंकि Love is giving, and giving alone and not taking.

पू० बोबो के त्याग तथा तितिक्षा एवं श्री कृष्ण चरणा- नुराग की गाथा अनेक लोगों ने गाई है।

□□□

तेरे अंगनि की शोभा लख
सखि ! हार गये कोटिक मनसिज ।
तेरे श्वासों की सौरभ से
सुधि भूल गए अनगिन सरसिज ॥

X

लखि स्वर्णिम गात छटा तेरी,
चौंकी बिजुरी घन अंक दुरी ।
घन घोर घटा थहरी लखि कै
घनकेश छटा बिथुरी बिथुरी ॥

X

अनियारे लोल नयन निरखे
झट मीन छिपीं जा कर जल में ।
यह गोल कपोल निहारे जब,
हलचल व्यापी शशि-मण्डल में ॥

X

मृदु अधर माधुरी के सम्मुख
पीयूष मधुरिमा सकुचाई ।
शीतल मुस्कान प्रभा लखि कै
वन शरच्चन्द्रिका शरमाई ॥

X

कमनीय करों को देखा तो,
रह गये स्तब्ध कोमल पल्लव ।
मृदु अंगुरिन की कोमलता पर
बलिहार गये अंकुर नव नव ॥

X

तेरा सरसीला स्वर सुनकर
जा छिपी आम्र वन में कोयल ।
पग पायल की मृदु रुन झुन पर
लज्जित वीणा के स्वर कोमल ॥

X

औरों की बात कहा आली
जब रूप मधुरिमा के सागर ।
तेरी छवि में मज्जित होकर
हैं मुग्ध लुब्ध वे नव नागर ॥

१४-१०-६८

प्रथम भाग

षष्ठम अध्याय

२२९ से २५५ तक

नैननि भरि अनुराग-रस
सैननि सों बतरात ।
कर फेरत वनमाल पै
मन्द मधुर मुस्कात ॥

काह कहौं उनकी सखी,
उनको नेह अपार ।
सरबसहू थोरो लगै,
काह करौं बलिहार ॥

चौबीस

वृन्दावन आने की उत्कट चाह-

विद्या गुरु का निधन

श्री कृष्ण इच्छा से कुछ भाइयों पर कृपा

हरिरेव जगज्जगदेव हरिः
हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः ।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः
स नरो भव सागर मुत्तरति ॥ ***

गुरु गीता ॥

वृन्दावन और वृन्दावन विहारी की बात ब्रज प्रेमियों के अधिकार की परिसीमा में बंधी है । अपने प्राण सर्वस्व की माधुरी और रसमयी लीलाओं में पगा मन, और चिंतन भी क्या करे ? जहां श्री कृष्ण के प्रति समर्पण है, उनकी लीलाओं का चिन्तन मनन है, उसी की विकल चाह, लीला माधुरी को सम्मुख प्रकट कर देती है । प्रकट तो है ही- बस भासने लगती है, दीखने लगती है तथा अपने सन्निकट कर लीला में सम्मिलित कर लेती है । जहां एक ओर सरस रस सिन्धु में अवगाहन कर प्रेमी जन मग्न हो जाते हैं, अपना अभीष्ट पा आनन्द में सराबोर हो जाते हैं- वहीं भगवान की विश्व में परिव्याप्त सत्ता से वे पलायन नहीं करते । उन्हीं की इच्छा से उन्हीं का कार्य मान सन्त जन परिव्याप्त ब्रह्म के प्रति भी निष्ठा बनाए रहते हैं । यह निर्विवाद है कि सच्चे सन्तों का मन, व्यापक सत्ता के प्रति करुणावान होने पर भी, अपने लक्ष्य पर, अपने जीवन सर्वस्व के प्रति पूर्णतः केन्द्रित तथा समर्पित रहता है । अनेक बार भगवदिच्छा से ही वे महानुभाव बहुत सी ऐसी लीलाओं के हेतु भी बनते हैं, जो उनके चरित्र को और-और प्रकाशित कर भगवान् की ओर अग्रसर होने वाले जीवों के लिये मार्ग प्रशस्त करती हैं । ऐसे ही एक अभूतपूर्व योग का वर्णन हम आगे करेंगे ।

*** हरि ही जगत है, जगत ही हरि है, हरि और जगत् में किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं है, जिसकी ऐसी मति है, उसी की परमार्थ में गति है, वह पुरुष संसार सागर को तर जाता है ।

हां ! तो पू० बोबो का मन वृन्दावन चले आने के लिये आकुल व्याकुल रहता था । सभी सुयोग लगभग आ जुटे थे । किसी भी घटना से, किसी भी चर्चा में, इनके मन का तादात्म्य इतनी गहराई से हो जाता कि वह दृश्य इनके लिये प्रत्यक्ष हो जाता । श्रवणों और नेत्रों के लिये वह दृश्य समान हो जाता । अनेक बार अपने भाव नैवेद्य, शिकायतों के मिस श्याम सुन्दर के चरणों में अर्पित करतीं और कभी दैन्य पूर्ण अपनी भावनाओं को उनके श्री चरणों में अर्पित करतीं । यही नहीं कई बार परम सुख की चाह तथा मांग इतनी प्रबल होती कि यह दैन्य क्षुब्ध सा भी कर देता । कभी मीरा जी की पंक्तियों को दोहराने लगती । 'वैद्य सांवरिया होई और अनेक बार 'दर्द के मारे बन बन डोलूं' कह श्याम सुन्दर से निवेदन करतीं, कई बार उनके अनुग्रह और अपनत्व की बात स्मरण कर रस मग्न हो जातीं । कभी उर्दू काव्य में प्रेमियों की दशा का स्मरण कर उनकी मायूसी, नाले शिकवे और फरियाद करते रहने का सोच चुप हो जातीं और दूसरी ओर सौन्दर्य-माधुर्य के अकारण करुणावरुणालय श्याम सुन्दर अपने जनों के मन की जान, उनके सामने मूर्तिमान हो सरस, सुकोमल भुज तटों का आश्रय प्रदान करने को आकुल बने रहते हैं इस विचार के आने से खिल उठतीं । अनेक विचार, भावनाऐं मन में उठतीं और विलीन हो जातीं। केवल एक ही रट थी इनकी, एक ही आशा थी, एक ही लक्ष्य था, और उसी की प्राप्ति उनका ध्येय था, उनकी उत्कट इच्छा थी, अपने घर वृन्दावन में आ कर प्रिया-प्रियतम की नित्य सन्निधि में रस माधुरी का आस्वादन करने की, उनके साथ-साथ, उन्हीं की सन्निधि में सतत रहने की ।

अपने अनुबन्धों और प्रतिबन्धों की विवशता वश अम्बाला में ही अपने श्याम-सुन्दर की सन्निधि में, उनकी लीला-चर्चा में समय व्यतीत करने लगीं ।

पू० बोबो का मन वृन्दावन चले आने के लिये आकुल व्याकुल होता ही रहा था, सम्भवतः वे अभी इस भाव को मूर्त रूप देने के प्रयास में ही थी । दैववशात् एक घटना घटी, इसमें श्याम सुन्दर की इच्छा जान, इन्होंने जैसे तैसे अपने मन को सन्तुलित करने की चेष्टा की । अभी भगवान ने जिस कार्य हेतु इन्हें भेजा था, सम्भवतः शेष रह गया था। कुछ और बहन भाईयों पर श्याम-सुन्दर की कृपा बरसनी थी । अतः यह योग बना और पू० बोबो को अपना वृन्दावन आने का विचार कुछ समय के लिये और स्थगित कर देना पड़ा ।

पू० बोबो के विद्या गुरु आचार्य सेवती प्रसाद, इनकी विद्वत्ता और ज्ञान के प्रति बड़े ही आशावान थे। इनकी इस अप्रतिम प्रतिभा को देख वे सदा कहा करते थे, वैसे तो हिन्दी के अनेक अध्यापक अम्बाला में अध्यापन रत हैं, परन्तु 'ऊषा जैसी ज्ञानी, तथा सुयोग्य विदुषी आज तक मेरे देखने में नहीं आई। हिन्दी भाषा पर इसका सम्पूर्ण अधिकार तो है ही, भगवत्पथ से जुड़े अनेक संतों, भक्तों, श्री सूरदास जी, नन्ददास जी, मीरा, हरिवंश जी, अष्टछाप के अन्य कवि भक्त, श्री कृष्ण भक्त अन्य कवि, श्री तुलसीदास जी प्रभृति सभी, भक्तों के विषय में इन्हें अतिरिक्त ज्ञान भी है, जो इन्हें संस्कारगत प्राप्त हैं। वे सदा कहा करते 'मेरे मत में हिन्दी पढ़ाने वाला, इतना कुशल अध्यापक यहां और कोई नहीं है।' वे प्रायः बीमार रहने लगे थे। उन्हें हृदय-रोगका आक्रमण भी हुआ। अपनी बीमारी में अनेक बार अपने छात्रों को साग्रह पू० बोबो के पास पढ़ने के लिये भेज दिया करते थे। इनके पास मना करने का कोई अवसर ही न था। 'गुरोर्राज्ञा गरीयसी' आज्ञा सर्वथा मान्य थी- अतः अपने कार्यभार तथा अन्य अनुबन्धों से मुक्त होने पर भी गुरु आज्ञा शिरोधार्य थी। इधर आचार्य महोदय ने एक लम्बी बीमारी के पश्चात् अपनी इहलौकिक लीला संवरण कर ली। स्वाभाविक रूप में उनके यहां के छात्र इनके पास चले आए तथा पढ़ाने के लिये प्रार्थना की, जिसे चाह कर भी यह टाल न सकीं। इनकी व्यस्तता कुछ समय के लिये और बढ़ गई।

यह अपना दृढ़ निश्चय कर चुकी थीं कि इस सत्र के बाद घर पर भी किसी विद्यार्थी को नहीं पढ़ाऐंगी। सत्र प्रारम्भ हो गया। कुछ भाईयों के साथ-साथ कुछ बहनें भी पढ़ने लगीं। अपने एकान्त ध्यान चिन्तन में बैठी थीं, दैवेच्छा से इन्होंने तीन लड़कों को अपने से अनुनय विनय करते देखा। वे सब कौन थे तथा किस हेतु से इन्हें दीखे ? यह सब स्पष्ट होते अधिक देर न लगी। अपनी संगति में किसी भी पुरुष का आना इन्हें सिद्धान्ततः सह्य न था, परन्तु यह एक ऐसा योग था, एक भगवत्प्रेरणा युत ऐसी घटना थी, जिसे नकार पाना इनके लिये असम्भव था, उस सत्र में आए दोनों छात्रों को इन्होंने पहचान लिया, अब तीसरे की प्रतीक्षा थी। वे दोनों छात्र भगवत्प्रेरणा से ही इनकी सङ्गति में आए थे। सम्भवतः इसी हेतु उनका जन्म हुआ था। उनके पूर्व की, उनके प्रारब्ध की तपस्या फलीभूत होने का समय आ गया था, भविष्य में एक सुव्यवस्थित तथा प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर होने के लिये। छः सात छात्र तथा आठ, दस छात्राओं का यह

सत्र प्रारम्भ हो गया । बहन जी की पढ़ाने की शैली तथा विशद ज्ञान छात्रों के प्रति वात्सल्य तथा आत्मीयता–विशेष, एक ऐसे अपनत्व में सराबोर करने लगे कि सभी सोत्साह इनके पास आने और बड़े ही अपनत्व से अध्ययन करने लगे । उस अपनत्व में भक्ति का पुट लगने पर एक विशेष भाव भर गया । फीस के नाम पर, न तो यह किसी से कुछ कहती ही थीं और न इस प्रकार का इन्हें विचार ही आता । गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर अपना कर्तव्य इन्हें पूरा करना था । उस कर्तव्य में एक अपनत्व का समावेष हुआ– उन दोनों छात्रों के कारण ।

एक थे अत्यन्त ही सादा और सौम्य स्वभाव श्री विश्वेश्वर भाई तथा अपनी माता के अभाव में पिता के रूखे स्वभाव तथा स्वतंत्र विचारों के दबाव में पालित पोषित श्री ओमी भाई ।

श्री विश्वेश्वर भाई का गांव से सम्बन्ध अवश्य था परन्तु उनका सादा जीवन, शालीनता और पढ़ने का कौशल अद्वितीय था । सौम्य स्वभाव और निश्छल वृत्ति ने पू० बोबो के कृपा भाजन बनने में अपूर्व योग दिया ।

इधर श्री ओमी भाई की मां का साया बाल्यावस्था में ही उनके सिर से उठ गया था । पिता की प्रकृति बड़ी ही स्वतंत्र थी । गुस्से का स्वभाव था । धन के प्रति अधिक आसक्ति रखते थे– अतः बात, बेबात ही डांटना उनका स्वभाव था । एक अभाव में ही जीवन पला था । पिता के भय से, तांत्रिक लोगों में उठना–बैठना हो गया तथा सिद्धियों के आकर्षण में अपना प्रारम्भिक जीवन बिता चुके थे । उस सबका प्रभाव स्पष्ट दीखता था।

पढ़ाने का कार्य सुचारू रूप से चलने लगा । कुछ बहनें अलग–अलग समय पर भी पढ़ने आतीं । पू० बोबो का स्वभाव बड़ा ही मृदुल तथा सरल था । विद्या को पैसे लेकर उन्होंने वितरित नहीं किया, प्रत्युत पैसे के विषय में वे सर्वथा उदासीन रहती थीं । किसी भी विद्यार्थी से फीस के लिये उन्होंने कभी कहा हो ऐसी एक भी घटना उनके जीवन में नहीं ढूंढी जा सकती । धन के अभाववश यदि कोई विद्यार्थी अध्ययन न कर पाता तो अपने पास से विश्व विद्यालय में उसकी परीक्षा शुल्क भिजवा दिया करतीं । विद्यार्थी स्वेच्छा से ही इन्हें फीस दे जाया करते थे, उसके प्रति भी इनकी अनासक्ति देखते ही बनती थी । गद्दे के एक कोने में यह राशि एक प्रकार से पड़ी रहती– आवश्यकता पड़ने पर यदि आप भी उसमें से ले लें तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती थी ।

इधर आचार्य जी की बीमारी के दिनों में एक और घटना घटी थी। पू० बोबो का स्वभाव सभी पर सहज विश्वास करने का था- उनका निश्छल प्यार और आत्म बल इतना सशक्त था कि उनके सामने किसी भी प्रकार से छल करना किसी के सामर्थ्य की बात न थी। उनके इस विश्वास को कभी आघात लगा हो, ऐसा नहीं हुआ। उनका संकल्प स्वतः सिद्ध ही होता था।

पू० बोबो के विद्या गुरु आचार्य सेवती प्रसाद जी के प्रयास से हिन्दी साहित्य रत्न का केन्द्र प्रथम बार अम्बाला छावनी बना था। दैवयोग से उसी वर्ष उनकी बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया। पू० बोबो पर उन्हें पूर्ण विश्वास था- अतः इन्हें बुला परीक्षा केन्द्र का सम्पूर्ण भार इन्हें सौंप दिया। उनका स्वास्थ्य खराब था ही, उसी रात्रि में उनका देहावसान हो गया। अगले दिन परीक्षा थी, उसे टालने के लिये साहित्य सम्मेलन की अनुमति के बिना कुछ भी सम्भव न था। समय पर ही परीक्षा प्रारम्भ हुई। आचार्य जी का पार्थिव शरीर संस्कार हेतु केन्द्र के सामने से ले जाया, जाना था। अपने विद्यागुरु को अन्तिम श्रद्धाञ्जलि देने की बात जब पू. बोबो ने केन्द्र में परीक्षारत विद्यार्थियों से कही तो उन्होंने भी अपने लिये स्वीकृति चाही। परीक्षा के समय में यह सब कैसे सम्भव हो सकता था ! फिर भी अपने सुदृढ़ विश्वास तथा संकल्प के आधार पर पू. बोबो ने, बिना किसी से बात किये एक-एक विद्यार्थी जाकर उन्हें श्रद्धाञ्जली दे तथा अपने स्थान पर आकर पुनः अपना कार्य प्रारम्भ कर लेगा, इस आश्वासन पर अनुमति दे दी। इनके दृढ़ विश्वास और संकल्प के कारण सभी कुछ व्यवस्थित बना रहा।

उधर आचार्य जी की अधूरी छूटी class को घर पर पढ़ाती रहीं। सभी विद्यार्थियों में प्रेम भावना तथा आचार संहिता का आदर्श सराहनीय था।

अध्ययन का क्रम समाप्त प्रायः हो गया। परीक्षा में अभी एक मास शेष था। पुस्तकों की आवृत्ति हो रही थी। सन १९५८ के जनवरी मास में विजय स्थानान्तरण पर अम्बाला आ चुका था। संयोग से उसका दफ्तर उसी मुहल्ले में था तथा कमरा भी आस पास ही मिल गया था। अपनी दस तक की पढ़ाई के चार वर्ष उसने पूर्व में अम्बाला में ही बिताए थे। उसी का एक मित्र पास ही रहता था और पू. बोबो से पढ़ता था। दिन में विजय तो अपने कार्यालय में होता और सत्य प्रकाश नाम का उसका एक मित्र उसके कमरे में एकान्त हेतु चला आया करता। अपनी पढ़ाई के अन्तिम

चरण में उसने विजय से भी आग्रह किया कि वह भी अध्ययन करे। पढ़ाई के नाम पर विजय के मन में एक विचार कुछ दृढ़ सा हो चुका था । उसके एक मित्र ने हाथ देख कर उसे कहा था कि दसवीं से आगे विद्या विजय के भाग्य में नहीं है, यह विचार अनजाने में ही उसके मन में घर कर चुका था, अतः उसके प्रस्ताव को विजय ने अनसुना सा कर दिया । इस बार के आग्रह ने विजय के मन में एक लालसा अवश्य जगा दी थी । नहीं कहा जा सकता उसके अनजाने में ही कोई भावना उसे इस प्रकार प्रेरित कर रही थी। विजय के मित्र ने पू. बोबो से निवेदन किया । अपने दृढ़ निश्चय स्वरूप उन्होंने तुरन्त न कर दी । आचार्य जी की अधूरी छूटी क्लास के अतिरिक्त और पढ़ाने का उनका मन था ही नहीं । पुनः प्रस्ताव करने पर भी वही नपा तुला उत्तर मिला । इधर विजय भी अपना धैर्य खो चुका था । इस बार पुनः वही उत्तर सुन कर उसने कहा, 'अब उनसे पूछने की आवश्यकता नहीं है यदि विजय को पढ़ना ही होगा तो वह कहीं अन्यत्र पढ़ेगा ।' विजय की प्रकृति किञ्चित् स्वाभिमानी सी ही थी । यह बार बार का आग्रह और प्रस्ताव उसकी प्रकृति के सर्वथा विपरीत था, परन्तु दैवयोग इससे कुछ भिन्न था- उसकी इस अक्खड़ प्रकृति और अभिभान जैसे स्वाभिमान को एक ऐसे मोड़ की आवश्यकता थी, एक ऐसे लक्ष्य की ओर गतिमान होना था, जिसकी कल्पना उसे सम्भवतः न थी, यह सब उसके वश की बात न थी। एक दैवी शक्ति और भगवत्प्रेरणा उसके अनज़ाने में ही श्याम सुन्दर की कृपा ममता, उसके मित्र के अन्तः करण को प्रेरित करती रही । उसी के वशीभूत उसने पुनः पू. बोबो से आग्रह किया ।

इस बार पू. बोबो का मन द्रवित हो गया था । भावी उनके समक्ष भी प्रत्यक्ष हो गई थी । किसी कार्य हेतु उन्हें विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ जाना पड़ा । साथ में उन्हीं की एक सहेली श्री विमला नेविल भी थीं । बस में बैठे भगवच्चर्चा करते सहसा पू. बोबो की दृष्टि खिड़की से बाहर आकाश में स्थिर हो गई, उन्होंने वहां एक लड़के को खड़े देखा । यह कौन था ? किस हेतु से दीखा ? यह विचार अभी विचारमात्र ही था कि पहले दीखे तीनों लड़कों की बात उनके सामने एक बार पुनः विद्युत की भांति कौंध गई । उन्होंने यह घटना उसी समय विमला जी से कह दी । इस बार पू. बोबो ने कहा, 'उस लड़के को लेकर यहां आना । यदि वह अन्य बहनों के साथ पढ़ने योग्य होगा तो देखूँगी ।' 'देखूंगी' शब्द सम्भवतः उन्हें प्रेरित कर रहा था- प्रत्यक्ष दीखे उस लड़के को देख पुष्टि कर लेने की । भगवत्प्रेरणा वश इसी से उन्होंने विजय को एक बार देख लेने की बात कही थी ।

कल पढ़ने जाना होगा। पढ़ने नहीं, अपना परिचय देने; संकोची स्वभाव, भोले-भाले उस बालक के मन में अनेकानेक भाव उठने लगे। अनेक बार जाने का मन होता, क्योंकि पढ़ने का मन बन चुका था, परन्तु अनेक बार सोचता, रहने दूँ। 'हां' और 'न' की ऊहापोह में कुछ भी निर्णय ले पाना कठिन सा लगा। एक जिज्ञासा और उत्सुकता वश रात्रि भोर में परिणत हो गई। वह दिवस आ पहुँचा, जिसकी प्रतीक्षा दोनों ओर बनी थी। एक ओर सर्वज्ञता वश परिचय था, विज्ञता थी और दूसरी ओर अनभिज्ञता का साम्राज्य। जैसे-तैसे कार्यालय का समय बीत गया। उस समय की प्रतीक्षा में अन्य सभी कृत्य भी शेष हो गए।

पंजाबी मोहल्ले में ही श्रीमती विमला नेविल के यहां class लगनी थी। वहीं अपने उस मित्र के साथ विजय भी जा पहुँचा। सभी अपने अपने आसन बिछा रहे थे। एक एक कर, विद्यार्थी आने लगे। थोड़ी ही देर में वह स्थान भर गया। वह नवीन बालक भी एक ओर बैठ गया। सभी को पू. बोबो के आगमन की प्रतीक्षा थी।

थोड़ी देर में टप, टप की ध्वनि सुनाई देने लगी। सभी की दृष्टि द्वार पर जा टिकी। द्वार खुला, छोटा कद, इकहरा बदन, खुले बाल, सुविशाल नेत्र तथा उन्नतभाल पर आलोक स्तम्भ की प्रतीक लाल बिन्दी लगाए, पूरे बांह का मोटे खद्दर का प्रिन्टिड ब्लाऊज तथा सफेद धोती पहने, चरणों में पादुका धारण कर एक अन्य बहन के साथ पू० बोबो प्रविष्ट हुईं। देख कर निर्णय कर लेना कुछ अस्वाभाविक न था। तेज से पूर्ण मुखद्युति, भीतर तक की भांप लेने की समर्थ दृष्टि। ओह ! इतना सादा वेष और गरिमा पूर्ण महान् व्यक्तित्व। गाम्भीर्य विरासत में ही मिला हो जैसे। देख कर उस व्यक्तित्व के विषय में केवल बाह्य साक्ष्य के आधार पर कुछ आंक पाया हो विजय, कैसे कहे ? परन्तु उस व्यक्तित्व में अन्तर्निहित एक महान आदर्शमयी उस विभूति को पहचान पाना किसी के लिये भी असम्भव सा ही था। सम्पर्क में आने पर उस महान व्यक्तित्व से निसृत रश्मियों ने उस पर जादू ही कर दिया। कोई बात हुई- सम्भवतः अध्ययन सम्बन्धी, इसकी हल्की-हल्की स्मृति विजय को रही। पढ़ते समय बीच-बीच में नीची निगाह किये बैठा विजय पू. बोबो की मुखाकृति देखने की चेष्टा अवश्य करता, इधर वे भी कभी-कभी उसकी ओर सामान्य दृष्टि से देख लेती थीं, क्योंकि वे सर्वथा समर्थ थीं- उनकी पैनी दृष्टि उस तीसरे बालक को देख समझ रही थीं, परन्तु एक ही अन्तर उन्हें भास रहा था, फिर भी उस हल्के हल्के बालों में छिपी उस आकृति को पहचानने में उन्हें अधिक

समय न लगा। समय पूरा हुआ और आज की Class का विसर्जन हो गया।

अपने घर आकर विजय के मन में एक आशंका बनी थी। कल जाने की स्वीकृति होगी कि नहीं। संदेहात्मकता अधिक न बनी रही। दूसरे दिन वह पुनः अपनी पढ़ाई के लिये चला गया। आज का रूप कल वाला न था। पू. बोबो ने उसकी दाढ़ी बनी देख, बड़ी ही स्वाभाविकता में कहा था, ''तुमने बहुत अच्छा किया। वेश बना कर रहना हमारे प्रभुजी को भाता ही नहीं। वेषधारी हरि के उर सालें'' उन्होंने पहचान रखी थी तथा सुनिश्चित किया था- कि इस बालक को कल स्वतः ही इस वेष को छोड़ने का मन हो जावेगा- वैसा ही हुआ। विमला नेविल तथा उनकी माता जी का कृपा भाजन वह बालक नित्य ही पढ़ने के साथ-साथ एक आत्मीषता वश घनिष्टता में आने लगा।

धीरे-धीरे वह सत्र पूरा हुआ। विजय का अपनत्व अवश्य हो गया था। आत्मीयता अधिक नहीं हो सकी थी। इसमें विजय का स्वभाव ही कारण था। नए सत्र में दो तीन अन्य बहनों ने पढ़ना प्रारम्भ किया। लड़कों में अकेला विजय, पू० बोबो की अत्यन्त उच्चादर्श पूर्ण मर्यादा के कारण उन्हीं के पास बैठता। लड़कियों के साथ कैसे सम्भव होता भला ? पढ़ाते समय पुस्तक की आवश्यकता होती ही थी- अतः प्रारम्भ से ही विजय को उनके पास तख्त पर ही बैठने का सौभाग्य मिलता रहा। उसके सौभाग्य से हम सभी को ईर्ष्या होती है। अपने विद्यार्थियों को अपने समान बिठा कर पढ़ाते हुए आज तक हमने किसी भी अध्यापक को नहीं देखा- सम्भव तो कुछ और भी हो सकता था। पू० बोबो ने अपने निकट बिठाया और इस सन्निकटता ने और-और निकट होने का अवसर प्रदान किया। बालक पढ़ने अवश्य आते परन्तु २-१ दिन बाद प्रायः आना बन्द कर देते। बहनों की संख्या बढ़ती चली गई। पू० बोबो का स्वभाव विनोदी था, एक बार सहज वात्सल्य वश उन्होंने कहा, ''तू ऐसा आया है कि किसी लड़के को टिकने ही नहीं देता।'' इस बात को विजय ठीक से समझ नहीं सका। अन्दर से वह खीझ उठा- परन्तु अपने इस अग्राह्य विचार के आते ही उसे क्षोभ होने लगा। उनसे मिले प्यार और अपनत्व के आगे उनका यह विनोद, मात्र विनोद ही था।

भक्ति साहित्य में विजय की भी किञ्चित् रुचि थी, पढ़ने में एक विशेष रस आने लगा। पढ़ाई केवल पढ़ाई के लिये न थीं। पू०

बोबो सर्वज्ञ थीं- वे इस सबके पीछे निहित भावना को जानती थीं, परन्तु भोला-भाला वह बालक इस सबसे सर्वथा अनभिज्ञ था। हां ! उसके मन में आकर्षण था, एक समर्पण था, एक आसक्ति थी जो परोक्ष रूप से उसे यन्त्रवत् घुमा रही थी। नवीन उत्साह में भरा वह पू० बोबो के पास चले आने का सुअवसर ढूंढता रहता।

एक बार मेघाच्छादित दिवस था। श्यामल घनों को देख पू० बोबो का मन नील सिन्धु की मधुर लहरियों में निमज्जित हो जाता। इस सबसे सर्वथा अनभिज्ञ विजय को प्रकृति के अलबेले पन ने आकृष्ट अवश्य किया। २, ४ अन्य विद्यार्थियों को साथ ले पू० बोबो उन श्यामल मेघों में किसी सरस सजल जलदद्युति श्याम-सुन्दर की शोभा का पान करने, छत पर चली आईं। देख कर पूछा, "कैसा लगता है यह सब।" कुछ भावात्मक पंक्तियां लिख सकता है। नहीं कहा जा सकता इस विषय में उसका मन कुछ सरस था, परन्तु पू. बोबो की आज्ञा शिरोधार्य थी। उन्हीं की प्रेरणा के वशीभूत उसने कुछ पंक्तियाँ अवश्य लिखीं। अपनी भावनाओं की यत्किञ्चित् अभिव्यक्ति देख पू. बोबो का मन और द्रवित हो गया। सामीप्य में प्रगाढ़ता का एक और संयोग बना। विजय का आना-जाना अभी तक विमला जी के यहाँ Class में ही होता था। पू० बोबो के घर आने जाने की अनुमति भी मिल गई। बीच-बीच में घर पर भी Class लगती। सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ने लगा। पू. बोबो के वैराग्य का प्रभाव उस पर पड़ने लगा। सादगी ने उसके जीवन में शनैः शनैः प्रवेश किया। पू० बोबो की सङ्गति वश उसकी इतर वृत्तियों पर अनायास ही रोक लग गई। बाह्य रूप से उसकी चंचलता समय के अभाव में सहज ही सिमट गई। अपनी दिव्य शक्ति से पू. बोबो सब जान गई थीं।

Class में नित्य जाने का क्रम बन गया। कह नहीं सकता कि वह उन्माद क्या था ? एक आकर्षण था, एक लगाव था, एक अपनत्व था, एक आत्मीयता थी तथा सर्वोपरि थी एक अज्ञात शक्ति जो उसे यन्त्रवत् नचा रही थी। पू. बोबो के मन का योग था, उनके मन से संयुक्त श्री श्री ठाकुर जी बरबस आकर्षित करने का एक उपक्रम बना रहे थे, संयोग जुटा रहे थे। कार्यालय जाना, समय समाप्त होते ही पू० बोबो के पास चले जाने की जो त्वरा रहती थी, जिन्होंने उसे देखा है अथवा अनुभव किया है वे ही सर्वथा जान सकते हैं। एक प्रेरणा प्रत्येक समय मन को आलोड़ित करती रहती थी, एक आकर्षण जो प्रत्येक समय व्यग्र किये रहता था, सर्वोपरि पू०

बहन जी का लाड़ और प्यार, जिसने उसकी सभी इतर वृत्तियों को केन्द्रित कर दिया, सिर पर चढ़ कर बोलता था।

Class में समय पर जाता, पश्चात् पू० बोबो उसे अपने पास रोके रखतीं। बात कुछ भी नहीं होती थी। भोली-भाली सौम्य स्वभाव वात्सल्य में पालित पोषित सजीव मूर्ति जाने किस आकर्षण मे वहां घंटो स्थिर बैठी रहती, बड़े ही आश्चर्य की बात थी। पू० बोबो कभी-कभी पूछ लिया करतीं, "ऊब तो नहीं रहा है" एक सरसता से आप्लावित सदा नपा तुला उत्तर होता, 'नहीं, कदापि नहीं।' एक सुख विशेष के आनन्द में मग्न उस बालक को बैठे रहने में कुछ विशेषता का भान नहीं हुआ- प्रत्युत बड़ा ही स्वाभाविक लगता और न ही कभी उसे यह जिज्ञासा हुई- कि वह पूछे इसके पीछे क्या कारण है ? वह बैठा रहता मौन और मूक। इस सबका रहस्य पू० बोबो जानती थीं। प्रसाद पाने के समय उन्हीं के साथ ही वह भी पा लेता। यह निर्विवाद है कि वहां बैठे रहने से उसकी इतर वृत्तियों ने एक विशेष मोड़ लिया, मित्रों के नाम पर भी अब विशेष कुछ अलग से न रह गया था, पूर्ण रूपेण परिष्कृत हो वह पू० बोबो के सामीप्य में सुखास्वादन करने लगा। माता-पिता पू० बहन जी से कई बार प्रश्न करते 'न तो तू इससे बात करती है, और न ही इसे कभी तुझसे बात करते देखा है' परन्तु वे चुप रहतीं। उनकी सन्निधि सुख में वह बालक मग्न रहता।

पू० बोबो की अध्यापन की पद्धति, विद्यार्थियों के प्रति अपनत्व, एक सच्चे स्नेह और सौहार्द में उनके हृदय का द्रवण ही था, जो उनके इस अपनत्व में, इस आत्मीय भाव में स्नात से, सभी आकर्षित हुए बंधे रहते थे। उनकी अपनी एक विशिष्टता थी। विचारों का साधारणीकरण था जो सभी के अन्तर को छूता था।' जिसके वशीभूत हुए वे सब प्रकार से Charmed से Spell Bound से बंधे रहते। सप्ताह के छ: दिनों वे जो पढ़ाया करतीं, सातवें दिन उसी के विषय में लिखवातीं। *जब कभी बिजली चली जाया करती, ऐसे समय में विद्यार्थी तो परीक्षारत रहते और हाथ का पंखा लिये एक आदर्श की स्थापना करतीं, अपने स्नेह रस से आप्लावित करतीं पू० बोबो उन्हें पंखा करती रहतीं। आप विचार करें, क्या कभी इस प्रकार का वातावरण सहज सुलभ हो सकता है ? क्या यह एक साधारण बात थी ? केवल विद्यार्थी और अध्यापक का नाता था ? उस विश्व नियन्ता के प्यार से सिक्त सिञ्चित् महद्जन ही यह स्नेह सहज वितरित कर सकते हैं। प्यार के मूल-स्रोत उस अखण्ड चिद्घन ब्रह्म के अंश से धन्य हो उसी*

रस कण का अत्यन्त उदारता पूर्ण वितरण ऐसे ही जनों का सामर्थ्य हो सकता है । उन्हीं प्रेम की अखण्ड सत्ता से धन्या हुईं उन्हीं की भावना में पगी पू० बोबो ने अपने प्यार दुलार का, अपने वात्सल्य तथा ममत्व का वितरण किया- यह सब कहने मात्र का विषय नहीं है, जिस किसी ने आस्वादन किया है वे सब आज भी उस रस में भीजे हैं ।

दिवस बीतते गए । पढ़ाई का क्रम यथावत् चलता रहा, उन्हीं के प्यार-दुलार में पगा वह बालक एक विशेष उमंग में भरा, उनकी सन्निधि में, एक अनजाने आकर्षण में बंधा आगे की पढ़ाई में रत हो गया। परीक्षा का समय समीप आ गया । विश्व विद्यालय में फीस भेजने हेतु टैस्ट का आयोजन हुआ । इधर विद्यार्थियों को उत्साहित करने के लिये बहन जी ने घोषणा कर दी कि जिस विद्यार्थी के सबसे अधिक नम्बर होंगे उसे एक मास अलग से अतिरिक्त समय देकर पढ़ायेंगी । उसे सहज ही अतिरिक्त समय में पढ़नेका सुअवसर प्राप्त हो गया । पढ़ाई के साथ-साथ अमित प्यार और अपार अपनत्व समेटने का एक और सहज सुयोग मिल गया ।

श्याम-सुन्दर की सरसता से भीजी पू० बोबो की प्यार और वात्सल्य पूर्ण सन्निधि ने विजय के अनजानेमें ही उसे ऐसे रस-स्रोत से सींचा था कि उनकी उस सुखमय सन्निधि के लिये वह अवसर ढूंढा करता था ।

परीक्षा परिणाम आने बाकी थे । विद्यार्थी जीवन से प्रारम्भ सम्पर्क एक आत्मीयता विशेष में परिणत हो चुका था । अध्यात्म से युत होने पर एक और ही गरिमा लेकर गाम्भीर्य में परिणत हो गया । आना-जाना अधिक हो गया । अब हेतु बदल चुका था । अध्यात्म का समावेष होने से भाव में और निष्कपटता तथा ठहराव आ गया । आना-जाना जीवन नौका की स्थिरता के लिये हो गया । श्रीकृष्ण की चर्चा, लीला कथा में मन रमने लगा । एक आकुलता सी होने लगी । पू० बोबो के सङ्ग से उसका वहिरङ्ग जीवन कितनी स्वाभाविकता में अन्तरङ्ग हो गया था- कि उसे भान ही न हो पाया । एक सूफ़ी सन्त बुल्लेशाह की घटना प्राय: पू० बोबो सुनाया करतीं । संत इनायत शाह उनके गुरु थे । वे माली थे । एक बार बुल्लेशाह उधर से जा रहे थे । संत इनायतशाह अपने बाग में माली के कार्य में संलग्न थे । सहसा बुल्लेशाह ने पूछ लिया- प्रत्युत्तर में बड़े ही सहज स्वर में वे बोले, ''बुल्लया रब्ब दा की पौना, ऐधरों पुटना ओधर लौंना ।'' अर्थात् भगवान का पाना बड़ा ही सरल है- इधर (संसार) से हटा कर उधर (भगवान में) अपना चित्त लगा दो । बात कहने में बहुत सुगम थी- परन्तु

सामर्थ्यवान महानुभावों में ही यह शक्ति होती है। भगवान की ओर लगना- उनकी ओर आकृष्ट होना- कृपा के भरोसे ही सम्भव है- पू० बोबो में वह सामर्थ्य थी- उन्होंने सहज वह संयोग जुटा धन्य कर दिया उस बालक का जीवन। भगवद् प्राप्ति कुछ दूर की बात है, ऐसा न लगता।

इनकी इस अन्तिम क्लास का परीक्षा परिणाम निकला। सभी अच्छे अंकों से पास हो गए। उनमें से कुछ जिनका सम्बन्ध, मात्र अध्ययन का ही रहा था, पूरा कर अपने अपने कार्यों में संलग्न हो गए। उनके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्यार्थी, जिनका सम्पर्क एक घनिष्टता में परिणत हो चुका था तथा पू० बोबो की जीवन धारा ने उन्हें आकृष्ट किया था अथवा मैं कहूँगा विश्व नियन्ता के माधुर्य तथा लावण्य-मय स्वरूप श्री कृष्ण ने अपनी मधुरिमा का किञ्चित् आस्वादन करा पू० बोबो के माध्यम से अपनी ओर आकृष्ट करने का सुयोग जुटाया था, उन्हीं रसकणों को पू० बोबो की सन्निधि में प्राप्त कर यत्किञ्चित् समेटने की बाल चापल्यवत् चेष्टा की थी, अपनी बहुत ही सीमित, तुच्छ सी पिपासा लिये, अपनी अतृप्त सी जिज्ञासा का एक मात्र आश्रय जान, इनकी सन्निधि में समय-असमय में जाने लगे। पू० बोबो का ध्येय था, उनका एक प्रण था, जिस हेतु को लेकर इस धराधाम पर उनका आगमन हुआ था, इस जगत में वे आई थीं, उसके प्रति सर्वथा सजग, पूर्णतः प्रतिबद्ध हो वे उन्हीं रसकणों को लुटाती रहीं, बरसाती रहीं। उसे ग्रहण करने की समुचित पात्रता भी प्रदान करती रहीं। इसी नाते अनेक बहन-भाईयों का सत्संग में आना, उनसे प्राप्त उपदेशों को अपने जीवन में ढाल गन्तव्य की ओर अग्रसर होने का सतत प्रवाह .... ! ओह ! उस प्रेम सिन्धु की अतल लहरियों में जो डूबे हैं, उन उत्ताल तरंगों में जो लोग पैरते रहे हैं, वे सर्वथा जानते हैं उस लगन को, उस उत्सुकता को, उस जिज्ञासा को, आकुल-व्याकुलता को जिसने सभी के अन्तस् में एक मांग पैदा की, एक पिपासा ही जगा दी, उसी संग की सतत लालसा वश सभी उद्वेलित रहने लगे।

❑❑❑

पच्चीस | पिता तथा भाई की पत्नी और पुत्र का वियोग-

एक अनुबन्ध से मुक्ति- सन्यास के लिये आग्रह तथा अपने घर वृन्दावन चले आने का योग

— — —

देहेऽस्थि मांसरुधिरे ऽभिमीतिं त्यज त्वं
जाया सुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्य रागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥***

श्रीमद्भागवत माहा० ४/७९

वैराग्य का महत्व वही जानता है जो इसके लिये कृत संकल्प है । संसार से विरक्त होने पर यदि मन कहीं अनुरक्त नहीं है- अथवा हुआ है तो विरक्ति की नींव डगमगा सकती है- वास्तव में वैराग्य उन्हीं का पुष्ट और दृढ़ होता है- जो कहीं अनुरक्त हैं । अनुराग की भित्ति पर टिका वैराग्य ही सुदृढ़ और ग्रहणीय हो सकता है । प्रश्न यह उठता है कि यह अनुरक्ति हो कहाँ ? इसका निर्विवाद एक ही उत्तर है, जीवन का चरम लक्ष्य है भगवान की प्राप्ति अतः अपने प्रेमास्पद भगवान श्री कृष्ण के श्री चरणों में सुदृढ़ अनुराग अर्गलाओं में आबद्ध जन ही विरक्ति के उत्तुङ्ग शिखर पर सुशोभित हो सकते हैं । वैराग्य अथवा विरक्ति प्रयत्न साध्य नहीं है- प्रयत्न पूर्वक की गई विरक्ति भी तभी सार्थक है जब मन किन्हीं श्यामल रसिकेन्द्र सुन्दर के सुकोमल चरण युग्मों की प्रीति रज्जु में बंध गया हो । यह वैराग्य प्रेम की मर्यादा में पलता है, उसकी स्निग्धता से सींचा जाता है तथा उसकी सरसता से आप्लावित होता है ।

*** अस्थि, मांस और रुधिर आदि पदार्थों से बने हुए इस शरीर के प्रति अहंता को त्याग दो, स्त्री-पुरुष तथा कुटुम्ब वालों में ममता मत रखो । इस क्षण-भङ्गुर असार संसार की वास्तविक स्थिति को समझते हुए वैराग्य से प्रेम करने वाले बन, सदा भक्तिनिष्ठ होकर ही जीवन को बिताओ ।

भक्ति पथ में विरक्ति का अपना ही महत्व है, वैराग्य की अपनी ही गरिमा है । जिन महानुभावों के जीवन का परम लक्ष्य भगवत् प्राप्ति है उसे इस मार्ग का अनुसरण करना ही होगा । श्री रामकृष्ण परमहंस एक जगह कहते हैं घर में रहकर सद् गृहस्थ जीवन यापन कर सकता है, एक उच्च कोटि का साधक हो सकता है, परन्तु जिन् महानुभावों के जीवन का लक्ष्य भगवत् प्राप्ति हो, उन्हें गृह त्याग करना ही होगा । घर में रहकर इस पथ का अनुसरण इतना ही असम्भव है जितना अग्नि का स्पर्श करने के पश्चात् भी हाथ का न जलना । अतः वैराग्य जब अपने प्रेमास्पद के श्री चरणों में अनुराग के सम्बल पर टिका होता है तो वह प्रयत्न साध्य न होकर कृपा साध्य हो जाता है । मन को लगने की आदत है– इसका द्रवण कहीं न कहीं होगा ही– जब यह द्रवण प्रेमास्पद के श्री चरणों में पूर्णता से हो जाता है तो इस मन को अलग से कुछ त्याग करने का अवसर ही नहीं रहता, वह त्याग इतना सहज और स्वाभाविकता में हो जाता है कि उसे इस सबका भान ही नहीं रहता ।

हां ! तो पू० बोबो के मन की दशा बड़ी ही विचित्र रहने लगी थी । श्यामा–श्याम के चरणों में अनुरक्ति अपनी चरमसीमा पर पहुंच चुकी थी । प्रेमी का स्वभाव सदैव अतृप्ति का बना रहता है अतः यह पिपासा नित्य पुष्ट तथा सम्पुष्ट होते रहने पर भी और–और की मांग वश अतृप्त ही किये रहती । वृन्दावन चले आने की तीव्र लालसा और–और बेचैन करती रहती ।

परिस्थिति ने करवट ली । शरदारम्भ का सुहावना पन कुछ कुछ तीक्षणता में बदलने लगा । यह तीखापन ऊपर से तीखा अवश्य दीख रहा था, इसमें एक ऐसा योग निहित था जिसमें एक प्रतिबन्ध को मुक्त करने की भूमिका छिपी थी, एक अनुबन्ध की मुक्ति थी और अपने प्राणधन श्याम–सुन्दर की नगरी, अपने घर चले आने का सुयोग निहित था, श्रीकृष्णानुराग में पगी उनकी सतत सन्निधि की उत्कट चाह की आपूर्ति थी, अपने घर चले आने की लालसा के लिये प्रबल सम्बल था, यद्यपि यह सब अभी भी भविष्य के गर्भ में छिपा था, तथापि यह योग दु:खद भासता सा जीवन की उच्चतम उपलब्धि की ओर अग्रसर होने में सहायक हुआ ।

पिता का निधन

पिताजी मधुमेह के रोगी थे । वे रुग्ण तो थे ही, अब यह

रुग्णता अपना भीषण रूप लेकर सामने आई और वे शय्यासन्न हो गए । पांव के अंगूठे में गैन्ग्रीन हो गया । अंगूठा काटना पड़ा । मधुमेह का प्रकोप और अधिक होता गया । भौतिक रूप से देह को रखने में सहायक शक्ति क्षीण होती चली गई परन्तु अपने भजन-साधन में, अपनी भक्ति पूर्ण निष्ठा में सर्वथा सजग और तत्पर रहते हुए ९ जनवरी १९५९ को उन्होंने अपनी इहलौकिक लीला संवरण कर ली । सभी पर वज्रपात सा हो गया । पत्नी श्यामाजी के लिये इससे अधिक कष्टदायक क्या हो सकता था ? उन पर निर्भर करने वाले बच्चों के हृदय पर क्या बीतती होगी ? इधर पू० बोबो में उनकी विशेष आत्मीयता तथा मैत्री का भाव तो था ही, वे सदैव इन पर निर्भर भी रहा करते थे- वे कहते थे ''मैं अपने जीवन में ऐसा क्षण नहीं चाहता कि मुन्नो के अतिरिक्त मुझे किसी अन्य पर निर्भर होना पड़े;'' बहन जी इस के लिये सहर्ष स्वीकृति दे चुकी थीं, एक अनुबन्ध में बंध चुकी थीं। यही प्रतिबन्ध उनके वृन्दावन चले आने में सदा आड़े आता रहा । सहसा यह घटना घटी, पू० बोबो की इच्छा पूर्ण हुई । ''मुन्नो'' के पिता तो गए ही उनके काव्य, साहित्य और सर्वोपरि अध्यात्म के संगी भी चले गए ।

पू० बोबो के मन में एक हलचल उठने लगी । उन्हें रह-रह कर अपनी कर्तव्य परायणता स्वरूप अनुबन्ध और प्रतिबन्ध से मुक्ति की स्मृति बार बार आलोड़ित करने लगी । अपने प्रेमास्पद के लिये वे अकुलाने लगीं । उनकी चिर अभिलाषा-लता फलीभूत होने का सुयोग ढूंढने लगी। अपने प्राणप्रेष्ठ की नगरी, अपने घर श्री वृन्दावन चले आने की उत्कट अभिलाषा ने इन्हें व्यग्र सा कर दिया । समय अभी अनुकूलता और परिपक्वता का न था । ऐसे समय में किसी से भी कुछ कहने, चर्चा करने का औचित्य नहीं लग रहा था । वे अपने में ही इस प्रबल लालसा को जागृति और सुषुप्ति के क्रमों में सम्हालती रहीं ।

सन्यास के लिये आग्रह

समय और मान्यता के अनुसार शास्त्रीय मर्यादाओं के आधार पर सभी कृत्य किये गए । अस्थि प्रवाह हेतु दूसरे नम्बर के पुत्र श्रीश मोहन तथा पू० बोबो हरिद्वार गए । भाई होने के साथ-साथ उनकी पू० बोबो से एक प्रकार की मैत्री भी थी । काव्य सृजन में उनकी रुचि थी । अपने विचारों को काव्य बद्ध कर सुनाने, पू० बोबो की सम्मति लेने के कारण जहां एक ओर मैत्री प्रगाढ़ हो गई थी वहीं विचारों के साम्य के कारण

उसमें एक गाम्भीर्य का अभिनिवेष भी हो गया था। पू० बोबो ने उनसे हरिद्वार में ही अपने सन्यास लेने के दृढ़ संकल्प की बात कही। 'प्रथम तो मैं वृन्दावन ही चली जाऊंगी और यदि किसी कारणवश और रुकना भी पड़ा तो घर पर रहती हुई सन्यासाश्रम के नियमों में ही जीवन यापन करूँगी' भगवत्प्रेरणा से अपने छोटे भाई के मुख से अपनी ही भावनाओं की पुष्टि का आश्वासन पा वे आह्लादित हो उठीं। छोटे भाई ने उत्तर में कहा था, ''मुन्नो! अभी कुछ समय तू और ठहर जा। वृन्दावन चले जाने के संकल्प की पूर्ति हेतु मैं तेरी पूरी सहायता करूँगा।'' बात यहीं समाप्त हो गई। सभी रीति-रिवाज शेष कर सगे-सम्बन्धी एक-एक कर अपने-अपने घर चले गए और पू० बोबो की अभिलाषा लता, आश्वासन पा उस समय की प्रतीक्षा करने लगीं।

समय की गति बड़ी ही बलवान है, भगवान का विधान उससे भी अधिक बलवान है, नियति का क्रम विचित्र है तथा विधि की विडम्बना उससे भी विचित्र है। जिन अपनों से विछोह की कल्पना भी नहीं होती, काल के कराल हाथ उन्हें हमारे सामने छीन कर ले जाते हैं। उनसे बिछुड़ कर भी हम समय के प्रवाह के साथ-साथ अपने आपको सम्हाल लेते हैं। सम्हालते सभी हैं- अन्यथा जीवन ही शेष हो जावे। ज्ञानी जन, ज्ञान से अपने चित्त को स्थिर कर लेते हैं और प्रेमीजन अपने प्रभु की इच्छा सर्वोपरि मान सभी प्रकार की परिस्थिति को सहन करते हैं।

पू० बोबो का मन जहाँ एक ओर अपने आध्यात्मिक संगी, पिता रूप में प्राप्त आध्यात्मिक मित्र के बिछोह से किञ्चित् उद्वेलित हुआ वहीं दूसरी ओर उनके हृदय में हर्ष का एक अपार समुद्र ठाठें मारने लगा। इस द्वन्द्व पूर्ण संसार की असारता ने जहां एक ओर मन में विरक्ति को और, और पुष्ट किया वहीं एक नवीन उत्साह में भरी पू० बोबो श्री वृन्दावन चले आने के लिये बेचैन रहने लगीं। कर्तव्य परायणता वश एक प्रतिबन्ध अवश्य शेष रह गया था- वह था मां का भविष्य। मां की देखभाल के लिये घर में अन्य बहन-भाई थे। वे सब सम्हाल करेंगे, इस बात से सर्वथा भिज्ञ होने पर भी सुयोग नहीं बन पाया और अपनी व्यग्र लालसा उर में संजोए पू० बोबो कुछ समय और अम्बाला घर में ही रहती रहीं।

भाई के पुत्र की मृत्यु

सहसा घर में एक और घटना घटी। पू० बोबो से छोटे परन्तु भाइयों में सबसे बड़े, श्री शक्ति मोहन के आठ साल के पुत्र का कुछ

ही मास बाद निधन हो गया । घर में कोहराम मच गया । अपने माता-पिता के लाड़ में पला, उन्हें सदा प्रसन्न रखने वाला खिलौना टूट गया । उस मां की वेदना को कौन आंक सकता है जिसके जीवन का क्षण-प्रतिक्षण उस बालक की बढ़ती आयु के साथ-साथ प्रसन्नता के स्रोत भरता रहा हो । पिता का मन भी टूट चुका था । घर के वातावरण में उदासी छा गई थी । बच्चों की दादी के कष्ट की सीमा न थी । यह विषम परिस्थिति दुःखद अवश्य थी, परन्तु संसार की असारता और वैराग्य ने अपने प्रभाव से सभी को गम्भीर बना दिया था । पू० बोबो सभी को दुःखी देखकर धैर्य बंधार्ती । सभी को नियति के इस विधान को सहन करने की बात समझातीं । वह बालक क्या था पूर्व जन्म का कोई योग भ्रष्ट था, अपनी साधना का शेष पूरा करने को उस बालक के रूप में जन्मा था । घंटों टकटकी बांधे, स्थिर दृष्टि तथा एक ही आसन से बैठा रहता । योगासन की मुद्रा में बैठना ही उसका स्वभाव था। उसके सुविज्ञ प्रश्नोत्तरों के आधार पर ऐसी धारणा हो जाना सर्वथा युक्ति युक्त था ।

यह परिस्थिति भी सहज बीत गई । पू० बोबो एक विशेष भाव धारा में मग्न रहने लगीं । वे वृन्दावन चले आने के लिये छटपटाने लगीं। घंटों अपने विचारों में खोई रहने लगीं । किसी से भी बोलने तक का मन न होता । श्री ठाकुर जी की सेवा उनसे सम्बन्धी लीला-कथा के अतिरिक्त इतर कहीं भी मन की रुचि न होती थी । दिन-रात एक ही बात, एक ही विचार तथा एक ही आशा और विश्वास । वृन्दावन .... वृन्दावन .... केवल वृन्दावन । श्याम-सुन्दर के सतत संग के लिये आकुल-व्याकुल रहने लगीं । वृन्दावन की पावन रज से अभिषिक्त होने को व्याकुल रहने लगी, वहां की स्थली में विचरण करने को मन मचलने लगा, वहां के अलौकिक वातावरण, वहां की दिव्य वृक्ष-वल्लरियों, उस चिन्मय तथा रमणीय स्थली में जा अपनी चिर अभिलाषा का मूर्त रूप देखने के लिये प्रतिक्षण आकुल-व्याकुल रहने लगीं । अनेक बार एकान्तिक क्षणों में कंप होते, समय पा एकान्त में अश्रु पोंछते, विशेष भाव-मुद्रा में लेटे, तीव्र लालसा की मूर्त रूपा पू० बोबो को जिन्होंने देखा है, वे सर्वथा उनके उन भावों से, रागानुराग में पगी उनकी विचारधारा से, उनके अन्तस् की पिपासा की गहनता से, हृदय में उठे ज्वार भाटे की उत्तुङ्ग हिलोरों से यत्किञ्चित् परिचित अवश्य होंगे । उनकी लालसा को कुल-मुलाते अवश्य ही अनेकों ने देखा होगा ।

भाई की पत्नी का निधन

उनकी मनः स्थिति विचित्र हो गई । धैर्य अनेक बार बांध तोड़ फूट पड़ता, वृन्दावन चले आने की व्यग्र लालसा 'अजातपक्षा इव मातरं खगाः' की भांति फड़फड़ाने लगी । भावनाओं की उस अजस्र धारा से युत विचारों के उस गम्भीर बवण्डर में एक अन्य घटना घटी । पुत्र वियोग के कुछ ही समय बाद, छोटे भाई की पत्नी का सहसा निधन हो गया। घर में लोगों के मन पर क्या बीती होगी ! एक ही वर्ष में तीन-तीन मृत्यु । एक के दुःख से अभी उबरे न थे कि दूसरी और उसी के कुछ मास बाद तीसरी । ऐसी परिस्थिति में धैर्य भला किसे रहता ! दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा । सभी के मन मलिन हो गए ।

यह निधन एक बहुत ही विकट परिस्थिति में हुआ था । घर में दो बालक छोटे थे । पति अपने कार्यालय में अधिक व्यस्त रहते थे- अतः एक नए ही मोड़ के समीकरण उपस्थित हो गए । दोनों छोटे बालक अभी अपने में सम्हल भी न पाए थे कि यह परिस्थिति बन गई । पू० बोबो के लिये, अपनी मन की कहने के लिये समय अनुकूल न लगा । सभी विकल और विह्वल हो रहे थे । वे दोनों बालक (सुनील तथा मनोज) अब इन्हीं के सामीप्य में रहने लगे । यह परिस्थिति भी धीरे-धीरे शान्त होने लगी। सभी क्रम ठहराव से धीरे-धीरे यथापूर्व हो गए । नियति का यह चक्र भी स्थिर सा होता दीखने लगा ।

घर की ऐसी परिस्थिति ने पू० बोबो का मन यत्किञ्चित् द्रवित तो किया, भाई-बहनों के दुःख से किञ्चित् दुःखी अवश्य हुईं, परन्तु उनका हृदय एक अन्य भाव में लहरान्वित होने लगा । जीवन की आशा-लता अपने जीवन सर्वस्व की सन्निधि हेतु अकुलाने लगी । हृदय का स्पन्दन किसी मधुर आश्रय के लिये मचलने लगा, युग-युगों की पिपासा अब यहां रह कर शमित होने वाली न थी । उसे चाहिये था एक शीतल विलेपन जो किन्हीं नील माधुर्याम्बुधि की सुरस अथाह राशि को बटोर कर वृन्दावन में तृप्त होने वाला था, नेत्र किसी रूप माधुरी का पान करनेको लालायित हो रहे थे, किन्हीं श्यामल सुचिक्कण कच लटों से आवृत श्यामल विधु की चाह से उद्वेलित हो रहा था यह चकोरी हृदय, मन-मयूर शिखिपिच्छ-धारी नील सुन्दर की रूप माधुरी को पान करने को व्याकुल हो रहा था, यह हृदय, बाहुद्वय, रस पल्लव, कर्ण कुहर, क्या-क्या कहें; अंग-प्रत्यङ्ग, रोम-रोम पिपासा का मूर्त रूप धारण कर श्यामल माधुरी का पान करने, उसका

आस्वादन करने, उसे अपने में आत्मसात करने, सर्वाङ्ग रूप से आत्म-सात करने की लालसा, मात्र लालसा न रही थी। हृदय ही सम्पूर्ण अंगों में परिव्याप्त हो पान, ग्रहण और आस्वादन कर लेना चाहता था। उस श्यामलता में सिक्त होने को भड़क रही थी पिपासा, उनके रस-विग्रह को पूर्ण रूप से पान करने को मचल उठी थीं- भावनाऐं, कामनाऐं। आज तक जिन रसकणों को श्याम सुन्दर ने अपने बंकिम-कटाक्ष द्वारा, मादक संकेतों द्वारा अपनी सरस सन्निधि प्रदान कर, सरसीली-रसीली चेष्टाओं द्वारा लुटाया था, आज अपने घर में आ उसी रस को सम्पूर्ण रूपेण सतत पान करने की प्रबल लालसा तथा उसमें उठी हिलोरों में वह सब परिस्थिति विलय हो गई- और लालसा का परिष्कृत स्वरूप अब अपना मूर्त आश्रय ढूंढने लगा।

सभी के सामने यह बात एक प्रश्न चिह्न के रूप में विद्यमान थी। पू० बोबो की इस मनः स्थिति ने सभी को और-और विचलित सा कर दिया, परन्तु अब समय के सभी प्रतिबन्ध टूट चुके थे, सभी अनुबन्धों से मुक्त हो चुकी थीं, अधिक समय वे घर पर रह न सकेंगी- यह सभी को भासने लगा था। इस विचार के आते ही सभी द्रवित हो जाया करते थे, परन्तु स्वेच्छा से यह सब निर्वाह करती पू० बोबो के सामने कुछ भी कहनेका साहस किसी को न होता था। एक दिन घर के सभी सदस्य एकत्रित हुए; कुछ सम्बन्धित जन भी आ गए, उनके जीवन के स्वर्णिम दिवसों को स्मरण कर, अश्रु विसर्जित करते-करते पू० बोबो को वृन्दावन चले जाने की एक उत्साह हीन सी स्वीकृति सभी ने दे दी।

❑❑❑

छब्बीस

अपने घर-वृन्दावन चले आने की स्वीकृति

देहली आगमन/वृन्दावन के लिये प्रस्थान- हाहाकार

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनय स्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
श्री मद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो नापरः ॥***

वेदों और शास्त्रों ने साधारण मानव के लिये पथ का निरूपण किया। उसका अनुसरण करना, उस पर त्वरित गति से चलने का मार्ग प्रशस्त कर दिया, परन्तु एक तथ्य इससे कुछ भिन्न भी है- वे हैं विरले महज्जन। उनकी अनुभूति और व्यक्तित्व को देख कर शास्त्र वाक्य की पुष्टि करने का अवसर मिला साधक को। शास्त्रों का अतिक्रमण वहां नहीं होता, यों कहना सर्वथा- संगत होगा कि ऐसे विरले जनों की रहनी, उनका व्यक्तित्व, शास्त्रों और पुराणों का एक जीवन्त रूप माना जाता है। ऐसे महज्जन सर्वत्र वन्दनीय तो हैं ही, पूजनीय भी होते हैं।

मानव मात्र के अन्तर में छिपी एक मांग जो प्रेमास्पद के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा ही पुष्ट होती है, उसे परम सौभाग्य से प्राप्त होती है। उसका सहज रूप जब श्यामा-श्याम के चरणों की ओर प्रवाहित होता है तो जीव का परम सौभाग्य उदय हो जाता है, और जब यह समर्पण वृन्दावन निष्ठा से परिपूर्ण होकर ब्रज की इन आभीर कुमारियों के स्वर में स्वर मिला, इनके आनुगत्य में, 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पल्लवित और पुष्पित होता है तो उसके सौभाग्य का क्या कहना ! इन आभीरिकाओं की कृपा कोर को प्राप्त करने के लिये, इन्हीं की शरण में जाना होगा, इन्हीं का कृपा भाजन बनना होगा। यह तभी होगा जब हम ब्रजभाव से पोषित होकर उन्हीं के निर्दिष्ट पथ के पथिक होंगे। उन्हीं की भांति श्यामा-श्याम की छवि

*** प्राणी मात्र का परम पुरुषार्थ श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति करना ही है। परम आराध्य वे श्री नन्दनन्दन वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण चन्द्र ही हैं। अपने सभी पुरुषार्थों का आश्रय छोड़कर अनन्य भाव से ब्रजाङ्गनाओं की भांति संसारी सम्बन्धों से मुख मोड़कर पतिभाव से उनकी आराधना करना ही उपासना की उत्तम से उत्तम प्रणाली है और पठनीय शास्त्रों में श्री मद्भागवत ही सर्वोपरि शास्त्र है।

अपने मन-प्राणों में, अपने रोम रोम में बसा कर, ब्रज की वन वीथियों में, उन्हीं श्यामल चिद्घन तथा उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्री राधा की सेवा-पूजा में संलग्न होंगे । सेवा का ही दूसरा नाम भजन है । भजन और सेवा अन्योन्याश्रित हैं। प्रिया-प्रियतम वृन्दावन की निधि हैं- और इसी परम निधि को प्राप्त करने के लिये वृन्दावन की कुञ्ज-निकुञ्जों में रमण-भ्रमण करना ही होगा ।

हां ! तो पू० बोबो की वृन्दावन चले आने की तीव्र लालसा को देख, इन्हें और रोक पाना कठिन सा हो गया । अभी यह बात घर में चली थी, देखते-देखते दावाग्नि की भांति यह समाचार सभी स्वजनों में फैल गया। अध्यात्म से जुड़े भाई-बहनों में फैल गया, आस पास के लोगों में फैल गया, तथा सभी अभिभावकों में यह समाचार देखते-देखते फैल गया ।

सभी लोग पू० बोबो के पास चले आने लगे । बहुत से लोग समूह बना इनसे मिलने, समझाने आने लगे और बहुत से उस अखण्ड सत्ता के व्यापक स्वरूप की बात कह अपना सा प्रयास करने लगे । अनेक जनों के नेत्र सजल हो उठते और कभी-कभी सिसकियों से परिव्याप्त हो जाता वह कमरा, जहां अपने श्री ठाकुर जी के सम्मुख अखण्ड-माधुर्य-आस्वादनरता, प्यार की महान आदर्शमयी वह मूर्ति निश्चेष्ट सी सब देखती रहती । अनेक जन फूट-फूटकर रुदन करने लगते, अनेकों के अश्रु उनके एकान्त में उनके आंचल भिगो देते ।

आने-जाने वालों का तांता ही लगा रहता । इन सबमें कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें अपने मन को ढाढ़स बंधा पाना असम्भव सा होता था । अनेकानेक वात्सल्य में पालित और पोषित बालक-बालिकाऐं, जिन्होंने उनका प्यार-दुलार पाया था, उनके स्निग्ध करों से बरसती कृपा-ममता को समेटा था, उनकी माधुरी वाणी से अपने व्याकुल हृदय के लिये सुशीतलता भरे वचनों से आश्वासन पाया था, उनकी सन्निधि ने जिनकी समस्त इतर वृत्तियों को क्षय कर, आध्यात्मिकता का बोध करा सरसता से सींचा और पाला था, वे सब किन्हीं एकान्तिक क्षणों की खोज में, उनसे मिलने की प्रबल लालसा लिये, वहीं घूमते, सुअवसर खोजते- कभी मिलता और कभी .... ।

प्राणों को जीवन प्रदान करती वह छवि, अनेकों को अपनी माधुरी वाणी से ढाढ़स बंधाती स्नेह की वह मूर्ति, एक निश्छल प्यार

का स्रोत, जो आज तक अनेकानेक लोगों में अपने प्यार भरे आश्वासन देता रहा, उनमें भगवद्भाव का रोपण करता रहा, उनके जीवन को चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिये, आहार प्रदान करता रहा, उन्हें पग-पग पर सम्हालता रहा, उनकी भावनाओं को सहला-सम्हाल, श्री राधाकृष्ण की माधुरी में सराबोर करता रहा, उनमें अध्यात्म का बीजारोपण कर .... जब उसके विकसित पल्लवित और पुष्पित होने का समय आया ...... तो .... ? कैसे सह्य होता यह सब ?

वह कमरा जिसने उनकी बाल्यावस्था को पौगण्डावस्था और पुनः कैशौर्य में परिणत होते देखा था, उनके ठहाकों की गूंज से सदा सिक्त अभिषिक्त रहा था, उनका वह आसन जिसने उनकी सन्निधि में अनेक वर्ष संस्पर्श और दुलार सुख में सहर्ष व्यतीत कर दिये थे, कमरे की चार दीवारी, सामने के वातायन से झांकता नीम का वह वृक्ष, कॉर्निस पर रखे युगल के चित्र, अधखुला सा वह द्वार, जिसमें पू० बोबो के जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत हुए थे, आज सभी इस समाचार को सुन मूक और मौन थे। बाहर वरांडे का वातावरण, उसी के साथ आंगन से सटा तुलसी का वृक्ष जिसने अनेक वर्ष उनकी सरस चर्चा सुनी थी, वहीं तनिक हटकर उनके प्यार-दुलार से सरसाया पाम का एक वृक्ष जिसे प्रायः वे अपना भाई ही कहा करतीं, जब कभी बात होती तो 'पाम भाई' कह सम्बोधन करतीं, अपने बड़े-बड़े हाथों से व्यजन कर, अपने हृदय की भावनाओं को अभिव्यक्त करता रहा था। उसने उनका शैशव देखा था, शैशव की चपलता देखी थी, अपने ही समीप बैठी इस विभूति की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ देखी थीं, आते-जाते उनके गात से संस्पर्शित पवन का स्पर्श पाया था और देखा था इनका कैशोर्य, उसमें परिपक्व अध्यात्म का परिष्कृत स्वरूप, उसकी सरस अनुभूतियाँ। इनके संग में पाम के इस वृक्ष ने अपना बहुत सा जीवन किसी सरस अभिलाषा में व्यतीत कर दिया था। समस्त स्थली मूक, मौन और उदास हो गई। पू० बोबो के वहां से चले आने का सुन प्रकृति निस्तब्ध हो गई।

समस्त प्रकृति, यह परिस्थिति, समस्त वातावरण, लोगों के मनों की उदासी, उसमें छलकते नयन- वे उदास चेहरे पू० बोबो देख रही थीं। किञ्चित् विचलित हो जाया करती थीं, विचारों में अनेक बार अधिक गाम्भीर्य छा जाता था परन्तु उनके सामने जो ध्येय था, लक्ष्य था, उद्देश्य था, उसके आगे सभी फीका था। यह निर्विवाद था कि उनके जीवन

में वह माधुरी झांकी, वह रूप-रसाम्बुधि युगल प्रणयी रस बावरे यद्यपि वहां भी पूर्णता से प्रत्यक्ष थे, तथापि धाम के प्रति उनकी निष्ठा, श्री यमुना जी का आकर्षण, ब्रज-भूमि के प्रति व्यग्र लालसा, श्री गिरिराज के दर्शन की उत्कट अभिलाषा, प्रिया-प्रियतम की नित्य रस-स्थली, निज धाम, निज ग्राम श्री वृन्दावन चले आने की व्यग्र लालसा उन्हें उद्वेलित करती थी, आकुल-व्याकुल करती थी, उसी के फलस्वरूप उनके दृढ़ निश्चय में, अडिग विश्वास में सुस्थिर संकल्प में किसी भी प्रकार की शिथिलता न आ सकी।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा। चक्र के दोनों छोरों का प्रत्यावर्तन अनेक बार हो चुका था। उस दुःखद वातावरण से सभी उबरने लगे थे। वर्षा ऋतु के पूर्ण वैभव से पूर्व ग्रीष्म का ताप, सुहावने कजरारे मेघों से आच्छादित होकर क्षीण सा हो चला था। एक बार बदला लेने के मिस पुनः सदल ग्रीष्म ने चढ़ाई कर, वर्षा ऋतु को निष्कासित सा कर दिया, परन्तु अपनी सहयोगी शरद् ऋतु से मैत्री जोड़ वर्षा ऋतु कभी-कभी प्रहार अवश्य करती और यह लो ! शरदागम से त्रस्त सी ग्रीष्म ऋतु सर्वथा लज्जावनत सी हो लौट गई। शरद् ने अपना प्रसार कर प्रभुत्व जमा लिया। सर्वत्र शरद् का साम्राज्य छा गया। शरद् पूर्णिमा भी सोल्लास मनाई गई। शरद् अब पूर्ण यौवन में थी। धीरे-धीरे गुलाबी ठंड शीत में परिणत होने लगी। शीत से बचने का उपाय सभी के सोच का विषय बन गया।

सन् १९५९ का नवम्बर मास प्रारम्भ हो गया। अपने यौवन मद से गर्वित सा, सजग सा, धीरे-धीरे बढ़ने लगा। वृन्दावन चले आने की तिथि का निश्चय हो ही चुका था। पू० बोबो के मन के आह्लाद को छिपाना असम्भव था। परस्पर चर्चा में उनकी प्रसन्नता अनेकों बार झलक जाया करती थी। श्री कृष्ण-कथावार्ता में वाणी अवरुद्ध हो जाती, शरीर में कम्प तथा नेत्रों से अश्रु बिन्दु छलक जाते। ये अश्रु बिन्दु प्रसन्नता से युक्त होने के कारण शीतलता प्रदान करने वाले होते थे। उनकी उमंग-तरंग देखते ही बनती थी। वे प्रसन्न थीं- अत्यन्त प्रसन्न। उनका हृदय उत्फुल्ल और प्रफुल्ल था तथा उनका उल्लास देखते ही बनता था।

उनसे सम्बन्धित अनेक बहन भाइयों को घोर उदासी ने आक्रान्त कर रखा था। प्राणों में संजीवनी शक्ति का संचार करने वाली, अपने प्यार दुलार से पोषित करने वाली, आध्यात्मिक बुभुक्षा का शमन करने वाली, प्यार की वह सजीव मूर्ति, वैराग्य पूर्ण जीवन यापन करती, कहां और कैसे रहेगी, सम्बन्धित जनों के सामने अनेकानेक धारणाऐं, अनेकानेक प्रश्न संकल्प-विकल्प के रूप में एक प्रश्नचिह्न बने थे।

अन्ततः नवम्बर मास के एक-एक कर बारह दिन व्यतीत हो गए। बारह दिवस, रात्रि की नीरवता में विलीन हो गए और इतनी ही रात्रियां आशापूर्ण भोर में परिणत हो गई थीं। बारह बार प्राची दिशा सूर्य को उदय और अस्त होते देख चुकी थी। आज की यह रात्रि एक उज्ज्वल भोर को, एक सुखद भोर को अपने गर्भ में संजोए इठला रही थी। १३ नवम्बर १९५९ की यह उज्ज्वल भोर दिशा-विदिशाओं को नव-नव आशाएँ प्रदान करती, प्रकृति में विशेष उल्लास भरती, जलज को जीवनी शक्ति प्रदान करती उदय हो गई। गर्वित हो प्रकृति इठलाने लगी। पक्षियों में एक विशेष कौतूहल भर गया। पुष्पों में उन्माद छा गया। वृक्ष और वल्लरियाँ झूम उठीं। कलिकाओं ने चटक कर स्वागत किया। पुष्प विकसित हो गए। पराग को ले मन्द-मन्द समीरण बहने लगी। भ्रमर समूह चंचल होकर मंडराने लगे। अहा! आज की यह सुहावनी भोर। सभी कुछ अनुरूप था, अनुकूल था- प्रियमिलनातुरा किसी बाला के आह्लाद की सीमा न थी।

संकीर्तन के समाप्त होने के साथ-साथ कार्तिक मास की शुक्ला त्रयोदशी का सूर्य उदय हो चुका था। चिर प्रतीक्षित इस दिवस के उदय होने पर जहां एक ओर आह्लाद और प्रसन्नता के बादल मंडराने लगे थे वहीं दूसरी ओर गहन विषाद की छाया परिव्याप्त थी। प्रकृति के बड़े ही विचित्र नियम हैं और भगवद्विधान विषमताओं से भरा पड़ा है। एक ओर सुखद भोर को ले सूर्य उदय हो कर जलज में प्राणों का संचार करता है वहीं विरह विधुरा चकवी के हृदय की कौन जान सकता है। शरद् ऋतु के प्रारम्भ होते ही खञ्जन पक्षी प्रसन्नता में भर फूल उठते हैं, उधर अनेक पक्षी इस ठण्ड के प्रकोप को सहन करने में असमर्थ हो जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में आम्र मञ्जरियों पर कोकिला की उत्फुल्लता, वर्षा ऋतु में किञ्चित् फीकी होने लगती है और अपने आँह्लाद का उद्घोष करता पपीहा सरस कणों को प्राप्त कर अमरत्व पा जाता है।

अम्बाला नगर के सभी आदरणीय, वृद्ध-महानुभावों में, गण्य-मान्य सम्भ्रान्त लोगों में, अपने समवयस्क तथा अपने से छोटों में प्रेम-रस बिखेर उन्हें लीला कथा का आस्वादन कराती, अपने प्रेम से सींचती, उनमें नव रसचेतना का प्रसार करती, प्रेम की मूर्त रूपा पू० बोबो उन्हें इस प्रकार छोड़ कभी वृन्दावन जा सकती हैं, इसकी कल्पना किसी को भी न हो पाई थी। इन्हीं के भावापन्न कुछ बहन भाई जो यत्किञ्चित् इस

अध्यात्म रस का आस्वादन कर चुके थे– उनकी तो क्या कहूँ– अन्य सभी सम्बन्धित लोगों में एक उदासी छा गई थी। केवल एक आशा किरण उन्हें दीखती थी, उनके सामने एक बहुत बड़ा सम्बल था, वह था, श्री ठाकुर जी अभी अम्बाला में ही रहेंगे और पू० बोबो कुछ दिन वृन्दावन निवास कर पुनः अम्बाला लौट आवेंगी। नित्य–क्रमों से निवृत्त होकर पू० बोबो श्री ठाकुर सेवा कर चुकी थीं। भोर से ही अपनों का, आने–जाने वालों का क्रम अनवरत चल रहा था। चाय के समय भी अनेक अपने एकत्रित थे। सभी ने जैसे तैसे चाय के घूंट अपने अन्दर उतारे। एक ही आशा सभी को एक बड़ा सम्बल बनी दीखती थी– कि पू० बोबो शीघ्र ही पुनः अम्बाला लौट आवेंगी। उन्हें लगता था वे आवेंगी। आवेंगी तो ठीक था, परन्तु अब उनका अम्बाला रहना अस्थाई ही होगा। वे कब वापिस लौट जावेंगी– यह कल्पना करने का न तो अभी समय ही था और न ही आवश्यकता– अतः इस भुलावे में अनेक जनों के भाव स्थिर से होने लगे थे।

श्री ठाकुर जी के शृङ्गार के उपरान्त सत्संग का समय हो चुका था। पू० बोबो ने अनेक लीला–कथाऐं सुनाईं। अपनी बेकली की अनेक कविताऐं सुनाईं। महाप्रभु श्री चैतन्य देव के गृह त्याग की गाथा सुना सभी के मनों में ढाढ़स बंधाने का असफल सा प्रयास भी किया। स्वामी रामतीर्थ का प्रसङ्ग कहा, गृह त्याग के आदर्श का प्रतिपादन किया। श्री रामकृष्ण परमहंस की उक्ति 'यदि भगवत्प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है तो गृह त्याग करना ही होगा' सुना, सभी को धैर्य प्रदान करने का प्रयास किया। मीरा जी के गृह त्याग कर, वृन्दावन चले आने की गाथा सुनाई, अनेक संतों महज्जनों के उच्चादर्शों को सुना, एक भूमिका बना, सभी को सुस्थिर करने का प्रयास सा किया।

श्री ठाकुर जी को राजभोग समर्पित किया गया। प्रसाद ग्रहण कर, कुछ विश्राम कर, पुनः सजग हो गए वहां विराजित सभी स्वजन। मां श्यामा जी तो थीं ही, श्री विमला जी, सुशीला जी व श्री पुष्पा जी, बहन दर्शन, उमा, उत्तमा, सुमित्रा, कौशल, सरोज, पुष्पा इत्यादि के साथ कुछ भाई भी उपस्थित थे, श्री शर्मा भाई साहब, श्रुति मोहन, वशेशुर, ओमी तथा विजय आदि अनेक जन उस समय उपस्थित थे।

संध्या के पाठ में अन्य भाई–बहन भी पधारे। इसी प्रकार की उपदेशात्मक चर्चा, वार्ता में एकत्रित सभी के विलग होने का समय हो चला था। आज की भोर क्रमशः मध्यान्ह और संध्या में परिणत हो

अन्धकार में छिप जाना चाहती थी, उसकी गति में एक प्रकार की शिथिलता थी। लगता था दिन के उजियारे में, भरसक चेष्टा कर सम्हाले रखने में वह अब असफल हो गई थी। उसका हृदय करुण था, फूट-फूट कर रो लेना चाहता था। उसकी इस मनोदशा को पू० बोबो देख न लें, वह संध्या की श्यामलता में स्वयं को छिपा आंसू बहाने को विवश हो चली थी। रात्रि में वहां एकत्रित होने को पू० बोबो ने स्वयं ही सभी बहनों को मना कर दिया था। भाइयों को यत्किञ्चित् लाभ लेने का अतिरिक्त अवसर मिला था। उनके लाड़-प्यार से सिंचित बालकों को उनकी सन्निधि में बैठने का सुअवसर भी मिला। अपने अश्रुओं से उनकी साड़ी के छोर को भिजोता विजय उन्हीं के पास लेटा उनके प्यार की स्निग्धता पाकर भी उदास था। अन्य भाई भी उनके उस प्यार-दुलार के कृपा भाजन रहे। वे सभी से अत्यन्त आत्मीयता से कह-सुन रही थीं। रात्रि की उस नीरवता में, बल्ब की धीमी रोशनी में, बालकों पर अपना सहज वात्सल्य बिखेरती पू० बोबो सुशान्त थीं।

त्रयोदशी की रात्रि का प्रथम भाग शेष हो गया। नवोदित चन्द्र की किरणें सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर छा गईं। वृक्षों की हरियाली पर, खुले प्रांगण में, भवनों की छतों पर नीरव वातावरण में विश्राम करती चांदनी! ओह ! इसे देख पू० बोबो एक विशेष उल्लास में भर रही थीं। चलने का समय हो गया। बाहर से पुकार कर किसी ने वाहन तैयार होने की सूचना दी। साथ-साथ अनेक जन चल दिये। अपने-अपने साधनों से सभी स्टेशन पर पहुँचे। रात्रि के तृतीय पहर और भोर के प्रथम प्रहर के सङ्गम में सभी भाइयों सहित पू० बोबो प्लेटफार्म पर आ चुकी थीं। टिकट लेकर प्रतीक्षा में सभी शान्त खड़े थे। प्लेटफार्म पर अन्य लोग बड़े ही व्यस्त थे। इस शोरगुल के बीच में अपनों के मन में कौंध उठती थी एक लहर- वह क्या थी- बीच-बीच में अपने-अपने सजल नेत्रों को इधर उधर हो सभी पोंछ लेते थे। ओह ! वह दारुण दृश्य। विजय से अपना छोटा सा थैला ले, अपनी भुजा में डाल, हाथ पर अपना कम्बल डाल, एक विशेष मुद्रा में खड़ी हो 'ऐसे लगूंगी मैं वृन्दावन की वीथियों में घूमती' यह कह सभी में एक अपनत्व पूर्ण झंकृति से सभी को सजल कर दिया पू० बोबो ने। सभी के धैर्य का बांध फूट पड़ा। फफक कर, 'उफ़' कर, सभी रुदन करने लगे।

चारों ओर हलचल सी होने लगी । सभी इधर–उधर भागने लगे । छुक–छुक करती, सीटी बजाती रेल आकर खड़ी हो गई । पू० बोबो बैठेंगी और रेल चली जावेगी, इस विचार ने एक बार सभी के नेत्र पुनः सजल कर दिये तथा अपनी इस विवश सी स्थिति से सम्हलने की सभी चेष्टा करने लगे । इधर व्यग्रता पूर्वक गाड़ी में जगह खोज इन्हें बिठाने का प्रयास होने लगा । टिकट लाते समय विजय अपना भी टिकट साथ ही ले आया था, प्रायः उनकी सन्निधि में इस प्रकार यात्रा करने का अवसर वह ढूंढ ही लेता था । सभी व्यवस्थित हो गया । गाड़ी की खिड़की में बैठी पू० बोबो सभी को सान्त्वना प्रदान करती रहीं । लो गाड़ी ने सीटी दी । एक और सीटी बजी । अस्त–व्यस्त सभी लोग जहां थे वहीं से भागे । धीमी गति से गाड़ी हिली । प्लेटफार्म के रहते उसी मन्द गति से चलती रही । मुड़ मुड़ कर पू० बोबो प्लेटफार्म पर खड़े भाइयों को देखती रहीं– हाथ हिला कर वे सब भी अभिनन्दन करते रहे । हिलते हाथ अवश्य ही रुक गए होंगे, उनके हृदय निस्तब्ध से रह गए होंगे, परन्तु गाड़ी की अनवरत चाल तीव्र–तर होती गई । विजय आकर पू० बोबो के पास ही बैठ गया, उनके अमित प्यार–दुलार से सिक्त होने । पू० बोबो को देहली के स्टेशन पर छोड़ विजय दूसरे दिन अम्बाला लौट आया ।

आशंका में छिपे विश्वास के वशीभूत हुए, किसी आशा किरण की सम्भावना वश अनेक भाई–बहन पू० बोबो को खोजते से– कोई न कोई मिस ढूंढ चले आने लगे । अपने प्राणों से भी प्रिय, अपने जीवन की आधार रूपा, प्रेम रसाविष्ट तथा उसी से सराबोर कर देने वाली पू० बोबो को वहाँ न पा– खिन्न और उदास हो लौट जाते ।

अम्बाला लौटने पर एक विशेष प्रकार की उदासी ने विजय को भी आक्रान्त कर लिया । अन्य भाइ बहन भी उदास थे । एक अभाव निरन्तर खटकता रहता । पंजाबी मौहल्ले वाले घर में श्री ठाकुर जी के सामने पाठ का क्रम पूर्ववत् चलता रहा । सभी भाइ–बहन एकत्रित होते पू० बोबो की चर्चा चलती, उनके प्यार की चर्चा तथा उनसे प्राप्त अध्यात्म सुख की चर्चा चलती, सभी कुछ धीरे–धीरे पूर्ववत् हो गया, परन्तु उसमें नवीन उत्साह भरने वाला, सभी को एक प्रबल आश्रय प्रदान करने वाला, वह महान व्यक्तित्व आलोक स्तम्भ स्वरूप अपने पद चिह्न छोड़, श्री वृन्दावन की वीथियों में बिखरी नील–पीत छवि के रसकणों का संचय करने चला गया ।

❑❑❑

उत्सव स्वरूपा

प्रिया–प्रियतम को लेकर उत्सवों के प्रति उनकी अगाध आस्था थी । नित्य तथा प्रकट लीला के महोत्सवों में उनकी भेद बुद्धि नहीं थी । नित्य लीला में निकुञ्ज विहार, जल केलि, रस विहार तथा रस रंग के सभी समायोजनों तथा ब्रज की प्रकट लीलाओं को छाया–प्रति छायावत एक ही मानती थीं । उनकी यह धारणा सदैव श्यामा–श्याम के प्रकट सहयोग से पुष्ट होती रही ।

वसन्त के मादक दिवसों में उनके हृदय का उन्माद छलक उठता, होली की धूम में उनका अंग अंग थिरकने लगता ग्रीष्म विहार, जल केलि में उनका मन इतनी तन्मयता से जाता कि बाह्य जगत के वातावरण का उन्हें भान ही न होता था । वे सदा कहा करतीं, वृन्दावन उत्सवों की भूमि है । यहां सदा वसन्त छाया रहता है । ऐसा नहीं कि ऋतुओं के परिवर्तन से वे प्रभावित न होती हों, परन्तु उनकी ब्रज और वृन्दावन निष्ठा/धारणा नित्य और प्रकट लीला में सम भाव, अभूतपूर्व था । वे नित्य और प्रकट लीला में इतनी प्रत्यक्ष और प्रकट अभिभूत रहतीं कि यह भेद उन्हें कभी दीखा ही नहीं। एक ही समय में ऐसी अपूर्व स्थिति ओह ! दुर्लभ महानुभावों के लिये ही सुलभ हो सकी है ।

वर्षा की फुहारों में भीगते प्रिया–प्रियतम की रसमयी दशा, शरद ऋतु में अपनी अनन्य प्रियाओं सहित इन रस युगल के थिरकते चरणों के उल्लसित नूपुर शिञ्जन की रसमयता, शिशिर की पैनी बयार को तिरस्कृत सा करती ऊष्ण मणियों की ऊष्णता अहा ! इन सभी को देख उनका हृदय सरसा जाता था, अंग–प्रत्यङ्ग थिरकने लगते, रोम–रोम खिल उठता । उनमें नवोल्लास भर जाता था । उमंग तरंगें रस सिन्धु की लोल लहरियों में सिक्त–स्नात उमग–उमग कर सभी को रस में बोर देतीं । वे उत्सव मयी थीं ।

❑❑❑

प्रथम भाग

सप्तम अध्याय

पृष्ठ २५९ से २९४ तक

वृन्दावन के नाम सों,
पुलकि उठत सब अंग ।
जिहि थल श्यामा-श्याम नित,
करत रहत रस रंग ॥

वृन्दा विपिन सुहावनो
रस रञ्जित रस मूल ।
तन मन चाहत विलसिबो
याकी सुखप्रद धूल ॥

सत्ताईस

अपने घर के लिये प्रस्थान

ब्रज-वृन्दावन में प्रवेश

श्यामा-श्याम का अमित-अगाध लाड़

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥***

श्री कृष्ण को जिन्होंने प्राणनाथ के रूप में स्वीकार लिया है, प्रत्युत यह कहना सर्वथा सङ्गत होगा- श्रीकृष्ण ने जिन्हें अपनी अनन्या प्रिया के रूप में स्वीकार लिया हो तो उसके सौभाग्य का क्या कहना ? जो सदा सदा उन्हीं की अनन्या, उन्हीं की नित्य परिकर, उन्हीं को सर्वस्व मानती रही हों- वहां स्वीकार करने की भी बात कैसी ? स्वीकार करते हैं उन्हें जो अपने नहीं थे- 'आज स्वीकार कर हम उन्हें अपना मानने लगे-''उन्होंने स्वीकार कर अपना माना'। परन्तु यह तो नित्य और शाश्वत सम्बन्ध की बात है- जो अपने थे ही- अपने रहे ही और अपने रहेंगे ही। अपनों को स्वीकारना कैसा भला ? वहां तो नित्य जन्म-जन्म का सम्बन्ध प्रकट हो रहा है, प्रकट तो है ही, उसका भान हो रहा है। भान भी है- था ही, परन्तु इस जगत के, साधारण समाज के सामने उनको समझाने मात्र के लिये यह सम्बन्ध होने का, अपनाए जाने का, अभिनय सा हो रहा है। अपने तो अपने हैं ही- अलग से स्वीकार कर अन्तर दिखलाने की आवश्यकता ही क्या है? गोपिकाओं ने डंके की चोट कहा ''वे तो हैं, हमारे ही, हमारे ही, हमारे ही, हम उनही की, उनही की, उनही की हैं''- यह है प्रेम का, पूर्ण प्रेम का अधिकार। उनके उसी सुदृढ़ विश्वास को देख श्याम सुन्दर बोले, ''मैं जन्म-जन्म के लिये तुम्हारा ऋणी हूँ।''

***हे सखि ! वे चाहे दयामय हों अथवा छली, प्रेमी हों अथवा निष्ठुर, रसिक हों या जार शिरोमणि मैं तो उनकी चेरी बन चुकी हूँ- वे चाहे तो इसे हृदय से चिपटा कर रखें या दर्शन न देकर जल से निकाली हुई मछली की भांति तड़फाते रहें। मैं तो उन लम्पट के पाले पड़ चुकी हूँ वही मेरे प्राणनाथ हैं और अन्य की तो बात ही क्या है ?

न पारयेहं निरवद्य संयुजां
स्व साधु कृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जरगेह शृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥***

श्रीमद्भागवत १०/३३/२२

पूजनीया बोबो अब दिल्ली आ चुकी थीं । वे शीघ्र ही वृन्दावन चली जावेंगी, यह बात सभी को पता थी । देहली में मिलने वालों की भीड़ उमड़ने लगी । देहली में वे अपने छोटे भाई श्री श्रीश मोहन के यहां ठहरी थीं । उनसे पूर्व परिचित, उनसे प्रेरणा ले अध्यात्म पथ पर अग्रसर होते अनेक भाइ–बहनों और माताओं का मेला सा लगा रहने लगा । उनमें मुख्य रूप से श्री हीरा देवी, श्री निर्मला जी, श्री संयुक्ता मिश्रा श्री स्नेह भसीन तथा विमला अरोड़ा प्रभृति अन्य बहनें तथा कुछ भाई सम्मिलित थे ।

दूसरे दिन देहली से ही उनकी मनःस्थिति का परिचायक एक पत्र अम्बाला आया था । पू० बोबो ने लिखा था 'किसी चांदनी रात में सखियों से बात चीत करते करते श्री राधा ने श्री ललिता से पूछा, बहन कितना सुन्दर है यह उज्ज्वल चंद्र । भला यह दिन में भी क्यों नहीं रहा करता ।' श्री ललिता ने बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया बोलीं, 'सखी ! इसमें चन्द्रमा का कुछ दोष नहीं है । बात यह है कि तू दिन में जब ब्रज निकुञ्जों को उद्भासित करती, भ्रमण करती है तो यह निष्प्रभ हो जाता है और न जाने कहां जाकर अपना मुख छिपा लेता है, रात्रि में तू अपने कक्ष में जाकर विश्राम करती है तो यह इठलाता हुआ आ जाता है और अपनी चन्द्रिका, वसुन्धरा पर बिखेर कर अपने सौन्दर्य का डंका बजा देता है । यदि तू रात्रि को घूमने लग जाए, तो यह रात्रि को भी कदापि उदय न हो ।'

श्री कृष्ण लीला में निमग्ना, उसी आहार को पा, जीवन धारण करने वाली बोबो की गति, मति सभी कुछ प्रिया–प्रियतम ही थे । जो

*** प्रियाओ ! प्रयत्न करने वाले साधकों से भी जो घर गृहस्थी की बेड़ियाँ नहीं टूटतीं, तुमने उनको भली भाँति तोड़कर मुझ से यथार्थ प्रेम किया है । मेरे साथ तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्दोष- निज सुख की इच्छा लेश से भी रहित, परम पवित्र है । तुम लोगों ने केवल मुझको सुख देने के लिये ही इतना त्याग किया है । मेरे प्रति किये जाने वाले तुम्हारे इस प्रेम, सेवा और उपकार का बदला मैं देवताओं की लम्बी आयु में भी सेवा करके नहीं चुका सकता। तुम अपनी अपनी साधुता से ही चाहो तो मुझे उऋण कर सकती हो । मैं तो तुम्हारा ऋण चुकाने में सर्वथा असमर्थ हूँ ।

उनकी नित्य की भावधारा थी, जिस रूप रस का, लीला-विहार का आस्वादन वे नित्य और निरन्तर करती रहती थीं, वही रसकण छलक छलक कर लेखनी बद्ध हो यदा-कदा अपने अनुगत आध्यात्मिक भाइ-बहनों में वितरित करती रहीं- अब हम उन सरस अनुभूतियों का वर्णन यथा समय और यथा प्रसङ्ग उन्हीं के शब्दों में गुम्फन करने का प्रयास करते रहेंगे।

पू० बोबो अभी देहली में ही थीं। अम्बाला से आ सभी से मिलते-जुलते, सत्संग और लीला चर्चा करते दो दिन व्यतीत हो चुके थे। अधिक ठहरना उन्हें रुचिकर नहीं लग रहा था, वे भाव विशेष में मग्न प्रिया-प्रियतम की निजस्थली वृन्दावन के लिये आई थीं। श्रीधाम में, श्यामा-श्याम की रूप छटा में मत्त, अपने प्राणों को, अपने अंग अंग को सुशीतल करने आई थीं। पिपासा का मूर्त रूप पूजनीया बोबो को वहां अधिक ठहरना नहीं सुहाया परन्तु स्नेहाग्रह को भी वे अधिक टाल न सकीं अतः जैसे तैसे चौथे दिवस की प्रतीक्षा में तीसरा दिन व्यतीत हो गया। मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तदनुसार १७ नवम्बर १९५९ का दिन था। भोर से ही उनकी उमंग देखते बनती थी। मार्गशीर्ष अति उत्तम मास माना गया है। भगवान श्री मुख से 'मासानां मार्गशीर्षोऽहं' कहकर इसकी पुष्टि का उद्घोष कर रहे हैं। हेमन्त ऋतु का प्रारम्भ हो चुका था। इसी को सौभाग्य प्राप्त है इस ऋतु के प्रारम्भिक मास होने का। यही मास गोपाङ्गनाओं द्वारा श्रीकृष्ण प्राप्ति हेतु कात्यायनी और श्री यमुना स्नान का व्रत लिये जाने के कारण प्रसिद्ध है। हमारी चरित्र नायक पू० बोबो इसी पावन मास में श्री वृन्दावन, वृन्दावन के शोभा स्वरूप रस विग्रह से मिलने पधारीं, श्रीकृष्णानुरागिणी कृष्णा में अवगाहन कर अपनी प्रबल पिपासा के निदान हेतु श्रीधाम, अपने घर चली आईं।

दिल्ली से भोर में, घर से चल, स्टेशन पर आ, गाड़ी में बैठ गईं। यह भाव पूर्ण दशा, उन्माद में भरा हृदय, उमंग-तरंगों में इठलाता अंग संचालन- सभी सुमधुर था। उसी सुमधुर पथ पर अग्रसर हो रही पू० बोबो के अन्तर का आह्लाद अन्दर समा न रहा था। तीव्र गति से चलती, अनेक स्थलों को पार करती रेल, एक दिव्य वातावरण हेतु, एक दिव्य स्थली के लिये चली जाती, लगभग दो बजे दोपहर श्रीकृष्ण प्राकट्य स्थली मथुरा के स्टेशन पर आकर रुकी। पू० बोबो रेल से उतर गईं। अपना एक छोटा सा थैला कन्धे पे डाले, हाथ पर एक साधारण सा कम्बल डाले, अनेक भाई-बहनों की मन-प्राण, अनेक वयस्क तथा सम्भ्रान्त गण्य-मान्य

लोगों के प्यार में भीजी, लाड़-दुलार की मूर्त रूपा पू० बोबो अत्यन्त भोली, परन्तु महान विरक्त थीं। उस महान विरक्ति के साथ-साथ जिन्होंने प्रिया-प्रियतम में उनका प्रगाढ़ अनुराग देखा है, वे कैसे भुला पाएंगे, श्यामा-श्याम की निज परिकर, श्री कृष्ण मतवाली पू० बोबो को। वह भोलापन जो कभी स्वतंत्र रूप से कहीं घर से अकेला बाहर न निकला हो, पत्र पेटी में पत्र डालने का भी अनुमान जिसे न हुआ हो, आज अपने वैराग्य से पूर्णत: सज्जित, मथुरा स्टेशन से बाहर जाने का रास्ता खोजने लगा। लोगों की भीड़ का अनुगमन करती, लाड़ प्यार में पली, अनेको पुतलियों के समान प्रिय, एक उच्चतम कन्या विद्यालय की प्रधानाध्यापिका, विरक्ति ही मूर्त हो चल रही हो मानों, जैसे ही एक तांगे के पास आकर रुकीं, उससे कुछ भी कह, पूछना असम्भव सा लगा, उस विभूति के लिये। वे आकर रुकीं। तांगे में अन्य लोग बैठे थे, तांगे वाला 'वृन्दावन', 'वृन्दावन' की ध्वनि कर रहा था, जिसे सुन यह स्तब्ध सी खड़ी रह गईं।

मथुरा की सड़कों से होता हुआ तांगा वृन्दावन मार्ग पर बढ़ने लगा। प्रकृति ने झूम कर स्वागत किया। वृक्ष और वल्लरियां झंकृत हो गईं, स्वतः उनसे फूल झरने लगे। एकान्त और नीरवस्थली पुष्पों की महक से गूंज उठी। वह सवारी धीरे-धीरे अपने गन्तव्य स्थल की ओर बढ़ती जा रही थी।

श्री वृन्दावन की सड़कों पर बढ़ते तांगे में बैठी पू० बोबो समीरण के संस्पर्श से चौंक जातीं, उसकी झकोर से सिहर उठतीं, रंग-बिरंगे वस्त्राभरण धारण किये जाती, सिर पर कलश धरे, ब्रजाङ्गनाओं की भीड़ को देख मग्न हो जातीं। इधर-उधर निहारतीं, आकाश की ओर देखतीं, घनी कुञ्जों की गहनता में देखतीं, वहां की रज को देखतीं, प्रकृति के अलबेले पन को देख सिहर उठतीं, केकी की मधुर ध्वनि सुन, भाव विशेष में भर जातीं, शुकों की परस्पर बतरान सुन और गम्भीर हो जातीं, पक्षियों का कलरव ओह ! सभी से पूर्व परिचित की भांति प्रफुल्लित सी हो श्यामा-श्याम के मधुर भाव में तन्मय हो जातीं।

यह लो ! सामने ही एक विशाल वृक्ष से उड़ केकी, अपनी माधुरी स्वर लहरी से स्थली को सरसाता दूसरी ओर बड़ी ही तीव्र गति से चला गया। लगता है श्याम सुन्दर का अनुगमन करता, उनकी छवि को अहर्निश पान करने को व्याकुल केकी, अपनी लुब्ध पिपासा का संवरण नहीं कर सका। घने ऊंचे छायादार वृक्षों से केकी समूह की अनवरत सुनाई देती ध्वनि उनके हर्षोल्लास के रूप में, स्वागतार्थ गूंज उठी।

चारों ओर से 'राधे-राधे' की ध्वनि सुनाई देने लगी। आपको बुलाना है तो 'राधे' कहकर पुकार रहे हैं, आपका ध्यान आकर्षित करना है तो 'राधे' दूध देने वाला आपको दूध देने के लिये 'राधे' कह रहा है, पोस्टमैन चिट्ठी देने आया तो 'राधे' ओह ! जहां देखो 'राधे' ही राधे व्याप्त दीख रही हैं।

तांगा रंग जी के मन्दिर के सामने जाकर रुका। उसमें बैठे सभी लोग एक-एक कर उतर अपने अपने गन्तव्य स्थल पर चले गए। पूज्या बोबो बैठी रह गईं। थोड़ी देर में तांगे वाले ने पूछा, "लाली ! तू कहां जावेगी।" लाली चौंक कर जगी सी हुई, वह क्या कहती, उसे कहां जाना था ? कोई निश्चित स्थान तो था नहीं तथा जिस स्थली के लिये वे आई थीं वहां पहुंच ही चुकी थीं। कुछ ढाढ़स सा बांधते हुए यह बोलीं, 'मैं यमुना तट पर जाना चाहती हूँ।' तांगा कुछ और आगे बढ़ा। गोपीनाथ बाज़ार के आधे में रोक, तांगे वाले ने कहा, "उतर जा, यह मार्ग सीधा यमुना तट पर ही जाता है।" *"इनके आनन्द की सीमा न रही। श्रीयमुना की सुरम्य तटीय जिन निकुञ्जों को, उनमें विहार रत प्रिया-प्रियतम को, स्निग्ध बालु में चमकते रज कणों को, यमुना तट पर लीलास्वादन में मग्न विराजमान वृक्ष वल्लरियों को, उन पर चहचहाते पक्षियों को अम्बाले में ही प्रत्यक्ष रूप से देख लिया था, आज उस संस्पर्शित पवन का स्पर्श पाऊंगी, उस शोभा को पुनः निहारूंगी, उसमें अवगाहन कर कृष्णानुरागिणी श्री यमुना के अनुराग का दर्शन करूंगी,* इन विचारों में मग्न होती रहीं।"

तांगे से उतरी ही थीं, किसी से पूछने को रुकीं। अपनी दुकान से उतर आए एक युवक बोले, "आप अम्बाला से आई हैं। आप ऊषा जी हैं ?" यह सब सुन स्तब्ध हो गईं। यह सब क्या था जान न सकीं ? वे युवक थे श्री बनारसी भाई। वृन्दावन के प्रेमी थे। कपड़े की दुकान से जीविकोपार्जन कर श्रीधाम में वास करते थे। श्री सन्तोष जी तथा सरला जी इन्हीं के मकान में किराए से रहती थीं।

बात ऐसी हुई कि जब पू० बोबो अम्बाला से चलीं तो बहन विमला नेविल ने वृन्दावन में पूर्व परिचित श्री सन्तोष जी और सरला जी को उड़ती-उड़ती सूचना दे दी थी- परन्तु समय आदि का ठीक नहीं था। श्री बनारसी भाई को किस प्रकार यह प्रेरणा हुई और बहन जी का वहीं आना, एक ऐसा संयोग हुआ, जिसे मैं मुख्य कारण तो नहीं कहूँगा, परन्तु

परोक्ष रूप से अवश्य ही पू० बोबो के वृन्दावन में रुकने के एक ठिकाने का परिचायक अवश्य यह बना। मुख्य कारण तो अत्यन्त सरस और सुन्दर था। इन नीलघन श्याम-सुन्दर की अपनी अनन्या सखी, उन्हीं के सम्बल पर किसी भी पूर्व परिचय के बिना आई थी, उसकी चिन्ता प्रिया-प्रियतम को थी। उन्होंने इनके स्वागत का यह रूप बना, अपनी अहैतुकी कृपा का एक और परिचय दिया।

उन भाई से पू० बोबो ने कहा, ''मुझे तो आप श्री यमुना जी का मार्ग बतला दीजिये'' वैराग्य की महान प्रतिमा, एक सुदृढ़ निश्चय को लेकर घर से चली थीं, वृन्दावन में किसी भी एकान्त स्थली पर किसी लता-तरु की छाया में रहकर वह वहां वास करेंगी। अनेक बार कहा करती थीं, यदि यह पुरुष देह होता तो निश्चय ही कृत्रिम बने आश्रमों में नहीं, प्रत्युत प्राकृतिक आश्रय में ही विचरण कर, अपने अटूट निश्चय पर दृढ़ रहता। श्री रूप-सनातन जी* की विरक्ति ने इनके मन को आकृष्ट किया था तथा वृक्ष-वृक्ष के नीचे रहकर ही अपना महान अभीष्ट प्राप्त करना चाहती थीं।

इनके कंधे से थैला उतार, हाथ में कम्बल ले वे भाई पास ही के मकान में ले गए। उन दिनों पू० सन्तोष बहन जी सरला जी, वहीं निवास करती थीं। संयोग से श्री सेवा दास जी** भी वहीं विराजित थे। पू० सन्तोष जी का आवभगत का स्वभाव था ही, उसमें सम्पुट लगा श्री ठाकुर जी की प्रेरणा का, अत: रहने, खाने-पीने की व्यवस्था, पूर्ण रूप से हो गई। वे एक स्थान पर स्वयं ही लिखती हैं ''एक कम्बल लेकर चली थी। तुम सब घबराते थे, सर्दी कैसे कटेगी ? पर इन प्रबन्धक महोदय (श्री श्री ठाकुर जी) ने, गद्दे, चादर, कई कई कम्बलों का प्रबन्ध करवा दिया। चालाकी देखो ज़रा, मुझे यहां आने में एक दिन लेट करवा दिया। सोमवार को नहीं आ सकी। मंगल को यहां पहुंची। बड़ी झूंझल आई, बुलाना नहीं चाहते थे तो अम्बाला से दिल्ली तक ही क्यों भेजा ? पर यहां आकर रहस्य पता चला। सोमवार को यदि आती तो अवश्य ही यमुना तट पर पड़ी रहती ....। सन्तोष जी ऐसे मिलीं, मानों युगों से परिचित हों ... बस सन्तोष जी के पास आना क्या हुआ ... नटखट ने सोचा सन्तोष जी के फंदे में फंसवा दो।''

* ब्रज के प्रसिद्ध संत

** श्री सेवादास जी (अंकल जी) I.N.A. में कर्नल चौपड़ा के नाम से विख्यात रहे। अपना भौतिक जीवन छोड़ महर्षि रमण से दीक्षा ग्रहण कर अधिकांश धर्मशाला की पहाड़ियों में निवास करते थे। वृन्दावन आने का उनका नियम ही था। अम्बाला में भी प्राय: पू० बोबो के पास सत्संग में आते रहते थे।

वे इन्हें कहीं अकेले जाने न देती थीं। पू० बहन जी के साथ पू० बोबो वृन्दावन में अनेक स्थलियों पर भ्रमण करती रहीं। एक स्थान पर पुनः लिखती हैं, "निधिवन और सेवा कुञ्ज आकर्षक लगे। यहां की लताऐं विचित्र हैं। ऐसी अलबेली झुकी हुई लताऐं कहीं नहीं देखीं कभी। सचमुच ही प्रियतम के प्रणय भार से दबी रसवर्षिणी हों जैसे। श्री ललिता जी को प्यास लगने पर भगवान ने वंशीध्वनि द्वारा श्री यमुना जी की धारा प्रकट की, वह ललिताकुंड भी देखा। श्री रूप और जीव गोस्वामी पाद की समाधियां देख लगा जैसे वे वहीं छिपे बैठे हैं ये लोग हरिनाम रसामृत का पान कर धन्य हो गए।"

श्री वृन्दावन आकर पू० बोबो कभी निधिवन में विचरण करतीं और कभी सेवा कुञ्ज में दर्शनार्थ चली जातीं। इनकी अलबेली लताओं और कुञ्जों में इन्हें अनन्त सुख की प्राप्ति हुई। कई बार श्री बिहारी जी, राधावल्लभ जी, रसिक बिहारी जी, राधारमण जी के दर्शन करने चली जातीं। सघन कुञ्जों, वन्य निकुञ्जों में सघन वीथियों में, वंशीवट पर, यमुना तट पर उनके चरण थिरकते रहते। रास में जातीं और सर्वोपरि एकान्त में बैठ एकान्त को 'नितान्त एकान्त' बना किन-किन सुधियों और स्मृतियों में डूब उतरने लगतीं यह कहना किसके वश की बात है भला! वृन्दावन में विचरण करते अपने जीवन सर्वस्व प्रिया-प्रियतम तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा इन गोपी वृन्द की अनुभूति इन्हें सदैव बनी रहती। पग-पग पर उनका दर्शन करतीं। अपने मन की कहतीं, आत्म विभोर हो वृन्दावन में विचरण करती रहीं। अपने ही एक पत्र में श्याम सुन्दर को सम्बोधन कर कहती हैं "मुझ में तो आने का बल नहीं था। तुम्हीं ने बुलाया, विवश परवश करके। तुम्हारी यह दिव्य भूमि देखी, यहां के उज्ज्वल हीरक से रजकणों ने शरीर को विभूषित किया और सुशीतल भी। वंशीवट, कदम्ब वृक्ष, तमाल-तरु सभी कुछ देखा। शीतल बयार के झोंके इन्हें झकझोरते हैं, पर ऐसा लगता है कि अतीत का प्यार उर में संजोए यह चैतन्य तो अवश्य हैं, पर इनके लहराने में, प्यार के उन्माद की, संयोग के सुख सौभाग्य की ललक नहीं है।"

विचरण करते-करते कभी आह्लाद में भर सजल नेत्र हो निहारती रहतीं, श्याम-सुन्दर को अहर्निश निरखते रहने की प्रबल लालसा में जब किञ्चित् व्यवधान सा लगता, तो इनका हृदय उमड़ पड़ता। प्रकृति के अलबेलेपन से अपने मन का तादात्म्य कर, उसके मिस अपने मन की

भावना अभिव्यक्त करतीं । यही नहीं "निधिवन में लगा जैसे तुम इन निकुञ्जों में से झांक रहे हो ।" कभी दीनता भरे वचन कह अपने मन की निकालतीं और एक जगह कहती हैं *"जिस प्रकार का स्वतंत्र और निर्विघ्न जीवन चाहती थी, वह तुमने होने नहीं दिया । इसका कारण भी मैं खूब समझती हूँ चतुर शिरमौर ! केवल शरीर सुख में टालना चाहते हो मुझे, पर मैं भी यों टलने वाली नहीं हूँ । तुम्हारी कृपा कोर का, करुणा कोर का, तुम्हारे दुलार का बल है मुझे । इतना ही नहीं अपनी स्वामिनी, तुम्हारी प्रियतमा प्रेयसी के चरणारविन्दों की शरण में हूँ । उनकी चरण शरण का सहारा है, भरोसा है, बल है," अपने प्रणयाभिमान वश एक जगह कह रही है, "अब बोलो ! है तुममें टालने की सामर्थ्य ! अपनी ओर देखूं तो जीवन में निराशा हो जाती है, पर जब तुम्हारी और श्री राधा जी की सहज करुणा और लाड़ प्यार के स्वभाव की ओर देखती हूं तो आशा बंधती है । तुम्हारी करुणा नहीं बरसी यह कहूं तो अपराध है । कल यों ही आलस में पड़ी रही कम्बल लपेटे । मन कुछ खिन्न सा था । दीन जनों की एक मात्र गति रासेश्वरी श्री राधा का स्मरण हो आया । झुंझलाहट तो तुम पर थी, उन्हीं से तुम्हारी शिकायत कर दी । तभी देखा अपने दाहिने कर सरोज से तुम्हारा वाम पाणि पङ्कज थामे श्री श्री राधिका तुम्हें साथ लिये आ रही हैं । तुम ऊपर की सीढ़ी पर हो और वह नीचे की पर । उनके हाथ में तुम्हारा हाथ है दूसरी ओर कोई महाभागा और भी हैं, पर मैं उन्हें ठीक से देख नहीं पाई। वे कुछ दूरी पर खड़ी थीं । श्री राधा की साड़ी कुछ किशमिशी से रंग की थी । उस पर सुनहरी ज़री की धारियाँ सी थीं, झिलमिल-झिलमिल कर रही थी साड़ी। वे निचली सीढ़ी पर खड़ी ऊपर को मुख उठाए, मुस्करा कर तुम्हें नीचे उतरने का संकेत कर रही थीं । तुम्हारा मुझे उतना स्पष्ट स्मरण नहीं है, तुम पर झुंझल जो थी पर तुम्हारा शरारत भरा खिजाने की रुचि से परिपूर्ण मुख मण्डल कुछ कुछ स्मरण है । प्रिया जी की इस कृपा कोर से गद्गद हुई चुप पड़ी रही ।"*

पत्र लेखन उनकी साधना का एक अंग ही था । उनके 'पत्र' मात्र पत्र न होकर, उनके मन की उमगन ही होते थे, उसमें उठी अनुभव लहरियों से सिक्त होते थे, उनकी उर सरसि में उठे ज्वार-भाटे से सिंचित होते थे । प्रियतम की लीला-कथा, उनकी रसीली वार्ता, अनुभूतियां ही उनका मूल होती थीं । अपने जनों में लीला कथा कहने, उन्हें समय-समय पर समझाने, उनका उचित मार्ग निर्देशन का, पत्राचार भी एक अनोखा

माध्यम था । सामने होतीं तो लीला-कथा में सब कहतीं, परन्तु वृन्दावन आकर यहां से सम्बन्धित उनकी अनुभूतियां, उपलब्धियां, यहां के दृश्यों का सजीव चित्रांकन और वर्णन इतना प्रत्यक्ष और हृदय-ग्राही होता था कि वहां दूर बैठे, सभी के मन का सहज तादात्म्य हो जाता तथा रसाविष्ट हो जाया करते थे । अपनी कहने की इतनी सजीव शैली थी कि दृश्य सामने प्रस्तुत हो जाते थे । ओह ! कोई असाधारण व्यक्तित्व ही इस महत् कार्य में निपुण हो सकता है ।

यमुना स्नान, दर्शन का उनका नियम ही था । इसके अतिरिक्त भी वे प्रायः श्री यमुना के सन्निधि सुख हेतु एकान्त में वहां बैठा करतीं । कभी वंशीवट पर चली जातीं और कभी युगल घाट पर बैठी, युगल की रूप माधुरी में तन्मय हो जातीं । चीर घाट और पूर्व से ही प्रिया-प्रियतम का लाड़ प्यार प्राप्त गोविन्द घाट पर जा विराजतीं । जहां एक ओर उनकी पूर्व की स्मृतियां उन्हें झकझोर देतीं, वहीं उन्हीं स्मृतियों के साकार होते यह रस में विभोर हो जातीं । कभी प्रियतम की माधुरी खोज में कुञ्ज-निकुञ्जों में निधिवन की सरसता में, सेवा कुञ्ज के सुखद सुशीतल वातावरण में, तन्मय हो जातीं । प्रिया-प्रियतम की माधुरी छवि का पान कर उमग उठतीं, कहीं श्यामा-श्याम की शत-शत वीणाओं को विनिन्दित करती हास ध्वनि को श्रवण कर, रस मग्न हो जातीं, यही नहीं उनके नयनों से निसृत, रस-संकेतों से उद्वेलित हो उठतीं और उन्हें अपने में भरे, उस प्रणय-माधुरी के अतल-तल में डूब जातीं, फिर किसे सुधि रहती..... इस रस दशा का, माधुर्य के चरमोत्कर्ष का वर्णन करने में कौन सफल हुआ है भला ? 'तदपि कहे बिनु रहा न कोई' फिर भी अनुभूति का यत्किञ्चित् वर्णन अवश्य हुआ है- साधकों को प्रेरणा देने हेतु, एक सम्बल प्रदान करने हेतु । इन्हीं भाव लहरियों में आस्वादन रत महानुभावों की रसीली चेष्टाओं, उमंग-तरंगों में कुछ रस कण छलक कर बाहर भी प्रकट हुए हैं- उन्हीं प्रसादी कणों से आज सन्तों द्वारा निर्मित अभिमत, सत् शास्त्र, उनकी अनुभूतियां- कहीं कहीं संग्रहीत हैं । वास्तव में यह कहना, कहना नहीं है, बेसुधि में उनके मुख से निसृत, प्रेमोन्माद में प्रस्फुटित स्वर लहरी है जिसे श्रवण कर आसपास के लोगों ने, उनके सम्पर्क में आए भाई बहनों ने यत्किञ्चित् उस निधि को सम्हाल रखा है । पू० बोबो पुनः उसी माधुर्याम्बुधि की लहरियों में मग्न मत्त अपने एकान्त में सुखास्वादन रत हो जातीं .... अहा ! ...... अहा ! कितना मदिर, कितना मादक है यह उन्मद रस-स्रोत, जिसकी

इति नहीं, अथ ही अथ है । प्रेमियों ने इसी भाव को, रागानुराग पूर्ण इसी दशा को, हृदय की बेकली को, आकुलता-व्याकुलता के रूप को, प्राणों की पुकार को, 'नित्य वर्द्धमान' का सम्पुट लगा प्रिय प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन माना है ।

हां ! तो पू० बोबो वृन्दावन में आकर अपने प्राणों के प्राण, जीवन सर्वस्व के ध्यान, लीला और चिन्तन में निमग्न उनकी सरस सन्निधि में रहने लगीं ।

श्री मनोहर जी से परिचय

इन्हीं दिनों श्री सन्तोष बहन जी के यहां इनका परिचय हुआ एक युवक महात्मा से । उन्हें सभी श्री मनोहर दास* के नाम से जानते हैं । पू० बोबो के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी, उनकी किसी भी बात को नकार सकना उनके वश की बात न थी । यह भाव अन्योन्याश्रित था । आत्मीयता इतनी अधिक हो गई कि परस्पर का समादर भाव देखते ही बनता था ।

पू० बोबो की भावधारा, श्री ठाकुर सेवा, श्रीकृष्ण चरणों में अनुराग से वे सदैव, प्रभावित हुए । श्री ठाकुर सेवा के विषय में तो उनकी धारणा थी 'श्री विग्रह सेवा के प्रति मेरी आस्था केवल औपचारिकता जैसी थीं । पू० बोबो के श्री ठाकुर जी के दर्शन कर इनमें आस्था का जो रूप स्वतः बन गया वह कल्पनातीत है । श्री ठाकुर का इतना प्राकट्य, प्रत्येक क्रिया में इतना सहज सहयोग, ऐसा योगदान, भावाभिव्यक्ति निश्चय ही एक अनुपम सेवा से ही सुलभ सम्भव है । श्री

---

* अहल्याबाई होल्कर राज्य के राजपुरोहित के पुत्र, श्री रामकृपालु जी के संकीर्तन को सुन प्रेम दीवाने हो वृन्दावन की वीथियों में श्रीकृष्ण की खोज में चले आए थे । यहां आकर एक अन्य महात्मा श्री बालकृष्ण दास जी से सम्पर्क हो गया उन्हीं के आनुगत्य में रहने लगे । चेहरे पर राजघराने की भव्यता, विचारों में माधुर्य तथा गाम्भीर्य, लीला चर्चा में अभिनिवेश, पदगान सुन तन्मय हो जाना, स्वभावगत था । पूज्य महाराज जी के सत्संग में तन्मयता; उनका स्वभाव है । आत्मीयता इतनी कि उनके बिना कहीं आने जाने का उत्साह ही न होता था और जब कभी जाना बनता भी तो कई बार पू० श्री महाराज जी उठकर उनके पीछे पीछे चल दिया करते थे । पू० श्री महाराज जी के प्रति अगाध श्रद्धा तथा उनकी विशेष कृपा आज भी दर्शनीय है ।

किसी कारण वश पू० श्री महाराज जी ने उनसे मिलना बन्द कर दिया जबकि भीतर से उनके प्रति वही भाव बना था । इस अभाव में उनकी मनोदशा का वर्णन कर पू० बोबो एक जगह लिखती हैं, 'विरह' शब्द अवश्य सुना था, उसके कारण कष्टकी सीमा का अनुमान भी था परन्तु इन भाई को देख कर लगता था विरह ज्वाला से प्रतिक्षण दग्ध इनका हृदय उमड़कर बाहर भी प्रकट हो जाता था । इस प्रकार का स्वरूप इन्हीं में देखने को मिला ।

ठाकुर का इतना प्रत्यक्ष प्राकट्य सुना अवश्य था, आज उसकी आवृत्ति देखकर विश्वास करने का गौरव समझ रहा हूँ।'

श्री सखा जी की लीलाओं के प्रति अभूतपूर्व विश्वास और श्रवण कर सराहना करना तो इनका स्वभाव ही बन गया था। वे कहा करते, 'भाषा की इतनी माधुरी, भाव प्रवणता, शैली की रोचकता, निगूढ़तम लीलाओं की गरिमा पूर्ण अभिव्यक्ति श्री सखा जी के ही सामर्थ्य की बात है। यह भाषा यहां की नहीं है- दिव्य भाव के भार को, दिव्य भाषा ही किञ्चित् वहन कर सकती है। श्री सखा जी की भाषा सर्वथा सर्व प्रकार से उपयुक्त है।'

श्री घनश्याम जी से परिचय *

श्री मनोहर जी ही पू० बोबो को ले गए थे एक अन्य ब्रजवासी बालक की कुटिया पर उनसे मिलवाने, जब ये श्री बिहारी जी के मन्दिर में दर्शन कर रही थीं।

पू० बोबो के स्वभाव, उनकी अध्यात्म जगत में स्थिति, भावाभिव्यक्ति और भाव प्रवणता तथा श्री ठाकुर सेवा ने एक जादू सा कर रखा था- ये भी सर्वथा उससे प्रभावित थे। ब्रजभाव की अनुभूति की भी एक सीमा थी- यह अभिनिवेश प्रिया-प्रियतम के असीम कृपा पात्र को उन्हीं की देन है- अतः पू० बोबो में सर्वथा परिलक्षित होता था यह भाव- और अन्य सम्पर्क में आने वाले उनकी इस गरिमा को सर्वथा मानते रहे। घनश्याम जी भी इन्हीं में एक हैं।

इनके विषय में पू० बोबो एक जगह लिखती हैं, 'यह भैया रास मण्डली में ठाकुर बना करता था। बहुत ही चंचल-चपल और हँसमुख है। उसमें जो आकर्षण मुझे लगा वह है श्री हरि की कथा वार्ता में उसके मुख पर आने वाले मधुर और करुण भाव। पदगान बहुत सुन्दर करता है- तन्मय हो जाता है, पर है बेहद शरारती।'

.... उसने मेरे पैर भी छुए। बहुत ही झुंझल आई। मैंने कहा, "ब्राह्मणत्व से गिर गया है तू। ऐसे-ऐसे निकम्मे काम करता है।

* श्री घनश्याम जी (ठाकुर) ब्रज के आस पास के क्षेत्र के एक ब्राह्मण बालक, जिसका परिचय रासमण्डली में ठाकुर स्वरूप बनने से प्रारम्भ हुआ। भाव तन्मयता, तथा लीलाभिनिवेष के कारण इनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई। कल्याण सम्पादक श्री पोद्दार महाराज तथा पू. श्री चक्रधर बाबा के अनन्य कृपा पात्र रहे हैं। इधर वृन्दावन में पू. श्री बालकृष्ण दास जी महाराज के सम्पर्क में आने पर इनकी भी विशेष कृपा बरसी।

बहुत ही हँसा, नाचा, कूदा बोला, 'बस बस बन गया काम । ब्राह्मण मैं हूं कहां ? ब्राह्मणत्व का बोझ लेकर वृन्दावन में रहता कैसे ?'

श्री सखा जी की लीलाओं में, उनकी भावाभिव्यक्ति और सुमधुर भाषा तथा निगूढ़तम एकान्तिक निभृत निकुञ्ज विहार की भाव गरिमा से यह भी अत्यन्त प्रभावित रहे । एक बार की बात है इन्होंने मौन रखा हुआ था । उसमें श्याम सुन्दर ने संकेत कर कहा कि, "जाओ श्री सखा जी द्वारा सुनाई लीला श्री ऊषा जी (पू० बोबो) के यहां सुनकर आओ ।" पू० बोबो उन दिनों बड़ी कुञ्ज में रह रही थीं । ये अकेले ही आए और पू० बोबो से निवेदन कर, लीला सुन, एक तन्मयता में भरे तुरन्त लौट गए।

बहन जी की आध्यात्मिक गरिमा के कारण उन्हें सर्वदा समुचित समादर देते ।

श्री बिहारी दास जी से परिचय

इन्हीं दिनों इनके सम्पर्क में आए पू. श्री बिहारी दास जी, 'वृन्दावनी' । 'विष्णु स्वामी' सम्प्रदाय के नागा समाज में दीक्षित होने पर भी नागाओं की सी स्वच्छन्दता के साथ-साथ जो स्नेह और सौहार्द का स्वभाव इनमें हृद्गत है, उसकी अपनी ही विशेषता है । प्रिया-प्रियतम के चरणों में दृढ़ अनुराग, वृन्दावन-निष्ठा सराहनीय है । पदगान में स्वाभाविक रुचि, पदों का समुचित संकलन- इन स्वभावगत आस्थाओं ने पू० बोबो को आकृष्ट कर लिया । अपनों का सम्पर्क भाव विशेष में द्रवित मन वालों का मेल, सहज हो जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है ।

लेखन इनके रक्त में है, सम्पादन इनका स्वाभाविक गुण।

पू० बोबो के प्रति इनका समादर बढ़ा, श्रद्धा का स्वरूप ले किञ्चित् आस्था भी । एक सुव्यवस्थित विचारधारा का पोषण पा आज भी पू० बोबो के प्रति आभार प्रदर्शित करते रहते हैं ।

पू० बोबो के स्नेह के वशीभूत हुए, उनसे सर्वथा प्रभावित होकर एक बार गद्गद कण्ठ से कहने लगे "मैं अधिक पढ़ा लिखा नहीं हूं, परन्तु जितना कुछ देखा पढ़ा है उसके आधार पर श्री करपात्री महाराज, जैसे दिग्गज धर्म गुरुओं को ललकारने में कभी पीछे नहीं रहा, परन्तु बहन जी का व्यक्तित्व, उनका स्वभाव, उनकी भाव प्रवणता- क्या-क्या कहूं । वे सभी क्षेत्रों में, सभी ओर से इतनी सम्पूर्ण थीं कि उनके विषय में जितना भी कहूं उनकी सम्पूर्णता की किञ्चित् भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता ।"
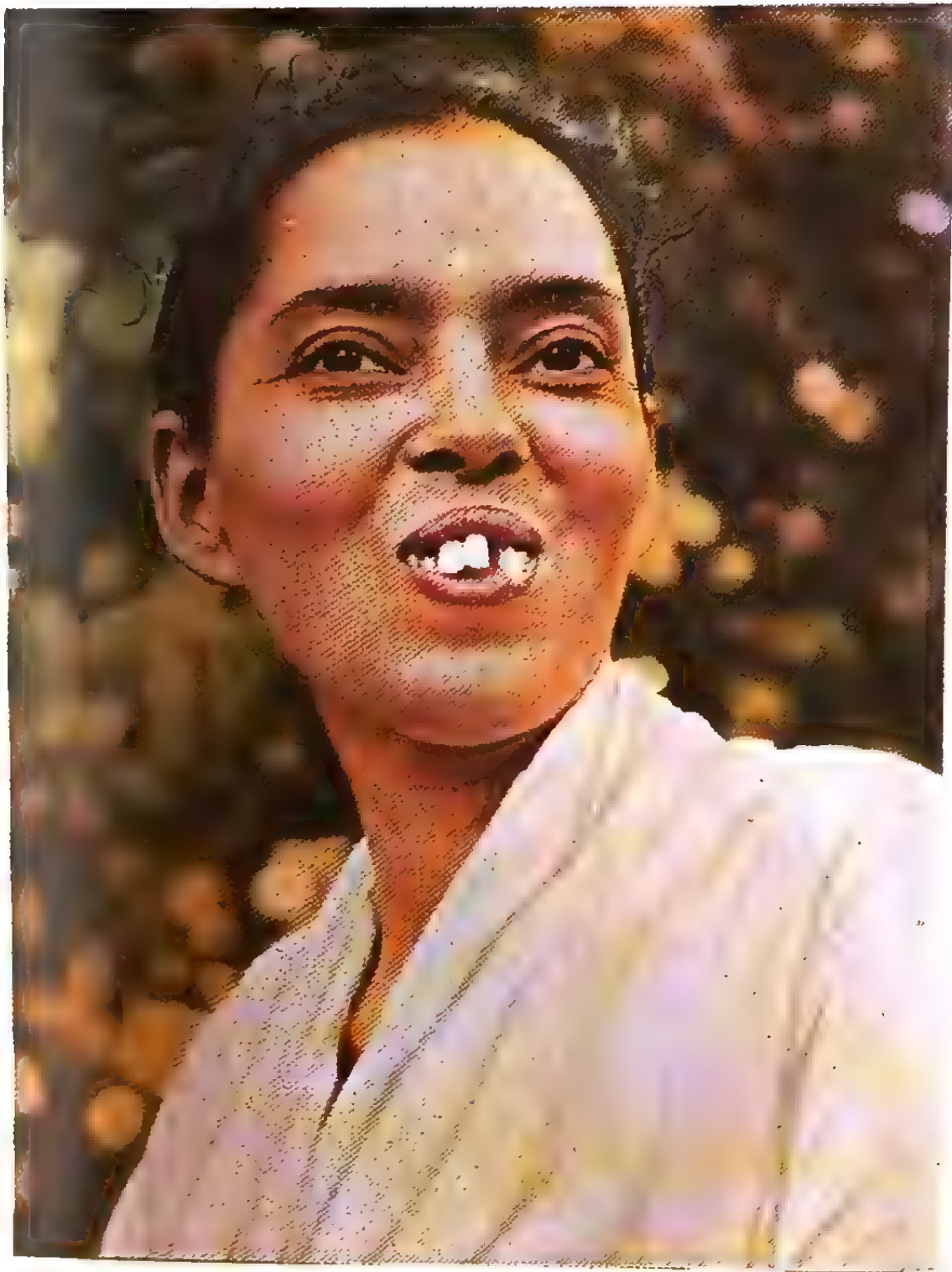
'अंग अंग में थिरकता हास्य'

"अध्यात्म-जगत में ऐसा पूर्ण व्यक्तित्व मेरे जीवन में वर्तमान पीढ़ी में कोई देखने में नहीं आया।"

"उनकी आध्यात्मिक अनुभूति पूर्ववर्ती आचार्यों और उच्च कोटि के भक्तों से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं रही। श्री सन्तोष जी, श्री मनोहर जी, श्री बनवारी शरण जी के माध्यम से सखा जी की अनुभूति की प्रशंसा सुन मैं भी उन लीलाओं को सुनने के लोभ का संवरण न कर सका। बहन जी ने कृपानुग्रह कर सुनाया- मुझे लगा कि उनकी सी भावाभिव्यञ्जना और अनुभूति की गरिमा अन्य किसी भी महज्जन में देखने को नहीं मिलती। सभी विषयों को छोड़ कर जहां केवल माधुर्य ही समाविष्ट है, छिलका और गुठली अथवा श्रम का कुछ काम ही नहीं, केवल मधुर-मधुर-मधुर रस, मधुरतर रस और मधुरतम रस- रस ही रस जहां है वहीं पू. श्री सखा जी की स्थिति है।"

वृन्दावन में आने के उपरान्त प्रिया-प्रियतम की प्रेरणा से व्यवस्था के नाम पर लगभग सभी निश्चित सा ही हो गया था, उनकी इच्छा में अपनी इच्छा मिला कर पू० बोबो वृन्दावन वास कर रही थीं। श्री बिहारी जी के दर्शन का उनका नियम सा ही था। श्री गोपीनाथ मन्दिर से वे नित्य बिहारी जी दर्शन करने जातीं। लोभ का संवरण करना अत्यन्त कठिन है- श्यामा-श्याम की प्रीति के लिये किया गया लोभ सर्वथा ग्रहणीय है, वांछित है जबकि साधारण जगत में लोभ सर्वथा त्याज्य है। लोभ शब्द की सार्थकता यदि कहीं है तो केवल श्यामा-श्याम के कृपा प्रसाद की उत्तरोत्तर बढ़ती प्रवृत्ति में ही। वैसे तो जहां वस्तु होती है, जिसने उस महारस का आस्वाद लिया है वही उसके विषय में जानता है- जिसे आस्वाद ही न मिला हो उसका आकर्षण नेपथ्य में ही कहा जावेगा- और किसी को होगा भी क्यों कर। जिसे वे मिले हैं- उसका अभाव होने पर कष्ट का अनुभव वही कर सकता है- प्रेम का स्वरूप यही माना गया है, जहां उत्तरोत्तर वृद्धि है, उत्तरोत्तर अतृप्ति ही अतृप्ति बनी रहती है, वहीं प्रेम का रूप परिष्कृत होकर निखरता है। प्रेमी में बहुत सी स्वाभाविक क्रियाऐं होती हैं, सर्वदा प्रेम पाते रहने पर भी, उसके मन में यह जानने की इच्छा होती है कि क्या मेरे प्रेमास्पद को भी मुझ से प्रेम है ? क्या उनका हृदय मेरे लिये भी कभी द्रवित होता है ? यह सुनिश्चित होने पर भी 'Love is giving and giving alone and not taking' इस उक्ति को पूर्णतः स्वीकारने पर भी प्रेमी की शंका, जिज्ञासा के रूप में, प्रेमास्पद के मुख से यह सुनने की बनी रहती है।

उनसे कोई रस संकेत प्राप्त करने की लालसा वश, वह अकुला उठता है, उनकी उस मदिर भावभरी रस दशा से प्रणय पगा आश्वासन पा, अपने प्राणों में, नव संचार पा, मग्न हो जाया करती है उसकी यह चाह।

ऐसे ही एक बार अपने प्रणयाभिमान मिश्रित दैन्य पूर्वक पू० बोबो बिहारी जी के दर्शन करने गईं। उनका वृन्दावन आगमन प्रिया-प्रियतम की इच्छा से ही हुआ था फिर भी उनके मन में एक भावना उठी श्री बिहारी जी इस रूप में भी इसकी सम्पुष्टि करें तो विश्वास की कड़ी में एक और आश्वासन जुड़ जावे, ठीक ऐसा ही हुआ। मन्दिर में इनके मन में विचार आया कि श्री बिहारी जी का हार प्रमाण स्वरूप मिले– अभी यह विचार पूरा भी न हुआ था कि श्री बिहारी जी ने किसी प्रकार एक हार इनके हाथों में ला थमाया। बिहारी जी की कृपा ममता देख प्रफुल्लित हो उठीं पू० बोबो। आश्वासन की इति श्री अभी भी न हुई थी– इनके मन में पुनः संकल्प उठा। इस बार था, कि 'बिहारी जी यदि पुनः शीघ्र ही दर्शन दें, इससे बड़ा सौभाग्य क्या होगा भला ! इस बार का संकल्प कुछ ऐसा था कि जाते ही इतनी दूर से श्री सन्तोष बहन जी आने न देंगी और न ऐसा कोई संयोग ही हो सकता है कि शीघ्र आना पड़े। अपने जनों के मन की रखने को भगवान सदैव आतुर बने रहते हैं, अपने प्रेमियों को प्रेम भरे आश्वासन यदि वे न दें तो उनमें त्वरा कैसे स्थायी बनी रहे। वे सम्हालते हैं, पग-पग पर सत्कार करते हैं, आश्वासन प्रदान करते हैं– उनका विरद ही है, अपने जनों के मन की भावनाओं को आदर देना। यह बात सर्वथा संगत है कि सर्वोपरि इच्छा तो भगवान की ही होती है परन्तु अपने भक्तों के, अपने जनों के संकल्पों को सम्हाल उन्हें पग-पग पर प्रोत्साहन देना प्रिया-प्रियतम का मूल भूत स्वभाव ही है।

पूज्या बोबो, बहन जी के साथ घर पहुंची तो वहां बहन जी की परिचित एक बहन बैठी थीं। मिलते ही बहन जी से बोलीं, "मैंने बिहारी जी के दर्शन करने अवश्य जाना है नहीं तो मुझे नींद नहीं आवेगी।" बहन जी दुविधा में पड़ गईं, इतनी रात अकेले भेजना चाहती न थीं, दूसरी बार जाना, उनके अपने लिये सम्भव न था। पू० बोबो से बोलीं, 'लाली तू जा सकती है क्या इसके साथ' वे तो पहले ही तैयार थीं। रिक्शा द्वारा जाने के लिये सन्तोष जी ने 'हां' कर दी। पूज्या बोबो रीझ उठीं श्री बिहारी जी की इस अगाध ममता पर।

वृन्दावन आ पूज्या बोबो का मन श्यामा-श्याम से पग-पग पर मिले आश्वासनों से, उनकी लीला-कथा में, उनकी रास लीलाओं में और संत महात्माओं के उत्साह वर्द्धक भाव देख यहीं रम गया, फिर भी अम्बाले में रह रहे अध्यात्म के नाते भाइ बहनों से, तथा अन्य स्वजनों से स्नेह सम्बन्ध यथावत् बना रहा । उन्हें समझाना, आध्यात्मिक जीवन यापन करने के लिये प्रोत्साहन देना, हर प्रकार का ध्यान इन्हें निरन्तर बना रहता था । एक ही समय एक ही वपु से दोनों स्थान पर पूर्णता से निर्वाह अद्भुत था । वास्तव में दृश्यमान वपु से वे अपना कर्तव्य निर्वाह कर रही थीं और अपने दिव्य रूप से श्यामा-श्याम की सतत माधुरी का आस्वादन कर रही थीं । श्री राधापद सुधामृत का आस्वादन कर उसका वर्णन करती हुई एक जगह कह रही हैं :''

'श्री राधापद सुधा' कितनी मीठी बात है । इसी अमृत रस का तनिक सा पान ही अमरत्व प्रदान कर देता है । अमरत्व है क्या ? इन नीलमणि ब्रजराज किशोर की पाद-पद्म-रति ही वास्तव में अमृत है । इसी का पान कर जीव अमरत्व पा लेता है । अमृत सागर के तट पर बैठ कर इन अमृत कणों का रस ले लेकर कृत कृत्य होता रहता है । औरों को भी करा देता है ।''

श्री नारद जी कहते हैं, इन्हीं रस कणों से अभिषिक्त साधक 'स तरति, स तरति, स लोकांस्तारयती' अत: स्वयं तो प्रिया-प्रियतम के पाद पद्मों का रसाश्रय पा इस संसार समुद्र से पार हो ही जाता है, साथ-साथ चलने वालों को भी सहज ही श्यामा-श्याम की प्रीति का आस्वादन करा सकने की सामर्थ्य इसमें सहज़ आ जाती है ।

ऐसे सुख में प्रतिक्षण निमग्ना पूज्या बोबो को पुन: अम्बाला लौटना था । अपने जीवन में सरस अनुभूतियों और उपलब्धियों से धन्या हो, प्रथम बार लगभग बीस दिन सुख पूर्वक व्यतीत कर किसी कार्य विशेष वश अनिच्छा पूर्वक अम्बाला लौटने को विवश हो गईं ।

अम्बाला लौटीं । इस बार इनके स्वभाव में मूलभूत परिवर्तन हो चुका था । यद्यपि अम्बाला में उनके जीवन का अधिक समय बीता था तथापि एक नवविवाहिता कन्या की भांति, विवाह के समय हाथ में हाथ पकड़ा जाने के बाद जैसे उसकी वृत्तियां और सम्बन्ध उसी क्षण बदल जाते हैं, वह घर जहां उसका शैशव और पौगण्डावस्था बीती है- उस सम्बन्ध में अन्तर आ जाता है तथा नाता जुड़ जाता है एक नए घर से, एक

नए प्रतिबन्ध से। यद्यपि यह उपमा यहां पूर्णत: लागू नहीं होती पर उपमाऐं तो सर्वदा अपूर्ण और अधूरी ही हुआ करती हैं, तथापि उनके अम्बाला रहने में, बात-चीत करने में, व्यवहार में और सम्बन्ध में जिस सौरभ का, जिस माधुर्य का अतिरिक्त सम्मिश्रण हो गया था, उसकी झलक उनकी प्रत्येक क्रिया में दीखने लगी थी। उनके व्यवहार में एक ऐसी अतिरिक्त आत्मीयता का समावेश हो गया था कि उनके हाव भाव प्रिया-प्रियतम की लीला चर्चा में एक विशेष भावोन्माद लेकर डूबते थे, इधर व्यावहारिक जगत के कार्यों से मुक्त हो, उनका मन पहले ही तटस्थ हो चुका था, फिर भी जिस मुख्य हेतु को ले वे आई थीं, उसे पूरा कर वृन्दावन लौटने की व्यग्रता उनकी प्रत्येक चेष्टा में दृष्टिगोचर हो रही थी।

❑ ❑ ❑

अट्ठाईस

महान् वैराग्य-
काशी वाली मां से परिचय-
अनुभूति की रसीली झांकियाँ

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण परायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ १ ***

श्रीमद्भागवत ६/१४/५

भक्त और भगवान का सम्बन्ध पवित्रतम तथा अन्योन्याश्रित होता है । एक ओर भक्त जहां भगवान की ओर अग्रसर होने की कामना करता है, उसकी कामना को पूर्ण करने के लिये श्याम सुन्दर वहीं उपस्थित हो जाते हैं, प्रत्युत यों कहना सर्वथा उपयुक्त है कि भगवान जब चाहते हैं तो अपने शरणागत के हृदय में अपनी कृपा द्वारा वह भाव उत्पन्न करते हैं, जिससे उसका हृदय उन की ओर आकृष्ट होता है, अनुराग पूर्ण हृदय से जब वह भगवान के श्री चरणों में अपना नैवेद्य समर्पित कर उनकी ओर अग्रसर होता है तो वे उसकी उस मांग को तत्काल ही अपनी कृपा से स्वीकार लेते हैं । जीव का तो पुरुषार्थ ही क्या है, जो भगवान की ओर अग्रसर हो सके अथवा भगवान की प्राप्ति कर सके, अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा वे अपनी एकान्तिकी भक्ति प्रदान करते हैं । उसके प्राप्त होने पर जीव की इतर समस्त कामनाऐं पुञ्जीभूत होकर सरिणी के सतत प्रवाह की भांति भगवान की ओर प्रवाहित हो जाती हैं और जब भगवान की कृपा से मन की यह स्थिति हो जाती है तो उसे साधन भजन करना नहीं पड़ता । उसका मन स्वतः भगवच्चरणारविन्दों में लग जाता है- बस इसी स्थिति को प्राप्त करना है । इसकी प्राप्ति के लिये उपाय भी भगवान ने 'श्रवण और कीर्तन' ही कहा है। भगवच्चरित्रों का श्रवण तथा भगवान के नाम का कीर्तन ही इसकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय है । श्रवण और कीर्तन में सतत तथा ललकपूर्वक आसक्ति भगवान के सहज सम्मुख कर देती है।

***हे महामुने ! मुक्त हुए सिद्धों में भी नारायण का भक्त दुर्लभ है और उन करोड़ों भक्तों में भी शान्त हृदय का भक्त तो अत्यन्त ही दुर्लभ है ।'

भक्ति में अनुरक्ति के साथ-साथ जिन महानुभावों का मन वैराग्य को प्रधानता देता है- उससे एक आदर्श की स्थापना तो होती ही है वह सभी में सहज वन्द्य भी हो जाता है। वैराग्य कोई दिखावे की वस्तु नहीं है। यह है मन की सहज वृत्ति, इसकी प्राप्ति जन्म-जन्म के पुण्यों से ही होती है। महान् वैराग्य के आदर्शों पर जीवन धारण करने वाले महज्जनों के जीवन में सकामता का प्रवेश नहीं हो पाता। उपासना में सकाम वृत्ति रहना एक ऐसा भाव है, भगवान जिसकी पूर्ति कर जीव को लुभाते हैं और वह साधक उनसे सर्वथा दूर ही बना रहता है। जिन महज्जनों के मन का स्वाभाविक प्रवाह श्यामा-श्याम के चरणों में सतत बना रहता है वे उन दुर्लभ करोड़ों भक्तों में एक मात्र भगवत्प्राप्ति करने के अधिकारी होते हैं।

हां ! तो पूजनीया बोबो वृन्दावन में आ वृन्दावन विहारी की लीलाओं के आस्वादन में सतत रत होते हुए एक वैराग्य पूर्ण जीवन यापन कर रही थीं। विरक्ति उनमें स्वाभाविक गुण था। इसके लिये न तो इन्हें कोई प्रयास ही करना पड़ा और न कोई प्रयत्न ही। अतः उनकी विरक्ति उनके जीवन का आदर्श बन सभी के सामने आजीवन बनी रही।

जहां वैराग्य उनके जीवन का भूषण था- वहीं निर्भीकता भी उनके जीवन में पूर्णतः समाई थी। वृन्दावन आकर श्री ठाकुर जी के साथ बड़े ही अल्प साधनों से उन्होंने जीवन यापन किया। उधर निर्भीकता ऐसी कि बिल्कुल एकान्त और निर्जन स्थानों पर वे सहर्ष निवास करती रहीं। उन दिनों बांके बिहारी कालोनी में इस प्रकार न तो इतने मकान ही बने थे और न सुरक्षा ही थी। दूर दूर कहीं कहीं कोई मकान था, पूज्या बोबो उन दिनों भी इसी प्रकार निर्भीकता से यहां रहती रहीं। ब्रज में कुछ ऐसे तत्वों की कृपा, साधकों और आगन्तुकों पर बनी रहती थी जिससे उनकी निष्ठा और संग्रह की प्रवृत्ति की परख करने वाले जन प्रायः सुअवसर ढूंढ, साधकों को समय-असमय में परखते रहते थे। पू० बोबो अपने श्री ठाकुर जी के विश्वास और भरोसे निश्चिन्ताई से रहती रहीं। इनके निवास की मुंडेर से झांक ऐसे तत्व प्रायः चले जाया करते थे। वास्तव में जो जन भगवान पर पूर्णतः निर्भर करते हैं, उनकी देख-रेख श्याम सुन्दर स्वतः ही करते हैं।

एक ही मकान में चार अथवा पांच माह से अधिक न रहने का इनका नियम ही था। अतः प्रायः यह मकान बदल लिया करती

थीं यदि इस अवधि के बीच भी, किसी ने स्थान छोड़ने के लिये कहा तो इन्हें कोई आपत्ति न होती थी। इस बार-बार मकान बदलने के पीछे वैराग्य ही इनका मुख्य भाव था। अपने नाम से मकान बनाना अथवा आश्रम बनवाने के अनेक अवसरों को, प्रलोभनों को इन्होंने तृणवत् त्याग दिया। ब्रज के प्रेमी श्री ठाकुर दास जी, श्री दयाल पुरी जी तथा अन्य लोगों ने मकान इनके नाम करने का आग्रह भी रखा, परन्तु पू० बोबो ने अस्वीकार कर दिया। मकान बदलने की इनकी प्रवृत्ति देख एक बार भक्त श्री करम चन्द जी ने इनसे कहा, 'ऊषा ! तू यहां बांके बिहारी कालोनी में, श्रीमती तारा जी के मकान में रह रही है। यदि वे आकर कहें कि चार घंटे में मेरा मकान खाली कर दे तो तेरे मन की क्या स्थिति होगी मैं यह जानना चाहता हूँ।' पू० बोबो का बड़ा ही सरल तथा सटीक उत्तर था, "वस्तु" में मैं और मेरा पन मैंने कभी नहीं रखा। ऐसी परिस्थिति के लिये मेरा मन सर्वदा तैयार रहता है। प्रयास करूँगी कोई स्थान मिल जावे; वह भी इसलिये कि श्री ठाकुरजी साथ हैं, यदि कहीं व्यवस्था न हो सकी तो अपने श्री ठाकुर जी को ले बाहर सड़क पर किसी भी वृक्ष के नीचे जाकर बैठ जाऊंगी और प्रसन्नता पूर्वक स्थान खाली कर दूँगी।" इनकी यह बात सुनकर भक्त कर्म चन्द जी (जो बांके बिहारी कालोनी के अध्यक्ष रहे और वृन्दावन उपासना के कारण ही यहां वास करते थे) बड़े ही प्रसन्न हुए तथा गद्गद कण्ठ हो कहने लगे, "तुझसे यह उत्तर सुनने के लिये ही मैंने प्रश्न किया था। ऊषा तू धन्य है। तेरी विरक्ति महान तो है ही पर तेरे मन की तैयारी देख मैं स्तब्ध हो जाता हूँ। अम्बाला का तेरा जीवन मेरे सामने है- ऐसे महत् आदर्श की स्थापना तुझ सा महान व्यक्तित्व ही कर सकता है।"

मकान बदलते रहने का पू० बोबो का नियम ही था। इन दिनों वे कालोनी में ही वेदान्त निकेतन में निवास कर रही थीं। टीले से सटे इस आश्रम का सौन्दर्य तो विलक्षण था ही, घनी बस्ती तब तक न हुई थी। यहां का दृश्य बड़ा ही मनोहारी था। इसी कमरे में रहते हुए इन्होंने एक बार देखा, श्याम सुन्दर अपने सखाओं सहित गोचरण हेतु यहां पधारे हैं। विविध खेलों में संलग्न है यह ग्वाल गोष्ठी। कभी गउओं को पुकारते हैं और कभी परस्पर एक दूसरे की पीठ पर चढ़ते, आनन्द मग्न हो रहे हैं। सखाओं सहित

** श्री कर्मचन्द जी, श्री कृष्ण भक्त थे। लाहौर (पंजाब) तथा अम्बाला छावनी में इनका विशेष प्रभाव था। वहीं इनका संकीर्तन सुन पू. बोबो का आकर्षण हुआ था। बांके बिहारी कालोनी सोसायटी के संस्थापक तथा अध्यक्ष रहे। एक अच्छे भक्त तथा ब्रज के प्रेमी थे।

मग्न श्याम-सुन्दर को देख आह्लादित हो गईं । इसी के कुछ दिन बाद पुनः दीखा 'एक सघन वन है । किसी भीतरी निकुंज में सखियां हँसी विनोद कर रही हैं । *एक ने पद्य में कहा, 'ललिता लिख लीन्हों' अर्थात् सखी कह रही थी बड़ा ही आनन्द आया सखियो ! किशोरी और श्याम सुन्दर निकुंज मंदिर में अद्भुत विलास में रत थे । उन्हें बाह्य सुधि कुछ भी न थी। दोनों ही मत्त थे । प्रियतम ने किशोरी के कण्ठ पर कुछ लिखा .... । यह ललिता बड़ी ही चतुर है, छिप कर देख रही थी, उन्हें यों बेसुध से, अत्यधिक तन्मय से देख यह और पास को हुई, रही झुरमुट में ही । इसने वह लिखा हुआ पढ़ लिया- तथा एक पत्र पर लिख कर रख लिया । दोनों प्रणय मत्तों को कुछ पता ही न चला । बाद में दोनों ही पुनः किसी कुञ्ज में शिलासीन हुए । हम सब भी वहीं घिर आईं । ललिता भी थी। हास-विनोद चलता रहा। तभी ललिता ने वह पत्र इन युगल के सामने कर दिया । दोनों ने पढ़ लिया। दोनों के मुखमण्डल आरक्त हो गए । संकोच से पूर्ण उनके मुख मण्डल की आभा अवलोकनीय थी । नेत्र झुक गए- सभी खिलखिला दीं ।'*

इस लीला को देख पू० बोबो सरस आस्वादन में मग्न हो गईं । इसी प्रकार मग्न हुईं वृन्दावन में, यहां की सघन निकुंजों में, सुख पूर्वक विचरण करती रहीं ।

सभी सन्तों और महज्जनों का उनके प्रति विशेष स्नेह रहा। अपनी ओर से पूजनीया बोबो ने सभी महज्जनों को सम्पूर्ण समादर तो दिया ही साथ-साथ उनके प्रति एक अत्यन्त आत्मीय व्यवहार भी बनाए रखा। जहां जो भी ग्राह्य लगा उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया ।

श्याम-सुन्दर की बांकी झांकी ने इनका मन मोह लिया था । उसी की स्पृहणीय लालसावश एक जगह कहती हैं 'कोई ऐसे मदन गोपाल मेरे उरस्थल में स्फुरित हो रहे हैं, जो एक जानु पर दूसरी धरे, टेढ़े चरण, टेढ़ी कटि, और टेढ़ी ग्रीवा किये त्रिभंग छवि से सम्पूर्ण स्थली को सुशोभित कर रहे हैं । उनकी यह अंग भंगिमा परम सुन्दर है । किसी अद्भुत सौन्दर्य का प्रसार कर रही है । उनके कमनीय करों में मुरलिका शोभायमान है । यह देखो उन्होंने अपने मृदुल मंजुल बिम्बाधराग्र पर उसे प्रतिष्ठित कर लिया । अपने सौभाग्य पर गर्वित हो चहक उठी वह । पता नहीं क्या गान कर रही है । नहीं-नहीं उन्हें पता है- उन रसीली रंगीली किशोरियों को इस गान का पता है - खूब पता है । वे सर्वथा जानती हैं कि उनके प्रियतम क्या कह रहे हैं । उनके इस मधुर गान में कौन सा मदिर सन्देश है, मन प्राणों को पुलकित कर देने वाला राग रहस्य है। वह सब

जानती हैं । उन्हीं के अनुराग को लेकर प्रियतम त्रिभंग हो गए हैं । उसी प्रणय भार के कारण इन रसज्ञ प्रियतम की ग्रीवा टेढ़ी हो गई है ।'

नेत्रों की तृषा इस रूप सुधा का पान कर पुनः पुनः भड़क रही है। इसका निदान रूप तो है ही । नयनों की तृषा, रूप का पान कर, शान्त होती है- ऐसा कैसे कहें ? यह नेत्रों का ही दोष है सखी ! निरख कर उस सुमधुर रूप छटा को किञ्चित् सन्देश दिया । यह सन्देश सुन रहा है हृदय, हृदय ने कर्णों का काम किया और अकुला उठा । उसका शमन- उसकी पिपासा का शमन, उसकी सरसीली तृषा का शमन । ओह ! वहाँ की बात कैसी है ?

रसिक शेखर प्रियतम अपनी नित्य प्रणयिनी श्री राधिका को संग ले, यमुना तटवर्ती किसी मालती मन्दिर में प्रविष्ट हुए । वहां के मनोरम एकान्त का पूरा पूरा लाभ उठाया । क्या जाने किस-किस केलि विलास का प्रसार किया कि परम गम्भीर प्रिया जी एकदम चंचल हो उठीं। बस, अब क्या था ? अकेले प्राणधन ही जब चंचल होकर गज़ब ढा देते हैं, कोटि कन्दर्पों की मदमयता को पराजित कर नवल-नवल रागाभिव्यंजना का भांति-भांति से विस्तार कर देते हैं, और जब दोनों ही चंचल हो उठें, दोनों में ही चपलता का सिंधु हिलोरें लेने लगा हो- क्या होता होगा तब ......?

चंचलता के सिन्धु में, विवश परवश करती, उनकी उत्तुङ्ग हिलोरों ने झकझोर दिया दोनों को ही । सुरत सिन्धु क्षुब्ध होकर झंकृत अलंकृत हो उठे हैं । उन्हीं अलंकारों से सुशोभित दोनों रस-लम्पट किसी केलि-निकुञ्ज में एकान्तिक रस विहार में रत हैं । रसावर्तों में दोनों ही उलझ रहे हैं । अपनी सुधि नहीं है आज, पर रसास्वादन में सर्वथा सजग हैं- बाह्य सुधि की अपेक्षा भी कैसी ? वह तो निकुञ्ज स्थली से बाहर ही रह जाती है। आज तो दोनों किसी रहसि-केलि में मग्न हैं ।

कैसी है यह 'रहसिकेलि'- इस दिव्य केलि-विलास की अधिकारिणी हैं केवल अन्तरंग सखीजन । अवलोक कर होश किसे रह पाता है । निमज्जन की पराकाष्ठा है । देखने वाली भी जिसमें खो जाती है, डूब जाती है । प्रणय भरिता किशोरी समूह इस सुखद सुमधुर केलि महोत्सव के अवलोकन द्वारा अपने हृदय तल को किसी सुरस सिंचन की ललक लगाने की लालसा से उस केलि कुञ्ज के बाहर की सघन कुञ्जों में छिप गया । उन्होंने प्रियतम का वह अलौकिक चमत्कार पूर्ण महा विलास देखा- पूरी तरह नहीं देख पाईं, उन्होंने देखी .... सिद्ध हृदयों के भी धैर्य का हरण कर लेने वाली वह अद्भुत केलि विलास चमत्कृति .... । वे

तो रसिक शिरोमणि की रसीली प्रियाऐं हैं .... श्री श्री राधा प्रियतमा हैं। प्रियंतमा के साथ प्रियतम का वह विचित्र रति रसोत्सव उन्होंने निहारा। बस, उसे नयन पुटों द्वारा पान करना था कि वे उसी सुख सागर की मदाम्बु लहरी में खो गईं। वह पूर्ण सौख्य-सिन्धु उनके हृदय में उतरता चला गया .... । कहां तक सम्हाल पातीं वे अपने को। उनके तन, मन, प्राण उस रसाब्धि की चपल लहरियों में कुछ देर तो डूबते तैरते रहे .... फिर उस मदभार को सम्हाल पाने में असमर्थ हो वह अपने सर्वथा अनजाने में ही पृथ्वी तल पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। कितना आनन्द .... ? कैसा अथाह आह्लाद .... ! कितनी अगाध सुरसता थी, उस प्रणय मूर्च्छा में .... । प्रिया-प्रियतम की उस रस मज्जित अवस्था ने उनके उर अन्तर को झकझोर दिया .... उस निमज्जितावस्था के प्रणय बिन्दु उन पर .... हां .... वे भी उसमें मज्जित हो गईं .... उसी सुख सौभाग्य की ललक पूर्ण त्वरा को दबाए वे सुस्थिर रहतीं भी कैसे ? रस प्रदायी प्रणय पारखी प्रियतम किसी भी तृषातुरा को विकल विह्वल कैसे रहने दे सकते हैं ? सभी को उस सुरस सिन्धु में अवगाहन कराते हैं। प्रणय केलि सिन्धु उन रसीली सरिताओं से रस याचना करता है .... स्वयं ही उनमें रस संचार कर, पुनः पुनः उस रस का दान मांगा करता है। रसदान आतुरा वे सखी-जन, विविध विधि से .... हां .... भांति-भांति की रसीली क्रिया द्वारा इस रस वारिधि की लोल लहरियों में सिमट-सिमट कर बिखरा करती हैं .... बिखर-बिखर कर सिमट जाती हैं .... रसादान-प्रदान का यह आवर्त अथक है .... अविराम है। यहां दाता, भोक्ता का प्रश्न नहीं है .... भेद नहीं है।

× × ×

हां तो मेघ, अञ्जन एवं इन्द्र नील मणि की स्वच्छता सुस्निग्धता एवं नील कान्ति-विजयी हैं यह नील सुन्दर। कुंकुम, सी सूर्य-रश्मि- विद्युत चपलता, स्निग्धता, श्यामलता, ओह ! नयनों ने तनिक उसका पान किया और बावरे हो गए। यह भोली-भाली कुमारियां विवश परवश सी हो गईं। पर अब तो जो हो चुकी सो हो चुकी। वे आपस में यही कहती रहती हैं, ''क्या करें सखी हम ! हमारा कुछ वश नहीं है। यह निगोड़े नयन बिना ही कुछ पूछे, कहे, उस श्याम-सिन्धु में जा डूबे - अब यह वहां से लौटते नहीं। हम समझा-समझा कर हार गईं - पर अब यह वापिस नहीं लौटते। इनका क्या दोष है बीर ! उस नील रसार्णव में एक बार निमज्जित होकर फिर क्या लौटना बनता है ? अपने नयनों को हम क्या दोष

दें ? हमारे पांव भी तो हमें उसी ओर लेकर चल पड़ते हैं .... यह हाथ उस श्यामल-सुधा का स्पर्श करने के लिये अधीर हो जाते हैं- मन प्राण उन्हीं में खो जाना चाहते हैं - सर्वाङ्ग उस श्यामल सिन्धु को अपने में भर लेने को आकुल-व्याकुल हो जाता है ।''

यह आकुल-व्याकुलता, हृदय में उठी खलबली, सरस बेचैनी ! प्राणों की अनवरत मांग ने ही तो इन बावरियों में एक रसोन्माद भर रखा है, इन्हीं भावों में मग्न, अपनी स्मृतियों के रस सागर में मग्न रहते हैं रसिक प्रेमीजन ।

श्याम-सुन्दर की अत्यन्त मधुर लीलाओं का आस्वादन करतीं पूज्या बोबो वृन्दावन में निरन्तर निवास करती रहीं । जहां एक ओर उनका पिपासाकुल हृदय रसोन्माद में भर मग्न होता रहा वहीं दूसरी ओर उन्हें रसदान पान की अनेक झांकियों से उद्वेलित करता रहा । अपनी भावनाओं का, अपनी सुरस पगी लालसा का, प्रिया-प्रियतम की रसीली सुमधुर झांकियों का दर्शन-पान करतीं, उन्हीं में मग्न हो, अनेक बार सहज ही अभिव्यक्ति का माध्यम खोजने लगतीं- अनेक बार यह लीला-माधुरी, स्पृहा-माधुरी प्रकट होने को अकुला उठती- इसी अपनी विवश सी स्थिति में पू० बोबो कहती हैं :-

''नटखट शिरमौर की रस त्वरा को कभी विश्राम नहीं है। रस ललक क्षण-क्षण में अधिकाधिक छलकती रहती है, फिर आजकल वसन्त के रसोन्माद भरे दिवस और मधुमयी सुशीतल रात्रियां हैं । कुसुम-गन्ध वाहिनी वायु की सुवासित झकोरें उर-अन्तर को झकझोर देती हैं- और रमणी-वल्लभ की सुरम्य-रस-स्थली में विश्राम पाने को अधीर हो जाते हैं मन-प्राण । गोप कुमारियों की इस रसातुरी का अनुमान करना भी कठिन है । दिन-रात, प्रिय-मिलन की लालसा, हृदय में तूफ़ान मचाए रखती है- प्रणय की तलाबेली, अनुक्षण उर में करवटें बदलती रहती हैं, अंग-अंग किसी अनंग पिपासा से अकुला, प्रियतम से रसपान की मांग करता है, रोम-रोम किन्हीं नील सुन्दर की सुरम्यता में रमण करने को बेचैन रहता है .... । यह रसविद प्रियतम भी तो इसी मदिर मादक बेचैनी से भरे हैं। उनके अंग-प्रत्यंग अपनी प्रियतमा एवं प्रेयसियों के अंगों की सुकुमारता को अपने में लय़ करने को अकुला रहे हैं । ''

यह अकुलाहट बहुत ही सजीव भावना से पोषित हो रही है .... इसी का यत्किञ्चित् वर्णन करती हुई पूज्या बोबो कह रही हैं-

"श्री कालिन्दी के विशाल प्राङ्गण में प्रणयी प्रियतम अपने प्रणय की कलित केलि में निमग्न हैं । इस मन्थरता ने बाधा नहीं डाली, अपितु छवि में ऐसी माधुरी भर दी, कुछ ऐसी सरसता उंडेल दी कि उस मन्थरता से एक और ही चपलता का प्रादुर्भाव हो गया और कालिन्दी के उस विशाल, पुलिन पर न जाने कितने कितने केलि महोत्सव स्वयं थिरक उठे । प्रिया-प्रियतम को अपनी मदिर झकझोर से चंचल कर दिया इन्होंने। चपलता और मन्थरता के योग ने, एक विवशता का, रस-विवशता का सृजन कर दिया । कभी रसिक-शेखर स्तम्भित से रह जाते हैं- अपनी प्राण प्रिया की अपाङ्ग चितवन से समादृत होकर, तो कभी इनकी लोलित दृष्टि से पोषित हो इनकी प्रियतमा मन्थरता से भर, स्तब्ध रह जाती हैं । बस इसी सरसीले ढंग ने कैसी-कैसी नवल रस-सृष्टि कर दी । कन्दर्प पादप लहलहा उठा । उसमें नव-नव अंकुरों का उदय हो गया । आज प्रिया ने झकझोर दिया इन्हें, पर अद्भुत बात हो गई; कामांकुर का उदय तो हुआ इन नील तमाल सुन्दर में पर उसके प्रभाव से भर, रोमांचित पुलकित हो उठीं रसराज की रससिक्ता यह प्रियाऐं । उस पुलकन सिहरन में कुछ ऐसा मधुर संकेत मिला इन अभिनव मदन नील मणि प्रियतम को कि क्षण भर को स्तम्भित रह वे फिर चपल हो गए । जब उनकी चपलता ने अपनी मदिर हिलोरों से इन सुन्दरियों को आप्लावित किया तो वही दशा उनकी हुई ।"

इन्हीं भावों में निमग्न पूजनीया बोबो प्रणय साम्राज्य में विचरण करतीं, श्री वृन्दावन की एक सुभग-स्थली पर रस विवश सी हो किसी पूर्व स्मृति का ध्यान आने पर रुक गईं । वह स्मृति प्रगाढ़ हो पुनः इनके सामने प्रत्यक्ष हो गई .... उसी सुभग स्थली पर वे कह उठीं :

यहीं कहीं पर तरु छाया में बैठे थे हम टेक लगाकर,
तुमने मदिर राग छेड़े थे भरकर मुरली में मादक स्वर,
रीझ रीझ कर उस दिन कितनी बिना बात की बातें की थीं,
बातों ही बातों में हमने कितनी रात प्रभातें की थीं ।

ओह ! इस स्मृति ने इन्हें आलोड़ित कर दिया । प्रेम की अभिव्यक्ति और हृदय की अनूठी दशा- उसमें प्रेमियों की भावनाओं को कहीं इयत्ता में बांधा नहीं जा सकता । 'बिना बात की बातें' प्रिय सामीप्य में यह बावरा मन, जाने क्या कामना कर क्या-क्या कहता रहे, और इन्हीं सुरस भाव लहरियों में भोर रात्रि के अन्धकार को आत्म-सात कर अपना प्रभुत्व जमा ले, यह कहने की बात नहीं है ।

इन्हीं दिनों पूज्या बोबो के सम्पर्क में आईं काशी वाली माता जी ।

श्री काशी वाली मां से परिचय ***

पूज्या मां वृन्दावन में चार सम्प्रदाय में निवास कर रही थीं। पू० बोबो से सत्संग में भेंट हुई । श्री ठाकुर जी के दर्शन करने आना चाहती थीं । एक दिन श्री मनोहर जी पू० बोबो के पास ले आए । श्री सन्तोष जी, सरला जी, श्री रमा देवी जी तथा मीरा जी साथ ही चली आई थीं ।

पू० बोबो के श्री ठाकुर जी के दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं । बोलीं, "सेवा का स्वरूप इससे बढ़ कर क्या हो सकता है भला ! सेवा से ही ठाकुर जी प्रकट होते हैं । प्राकट्य की अनुभूति, इनके चेहरों से परिलक्षित सरसता, और सजीवता निश्चित रूप से तुम्हारी सेवा तथा निष्ठा के विनियोग से ही सम्भावित है। श्रद्धा और सेवा का ऐसा उत्कृष्ट स्वरूप सहज सुलभ नहीं है । यह अनन्यता प्रिया-प्रियतम की विशेष कृपा की देन है ।" उस दिन श्री ठाकुर जी अपेक्षाकृत सभी को बड़े दिखलाई दिये ।

× × ×

हां ! तो अनेक संतों का, उनकी सत्संगति का सुख लेतीं पूज्या बोबो, अपने सेव्य श्री युगल सरकार की सेवा में, उनके लाड़-चाव में मग्न, अति उमंग और उत्साह सहित वृन्दावन की वीथियों में विचरण करती रहीं । कभी रास में जातीं, कभी कहीं प्रवचन में भी चली जाया करतीं । श्री यमुना जी की सन्निधि के लिये तो वे लालायित ही बनी रहती थीं, अत: जब भी समय पातीं, तटवर्ती स्थलियों पर प्रिया-प्रियतम के लीला-चिन्तन में निमग्न रहतीं । वहां की समीरण का संस्पर्श पा मग्न हो जातीं । जल से विविध अठखेलियां करतीं, आह्लाद मग्न हो जातीं और कभी ब्रज की इन भोली-भाली ब्रजाङ्गनाओं की स्मृति आने से निजी भावधारा में बह जातीं। उन्हीं की भावना में अपने भावों का समावेश कर कहती हैं :

'इन ब्रज सुन्दरियों की मांग में कितना बल है । उनकी साध क्षीण नहीं है, चाह दुर्बल नहीं है । उनमें प्रेम की वह प्रबलता है कि

*** पूज्या मां विवाह के पूर्व से ही श्री ठाकुर सेवा करती थीं । श्री ठाकुर सेवा इनकी भी विलक्षण थी । एक बार इनकी सास ने इनके श्री ठाकुर जी को ऊपर छत से फैंक दिया । ये बेहोश हो गईं । पति इनके बड़े सहयोगी थे । उन्हें जब सारी घटना सुनाई तो वे नीचे देखने गए । चीनी मिट्टी से निर्मित वह प्रतिमा (वैसे ठाकुर- तो ठाकुर ही हैं चाहे किसी भी धातु से निर्मित हों- जिसके सेव्य हैं, उससे पूछो उनकी सजीवता) खड़ी मुद्रा में पूर्णतः सुरक्षित मिलीं ।

उनके श्री ठाकुर जी भी बड़े ही चमत्कारी थे । स्वयं उनका जीवन भी बड़ा ही पवित्र था ।

जिसके अधीन होकर, सबल प्रेमार्णव प्रियतम श्याम-सुन्दर भी उनके वश में हो गए। त्याग और स्वसुख की मांग न होना- यह प्रेम साम्राज्य की अनिवार्यता है। श्री श्री गोपीजन में काम की गन्ध नहीं है। वे महाभागा श्याम-विलासिनी बालाऐं आध्यात्मिकता के लोभ से भी नहीं गईं। वे तो इन सब लौकिक और पारलौकिक धर्मों को, शास्त्र के विधि निषेधों को, स्वसुख, कीर्ति आदि सभी को छिन्न-भिन्न करती हुईं, प्रेम की प्रबल धारा में बहती अनायास ही अपने प्राण-प्रेष्ठ के पास उन्हीं के सुख वर्द्धन हेतु गईं। स्वसुख लालसा उनमें नहीं थी। अनुराग रज्जु से बंधी वे सहज ही उस चन्द्रिका स्नात रात्रि में प्रियतम के पास चली गईं। प्रियतम ने स्वयं ही खींचा था, पर मनोज्ञ सुजान-सुन्दर ने धर्म के कड़े उपदेश सुना दिये उन्हें देखकर, परन्तु उन्होंने कुछ सुनकर नहीं दिया।'

अब यह ज्वाला धधक उठी है। हम उसे सहन करने में असमर्थ हैं- इसलिये 'हे प्राण ! अपने हास-अवलोकन एवं मधुर गान से, उत्पन्न इस हृदयाग्नि को तुम ही अपनी अधर-सुधा धारा के प्रवाह से शीतल कर दो। हमारे संतप्त हृदयों को सींच दो।'

इसी मांग में भरी यह ब्रजाङ्गनाऐं अकुला उठीं, विवश-परवश हो गईं। उनकी यह विवशता किन्हीं सुनील सुन्दर की सन्निधि पा-सफल हो गई, और ये अपने सौभाग्य पर प्रसन्न हो गईं। यह विचार-विचार मात्र नहीं है। श्याम सुन्दर के सन्निधि-सुख की चाह, सदैव उनकी सन्निधि पाकर ही सफल होती है। इन्हीं भावों में पूज्या बोबो श्री वृन्दावन धाम में, प्रिया-प्रियतम की कृपा की अनुभूति कर, उसमें आप्लावित तथा मज्जित होती, निरन्तर रस मग्न रहतीं। उनकी प्रत्येक बात, श्याम-सुन्दर को लेकर थी, उनका प्रत्येक श्वास, श्याम-सुन्दर को लेकर ही था। वे चर्चा करतीं श्री ठाकुर जी की, तथा सम्पूर्ण व्यवहार श्री ठाकुर की सेवा को लेकर ही करतीं- निरन्तर उसी भावधारा में मग्न एक स्थान पर अपने भाई-बहनों को समझाते हुए कहती हैं :-

''रास्ते का लाभ जप करते जाने में है। रास्ते, रास्ते की बात है। कोई, कोई रास्ता अपने में आप ही लाभ है। किसी रास्ते में जाने पर लाभ- परम लाभ स्वयं ही आ उपस्थित होता है। और किसी, किसी भाग्यशाली का हर रास्ता लाभप्रद होता है- उसके प्रत्येक रास्ते में लाभ स्वयं समुपस्थित रहता है। या यों कहो- उस, उस रास्ते ही उसके पांव

पड़ते हैं, जिस, जिस रास्ते में कोई उसका रास्ता देख रहा हो । कई बार किसी का रास्ता देखते देखते पांव स्वतः उस रास्ते पर अग्रसर होते हैं । कइयों के लिये रास्ता ही मंज़िल हो जाता है– और अनेकों के लिये मंज़िल ही रास्ता बन जाती है । संसार में हर रास्ता हर एक के लिये नहीं है, पर हमारे प्रणयी सम्राट की रसीली नगरी में ऐसा कोई नियम नहीं है । वहां तो किसी रास्ते चलो– लाभ ही लाभ है, रस ही रस, आनन्द ही आनन्द है ......। रास्ते पर चलने का आनन्द ! चलते चलते पांव ठिठक जाने का आनन्द ! रास्ते में ही किसी रसिक किशोर के अनायास मिल जाने का आनंद ! ऐसे सरसीले रास्ते को छोड़ संसार के रास्तों में भटकना कौन से लाभ की बात है । काश ! हमें रास्ते पर चलना आ जाए – चाहे लड़खड़ा कर चलें – चाहे डगमगा कर, पर अपना रास्ता न छूटे और वह डगमगाहट किसी का आश्रय पाने के लिये हो ....।''

पूजनीया बोबो की प्रत्येक बात श्याम-सुन्दर से सम्बन्धित रही, उन्हीं से जुड़ी रही । उनकी प्रत्येक क्रिया का आश्रय श्याम-सुन्दर ही थे । उठते–बैठते, जागते-सोते, कार्य करते– किसी से बात करते, यहां तक कि अपने अनिवार्य दैनिक कृत्यों में भी वे श्री राधा-कृष्ण भाव भाविता ही रहती थीं ।

''एक बार सुरस विहार पश्चात् प्रियतम श्याम-सुन्दर के पुनः पुनः रोकने पर भी श्री राधा आग्रह पूर्वक अपने भवन को चली आईं। बहुत श्रमित थीं वे, सो चली आईं । अपनी किसी निजी सेविका को आदेश दिया कि जब तक मैं स्वयं न बुलाऊं मेरे कक्ष में कोई न आवे ।'' उन्हें क्या पता था कि रसिक शेखर छलिया उनसे भी पूर्व वहां आ उन्हीं की शय्या पर लेट गए हैं । अभी अंधेरा ही था किशोरी जी अपने वस्त्र बदल पर्यङ्क पर लेटने को तत्पर हुईं । उन्हें बड़ा आश्चर्य था कि जबसे वे आई हैं, तभी से कमरे में प्रियतम की गात सुरभि महक रही है, पर तब भी उन्हें सन्देह नहीं हुआ कि वे यहीं होंगे– वे यही समझती रहीं कि इतनी देर उन्हीं के संग रहने के कारण, उनका अपना ही कलेवर उस उन्मादन-कारी सौरभ से सुवासित हो रहा है । अंग संग से सुरभित हो जाना ? अहा .... अहा .....।

× × ×

कितने सौभाग्य की बात है– कि उनकी हर बात उन्हीं को लेकर तथा उन्हीं के साथ है । उनका वह 'साथ' रस माधुरी में सराबोर कर देता है । जहां इति है ही नहीं, अथ ही अथ है– माधुर्य सिन्धु की लहरियों में तरंगित होते रहने पर इति का प्रवेश ही क्यों कर सम्भव है ?

उस अगाध रस सिन्धु की थाह कौन पा सकता है भला ? आस्वादन आस्वादन, पुनः आस्वादन में ही मग्न रह जाता है ।

पूजनीया बोबो वृन्दावन में निवास करतीं लीलाओं के सतत आस्वादन में मग्न हो जातीं, अनेक बार उनकी यह रसानुभूति, लेखनी- बद्ध भी हो जाती- कभी अपने आध्यात्मिक भाइ-बहनों को यहां का विवरण लिख भेजतीं तो उसमें उनकी विचारधारा प्रिया-प्रियतम की दिव्य लीलाओं, उनके एकान्तिक विहार-विलास तथा निकुञ्ज लीलाओं का चित्रण सहज हो जाता । कभी ग्रन्थ अध्ययन करते-करते रसिकों के पदों और श्लोकों के भावों में मग्न पूजनीया बोबो का भाव-तादात्म्य उनके अनुभवों से हो जाता तो इनका हृदय सरसा जाता, ऐसी ही अनेक लीलाओं का सरस वर्णन उनकी लेखनी का सहज विषय बन जाता । श्री वृन्दावन में सरसीली वर्षा ऋतु का वर्णन करती हुई कहती हैं :

''यह श्री धाम वृन्दावन है- सावन का हरियाली मण्डित सजीला मास है, वर्षा की रिम-झिम है । बादलों की उमड़-घुमड़ है, दामिनी की चपल आंख-मिचौनी है, शीतल सुखद समीर के झोंके हैं ......। श्री वन की मनोरमता के इस साम्राज्य में- कोई रसिक सांवर किशोर अपनी मधुरिम छटा, अपनी अनुराग मदिरा लुटा रहे हैं- उनके मद-मस्त नयनों से रस बौछार हो रही है । उनके रोम-रोम से मद छलक रहा है, और .... और ब्रज-बावरियों का समुदाय उसमें भीग रहा है । वे सब उस रूप सिन्धु की रस लहरियों में सिक्त विवश-परवश हो .... क्षुब्ध तरंगिणी सी अपने उसी मदाब्धि के अंक में जा, समाने को विकल हुई धावित हो रही हैं । वसुन्धरा का हरिताभ सौन्दर्य, गगन की नीलाभ कान्ति .... उन्हें रस विवश कर रही है, किसी श्यामल सुषमा में खो जाने को .... और .... वे रसिक नागर .... ! वे तो सदा सदा तत्पर हैं ही .... । अहा .... यह वृन्दावन है .. यह ब्रज निकुंजें हैं .... और बस .... ।''

वृन्दावन की सरसता तो अपने में ही एक मादक सौन्दर्य है । इसी सौन्दर्य सुषमा का उपभोग करती यह ब्रज रमणियां अपने धैर्य को सम्हाल नहीं पातीं और यह नील किशोर बरबस ही ..... । अरे ! वह देखो ! .... देखो तो सही ! वह कोई नील किशोर ...., मूर्तिमान माधुर्य, मधुर से मधुर, ... माधुर्य के सम्पूर्ण अक्षय कोष की मधुरिमा से भी मधुर .... और ...... और .... मन्मथ के स्रष्टा, उसके उत्पादक .... । हां, जिनकी अंग मधुरिमा .... रूप सुधा धारा में आप्लावित हम ब्रज

सुन्दरियों में ओह ! हमारे उर अन्तर में उनकी माधुर्य पगी चितवन रस॰ संचार कर देती है, उनकी हासावलोकन की पयस्विनी की मदिर हिलोरें हमारे मन प्राणों में कामांकुर का उदय कर हमें विवश, परवश कर ...... । उफ़ ..... अपने को सम्हालना कठिन हो जाता है उस समय । मधुरिमा और मादकता का ही आलय हों .... ऐसा नहीं है । यह नव नव भावोद्दीपन-कारी नटखट प्रियतम की चपलता ...., साकार चपलता से भी अधिक चपल है । इनके अंगों में कितनी लाघवता है ...... इनकी मुद्राओं में कितनी चपलता है, इनके क्रिया कलापों में कितना चांचल्य है ! चपलता, चंचलता से भी अधिक चपल, चंचल हैं यह चितचोर ।

हां ! तो यह चित्त चोर चंचल भी हैं और चपल भी । वे इस चंचलता और चपलता की बात कहने और सुनने को उत्सुक रहते ही हैं और इधर यह अबलाऐं, सुनाती तो हैं ही, परन्तु अपने प्राणधन-प्रियतम से कुछ सुनने को भी व्यग्र बनी रहती हैं । यह सुनना और सुनाना, भी एक मधुर तथा रसीली वार्ता की भूमिका है अथवा रसीली वार्ता ही है- इन्हीं भावों में मग्ना पूज्या बोबो कहती हैं :

"कहने और सुनने की चाह प्रेमिल हृदयों को बनी ही रहती है, पर प्रेमियों के संसार में आज तक कह, सुनकर किसी को सन्तोष नहीं हुआ । क्या कहें ? क्या सुनें ? और क्या न कहेंऔर क्या न सुनें । विधि गति कैसी कुटिल है । प्रेमी हृदय को सन्तोष क्यों नहीं दिया उसने ? पर नहीं- नहीं; विधि-गति की पहुंच वहां कहां ? प्रणयी प्रियतम के अतिरिक्त अन्य सबकी गतियों पर अवरोध है वहां । वे प्रणय दाता जब स्वयं ही असन्तोष और बेचैनी से अलंकृत हो, आकुलता-विकलता के अनमोल मुक्ताओं से भूषित करते हों तो अन्य कोई वहां चैन और तृप्ति का संचार कर ही कैसे सकता है ?"

असन्तोष और बेचैनी की धूम सी मची है । यह रस हिलोरें एक ही ओर हों ऐसा नहीं है । इसी असंतोष और बेचैनी से स्वयं भी इसी स्थिति को प्राप्त हो प्रियतम के आश्वासनों से .... उन से प्राप्त मधुर भावनाओं से ओत-प्रोत यह ब्रज बालाऐं प्रतीक्षा कर धन्य हो जाती हैं ।

"शरद् रात्रियों की मोहकता का अनुमान प्रेम रंग में रंगा हृदय ही लगा सकता है, पर उस मोहकता में मुग्ध हो यह मोहन-मोहिनी ब्रज सुन्दरियां ही डूब सकती हैं । इन माधुर्य रंजित-राकाओं का उपभोग-

उपयोग यही करती हैं और उसे और-और अनुरंजित अभिनन्दित करते हैं यह राग रंग भरे रसिया प्रियतम। इन्हीं शरद् निशाओं की शीतल चांदनी में, प्रेम रस के विविध रहस्य खुले, प्रणय निधि का प्राकट्य हुआ, ब्रज निकुञ्जों में। आज तक भी प्रेमीजन उसी से आधार पाकर प्रतीक्षा में संजोयी प्यार की मूर्ति को प्रत्यक्ष कर रहे हैं।''

× × ×

सुशीतल चांदनी से परिपूर्ण दिवा-रात्रियों का अपना ही वैशिष्ट्य है। एक ओर अपनी रागपूर्ण भावनाओं का सत्कार रसिक-हृदय, वन्य निकुञ्जों में कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर इन्हीं रागपूर्ण भावनाओं में भरे नौका में बैठ श्याम-स्वरूपिणी श्री यमुना की सरस क्रोड़ में विहार रत हैं- इन्हीं में विहार-रता पूज्या बोबो की मनः स्थिति उन्हीं के शब्दों में:

''उस रात को नाव में बहुत अच्छा अच्छा लगता रहा। कई बहनों ने पद सुनाए। रात्रि की इस नीरवता में, चन्द्रिका-स्नात इस यमुना पुलिन पर, चमकते रज कणों को देख पता नहीं कैसा, कैसा हो जाता है मन! यह सुभग तटीय- स्थली रास-रस-विहार की साक्षी है। कालिन्दी की लोल लहरियां अपने सौभाग्य की स्मृति में आलोड़ित हो रही हैं। चन्द्रिका ने आज पुनः इनका शृङ्गार किया है। इसी भाव में तन्मय हो इठला रही हैं यह। तटीय वृक्षों की स्तब्धता देख लगता है, रोमांचित पुलकित यह वृक्ष-वल्लरियां किसी भाव में भरी तन्मय हो रही हैं। ओह ! यह सुभग-स्थल, यह मनोहर दृश्य, यह दिव्य वातावरण, सजीवता से भरे दे रहा है, परिपूर्ण किये दे रहा है। यह परिपूर्णता क्या है ? इसका वर्णन कौन कर सकता है भला ? परिपूर्णता को आंकना .... आंक कर कहना ..... किसी के भी वश की बात नहीं है।''

× × ×

इसी परिपूर्णता का आस्वादन करती किसी प्रगल्भा ने समीरण को सम्बोधन कर कहा, 'ओह ! अवश्य ही तू उनके संस्पर्श से बौराई सी डोल रही है। उनका संस्पर्श पाए बिना क्या कोई यों इतरा सकती है। इसी बावरे-पन में तू मुझ से आ लगी है, या फिर उन रसोन्मादी प्रियतम ने ही तुझे मदन संदेश देकर पठाया है। किसी अन्य प्रणय मत्ता ने नील गगन को देख कर कहा, 'ओ नील गगन ! तू स्तब्ध सा, विस्मित सा क्यों हो रहा है ? ...... अवश्य ही तूने हमारे प्रियतम को किसी प्रेयसी की सन्निधि में प्रफुल्लित देख लिया है। एक को नहीं, सभी को अमित सुख देते

हैं वे । तू उनके साथ एक को देख कर चकित हो गया है । भला यों कहाँ तक आश्चर्य करेगा तू ।' यह बावरापन, उनकी यह सार गर्भित बातें किसी रसिक सुन्दर के आगमन में, उनके रस विनिमय में, उनकी सरस अठखेलियों में, मण्डित हो जाती हैं- वे, इनकी सारी इस मद-जल्पना को सत्कृत करते हैं अपने शुभागमन से .... अपने मदिर कौतुकों से, अपनी मधुर केलि कलाओं से .... ।''

× × ×

धन्य है यह विश्वास, जो उन्हीं की सन्निधि हेतु सुदृढ़ होता है और उसी को पा, अपनी सफलता से गर्वित हो इठला जाता है । इनके अंग-अंग दिन-रात, श्वास-प्रश्वास सभी तो अकुलाए रहते हैं, सत्कृत होकर, धन्य होकर पुनः पुनः इसी सबकी आवृत्ति के लिये ।

वृन्दावन की भूमि अलौकिक है । यहां के रज कण दिव्य हैं, यहां की प्रकृति अलबेली तो है ही, साथ-साथ नित्य परिकर होने के कारण दिव्य है । छहों ऋतुएं यहां विराजती हैं । प्रिया-प्रियतम की इच्छा जान वृन्दा देवी उसी ऋतु और तदनुरूप निकुञ्जों का निर्माण करती हैं- उनकी इच्छा शक्ति से यह सब सहज हो जाता है । यहां क्रमानुसार ही ऋतुओं का परिवर्तन हो, ऐसा कोई नियम नहीं चलता । प्रेमियों के साम्राज्य में नियम भी उन्हीं की इच्छा शक्ति के अधीन हो जाते हैं । प्रेमियों का संसार अटपटा होता है- अत: वहां के क्रम भी अटपटे से ही दीखते हैं परन्तु हैं सर्वथा, व्यवस्थित, अनुशासित और नियम-बद्ध ।

प्रेमी की रागभरी भावनाओं का प्रवाह प्रेमास्पद की ओर ही गतिमान होता है । उसकी प्रत्येक क्रिया में उसके प्रियतम समाए रहते हैं । उन्हीं के भावापन्न, उन्हीं के सुख में रत, उन्हीं की लीला, उन्हीं की बात, उनके साथ बात, प्रियतम का हाथ अपने हाथ में लेकर जब सुखद चर्चा का प्रवाह चलता है तो माधुर्य की अनगिन धाराएं आप्लावित करने लगती हैं, अत:

''हाट-बाट, घाट-पनघट, घर-बाहर सर्वत्र एक धूम मची है । किन्हीं नील सिन्धु के अन्तर में रस बवण्डर हिलोरें लेता रहता है- फलस्वरूप उनके अंग-अंग में एक चपल, तरल, विमल थिरकन भरी रहती है । उससे विवश-परवश, रस विवश हुए वे, ब्रज किशोरियों को घेर लेते हैं। वे बचकर निकलने का अभिनय करती हैं- कृत्रिम कोप प्रदर्शन करती

हैं-, नज़र बचा कर बच निकलने का नाट्य करती हैं, पर पकड़ाई में आ जाती हैं। उन नील वारिधि के युग तटों के मदिर बंधन में बंधी वे, अपनी सुध-बुध भूल जाती हैं। उस समय के प्रेमातिरेक, आनन्दातिरेक से भारी हुए उनके नयन मुंद जाते हैं पर मुंदे नयनों पर पीयूष वर्षा कर, सुधा के यह अक्षय स्रोत पता नहीं, उन्हें क्या कर देते हैं। वे अधमुंदे नयनों से इनकी ओर देखती हैं- नज़र बचाकर, पर बचने देने का स्वभाव ही इनका नहीं है। उनके अधमुंदे नयनों में इनके रस पूरित नयन भर जाते हैं- चितवन, अवलोकन, परस्पर उलझ जाती है। उस मधुर उलझन में कोटि कोटि कन्दर्प मूर्च्छित हो जाते हैं। वे रस-विवश कुमारियां सुलझने का उपाय कर पाने में भी असमर्थ रह जाती हैं। बचने का उपक्रम था ही फंसने के लिये। अपना गोरस .... अमिय रस .... सरबस बचाने का सम्पूर्ण आयोजन था ही किसी के हाथ बिना मोल बिक जाने के लिये। वही हुआ, जब बिक ही गईं तो अब और उपाय ही क्या है ? जैसे नटनागर नचाएें .... नाचेंगी ही .... नाचती हैं ही। हां ! नाच, नाच कर इन चतुर सुन्दरियों ने चितचोर को भी खूब नचाया। कैसा है प्रणय का यह साम्राज्य, यहां नियमों का बन्धन नहीं, रीति रिवाज की दीवार नहीं, योग-यागादि की परतंत्रता नहीं, किसी भी बाह्याचार की सीमा में जकड़े जाकर चीत्कार करने की आवश्यकता नहीं। पर प्रेम के बन्धन से कड़ा बन्धन भी दूसरा कोई नहीं है। सभी नियमों का निलय, रीति रिवाजों का समुच्चय, योग यागादि का आलय है प्रेम का यह सरस, पर दृढ़ दुर्ग, जिसमें बन्दी होने पर फिर छूटने की चाह ही नहीं होती।''

× × ×

प्रेम का पथ ही विचित्र है, प्रेम तथा प्रेम का उच्चादर्श इन भोली- भाली ब्रजाङ्गनाओं का राग और अनुराग में पगा अपने प्रेमास्पद की ओर, सुदृढ़ भाव प्रवाह, ब्रज में, यहां की सुरस बीथियों में प्रवाहित होता रहता है। ब्रज की रगमगी भीर अपनी सरसीली भावनाओं में भरी इन सघन वीथियों में, व्रज की वन्य निकुञ्जों में, कहां, कहां नहीं बिखरी रहती। वास्तव में व्रज ! कैसा है यह व्रज ?

''श्रीवन की सभी बातें निराली हैं। यहां का वसन्त भी कुछ और ही है, होली फाग अपनी उपमा आप ही हैं। प्रकृति की झूम, इन अलबेले युगल की इठलान, इनकी उमंग तरंग मालाओं की लहरान का ही

प्रतिबिम्ब मात्र है । यह तो आप ही बसन्त हैं । इनके अंग-प्रत्यंग में नित्य मदन महोत्सव होता ही रहता है । अंग सौरभ में कुंज-कुंज .... तन, मन कुन्ज महकती रहती है और 'लेत परस्पर अंग सुवास' उससे उन्मत्त युगल, प्रणय प्रसून भी हैं .... मत्त मधुकर भी .... । दोनों ही उत्फुल्ल कमल हैं .... मन्द मधुर सौरभ कोष से मकरन्द छलकता रहता है .... और फिर दोनों ही उन्मत्त भ्रमर हो परस्पर उस पराग का आस्वादन करते हैं । वसन्त सुन्दरी ..... यह व्रज किशोरी गण .... उस रूप मकरन्द का, केलि सुधा का पान करती हैं ...... स्वयं भी सौरभ लुटाती हैं .... उससे आकृष्ट यह नील सुन्दर .... ओह ! कैसा है जीवन में नित्य थिरकता यह सुखद सरस वसन्त ...... वसन्त का उन्माद .... यहां की उन्मादनकारी समीर .... । प्रकृति में झलकते अपने प्रतिबिम्ब को देख युगल प्रियतम किसी और ही रसोन्माद में भर और, और रस रंगोत्सव में रत हो जाते हैं ।

निकुञ्ज महल में फूल खिल रहे हैं । सर्वत्र ही वसन्त छिटक रहा है । उसमें यह प्रणयी युगल भी सुन्दर सुवासित फूल से खिल रहे हैं । उन पुष्पों की शोभा, उनकी सुरभि, उनकी झूम ......, इन रसिक युगल की अनूठी छटा ...... अंग अंग से झरती महक .... तन, मन प्राणों में भरी इठलान .... इतरान के आगे पराजित हो बौरा सी गई है । इन श्यामल गौर .... प्रीति और शोभा के आगार की उपमा भला किससे दी जाए । इनके समतूल और है ही कौन ? दोनों के आनन्द मूल अंग अंग से महासुगन्धि झर रही है । सम्पूर्ण निकुंज उससे महक रही है । श्री अंगों की सौरभ से महकती निकुञ्ज में थिरकते सुरसोन्माद से यह रस मत्त युगल नव-नवोन्माद में भर उस मकरन्द सुधा का नेत्रों से, तन, मन, प्राणों से पान कर रहे हैं । पान कर रसोन्मत्तता बढ़ती ही जा रही है । इन रसिक-सुकुमार के अनुकूल ही वृन्दावन फू लता जा रहा है, और वसन्त-विहार, मदन विलास अपने चरमोत्कर्ष से इसका सत्कार कर रहा है ।

इन्हीं रस लहरियों की चपलता में मग्ना पू० बोबो वृन्दावन की दिव्य स्थली में निरन्तर रस मग्न होती रहीं ।

□□□

उन्तीस ‖ श्री कृष्णासिक्तिनी – कृष्णा

नमामि यमुनामहं सकल सिद्धि हेतुं मुदा
मुरारि पद पङ्कज स्फुरद् मन्द रेणुत्कटाम् ।
तटस्थ नव कानन प्रकटमोद पुष्पाम्बुना
सुरासुरसुपूजित स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ॥ १ ***

श्री वल्लभाचार्य रचित

श्री यमुना को "सकल सिद्धि हेतुं" कहा है, ये सभी प्रकार की कामनाओं को पूरा करने वाली हैं। वह कामनाऐं अथवा सिद्धियां भौतिक जगत की तुच्छ सिद्धियां न होकर श्री कृष्ण प्राप्ति हेतु अभीप्सित सेवापयोगी देह, लीलावलोकन, रसानुभव तथा आस्वादन आदि द्वारा सभी को पुष्टि प्रदान करती हैं। श्रीकृष्ण चरणारविन्दों से प्रवाहित रस सुधा का पान करा रसाप्लावित कर देती हैं, तथा तन्मयता प्रदान करती हैं। तटीय निकुञ्जों में प्रिया–श्री राधा तथा उनकी कायव्यूह रूपा इन गोपाङ्गनाओं के साथ प्रिया–प्रियतम श्याम–सुन्दर की लीलाओं का दर्शन आस्वादन तथा उनमें अभिनिवेश कराने वाली हैं।

श्री कालिन्दी केवल जल रूप में प्रवाहित नदी मात्र नहीं हैं, प्रत्युत श्याम–सुन्दर की पटरानी के रूप में तो विराजमान हैं ही, यहां ब्रज में कालिन्दी नाम से श्री कृष्ण प्रेयसियों में चतुर्थ स्वामिनी के रूप में भी शोभायमान है।

पूजनीया बोबो की भावना इनके प्रति एक अभिन्न सखी की ही रही है। श्री कृष्ण स्वरूपिणी होने से इनकी महिमा और भी अधिक हो गई है।

'हे कृष्ण प्रेम प्रवाहिनी
हे कृष्ण प्रेम प्रदायिनी ।'

*** (भगवत्सेवोपयोगी शरीर) समस्त सिद्धियों की कारण रूपा मुरारि (श्री कृष्ण) के चरणार विन्दों से निरन्तर झरते उज्ज्वल रज-कण रूपी पराग से परिपूरित, तटीय हरित वनों के प्रत्यक्ष आनन्द रूप पुष्पों और जल से सुर-असुर (सभी) द्वारा भली भांति पूजित कामदेव (प्रद्युम्न) के पिता श्री कृष्ण की शोभा को धारण करने वाली यमुना को मैं आनन्द पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

श्री कृष्ण सुतनु प्रभा से मण्डित, श्री कृष्ण की अनन्य प्रीति से सुशोभित, श्री कृष्ण स्वरूपिणी, श्रीकृष्ण प्रेम का निरूपण करने वाली, उनकी रूप छटा से शोभित, उनमें पूर्णत: आसक्ति रखने वाली, उनके स्नेह से अनुरञ्जित होकर उन्हीं का वर्ण धारण करने वाली, उन्हीं के संग विहार निमग्ना, प्रणय रस का प्रसार कर उसी को प्रदान करने वाली, उनकी केलि विलास की आश्रय-भूता रसमयी, उनके अनुराग में रञ्जित हो नव नव पुलकायमाना, श्री राधा-माधव की केलि में नित्य संग रहने वाली, श्याम-सुन्दर के चित्त का आकर्षण करने वाली, उनके रति रस की वर्षा करने वाली श्री यमुना, सकल सिद्धियों की प्राप्ति कराने वाली हैं, यह सिद्धियां श्रीकृष्ण प्राप्ति में सहायिका हैं । लौकिक सिद्धियां न होकर, वैष्णवी सिद्धियों को ही भगवत्प्राप्ति का एक मात्र साधन माना गया है ।

ऐसी श्री यमुना के प्रति पू. बोबो की प्रगाढ़ प्रीति थी, अनन्य निष्ठा थी । नित्य ही उनका सङ्ग करती थीं । सदा कहा करतीं, "श्री यमुना ही मेरी मति हैं, वे ही मेरी गति हैं ? मैं उन्हीं का नित्य और शाश्वत संग करना चाहती हूँ । उन्हीं के तट पर स्थायी रूप से स्थापित हो जाना चाहती हूँ तथा यह आश्वासन ले निश्चिन्त हो चुकी थीं कि यह शरीर श्री यमुना जी का ही है । कठिन से कठिन परिस्थिति में भी श्री यमुना स्नान, आचमन तथा दर्शन हेतु नित्य ही जातीं । एक बार, सर्दियों के दिन थे श्री ठाकुर जी सहित वे इधर बांके बिहारी कालोनी में निवास कर रही थीं । अधिक व्यस्त होने के कारण श्री यमुना दर्शन / आचमन हेतु जा न सकीं । रात में लगभग नौ बजे इन्हें सहसा श्री यमुना जी दीखीं- इन्हें ध्यान आया कि आज श्री यमुना जी नहीं जा सकीं । उसी समय इन्होंने विजय से कहा, तथा श्री यमुना जी की सन्निधि में जा विभोर होकर कहने लगीं, 'हे श्री यमुने, तुम्हारे जैसी करुणामयी और कौन होगी, तुमने अनुग्रह कर मेरे प्रण की स्मृति करा, मुझ पर अपना स्नेह दर्शाया है- हे करुणामयी- ममतामयी उदार-शिरोमणि की प्रेयसी- यह सर्वथा तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल ही है।'

श्री यमुना उनकी जीवन थीं, उनकी सखी-सहेली थीं सहचरी थीं, इष्ट की प्रेयसी थीं और भी न जाने क्या क्या थीं ? वे वह सब थीं जो एक नारी हृदय से तादात्म्य होने पर सम्भावित, तथा अपेक्षित हो सकता है । एक ही प्रेष्ठ की प्रगाढ़ प्रीति में रसमग्ना दो तन एक हृदय होकर जिस कामना, प्रीति तथा प्रेम की याचना कर सकते हैं, वे वही थीं ।

समवयस्का सखी थीं, समभावापन्न सहेली थीं, प्रियतम के प्रेम रस से सिक्त थीं। कलिन्द-नन्दिनी की सन्निधि में ही श्री श्री राधा ने, प्रिय प्राप्ति का वरदान दे पू० बोबो को कृतार्थ किया था।

श्री यमुना स्नान/दर्शन आदि का इनका नियम था। नित्य की भांति आज (३०. ९. ६८) को भी श्री यमुना स्नान हेतु गईं। नित्य की भांति श्री कृष्ण चरणों में रति हो, ऐसी याचना की। मन में विचार आया कि श्री यमुना तो ठीक है, श्री कृष्ण स्वरूप में इनके दर्शन होते हैं पर- यह श्री कृष्ण स्वरूपिणी भला- कैसे ? *वहीं श्री यमुना अपनी इस सखी पर कृपा करने हेतु प्रकट हो गईं। श्री यमुना जी की स्वच्छ तथा श्यामल धारा कल कल ध्वनि करती प्रवाहित हो रही है। उस धारा में जल के अन्दर उनका ऊपरी भाग दिखलाई दे रहा है- वहीं से उन्होंने (प्रथम पुरुष में) अपनी ही लीला सुनाई, कैसे श्री राधा ने मान किया, श्री यमुना को श्याम सुन्दर समझती रहीं, सखियों ने कैसे-कैसे प्रिया जी से हास-विनोद किये तथा स्नेह भरी खीझ में भर, श्री यमुना जी को 'श्री कृष्ण स्वरूपिणी' सम्बोधन किया। इस घटना को विस्तार से हमने बहन जी के अनुभूति पक्ष में उद्धृत किया है।*

श्री ललिता चरण जी गोस्वामी, घाट वाले महाराज, श्री राधा वल्लभ सम्प्रदाय के उच्चकोटि के गोस्वामी रहे हैं। सम्प्रदाय का पूर्वाग्रह विशेष उनमें नहीं रहा। श्री यमुना जी जाते में वे प्रायः रास्ते में पू० बोबो को मिलते और वे सदा कुछ क्षण रुक कर अभिवादन करतीं, कई बार अपने निवास के ऊपर खड़े ही इनसे प्रायः कहते 'श्री यमुना जा रही हो, ये सकारात्मक उत्तर देतीं, वे प्रसन्न होकर कहते 'हां-हां वे तुम्हारी इष्ट हैं।' इष्ट की प्रेयसी तो इन्हें अवश्य मानती ही थीं- श्री यमुना जी की उदार प्रकृति, श्री कृष्ण से सम्बन्ध कराने में सहायिका रूप में तो सभी वैष्णव स्वीकार करते हैं। ऐसी थी- पू० बोबो की श्री यमुना जी के प्रति प्रीति-भावना।

❑❑❑

प्रथम भाग

अष्टम अध्याय

पृष्ठ २९७ से ३४७ तक

उर अन्तर उमगत खिलत,
सुनि वृन्दावन नाम ।
सखियन संग विलसत जहाँ,
निशि दिन श्यामा श्याम ॥

कहहिं परस्पर रस वचन,
भरे मनोभव झूम ।
कालिन्दी तट कुञ्ज में,
नित्य नई रस धूम ॥

तीस

वृन्दावन पुनरागमन-

सर्प दंश तथा भग्वत्कृपा

भाव तथा अनुभव लहरियाँ

मारः स्वयं नु मधुरद्युति मण्डलं नु
माधुर्यमेव नु मनोनयनामृतं नु।
वेणीमृजो नु मम जीवित वल्लभो नु
बालोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय ॥ १ ***

श्रीकृष्ण कर्णामृत / ६८

'गोपी भाव' रस की वह दशा है जहां केवल प्रिया-प्रियतम के सुख में निमग्नता है । वहां अपना कुछ है ही नहीं- यही प्रेम की मर्यादा है । 'प्रेम की धुजा' कहा गया है गोपिकाओं को । उनकी प्रत्येक क्रिया प्रियतम के सुख का वर्द्धन करती है । भूल कर भी उनके मन में स्वसुख का विचार नहीं आता- अतः वे शृङ्गार धारण करती हैं तो प्रियतम को सुन्दर लगेगा यही सोचकर, घर को साफ सुथरा रखती हैं, श्याम सुन्दर आकर न जाने कब कृतार्थ कर देंगे उसे, दूध दही बेचने जाती हैं तो केवल श्री कृष्ण के सुख की कामना लेकर, उस भाव में इतनी अधिक भावित हो जाती हैं कि उन्हें कहीं कुछ भी भिन्न दीखता ही नहीं । दूध और दही के स्थान पर वे 'श्री कृष्ण ले लोरी कोई श्री कृष्ण' की रट लगा देती हैं । तद्भाव भावित उनके जीवन में प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक समय श्री कृष्ण ही दीखते हैं । यह कदापि नहीं हुआ कि उन्होंने कभी भी प्रेम मर्यादा का उल्लंघन किया हो। गोपी भाव केवल इन ब्रज बालाओं के आनुगत्य में रहकर ही प्राप्त हो सकता है । पुरुष और स्त्री का इसमें कुछ भेद नहीं है । फिर भी इस भाव का एक स्वाभाविक सौन्दर्य स्त्री जाति में ही दर्शनीय है। पुरुष होने के नाते जिस भाव को उधार लेकर आरोपित किया जाता है, नारी जाति में वह गुण

*** यह क्या स्वयं कन्दर्प हैं ! या मधुर द्युति मण्डल हैं ? मूर्तिमान माधुर्य ही हैं क्या यह! या मन नयनों को अमृत प्रदान कर जीवन प्रदायी हैं ? क्या यह मेरी वेणी को मोचन करने वाले हैं! या मेरे जीवन वल्लभ श्री किशोर कृष्ण ही हैं जो मेरे नेत्रों के सम्मुख प्रकाशित हो रहे हैं ।

स्वाभाविक ही रहता है । अतः श्यामा-श्याम की पूर्ण अनुभूति के लिये नारी हृदय होना ही चाहिये, वह कोमलता अत्यावश्यक है ।

प्रियतम श्याम सुन्दर भी अपनी अनन्या इन प्रियाओं की भाव दशा को देख उसका सत्कार करने, उनकी भावनाओं को सहलाने, उनकी पिपासा का शमन करने के लिये अकुलाए रहते हैं । उसी भावापन्न विचरण शील श्याम सुन्दर की रूप माधुरी ने किसके चित्त रूपी वित्त का अपहरण न कर लिया होगा ! कभी वह इन्हें कन्दर्प समझ अपनी बावरी स्थिति की अभिव्यक्ति करती हैं और 'मधुर द्युति मण्डल' मान, असमञ्जस में पड़ जाती हैं- नहीं नहीं, यह तो मूर्तिमान माधुर्य ही मेरे प्राणों में रस सञ्चार करने के लिये प्रकट हुआ है- अरे यह क्या ! यह तो वही मेरे प्राण सर्वस्व श्याम सुन्दर हैं जिनकी करांगुलियों की चपलता मेरे अन्तरतम में रस की वर्षा करती रही है । ओह ! यह माधुरी मुझे ही जीवन प्रदान करती रस में सराबोर कर रही है । वे सब कुछ जानने पर भी न जानने का अभिनय, रसवर्द्धन हेतु ही करती हैं- अतः यह रस ही तो इन महाभागाओं को सदा सर्वदा सिक्त किये रहता है । यही उनके जीवन की उपलब्धि है । उनका रोम रोम श्री कृष्ण-मय है । उनकी दृष्टि जहां भी उठ जाती है श्याम सुन्दर की असीम चतुराई परिलक्षित होने लगती है, उनकी रसमयी दशा प्रकट हो जाती है- और यह ब्रजाङ्गनाऐं उन्हीं की रसीली स्मृतियों में उन्हीं के साथ कुञ्ज निकुञ्जों में वन की एकान्तिक विहार स्थलियों में सदा सदा विलास माधुरी में मग्न हो जाया करती हैं- यह इनके लिये तो नित्य निरन्तर आस्वाद्य रहता ही है- इनकी अनुगता इनकी चरण शरण लिये विचरती रस विभूतियों में भी उसी रस का मधुर प्रवाह चंचलता और चपलता बिखेर, रस विवश कर, उसी रस में सराबोर कर देता है । अहा .... अहा .... यही जीवन की परम निधि ब्रज वृन्दावन में बिखरी सभी के लिये सुलभ हो रही है ।

पूज्या बोबो लगभग चार मास अम्बाला रहकर वृन्दावन लौट आई थीं । प्रिया-प्रियतम की निज-स्थली वृन्दावन की सांकरी गलियों में, यहां की कुञ्ज निकुञ्जों में, सघन वीथियों में, यहां के वातावरण में घुल-मिल पूर्ववत् रहने लगीं । इनके प्राणों के प्राण, जीवन्त शक्ति प्रदान करने वाले इनके हृदय सर्वस्व श्री ठाकुर अभी अम्बाला में ही थे । श्री ठाकुर जी के प्रति मन का इतना योग रहता था कि श्री ठाकुर वहां रहने पर भी अपनी अनुभूति प्रत्यक्ष रूप में इन्हें यहां करवाते रहते थे । पूज्या बोबो का मन

असाधारण था, उनकी प्रत्येक क्रिया असाधारण भाव से परिपुष्ट थी। एक बार इन्हें प्यास लगी, बात ९.५.६० दोपहर की है। पू० सन्तोष बहन जी के यहां इस बार भी इन्हें रुकना पड़ा था। पानी लेकर श्री सरला जी से पूछा क्या आपके श्री ठाकुर जी के लिये दोपहर में जल समर्पित करते हैं ? उनका सकारात्मक उत्तर पा जल समर्पित करने के लिये इन्होंने पास रखा। न जाने क्यों अपने स्वभाव के सर्वथा विपरीत आज इन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। *इन्हें अम्बाले वाले श्री ठाकुर जी दीखे। एकदम किसी के Sip (घूंट भरने) करने की ध्वनि सुनाई दी। पानी की घूंट भरने का शब्द सुन कमरे का सारा दृश्य नेत्रों में घूम गया। अम्बाले में दोपहर में श्री ठाकुर जी के पास एक गिलास पानी भरकर रखा जाता था। इन्होंने वहां लिख कर पूछा तो सचमुच ही उस दिन जल रखना भूल गए थे।"*

वृन्दावन आकर प्रिया-प्रियतम की लीला-कथा में मग्न पूजनीया बोबो यहां सुख पूर्वक निवास कर रही थीं। एक दिन श्री बिहारी जी के दर्शन करते में श्री मनोहर जी मिल गए। वे इन्हें अपने साथ ले गए श्री घनश्याम जी की कुटिया पर। चांदनी रात में छत पर से बड़ा ही अच्छा दृश्य दीखता था। चारों ओर दुग्ध स्नात वृक्ष और लताऐं, सामने मन्द गति से प्रवाहित श्री यमुना की चन्द्रिका-स्नात धारा बहुत ही मनोहारी लग रही थी। यहीं उनकी भेंट हुई ब्रज के प्रसिद्ध संत श्री बालकृष्ण दास जी महाराज से।

श्रद्धेय श्री बालकृष्ण दास जी से परिचय ***

प्रसङ्ग इस प्रकार बना कि घनश्याम जी की कुटिया पर बैठ कर रात्रि का दृश्य बड़ा ही मनोहारी लगता था। लीला-चर्चा और सौन्दर्य सुषमा का आस्वादन करने, उस नीरव राका की दुग्ध-स्नात शोभा

*** पूज्य श्री श्री महाराज जी कर्नाटक राज्य के मूल निवासी, श्री सम्प्रदाय की आचार्य कुल परम्परा से सीधे सम्बन्धित होने पर भी श्री कृष्णानुराग में पगे हैं। अपनी छोटी वय में श्री राम कृष्ण परम हंस जी के आदेश से गृह त्याग कर परिभ्रमण करते तीर्थ दर्शन करते, ब्रज में चले आए। पुनः अन्य स्थलियों के दर्शन हेतु घूमते रहे। हरिद्वार में रास के दर्शन कर वृन्दावन रास का मुख्य केन्द्र होने के कारण यहां के लिये आकर्षण पुनः यहीं ले आया। बाहर आना जाना रहा परन्तु मुख्य रूप से ब्रज में ही रहते रहे। उनकी विलक्षण रहनी, श्री कृष्णानुराग, उत्कट वैराग्य स्वयं में आदर्श रूप रहा। श्याम सुन्दर की माधुरी ने सरसा स्थायित्व प्रदान कर दिया।

आज भी अपनी सरस अनुभूतियों तथा परम सिद्धस्थिति में मग्न दर्शनीय तथा वन्दनीय हैं। मस्तक नत हो जाता है, ऐसी दुर्लभ विभूतियों के दर्शन कर उनके अनुराग से परिपूर्ण वातावरण में उच्छलित रसकणों से भीजे अनेक जन उनसे किसी भी भांति सम्बन्ध जोड़ अपने को कृतकृत्य ही समझते हैं।

का आस्वादन करने, सभी एकत्रित हो जाया करते थे। आज भी पूज्य महाराज जी तथा उनके परिकर के अन्य लोग पधारे थे। पू० महाराज जी ने विमला आरोड़ा* से पद गाने को कहा। वे सुनाने लगीं :-

'किसी की मद भरी आंखें मुझे सोने नहीं देतीं
घटाओं सी घिरी अलकें सुबह होने नहीं देतीं'

पद सुनकर महाराज जी पुलकित हो उठे। पू० बोबो का मन भी एक सरस गाम्भीर्य में खो गया। परस्पर चर्चा होती रही, कितना सुन्दर भाव है !' वह मदभरी आंखे देख रही हों, फिर कोई कैसे सोए ! प्रिया-प्रियतम का सामीप्य इतना अधिक है कि नयनों से नयन मिल रहे हैं, परस्पर की इस मिलनावस्था में उभयांग, उभयाश्रय पाकर प्रणय बेसुधि में और-और तन्मयता से भरे जा रहे हैं। ऐसे में मुख चन्द्र आच्छादित हैं। अलकावली ने प्रकाश का प्रवेश वर्जित कर रखा है- अतः सवेरा होने का भान ही कैसे हो ? ऐसे समय में नींद की सम्भावना भी कैसी ? कैसी रसीली दशा है ? न सजगता है इसमें और न निद्रा ही; इन दोनों से परे की स्थिति है, एक अनिर्वचनीय सुखमयी अवस्था है ?

'इतनी सरस भाषा में ऐसी मधुर अभिव्यक्ति'- अहा ! न जाने अपने स्वभाव के विपरीत कैसे पू० बोबो ने कर दी- उस दृश्य की सजीवता में सिक्त, स्नात पू० बोबो का हृदय भर आया और अपनी उस रसमयी स्थिति में यह सब कह गईं। वहां बैठे सभी लोग भाव विभोर हो गए। इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति- साधारण न थी। असाधारण वर्णन एक असाधारण व्यक्तित्व ही कर सकता है, सभी का इनके प्रति एक समादर और सम्मान का भाव बन गया।

× × ×

एक दिन निधिवन की सरसीली निकुञ्जों में विचरण कर रही थीं। श्री बिहारी जी की प्राकट्य स्थली के निकट कुछ समय के लिये बैठ गईं। वहां देखा :-

''उस स्थली की मुंडेर से टेक लगाए प्रिया-प्रियतम बैठे हैं। प्रियतम दांए तथा श्री प्रिया जी बांई ओर विराजमान हैं। श्री राधा ने लहंगा तथा दुपट्टा धारण कर रखा है। देखते देखते दोनों ने चरण फैलाए। प्रियतम घूम कर श्री राधा की ओर पीठ करके बैठ गए, यह देखने को कि अब वे क्या कहेंगी। वे भी थोड़ा सा झुक कर प्रियतम का मुख झांकने

* पू० धर्म बहन जी की एक श्रद्धालु बहन

लगीं।" आगे की बात ..... कौन कहता भला ! वहां तो रस ही रस है । आस्वादन ही आस्वादन है- किसी नील माधुर्याम्बुधि की सरस वीचियों में .... निमग्न उस सुख की कौन कहे ?

पूजनीया बोबो का अम्बाला आना जाना अभी बना ही रहता था- अनेक कारणों से आवश्यक भी था- और सर्वोपरि था उनका अपने, अध्यात्म के नाते बहन भाइयों से स्नेह । इसी प्रसङ्ग में एक स्थान पर कहती हैं :-

"तुम छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे बहन भाइयों की आसक्ति न तो छूटती ही है और न छोड़ने की इच्छा ही होती है । बस, सदा जो कहती आई हूँ वही बात अब भी कह रही हूँ । इस सबका, आसक्ति और मोह, स्नेह-मैत्री, इन सबका प्रवाह यशोदानन्दन के पाद पद्मों में ही लय हो। उन्हीं के कारण हम सब एक दूसरे के हैं । प्रधानता हमारी, हमारे स्नेह की, हमारे सम्बन्ध की (उनसे रहित सम्बन्ध ही क्या) न होकर, उन्हीं के सम्बन्ध की हो । 'नाते सबहि राम के मनियत' । सभी रिश्ते-नाते श्री हरि को लेकर ही निभते भी हैं । सांसारिक गन्ध, स्नेह-सुरभि को दुर्गन्ध में परिणत कर देती है। मैं तो एक ही रिश्ता, एक ही नाता जानती हूँ - वह है, श्री हरि के नाते से नाता, उनके सम्बन्ध से सम्बन्ध । उनके अतिरिक्त जो भी सम्बन्ध है, स्नेह है वह सब, विषय-विष ही है- श्री हरि शाश्वत हैं, सनातन हैं, नित्य हैं इसलिये उनसे सम्बन्धित सभी कुछ नित्य और शाश्वत है ।"

इस बार वृन्दावन लौटते समय इन्हें मां का विशेष ध्यान आया । इनकी अपनी मां में केवल मातृ भावना अथवा मोह का सम्बन्ध न था । मां का चरित्र भी अपने में एक आदर्श-चरित्र ही था - क्यों न होता ? जिसके घर में प्रिया-प्रियतम की अनन्या- कृपा-भाजन उनकी, निज परिकर का जन्म हुआ हो, जिसने उस विभूति के प्राकट्य का गौरव प्राप्त किया हो, उसमें एक भाव विशेष का होना, इस प्रकार की भक्ति भावना रहना, कुछ भी अस्वाभाविक न था । पू० बोबो की सोलह वर्ष की अवस्था में अत्यधिक बीमार हो जाने पर करवट लेना तो दूर, अपना हाथ सरकाने के लिये भी किसी के सहयोग के बिना असम्भव था, विस्मृति सी होती जा रही थी- और वह अनपेक्षित क्षण जिसकी कल्पना भी सर्वथा अग्राह्य थी, समीप सा लगता था, इसी मां ने अपनी मुन्नो से कहा था, "देख, जाने के विषय में सोच तू नहीं करेगी, ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है क्योंकि मैं तेरे स्वभाव और विचारों से सर्वथा परिचित हूं, जाना तो सभी को एक दिन है

ही, भगवन्नाम लेते लेते जाना श्रेयस्कर है ।" यह वाक्य एक मां का कथन है क्या ? उस हृदय से पूछो जिसने अपने अंश को अपने ही रक्त से सींच, पोषण कर इतना बड़ा किया हो । वास्तव में जीवन के लक्ष्य से वे सर्वथा भिज्ञ थीं । उनका अपना जीवन एक सुव्यवस्थित और परिष्कृत अध्यात्म प्रधान था । उस जननी के लिये विचार आना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नाते ही था ।

भोली मां, यद्यपि पू० बोबो की प्रकृति और रहनी को, उनकी महानता को देख चुकी थीं तथापि, वात्सल्य-वश हृदय का द्रवण स्वाभाविक था ।

पू० बोबो कहती हैं *: मां का ध्यान आया और मन कुछ कातर सा हुआ । रेल में ही मन ही मन कहा, यदि ऐसे कातरता आने लगी तो वृन्दावन में रहूंगी किस भरोसे ? झट (श्याम सुन्दर) सामने दिखलाई पड़े, पृथ्वी से ऊपर एक वृक्ष के पास को आकाश मण्डल में स्थित । और तो कुछ स्मरण नहीं, लहराता हुआ पीत-पट स्मरण है । केशावली फहरा रही थी । एक हाथ में वंशी थी, दूसरे से अपनी ओर इंगित करके कहा, "मेरे सहारे ।" ये आत्म विभोर हो गईं ! रेल से मथुरा तक का रास्ता कैसे और कब बीत गया, इन्हें भान ही न रहा । श्याम सुन्दर का अपनत्व, अपनत्व कहकर भी दूर का सा लगता है- ऐसी आत्मीयता, पग-पग पर आश्वासन! ओह ! यही सम्बल रहे पूजनीया बोबो के वृन्दावन वास में, अथवा श्यामा-श्याम की सरस अनुभूतियों के सहारे उनका वृन्दावन वास सफल होता रहा ।*

पूजनीया बोबो इस बार पुनः अम्बाला होकर जल्दी ही लौट आई थीं । उनके जीवन की जीवन्त शक्ति, प्राणों के प्राण उन्हें संजीवनी शक्ति प्रदान करते युगलवर उनके आराध्य प्रिया-प्रियतम साथ-साथ वृन्दावन पधारे । उनकी सेवा, उनका शृङ्गार उनका भोग राग आदि का जो स्वरूप इनके जीवन में दीखा अथवा बाद तक दीखता रहा, वह एक आदर्श ही था, अपने में एक उदाहरण था, इनके अतिरिक्त सम्भवतः अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया । इसका मुख्य कारण था कि ये ठाकुर, मात्र सेव्य और पूजा के ठाकुर न होकर, एक अत्यन्त आत्मीयता और सौहार्द तथा प्राणों के स्पन्दन से सिञ्चित पोषित रहे, उनकी सखी-सेविका (पू० बोबो) के प्राणों द्वारा सींचे गए । अपने श्री ठाकुर की सेवा में उन्हें लाड़ लड़ाने में, उनकी सभी व्यवस्थाओं में, उनके सुख के समायोजनों में वे इतनी तन्मय

रहती थीं कि उन्हें अन्यत्र कहीं भी जाने और मिलने के लिये अवकाश निकाल पाना बड़ा ही कठिन होता और प्राय: वह भी नहीं। अपनी व्यस्त दिन चर्या के अतिरिक्त यदि कुछ अवकाश पातीं तो उसमें ग्रन्थों का अध्ययन करतीं, अपनों,- अपने बहुत अपनों को पत्रों के माध्यम से आश्वासन प्रदान करतीं पथ-प्रदर्शन करतीं, उनकी भावनाओं का पोषण करतीं, उन्हें श्यामा-श्याम के चरणों में दृढ़ रति हेतु प्रोत्साहन देतीं।

वृन्दावन आए, पू० बोबो को काफ़ी समय हो चुका था। इनके पढ़े-लिखे होने की चर्चा फैलते-फैलते अनेक लोगों तक जा पहुँची थी। चार सम्प्रदाय की रूढ़िगत मान्यता के अनुसार, यह कण्ठी तथा तिलक आदि धारण तो करती न थीं- उसका विरोध करती हों, ऐसा भी न था। उनकी एक मान्यता थी यद्यपि साधारणत: यह सब मान्यताऐं अत्यावश्यक हैं- परन्तु इनमें अपवाद भी पाए जाते हैं- वे मानती थीं कि बाहर से इस प्रकार के रूढ़िगत बन्धन तथा वेश बनाने से अधिक सुन्दर है- बाह्य प्रदर्शन किये बिना एक सात्त्विक तथा प्रिया-प्रियतम के प्रति निष्ठापूर्ण समर्पण हो, उसी में उनकी अटूट श्रद्धा थी। आने के पश्चात् अपनी-अपनी ओर आकृष्ट करने के कई प्रयास भी हुए, परन्तु एक सुव्यवस्थित प्रत्यक्ष भगवदाश्रय प्राप्त एक-निष्ठ को ऐसा कोई भी आकर्षण कैसे हिला सकता था ? उनका नित्य और शाश्वत सम्बन्ध तो पूर्व से ही श्यामा-श्याम के चरणों से जुड़ा था। भगवान शंकर ने स्वयं प्रकट होकर उन्हें अभयदान प्रदान कर दिया था। प्रिया-प्रियतम की ओर से रसीले अनुभव / आश्वासन पग-पग पर उनका स्वागत करते रहते थे- इतना प्रत्यक्ष आश्रय पाकर मन में अस्थिरता आती ही कैसे ?

सभी सम्प्रदायाचार्यों, उनकी परम्परा में चले आते महज्जनों को उन्होंने सम्पूर्ण आदर दिया- उनका मर्यादित जीवन, शास्त्र सम्मत विचारधारा, आदि वैष्णवाग्रगण्य भगवान शंकर द्वारा प्रकट होकर अपना आनुगत्य प्रदान करना, वैष्णव मत से परिपूर्ण सेवा-निष्ठा, सभी के लिये एक प्रहेलिका बनी रही- उन्होंने अपनी ओर से स्वयं को प्रकाशित करने की कोई चेष्टा ही नहीं की। सहज और स्वाभाविक रूप से सभी ने उनका समादर किया, जो भी इनके पास आए, इनके संग में आए, इनकी इन धारणाओं से, प्रभावित हो इन्हीं के हो गए। परिस्थिति, उसका स्पष्टीकरण अथवा पुष्टि के लिये इनका कोई पूर्वाग्रह न था।

इनकी प्रिया-प्रियतम पर निर्भरता, अपने श्री ठाकुर के प्रति पूर्ण समर्पण, सेवा-पूजा में सजगता, के कारण अत्यधिक व्यस्तता को पूरी तरह समझे बिना अनेक जनों में, इनका पढ़ा-लिखापन एक स्वाभिमान तथा ब्रज-भाव आदि सम्बन्धी बातें उठीं अवश्य, परन्तु पू० बोबो एक निर्द्वन्द्व और निष्ठावान भक्त की तरह, बिना इन सबकी चिन्ता किये, अपनी मस्ती में भरी, प्रिया-प्रियतम की सेवा में और-और दृढ़ होती चली गईं। तेज़ हवाओं ने आंधी का रूप धारण किया, वृक्षों और लताओं को झंझोड़ा भी परन्तु अपने पंख हिला, व्यजन कर इन्हें सुख ही सुख प्रदान किया। शनैः शनैः वह तीव्र बहती पवन थक कर श्रमित हो गई। वह अंधड़ आंखों में किरकिरी डाल शान्त हो गए परन्तु श्याम तमाल की विशाल छत्र छाया में, स्थित यह मधु वल्लरी उसी प्रकार अडिग तथा स्थिर बनी रही। ऐसी सब परिस्थितियों की प्रतिकूलता देख, एक बार उत्तेजित होकर मुझसे उग्र विचार वाले व्यक्ति ने आग्रह किया, "बोबो ! मुझे अच्छा नहीं लगता यह सब कुछ। तुम कहती क्यों नहीं।" बड़ा ही गम्भीर और नपा-तुला उत्तर था उनका, "विजय ! विपरीत परिस्थिति में धैर्य पूर्वक चलकर जो स्थिरता सहज प्राप्त होती है- वह इतनी स्थायी और अडिग होती है कि सभी परिस्थितियों को उसके आगे नमित हो जाना पड़ता है।" इनका जीवन बड़ा ही सादा था। पढ़े लिखे होने के अभिमान की तो बात ही क्या ? सामान्य लोगों को, यहां तक कि अपने से छोटों को भी समुचित समादर देना इनमें स्वभावगत रहा। उन सभी के प्रति एक आत्मीयता, तथा सौहार्द का जो स्वरूप इनमें स्वभावगत था- अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिला। इनका सा वैराग्य तथा तितिक्षा- पता नहीं किस मिट्टी से विधाता ने निर्माण किया था ? उसमें मृदुल स्वभाव का समावेष कर विधाता निश्चिन्त हो गया था। इनमें रञ्च मात्र भी अभिमान का अंश न था।

डा० बांके बिहारी से परिचय ***

इन्हीं दिनों इनका परिचय हुआ एक सुप्रसिद्ध भक्त, डा. बांके बिहारी वकील साहब तथा उनकी शिष्या श्री कृष्णा माता जी से।

पू० बोबो उनके सत्संग में गईं। वहां पाठ और संकीर्तन

*** डा. बांके जी बड़े ही सुयोग्य वकील थे। मेरठ Conspiracy Case में डा. काटजू के साथ वकालत करते रहे। वृन्दावन के प्रति निष्ठा थी- यहां दर्शन करने आए लौट कर ही नहीं गए। सूफ़ी मत के अच्छे विद्वान थे। अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। विदेशों में इनकी काफ़ी ख्याति हुई।

तो होता ही था। पाठ समाप्त होने के पश्चात् वे प्रवचन दिया करते थे। स्वभावतः उनके यहां आने जाने वाले लोग उच्च शिक्षा प्राप्त ही होते थे। उन्हीं के प्रति वहां समादर की भावना विशेष रहती थी। अभिमान रहित तथा भक्ति-भावापन्न एक ऐसे व्यक्तित्व को देखकर वे आकृष्ट हुए। कथा प्रवचन के उपरान्त इनसे एक ऐसे समाज के विकल्प का सुझाव भी रखा जिससे प्रचार और प्रसार का कार्य कर समाज में अध्यात्म का प्रचार और प्रसार हो सके। वकील साहब तथा वहां आने जाने वाले महानुभावों के प्रति इनकी समादर भावना तो अवश्य रही- इनके पास न तो प्रचार और प्रसार के लिये समय ही था और न उनका यह सुझाव इनके गले उतर सका। ख्याति और सम्मान के प्रति वे सर्वदा उदासीन रहती थीं। वहां यदा-कदा सत्संग में चली अवश्य जाया करतीं परन्तु सभी के उठने के साथ-साथ स्वयं भी चली आया करतीं।

इनका यह स्वभाव अवश्य ही लोगों को सुखद नहीं लगा। किन्तु इन्हें न तो किसी प्रकार की ख्याति की कामना ही थी और न सरोकार ही। वे अपने ठाकुर के सम्मुख आनन्द मग्न रहतीं।

श्री कृष्णा जी से परिचय

श्री बांके जी की शिष्या कहूं या गुरु क्योंकि बांके जी इन्हें अपना गुरु ही कहा करते थे। उनके आदर्शों का परिपालन करतीं वैराग्य और तितिक्षापूर्ण जीवन यापन करतीं आज भी वृन्दावन में शोभायमान है।

पू० बोबो के प्रति इनका विशेष स्नेह रहा, आज भी उनकी महानता के प्रति इनकी निष्ठा बनी है।

× × ×

पू० बोबो की माता जी (पू० बऊजी) अभी वृन्दावन में न आईं थीं। उनका आना जाना तो रहता था, परन्तु स्थायी निवास अभी अम्बाला ही था, अन्य बहन भाइ वहां थे ही अतः इसी निमित्त कभी कभी पू० बोबो को भी अम्बाला जाना पड़ता था। अम्बाला जाते में इस बार देहली रुकना पड़ा। वहां विवेकानन्द जी की अंग्रेज़ी कविताओं का संग्रह देखने में आया। गुण ग्रहण करने की क्षमता उनमें विलक्षण ही थी। कहीं से भी सार ग्रहण कर अपने अनुकूल चुन, अनुरूप ढाल लेना उनका बहुत बड़ा गुण था। विवेकानन्द जी के राजयोग से यद्यपि उनका मत न मिलता

था तथापि उनके काव्य में इनके मनोनुकूल भावनाओं का पोषण जहां कहीं भी इन्हें दीखा ग्रहण कर लिया। उसे देख एक जगह कहती हैं :-

Bhakti, Mukti, Japam, Tapas all These,
enjoyments, worship and derotim too-
These things and all Things, Simillar to those
I have expelled at thy Supreme command
But only one desire is left in me-
An intimacy with thee, Mutual
Take me O' Lord accross thee.

कितनी सुन्दर मांग है। 'An Intimacy with thee' कहकर ही सन्तोष नहीं हुआ उन्हें। Mutual हो- ऐसी और याचना की। यह तो ठीक है, प्रेम एकांगी भी हो सकता है, पर उसकी पूर्णता दोनों ओर से होने में है। प्रेम प्रतिदान मांगता नहीं, बदले की मांग करके अपने को व्यावसायिक रूप देना उसे नहीं सुहाता पर प्रतिदान मिले तो परम सुख होता है परन्तु 'तत्सुखे सुखी' भाव पर प्रेमी अपनी कामना वार देते हैं। पारस्परिक अनुराग, माधुर्य को उस सीमा तक लेजाता है जहां न अथ है, न अथ का ज्ञान रहता है और न इति का, पर यह होता तभी है जब उसमें विषय-विष न हो, वासना की दुर्गन्ध न हो, स्वसुख की कामना न हो। 'समस्त लौकिक कामनाओं का त्यागी ही श्री कृष्ण कामभोगी हो सकता है। .... यही घनिष्टता, अपनत्व की चरम सीमा ही प्रेमी जनों का अद्वैत है। प्रिय के प्राणों में प्राण, उनके हृदय में हृदय, उनके चित्त में चित्त मिला कर रसिक जन द्वैताद्वैत से परे के प्रणय रस का पान कर मत्त हो जाया करते हैं। यही है Mutual Intimacy

सर्प दंश-रोग का उपचार

कुछ ही समय बाद पू० बोबो पुनः वृन्दावन लौट आईं। इन्हीं दिनों पू० सुशीला बहन जी भी वृन्दावन आ गई थीं। आज कल पू० बोबो तथा सुशीला जी का संग पूर्व की भांति प्रायः साथ-साथ का ही रहता था। समय-समय पर वृन्दावन की माधुरी का आस्वादन करने यहां की वीथियों में विचरण करतीं। ग्रीष्म के ताप से किञ्चित् राहत मिलने लगी थी। अनेक बार वर्षा की फुहारें पृथ्वी की पिपासा का शमन करने का प्रयास कर चुकी थीं। प्रेमियों के हृदयों को सरसाता सावन मास प्रारम्भ हो गया था। वर्षा की फुहारों में घूमने का भी अपना ही आनन्द है। प्रिया-प्रियतम की

रसीली चर्चा में मग्ना दोनों सहेलियां वर्षा विहार का सुख लेतीं बाहर एकान्त के लिये निकलीं । संध्या का समय था । कजरारे मेघों की तमाच्छन्नता के कारण अंधेरा हो चुका था । सत्रह जौलाई सन् १९६१ की बात है– वर्तमान साधुबेला के सामने से सड़क पर दोनों सहेलियां रसमग्न चली जा रही थीं । उन दिनों बसावट अधिक न हुई थी । चारों ओर वन्य वातावरण सा ही था । वर्षा होकर चुकी थी । अनेक ऐसे जीव, जो पृथ्वी के अन्दर ही अपना जीवन यापन करते हैं, इस घुमस से त्रस्त होकर अपने आहार की खोज में बाहर निकल आया करते हैं । इस अंधेरे से में इनका पांव पड़ा एक विषधर पर । इनके चरणों से लिपट गया तथा काट लिया । पांव में कुछ लिपटा जान, इन्होंने बड़ी ज़ोर से झटका दिया । अपने बांई ओर सर्र से जाते इन्होंने विषधर को उस हल्के से उजाले में देख लिया । बिजली के प्रकाश में जाकर जब देखा तो पांव में रक्त स्राव तो हो ही रहा था, उसके दांतों के चिह्न भी बने थे । यह दोनों घर लौट आईं । किसी को कुछ बतलाया नहीं तथा पू० बोबो ने इस बात को गोपनीय ही रखने को कहा ।

नल के नीचे अच्छी तरह से पांव धो लिये तथा टांग पर रस्सी बांध श्याम सुन्दर के भरोसे निश्चिन्त लेट गईं । एक प्रयास, यही रहा कि नींद न आवे । अन्य सब को यह कहकर कि सुबह तुम लोगों को एक बात बताऊँगी, सभी चकित रह जाओगे, श्री ठाकुर जी पर विश्वास लिये पू० बोबो तो निश्चिन्त रहीं परन्तु सुशीला बहन जी के मन में अनेक प्रकार की शंका–कुशंकाओं का ताना–बाना चलता रहा । यदि कुछ भी अप्रिय घट गया तो बड़ी ही विकट परिस्थिति बन जावेगी । रह–रह कर वे इन्हें देख लेतीं । ये ठीक हैं, इस बात से बहुत सान्त्वना होती । देर रात तक तो पू० बोबो जागती रहीं, बाद में नींद विवश सो गईं ।

भोर हुआ पू० बोबो ने संकीर्तन आदि करवाया– उपरान्त रात्रि की घटना सुनाई । सभी भगवत्कृपा की इस सुखद अनुभूति से अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

विषधर के विष के कारण इनके शरीर पर विचित्र प्रतिक्रिया हुई । वर्षों से पू० बोबो की बांह में बहुत अधिक दर्द रहता था, कभी–कभी उसका विकट रूप भी हो जाता था वह बिल्कुल ठीक हो गया। इनके शरीर से एक प्रकार का लाल रंग का प्रस्वेद जिसका इनके वस्त्रों पर चिह्न भी लग जाता, निकलता था– वह भी बंद हो गया । भगवान का विधान भी बड़ा ही विचित्र है, उनकी कृपा का स्वरूप अगोचर है, इनकी

यह तकलीफ़ इतनी अधिक थी, कि कई बार बेचैन हो जाया करती थीं। अपनी प्रिया सखी के लिये श्री ठाकुर ने सर्पदंश एक दवा का रूप बना इनकी उस बीमारी का उपचार कर दिया।

धीरे-धीरे यह बात सभी स्वजनों तक पहुँची। बहुत से अभिभावकों ने सर्पदंश के चिह्न देख सहज विश्वास कर लिया, परन्तु कुछ लोगों ने यही कहा कि चूहे आदि ने काट लिया होगा अथवा गिलहरी रही होगी, अथवा 'कोई विषैला सर्प नहीं रहा होगा।' इन सब बातों के पीछे कुछ हेतु रहा होगा, यह तो कैसे कहूं परन्तु यह बात तो सुनिश्चित ही है कि इनके प्रति अहित का भाव उनका अवश्य नहीं रहा होगा। जो भी हुआ हो इनका रोग तो ठीक हो ही गया तथा श्यामा-श्याम ने अपने पर पूर्णतः निर्भर अपनी प्रिया को प्यार भरा एक और आश्वासन दे निश्चिन्त कर दिया।

हां ! तो पूज्या बोबो वृन्दावन में ही प्रिया-प्रियतम की माधुरी लीलाओं का रसास्वादन कर अपने तन-मन-प्राणों को सुशीतल कर रही थीं। "श्री यमुना जाते में एक दिन सेवा कुञ्ज के सामने से जा रही थीं सामने के एक झुरमुट में प्रिया जी खड़ी दीखीं। हल्की-हल्की धूप पड़ रही है, एक ओर बिल्कुल खुली सी स्थली है। उसी दिशा से जन-मन चोर चले आए। श्री राधिका के पीछे से आ पहले तो उनके दक्षिण स्कन्ध पर अपना दक्षिण कर रखा, क्षण भर में ही बांया, फिर देखते-देखते दाऐं स्कन्ध पर दायां और बाऐं पर बायां रख, क्षण भर को शान्त खड़े रहे। इतनी लाघवता से यह अदला-बदली की, कि श्री राधिका हिल भी न सकीं, जब दोनों कर सरोज धर, यह क्षण भर को खड़े रहे तो प्रिया जी ने ग्रीवा मोड़, पीछे की ओर देखा, उनके अरुणारे अधरों पर मुस्कान छिटक गई। आप बोले, "एक ही समय में दो-दो अरुण कमल। मकरन्द पान कर मत्त मधुप की तन्मयता का लेखा कौन देता ?

इसी प्रकार नित्य नव-नव भावों में भरी, नव-नवायमान रसास्वादन रता पू० बोबो वृन्दावन में मत्त होकर घूमती रहतीं। कभी श्लोकों में निहित भावानुभावों का आस्वादन कर मत्त हो जातीं। श्लोक तथा पद-साहित्य 'रसिकों की आस्वादन प्राप्त अनुभूति की ही तो यत्किञ्चित् अभिव्यक्ति है।' यह अभिव्यक्ति प्रिया-प्रियतम के लीला विहार का अंग बनी, उसी लीला की परिचायक तो है ही, परन्तु जब तन्मयता में भर भाव प्रगाढ़ रूप में परिणत हो जाता है, तब इन्हीं श्लोकों और पदों में निहित भावानुभाव प्रत्यक्ष होकर, (प्रत्यक्ष तो वे हैं ही) हमारे भौतिक

चक्षुओं के लिये भी गोचर हो जाते हैं, फिर सन्तों और महज्जनों के लिये क्या अगोचर और अगम्य हो सकता है भला ?

इतना ही नहीं, एक ओर उनकी अनुभूतियां, उन्हें मिले क्षण-क्षण पर प्रिया-प्रियतम के आश्वासन और दूसरी ओर उसी रस में भीजी-भीजी, उनकी भाव लहरियां कभी-कभी अभिव्यक्ति का माध्यम बन जातीं, उस अभिव्यक्ति में स्पष्ट भावानुभावों का वर्णन एक अपूर्व अनुभूति से संयुत, ... ओह ! अनुभव और आस्वादन के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।

कभी श्री कृष्णकर्णामृत की किसी भाव लहरी में डूब कहतीं, 'माधुर्य के इस नील सिन्धु में नव-नव भावनाओं की, रसभीनी उमंगों की तरंगे उत्ताल उछालें ले रही हैं। ओह ! यह रूप सौन्दर्य, सौन्दर्य का अथाह सिन्धु और फिर शृङ्गार संकुलित, भांति-भांति का मनो मुग्धकारी शृङ्गार किये यह नील किशोर .... इतना ही नहीं इनका कैशोर्य भी तो गज़ब ढा रहा है। समस्त शृङ्गारों का शृङ्गार तो यह किशोर लावण्य स्वतः ही हैं, और फिर शृङ्गार से उसका अभिनन्दन किया है। अरे! नहीं; यह केवल बाह्य शृङ्गार सज्जा नहीं है, यह है उस नील सिन्धु के अतल में उठने वाली राग रंजित भावनाओं की, शृङ्गार रस की, अभिनव तरंगें जो इस किशोर मूर्ति का प्रतिक्षण नूतन शृङ्गार कर रही हैं। चन्द्रमा को भी फीका करने वाला मन्द-मन्द मुस्कान से भूषित है यह चन्द्रानन। सचमुच आज नील नभ के अंक में इठलाने वाला यह विधु इस वृन्दावन धाम में उतर आया है। नहीं-नहीं, उस चन्द्र में इस चन्द्र से होड़ लेने की क्षमता ही कहां है; वह तो पराजित होकर प्रथम तो कई-कई दिन को अपना मुख ही छिपा लेता है। पर स्वभाववश जब उदय होता है तो इस श्यामल चन्द्र के अद्वितीय, अपूर्व सौन्दर्य-माधुर्य को देख कर अपनी समस्त श्री चन्द्रिका के रूप में इनके चारु-चरणों पर न्योछावर कर देता है। कैसा अद्भुत हृदय मन्थनकारी है यह चन्द्रानन ! आनन्द संप्लव !' आनन्द की बिखेर करने वाला, मंद-मंद मुस्कराता यह मुख विधु हमारे हृदय में भी प्रेमोन्माद का संचार करे।

× × ×

और कभी प्रियतम की रूप माधुरी का पान कर बौरा जातीं। प्रिया-प्रियतम शयन करके उठे हैं। 'सर्वेश्वर' कह कर इनकी माधुर्य धारा पर किञ्चित् पर्दा डालने की चेष्टा भर ही दीखती है। यों

'सर्वेश्वर' तो हैं ही । ब्रज-जन-जीवन हैं, बल्लवी प्राणनिधि हैं, ब्रज-वासियों का सजीव ऐश्वर्य हैं । उनके प्यार सिन्धु में निमज्जित ईश्वर हैं, सुखकर होने में सन्देह ही क्या है भला ? सुप्त बालक की रूप माधुरी में पगे नन्दबाबा के सुख का क्या कहना ? ब्रज वनिताओं को तो सर्व सुख-प्रदायी हैं ही । रोम रोम से दुलार-सुख वर्षा करके उन्हें प्रतिपल, प्रतिक्षण, सुखी बनाए रखते हैं । हां ! तो 'सुखकर' भी हैं और 'रसिकेश भूपम्' रसिक शिरोमणियों के (भगवान शंकर आदि) भी भूप हैं । ऐसे रसिकेश भूपाल को सखियों ने आ घेरा । और फिर .... फिर की कौन कहे ?

× × ×

कभी प्रेम-मदिरा का आस्वादन कर अपने भावों में मग्न कहती-कहती एक विशेष ही सरसता में तन्मय हो जातीं, मग्न हो जातीं और यह मग्नता कितने समय की होती, यह कहना कठिन है ।

सघन जलदच्छाया चौर हैं, सुनील-सुरंगी ब्रज-राजकुमार। नीलमणि से प्रभायुक्त सुकोमल कलेवर से श्याम-ज्योति की शत-शत किरणें निसृत होकर घने मेघों के कारण व्याप्त उस कालिमा को .... अंधकार समूह से चुरा रही हैं । चुराई हुई वस्तु गोपनीय ही रखी जाती है। उस अंधकार पुञ्ज को इन्होंने अपनी उसी नील कान्ति में छिपा लिया है । छिपा कर यों ही नहीं रख दिया अपितु उससे काम लिया है । वह काम आई तब, जब तारों के दीपक भी खटकने का अवसर आ गया । विलास भार सम्हालने संवारने के लिये अन्धकार ही वाञ्छित लगने लगा । एक उर्दू कवि ने कहा है :-

शबे वस्ल की बेखुदी छा रही है-
कहो तो सितारों की शमां बुझा दूँ ॥

अत: प्रेम की इस महादशा की गाथा किसे न अभिभूत कर मग्न कर देगी, और जब इस मग्नता में प्राणों का ही समावेश हो जाता हो, उन महाभागा ब्रज-बावरियों का सौभाग्य ही गर्व को प्राप्त हो जाता हो-प्रणय रस की प्रगाढ़ता का अता-पता कहां से पावेगा कोई ?

कभी अपनी इसी प्रगाढ़ता में, इस मत्तता से किञ्चित् सजगता के राज्य में प्रवेश पातीं । वास्तव में यह मत्तता ही, तन्मयता की प्रगाढ़ता ही, सजगता है । तन्मयता में बेसुधि तो अवश्य है, नव-नव रस पान करने की ललक, जब तक ललक बनी रहेगी, पुनः पुनः पान के आवर्तों में न डूबेगी तो उस तन्मयता में रस की स्थिरता ही रहेगी । प्रेम का

स्वरूप नित्य वर्द्धमान है और इस वर्द्धन में ही नव नवायमान आस्वादन का स्वरूप निहित है, अतः वह सजगता आज मुरली-निनाद की रसीली भावनाओं का आस्वादन करा प्राणों का पोषण करने लगी।

× × ×

श्री हरि लीला की परम मादक धुरी है यह मुरली निनाद। 'चक्र' धुरी के सहारे ही टिकता है; सो, श्री हरि का लीला चक्र मुरली निनाद के आधार पर ही टिका हुआ है। श्री मद्भागवत में वेणुगीत में श्री श्री गोपीजन वेणु नादामृत लहरी का बड़े ही गद्गद कण्ठ से बखान करती हैं। हर लीला का अवतरण इसी के सहारे होता है। श्री महारास के समय भी इसी ने उन ब्रज वनिताओं को बावरी बना घरों से भागने को विवश कर दिया था। अपनी स्वरधारा पर आरूढ़ कर उन्हें श्याम-सुन्दर तक ले आई थी। श्री गोपिकाओं के शब्दों में, 'यह मुरली ध्वनि ही तो हमें प्रियतम तक पहुँचाने वाली स्वर लहरी है।' हां ! यह लीलाओं की धुरी है और उन साक्षात् रस राज की अधरामृत माधुरी से सिंचित है। एक बार नहीं, दो बार नहीं ..... सदा सदा .... नित्य शाश्वत सुख है इस वंशी का यह .... उसी मधुरामृत में पगी यह गूंज उठती है और उस गूंज के मधु से आकृष्ट हुए कोटि-कोटि गोपी मन-मधुकर सब कुछ भूल उड़े चले आते हैं, मधु के उस उद्गम-स्थल पर पहुंच विश्राम लेने को, उस मकरन्द का भरपूर रसास्वादन करने को। गोप ललनाओं ने इसका सर्वोपरि उपभोग किया, इसी महासौभाग्य के कारण वे जगद्वन्द्या हो गईं।

यह वेणु ध्वनि इन आभीर रमणियों के लिये नई नहीं है, शाश्वत है, सनातन है, पर फिर भी पुराने पन की जीर्णता या सौ-सौ बार सुनने से मन को विलसित न करने वाली उपरामता इसमें नहीं है। यह पुरानी है पर इसकी नवीनता दिनों-दिन अभिनव है। हर क्षण की स्वर लहरी एक नया गान, नया सन्देश, नया राग लिये है, तभी तो उस माधुर्य तरंगिणी में सचकित स्तम्भित ब्रज-वनिताऐं स्वतः ही बह चलीं- बहती गईं और अन्ततः पहुँच गईं अपने राग-रंजित, राग-प्रदायी, राग-रसभोक्ता, गोपाल की प्रणय धारा में एकाकार हो जाने को। कौन कहे यह गोपी रमणी समूह है या श्याम-सुन्दर हृद्धन का प्रणय ही कोटि-कोटि प्रणयिनी ब्रज वनिताओं के रूप में घनीभूत हो ब्रज मण्डल में आविर्भूत हो गया है।

× × ×

वंशी–निनाद में प्रवहमान संकेतों–सन्देशों को अपने उर में संजोए, प्रणय पगे आश्वासनों का आस्वादन कर जहां एक ओर पूज्या बोबो मग्न हो जातीं, वहीं दूसरी ओर इसी अनुभव और आस्वादन में रत हुई मुक्त कण्ठ से कह उठतीं उस रसीली सृष्टि की बात, उनसे मिले आश्वासनों की बात। जो नयनों में समाया हो, उसी की बंक विलोकन से बिद्ध होने पर अन्य किसी चितवन की आकांक्षा किसे होगी भला ? जिस राग–रस की वर्षा से हृदय आप्लावित है, तन, मन सरस हैं, और कोई कामना रूपी मृग–मरीचिका का विचार ही किसे आवेगा ? एक स्थान पर कह रही हैं :-

बसे हो हृदय में तुम्हीं जब रंगीले–
तो फिर और सृष्टि को लेकर करूं क्या ?
तुम्हारी रसाकर्षिणी छब छटा यह,
तुम्हारी सुधा वर्षिणी घन घटा यह,
नवल राग मदिरा की बौछार द्वारा,
सराबोर रखती है मुझ को निरन्तर,
कि जिस राग वर्षा से सिंचित प्रफुल्लित,
सदा लहलहाते हैं मन प्राण अन्तर,
इसी राग वर्षा को पाकर छबीले
किसी और वृष्टि को लेकर करूं क्या ?

ऐसा सुदृढ़ विश्वास और निर्भरता, बड़े ही सौभाग्य से प्राप्त होती है। उसी सौभाग्य मद से गर्विता पू० बोबो, वंशी की स्वर लहरी से निसृत रस तरंगों में लहरान्वित तो हो ही रही थीं, वंशी के रसोद्गम स्थल, मुस्कान पाश में आबद्ध होने का सुअवसर प्राप्त हो गया उन्हें और उसी की माधुरी में खो गईं।

इस मुस्कान ने भी तो धूम मचा रखी है ब्रज में, वन–वीथियों में, सघन निकुञ्जों में, हाट–बाट में, यमुना तट पर, वंशीवट पर, कहां तक कहें; समस्त प्रकृति में ही मुस्कान की डौंडी बजी है। यावत् स्थली इसी रस से आप्लावित, सरसित दीख रही है।

"कैसी रसीली रसायन है यह मुस्कान ? जिसके पान से नहीं– अपितु अवलोकन भर से ही त्रय ताप भस्म हो जाते हैं, हृदय में

सहज रस वर्षण होने लगता है, रस सरिता हिलोरें लेने लगती है, वही हिलोरें जिनका सत्कार करने, जिन्हें आश्रय देने, श्याम-सुन्दर अपना सान्निध्य प्रदान करने को विवश हो जाते हैं। मुस्कान का उद्गम-स्थल ही वेणुनादामृत का स्रष्टा है। वहीं से यह स्वर लहरी निसृत हो परम प्रेम रूपा ब्रज देवियों के अन्तर में भर उन्हें खींच लाती है अपने रस-स्रोत के पास। वास्तव में उस रस मन्दाकिनी में बहती हुई ही यह उसके उद्गम तक आ मुस्कान माधुरी का अवलोकन करती हैं उस मुस्कान से विवश हुई यह मुस्कान के उस अधिष्ठान में ही आश्रय पा सब श्रमों से मुक्त हो जाती हैं।

× × ×

अभी अभी मुस्कान माधुरी ने अपने जादू से मन प्राणों को उद्वेलित सा कर दिया था और अब पुनः वंशी निनाद ने चौंका दिया। क्या कहे कोई इन प्रणयावर्तों को- यह आवर्त सदा गतिमान ही रहते हैं, और कई बार पुनरावृत्ति कर और-और रसाकुल कर देते हैं। यह आवर्त क्या हैं ! प्रणय के सुदृढ़ पाश ही हैं। किस-किस पाश से बचे कोई। कभी अधरामृत से निसृत वंशी का मधुर पाश, जैसे तैसे इस पाश से निकले ही थे कि मुस्कान पाश ने आ घेरा। इसकी थाह का अता-पता अभी लगा भी न था कि पुनः इस वंशी निनाद ने किसी माधुरी का प्रसार कर बौरा दिया और कहते ही बना :-

अपनी किसी सखी को सम्बोधन कर श्री राधा कह रही हैं, "हे अलसाङ्गी ! मैं क्या करूं ? मैं तो सर्वथा विवश हूं। हर बात में मेरी चतुराई चल जाती है। भांति भांति की कलाओं की ज्ञाता भी मैं हूं .... अनेकानेक रस रहस्यों में निष्णात हूं - पर एक स्थल पर मेरी सब चतुराई चली जाती है। पता नहीं इन नील किशोर की वेणु स्वर लहरी कौन सा उच्चाटन मन्त्र जानती है ... फिर कुछ भी सोच नहीं पाती मैं। देख सखी ! मौन होने की कला में पारंगत हूँ मैं। प्रियतम कितना भी मनाएँ, मैं चुप ही बैठी रह सकती हूं। भांति भांति की वचन चातुरी भी मुझ में है। मैं उनकी कोई बात भी लगने नहीं देती। अवलोकन की रसीली-नशीली क्रियाओं में भी परम सिद्ध हूँ। कुटिल-कटाक्षों द्वारा, सरस-स्निग्ध चितवन द्वारा, प्रणय-कोप भङ्गिमा द्वारा, नत-नयनों द्वारा, सभी प्रकार से मैं उन्हें जीत लेती हूँ पर यह सब तभी हो न ! जब नन्द नन्दन की अधर संगिनी यह हठीली मुरलिका मुझे होश में रहने दे। क्या बताऊं, इस बांस की पोर में कौन सा आसव भरा है कि मैं विवश ही रह जाती हूँ। सब चतुराइयां, सारी कलाऐं

उस समय विस्मृत हो जाती हैं । तू जो कुछ समझा रही है, वह सब स्वीकार है मुझे पर तू ही बता मैं अब क्या करूं ? ले सुन ? वंशी में वशीकरण फूंक वे हृदय हारी, करुण तथा विह्वल पुकार से मुझे विवश किये दे रहे हैं । अब मेरा हठ काम न देगा, उनके बिना मुझ से रहा नहीं जावेगा । हाय, यह वंशी मेरी उसी रस पिपासा को भड़का रही है, जिसे पान करके उन्मत हो गूंज उठती है यह ।''

बस, फिर वह पिपासा किसी मधुर रसामृत का पान कर तृप्ति की थाह लेने को विश्राम के अंक में जा समाई और .... और .... के आस्वादन में ।

वंशी निनाद के सुमधुर आवर्तों में निमज्जित मन, मुस्कान मदिरा का आस्वादन कर मत्त हो गया और अब देखा श्याम अलकावली के मध्य झांकता वह श्यामल विधु, उसने अपने मस्तक पर सुनील मयूर पिच्छ धारण कर रखा है । कैसा सौभाग्य है इस मयूर पिच्छ का । जिन चरणों के एक रज कण की याचना त्रिदेव तथा बड़े बड़े योगी मुनि करते हैं, यह उन्हीं के केश पाश में उलझ, झूमा करता है । मदमत्त इठलाता मोर पंख तो दीखा ही, इधर दृष्टि आकर्षित हुई लहराते बलखाते पीताम्बर की ओर । शत-शत दामिनियों की दिव्याभा को तिरस्कृत करता हुआ यह पीताम्बर सदा-सदा श्री अंगों से लिपटा ही रहता है । मोर पंख को तो एक ही सौभाग्य प्राप्त है पर इस पीत पट का सौभाग्य तो ब्रज रमणी वृन्द की स्पृहा का विषय है । प्रेमी भक्तों के हृदय में किसी सरस चाह का स्त्रष्टा है । इसी से लहराया, इठलाया, फहराया करता है यह पीत पट । पीताम्बर की स्निग्धता बड़ी ही स्पृहणीय है । सुकुमार अंगों से लिपटे-लिपटे यह स्निग्ध सुकोमल हो गया है । ऐसी रूप छटा से मन को मुग्ध करते हुए, प्राणों को स्तम्भित करते हुए निकट आ, किसी मरकत मणि सी श्यामल, सुस्निग्ध और सबल भुज तटों के प्रबल पाश में आबद्ध कर सरसा दिया है मन प्राणों को .... यह भावानुभाव रसिकों की सरस कामनाऐं, ब्रजभाव सम्पन्ना कौन ऐसी रमणी होगी जिसे आकृष्ट न कर लेंगी ! अतः पूज्या बोबो का हृदय इन्हीं रसानुकरणों की पुनरावृत्ति के लिये लालायित होता और उन्हीं में तन्मय हुई वे, सरसता में भर अपनी मस्ती में झूम उठतीं ।

केशावली में फहराती काम विजय पताका स्वरूप यह केकी पिच्छ अठखेलियां कर आकर्षित कर ही रहा था; तिस पर भी झूम, फहरा, अंग-अंग से लिपट इस पीत पट की स्पृहा ने आकुल-व्याकुल कर

दिया। इसी से उद्वेलित मना सखी स्वामिनी श्री राधा, प्रियतम से मिलने की उत्कट त्वरा से भूषिता, सखियों के संग भवन से निकल घूमती-टहलती, दान घाटी में आ गईं। चंचल के नयन युगल ने एक उड़ान भरी- चारों ओर देखा चंचलता को सफलता प्रदान करने वाले वे रसिक सुन्दर दीख पड़े, पास के ही उन झुरमुटों में। अहा ... हरे-हरे विटप, कर कंज में लकुट, लकुट सों लपटाए ठाड़े।' श्री राधा ने देखा उन्हें देखते, देखते हुए देख- अपने नयनों में झांकते हुए देखा- प्रणय-भिक्षा की याचना करते देखा, रस रंग वर्षा की कामना करते हुए देखा, हृदय में धकधकी सी हुई, प्राणों में हलचल मच गई, नयन, अभिनव भाव भङ्गिमा से भूषित हो गए, कपोल आरक्त हो उठे, अधर फड़कने लगे, गात सिहर उठा, रोम खड़े हो गए। अपने को सम्हाल पाने में असमर्थ रह गईं किशोरी राधा, पर प्रणय-भाव गोपन-चतुरा ने भृकुटी में बल डाल, टेढ़ी ग्रीवा कर, बंकिम कटाक्ष बाण पात कर प्रियतम की ओर एक बार देखा ...... फिर दृष्टि घुमा ली। .... नयन प्यालों से प्रणय रस छलकाते, लकुट घुमाते, चपल पदचाप से सम्मुख आ खड़े हुए, प्रियतम, और बोले, ''सुन्दरी ! दान देकर जाना पड़ेगा .... दान घाटी है यह, यहां दान न देने से घाटा होता है, तथा देने से बढ़ती होती है, रूप की ...... यौवन की .... उमंग श्री की और रस विभव की।''

फिर क्या हुआ कौन कहता, दान-पान की रसीली यह क्रियाऐं ...... ओह ! रस से परिपूर्ण प्रणय बेसुधि से सिक्त, किसी रस विभव को संचित कर, लुटा..... कैसे हैं प्रणय विनिमय के यह रसावर्त।

यह आवर्त ही तो सभी के हृदयों को सदा-सदा आलोड़ित करते रहते हैं, आकुल व्याकुल करते हैं। श्यामा-श्याम की रसीली स्पृहाओं में, उन्हीं भावों में निमग्न हो आस्वादन करना ही तो बांछित है, अभीप्सित है। इन्हीं रसकणों से अभिषिक्त, सौभग मद गर्विता पूज्या बोबो रस मग्न होती रहतीं। कभी जल भरने गई यमुना तट पर किसी सुभगा की मनोदशा का चित्र उनके नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता। उसकी उस रस दशा का गान करतीं- उसी भाव से पूर्णतः ओत-प्रोत हो कह उठतीं :-

'कोई गोपाङ्गना श्री यमुना से जल लेने को आई। अभी आकर यमुना तट पर बैठी ही थी कि कहीं पास से ही मुरली की मनोहर ध्वनि उसके श्रवण रन्ध्रों में प्रविष्ट हुई। चौंक उठी वह। उसे तो पता ही न था कि कब से यह मुरली विलासी उसके प्राणधन किशोर एक कदम्ब वृक्ष

का सहारा लिये, उसकी टेक लगाए यमुना तट पर खड़े थे, इसी की प्रतीक्षा में शायद कि कब यह सुन्दरी कलश को जल में निमग्न करे और मैं इसे प्रणय-सलिल में निमज्जित कर, राग रंग बिखेरूं, समेटूं। जैसे ही उस आभीर ललना ने अपना कलश कलिन्द नन्दिनी के नील सलिल में डुबाया कि नटखट मुरली रवकारी ने अधरों पर रखी मुरलिका को अमृत रस से सिंचित कर दिया। आनन्दोन्माद में भर गूंज उठी वह। चकित हरिणी की भांति उस गोप रमणी ने अपना मुख फिराया, विशाल नयनों में विस्मय और रागानुरञ्जना भरे वह देखती की देखती रह गई। कब घड़ा उसके हाथ से छूट गया- उसे पता ही न चला। उसकी इस विस्मय विमुग्धकारी छटा पर रीझ उठे नटनागर और फिर वही हास-विलास, वही केलि विहार, जहां कोटि-कोटि कन्दर्पों की चतुराई थकी सी रह जाती है।'

'ओह! माधुर्य की इन रसमयी लहरियों में डूब उतरते रमणी हृदय, निमग्न रहते हैं, इन्हीं भाव तरंगों में पूज्या बोबो की हृदय ऊर्मियां, समाकर, सदा सर्वदा उल्लसित होती रहतीं। इन्हीं में रसमग्न हुई वे वृन्दावन की सरसता में रमती रहीं।

× × ×

प्रिय-मिलन की सन्निधि का जो सुख, पारस्परिक रसादान प्रदान में प्रवाहित होता रहता है, कभी अभाव का क्रम उसमें रस वर्द्धन हेतु, उस आस्वादन में एक नई ही रस पेशलता भरता सा प्रतीत होता दीखता है, और यह अभाव कभी व्यस्तता के कारण और कभी आश्वासनों में प्रति बन्धित वचनों की सार्थकता के अभाव में किञ्चित् मान का रूप धारण कर हमारे सामने आता है वह मान, न तो अपने प्रेमास्पद से रुष्ट होने के अधिकार वश होता है और न ही प्रेम के उच्च आदर्शों की स्थापना हेतु। प्रेम का स्वरूप तो प्रेमास्पद की इच्छा में योग दे, उन्हीं के सुख में सुखी रहने का ही है, परन्तु फिर भी अपने प्रेमास्पद का अपने प्रति द्रवण, उनका प्रणय-पगा आश्वासन जानने की प्रेमी की प्रबल इच्छा अवश्य रहती है। वही इच्छा कभी कभी मान का स्वरूप धारण कर अपना सत्कार चाहती है। कठिन मान नहीं है यह, कठिन मान प्रेम के रसीले स्वरूप में एक फांस सी ही है। वह मान तो अवश्य है, परन्तु प्रेमास्पद का अपने प्रति द्रवण देखने तथा प्रीति वर्द्धन हेतु।

कभी इन्हीं भावों में विवश हुई प्रणय साम्राज्य के इन आवर्तों की बात कहतीं, 'एक बार मानिनी श्री राधा ने प्रियतम की ओर न

देखने का निश्चय कर लिया पर लोलुप नयन कहना मानें तभी न। यह तो सचमुच बिगड़ गए हैं– क्या करतीं श्री राधा ? सामने से तो नहीं पर नेत्र-कोरों से, तिरछी चितवन से उधर देख ही लेती हैं, देखती रह जाती हैं। श्याम-सुन्दर से न बोलने का भी ब्रत लिया है इन्होंने पर कैसी है यह रसना, प्रियतम से कुछ न कुछ कहने को आतुर हुई जा रही है। विवश राधिका ने तो कुछ न कहा पर इतना अवश्य बोल उठीं, "जाओ वहीं चले जाओ।" इतनी बात प्रियाजी के मुख से सुन सभीत प्रियतम का साहस बढ़ा। वह और निकट आ गए। श्री राधा का आंचल पकड़ लिया, लगे अनुनय विनय करने। श्री राधा को कठिन मान सम्हाले रखना कठिन हो गया। रोम-रोम प्रियतम के स्पर्श सुख के लिये मचलने लगा, पर फिर उन्होंने अपने को सम्हाला, बिखरते मन को समेटा और स्पर्श लालसा को तनिक विश्राम देने के लिये नन्दनन्दन के दोनों कर कमल अपने कर कञ्जों से पकड़ उन्हें दूर करती हुई कुंज के बाहर जाने का संकेत करने लगीं।

श्री राधिका की ऐसी प्रेम विवश स्थिति– ओह ! इस अपनत्व में भरी प्रणय भावना, सामीप्य का परिचायक बनी, और-और समीपता में परिवर्तित हो गई, इन्हीं भावों में निमग्ना पूज्या बोबो की प्रणय पगी भावनाऐं उन्हें रस में और-और सिक्त करती रहीं।

बरसाना के लिये प्रस्थान

श्री वृन्दावन की रसीली मदमयी भूमि में विचरण कर आस्वादन करती पूज्या बोबो के मन में सहसा बरसाना जाने की इच्छा हो आई। वे ब्रज और वृन्दावन में कोई विशेष अन्तर नहीं मानती थीं। अन्योन्याश्रित सा ही भाव उनका इसके प्रति था। वृन्दावन और ब्रज का गौरव श्याम-सुन्दर, उनकी प्रिया श्री राधा और उनकी काय व्यूह स्वरूपा इन ब्रज बालाओं से ही है। लीला समायोजन हेतु वे सभी स्थलियों में विचरण करते हैं। ब्रज की कोई स्थली ऐसी नहीं जो इन प्रेमी युगल के चरण चिह्नों से स्पृष्ट न हुई हो– अतः भिन्न भिन्न लीलाओं के समायोजन भिन्न भिन्न स्थलियों में भिन्न भिन्न निकुंजों में चलते ही रहते हैं। जहां युगल का रस विहार, लीला-विलास गतिमान है, जहां उनकी अनन्या प्रिया- यह ब्रजाङ्गनाऐं विचरण करती हैं, जहां गोचारण हेतु श्याम सुन्दर विचरण करते हैं वह सम्पूर्ण ब्रज की स्थली उन्हीं की लीला स्थली होने के कारण सर्व पूज्य है। यह बात अलग है कि कुछ स्थलियां विशेष रूप से विशेष

लीलाओं के लिये अपना ही वैशिष्ट्य रखती हैं– परन्तु वृन्दावन की सीमा का विस्तार भी दूर दूर तक फैला हुआ है– और वृन्दावन केवल पांच कोस की परिधि में न होकर समस्त ब्रज में व्याप्त है, जहां श्यामा–श्याम अपनी प्राण प्रिया श्री राधा तथा इन गोपिकाओं के साथ विहाररत रहते हैं– वही स्थली वृन्दावन है– उसे ही वृन्दावन कहना होगा। श्री यमुना तट पर स्थित वृन्दावन भी विस्तृत भाव से वहीं तक माना जावेगा। यह धारणा पूज्या बोबो की रही, इसी हेतु उन्होंने, श्री गिरिराज, श्री वृषभानुपुर, श्री नन्दगांव तथा गोकुल की अनेक बार यात्राएं कीं; तदनुकूल ही उनकी अनुभूति भी हुई।

हां ! तो प्रिया जी की निज स्थली वृषभानुपुर की दिव्य भूमि के प्रति पू. बोबो का हृदय पहले भी अनेक बार आकृष्ट हो चुका था। इस बार सहज ही सुयोग बना और उस दिव्य–स्थली के लिये प्रस्थान किया। श्री जी के मन्दिर का वातावरण दिव्य है तथा उन्हीं रस कणों से इनका मन उमंग में भर गया। वहां की प्रकृति, वहां की दिव्यता, मन प्राणों को आलोकित करने लगी। इसी मिलन मधुरिमा में भर, प्रिया जी के स्वर में स्वर मिला, अपनी भावनाओं का समावेश कर उन्हीं भावों में ओत–प्रोत हो गईं।

मत्त गयन्दिनी जिस प्रकार अपने मत्त गजराज से मिलने हेतु किसी वन में मत्त गति से आ रही हो, उसी प्रकार जो मत्तमातङ्ग चाल से अपने रस–लोलुप, रस–प्रदायी प्रियतम से मिलने के लिये श्री तरणि तनूजा तट पर पधारी हैं। प्रियतम अवश्य ही कहीं आस पास छिपे होंगे क्योंकि प्रियाजी से पूर्व ही यह प्रेम परिपूर्णतम पारखी ब्रजेन्द्र कुमार वन प्रान्त में आ जाया करते हैं। प्रिया जी उनकी प्रतीक्षा करें, यह वे सहन नहीं कर सकते, पर कौतुक वश प्रियाजी की उमंग–तरंगों को अधिकाधिक उद्दीप्त करने के हेतु कभी कभी छिप अवश्य जाया करते हैं। प्रिया जी भी उनके इस कौतुक से भली भांति परिचित हैं, कभी मान–मनुहार की लीला ही करनी हो तो और बात है, अन्यथा वह भी अपनी सरस सूझ से, किसी नवल ढंग से बिना रूठे ही– प्रसन्न मन से प्रियतम को खींच लिया करती हैं। हां तो वे यमुना पुलिन पर आ विराजीं। चारों ओर दृष्टि घुमा कर अवश्य ही देखा होगा, प्रियतम नहीं दीखे होंगे, बस उन्होंने भी उपाय सोच लिया, छिपे चोर को पकड़ने का। वीणा का स्मरण करते ही मधुमति नाम की उनकी वीणा उसी क्षण प्रकट हो गई। अब क्या था, लगीं श्री राधिका अपना

राग उंडेलने। मादक स्वर लहरी त्वरित गति से प्रवाहित हुई और सीधी प्रियतम की उर स्थली में प्रविष्ट हुई। नन्द नन्दन ने यह संकेत स्वर सुना और लो ! प्रियतमा को उनकी राग भरी पुकार का अपनी वेणु ध्वनि से उत्तर दिया। उन्हीं की वीणा के पञ्चम स्वर में अपनी वेणु का पञ्चम स्वर मिला, प्रियतम ने भी राग रञ्जित तान छेड़ दी। अहा ! वीणा- वेणु के नादामृत का वह सङ्गम। कब दोनों के उस राग ने विराम पा, स्वर डोरी से युगल रसिक को बांध, एक दूसरे को सुराग-पूर्ण सान्निध्य प्रदान कर दिया .... कौन जाने?

इन्हीं सरस भावनाओं में भरी पूज्या बोबो बरसाने की रसीली स्थलियों में विचरण करती मग्न रहने लगीं, और कब इस रसीली स्थली ने अपनी सुरस चेष्टाओं से उच्छलित रस-विहार, विलास की तरंगों से स्नात कर, इन्हें अपनी सुशीतल क्रोड़ में श्रम और श्रम निवारण के उपक्रमों में कैसे कैसे उलझा लिया, यह केवल आस्वादन ही का विषय है।

बरसाने की रसीली स्थली, प्रिया-प्रियतम की निकुञ्जान्तर्गत एकान्तिक लीलाओं की स्रष्टा-भोक्ता तो है ही, साथ-साथ अपनी अकारण कृपा द्वारा आश्रित जनों को अपनी चिन्मयता का दर्शन कराने वाली है। इन सरस कौतुकी के सरस पीताम्बर ने, उसमें उठने वाली रसीली तरङ्गों ने, आप्लावित कर दिया। उन्हीं रस लहरियों की स्पृहा में अकुलाई सी पू. बोबो मग्न हो खिल उठीं।

पीताम्बर धारी नटखट बड़े कौतुकी हैं। 'परम कौतुकी कृपा निकेता' कृपा निकेता से भी बढ़कर यह 'प्रणय निकेता' हैं। कौतुक इनका स्वभाव है और हास-विनोद इनकी प्रकृति। सखाओं में भी यह कौतुक रत रहते हैं, भांति भांति के खेल खेलते हैं, विनोद करते हैं और सखियों में, सखी मण्डली में तो इनके कौतुकों की सीमा ही नहीं रहती। कभी छद्म वेष धारण कर चोरी से उनमें जा बैठते हैं, तो कभी रसीले इंगितों से उन्हें विवश कर संकेत स्थलों में बुला भांति-भांति से विलसित होते हैं। एक बार किसी कुमारी को छल करके ले गए थे, उसकी दादी का रूप बना कर, माधुरी सखी का रूप धर श्री राधा की प्रेम परीक्षा लेने गए थे। कौतुकी भर हों इतना ही नहीं। 'तरलां तरंगो' न जाने कैसी तरल तरंगें उठती रहती हैं इनमें। इनके हृदय सिन्धु में राधिका राग सागर हिलोरें लेता रहता है। राधिका के यह 'राग सागर' परम उदार हैं - सभी को, जो भी इनमें अनुरक्त हैं, उन सभी को अपनी इन तरल तरंगों से सिक्त रखते हैं। इनके राग रस में भीजी यह रस देवियां सदा सदा किसी नवल उमंग में, सुखकर चाह में,

उन्मादक तरंगों में डूबी, इन प्रणय सिन्धु के विशाल उरस्थल में विश्राम पाती हैं । यहां अन्योन्याश्रित भाव है । यह प्रियाऐं कभी तरल तरंगों से अपने प्रणय के देवता को अभिषिक्त करती हैं और कभी स्वयं उनकी अपांग चितवन से, मधुरे हास से, राग रंजित इंगितों की तरल तरंगों से खिंच लहलहा उठती हैं । मधुर मादक खलबली से ये स्वयं गुदगुदाए रहते हैं, उन्हीं तरंग भंगियों से यह अपनी प्रियाओं को झकझोर विवश परवश कर देते हैं । यह वह मनहर मधुकर हैं जिन्होंने राधा मुखाम्बुज पान का ब्रत ले रखा है । अपने नयन भ्रमरों से यह उनके सौन्दर्य पराग का पान करते हैं । सामीप्य के क्षणों में किसी मकरन्द का पान कर उन्मत्त हो जाते हैं ।

अहा ...... अहा .... कैसा है यह उन्माद, रसोन्माद । इसी रसोन्माद ने बौरा रखा है सम्पूर्ण ब्रज को; ब्रज में उन्हीं की अपनी, अत्यन्त अपनी प्रेयसि वृन्द को । उन्हीं का अनुगमन करतीं प्रिया-प्रियतम की केलि क्रीड़ाओं का आस्वादन करतीं परम भागवत पूजनीया बोबो, वृन्दावन की माधुरी में निमज्जित और मग्न रहतीं ।

इधर, लावण्य और केलि भाव भावित होकर उसी का सरस प्रशस्ति गान कर रही हैं "हां, हां, इसी केलि के द्वारा ही तो ब्रज-ललनाऐं अपने प्रियतम के उरस्थल को सदा सदा सींचा करती हैं, उनका लावण्य, उनका माधुर्य, उनका चांचल्य, उनका हास-विलास जो भी है, वह सब इन्हीं सरसीले रस मर्मज्ञ प्रियतम के उर को सरसाने, हर्षाने के लिये ही तो है । अपने लावण्य के द्वारा वे इनके हृदय में भाव तरंगे उठा दिया करती हैं । मुग्ध नन्द नन्दन किसी नवल कौतुक में प्रवृत्त होने को विवश हो जाते हैं, बिना इन आभीर सुन्दरियों के सहयोग के कोई भी कौतुक पूर्ण नहीं होता ...... बस यह केलि महोत्सव का विविध विधि से उद्घाटन करती हैं और कराती हैं । प्रियतम श्याम सुन्दर का हृदय किसी मधुर मदिर रस से और और पूरित होने लगता है । एक तो पहले ही माधुर्याम्बुधि हैं यह सांवर सुकुमार, और जब यह सुकुमारी ललनाऐं अपने लावण्य और केलि विलास से इनमें और-और उत्तुङ्ग तरंगे उठाने लगती हैं, अपनी प्रणय बयार से मदाम्बु-लहरी को उत्ताल हिलोरें लेने को विवश कर देती हैं तो नन्दनन्दन का रस भरा मृदुल हृदय पता नहीं कैसी-कैसी उन्मादनकारी भावनाओं से आलोड़ित हो उठता है । श्री श्री गोपी जनों की प्यार-दुलार, राग-अनुराग की शत शत धाराऐं अपनी लाड़-प्यार भरी सुशीतलता से इनके उर को

और-और मदमयता से प्रपूरित कर देती हैं, और बस पुनः वही रस रंगोत्सव, आरम्भ हो जाता है, उसमें नूतन मंगल विहार, विविधता से विलसित होने लगता है, कोटि कोटि कन्दर्प वहां विस्मित चकित रह जाते हैं, पराजित हो जाते हैं ।

लावण्य और केलि भाव भाविता नूतन मंगल विहार-विलास में ओत-प्रोत, इन्हीं भावों में पल्लवित और पुष्पित किसी रस विहार में मग्न-मत्त पूज्या बोबो के सौभाग्य की गाथा, यह जड़ लेखनी कहां व्यक्त कर सकती है ! प्रणय के यह आवर्त ऐसे ही हैं, एक आवर्त की थाह का अता-पता अभी ले भी नहीं पाते कि दूसरे ही किसी आवर्त में उलझ जाते हैं । यह उलझन ही जीवन है । इसी की कामना में, इसी की पुष्टि में गर्विता पूज्या बोबो वृन्दावन में विचरण करतीं, रसास्वादन में मग्न हुई इन्हीं सरस चक्रों में रम जातीं ।

× × ×

लावण्य और केलि से परिपूर्ण भावना-साकार हो रात्रि के अन्धकार में विलीन श्रमित युगल रसनिधि को थपकियां दे बाहर आ किञ्चित् अलसान में भर गई और रात्रि भर भांति भांति के केलि महोत्सव से श्रमित श्याम-सुन्दर शयन कर रहे हैं, इतने में ही तमचुर रोर ने प्रातः का सन्देश दिया ...... प्रातः समीरण ने झकझोर दिया और उनींदे से नन्दनन्दन जाग गए । निद्रावसान समय का वह मुख मण्डल रमणीयता से अनुरंजित है, जिसे उषा काल में ही आ, आभीर कुमारियां अपने नयनों में भर किसी अगाध-अनुराग सिन्धु में अवगाहन कर आनन्द मग्न हो जाती हैं । ऐसे ही इन्हें निरखने गई कोई बाला ठगी सी रह गई । नन्दनन्दन सो नहीं रहे थे, कपट शयालु, यों ही नयन मूंदे लेटे थे । ग्वालिनी की आहट सुन आधे नयन खोले । निद्रालस पूरित मद भरे नयन, वह अलसाई मुख श्री और फिर धीरे-धीरे शैय्या पर उठकर बैठना ..... बैठे-बैठे डगमगाना .... फिर कुछ झूमते से उठना .... और ओह ! अब तो गज़ब हो गया, उस भाग्यवती ललना ने देखा ...... देखती रह गई ..... अंगुलियों से अंगुलियां जोड़, दोनों भुजाएं पीछे कर नन्द कुंवर ने अंगड़ाई ली .... । अधमुंदे नयन कोरों से आत्म विस्मृत गोप बाला को देखा ...... नयनों से अनुराग मदिरा छलक उठी ...... अभी तक लबालब भरी हुई थी पर अब वह छलक उठी .... उसे अपने नयन कटोरों में भर वह गोप सुन्दरी मूक हो गई ।

× × ×

यह स्थिति, यह दशा, यह तन्मयता, यह बेसुधि और यह आत्म विह्वलता कभी कभी की नहीं, प्रत्युत रात्रि विहार के यह क्रम गतिमान ही रहते हैं। आज एक भाव मुद्रा ने आन्दोलित किया था, और आज पुनः इसी भाव में भावित हो कहने लगीं :- ''दोनों निशि भर विविध विलास में विमुग्ध विहार-रत रहे हैं, किसी भी प्रकार की तृप्ति नहीं हो पा रही है। सखी ने देखा भोर हो चला पर अभी तक सांवर किशोर अपनी प्रेयसी को संग ले निकुंज मन्दिर के द्वार पर नहीं आए- अन्ततः बात क्या है ? यों तो बात पता ही है पर इस समय अपने नयनों में इस मधु को भरने के लिये आकुल हो उठी वह। लता रन्ध्रों में से झांक कर देखा, अहा ! लाड़िली और लाल 'भुज सों भुज जोरे' कितने भले लग रहे हैं। उस, रत्न पुष्प-पल्लव लता कुंज में दोनों अभी तक एक दूसरे में समाये से बैठे हैं। रात्रि केलि में मग्न से अभी भी अघाए नहीं हैं, अभी भी रस लालसा बनी है। इन नटखट रस पिपासु प्रियतम की कुछ न पूछो, अभी भी उसी रस केलि में विचरण कर रहे हैं।''

❑❑❑

इकत्तीस

श्री गिरिराज दर्शन की उत्कट लालसा

रसमयी अनुभूतियां-

दिव्य तथा प्रकट स्थली और लीला का साम्य

नित्यं विहरति यस्य कुञ्जेषु राधया हरिः ।
किमलभ्यं प्रसादात्तद्दर्शनात् सेवनान्नृणाम् ॥***

श्रीगिरिराज माहात्म्य ८/३

'शैलोऽस्मि' मैं ही गिरिराज हूं, इसकी उद्घोषणा कर श्री कृष्ण चन्द्र ने श्री गिरिराज को गौरवान्वित तो किया ही है, सभी के लिये पूजनीय, सेवनीय तथा वन्दनीय भी बना दिया। भगवान स्वतः उन्हीं में से प्रकट हो गए। जहां श्री गिरिराज, श्री कृष्ण का निजी स्वरूप हैं, वहीं लीला-पात्र भी हैं। इनकी कन्दराओं और निकुञ्जों में श्री कृष्ण अपनी ही आराध्या श्री राधा तथा सखीगण सहित विहार-विलास की, एकान्तिक रसविहार की लीलाओं का समायोजन करते हैं। श्री कृष्ण की गोचारण लीला के लिये तो उपयोगी है ही, साथ-साथ दान, मान और रार-तकरार की अनेक लीलाएँ सहज और स्वतः यहां प्रकट होती हैं। उन्हीं दिव्य तथा चिन्मय लीलाओं के दर्शन-आस्वादनार्थ संतजन, भक्तजन इनका सेवन करते हैं और यह कल्पवृक्ष के समान अपने शरणागतों के सभी प्रकार से सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। श्री हरिदासवर्य, हरिदासों में, भक्तों में मुकुट मणि के समान शोभायमान होते हैं।

पूजनीया बोबो प्रिया-प्रियतम की सरस लीलाओं का आस्वादन करतीं, वृन्दावन की सुभग स्थलियों में निवास कर रही थीं। इन्हीं दिनों श्री गिरिराज दर्शन करने को मन हुआ तथा कुछ बहनों सहित श्री गिरिराज पधारीं। साथ में थीं श्री रमादेवी, श्री सुशीला जी, श्री दर्शन, उमा, उर्मिला, तृप्ता, कपूर, सुमित्रा, सरोज, विमला कपूर, काकी, नारंग, पुष्पा प्रभृति अन्य बहनें।

*** जिन (श्री गिरिराज) की निकुञ्जों में श्री राधिका के साथ श्री कृष्ण चन्द्र नित्य विहार करते हैं, ऐसे श्री गिरिराज के दर्शन तथा भक्तिपूर्वक सेवन करने से, उनकी प्रसन्नता से मनुष्य के लिये कौन सी वस्तु अलभ्य है।

श्री गिरिराज जी की रमणीयता, मनोरमता की तो कोई सीमा ही नहीं है। परिक्रमा का सुख लेतीं, वहां की स्थलियों में विचरण करतीं, वृक्षों और वल्लरियों की मनोरमता निहारतीं, आनन्द में मग्न, सभी सुखास्वादन में रत रहीं। अष्टछाप के अनेक पदों को सुन पू० बोबो मग्न हो जातीं। वहां की स्थलियों से सम्बन्धित लीलाओं का आस्वादन कर विभोर हो जातीं। इन्हीं श्यामल-गौर सुचिक्कण शिलाओं पर श्रीनाथ जी की अनेक लीलाओं का स्मरण कर आह्लाद में भर जातीं।

परिक्रमा मार्ग में कभी गोविन्द कुण्ड की रमणीयता में विमुग्ध हो जातीं-और दूर से लहराती श्रीनाथ जी के मन्दिर की पताका की लहरान में खो जाता उनका आतुर हृदय। जतीपुरा में परिक्रमा की एक ओर, श्री चतुर्भुज दासजी की निवास स्थली, उसके पास की वृक्षावली मध्य पू० बोबो के साथ बैठी यह सखी मण्डली पद गान सुनने में मग्न थी। पूज्य बोबो भी पदगान सुन रही थीं। सुनते-सुनते इनकी वृत्ति इस जगत से उठ गई। वहीं बैठी जहां एक ओर पद सुनती रहीं, वहीं अपने इन्हीं नेत्रों से निहार, लीला में तन्मय हो गईं। इन्होंने देखा :

"उसी रमणीय स्थली पर अपने आहार की खोज में मग्न एक मयूर चला आ रहा है। वह मयूर तो सभी को दीख रहा था, परन्तु पू० बोबो को उस सौभाग्य-शाली मयूर के साथ-साथ नुपुरों की छम-छम ध्वनि भी सुनाई दे रही थी। अभी वह शिञ्जन अपने मधुर स्वर सहित कर्णों को ही सुख प्रदान कर रहा था और यह लो। उसी के साथ सामने ही आसमानी लहंगा पहने, (चौड़ा-चौड़ा काम था उस लहंगे पर,) शीश पर दुपट्टा ओढ़े उसके दोनों छोर अपनी कंचुकी के अग्रभाग में उरसे प्रियाजी चली आ रही हैं। दुपट्टा फहरा रहा है। एक शिला से दूसरी शिला पर बड़ी ही स्वाभाविक मुद्रा में अपने चरण रखती किशोरी श्री राधा, अपनी गौरारुण हथेली पर दाने धरे उस सौभाग्यशाली मयूर के आगे-आगे चली आ रही हैं। कभी एक शिला पर दाने रखती हैं तो कभी दूसरी पर। दाने खाने में वह मयूर कई बार पीछे रह जाता तथा किशोरी उसकी प्रतीक्षा करने लगतीं। अपने सुन्दर-सुन्दर पङ्खों को हिलाता, सुन्दर सा वह केकी त्वरित गति से प्रियाजी के समीप जा उनकी भांवरें भरने लगता, पुनः दाने खाने लगता। कभी प्रियाजी उस पर अपना कर फिरातीं। उनसे लगा उनकी सन्निधि सुख में मग्न सा कभी उनका संस्पर्श पाने की लालसावश प्रियाजी के अत्यधिक समीप चला जाता। वे अपने लाड़ भरे स्पर्श से उसे और-और पुलकित कर देतीं।

प्रिया जी एक तमाल वृक्ष की टेक लगा, अपनी दोनों भुजा ऊपर उठा, उसे पकड़कर खड़ी हो गईं। उस समय की मदोच्छलनकारी वह शोभा ..... । अलबेली अदा से खड़ी प्रियाजी, अत्यन्त सुन्दर लग रही हैं। वह वृक्ष वहां सचमुच विद्यमान है।

श्याम सुन्दर ने देखी प्रियाजी की वह मुग्धकारी छवि। पीछे से आ उन्होंने प्रियाजी के दोनों कर कमल थाम लिये और उनकी दांई ओर उनसे सटकर खड़े हो गए। श्री राधा सम्भ्रम से चौंक उठीं। तत्क्षण उस संस्पर्श को पहचान, पुलकित हो गईं। उस समय की प्रिया जी की मधुर मुस्कान छटा, अधरों की अरुणिमा, किञ्चित् विकसित अरुण अधरों में से दीप्तिमान दन्त मुक्तावली .... प्रियतम ने बाईं भुजा से प्रियाजी की कटि को .... रसं की वह अनगिन बौछारें।

कुछ समय बाद सम्हल कर प्रियतम ने अपना दायां कर कमल श्री राधा के बाऐं कर कमल से जोड़ लिया और पुन: दोनों मिलकर उस मयूर को दाना खिलाने लगे। नीलारूण गौरारूण कर सरोरुहों की यह शोभा !

इसे देख पू० बोबो मग्न हो तन्मय होती रहीं।

इसी प्रकार एक अन्य प्रसङ्ग में, श्री सुशीला बहन जी, बहन दर्शन, उमा, उत्तमा तथा विजय साथ थे। श्री गिरिराज की सघन निकुञ्जों में विराजित हो श्री हरि लीला कथा कह रही थीं। सहसा पूज्या बोबो ने दर्शन बहन से पद सुनाने को कहा। वे गाने लगीं 'छांड़ो डगर मोरि बैयां गहो ना' पूज्या बोबो ने सामने देखा :

'अलबेला शृङ्गार किये, शीश पर पाग बांधे गोचारण हेतु आए प्रियतम, एक शिला पर लकुटी टिका, उस पर बलखाए, उसी के सहारे खड़े, मुस्करा रहे हैं। जब यह पंक्ति गाई 'रीत छांड अनरीत करो ना' तो अपना दायां चरण शिला पर धम्म से जमा, मुस्कराते हुए बोले, ''करूंगा-करूंगा-करूंगा'' यह सुन पू० बोबो तो मुस्कराती रहीं- इससे कुछ-कुछ अनुमान लगा- इनसे आग्रह पूर्वक पूछा तो उन्होंने सारी बात सुनाई।

ऐसी थीं पूजनीया बोबो की रसीली अनुभूतियां। उनके जीवन में, लीलाओं और उनके विचारों में इतना तादात्म्य था- कि उनका प्रत्येक क्षण प्रिया-प्रियतम की लीलाओं से जुड़ा था तथा उनका प्रत्येक विचार लीला की साक्षात् अनुभूति से अनुस्यूत था। नित्य लीला और प्रकट

लीला को उन्होंने कहीं भी अलग नहीं माना। वृन्दावन के प्रति भी उनकी धारणा इसी प्रकार की रही। नित्य धाम ही इस भूतल पर प्रकट होकर, भौतिक चक्षु-गोचर वृन्दावन में इतना अधिक ओत-प्रोत हो जाता है कि वहां की और यहां की लीलाओं में, प्रकृति में, स्थलियों में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। वही स्थली, वही पात्र, वही वन्य विहग, खग- मृग इतनी समीपता से इसी भौतिक चक्षु-गोचर होती स्थली में समाविष्ट हो जाते हैं कि उसकी स्थिति नित्य लीला में तो रहती ही है- यहां के उपकरणों से मिल, वहां की अनुभूति भी करा देती है। वस्तुतः वह सब एक ही है- केवल हमारे नेत्रों की भौतिक पहुँच के कारण दो भिन्न-भिन्न दीखते हैं। चाहिये केवल यही कि हमारी दृष्टि उस अलौकिक वस्तु को देखने के लिये समर्थ हो जाए। इसी देह से वहां और यहां, एक ही समय में दोनों स्थलियों पर स्थिति अथवा दोनों स्थलियों का परस्पर ऐक्य सदा बना रहे- एक ही समय में, वहां का और वहां पर यहां का समन्वय दिखलाने की क्षमता भौतिक दृष्टिगोचर वृन्दावन में सर्वथा बनी रहती है।

❑❑❑

बत्तीस — श्रीकृष्ण प्रेरणा से मौन-लीलानुभूतियां

कर कमल दल कलित ललित तर वंशी-
कल निनद गलदमृत घन सरसि देवे।
सहजरस भर भरित दर हसित वीथी-
सतत वहदधरमणि मधुरिमणि लीये ॥ १ ***

श्रीकृष्ण कर्णामृत /५२

अहा..... ऐसा अपूर्व सौन्दर्य-माधुर्य किसे न अपने रस प्रवाह से सींच आत्म विस्मृत कर देगा। यह विस्मृति, यह बाह्य जगत से अपने को समेट अन्तर्मुखी हो जाने की प्रबल लालसा, बाह्य परिप्रेक्ष्य और बाह्य स्थिति से आन्तरिक तथा लीला जगत में प्रवेश प्रिया-प्रियतम के अनुग्रह का ही फल है। यह विस्मृति किसी प्रकार से भी शान्त रस की प्रतीक नहीं है- यह है प्रिया-प्रियतम की अगाध अनुक्षण प्राप्त कृपा-ममता को पाकर और और प्राप्त करने की, और-और अन्तरंग तथा अन्तरङ्गतम लीला जगत में प्रवेश कर अधिकाधिक प्राप्ति की कामना। बाह्य दृष्टि से इसका रूप अवश्य ही शान्त प्रकृति का द्योतक भासता है परन्तु अन्दर हृदय में उठा ज्वार-भाटा उसे शान्त रहने नहीं देता। मौन अथवा जगत के प्रति एक प्रकार की उपरामता सहज और स्वाभाविक रूप से प्रिया-प्रियतम की सतत सन्निधि की चाह उसमें उत्तरोत्तर गहराई की मांग, और अधिकाधिक प्राप्ति की मांग निहित रहती है यह सर्वथा अतृप्ति का द्योतक है, अधिकाधिक की कामना का प्रतीक। प्राप्ति का सुख एक प्राप्त जन का ही सहज अधिकार है। इसमें उसका अभिनिवेश है- अतः उस सुख को, उस परम सौभाग्य को वही जान सकता है। वही जानता है, जिसे प्राप्त हुआ है। उसी प्राप्तव्य की सतत पिपासा प्रदान कर प्रिया-प्रियतम अपने जनों को अनुगृहीत करते हैं।

पूजनीया बोबो का मन एकान्त के लिये निरन्तर लालायित रहता। प्रिया-प्रियतम की सतत सन्निधि में रहने की उनकी प्रबल इच्छा के

*** जो अपने कमलदल सदृश करों में वंशी लेकर अति ललित तथा मधुर निनाद कर रहे हैं, उससे एक अमृत का सरोवर ही निर्मित हो गया है, सहज रस भरी मुस्कान से जिनके अधर निरन्तर रंजित रहते हैं, उन श्री कृष्ण देव की माधुरी में मेरा मन लीन हो रहा है।

पीछे कोई भी इतर कारण न था– केवल आध्यात्मिकता ही इसके मूल में थी– अत: भगवान के श्री मुख की वाणी से प्रेरित :

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १ ***

गीता ८/१४

यह अनन्य चित्त क्या है भला ? सम्पूर्ण रूपेण अपनी सभी वृत्तियों को केन्द्रित कर श्री कृष्ण के चरणों में रति, अहर्निश प्रिया–प्रियतम की लीला–कथा चिन्तन जब सहज वृत्ति बन जाए, स्वभाव में आ जाए तभी वे महज्जन 'नित्ययुक्त' की स्थिति को प्राप्त करते हैं । स्वतंत्र रूप से उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। उन्हीं का सतत स्मरण–चिन्तन उनके जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है । इन्हीं राग भरे भावों में भरी पूज्या बोबो के मन की स्थिति सहज हो गई । स्वतंत्र रूप से उनके जीवन में कोई संकल्प विकल्प उठे ही नहीं । प्रिया प्रियतम की इच्छा जान, उन्हीं से मिले संकेत वश, उन्हीं की प्रसन्नता में प्रसन्न रहकर ही उन्होंने सदैव अपना जीवन व्यतीत किया । आज भी प्रिया–प्रियतम की इच्छा जान उनका मन चुप होता चला गया । यद्यपि प्रिया–प्रियतम की सतत बरसती कृपा ममता से उनका जीवन सरस तथा पूर्ण था, तथापि मन की सतत सन्निधि की भावना, उसमें किञ्चित् अभाव के कारण उन्होंने अपनी मनोदशा किञ्चित् अभिव्यक्त की । प्रियाजी से अनुनय करतीं वे एक स्थान पर कहती हैं :-

हे राधे ! रस-सार-विग्रहे, श्याम प्रेम साकार ।
वेगि मिलावहु स्वामिनी, जीवन प्राणाधार ॥
कब करिहो ममतापगी, चितवन मेरी ओर ।
जो मोतन हंसि हेरिहैं, रीझ रसिक चितचोर ॥
तुम जानहु मन की सभी, एक तुम्हारी आस ।
कब फलिहै कब फूलिहै, मेरी मन अभिलाष ॥

सतत पिपासा पूर्ण मांग की उनकी धारा केवल मांग ही नहीं रही । हर पल, हर क्षण उसका रस पगा स्वागत–सत्कार हुआ, और पू० बोबो उस सत्कार से सर्वदा धन्या होती रहीं, फिर भी हृदय की यह टीस, हृदय की अनवरत मांग का स्वरूप प्रतिक्षण बदलता रहा, उस मांग में

*** हे अर्जुन ! जो पुरुष मुझ में अनन्य चित्त होकर नित्य निरन्तर मुझको स्मरण करता है उस निरन्तर मुझमें लगे हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ ।

अधिकाधिक गहराई का समावेश होता गया। उत्तरोत्तर विकसित होती उनकी रसमयी लालसा, अनेकानेक संचारी भावों के मिस प्रवाहित, कभी-कभी स्थायी भाव का सा स्वरूप धारण कर अधिकाधिक विकलता में परिणत हो किञ्चित् गहराई में उतरती गई। इसी सरसीली मांग को दोहराती वे पुनः कहने लगीं :-

ब्रज वनिता मन मोदकर, नितनव प्रेम विभोर।
युगल चन्द्र रस प्यावहु, नयननि तृषित चकोर ॥
सरसावहु मन-प्राण दृग, बरसावहु रस रंग।
अंग संग लगि डोलहुँ, भरि नित नवल उमंग ॥

इनकी मांग में एक सुरस चाह थी, वह चाह प्रिया-प्रियतम की सतत सन्निधि पाकर ही शान्त हो सकती थी। साथ ही उस रसमयी स्थिति का आस्वादन करने की प्रबल लालसा थी।

कभी प्रियतम से अपने हृदय की कह, सरस याचना करतीं और कभी प्रियाजी की असीम अनुकम्पा, उनके मृदुल स्वभाव की स्मृति करा, रस याचना करतीं और कभी दोनों से ही अपने मन की कह-निवेदन करती रहतीं :-

मधुर रसीले मद-भरे, ब्रज सुन्दर सुकुमार।
श्री राधा संग करहु नित मम उर विपिन विहार ॥

जहां मांग की चरम सीमा है, वहीं, उसी क्षण क्रीड़ारत युगल रस बावरों को निहार, रस में मग्न हो कह उठती हैं। यह रस बावरे युगल रिझवार, कालिन्दी तटवर्ती किसी सघन निकुञ्ज में एकान्तिक विहार-विलास-केलि में मग्न उनके दृष्टिगोचर हो गए। अतः उनके हृदय की पुलकन-प्रकट हो गई निम्न शब्दों में :-

सुरभित-शीतल-श्यामला-कालिन्दी के कूल।
श्रीवन कुञ्ज निकुञ्ज यह विहँसि रहे दो फूल ॥
आज सखी अति भोर में देखे युगल किशोर।
पुनि पुनि रस-क्रीड़ा करें, माते प्रणय झकोर ॥

इन्हीं दिनों पूज्या बोबो का मन मौन होने को विकल हो उठा। मन की स्थिति धीरे-धीरे ऐसी बनती ही जा रही थी। सौभाग्य से पूज्या सुशीला बहन जी इन दिनों इन्हीं के पास रह रही थीं। वे भी स्थायी रूप से

वृन्दावन वास करने चली आई थीं। इनकी पारस्परिक आत्मीयता के विषय में अलग से कुछ कह कर इस अपनत्व संबंध को हल्का करना होगा- उस अभिव्यक्ति के लिये शब्दों का अभाव रहेगा। एक ही भाव धारा, एक ही लक्ष्य, एक ही प्रेष्ठ, तथा एक ही पथ की पथिक; अलग-अलग दो वपु होने पर भी, मन सदैव एक ही रहा है। पूज्या बोबो सदा कहा करती थीं, ''मेरी और इनकी (पू० शीला बहन जी) एक ही बात है, अलग अलग दो शरीर होने पर भी कोई भिन्नता नहीं है।'' पारस्परिक ऐक्य का ऐसा दुर्लभ उदाहरण असम्भव ही है। पूज्या बोबो मौन अवश्य हो गई थीं, परन्तु समय-समय पर पू. शीला बहन जी से किसी विशेष कार्य वश (केवल आध्यात्मिक) बोल लिया करती थीं।

पू० सुशीला बहन जी पूर्ण सजगता से इनके मौन में सहायक रहीं। उनके अनिवार्य कृत्यों को अपनी दिनचर्यावश करती ही थीं, इसके अतिरिक्त पू० बोबो के मन की अनेक बातें वे संकेत मात्र से अथवा अनुमान से जान लिया करतीं। पू० बोबो द्वारा बतलाई गईं अथवा संकेत कर दिखलाई गईं उनकी सरस अनुभूतियों को, श्यामा-श्याम से मिले रस पगे आश्वासनों को, उनकी लीलाओं को, सखियों की सरस अनुभूतियों को यत्किञ्चित्। लिख, संग्रह करने का प्रयास पू० शीला बहन जी ने अवश्य किया। वही सब हस्तलिखित संग्रह, पू० बोबो के जीवन का स्वर्णिम समय, सभी बहन भाइयों के लिये सुलभ हो सका। उन संग्रहीत अनुभवों को यथावत्, यथा-प्रसङ्ग तथा यथा-समय प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य मैं करता रहूँगा।

पूजनीया बोबो का जीवन एक अनबूझ पहेली के रूप में ही सबके सामने बना रहा। उन्होंने अपने आप को इतना अधिक समेट कर रखा, इतना अधिक छिपा कर रखा कि न तो किसी को उनके व्यक्तित्व की कल्पना ही हो पाई और न इसके विषय में किसी को कुछ जिज्ञासा ही हुई। साधारणत: वे किसी को भी अधिक मिलने और बोलने को प्रोत्साहन न देती थीं। कुछ महानुभाव जो इनके सम्पर्क में आए, उनकी गम्यता उनके सहज जीवन में तो अवश्य हो सकी, इसके अतिरिक्त उनके वैयक्तिक और आध्यात्मिक जीवन के विषय में वे भी यत्किञ्चित् ही समझ सके, क्योंकि उन्होंने अपने आपको इतनी सहज और साधारणत: उपलब्ध और प्रस्तुत किया कि वे लोग उनकी वास्तविकता से सर्वथा अनभिज्ञ से ही बने रहे। अध्यात्म के नाते एक आत्मीयता विशेष होने पर भी, उनके विषय में कोई

उन्हें जान ही न सका। श्यामा-श्याम से उनका अत्यन्त समीप का सम्बन्ध सतत बना था, निरन्तर का था। उसके विषय में जानने की तो क्या कहूं, अनुमान भी नहीं हो सका। उनकी गद्य और पद्य के रूप में प्रकट हुई अनुभूति के आधार पर ही मैं, यत्किञ्चित् अभिव्यक्त करने की बाल-चापल्यवत् चेष्टा अवश्य कर रहा हूँ।

पूजनीया बोबो के मन की दशा विचित्र ही रहने लगी। वे प्रायः मूक, मौन ही रहतीं। अनेक बार उनके उर का आह्लाद किसी उमंग विशेष में भर छलकने लगता और कभी-कभी विशेष भाव में भर, अधिक गम्भीर हो जातीं, कभी वसन्त में प्रफुल्लित रागानुराग से भरी प्रकृति की उत्फुल्लता में अपने मन का तादात्म्य कर वसन्त की, वसन्त विहार की बात कहतीं :-

विचरहिं कुञ्ज निकुञ्ज में, किये नवल शृङ्गार।
सखि जन मण्डित युगल वर, करहिं वसन्त विहार॥
कबहुं करहिं परिहास कछु, कबहुं करहिं कल गान।
कबहुं पुष्प बरसावहीं, प्रणय विदग्ध सुजान॥

अहा ! कुञ्ज-निकुञ्जों में नवल शृङ्गार मण्डित प्रिया-प्रियतम अपनी अनन्या ब्रज की इन भोली-भाली बालाओं सहित विचर-विहर रहे हैं। वसन्त के उन्माद से प्रकृति प्रफुल्लित हो रही है। पुष्पों से पराग संचित कर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। सिहर सिहर कर लताऐं पुष्प वर्षा कर रही हैं, वृक्षों पर छाया उन्माद चतुर्दिक अपनी विजय दुन्दुभी बजा मग्न हो रहा है। कहीं अपनी प्रियाओं पर पुष्पों की वर्षा कर रसिक सुजान प्रियतम आनन्द में भर प्रफुल्लित हो रहे हैं, तो कहीं उच्च स्वर में सरगम का अलाप ले, प्रफुल्लित हो रहे हैं। कहीं यह वन्य स्थली हास-परिहास से मुखरित हो रही है। कहीं अपनी जादू भरी बंक अवलोकन से, मन का बरबस ही अपहरण करने वाले मोहक हास से, बंकिम भृकुटि विलास से, और यह लो ! होली की प्रथम भेंट स्वरूप झोली भरे, हाथ में अबीर-गुलाल से अनुरंजित हो, वृन्दाविपिन में ब्रज बालाओं सहित, नन्दलाल विचरण कर रहे हैं। नयनों से रस छलक रहा है तथा उर में अनुराग छलका पड़ रहा है और "बैननि छलकत नेह रस, नियरे आयो फाग" ओह ! वसन्त का यह राग इन ब्रज बालाओं में फाग का अनुराग बन छलका पड़ रहा है।

और लो ! वसन्त का यह उन्माद फाग में सरसता बन बिखर गया और पूजनीया बोबो ने देखा श्री यमुना के सुभग तट पर हाथ में

गुलाल लिये धूम मचाते नन्द नन्दन को, उस छवि का पान कर प्रफुल्लित हो गा उठीं :-

हाट बाट पनघट विपिन, तरणी तनूजा तीर ।
धूम मचावत सांवरो, लिये गुलाल अबीर ॥
सखी ! श्याम सुन्दर रसिक, धूम करहिं दिन रात ।
काहू को झकझोरहीं, काहु छुवावहीं गात ॥

× × ×

नवल भाव में भरे श्याम सुन्दर, रस विलास में भर इठला रहे हैं । उन्होंने किसी विशेष भाव में भर सुरस याचना वश मेरी ओर देखा। उनकी यह रसीली चितवन .... देखा भर नहीं, देख कर किञ्चित् मुस्करा भी दिये । अधरों की किञ्चित् विकसन में दमकती दन्त शोभा । बस उनकी इस चितवन से मन अकुला उठा । किसी सुरस कामना वश हृदय मचल उठा। ऐसे सुरम्य समय में हृदय में उठी अनंग हिलोरों को रोकना किसके वश की बात है भला ?

वे मोतन झुकि झांकहीं, नयनन भरे निहोर ।
तब रोके हूं न रुके, उठत अनंग हिलोर ॥
अद्भुत तान तरंग सों, करत मनोभव गान ।
तब पन छूटे ही बने, बिसरि जात कुल कान ॥

× × ×

नवोल्लास में भरी पू० बोबो जहां एक ओर अपनी उत्फुल्लता को सीमाबद्ध करने में विफल हो रही हैं, वहीं उसी स्मृति में अपना दैन्य निवेदन कर अपने मन की विकलता की अभिव्यक्ति करती हुई कहती हैं तथा अपनी पूर्व-स्मृति से आलोड़ित हो, उसी कामनावश प्रणय पगा उपालम्भ देती हैं :-

मौन हुई है उर की पुलकन,
अब न कण्ठ में गीत रहे हैं ।
नित्य नए संकेत कहां अब,
राग-पगा सम्वाद कहां है ?
कहां उमंगे हैं अब वैसी
अब वैसा उन्माद कहां है ?

इधर व्याकुलता की बात कह अपने उद्गार व्यक्त कर रही हैं परन्तु असमर्थता व्यक्त करती उनकी एक ही सरस चाह है। "तत्सुखे सुखी" भावापन्न, पू० बोबो प्रिय से मिलने की सुरस चाह और अपनी विवशता का अद्भुत सम्मिश्रण कर कहती हैं :-

लाख प्रण कर लूं, मगर मैं दूर रह सकती नहीं।
दूर रहना तो अलग, यह बात सह सकती नहीं॥

"अपनी सम्पूर्ण वृत्तियों को केन्द्रित कर मैं श्याम सुन्दर की शरण में हूं, वे चाहे जैसे रखें- उसी में सुखी हू" :-

पहले तो अति लाड़ सों, सरसाये मन प्राण।
हे सुजान चूड़ामणि, अब क्यों रहत अजान॥
मन धीरज धरता नहीं, समझाऊं सौ बार।
शान्त करो तुम स्वयं ही, करिकै रस बौछार॥

यही नहीं अभी भी पूर्व की सरस अनुभूतियों का स्मरण कर उनके मन में अभाव विशेष की प्रतीति हो रही है। अतः-

पहले तो रखते रहे, निशिदिन कर की छांह।
अब ऐसा क्या हो गया, जो खींची निज बांह॥
पहले हो जाता कभी, मन यदि तनिक उदास।
हँसते, मुस्काते तुरत, आ जाते थे पास॥
बात तुम्हारी हो कहीं, भरि आवें मन नैन।
प्राण विकल हो हो उठें, चला जाय सब चैन॥
तुम जो चाहो सो करो, तुम पर क्या प्रतिबन्ध।
समझाऊं सुनता नहीं, मोह ग्रस्त मन अन्ध॥

अपने हृदय की उमड़न, हास की रसीली तरंग, ओह! सभी ने तो उद्वेलित सा कर रखा है। किसी भी भांति से मन में चैन नहीं हो पा रहा नाथ! पहले किस बात पर रीझ तुमने मेरी सभी भावनाओं का स्वागत, सत्कार तथा दुलार किया था, अब प्रवंचना क्यों? मेरा अंग-अंग, मन-प्राण विकल रहते हैं, मेरे अपनेपन को आज तक किसी भी प्रकार की ठेस न लगी थी। तुम्हारे लाड़ और प्यार में मेरा जीवन पला था।" यह सब निवेदन कर मन में प्रफुल्लता भर गई और लो! सामने ही वह मधुर मूरति प्रकट हो गई, "मन्द मन्द गति से अपने भवन से मेरी ही ओर श्याम-सुन्दर चले आ रहे हैं। अहा! मेरी आशा पुष्पित सी फलीभूत हो उठी।" उनका मन प्रसन्न हो गया।

चपल नयन चितवन चपल, मुख मुस्कानि अमन्द ।
झूमत आवत भवन ते, मोहन मत्त गयन्द ॥
फटा अरुण पट कर लिये, देख सखिन्ह की ओर ।
एक सखी पर फेंकि पट, हँसे रसिक चित चोर ॥
सखि हंसि बोली काह यह, हे नागर सुकुमार ।
और हँसे हँसकर कहा, होली का उपहार ॥

आशा-अभिलाषा सफल हो गई। होली के राग-रंग में भरे श्याम सुन्दर ने अपने पटके का फटा छोर फेंका और होली का उपहार प्रदान कर, अपना सामीप्य प्रदान किया। व्याकुलता में आश्वासन प्रदान कर रस मग्न कर दिया। इन्हीं भावों में मग्न हो उठीं पूजनीया बोबो :-

बरसत रंग रूप रस बरसत, बरसत हिय को नेह ।
मंदन तरंगनि अन्तर भीजत, रंगनि भीजत देह ॥

इन्हीं दिनों श्याम सुन्दर ने प्रणय पगा आश्वासन दिया कि 'इस बार के मदनोत्सव में तुम सम्मिलित होवोगी।' मदनोत्सव में कन्दर्प कलशों से अर्चना होती है : इसी भाव में भर एक स्थान पर स्मृति करा रही है :-

पहले तुम कहते रहे, मदनोत्सव की बात ।
फिर दिन होली फाग के, क्यों नीरस से जात ॥

× × ×

यह मदनोत्सव क्या था ? इसकी अनुभूति इन्हें कैसे और किस प्रकार हुई ? कितनी लीलाओं का इस भाव में संयोजन हुआ इस सरस अनुभूति का सविस्तार वर्णन हम इसी पुस्तक के अनुभूति भाग में करेंगे।

हां ! तो अपने में केन्द्रित, भाव निमग्रा पूजनीया बोबो की वृत्ति आजकल बहुत ही सिमटी-सिमटी रहने लगी। उनकी प्रत्येक क्रिया एक विशेषता से संयुक्त हो गई। कई बार अत्यन्त गहराई में उतर इनका मन शून्य में चला जाता। और अनेक बार इनके आह्लाद का ओर छोर पाना कठिन लगता, कभी हँसतीं, कभी मौन हो एकटक देखती रहतीं, अनेक बार तन्मयता की प्रगाढ़ता में जा इनका शरीर निश्चेष्ट सा हो जाता- ऐसे समय में पास के अन्य लोगों के पास कोई उपचार का अन्य साधन तो था ही नहीं- केवल भगवन्नाम का आश्रय ले शान्त चित्त उनकी इस स्थिति को, इन मुद्राओं को

देखते रहते। अनेक बार इनकी स्फूर्ति देखते ही बनती। इन्हीं दिनों इन्होंने देखा अस्त-व्यस्त सा पीताम्बर तथा लटपटी पाग धारण किये, ब्रज-वासियों का सौभाग्य ही प्रत्यक्ष रूप में कुंज-कुंज में गली-गली में विलस रहा है, और वे गा उठीं :-

पीताम्बर ढुरक्यो परै, सीस लटपटी पाग ।
गली गली विलसत फिरै, ब्रज वासिन्ह को भाग ॥

वातावरण में उन्माद भर और-और उन्मादित करती समीरण ने वसन्त ऋतु के यौवन को सरसा दिया। फाग के दिवसों में रसीली रंगीली चेष्टाओं के मिस हृदय का अनुराग छलक-छलक कर प्रकृति को तो सींचता ही रहा, इन बावरियों के उर अन्तर में सरसता भर उन्हें व्याकुल करता रहा। इसी व्याकुलता से आतुरमना यह बालाऐं, रस रंग की कामना वश, चंचल नेत्रों से आतुर हृदय से, श्याम-सुजान का अता-पता खोजती आह्लादित और उन्मादित सी यत्र-तत्र विचरण करती रहीं।

और लो ! कोकिला ने अपनी उन्मद रसीली ध्वनि से गुंजा दिया इस सुभग-स्थली को। वसन्तोन्माद में भर बौरा गई। उसका वह बौराया पन, यावत् प्रकृति में व्याप्त हो गया। तरु-वल्लरियों पर नवोदित पल्लवों में, पुष्पों में भरे पराग में, उन पर मंडराते अलिकुल समूह में वास ले कुसुमाकर ने अपनी दुंदुभी बजा दी- स्मरशरों से विद्ध ब्रज रमणी हृदय व्याकुल हो गए। अन्तर का अनुराग प्रकट होने लगा। बेकली वश विवश हो घर से निकल पड़ीं।

पूजनीया बोबो ने देखी तमाच्छन्न नव लता कुञ्ज में विलसित गौर-श्याम छवि। ओह ! मनहर नील पुञ्ज तथा गौर मुख छवि एक ही संग इस लता सदन में विराजमान हैं। किसी रस विशेष में मग्न हो रहे हैं। माधुर्य की इस अथाह श्यामल राशि का अता-पता ढूंढती गौरारुण छवि, मधुर रस में तरंगायमान है। यह तरंगें अनवरत गतिमान हैं। विश्राम का आश्रय लिया श्रम ने और किञ्चित् विश्राम पा पुनः स्फूर्ति में भर गया। सरिता का सिन्धु की ओर अग्रसर होना सर्वथा स्वाभाविक था परन्तु आज आश्चर्य, परम आश्चर्य, सिन्धु ही अपनी सभी मर्यादाओं को तोड़, रस सरिता की ओर उन्मुख हो, उसी से सरस याचना करने लगा। अहा ! प्रिया-प्रियतम का रसमय विहार, अपलक रूप रस पान करती प्रियतम की मत्त अवलोकन; यही नहीं, उसमें अतृप्ति का समावेश होता गया, अनवरत छवि पान करने की लालसा वश श्याम सुन्दर का हृदय उमड़ पड़ा।

भरि नयन निहारो एक बार,
तनिक देर होने दो सुन्दरी-
नयननि का नयनन सों विहार ।
भरिनयन निहारो एक बार ॥

श्याम-सुन्दर प्रियाजी से विनय कर रहे हैं, "जब-तब व्यर्थ ही मदन, शर-सन्धान कर हमें विवश परवश कर दिया करता है । तुम जानती ही हो । इसने कभी भी किसी के प्रति हित का प्रदर्शन नहीं किया। ओह ! इसके अनेक इस प्रकार के रस प्रहारों को हमने भी सहर्ष सहन किया है ।" प्रिया जी की अनुरूप स्वीकृति पा श्यामसुन्दर की प्रसन्नता का पारावार न रहा । दोनों के ही उर की अपार उमगन सभी बन्धनों को छिन्न-भिन्न करती प्रवाहित हो गई । दोनों ही परस्पर श‍ृङ्गार हो अलंकारों से सुशोभित होने लगे।

यह मन मुग्धकारी लीला विहार ! किस का मन धीरज धारण किये रह सकता है भला ? इस रूप रस ठगौरी ने जादू सा कर दिया, और रस में भरी पूजनीया बोबो मग्न हो गईं ।

× × ×

इन्हीं दिनों की बात है, पूजनीया बोबो संकीर्तन के पश्चात् सुबह को कुछ समय एकान्त के लिये लेट जाया करती थीं । इस प्रकार का अभ्यास बहुत पहले से ही बना था । यह विश्राम करने का हेतु न होकर प्रिया-प्रियतम की लीला माधुरी का आस्वादन ही था । वहीं लेटे लेटे इनके सम्मुख एक लीला दृश्य-मूर्त हो गया ।

"इन्होंने देखा, एक विशाल प्राङ्गण में कदम्ब का एक घना वृक्ष है । पुष्पों तथा पल्लवों से आच्छादित है । पुष्पों की सौरभ सम्पूर्ण स्थली में व्याप्त हो रही है । पक्षियों का कलरव अत्यन्त सुहावना लग रहा है । मेघ गरजन सुन कभी कभी केकी समूह उल्लास में भर मुखरित हो उस स्थली की नीरवता को सरसा देते हैं । प्रिया-प्रियतम रस विभोर हो रहे हैं। श्याम-सुन्दर रस में भरे शिथिल से हो रहे हैं । अपने को सम्हाल पाने में असमर्थ श्याम-सुन्दर ने प्रिया के स्कन्ध पर अपना सुभग शीश टिका रखा है । श्याम-सुन्दर का मुख सामने न होने के कारण ठीक से नहीं दीख रहा। प्रियाजी भी प्रियतम की ऐसी रस दशा को देख विह्वल होती जा रही हैं । उन्होंने अपनी एक सुकोमल गौर बाहु से श्याम सुन्दर को आश्रय प्रदान कर रखा है तथा दूसरे कर कञ्ज से प्रियतम का श्रम निवारण कर रही हैं । प्रियाजी की

यह रस दशा उनके सुगौर मुख-मण्डल पर झलक रही है । दोनों के मुख मण्डल सरस तथा पुलकित हो रहे हैं- और :

दोनों दोनों के वश वर्ती, दोनों दोनों के अलंकार ॥

× × ×

इन्हीं दिनों की बात है, श्याम सुन्दर प्रिया जी को निकट बुला उनका पाणिपङ्कज अपने कर में ले उस पर रस वर्षण कर, ऊपर की ओर मुख किये प्रियाजी को ऊपर देखने का संकेत कर रहे हैं । श्यामल घटाओं ने समस्त प्रकृति को आच्छादित कर रखा है, उन्हें दिखलाते हुए बोले, "हे प्रिये, तनिक बात तो सुनो ! मेघ कह क्या रहे हैं ? दामिनी को अपने अंक में भरे इनकी नवीन माधुरी का आस्वादन तो करो । हे रंगिणी ! हृदय में उठी प्रणय घटाऐं जब उमड़ने लगें तो धीरज धारण करना कैसे सम्भव है भला? हे प्रिये ! इस बात का कुछ तो उत्तर दो । प्रियाजी यह रस विह्वल वाणी सुन क्षण भर को भी धीरज न धर सकीं"

मृदु रसपूरित नयन उठाए,
कर सों कर गहि पास बुलाए ।
हृदय लागि बोले स्मर सुन्दर,
रंगिणी ! कौन सम्हारे तुम बिनु ।
इस मन की उमगन अति दूभर,
प्रिये ज़रा देखो तो ऊपर ।

× × ×

प्रियाजी को सम्बोधन करते पूज्या बोबो बोलीं, 'हे स्वामिनी ! तुम तो रंगिणी हो तथा श्याम-सुन्दर उसी रंग से सदा-सदा अनुरंजित रहते हैं । तुम्हारी तथा उनकी बराबर की जोट है । तुम नव नागरी हो और वे रसिया नव नागर हैं । यह सब तो ठीक है, परन्तु तुम दोनों में एक बड़ा अन्तर है, हे सखी ! तू संकोच सुधा से पूर्ण होने के कारण यत्किञ्चित् संयम अवश्य कर लेती है पर वे रस लम्पट तो नित्य ही रसाकुल बने रहते हैं। वे संयम किस प्रकार कर सकते हैं ? जब जब हे किशोरी, तू वर्जना करती है, श्याम सुन्दर और-और अधीर हो जाते हैं । परन्तु एक बात सर्वोपरि है तथा मधुर है, वे तो प्रतिक्षण रसातुर रहते हैं तथा तू गर्व में भर जाती है । तेरे हठ के सामने उनकी विनय कहीं समानता नहीं कर पाती । मद में भरी जब तू इठलाती है तो,

तेरी भ्रूभङ्गी पर ऐरी,
रस कोविद प्रिय बलि बलि जाते ।
तू छवि राशि सुअंगनि राधे,
वे छवि पुञ्ज सुअंग सुहाते ।
तू रस रंगिणी प्रिय रंग राते ।

× × ×

पूजनीया बोबो आजकल गोपेश्वर रोड स्थित, बड़ी कुञ्ज में निवास कर रही थीं । बाहर के कई स्वजन आए हुए थे अतः 'एकान्त के लिये समय निकालने में कठिनाई होगी'; यह विचार, कुछ-कुछ अन्य मनस्क सी सीढ़ियों में जा बैठीं । चुप-चुप तो थी हीं, वहीं बैठे-बैठे देखा, ''एक लता मण्डप है, एक शिला पर प्रियाजी अकेली ही विराजमान हैं । आन्तरिक प्रणयावेग के भाव प्रत्यक्ष दीख रहे हैं; गौर तन पर, रोम रोम में, अंग प्रत्यङ्गों में, यहां तक कि उनके वस्त्राभूषणों से भी प्रकट हो रहे हैं । उन्हें देख बहुत ही विचित्र सा लग रहा है । प्रणयी प्रियतम से मिलने की आकांक्षा, तीव्र ललक, उनके प्राणों में समा, बाहर भी प्रकट होती झलक रही है । प्रणय का उद्दाम वेग सीमा में बंध नहीं पा रहा, उसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक अंग के स्पन्दन से प्रकट हो रही है । प्रियाजी की इस प्रकार की विह्वलता को देख पू० बोबो स्तब्ध सी रह गईं । उनकी यह पुलकन, कंपन, गद्‌गद भाव तथा इस प्रकार का द्रवण अहा ! महा सौभाग्य !

''लता-वितान में छिपे प्रियतम, पीछे से प्रियाजी की रसाकुल दशा देख रहे हैं । पास चले आए । पहले बाईं ओर से झांका और पीछे हट गए पुनः दाईं ओर से आकर प्रियाजी से लग कर बैठ गए तथा उनके स्कन्ध पर अपना शीश टिका दिया । प्रियाजी ने भी श्यामसुन्दर की यह दशा देखी। आकुलता और विह्वलता मैत्री जोड़ अभिन्न हो गईं । फिर को कौन कहता- यह सरस कौतुक, इसमें प्रवाहित रस की अनगिन धाराऐं निहार पू० बोबो मग्न हो गईं ।

दोनों की अगाध पिपासा का वर्णन करती एक स्थान पर कह रही हैं :

रस रूप अपार है लाड़िली को,
अरु प्यास अपार है लालन की ।
हर अंग अनंग को फंद सखी,
पिय डोर बंधे छवि जालन की ॥

प्रति रोम हिलोर उठे रस की,
शोभा रस रंग उछालन की ।
रस मज्जित श्याम निहोर करें,
निज प्रानन के प्रति-पालन की ॥

ज्यों ज्यों प्रियतम के नयनों में मद की ख़ुमारी छा जाती है, त्यों ही त्यों श्री राधा पुलकिताङ्गी हो सिहर उठती हैं । वे हँस कर कुछ भी कहने की चेष्टा करते हैं तो प्रिया जी रसभीति वश संकोच स्नात हो जाती हैं । इनकी इस प्रणय भीति से सिहरी पुलकी प्रियाजी को देख जब वे तनिक समीप होने का अभिनय सा करते हैं तो प्रियाजी रस रंगोत्सव के पूर्वानुमान वश चौंक उठती हैं और प्रियतम की रस व्यग्र ललक के वशीभूत हुईं प्रीति विवश 'ना' में निहित 'हां' का भाव दर्शाती 'नहीं, नहीं' ही कहती हैं, प्रीति की अनोखी रीत है- यहां की भाषा भी निराली है ।

× × ×

'प्रेम' का रसास्वादन करती एक जगह कह रही है : रसराज शृङ्गार जिनका अनुवर्ती है, उन शृङ्गार रस-सार सांवर घन एवं उनकी प्राण प्रियतमा के सुशीतल कोमल मंजुल, चरणारविन्दों में आश्रय पाकर ही जन्म जन्मान्तर की रस पिपासा को विश्राम मिलता है । वे प्यार के सिन्धु हैं। उनका रोम-रोम, अंग-प्रत्यंग प्यार की ही रसमयी परिणति है । वे स्वयं प्यार करते हैं- प्यार चाहते हैं । वे प्यार बरसाते रहते हैं । सतत-अविराम-अविरल और प्यार से ही वे सिंचित रहते हैं । उनका आहार-विहार, हास-विलास, उनका राग-रंग उनका रस-रास उनके हाव-भाव, उनकी सभी भङ्गिमाऐं प्यार ही के विविध रूप हैं । प्यार के अतिरिक्त कुछ भी जानने समझने का अवकाश उन्हें नहीं है । ब्रज सुन्दरियां उन्हें अपने उर अन्तर के सम्पूर्ण रागानुराग से निरन्तर सींचती रहती हैं- और यह उनके प्रणय कल्पतरु उनके इस रस सिंचन से और-और लहलहाते हैं- झूम-झूम कर, लहरा-लहरा कर अपना समस्त प्यार उन पर उंडेलते हैं । उनकी प्रणयपगी शीतल छाया में इन नव किशोरियों का नव कैशोर्य, विलसता है, हुलसता है । कंचन लतिकाऐं सी यह बालाऐं अपने इन अनुराग सुरतरु से लगी-लिपटी नित्य नव-नव रस का संचय करती हैं और वितरण भी । प्यार-दुलार के मूर्त रस-विग्रह .....! इनकी कोई क्या कहे .... ! यह तो न जाने अहर्निश .... हर पल, हर घड़ी, मदिर मधुरासव में छके .... मदमत्त हुए रस ही रस की रटन

लगाये रखते हैं ।'परम रसिक याही ते कहिये' इनकी रस ललक को विराम नहीं है, इनकी प्रणय त्वरा की इति नहीं है ।इनके मन प्राणों में अथाह, अगाध प्यार का ज्वार-भाटा सा उठा करता है । रस-क्षोभ पूरित उद्दाम रस तरंगों से उद्वेलित इनका हृदय रस ही रस प्यार ही प्यार की पुकार मचाए रखता है। स्वयं रस तृषातुर बने रहते हैं .... इसी से औरों की रस पिपासा को पहचानते हैं । अपने रस लालसा पूर्ण हृदय से ये अपनी प्रियाओं के हृदय को समझते हैं । उनकी अन्तर्वेदना को पहचान उनका सरस निदान करते हैं, अपने मधुर कटाक्षों से, रसभरे इंगितों से, सरस संस्पर्श से, रस मूर्च्छना पूर्ण चेष्टाओं से, रस के ही विविध विलास से ..... रस की धाराओं से ही यह प्रियाओं के हृदय को नयन, मन, प्राणों को आप्लावित किये रखते हैं ।

× × ×

जिस हृदय को प्यार की लालसा हो, (यों तो जीव मात्र को प्यार की मांग है पर कुछ हृदय, विशेषत: प्यार के लिये ही ललकते रहते हैं) अनुराग पिपासा हो, उन्हें इन्हीं प्यार के अथाह सिन्धु, सुरस निधि की अंक में ठौर लेनी चाहिये । वे तो ठौर देने को आतुर खड़े हैं .... प्रणय पिपासु जो हैं- प्रतीक्षा कर रहे हैं हमारी । प्रेम पथ का प्रत्येक मार्ग श्याम सुन्दर के श्री चरणों में पहुंच कर विश्राम पाता है । प्रणय-पथ का प्रत्येक डग श्याम सुन्दर में समा कर ही सफल होता है ।पू० बोबो के जीवन की प्रत्येक क्रिया श्याम सुन्दर की ओर ही प्रवहमान रही । उन्हीं की बात, उन्हीं के साथ बात, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक क्षण प्रिया-प्रियतम के अनुराग से सिक्त रहा । वे सोचती तो उन्हीं के विषय में, बात करती थी तो उन्हीं की, प्रकृति का अलबेलापन उन्हें भाता था, श्यामा-श्याम की सत्ता से युत होने पर ही, प्रत्येक ऋतु के सौन्दर्य में उन्होंने प्रिया-प्रियतम को ही देखा- इन्हीं रसीली भावनाओं में पगी वे कह रही हैं :-

"निर्मल आकाश की नीलिमा जब सघन वृक्षावलियों में से, घने पत्तों में से झांकती सी दिखलाई पड़ती है तो न जाने कैसा-कैसा लगता है ? कैसा लगता है यह सब देख कर और क्या जी चाहता है ! वृक्ष पौधों में एक कमनीयता सी भरी है । प्रात:कालीन धूप की उज्ज्वल शोभा भी कोमल-कोमल सी जान पड़ती है- मानो रात्रि भर के विहारोपरान्त श्रमालस मण्डित युगल की रसीली मुद्रा को भंग करने के भय से यह स्वर्णातप बहुत धीरे धीरे उतर कर दबे पगों से नव निकुञ्ज मन्दिर में प्रवेश कर रही हो । यह

इस समय की कोमल प्रभा .... सुख कर लगती है । निद्रामग्न युगल की अमित शोभा माधुरी ...... प्रगाढ़ निद्रा जाने क्यों नहीं आती इन्हें ..... । यदा-कदा गहरी नींद के अंक में आसीन होते हैं और उसमें भी न जाने कैसे कैसे .... क्या क्या .... हो जाता है कि फिर चौंक पड़ते हैं दोनों ..... । नयनों से नयन मिले .... । अरुणाधरों पर बरबस ही मुस्कान छटा फूट पड़ी और ...... उस निद्रालस में ही भरे वह मन्थर .... मुग्ध युगल किशोर किशोरी ..... दो अंगुल की दूरी को भी दूर कर निकटतम हो .... न जाने .... क्या क्या .... करते हैं । यह मधुर क्रम भोर की शीतल वेला में न जाने कितनी देर चलता रहता है । और तभी .... ऊपर से चुपचाप आ भीतर झांकती है सूर्य प्रभा .... अपनी विहँसन से पुष्प पल्लवों को उद्भासित करती सी भीतर आ, इन रस मज्जित युगल के मुख झांकती है .... और किसी भी सरस भाव विवश वे रस बावरे युगल, जब फिर चौंक कर, नयन उन्मीलित कर एक दूसरे को देखते हैं .... तभी यह सूर्यप्रभा उन्हें धीरे से स्पर्श कर जग जाने का संकेत करती है । एक बार पुनः चौंक उठते हैं दोनों ......। आश्चर्य में पगे से पुनः पुनः देखते हैं .... नेत्रों में विस्मय भर रहा है, रस रंग छलक रहा है ...... विस्मित हो रहे हैं .... इतनी शीघ्र प्रभात कैसे हो गया ? सचमुच सूर्य किरणें ही हैं यह .... । हां .... सूर्य किरणें ही हैं। रस विवश से युगल एक दूसरे को अतृप्ति ..... असंतुष्टि भरी .... रस पगी चितवन से निहार रहे हैं। कहां तो मन की यह रस मसी दशा कि 'सहत' न खटक उसांस .... और .... । पंछियों के कलित गान में सखियों की पग पायल ध्वनि का भ्रम हो जाने से रसिक युगल पुनः चौंके और बाहर झांका ......। उस समय की उनकी वह संभ्रम-विभ्रम पूर्ण मुख माधुरी .... विवश-परवश सी वह रसीली स्थिति ...... ।''

प्रिया जी के भावों से उनकी श्वास सौरभ से उनकी रसीली छवि सुधा का पान कर उसी भाव में निमग्ना पू० बोबो कहती हैं :

''हे सखी ! तेरे अंगों की शोभा निरख कोटिक मनसिज लज्जित हो गए और तेरी श्वास सौरभ ने अनेकों कमलों की पुञ्जीभूत पराग को पराजित कर अपनी विजय का उद्घोष किया है । तेरी अंग कान्ति को निरख लज्जित हो दामिनी घन के अंक में जा छिपी । यह घनघोर घटाऐं तेरे सघन केशों की छटा को निरख लजा कर बिखर सी गई हैं और सखी ! तेरे चंचल अनियारे नयनों को देख मीन भी जाकर जल में छिप गई है । तेरे मृदुल गोल कपोलों ने शशि मण्डल की आभा को तिरस्कृत कर दिया है । तेरी इस

मुस्कान प्रभा को देख, शरद की स्वच्छ चन्द्रिका भी शरमा गई है और तेरे कोमल करों को देख, कोमल पल्लव भी स्तब्ध हैं नवाड्कुर तो सखी तेरी मृदुल उंगलियों को निरख कर बलि बलि जा रहे हैं तथा शत शत वीणाओं की विनन्दक तेरी मधुर वाणी से लज्जित होकर कौकिला घने आम्रवन में जाकर छिप गई है- ओह ! इधर तेरी पायल की ध्वनि के आगे शत शत कल कूजन के स्वर भी तिरस्कृत से लग रहे हैं- इस सबकी तो तेरे सामने बिसात ही क्या है जब श्याम सुन्दर भी मुग्ध और लुब्ध हो रहे हैं :

औरों की बात कहा आली,
जब रूप मधुरिमा के सागर ।
तेरी छवि में मज्जित होकर,
हैं मुग्ध लुब्ध वे नट नागर ॥

× × ×

सन् १९६८ की ही बात है एक दिन पूजनीया बोबो का मन वृन्दावन की रमणीय कुञ्जों में विचरण करने को विशेष रूप से आकुल हो गया । परिक्रमा का मिस बना स्थलियों में विचरण करतीं, श्रीयमुना दर्शन कर, वन्य शोभा निहारतीं, कहीं वृक्षों और वल्लरियों की रमणीयता का आस्वाद लेतीं, उन पर चहचहाते पक्षियों का मधुर रव सुनतीं, कहीं केकी का नृत्य, और सामूहिक दृश्य में मग्न सी चल दीं । "कैमार वन से तनिक आगे रेल की पटरी के पास पूर्ण किशोर रूप में, लकुटी लिये श्याम-सुन्दर खड़े हैं, पटका फहरा रहा है, मोर पंख झूम रहा है और स्वयं मुस्करा रहे हैं । लगता है गोचारण हेतु आए हैं । उस लकुटी पर अपने दोनों कर कञ्ज धरे उस पर चिबुक टिकाए खड़े हैं । पू० बोबो को देख मुस्कराए । इन्होंने पूछा, "यहां कैसे खड़े हो" आप बोले, "मैं तो प्रतिदिन यहां आकर खड़ा होता हूं ।" पू० बोबो ने सहज पूछा क्यों ?" आप बोले, 'वृन्दावन आने जाने वालों को देखा करता हूँ ।'

पू० बोबो अत्यन्त प्रसन्न हुई यह सुनकर । इसके बाद की बात कहने में यह जड़ लेखनी समर्थ नहीं है । एक सरसता में भरी रस माधुरी का आस्वादन करती पू० बोबो कब परिक्रमा पूर्ण करके लौट आईं, उन्हें भान ही न हुआ ।

× × ×

आजकल बड़ी कुञ्ज में ही रह रही थीं। अप्रैल ६८ की बात है। वैसे तो दिन भर मौन ही रहती थीं, परन्तु दोपहर बारह से तीन तक का समय विशेष एकान्त के लिये सुनिश्चित था। इस एकान्त के लिये इन्हें कोई विशेष स्थल की आवश्यकता न होती थी। कहीं सीढ़ियों में बैठ जातीं, कभी स्नानगृह में ही द्वार बन्द कर बैठ जाया करतीं। अनेक बार खुले प्राङ्गण में ही बैठ जातीं। आज सीढ़ियों में ही विराजमान थीं।'' श्री ठाकुर जी वहीं प्रकट हो आकर दूसरी ऊपर वाली सीढ़ी पर विराजमान हो गए। झुककर इनके दोनों हाथों को अपने हाथों में ले इन्हें अपना सुरसाश्रय प्रदान करते हुए बोले, ''वाम ..... पार्श्वाङ्गस्थिता ...... और ....।'' आगे की बात कौन कह सकता है दूसरे दिन सुबह सुबह शब्दकोश देखते देख, श्री सुशीला जी को कुछ शंका हुई। उन्होंने साग्रह इनसे कारण पूछा, तो संक्षेप में यह सारी घटना सुनाई।

प्रेम एकांगी नहीं होता। और न ही इसे इयत्ता में बांधा जा सकता है। इसका स्वरूप विचित्र है परन्तु फिर भी दो प्रेमियों का पारस्परिक सम्बन्ध उसकी मर्यादा का वर्णन क्या करें ! ब्रज बालाओं के मन प्राणों की निधि, जीवन सर्वस्व यह श्याम सुन्दर ही हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया की साक्षी, यह ब्रज बालायें ही हैं। उन्हीं के आश्रित हो उन्हीं से रसयाचना करती हैं और कभी कभी प्रेम के वशीभूत यह सांवर किशोर छछिया भर छाछ के लिये नाचते हैं और 'कुञ्ज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन।' प्रेम रसिक सम्राट हैं यह।

× × ×

आजकल छुट्टियों में अनेक बहनें आई हुई थीं तथा श्री रमा देवी जी, श्री मनोहर जी, श्री घनश्याम जी, श्री सरला जी तथा सन्तोषबहन जी सभी विराजमान थे। पदगान चल रहा था। पू० बोबो भी वहीं बैठी थीं। इन्हें लगा जैसे किसी ने इनका पांव छुआ है। इन्होंने सोचा शायद विजय है। थोड़ी देर में पुन: ऐसे ही लगा– इन्होंने देखा विजय तो काफ़ी दूर बैठा है। स्पर्श का निर्णय कर जाना, यह तो श्याम–सुन्दर स्वयं ही हैं। पू० बोबो बहुत झुंझलाईं, और बोलीं, ''यह भी कोई बात है इससे तो हमें कुछ हो जाय।'' (अपने लिये कुछ ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया) प्रेम में नेम नहीं रहता यह तो बात सर्वदा ठीक है परन्तु मर्यादा फिर भी अपेक्षित है। प्रेमास्पद तो सर्व–तंत्र, स्वतंत्र है– उन्होंने भी नटखटपने का ही उत्तर दिया, और हास

बिखेरते हुए तथा स्नेह दर्शाते हुए बोले, 'हम तो ऐसे ही करेंगे' यह देख इनकी सारी झुंझल जाती रही और बहुत ही तन्मय बैठी रहीं ।

× × ×

श्यामा-श्याम के चरणों में पूजनीया बोबो का मन इतनी निष्ठा से समर्पित था कि उनके अतिरिक्त किसी भी विचार को व्यभिचार मानती थीं- जो समय प्रिया-प्रियतम की लीला चर्चा के अतिरिक्त गया वह तो व्यर्थ ही बीता ऐसी उनकी धारणा थी- अत: प्रिया-प्रियतम के प्रति उनका जीवन इतना समर्पित रहा कि उनके बिना तथा उनके रहित एक क्षण भी उन्होंने व्यतीत नहीं किया । उनका । प्रत्येक क्षण प्रत्येक कर्म, तन-मन की क्या कहूं रोम-रोम श्रीकृष्ण-मय रहा- वे ही उनके जीवन रहे- उनकी स्मृति रहे। जागृति की बात क्या कहूं- सुषुप्ति में भी वे श्री कृष्णमय जीवन ही यापन करती रहीं । हम श्यामसुन्दर के हैं, सभी सहज कहते हैं, इसमें कोई अस्वाभाविकता भी नहीं है परन्तु जब प्रिया-प्रियतम उमग कर स्वीकार लेते हैं, स्वीकारते तो सभी को है- उसका भान मात्र नहीं प्रत्यक्ष अपना अंग संग प्रदान कर एक स्थायी भाव प्रदान करते हैं- जिसे ज्ञानी जन उस चिन्मय ज्योति का दर्शन कहते हैं- और प्रेमीजन साक्षात्कार कहते हैं- वह सामीप्य इतना स्वाभाविक तथा आत्मीयता को लेकर होता है वहां साक्षात्कार शब्द भी दूर का सा लगता है- वहां है प्राकटय-वह प्राकट्य वहीं- वहीं से है जहां यह मन रहता है । अत: जहां वे रहती थीं- वहीं प्रिया-प्रियतम प्रत्यक्ष बने रहते थे- अथवा इसी बात को यों भी कह सकते हैं जहां प्रिया-प्रियतम रहे वहीं वे भी, उनकी प्रत्यक्ष तथा सतत सन्निधि में विराजमान रहीं ।' यतो यत: प्रसरति मे विलोचनं, ततस्तत: स्फुरतु तवैववैभवम्' (श्रीकृष्ण कर्णामृत) ।एक जगह कहती हैं :-

''उन्हीं की इच्छा में मैं सुखी हूँ । मैं स्वतंत्र होऊं, यह त्रिकाल में भी नहीं चाहती । कितनी मधुर, कितनी सुन्दर है यह परतन्त्रता। 'पर तन्त्रता' नहीं है यह- यह है प्रिय तन्त्रता । इसीलिये इसमें सुख है । वे जो भी करें, करवाऐं उसी में आनन्द है । जब कभी अपनेपन के अभिमान से भर, अपने पर कर्तृत्व का बोझ लाद, कुछ करती हूँ, वही परम क्षोभकर और असन्तोषप्रद हो जाता है । वे अकारण बन्धु प्राण-प्रेष्ठ ब्रजेन्द्र सुन्दर मुझे कभी स्वप्न में भी स्वतंत्र न होने दे । उन्हीं की छत्र-छाया में, उन्हीं के आदेश से, उन्हीं की प्रेरणा से करूं, जो भी करूं । यों तो जड़ चेतन, सभी उन्हीं के इंगित से कर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं, पर जग प्रपंच के उन झंझटों से हमें कुछ

*** जहां-जहां मेरी दृष्टि जाए, तुम्हारा वैभव ही दृष्टिगोचर हो ।

लेना नहीं है । यों भी यह सब उनकी ऐश्वर्य शक्ति कर रही है, करती रहे हमें क्या? हमें तो माधुर्य-सौन्दर्य के सिन्धु, लावण्य कोष, प्यार-दुलार के उद्गम इन रसाधिराज से मतलब है। बस इन्हीं का संग, इन्हीं के संग, उमंग-तरंगें, सब कुछ इन्हीं से सम्बद्ध, इन्हीं में लगा-लिपटा चाहिये । एक बात बता ! *आप दूर खड़े होकर, लगा लिपटा कोई- और लगी-लिपटी कोई दीखती हो तो वह 'सुख', सुख नहीं है क्या ? तू कभी नहीं मानेगा ..... । औरों को पानी पीते देख यदि अपनी प्यास बुझ जाया करती तो पानी की मांग ही न रहती- क्यों ?* बात कुछ उलटी है- वास्तव में सुलटी । किसी को पीते देख जिन्हें प्यास नहीं है, उन्हें लग जाती है, और जिन्हें लगी हुई है उनकी भड़क जाती है । जिनकी भड़क उठी है, सुधा सलिल स्वयं उमड़ उमड़ कर उनकी ओर धावित हो उन्हें आप्लावित करता है । उनकी तृषा का निदान करता है । चाहे इस अद्भुत साम्राज्य में तृषा का निदान, तृषा को अधिकाधिक भड़काने वाला ही होता है । यह सब क्या है ? कैसा है ? इसे तो किसी भुक्तभोगी ब्रज-बाला से पूछो । वह नित्य तृषातुरा- नित्य सुधारस पायिनी-फिर भी सदा-सदा पिपासु .... वह .... बावरी ही बता सकती है । नहीं-नहीं वह भी कुछ बता नहीं सकती । कहने बताने के परे का यह विषामृत पान ....। वाणी की गम्यता वहां नहीं है ।हां ! उनकी चेष्टाओं से उनके अटपटे क्रिया-कलापों से, उनकी किसी अस्फुट सी वार्ता से ..... चाल ढाल से यत्किञ्चित् अनुमान किया जा सकता है । कैसी रसीली मूर्च्छना, कैसी अनूठी मधुरिमा, कैसी उन्मादनकारी तरलता- है यह। गोरस मिस गोकुल की गली गली में घूमती, उस ब्रज वधू को देखो- जो इस मदिराब्धि की उन्मादक वीचियों में डूबती-उतरती यह भूल ही गई कि वह क्या कह रही है- क्या का क्या कह रही है । सुनने वाली हँस पड़ी । किसी ने व्यंग्य भी किया, किसी ने प्यार भरा उपालम्भ भी दिया, पर उसकी दशा में ओत-प्रोत अपनी दशा का मदोन्मत्त रूप अवलोक कोई रस बावरी- जो उस समय तनिक होश में थी- उसे पकड़ झकझोर कर बोली, अरी पगली ! क्या कह रही है तू । 'दूध लो दही लो- माखन लो' यह सब कहना भूल, क्या कह रही है री, 'गोविन्द लो- गोपाल लो' उस पगली ने नेत्र विस्फारित कर इस समझाने वाली सखी को देखा .... विस्मित सी हो बोली, 'तू-तू क्या कह रही है तू ...... । मैंने तो नहीं बुलाया था उन्हें .... नहीं ..... सच मान तू, मैंने उन्हें नहीं पुकारा था ..... फिर ..... फिर सखी वे झुरमुट की ओट में से निकल ...... अपनी मुस्कान माधुरी से मेरी सब सुध-बुध हरण कर चितवन मदिरा से मुझे उन्मत्त करते हुए ......।'

× × ×

मधुर रूप, लीला-कथा पयस्विनी का निरन्तर पान करती पूजनीया बोबो की मनःस्थिति का अनुमान सहज लगा पाना अत्यन्त कठिन रहा। समूह में भी उनका एकान्त बना रहता था। वे एक पंक्ति सदा-सदा दोहराया करती थीं।

'सरे महफ़िल कुछ इस अन्दाज़ से लूटा गया हूँ मैं, हजूमे आम में भी मेरी तनहाई नहीं जाती।' मन की इतनी अन्तर्मुखी वृत्ति, ध्यान मग्नावस्था- बाहर क्या हो रहा है- इसका भी भान नहीं और अनेक बार एक ही समय में दोनों ही जगह पूर्णता की स्थिति, महद्जनों के ही सामर्थ्य की बात है। भाव जब अपने एकमात्र प्राणाधार श्यामसुन्दर में तन्मयतया रत हो जाते हैं तो किसी भी प्रकार के बाह्य वातावरण में मन रहता ही नहीं। भावों का केन्द्रित होकर प्रिया-प्रियतम के चरणों में समर्पण ही ध्यानावस्था की परमोच्च स्थिति है। ध्यान से श्याम-सुन्दर अलग हैं ही नहीं- अतः वे वहीं प्रकट होकर अपने जनों को परम सुख प्रदान करते हैं।

रस सिद्ध संत पूज्य श्री श्री सखा जी को आज पुनः बुलाया। श्री सखा जी बीच बीच में इस परम सुख की वर्षा प्रायः करते ही रहते थे। पू० श्री रमादेवी जी का आग्रह था कि उनके विषय में पू. सखा जी से पूछें:-

पूज्या बोबो एक स्थान पर कहती हैं "श्री सखा जी से लीला से पूर्व, दो चार मिनट बात भी की। अब तो वे प्रायः इस मूड में होते नहीं। उस दिन जरा सा ही बोले, अच्छा लगा। पहले तो हमने उन्हें पू० देवी जी का सन्देश दिया, उत्तर में उन्होंने तीन वाक्य कहे- बहुत ही समुचित। यद्यपि कहा उनके लिये पर वह लागू सभी पर होते हैं। कहा :

सच्चे संत की छत्र छाया में चिन्ता क्यों ?

प्रतीक्षा का फल श्री कृष्ण स्वयं ही है- प्रतीक्षा का फल कोरेआश्वासन नहीं-वे रसिया स्वयं हैं। कितना जीवन प्रदायी है यह विश्वास।

प्रतीक्षा, विकलता, पर निराशा नहीं।"

पूजनीया बोबो के जीवन में यह सभी गुण पूर्णतः अनुस्यूत रहे, प्रत्युत उनमें यह नैसर्गिक ही थे। प्रतीक्षा हो- आकुलता व्याकुलता से सज्जित हो, तो वह व्याकुलता इन रसिक सुन्दर को अपने मृदुल सबल पाश में बांध, विकलता के आश्रय स्थल हृदय में ला बन्दी कर देती है। इतने से विकलता घटती नहीं .... और और बढ़ती है .... अन्तर में समाई उस

मनोहर मूर्त्ति को इन नेत्रों के सम्मुख देख पाने को । *ज्ञानियों, तत्वदर्शियों का मन उस मानसिक इष्टमूर्ति से भले ही सन्तुष्ट हो जाए– पर प्रेमिल हृदय को यों सन्तोष कहां, चैन कहां ?*

हां प्रतीक्षा का फल वे रसिया स्वयं ही हैं और स्वयं भी सम्मुख प्रकट, प्रत्यक्ष हो, इन्हीं चर्म चक्षुओं को दिव्यता प्रदान कर प्रस्तुत होते हैं– ऐसी इनकी धारणा थी, वे प्राय: अंग्रेज़ी का एक वाक्य दोहराया करती थीं 'Why was man created if not for the embraces of the Lord'*** श्यामा–श्याम उनके लिये ऐसे ही प्रकट बने रहे । उनके उर में उमगती भावनाओं को, लालसाओं को सदा–सदा उन्होंने स्वीकारा, सत्कारा तथा प्रश्रय दिया । पनपती तथा फलीभूत होती उनकी आशा लता अपने प्राणाधार श्याम–तमाल के आश्रय में– सदा सदा उत्तरोत्तर विकसित होती रही ।

❑❑❑

*** मानव मात्र का अभ्युदय भगवान की अत्यन्त आत्मीयता के लिये ही हुआ है

श्रीश्री यमुना स्तुति

हे कृष्ण प्रेम प्रवाहिनी, हे कृष्ण प्रेम प्रदायिनी।
हे कृष्ण प्रीति सुशोभने, हे कृष्ण रूप विलोभने ॥ १ ॥
कृष्णा श्रीकृष्ण स्वरूपिणी, हे प्रेम-नेम निरूपिणी।
हे कृष्ण स्पर्शा-मोदिनी, नव-नव विहार विनोदिनी ॥ २ ॥
श्रीकृष्ण रूपा-सक्तिनी, हे कृष्ण स्नेहानुरक्तिनी।
श्रीकृष्ण भूषा धारिणी, श्रीकृष्ण संग विहारिणी ॥ ३ ॥
श्रीकृष्ण प्रणय प्रसारिणी, नव रास-रस विस्तारिणी।
श्रीकृष्ण केलि विलासिनी, रस-रंजिता मृदु हासिनी ॥ ४ ॥
हे प्राणवल्लभ-वल्लभा, श्रीकृष्ण-तुल्य-सुतनु-प्रभा।
कृष्णानुराग तरंगिणी, हे राधिका प्रिय-संगिनी ॥ ५ ॥
श्रीकृष्ण रस उन्मादिनी, मद भार हर्ष निनादिनी।
श्रीकृष्ण चित्ताकर्षिणी, श्रीकृष्ण-रति-रस वर्षिणी ॥ ६ ॥
श्रीकृष्ण सुखसंवर्द्धिनी, श्रीकृष्ण रसवशवर्तिनी।
श्रीकृष्ण रस संदोहिनी, हे प्राणप्रेष्ठ विमोहिनी ॥ ७ ॥
हे भानुजा, हे स्वामिनी, हे कृष्ण मन अभिरामिनी।
करके कृपा करुणामयी, हे रसमयी, ममतामयी ॥ ८ ॥
श्रीकृष्ण रति रस दान दो, प्रिय रूप रस का पान दो।
उनका चिरन्तन संग दो, रस रंग केलि अभंग दो ॥ ९ ॥

प्रथम भाग

नवम अध्याय

पृष्ठ ३५१ से ३९० तक

ये चितवन मुस्कान तुम्हारी
मेरे जीवन प्राण ।
मोतन निरखि रंग सों हँसिबो,
झूम झमकि इठलान ॥

लहर लहर लहरे हिये,
कुन्तल कच लहरान
फहर फहर उर में करे
पीताम्बर फहरान ।

तैंतीस

वृन्दावन आगमन-
अनेक महात्माओं से परिचय

हम पूर्व में कह आए हैं कि पूजनीया बोबो १७ नवम्बर सन् १९५९ को वृन्दावन चली आई थीं। आकर अनेकानेक सन्तों, महज्जनों विद्वत् समाज तथा गोस्वामी वर्ग जिनसे परिचय सहज रूप में हो गया- इनका सम्पर्क वहीं तक सीमित बना रहा। उसमें भी उनका हेतु, मात्र भगवच्चर्चा और लीला-कथा ही रहा। उसके अतिरिक्त किसी भी सम्पर्क का प्रोत्साहन न तो इन्होंने अपने पूर्व जीवन अम्बाला में दिया और न ही वृन्दावन आकर किसी प्रकार समय यापन करने का मिस ढूंढा। वे स्वयं में इतनी अधिक सजग थीं- कि उनके पास अपने नियमादि तथा लीला-कथा चिन्तन-आस्वादन के अतिरिक्त कोई समय ही न था। स्वेच्छा से कहीं भी स्वतंत्र रूप से उनका परिचय नहीं हुआ। और न उन्होंने किसी भी ऐसे प्रयास को प्रोत्साहन ही दिया। फिर भी इनका कभी कभी, अनायास तथा कुछ स्वजनों के सम्पर्क से ब्रज के सुप्रसिद्ध सन्तों, यहां आने वाले महज्जनों से परिचय हुआ। आइये उस पर यत्किञ्चित् प्रकाश डाल कर हम आगे के प्रसङ्गों का आस्वादन करें!

ब्रज के सुप्रसिद्ध सन्त श्री बाल कृष्ण दास जी महाराज से परिचय :

पू० बोबो के वृन्दावन आगमन के पश्चात् आध्यात्मिक चर्चा, लीला-कथा को लेकर ही पू० श्री महाराज जी से परिचय हुआ। विचारों का आदान प्रदान हुआ तथा लीला कथा का अपरिमित सुख भी मिला। अनेक बार पू० श्री महाराज जी के दर्शनार्थ जातीं और अनेक बार पू. महाराज जी अपने परिकर सहित चले आया करते। पदगान, उनका भाव तथा सरस चर्चा का रस प्रवाह चलता, हास विनोद भी होते। श्रीकृष्ण की लीलाओं में स्वानुभव तथा लीला दर्शन की चर्चा भी उस सुखानन्द की पृष्ठभूमि होती।

इस मस्ती का वर्णन कहां तक करें, घंटों उस अमित सुख में डूबे रहते, प्रफुल्लित होते रहते। पू० श्रीश्री महाराज जी प्रायः कहा करते

कि ''हँसी का वास्तविक आनन्द तो (पू० बोबो) ऊषा जी के यहां ही आता है। जब कभी हँसने को मन होता है तो हम इनके यहां चले आया करते हैं।'' बहन जी का जहां उनके प्रति पूर्ण मर्यादापूर्ण श्रद्धा का भाव था वहीं उनका भी इसी प्रकार आत्मीयता का भाव इनके प्रति बना रहा।

२. पूज्यपाद गया प्रसाद जी महाराज

इनसे मिलने का प्रसङ्ग बड़ा ही आश्चर्यजनक तथा सुखमय है। पूज्यपाद पंडित जी की विरक्ति तथा सतत नाम जप से वे सदा ही प्रभावित होती रहीं। इन्हें श्री गिरिराज की महान विभूति रूप में समादर देतीं। पू. पंडित जी नारी मात्र को अपने समीप न आने देने का दृढ़ संङ्कल्प ले चुके थे। इस सबके पीछे पंडित जी जैसे व्यक्तित्व के लिये तो कोई स्वतंत्रता अथवा अनिवार्यता नहीं लगती, कदाचित एक आदर्श तथा मर्यादावश उनका यह संकल्प मान्य हो सकता है। भगवत्प्रेरणा से उनके इस संकल्प में कुछ अपवाद भी बने, पूजनीया बोबो से वे सदैव मिलते रहे। मुझे ठीक से स्मरण है एक बार पूजनीया बोबो ने उनके चरण स्पर्श करने की इच्छा व्यक्त की, तो बड़े ही संकोचवश वे चुप रहे और विनम्रता की आदर्श पू० बोबो ने चरण स्पर्श कर लिये।

इनसे मिलन प्रसङ्ग का वर्णन हमने अलग से सविस्तार दिया है।

३. पूज्यपाद श्री रामदास जी महाराज

करह के प्रधान सिद्ध सन्त, भावुक विद्वान श्री श्री राम दास जी महाराज से आध्यात्मिक जगत अपरिचित नहीं है। श्री श्री महाराज जी जहां एक ओर अपने विद्वत्ता पूर्ण तथा भाव प्रधान प्रवचनों के कारण सर्वविख्यात हैं– वहीं उनकी सिद्धस्थिति, श्री राघवेन्द्र सरकार तथा किशोरी जी के चरणों की मधुर उपासना का जो स्वरूप प्रकट होकर लीला कथा में, प्रवचन में उनकी सरसता वश हृदय के द्रवण, नेत्रों से अश्रु प्रवाह तथा गद्गद भाव में प्रकट हो सर्व साधारण को भी द्रवित कर देता है– उसका वर्णन लेखनी क्या करे भला ?

पू. श्री महाराज जी से पू० बोबो की भेंट प्राय: उनके वृन्दावन पधारने पर होती थी। भगवान राघवेन्द्र तथा किशोरी जी की मधुरोपासना की सरसता इनके वपु से बरसती रहती– यही मुख्य कारण पू० बोबो की विशेष श्रद्धा का बना। श्री भरत चरित्र, तथा वाटिका प्रसङ्ग वर्णन में महाराज जी का हृदय ही पिघल कर श्रोताओं को विमुग्ध कर दिया करता

था। पू० बोबो के विषय में महाराज जी कहते हैं 'निस्सन्देह इनकी (पू० बोबो) आध्यात्मिक अनुभूति अपूर्व रही है।' वे प्रेमी भक्त थीं। उनका भाव, उनका समर्पण, प्रिया-प्रियतम में अनुराग अपूर्व रहा है इनके विषय में कुछ अन्य प्रसङ्ग हम अलग से पूर्व में दे चुके हैं।

४. पूज्यपाद श्री आनन्द दास बाबा जी महाराज

श्री राघवेन्द्र सरकार तथा किशोरी जी की मधुर उपासना- उसमें भी मिथिला में भगवान राम जब पधारे तो मधुर भावापन्न जनक दुलारी की सखियों ने उन्हें मिथिला में ही रोक लिया- वे स्थायी रूप से 'पाहुने राम जी' अथवा 'दूल्हाराम जी' के रूप में मिथिला विहारी बने रहे। एक सिद्ध स्थिति प्राप्त कर उसी में मग्न रहते थे। अन्य सभी सन्त उनकी एक स्थायी स्थिति की जो कभी नहीं उतरती थी, प्रत्युत उनका भूषण ही थी, प्रशंसा करते। उन्हीं श्री बाबा महाराज के प्रति पू० बोबो का विनम्रता तथा समादर भाव रहा।

बाबा श्री आनन्द दास जी महाराज भी पू० बोबो की आध्यात्मिक अनुभूति तथा श्री ठाकुर सेवा-निष्ठा, सुस्पष्ट तथा सुदृढ़ विचारधारा से सदा प्रभावित रहे। इनकी आध्यात्मिकता, श्यामा-श्याम के चरणों में दृढ़ अनुराग को देख वे प्राय: कहते 'ऊषा जी की स्थिति कोई साधारण स्थिति नहीं है। प्रिया-प्रियतम की नित्य तथा सतत सन्निधि इनकी सहज बनी थी। जहां एक ओर श्यामा-श्याम के श्री चरणों में ऊषा जी की इष्ट भावना दृढ़ थी वहीं भगवान राघवेन्द्र सरकार तथा किशोरी जी में उनकी प्रीति कम न थी।'

पू० बोबो की समन्वयात्मक विचारधारा, विरक्ति तथा भाव गाम्भीर्य को देख स्नेहवश पू० बाबा प्राय: घर पर चले आया करते। पू० बोबो के निकुञ्ज प्रवेश की बात सुन उन्होंने कहा था "श्री ऊषा जी जैसी भक्तिमती देवी सहज ही गोलोक धाम में प्रवेश कर गईं। प्रिया-प्रियतम की नित्य सन्निधि में चली गईं। उन जैसी महान विभूति के लिये यह कोई असाधारण बात नहीं हुई। यहां रहकर भी वे वहीं थीं- वहां जाकर श्यामा-श्याम के सम्मिलन सुख सिन्धु में रत हो गईं।"

५. श्री श्री पाद बाबा

श्री श्री पाद बाबा की अलौकिक स्थिति, वृन्दावन तथा ब्रज के प्रति निष्ठा, सुदृढ़ भक्ति तथा अपूर्व विरक्ति को देख अनेक बड़े बड़े लोग, अधिकारी वर्ग तथा भावुक महानुभाव उनका संग करने, उनकी सन्निधि का लाभ लेने के लिये लालायित रहते हैं।

पू० बोबो के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी । अनेक बार इनसे मिलने का सुअवसर भी मिला । वे सदा सदा उनकी महानता की प्रशंसा करते । उनकी प्रथम पुण्य तिथि पर संकीर्तन में सहज चले आए । श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए प्रसङ्ग वश उन्होंने कहा था, "महान पुरुष कभी समय की प्रतीक्षा नहीं करते । समय ही उनका अनुगमन करता है । वे महान थीं, यहां रहते हुए भी वे वहीं थीं । उन जैसी विभूति के लिये तो इच्छा भरका खेल रहा, हानि तो साधक-समाज के लिये ही हुई ।"

६. श्री शचीनन्दन बाबा

बात सत्तर के दशक की है । पू० बोबो श्री राधाष्टमी पर वैसे भी बीच बीच में वृषभानुपुर दर्शनार्थ तथा वहां की स्थलियों के विशेष आकर्षण वश चली जाया करती थीं । वहां जाने के पश्चात् एकान्तिक स्थलियों में भ्रमण करने का इनका क्रम प्राय: रहता ही था । पता चला पास ही भानु सरोवर की एक नीरव सी छतरी पर एक सन्त रहते हैं, नाम है श्री शचीनन्दन बाबा । वहां जाने का सुयोग भी अनायास ही बन गया । छतरी के निचले एक अंधेरे से कमरे से 'राई-राई' शब्द सुन वे चौंक गईं । अनेक बार उनके साथ भाई बहन भी हुआ करते थे । इस बार भी पू. श्री सुशीला बहन जी, बहन दर्शन, उमा, कामदा, निर्मल तथा विजय साथ थे । अन्दर प्रवेश करते ही कड़कती हुई आवाज में बोले, 'कौन है' सब परिचय दिया, साथ ही अन्य बहन भाइयों के विषय में भी बात चली ।

अपनी विनम्र वाणी में पू० बोबो ने बाबा से कहा, "बाबा आप तो नित्य ही प्रिया जी के संग रहते हैं- उनकी कुछ लीला वार्ता सुनाइये" लीला सुनाते-सुनाते वे आत्म विभोर हो उच्च स्वर में 'राई राई' उच्चारण करने लगे- किञ्चित् स्वस्थ होकर पुन: उन्होंने कहना प्रारम्भ कर दिया । प्रसङ्ग वश पू० बोबो से एक जगह पूछा, कभी प्रिया जी ने अङ्गीकार कर यह कहा कि 'तू मेरी है'- बात तो अत्यन्त सहज ही हुई थी । प्रेमाधिकार तथा प्रेम सम्बन्ध कोई कहने और बतलाने की बात न हो पाने पर भी अत्यन्त विनम्र सर्वथा सावधान, लोकैषणा से सर्वथा विमुख पू० बोबो के मन को यह बात प्रियाजी के सतत बरसते प्यार पर एक प्रश्न चिन्ह सा बन- कुछ सुहाई सी नहीं- वे क्षण भर मौन रहकर बड़ी ही सहज तथा साधिकार वाणी में नम्रता पूर्वक बोलीं, "बाबा ! आप को तो प्रिया जी की सन्निधि का सुअवसर मिलता ही है- उन्हीं से पूछकर देखिये" इस उत्तर ने बाबा को तन्मयता तथा लीला

चिन्तन दशा में भी झंझोड़ सा दिया– पू० बोबो के स्वभाव के सर्वथा विपरीत यह उत्तर निकला था– पता नहीं किस अज्ञात शक्ति से प्रेरित हो वे यह सब कह गईं। बाबा चुप रहे– तभी उन्होंने बड़ी ही गम्भीर वाणी में कहा था, 'सांची कही लाली ! तू सांची कहै' यह बात सुन सभी गद्‌गद् हो गए। उसके पश्चात् पू. बाबा को सभी अन्य बहन भाइयों ने दण्डवत् प्रणाम किया। सभी का हाथ अपने हाथ में ले आशीर्वाद देते हुए बाबा, बात भी करते जाते थे। कामदा बहन जी का हाथ अपने हाथ में ले थपथपाते हुए उन्होंने पूछा 'ब्याह भयौ' उन्होंने कहा'' हां ! बाबा।'' पुन: सन्तान के विषय में पूछा, दो पुत्र उनके घर की शोभा बढ़ा रहे थे। उनका मन स्वच्छ तथा सात्त्विक बना था– श्री ठाकुर जी के चरणों में प्रगाढ़ प्रीति थी ही– उनकी सेवा पूजा में मन सहज जाता था– छू कर पू. पाद बाबा बोले, 'ब्याह भयौ ! कछु न भयौ, कछु न भयौ' बात समाप्त हो गई– कुछ दिन बरसाना निवास कर सभी वृन्दावन लौट आए।

अब तो जब भी बरसाना जाते प्राय: बाबा के दर्शन करने जाते। बनता जो, अपनी सी तुच्छ सेवा भी कर आते। इस बार भी श्री राधाष्टमी के सुअवसर पर बरसाना गए। पू. बाबा के दर्शनार्थ उनकी उसी एकान्तिक कुटिया में सभी बहन भाईयों के साथ पू० बोबो भी पहुँची। दूर से ही एक पद की पंक्तियां सुनाई दीं। बाबा कुछ गा रहे थे, प्रिया–प्रियतम की लीला कथा की पिपासु पू० बोबो ने सदा की सी भांति अपना निवेदन दोहराया। प्रथम तो पू. बाबा ने बङ्गला की कुछ पंक्तियां सुनाई :–

'धूरि खेला आर खेलिबो ना, हरिनामे मन मेंजे छे।
मायेर काछे आर जाबो ना, क्षुधा पेले आर खाबो ना॥
राई राई आमार क्षुधा– तृष्णा सब हरे छे॥ १ ***

इस पद का भाव सुन सभी मग्न हो गए। उस नीरवता को भङ्ग करते हुए पू. बाबा ने जल केलि, नौका विहार का प्रसङ्ग सुनाना प्रारम्भ किया– वे सुनाते चले गए। बीच में एक स्थान पर पू० बोबो ने पूछा बाबा जिस समय श्याम सुन्दर अकेले ही प्रिया जी तथा इन आभीरिका वृन्द के सामने रह गए .... फिर .... बोबो यह बात कह क्षण भर को मौन हो गईं। इधर बाबा भी दो क्षण चुप रहे, पुन: कड़क कर बोले, 'तू ना थी क्या

(विषय रूपी) धूल से मैं अब न खेलूंगा, क्योंकि मेरा मन हरिनामामृत सिन्धु की लोल लहरियों में डूब गया है। अब मैं मां के पास न जाऊंगा। क्षुधा लगने पर भी और कुछ न खाऊंगा, क्योंकि राधा नाम ने मेरी तृषा तथा क्षुधा का हरण कर लिया है।

वहां ? जो मोते पूछै' बाबा यह बात कह चुप हो गए इधर पू० बोबो को भी सभी ने बड़ी ही तन्मयता पूर्ण स्थिति में देखा। वे कहां थीं ; किस प्रकार उनका एक वपु हम सभी बहन भाईयों के समक्ष उस कुटिया में वार्ता में संलग्न दीखता रहा और अपने दिव्य वपु से पू. बाबा के नेत्रों के सम्मुख प्रकट चिन्मय जल केलि में सम्मिलित रहीं- इस सबके विषय में अधिक कौतूहल तब अवश्य लगा था- परन्तु आज उनकी अनेकानेक अनुभूतियों को देख यह बात स्पष्ट हो गई।

७. श्री श्री प्रिया शरण जी महाराज

निम्बार्क सम्प्रदाय के धुरंधर विद्वान, ब्रज के प्रति अनन्य निष्ठावान तथा उसके पोषक महान विरक्त श्री प्रिया-शरण जी महाराज से अध्यात्म जगत अपरिचित कदापि नहीं है।

वन विहार, रमण रेती में महाराज जी ' श्री राधासुधा निधि' की कथा कहा करते थे। सरसता तथा इनकी अनुभूति पूर्ण अभिव्यक्ति से कथा में विशेष रस प्रवाह का संयोग होता। पू० बोबो ने इनकी कथा में प्रिया जी को एक वृक्ष की टेक लगाए तन्मय खड़े देखा था।

८. श्री श्री कृपा सिंधु दास जी महाराज

श्री कृपासिंधु दास बाबा, श्री राम कृष्ण दास बाबा जी महाराज के संरक्षण में अपनी लक्ष्य सिद्धि का मार्ग प्रायः सुनिश्चित तथा तय कर चुके थे। नाम निष्ठा और लीला स्मरण चिन्तन ने अनेक भावुक व्यक्तियों को उनकी ओर आकृष्ट किया। इसी प्रसङ्ग में पूजनीया सन्तोष जी, सरला जी के स्नेहाग्रह से पू० बोबो का भी उनके यहां जाना हुआ। साथ में श्री विमला नेविल तथा धर्म बहन जी भी थीं।

लीला चर्चा का मुख्य हेतु तो था ही- परन्तु पू० बोबो ने गौड़ीय पद्धति का सम्यक् विश्लेषणात्मक अन्वेषण किया था- अतः यह मिलन अध्यात्म चर्चा में विचारों के आदान प्रदान में परिणत हो गया। इनकी सर्वाङ्गीण प्रतिभा को सुन, देख वे अत्यन्त प्रसन्न तो हुए ही, आश्चर्य चकित रह गए। गौड़ीय ग्रन्थों का इतना साङ्गोपाङ्ग अध्ययन- सम्भवतः उन्हें कल्पना न हो सकी थी। इस प्रसङ्ग से उनकी पू० बोबो के प्रति एक आत्मीयता विशेष हो गई। पू० बोबो सभी इहलौकिक कृत्यों से मुक्त होकर वृन्दावन आ ही चुकी थीं। उन्हें पता चला कि पू० बोबो प्रधानाध्यापिका रह चुकी हैं तो अत्यन्त आत्मीयता और स्नेह लाड़ में भर कर महाराज जी उन से बोले,

''इनका सब छुड़वा ब्रज वास क्यों नहीं करा देती।'' पू० बोबो चुपचाप बैठी रहीं। उपरान्त अनेक बार उनसे लीला चर्चा सुयोग बनता रहा।

९. श्री जगन्नाथ प्रसाद भक्त माली

टटिया स्थान के महन्त भगवान दास जी के शिष्य परम पूजनीय श्री जगन्नाथ प्रसाद भक्तमाली जी के नाम से वैष्णव समाज सर्वथा परिचित है। प्रिया-प्रियतम के परम अनुग्रह पात्र श्री श्री महाराज का सा स्वभाव और दैन्य दुर्लभ ही है। सभी सम्प्रदायों आचार्यों की परम्परा में पूर्ण श्रद्धा इनके चरित्र की विशेषता ही थी। प्रवचन की शैली इतनी अधिक आत्मीयता पूर्ण होती कि सभी लोग प्रफुल्लित हो उठते।

पू. बहन जी के आग्रह करने पर अनेक बार घर पर पधारते। अपनी उसी भोली-भाली भाषा में सदा-सदा कहा करते- 'ऊसा बाई का स्नेहाग्रह टालने में समर्थ नहीं हूं मैं।' उनका अगाध स्नेह और वात्सल्य था। पू० बोबो की सी विनम्रता दैन्य और भाव गरिमा की सदैव प्रशंसा करते। श्री ठाकुर सेवा को लेकर पू० बोबो की सेवा में अभिनिवेश देख परम प्रसन्न हो कर कहते ''श्री ठाकुर सेवा में ऊसा बाई के प्राण ही बसते हैं।''

१०. मदन मोहन दास जी महाराज

नन्दग्रामवासी महात्मा श्री मदन मोहन दास जी महाराज को जो निम्बार्क कोट के सिद्ध संत श्री श्री हंस दास जी महाराज के शिष्य थे, अधिकांश वैष्णव जानते ही हैं। नन्दग्राम में तो वे एक उच्च कोटि के महात्मा के रूप में बने रहे। ब्रज तथा ब्रजवासियों में अत्यधिक घुल मिलकर रहते- यही उनके भाव का सौन्दर्य था। वे ब्रज वासियों में सिद्ध भाव रखते थे तथा ब्रज को उसी चिन्मय भाव से देखते थे।

पू. बहन जी के प्रति इनका अगाध स्नेह और श्रद्धा का भाव बन गया था। अनेक बार लीला-कथा करते करते फूट फूट कर रोने लगते और पू० बोबो से सर्वदा श्री ठाकुर की कृपा याचना के लिये आग्रह करते रहते। अनेक बार वृन्दावन घर पर मिलने पधारे तथा सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर के दर्शन, पू० बोबो की सेवा पद्धति को देख उनके प्रति विशेष ही समादर रखते। वे सदा कहते 'बहन जी की सेवा पूजा, इनकी निष्ठा का मूर्तिमान स्वरूप सेव्य श्री ठाकुर ही हैं। बहन जी की सेवा निष्ठा प्राणों से भी बढ़कर है।'

११. श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी

पू. श्री महाराज जी से परिचय प्रसङ्ग हम पूर्व में दे चुके हैं।

१२. श्री ललिताचरण जी गोस्वामी

श्री राधा वल्लभ सम्प्रदाय के गण्य मान्य गोस्वामी सन्त श्री महाराज जी जहां एक ओर अपने सम्प्रदाय में तो विशेष ख्याति प्राप्त थे ही इधर अन्य विद्वत्समाज की भी आपके प्रति श्रद्धा बनी रही। इसका कारण था आपकी साम्प्रदायिक तथा समस्त पूर्वाग्रहों से किञ्चित् हटकर स्वतंत्र तथा निष्पक्ष भावना। केवल विद्वत्ता ही नहीं– आपकी भाव प्रधान शैली, भक्ति की गरिमा के भार से दबी-दबी सी, उसके सौरभ से महकती रही है।

पू० बोबो के प्रति आपकी अगाध श्रद्धा तथा स्नेह बना रहा। इनके साथ रसिकों के पदों के भाव का वर्णन कर वे प्रसन्न होते। साम्प्रदायिकता का दुराग्रह उनमें न होने के कारण ही पू० बोबो के प्रति उनका वात्सल्य तथा स्नेह बना रहा। श्री यमुना जाते प्राय: उनसे भेंट हो जाया करती वे बड़े ही प्रसन्न होते– इसके अतिरिक्त पूज्या बोबो की भाव प्रवणता से वे बहुत ही प्रभावित थे। श्री ठाकुर सेवा पूजा में, पू० बोबो को आदर्श ही माना करते थे। वे सदा कहते श्री ठाकुर सेवा का ऐसा कोमलतम भाव श्री ऊषा जी के अतिरिक्त कभी भी, कहीं भी मेरे देखने में नहीं आया। इनका रोम रोम सेवा में संलग्न होता है।

श्री ठाकुर दर्शन करने की उनकी उत्कट इच्छा बनी रही। पू० बोबो के अस्वस्थ होने पर बहुत ही दु:खी हुए। इनका स्वास्थ्य समाचार जानने के लिये एक महात्मा जी को नित्य ही इनके यहां भेजते। दो महान सन्तों का मर्यादामय भाव तथा स्नेहिल अपनत्व सर्वदा सराहनीय बना रहा।

१३. गृहस्थ संत पूज्य श्री पन्नालाल जी भाबूटा ***

नारी मात्र के प्रति प्रियाजी की भावना रखते। पू० बोबो

***मूलत: भारतीय पीछे इंगलैंड के नागरिक, प्रिया जी के परम कृपा-पात्र गृहस्थ संत श्री पन्नालाल जी से वृन्दावन तथा विदेशों में अनेक लोग परिचित रहे तथा उनके गरिमा पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आस्थावान भी। प्रिया जी के चरणों में उनकी अनन्य निष्ठा तथा वृन्दावन के प्रति भावना अद्वितीय रही है। एक बार अंग्रेजी सरकार (जहां ये कार्यरत थे) ने 'कसेसा' में (बैल्जियम तथा कोन्गो का बार्डर) इन्हें नियुक्त कर दिया। वहां इन्हें परम योगी लहरी महाशय ने कृपा कर दर्शन दिये। पुन: एक बार प्रिया जी के दर्शन कर कृत्कृत्य हो गए- तभी से स्थायी मस्ती रहने लगी। तीन दिन तक दिव्य सुगन्धि इनके चारों ओर परिव्याप्त रही थी। यहां तक कि अन्य आने जाने वालों को भी, उसकी अनुभूति होती रही। वहां के स्थायी निवासी आ, आकर अपनी भाषा में पूछते 'निनिनुका' अर्थात् यह सुगन्धि कहां से आ रही है ?

उनके जीवन में अनेक दिव्य संत कृपा कर सूक्ष्म देह से, मार्ग दर्शन करते रहे। जो अनुभूति प्रत्यक्ष रूप में आध्यात्मिकता के योग जुटाती हो, सरसता से सिक्त करती रहती हो- उसे अन्यथा कह कर कैसे छोड़ दें ? यह तो दिव्य संतों की अकारण कृपा का ही द्योतक कहा जावेगा। दिव्य संतों के कृपा प्रसाद को पा वे प्रिया जी के कृपा भाजन बने रहे। सभी सुख सुविधाओं को छोड़ वृन्दावन वास करने भारत चले आए। अपने महाप्रयाण के दिन किशोरी श्री राधाजी की सन्निधि में जाने की बात पूर्व में ही कह तैयार हो गए तथा अपनी निष्ठानुसार उन्हीं की सतत सन्निधि में चले गए।

के प्रति उनका अगाध स्नेह तथा वात्सल्य बना रहा। वे सदा 'आओ मेरी लाली मेरी राधा रानी' कहते कहते भाव विभोर हो जाया करते। पू० बोबो की तितिक्षा तथा वैराग्य की सदा सराहना करते तथा हर प्रकार का ध्यान रखते। श्री ठाकुर जी की सेवा से अत्यन्त प्रभावित होते। उर्दू शायरी परन्तु 'इश्के हकीकी' के कारण ही पू० बोबो के प्रति उनकी आस्था बनी रही। जब कभी उनसे हाल पूछतीं तो सदा बड़ी ही प्रसन्नता में भर कहते 'मस्तों की ज़िन्दगी में सदा ही बहार है' मस्ती उनकी आंखों से बरसती थी। पू० बोबो की चाल को देख प्रायः कहते 'यह मस्तों की चाल है।'

१४. पू० संत श्री ललिता जी भाबूटा

पू० बोबो तथा पू. बहन जी की प्रथम भेंट श्री बिहारी जी महाराज के मन्दिर में हुई थी। यह परिचय धीरे-धीरे प्रगाढ़ता तथा पुनः आत्मीयता में परिणत हो गया। पू० बहन जी (श्री ललिता जी) की स्थिति भी असाधारण है। इनके अनेक चमत्कार सर्व विख्यात हैं। एक स्थान पर रहते हुए किसी दूसरे स्थान पर सहज प्रकट हो अपने जनों के संकट निवारण करने की इनकी अनेक घटनाऐं प्रसिद्ध हैं। श्री बांके बिहारी जी महाराज तथा प्रियाजी के चरणों में प्रीति पूर्ण अनुराग इनका मूल स्वभाव है। उदारता की मूर्ति तथा सेवा का जीवन्त स्वरूप ही है। सभी की सेवा करने में सजगता तथा तत्परता- इन्हीं की शोभा है।

पू० बोबो के प्रति एक ही समय में स्नेह, समादर, वात्सल्य तथा छोटी से छोटी सेवा के प्रति जागरूकता की बात कह इनके महान आदर्शमय भाव की गरिमा को कम करना होगा। श्री ठाकुर सेवा के कारण स्नेह की प्रगाढ़ता बढ़ती गई। बहन जी पू० बोबो की सदा सराहना करतीं। अनेक बार पू० बोबो की सलाह लेतीं।

पू० बोबो की बीमारी के दिनों में जिस प्रकार से इन्होंने सेवा की- उसके विषय में क्या कहें ? उसके लिये वे सदा सदा प्रणम्य हैं। इनके विषय में हम आगे यथा प्रसङ्ग वर्णन करेंगे।

१५. पू. श्री श्री मनोहर दास जी

पू० बोबो के प्रति आत्मीयता का जो भाव इनका रहा उसे एकांगी नहीं कहा जा सकता। उनकी आध्यात्मिक अनुभूति श्यामा-श्याम

के प्रति प्रीतिपूर्ण अनुराग, सेवा में पूर्णता, लीला में अभिनिवेष तथा प्रिया-प्रियतम की सतत सन्निधि के कारण पू० बोबो के प्रति समादर भाव रखते। सभी प्रकार की हित भावना बनी रही ।

पू. श्री मनोहर ज़ी के विषय में हमने यथा प्रसङ्ग अलग से भी वर्णन किया है ।

१६. पू. संत श्री धर्म जी

अपनी अनन्या सहेली श्री विमला आरोड़ा के स्कन्ध पर हाथ धरे, मुकुलित नेत्र वृन्दावन की वीथियों में जिन महानुभावों ने दिव्य भावापन्न श्री धर्म जी के दर्शन किये हैं वे निश्चित ही इनकी महानता से परिचित हैं । प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में सतत सिक्त पूजनीया बहन जी की जीवन-लता श्यामा-श्याम से मिलते निरन्तर आश्वासनों से फूलती फलती रही है- वर्तमान में भी उसी प्रकार अनुराग में भर प्रफुल्लित हो इठला रही है ।

पूजनीया बोबो के साथ अम्बाला में अध्यापन का ऐसा संयोग हुआ कि दोनों ही सहेलियों की रसमयी विचारधारा एक ही भाव से श्यामसुन्दर की लीला-कथा का सतत आस्वादन करती रहतीं । पू० बोबो के प्रति जहां इनका स्नेह रहा वहीं उनकी गरिमा, श्री ठाकुर सेवा तथा वैराग्य और श्याम सुन्दर की अनवरत बरसती सुधा धारा से अत्यन्त प्रभावित रहीं। भाव की एकता होने से प्राय: श्यामा श्याम की अनुभूति के विषय में आग्रह करने पर परस्पर कह सुन लेतीं । एक बार वृन्दावन आने पर पू. श्री धर्म जी ने पू० बोबो से कहा, ''बोबो ! तुम अम्बाला में तथा वृन्दावन चले आने पर भी अपनी अनुभूति आग्रह करने पर प्राय: कह सुना दिया करती थीं, अब तुम छिपाने लगी हो, कभी कुछ कहती नहीं ।'' पूजनीया बोबो उस समय स्वरचित कविताओं के मिस लिपिबद्ध अनुभूतियों को सुना रही थीं । एक क्षण चुप हो गईं । गद्गद कण्ठ से कहने लगीं, *''धर्म जी ! यह कविताऐं वही सब हैं ।''* अत्यन्त प्रसन्न होती हुई श्री धर्म जी ने सभी बहनों में बैठे बैठे कहा था, ठीक है बोबो ! निश्चित तेरी अनुभूति ही इन कविताओं के मिस प्रकाशित हुई है ।''

पूजनीया बोबो की बीमारी के अन्तिम दिनों में पू. श्री धर्म बहन जी को पू० बोबो को लेकर श्री ठाकुर जी के आदेश, उनकी स्थिति का साङ्गोपांग वर्णन हमने यथा प्रसङ्ग, कर बोबो के चरित्र, तथा उनके प्रति स्नेहिल, भावना उनकी स्थिति पर अलग से प्रकाश डाला है ।

१७. संत श्री संतोष जी सरला बहन जी

लाहौर से ही दोनों सहेलियों की ब्रज निष्ठा, श्री ठाकुर जी के चरणों में प्रीति पगे अनुराग से, वैराग्य के महानतम आदर्श से, स्नेह के विपुल भाव से तथा सत्य के अनूठे भाव से युत दोनों का गरिमा पूर्ण चरित्र, दर्पण सा लगभग सभी वृन्दावन वासियों में प्रकट रहा है। पू. श्रद्धेय श्री चक्रधर बाबा ने इन दोनों के विषय में एक बार कहा था, ''वृन्दावन में सौ महात्माओं के दर्शन करने के समान इन दोनों सहेलियों के दर्शन कर लेना है।''

दोनों का ही पू० बोबो के प्रति स्नेह रहा। स्नेहाधिक्य के साथ-साथ उनकी गरिमा के प्रति भी सतत जागरूक रहती थीं। वृन्दावन आगमन पर इनका विशेष स्नेह पू० बोबो को मिला। उसी में उनकी आध्यात्मिक अनुभूति के जिन महान आदर्शों, प्रिया-प्रियतम की अनवरत बरसती रसीली अनुभूतियों, लीलाओं में निकटतम अभिनिवेश और परिवेश के आधार पर श्रद्धा का जो उच्चतम आदर्श स्थापित हुआ वह अवर्णनीय ही बना है।

इन्होंने पू० बोबो को बहुत ही सन्निकटता से देखा था। प्रिया-प्रियतम के सतत सान्निध्य का अनुभव, इन्हें भी करने का संयोग हुआ।

पू० बोबो के प्रति इनकी अटूट आस्था, श्रद्धा रही। उनकी सिद्ध स्थिति को देख-अनुभव कर सदा सदा उनके प्रति स्नेह-समादर रखती हैं।

उनके विषय में इनकी अनुभूति प्रसङ्गों को हम आगे के अध्याय में किञ्चित् विस्तार से देने की भरसक चेष्टा करेंगे।

१८. श्रीदयाल पुरी जी महाराज

लुधियाना (पंजाब) के पास के प्रसिद्ध सन्त श्री दयालपुरी जी महाराज, वृन्दावन के अनेक सन्तों, महात्माओं तथा गोस्वामीगण में बड़े ही समादरणीय माने जाते रहे हैं। वृन्दावन में प्रत्येक वर्ष आना, अनेक प्रकार की सेवा करना उनका नियम ही था। शान्त और सौम्य स्वभाव स्वामी जी अपने गाम्भीर्य तथा सरलता के लिये सर्व विख्यात थे।

पू० बोबो के प्रति उनका आन्तरिक स्नेह तथा एक सम्मान बना रहा। श्री ठाकुर सेवा में पू० बोबो के मन-प्राणों का योग देख वे अत्यन्त प्रभावित होते। देर-देर तक समीप बैठने का सुअवसर दोनों को ही मिलता।

परस्पर आध्यात्मिक चर्चा भी होती। पू० बोबो की शालीनता, तथा मधुर स्वभाव की सदा सराहना करते। इनकी आध्यात्मिक अनुभूति से सदा प्रभावित होते। इनके त्याग तथा वैराग्य पूर्ण जीवन से वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि अपने ठहरने के स्थान को स्थायी रूप से पू० बोबो के लिये समर्पित करने का प्रस्ताव रखा। इधर पू० बोबो का वैराग्य भी अपने में पूर्ण था। मकान लेने को तो नहीं, पर कभी-कभी वहां जा ठहरने की बात स्वीकार कर जैसे-तैसे मान गईं।

१९. श्री जती जी महाराज

ऊंचे गाँव, में ललिता जी के मन्दिर के महन्त श्री जती जी महाराज को वैष्णव समाज अवश्य ही जानता है। वे एक नियमबद्ध, महान विरक्त तथा प्रिया जी की सखी श्री ललिता जी के प्रति समर्पित सेवानिष्ठ थे।

पूजनीया बहन जी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। इनकी भक्ति भावना से प्रभावित होकर श्री ललिता जी के आदेश से जन्मोत्सव का शृङ्गार पू० बहन जी से प्राप्त कर धारण कराने का उनका नियम था। वे इनकी गरिमा के प्रति समर्पित थे- अतः उन्होंने पू. बहन जी की ओर से ही यह सेवा स्वीकार करने का क्रम ज़ारी रखने का नियम ही बना दिया जो अद्यावधि निभता चला आ रहा है।

२०. श्री दुर्गी मां

श्री रङ्ग जी के पिछले द्वार के समीप ही निवास करती दुर्गी मां की श्री गोपाल सेवा, उनकी भक्ति भावना तथा महान वैराग्य से वैष्णव समाज अपरिचित नहीं है। चिन्मय वृन्दावन की अनुभूति, गोपाल जी के प्राकट्य को देख भावुक वैष्णव उनके प्रति अगाध श्रद्धा बनाए रहे।

पू० बोबो के प्रति वात्सल्य पूर्ण स्नेह तो था ही साथ साथ श्री ठाकुर जी की सेवा को देख वे सदा प्रशंसा करती रहतीं। अनेक बार उनका श्री ठाकुर दर्शन हेतु घर आगमन भी हुआ। पू० बोबो के प्रति वात्सल्य के साथ साथ उनका समादर भी बना रहा।

२१. श्री कृष्णानन्द भारती

उत्तर प्रदेश की एकान्तिक पहाड़ियों में वर्षों भजन साधन-रता श्री भारती जी वृन्दावन आ, पूजनीया बोबो का सम्पर्क प्राप्त कर, उस

पूर्वस्थली के आकर्षण को भूलने को कैसे विवश हो गईं, उन्हें भी पता न चला। वे लीला कथा में नित्य ही आतीं। पू० बोबो की आध्यात्मिक अनुभूति से सदैव प्रभावित रहीं, तथा आस्थावान हैं।

पू० बोबो सदा इनके विषय में कहा करतीं, लीला कथा की जितनी समझ इन्हें है- साधारणतः ऐसी होना कठिन ही है, पू० बोबो के व्यक्तित्व के प्रति इनकी आस्था अद्यावधि बनी है।

श्री हित जी महाराज, श्री अतुल कृष्ण गोस्वामी

श्री दीन शरण बाबा जी, श्री गोकुल दास जी

श्री किशोरी रमण जी, श्री शास्त्री जी, बरसाना

डा. अच्युतलाल भट्ट,

श्री कृष्ण दास पंडित जी

उपरोक्त सभी विद्वान पू० बहन जी की विद्वत्ता, विशद् ज्ञान, आध्यात्मिक अनुभूति, श्री ठाकुर सेवा भावना, तितिक्षा, सभी सम्प्रदायों के प्रति श्रद्धा, निकुञ्ज लीलाओं में अभिनिवेश, ब्रज तथा वृन्दावन निष्ठा के प्रति आस्थावान तो रहे ही, साथ-साथ उनकी आध्यात्मिक गरिमा के प्रति श्रद्धावान रहे।

पू. बहन जी ने भी इन्हें समुचित आदर दिया, उनके प्रति समादर भाव रखा।

❑❑❑

चौंतीस

वृषभानुपुर दर्शन की उत्कट इच्छा

दो सखियों के दर्शन तथा अनुभूतियाँ

अभूतपूर्व व्यक्तित्व

यस्याः कदापि वसनाञ्चल खेलनोत्थ
धन्यातिधन्य पवनेन कृतार्थमानी ।
योगीन्द्र दुर्गम गतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥ ***

श्री राधा सुधा निधि ।

वृषभानुपुर के सौभाग्य की गाथा कौन कह सकता है ? जहां श्याम सुन्दर की आह्लादिनी शक्ति श्री राधा सदा-सर्वदा विराजमान हो अपनी माधुरी का प्रसार करती रहती हैं । यह स्थली प्रियाजी की लीलाओं से सिंचित होने के कारण जगतवन्द्य तो है ही, साथ-साथ श्याम सुन्दर के लिये भी प्रणम्य हो गई है । वे भी सदा-सदा इस स्थली का सेवन कर अपना अभीष्ट प्राप्त करते हैं ।

श्याम-सुन्दर को अभीष्ट प्रदान करने वाली वह स्थली सभी के लिये सेवनीय है । प्रिया जी की कृपा कटाक्ष प्राप्त कर लेने पर श्याम-सुन्दर सहज ही सुलभ हो जाते हैं । प्रिया जी की निवास-स्थली श्री वृषभानुपुर दर्शन की उत्कट इच्छा पूजनीया बोबो को आलोड़ित करने लगी । वे मौन तो थी हीं, श्री जी के दर्शनार्थ वृषभानुपुर चली आईं । यहां की स्थलियों में विचरण करती रहीं । श्री जी के निज महल में जातीं, गह्वर वन, सांकरी खोर जातीं, दान-गढ़, मानगढ़ आदि अनेक स्थलियों के वातावरण का, पूर्व में हुई लीलाओं तथा वर्तमान की सुखद माधुरी का आस्वादन कर मग्न हो जातीं ।

दो सखियों के दर्शन

श्री जी के दर्शन करने जाने का इनका नियम ही था । आज

*** अपनी प्राणाराध्या श्री राधा के श्री अङ्गों से किसी समय अठखेलियां करती मादक समीरण के संस्पर्श ने योगीन्द्र दुर्लभ मधुसूदन को झकझोर चञ्चल कर दिया, वे अपने को कृतकृत्य मानने लगे ऐसी धन्याति धन्य पवन निश्चित ही वृषभानु पुर की ओर से आ रही है श्री वृषभानुनन्दिनी की दिशा को प्रणाम है ।

दर्शनार्थ अकेली ही गईं। ऊपर श्री जी के दर्शन किये। लौटते हुए पिछली ओर की सीढ़ियों में किञ्चित् एकान्त देख कर बैठ गईं। संध्या की श्यामलता अपना प्रसार करनेकी आतुरी में सजगता से खड़ी सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रही थी। वहां बैठी पूज्या बोबो, ललिता जी की स्थली 'ऊंचागांव' श्री चन्द्रावली जी के 'रीठौरा' ग्राम की अपूर्व शोभा निहारती रहीं। श्यामलता कुछ और बढ़ने लगी। इन्होंने कुछ समय बाद घूम कर पीछे की ओर देखा। वहीं समीपस्थ एक वृक्ष के पास ही बारह-बारह वर्ष की दो ब्रजवासी बालिकाऐं खड़ी थीं। वेष-भूषा तथा रूप बिल्कुल सादा था। उनकी चहकती वाणी और विचार गाम्भीर्य से सुनिश्चित हो रहा था कि यह दोनों बालिकाऐं इस जगत की नहीं हो सकतीं- फिर भी तत् क्षण यह निश्चय कर लेने में भी कुछ शंका बनी रही। कैशोर्य उनके हाव भाव में झलक रहा था।

मौन होने के कारण पू० बोबो वैसे ही बैठी रहीं। फिर भी कौतूहल वश दृष्टि घुमा, हँसते हुए उनका अभिवादन अवश्य किया। वे बालिकाऐं खिलखिला दीं। एक ने पूछा, 'कहां रहे ?' पू० बोबो ने अंगुली से संकेत कर कुछ कहा। दूसरी तुरन्त समझ गई बोली, 'हां ! वृन्दावन रहे' स्वीकृति सूचक पू० बोबो ने सिर हिला दिया। पुनः वह बोली, 'वृन्दावन रहके कहा करै ?' इन्होंने यों ही हाथ हिलाते हुए संकेत किया कुछ नहीं। अभी इनका संकेत समाप्त भी न हुआ था कि तुरन्त दूसरी ने कहा, 'वृन्दावन रह के भजन करै।' हाथ दिखाते हुए, संकेत से पू० बोबो ने भाव दर्शाया कि मेरे पास माला कहां हैं ? अब वे दोनों ही बालिकाएं बोलीं, 'माला लेकर भजन करने को ही भजन न कहें।' अपनी नम्रता वश पू० बोबो ने पुनः ऐसा ही संकेत किया तो उनमें से एक बोली, 'जो सांस सांस में नाम लैं, वे यों न जाने कि लैवे हैं। जैसे सांस लेते रहें .... पर यों भान थोड़े ही होवै कि सांस ले रहे हैं। ऐसे ही जो निरन्तर नाम लैं, उन्हें कछु भान ना होवै।' जो गिनती ते करैं, सो यों जानें कि हमने इतनौ कियो।'' सार-गर्भित इस बात को सुन पू० बोबो को यह तो निश्चय हो गया था कि यह बालिकाऐं कोई साधारण नहीं हैं- बीच बीच में मन होता कि पूछ लें परन्तु कुछ सुयोग ऐसा नहीं बन सका। उनमें से एक सखी ने पूछा, 'ब्याह भयौ ?' इन्होंने अपने मुख की ओर संकेत कर कहा, मुख तो ऐसौ है ब्याह कैसे होमतो ? दूसरी बोली 'नायँ ब्याह तो सबन के ह्वै जायं' पहली ने तुरन्त कहा, 'ब्याह न कियौ, भजन करवै की ताईं। ब्याह भयौ, श्याम-सुन्दर के संग। उन्हीं की ताईं, भजन करबे को वृन्दावन वास करै। ये हँस पड़ीं। एक ने पूछा, घर में कौन कौन

हैं ? पूर्व परिचित की भाँति दूसरी बोली, 'भैया हैं, भतीजा हैं ।' एक पुनः बोली, 'खर्चा कहाँ ते चलै,' भिक्षा का संकेत करते हुए इन्होंने कहा, 'भिक्षा से, दूसरी बोली, 'भैया भतीजा भेज देते होयंगे ।'

पू० बोबो ने संकेत से पूछा, 'तुम लोग कहां रहौ ?' वे दोनों बोलीं, 'हम तो यहीं रहैं ।'

पूर्व परिचित तथा सर्वज्ञ की भांति उनके प्रश्नोत्तरों से एक कौतूहल बना रहा । बात समाप्त हो गई । संध्या की श्यामलता बढ़ चुकी थी। पू० बोबो अभी इन्हीं विचारों में मग्न वहां बैठी उन बालिकाओं की सर्वज्ञता के विषय में सोचती रहीं- और वे दोनों किशोरियाँ वहां से चल दीं ।

एक कौतूहल तथा आकर्षण तो बना ही था । उन बालिकाओं के जाते ही यह भी चलने को उद्यत हुईं तो घूम कर देखा- वहां कोई भी न था- अब इन्हें अधिक जिज्ञासा हुई और शीघ्रता में इधर-उधर नीचे सभी ओर देखा तो वे किशोरियाँ वहां न दीखीं । वे बालिकाऐं अदृश्य हो चुकी थीं- उनकी पूर्व परिचित तथा सर्वज्ञता पूर्ण बातों से इन्हें लगा निश्चित ही ये दोनों प्रिया जी की सखियां थीं । अपने अपार अनुग्रह और ममता वश प्रिया जी ने इनके पास भेजा था । प्रिया जी की अपार कृपा-ममता का स्मरण कर पू० बोबो आह्लाद में भर, मग्न हो गईं ।

× × ×

हम पूर्व में कह आए हैं कि पूजनीया बोबो नियम से दोपहर को एकांत में चली जाया करती थीं । यह क्रम बरसाना में भी चलता रहा । आज सांकरी खोर के क्रमानुसार मटकी लीला का आयोजन था । प्रिया जी दही की मटकी लेकर सांकरी खोर होती हुई चकसौली ग्राम से बरसाना जाती हैं । नन्दनन्दन सखाओं सहित दान लेने हेतु पूर्व से ही वहीं छिपे रहते हैं । दान लीला का यह आयोजन प्रतिवर्ष उसी भावना से मनाया जाता है । सभी भक्त वृन्द इन समायोजनों को प्रत्यक्ष मानते हैं । अपनी-अपनी भावनानुसार अनेक महज्जनों को प्रत्यक्ष सरस अनुभूतियाँ होती हैं- इतिहास साक्षी है इन सबका ।

इन्होंने भी अपने एकान्त में देखा :-

"प्रिया जी अपनी सखियों सहित सिर पर मटुकी धरे सांकरी खोर से आ रही हैं । अत्यन्त सुहावना समय है । धूप किञ्चित् फीकी है । उस सांकरी गली की ऊंची-नीची पगडंडी से धीरे धीरे कभी एक शिला

वृषभानुपुर दर्शन-अभूतपूर्व व्यक्तित्व

आज कुँवरि के जन्म दिवस पै,
बरसानो सरसानो री।
भीर जुरी वृषभानु भवन मँह,
उमगि रह्यो बरसानो री।।
नाचत गावत जय जय बोलत,
आनन्द उर न समानो री।
या कुँवरी की हँसी बोलनि पै
सबरो गाँव बिकानो री।।
सुन्दरता सुख राशि नन्द सुत
मन मोहन ब्रजरानो री।।
कीरतिजा के रूप जाल मँह
नख–शिख लौं अरुझानोरी।।
सुखद दिवस यह पुनि पुनि आवै
मंगलमूल सुहानो री।।
या उत्सव मँह मगन भयो मन
नेक न अजहुँ अघानो री।।

पर पग धरती हैं- और कभी दूसरी पर, अपना संतुलन ठीक रखने के लिये कभी कभी पूरी तरह झुक जाती हैं- इसी प्रकार पीछे सखी मण्डली चली आ रही है। इधर प्रिया जी के दाईं ओर के वृक्ष झुरमुट में श्यामसुन्दर अपने सखाओं सहित विराजमान हैं । प्रिया जी जब मार्ग के मध्य में आती हैं तो श्याम सुन्दर बड़े ही वेग से उनकी दृष्टि बचा, आ घेरते हैं । यह छेड़-छाड़ सरस रार में परिणत हो जाती है । वे दूध-दही मांगते हैं परन्तु सुरस चाह में पगी प्रिया जी न देने का मिस ढूंढ, चलने लगती हैं । तभी प्रणयावेग को सम्हालने में सर्वथा असमर्थ श्यामसुन्दर गोरस तो लूटते ही हैं और गोरस के मिस जो रस चाहत उसका आस्वादन भी करते हैं ।'' यह सरस लीला पू० बोबो ने देखी, ''उस गोरस से स्निग्ध शिला का पूजन ब्रज वासियों की भांति, श्याम सुन्दर स्वयं भी कर रहे हैं । दधि-दान मिस हुई रार-तरकार में फूटी मटकी के अवशेष सम्हालते-उठाते घूम रहे हैं । ऊपर खड़ी प्रिया जी वहीं से इन्हें देख रही हैं । दोनों ने परस्पर पुनः देखा और रहस्य भरी मुस्कान दोनों के ही मुख कमलों पर पुनः विक्रीड़ित हुई । अब उस रस माधुरी ने हास्य का रूप ले दोनों में एक और ही सरसता का संचार कर दिया ।''

पूजनीया बोबो ने सारी लीला अपने एकान्त में देखी और आनन्दोल्लास में भर मग्न हो गईं । उनकी गाथा को इयत्ता में बांध पाना अत्यन्त कठिन है । अनुभूतियों का क्रम गिना जा सकता है, परन्तु जिसके जीवन का श्वास-प्रश्वास, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक अनुबंध, तथा सम्पूर्ण जीवन ही श्यामा-श्याम के श्री चरणों में समर्पित हो, उनकी बरसती अनवरत कृपानुभूतियों से अनुस्यूत हो, अनुपूरित हो, आप्लावित हो, उसकी गणना कहां तक करे कोई । उनका जीवन असाधारण रहा है, भाव का अनुभूति पूर्ण स्वरूप जो पूजनीया बोबो के जीवन में दीखता रहा तथा समय-समय पर सर्वसाधारण के लिये भी अनुभव गम्य होता रहा, अन्यत्र इस प्रकार की स्थिति असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है । कितने महज्जनों का इस प्रकार का चरित्र हमारे देखने में आया है हम स्वयं इसके साक्षी हैं- स्वयं से पूछ कर तो देखें।

इसी रस स्थिति की, श्यामा-श्याम की शृङ्गार-सुधा-सरिणी की बात कह रही हैं, दिखलाने की बात कह रही हैं, उसके लिये मन का ग्रहणशील होना अनिवार्य है ।

'' शृङ्गार सुना दूंगी, दिखाऊं कैसे ? दीख भी सकता है पर ......'किन्तु- परन्तु' से अवरुद्ध मार्ग कुछ भी देखने और दीखने नहीं देता,

फिर भी अकारण बन्धु, परम प्रिय स्वामी अपनी अहैतुकी कृपा से दूर बैठों को भी मानसिक नेत्रों से सब दिखला सकते हैं, दिखला देते हैं । वे तनिक सी कृपा कर दें अधिक नहीं तो कल्पना .... भाव में शृङ्गार मण्डित-शृङ्गार सज्जित युगल दीख सकते हैं । यह तो उनकी कृपा और अपने मन के ग्रहणशील होने पर निर्भर करता है । यों तो वे कभी भी दूर नहीं हैं - सदा सदा पास हैं- अत्यन्त पास । जहां चाहे- जब चाहे, दीख सकते हैं- इन्हीं नेत्रों को भी- मानसिक नेत्रों को ही नहीं- इन्हीं .... इन्हीं नेत्रों को ...... प्रत्यक्ष बहुत प्रत्यक्ष, इतने प्रत्यक्ष कि हम उनसे कह सकें, हम उनकी सुन सकें, वे सर्व व्यापक हैं, कण-कण में व्याप्त हैं, माधुर्य का वह अथाह रस सिन्धु अपने प्रेमियों में सदा सदा लहराता रहता है, हिलोरें लेता रहता है । अपने प्रेमियों के लिये, प्रेम रिझवार रसिक सुन्दर प्रकट होकर उनकी भावनाओं को सम्हालते हैं, सहलाते हैं । वे 'मनो-मनोज्ञ तल्पशायिनं' हैं न।

शृङ्गार की बात शृङ्गार रस राज के बिना हो नहीं सकती। सचमुच शृङ्गार रसाकुला, परम शृङ्गार मयी यह सुन्दरी किशोरियां यहीं तो अपने को हार गईं, लुटा बैठीं । जहां शृङ्गार की लुभावनी सौरभ है, वहीं शृङ्गार रस के परम लोभी मधुकर यह सांवर-किशोर हैं । बस - फिर - शृङ्गार-शृङ्गारिका- शृङ्गारिणी और अनन्य शृङ्गारी यह, 'शृङ्गार संकुलित किशोर' प्रियतम ।

"जो शृङ्गार इनमें शृङ्गार मद का संचार करके इन्हें ....हां इन्हीं शृङ्गार पोषिता ...... शृङ्गार तोषिता कुमारियों को आकुल-व्याकुल कर, घर घाट से खो ...... बस शृङ्गार के उस अमिय निधान में ही स्थिर हैं वे । कैसी है यह स्थिरता- अत्यन्त अधिक चपलता से पूजित । इस अटपटी स्थली की सभी बातें विचित्र हैं । स्थिरता का चपलता से पूजित होना- और चपलता का स्थिरता द्वारा सेवित होना । दूर से देख- लता झुरमुट में से देख रही थीं कुछ सखियां । एक सुन्दर स्वच्छ रमणीय निकुञ्ज में श्यामल नीरद की तरल चपलता में स्थिर नित्य चपला की स्थिर रूप राशि । वे विस्मित चकित हो गईं, परस्पर कहने लगीं । सखी ! कभी देखना तो क्या ? सुना भी न था, जलद मण्डल में विद्युत स्थिर हुई हो- तभी तो विद्युत को चपला कहते हैं, बीर ! यह तो क्षण को भी कभी स्थिर नहीं देखी- सुनी, पर आज, आज यह अनहोनी कैसे हो रही है ? सभी विमुग्ध थीं, चुप रहीं- देखती रहीं । एक, तनिक स्वस्थ हो बोली, 'अरी बहनो, पगली हो तुम जड़ प्रकृति के पाश में बंधी, नियमों की दृढ़ शृङ्खला में जकड़ी नभ -दामिनी और मेघ की बात

से इन अपने नवीन नीरद सुन्दर और उनके अत्यन्त रसमय हृदयस्थल में मण्डिता अपनी सुकुमारी किशोरी की तुलना कर रही हो। अरी ! सब नियमों का अतिक्रमण कर यह रस बावरे- रस-रंग-तरंगी युगल- ओह ! इनके लीला-विहार, लीला विलास को विराम कहां। वहां इति का प्रवेश ही नहीं है री।'

प्रिया-प्रियतम की निरन्तर सन्निधि में मग्न पू० बोबो की मन:स्थिति का अता-पता कौन पा सकता है ? पा भी ले तो अपने स्तर से ही मूल्यांकन कर सकेगा। उनकी अनुभूति की गहराई तक पहुंचने वाले विरले ही उस थाह तक पहुंच आस्वादन कर सकेंगे। उन विरले जनों में एक अन्य श्रेणी को स्वीकार करना होगा- जहां अनुभूति की अभिव्यक्ति स्वत: प्रस्फुटित हो जाती है- उनका उसे अत्यन्त गोपनीय रखने का भरसक प्रयास रहता है। उनकी चाल-ढाल, रहन-सहन, उनके हाव-भाव नेत्रों में स्थायी रूप से ठहरी प्रिया-प्रियतम की रूप माधुरी, लीला माधुरी तथा प्रिया-प्रियतम की सन्निधि पा, उनकी रसमयी दशा सभी कुछ उनके जीवन में सहज ओत-प्रोत रहता है। कभी कभी समय पाकर प्रकट होता है। लीलाओं की अनुभूति तथा उनमें अभिनिवेश उन्हीं की सरसता में पगा उनका जीवन पग पग पर उनकी मस्ती में उनके स्वभाव में झलकता रहता है यह सब प्रिया-प्रियतम के राग में भीगा अनुराग, उन्हीं के सुख हेतु समर्पित एक आदर्श जीवन, 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में परिपूर्ण व्यक्तित्व तथा एकमात्र अपने प्रेमास्पद के समाश्रय में समर्पित जीवन पू० बोबो का सर्वदा बना रहा।

❑❑❑

पैंतीस

अद्भुत चरित्र

तेभ्यो नमोऽस्तु भववारिधि-जीर्ण-पङ्क
संमग्न-मोक्षण-विचक्षण - पादुकेभ्यः ।
कृष्णेति वर्णयुगल श्रवणेन येषा-
मानन्दथुर्भवति नर्तित-रोमवृन्दः ॥ ***

श्री औत्कलस्य

भक्ति, भक्त, भगवन्त, गुरु चतुर्नाम वपु एक ।
जिनके पद वन्दन किये नासहिं विघ्न अनेक ॥

भगवान, उनकी भक्ति, भक्त तथा गुरु चार अलग शब्द होने पर भी एक ही वपु से सेवनीय तथा वन्दनीय हैं । इनका परस्पर में इतना अधिक सम्बन्ध है कि पूर्णतः सर्व स्वतंत्र होने पर भी एक दूसरे के आश्रित हैं । भक्तों की महिमा का तो बखान ही कौन कर सकता है । श्री नारद जी कहते हैं :

'हृषीकेण हृषिकेशसेवनं भक्तिरूच्यते'

सम्पूर्ण इन्द्रियों द्वारा भगवान की सेवा को ही भक्ति कहा गया है । इस सबमें पूर्ण निष्णात होते हैं भक्त जन । जो व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण वृत्तियों को केन्द्रित कर भगवान की सेवा में पूर्णता से लग जाता है वही भक्त है । अतः प्रिया-प्रियतम को अपनी सम्पूर्ण रागानुरागमयी भावनाओं द्वारा लाड़ लड़ाना ही भक्त का नैसर्गिक स्वभाव है, उसकी वृत्ति है । भगवान ने भक्तों को अपने से भी अधिक श्रेष्ठ मान उन्हें सम्पूर्ण आदर प्रदान कर भक्तों के गौरव को और बढ़ा दिया है । तुलसीदास जी ने 'राम ते अधिक राम कर दासा' कह कर इसी उक्ति की पुष्टि की है ।

भक्तों का स्वभाव अपने प्रेमास्पद को लाड़ लड़ाना- उनके

*** उन महात्माओं के लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है, जिनके कर्ण युगल में 'कृष्ण' ये दो वर्णयुगल कुण्डल धारण करते ही हृदय में प्रेमानन्द का संचार हो जाता है, जिनके रोम रोम नृत्य करने लगते हैं, और संसार सागर के अनादिकाल के वासना व अविद्यामय कीचड़ में निमग्न जीवों की मुक्ति करने में जिनकी पादुका ही विशिष्ट पण्डित हैं । अर्थात् जैसे किसी विशिष्ट भगवत्तत्वज्ञ पण्डित के सदुपदेश से जीव मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार ऐसे महापुरुषों की सेवा करने मात्र से जीव का उद्धार हो जाता है ।

सुख में सुखी रहना ही है, प्रत्युत यह तो उनका जीवन ही हो जाता है । वे प्रयास से कुछ भी कार्य नहीं करते । सहज भाव ही उनमें ओत-प्रोत रहता है, जिनकी महिमा का गान भगवान श्री मुख से करते हैं तो उनके गौरव का क्या ठिकाना । उनमें सहज सभी भगवदीय गुण झलकने लगते हैं । यहां तक कि उनके संकल्प उनकी वाणी, उनकी इच्छा-भावना विचार करते ही मूर्त हो जाती है । कहना होगा कि उनके विचार न करने पर भी, मात्र सद्भावना तदनुकूलता में बदल जाती है । वाणी ऐसे महानुभावों का अनुसरण करने लगती है- यहां तक कि भगवान स्वयं भक्तों के अधीन हो जाते हैं । 'अहं भक्त पराधीनो' अत: भक्तों का गौरव भगवान से भी श्रेष्ठ हो जाता है । विश्व.... नियन्ता के विधान को बदलने तक की सामर्थ्य उनमें भगवत्कृपा से अनायास ही आ जाती है ।

प्रश्न एक ही उठता है कि क्या वे अपनी इस सामर्थ्य का प्रयोग करते हैं ? इसका सीधा उत्तर है कि भगवद्विधान में वे कभी जानकर नहीं अड़ते । प्रयत्न पूर्वक वे कभी भी विश्व नियन्ता के क्रमों में बाधा नहीं बनते और न ही उस विधान का अतिक्रमण करते हैं । परन्तु कभी-कभी उनके अनजाने में ही इस प्रकार के कर्म बन जाते हैं, घटनाऐं घट जाती हैं, अथवा संकल्प उठ जाते हैं- जिन्हें पूरा करने के लिये भगवान को अपना विधान तक बदलना पड़ता है । ये सब क्रियाऐं वे जानकर कभी नहीं करते । चमत्कार के प्रति न तो उनकी कोई आस्था ही होती है- और न चाह कर वे इसका समर्थन ही करते हैं । मुझे याद आती है स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी ने नरेन्द्र से एक बार पूछा, 'अष्ट सिद्धियां लेगा ।' नरेन्द्र ने सीधा सादा प्रश्न पर प्रश्न किया, 'ठाकुर ! इससे मां मिलेगी ।' परमहंस जी ने कहा, 'नहीं ! मां और दूर हो जायेगी' नरेन्द्र ने दो टूक उत्तर दिया, 'मुझे वह कुछ नहीं चाहिये, मां के पास ले जाने में जो बाधक हो ।' परमहंस जी बहुत ही प्रसन्न हुए । राजयोग मार्ग के अनुयायी स्वामी विवेकानन्द ने भी जिन सिद्धियों और चमत्कारों के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई तो भक्तों और उनमें भी रागानुगा मार्ग के अनुयायी महानुभावों का आकर्षण, चमत्कारों के प्रति कैसे हो सकता है ? हां कभी-कभी परिस्थिति और वातावरण के अनुसार उनके मन में जो यत्किञ्चित् सौहार्द जागृत हो जाता है उसे ही भगवान पूरा करते हैं । यह बात निर्विवाद है कि यदि वे चाहें तो अपनी क्षमता से चमत्कारवत् भासता जीवन यापन कर सकते हैं । वे भगवान् की इच्छा में ही अपने संकल्पों विकल्पों को लय कर सङ्कल्प रहित हो जाते हैं ।

इसी प्रकार की स्थिति पू० बोबो की सहज बनी रही। अन्दर तक देखने वाली दृष्टि उन्हें सहज प्राप्त थी। अनेक बार सामने आते ही लोगों के जीवन को पूरी तरह जान जाती थीं। वे इस बात को बड़ी ही स्वाभाविकता में कहा करती थीं "यदि मैं तनिक सा भी अपने मन का योग दूं तो तुम सभी के मन की बात जान सकती हूँ और अनेक बार मेरे प्रभुजी मेरे सामने सब बात स्पष्ट कर देते हैं- परन्तु मेरे पास इतना समय ही कहां है कि श्याम सुन्दर से मन हटा कर तुम लोगों की ओर देखूं।" अनेक बार अनेक बातें वे प्रत्यक्ष बतला दिया करती थीं। उनसे जिन महानुभावों का यत्किञ्चित् भी सम्पर्क हुआ है वे अवश्य ही उनके इस विलक्षण चरित्र से परिचित होंगे। 'मोक्षण-विचक्षण-पादुकेभ्य:' जिन महानुभावों की चरण पादुका भी मोक्ष प्रदान करने में सक्षम हैं- तो उन महानुभावों के लिये क्या असम्भव है ?

वृन्दावन की उपासना रागानुगा मार्ग की है। वहां समर्पण है, पूर्ण समर्पण। प्रेमा-भक्ति 'तत्सुखे सुखित्वं' के परिप्रेक्ष्य में फलित होती है- वहां चमत्कारों के प्रति किसी भी प्रकार की आस्था नहीं है परन्तु महज्जनों के जीवन में कभी कभी इस प्रकार की घटनाएं हो जाती हैं- उन्हें चमत्कार की परिधि में भी रखा जा सकता है। हां ! तो पू० बोबो के जीवन में सहज घटी कुछ ऐसी ही घटनाओं का हम संक्षिप्त परिचय नीचे दे रहे हैं:-

वेश्याओं का उद्धार

पू० बोबो के स्वभाव में इतनी आत्मीयता और भोलापन था कि मानव मात्र के लिये सहज द्रवित हो जाया करता था। अपनी स्नातक-परीक्षा हेतु इन्हें लाहौर जाना पड़ा था- क्योंकि उस समय लाहौर ही विद्या का मुख्य केन्द्र था। सन् १९४६ की बात है वे रेल से जा रही थीं। उसी रेल के डिब्बे में दो अन्य महिलाऐं भी इनके सामने की सीट पर बैठी थीं। छोटी वय तथा शृङ्गार किये वे लड़कियां बीच बीच में पू० बोबो की ओर भी देख लिया करती थीं। किसी प्रसङ्गवश कुछ बात चली, अपने पर ग्लानि करती उन छोटी उम्र की महिलाओं ने कुछ इस प्रकार की बात की, जिसे पू० बोबो का भोला मन समझ न सका। वे दोनों ही फूट फूट कर रोने लगीं। पू० बोबो का मन द्रवित हो गया। उनके स्नेह पूर्ण व्यवहार ने उनको धैर्य बंधाया, एक प्रश्रय दिया। अपना पूर्व परिचय देते हुए उन्होंने कहा, परिस्थितियों ने हमें इस कार्य के लिये विवश किया। समाज में पूर्णत: तिरस्कृत सी, हम जैसी

महिलाओं के प्रति आत्मीयता और सौहार्द कहीं हो सकता है, यह सब कल्पना से परे की बात है। उसके पश्चात् अनेक बातें हुईं। अपनी विवशता और ग्लानिवश दोनों ने ही प्रायश्चित भी किया। पू० बोबो से आश्वासन पा वे महिलाऐं भांति भांति से आभार प्रकट करने लगीं।

पू० बोबो ने श्री सन्तोष बहन जी, सरला बहन जी से कहा था कि कुछ मास बाद उन दोनों का एक पत्र आया। लिखा था आपके स्नेह और आत्मीयता पूर्ण व्यवहार को देख लगा, आपके वेश में जैसे 'खुदा ने अपना फरिश्ता ही हमारे लिये भेज दिया था। अब हम उस घृणित कर्म का त्याग कर सुख से जीवन यापन कर रही हैं।'

× × ×

पू० बोबो के पिता व्यवहारिक जगत में अधिक सफल नहीं हो सके। एक बार किन्हीं व्यक्ति से मिल कर कुछ व्यापार प्रारम्भ किया। रजिस्टर तथा पत्र व्यवहार में इन्हीं का नाम था। इनके जाली हस्ताक्षर कर, दूसरे हिस्सेदार ने कुछ पैसा किसी से ले लिया। स्वाभाविक रूप में उस व्यक्ति ने पू० बोबो के पिता जी पर मुकदमा कर दिया। Summons आ गए। घर में सभी बहुत ही चिन्तित हो गए। इधर पू० बोबो जब घर लौटीं तो इन्हें भी यह बात पता चली। पिता इतने अधिक सज्जन थे कि उन्हें कचहरी के नाम से अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता हुई। रात में पू० बोबो से उन्होंने यह सारी घटना कही- और बोले, 'मुन्नो ! श्री ठाकुर जी से तू कह नहीं सकती ?' उनकी इस स्थिति से इनका मन भी किञ्चित् द्रवित हो गया। श्री ठाकुर जी की ओर पू० बोबो ने देखा, वहां से क्या आश्वासन मिला, बिना बतलाए, यह कहकर कि आप कचहरी अवश्य जावें और अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें, वे लेट गईं। भोर में ही इन्हें श्री ठाकुर जी दीखे, बोले, 'मङ्गल ! परम मङ्गल ! मेरा विधान परम मङ्गलमय है' बस पू० बोबो निश्चिन्त हो गईं।

इनके पिता कचहरी गए तो वहां से पता चला कि वे कागज, अम्बाला शहर कचहरी में भेजे जा चुके हैं। आप वहां जाकर पता करें। जब वे अम्बाला शहर कचहरी में पहुंचे तो पता चला कि वहां कागज पहुंचे ही नहीं। उसके पश्चात् भी पिताजी, एक दो बार कचहरी गए परन्तु इसी प्रकार का उत्तर मिलता रहा।

श्री ठाकुर जी ने इस प्रकार अपनी अनन्या सखी की बात सम्हाल ली।

× × ×

पू० बोबो अभी अम्बाला ही थीं। इनके परिचित एक श्री प्रकाश चन्द्र एडवोकेट का घर पर आना जाना था ही। वे राधा स्वामी परिवार से सम्बन्धित थे। उधर पू० बोबो की श्री ठाकुर सेवा और भक्ति भावना से उनका मन सदा सदा प्रभावित रहता था। एक बार उन्होंने पू० बोबो से कहा इस प्रकार भक्ति भावना, जप पाठ आदि करने में क्या रखा है, कर्म करना चाहिये, सभी के प्रति सद्भाव हो और उनके हित का विचार; अतः ठाकुर सेवा, कीर्तन, आदि करने से क्या लाभ ? ये अभी बहुत छोटी थीं। इन्होंने स्वयं मुझसे यह बात कही थी, मैंने जब श्री ठाकुर जी की ओर देखा तो उन्होंने कहा, 'कह दो उत्तर सांझ में दूंगी।' पू० बोबो यह कहकर निश्चिन्त हो गईं। इधर संध्या में जब मन्दिर दर्शन करने गई तो श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आए हुए थे। उनका प्रवचन था। ये भी वहीं बैठ गईं- उन्होंने अपने प्रवचन का प्रथम वाक्य यही कहा, 'कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग में अन्तर मुख्य रूप से यही है कि सत्कर्म करके हम ऐश्वर्य प्राप्त कर लेंगे। खाने को अच्छा मिलेगा, रहने को अच्छा होगा, पहनने की सुविधाऐं होंगी और ऐश्वर्य की सभी सामग्री प्रस्तुत हो जावेगी, एक धनी स्त्री का कुत्ता हम हो जावेंगे परन्तु भगवान की सन्निधि नहीं प्राप्त होगी।'

पू० बोबो ने आकर श्री प्रकाश चन्द्र जी से जब यह सारी बात बताई तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। इधर श्री ठाकुर जी की कृपा ममता का सम्बल पा पू० बोबो के मन में भी सन्तोष हुआ।

× × ×

आजकल पू० बोबो बड़ी कुञ्ज में डा. साहब वाले मकान में श्री ठाकुर जी सहित निवास कर रही थीं। दोपहर में एकान्त में चले जाने का इनका नियम सा ही था। बात लगभग सन् १९७९-८० की है। विजय के छोटे भाई का सहसा देहावसान २ वर्ष पूर्व हो चुका था। पू० बोबो अपने एकान्त में बैठी थीं। उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी 'विजय से कह दो कि अगर उसके दूसरे भाई का देहावसान हो जावे तो वह चिन्ता न करे।' इन्होंने यह बात दर गुज़र कर दी। उसके कुछ समय बाद फिर वही आवाज़ सुनाई दी। अब इनका धैर्य छूट चुका था। माता-पिता के सामने एक छोटा २२ वर्ष का पुत्र पहले ही जा चुका था। उसके दो वर्ष बाद इस प्रकार की पुनरावृत्ति। ये बेचैन हो गईं।। उन्होंने मां बाप के विषय में सोचते हुए श्री ठाकुर जी से कहा 'घर में मां-बाप पर क्या बीतेगी ।' इधर तीन दिन बाद विजय के

'नहिं जाने निशिभोर,' भाव विभोर, मौन में
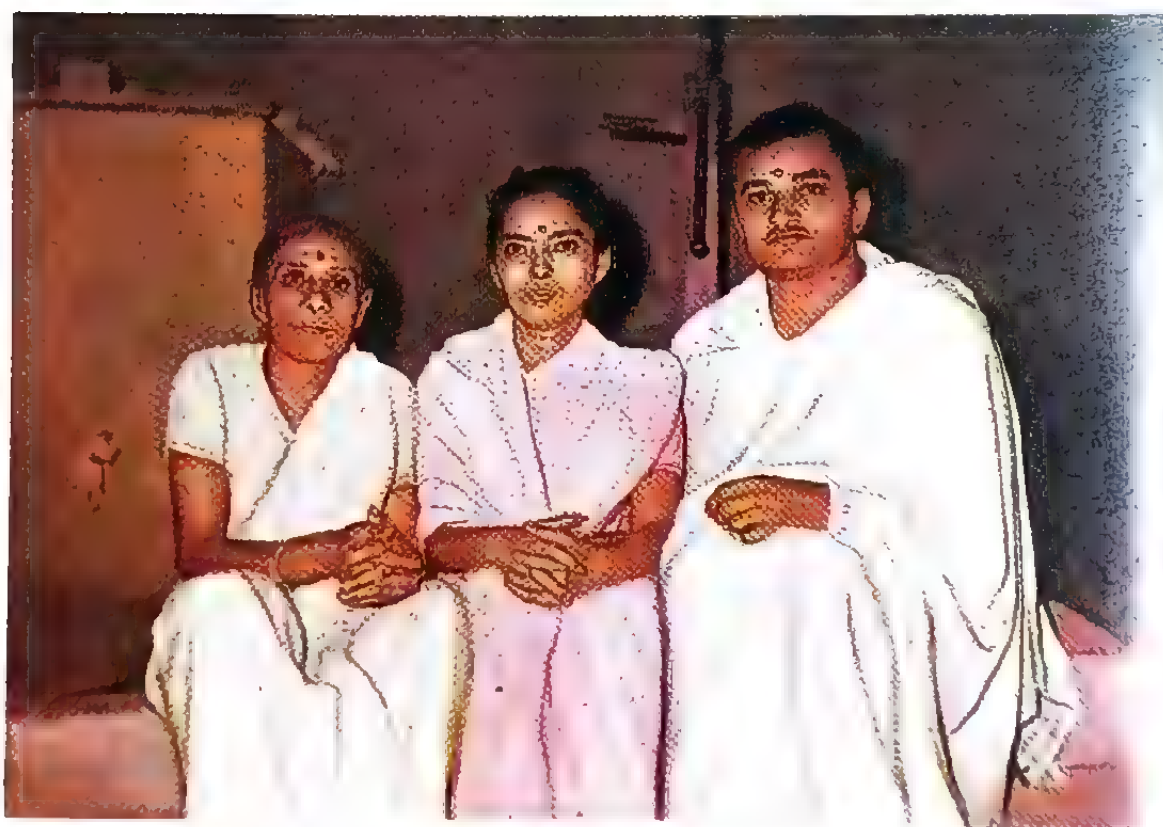
पूजनीया बोबो के साथ पू० सुशीला बहन जी तथा विजय

पास पत्र आया कि जितेन्द्र (भाई) का स्कूटर दुर्घटना ग्रस्त हो गया है और वह हस्पताल में भर्ती है । कुछ ही दिन बाद वह स्वस्थ हो गया ।

यह घटना कुछ दिन पश्चात् पू० बोबो ने स्वयं विजय को बताई थी। थोड़ी सी चोट का भोग भोगने मात्र से मृत्युयोग का संस्कार अशेष हो गया ।

× × ×

पू० बोबो इन दिनों बांके बिहारी कालोनी में ही निवास कर रही थी। मां श्री श्यामा जी, श्री सुशीला बहन जी इनके साथ ही रह रही थीं। घर में सत्संग चलता ही रहता था। भोर और रात्रि के अतिरिक्त भी सत्संग और पाठ का क्रम चलता था। पास ही रह रही थीं श्री विमला नैविल, पुष्पा बहन जी, दर्शन बहन, उमा बहन आदि तथा अन्य भाई बहन। सत्संग में नियम से सभी आया करते थे । कई बार देहली से पू. श्री धर्म बहन जी श्री धाम दर्शन/सत्संग हेतु आतीं । यहां आकर बोबो के पास आना लीला कथा का सुखास्वादन करने का इनका नियम जैसा ही था। इन्हीं के बहनोई श्री राममूर्ति जी तत्कालीन ग्रुप केप्टन I.A.F. incharge बाड़मेर सैक्टर जोधपुर में कार्यरत थे । एक दिन सहसा एक कुर्सीनुमा बैठने का आसन लिये बहन जी श्री मूर्ति जी के साथ पू० बोबो के पास पधारीं। पू. धर्म बहन जी के विषय में हम पहले ही परिचय दे चुके हैं। आते ही श्री धर्म बहन जी ने पू० बोबो से कहा, 'अरी बोबो देख ! श्री मूर्ति जी तेरे लिये बैठने का आसन रूपी उपहार लेकर आए हैं ।' बोबो स्तब्ध सी रह गईं- क्योंकि कुर्सी सेवन वे करती ही न थीं । आजीवन उन्होंने भूमि पर ही बैठने तथा शयन का एक क्रम सा ही रखा। ऐसा नहीं कि उन्होंने कुर्सी का प्रयोग ही न किया हो अथवा न करती रही हों- परन्तु उनकी एक विरक्ति प्रधान भावना थी जिस कारण किसी भी ऐश्वर्य पूर्ण परिस्थिति के प्रति उनकी सर्वथा अनासक्ति ही रहती थी। पू० बोबो ने धर्म बहन जी से जब इसके हेतु के विषय में जानना चाहा तो श्री मूर्ति जी ने धर्म बहन जी के सम्मुख ही यह घटना कह सुनाई, जिन लोगों के सम्मुख यह घटना वर्णन की गई थी उनसे जैसा मैंने सुना उसे यथावत् प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ ।

"सन् १९७१ की बात है मास सितम्बर अक्टूबर में पूर्वी पाकिस्तान वर्तमान बंगला देश में स्वतंत्रता आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा था। इधर भारत का सहयोग भी मुक्ति वाहिनी के उन आंदोलन कारियों को भरसक बना रहा। पश्चिमी पाक की सरकार ने युद्ध में पराजय की ओर घिसटते देख

भारत पर आक्रमण कर अपनी विरोधात्मक भावनाऐं प्रदर्शित कीं। भारत में भी अनेक स्थानों पर बम गिराये जाने लगे। श्री राम मूर्ति जी उन दिनों जोधपुर में बाड़मेर सैक्टर के इन्चार्ज के रूप में नियुक्त थे। उनकी पत्नी श्रीमती जनक, धर्म बहन जी के साथ वृन्दावन आई थीं। पू० बोबो से मिलने भी पधारीं। पू० धर्म बहन जी ने अपने भोले स्वभाव वश पू० बोबो को सम्बोधन करते हुए श्री राम मूर्ति जी के युद्ध में बार्डर पर होने तथा बहन जनक के सौभाग्य की मंगल कामना की बात स्मरण कराई। अपने सहज स्वभाव वश ही जगन्नियन्ता के मंगलमय विधान की बात भी दोहराई। एक पत्नी के लिये इससे अधिक चिन्ता की बात क्या हो सकती है। अपने सहज स्वभाव वश पू० बोबो ने श्री ठाकुर जी के सामने नृत्य करने का बहन जनक से आग्रह किया- यदा कदा श्री ठाकुर जी के सामने नृत्य का क्रम पूर्व में चला ही करता था।

उधर युद्ध चल ही रहा था। बमों और गोलों की निरन्तर बरसती अग्नि के बीच श्री मूर्ति जी एक ओर से भारत की सुरक्षा की बागडोर सम्हाले थे। अपनी इसी व्यस्तता में उन्होंने देखा एक छोटे कदकी, श्वेत वस्त्र धारिणी, घुंघराले बालों वाली एक बहन, पू. श्री धर्म बहन जी के साथ बड़ी ही स्फूर्ति से उनका मार्ग दर्शन करती वहां घूमती उनका संरक्षण कर रही है। किंकर्तव्य विमूढ़ श्री मूर्ति जी उन्हीं दृश्यमय आदेशों का अनुसरण तथा अनुकरण करते जा रहे हैं।

कुछ दिनों बाद युद्ध विराम हो गया। श्री मूर्ति जी अवकाश पर आए। अपने साथ ही जयपुर से एक विशेष कुर्सी बनवा कर लाये तथा यह सारी घटना सविस्तार उन्होंने श्री धर्म बहन जी को सुनाई। वे बड़ी ही प्रफुल्लित होकर कहने लगीं 'निश्चय ही यह हमारी बोबो रही हैं। अभी हम वहां चलेंगे और आपको बोबो से मिलवाऊंगी।'' थोड़ी ही देर में उस कुर्सी को साथ लिये वे पू० बोबो के पास चले आये। देखते ही मूर्ति जी स्तब्ध रह गये। अपनी धारणा की पुष्टि देख प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्होंने साष्टांग अभिवादन किया। किसी भी ब्राह्मण की इस प्रकार की क्रिया पू० बोबो को सुखद नहीं लगती थी- वह एक ओर हट गईं तथा मूर्ति जी की इस विनम्र अभिवादन शैली की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगीं- ओह ! निश्चय ही यह एक कुलीन परिवार की शोभा है।

× × ×

बात अक्टूबर सन् १९७१ की है। भाई बशेशुर श्री मद्भागवत सप्ताह हेतु वृन्दावन आए हुए थे। सप्ताह पाठ के बीच में ही पत्र मिला तथा दूसरे दिन उनके पिता जी की अस्वस्थता का समाचार लेकर छोटा भाई भी पहुंच गया। पाठ समाप्ति पर पू० बोबो ने बशेशुर भाई को बुला कर सारी बात बता दी तथा कहा कि पाठ पूरा सुन कर ही जाओ तो अच्छा है, उन्होंने भी सहर्ष 'हां' कर ली। उसके तुरन्त बाद पू० बोबो ने कहा, 'तुम्हारे पीछे तुम्हारे पिता जी नहीं जाऐंगे- निश्चिन्त रहो।' पाठ समाप्त करके बशेशुर भाई जब घर पहुँचे तो पिता जी पूरे २४ घंटे और जीवित रहे।

पू० बोबो से मिले आश्वासन का सोच बशेशुर आदि सभी बहुत ही सन्तुष्ट हुए।

× × ×

पुष्पा गुप्ता अभी अम्बाले में ही थीं। अस्वस्थ होने के कारण बाहर खाट पर लेटी थी। दूसरी ओर से एक सांड ने आकर उसकी खाट को पलट दिया तथा बहुत ही उग्र हो गया- यह बात यहीं समाप्त हो गई। कुछ दिन बाद वृन्दावन में यह बात जब पू० बोबो को बतलाई तो उन्होंने बहुत ही स्वाभाविकता में कहा, 'यह तो तुम्हारा मृत्यु योग था।' इसका आभास यहां बैठे बैठे पू० बोबो को हो गया था।

श्री लक्ष्मण जू महाराज से परिचय :

काश्मीर के सुप्रसिद्ध सन्त, शिव भक्त श्री लक्ष्मण जू महाराज से सम्पर्क बहुत पहले हो चुका था। उनका बालवत् स्वभाव तथा निश्छल वृत्ति सराहनीय रही।

पू० बोबो के प्रति उनका स्नेह तथा आत्मीयता सर्वदा बनी रही। वृन्दावन वे जब भी पधारते इन्हें अवश्य याद करते। दैन्य की साक्षात मूर्ति पू० बोबो पता लगने पर सर्वदा उनसे मिलने चली जाया करतीं।

श्रद्धेय श्री हरि बाबा को श्रद्धाञ्जली

सन् १९७० का प्रारम्भ होने ही वाला था। श्रद्धेय हरि बाबा अस्वस्थ चल रहे थे। आजकल वे भगवान शंकर की नगरी वाराणसी में ही विद्यमान थे। शीत का प्रकोप पूर्ण यौवन पर था। श्रद्धेय बाबा के नाम से अध्यात्म जगत अपरिचित नहीं है। सहसा उनके धाम-प्राप्ति का समाचार वृन्दावन में अग्नि की भांति फैल गया। अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने भक्तों की भीड़ हरि बाबा के बांध के लिये प्रस्थान करने लगी।

इधर इस समाचार ने पू० बोबो को भी उद्वेलित सा कर दिया, अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हुई वे एक जगह कह रही हैं :-

''आज सुबह (३-१-७०) पूज्य पाद श्री हरि बाबा के निधन की सूचना मिली। उनका तो निधन क्या ? वे तो अपने उस रसमय धन-रस वैभव में ही रत हो गए। यह जो क्षीण सा शरीर का बन्धन था, उससे भी मुक्त हुए पर भगवत्पथ के अनेक पथिक उनके धरा धाम छोड़ने से निर्धन हो गए। ऐसे ऐसे भगवद्भक्तों के रहने से पृथ्वी धन्य होती है, युग गौरव पाता है और जीव कृतार्थ होते हैं, पथ पर बढ़ने वालों को प्रकाश मिलता है और इनके जाने से पृथ्वी सूनी हो जाती है और साधक अवलम्ब हीन से रह जाते हैं।

उन्हीं से प्रार्थना है कि वे महाभाग जिस परम सुख-सिन्धु की शीतलता, मधुरता का जी भर कर आस्वादन करते रहे, कर रहे हैं और करते रहेंगे- उसी का कोई नन्हा सा बिन्दु हमें भी प्रदान करें। उनके जाने से बहुत हानि हुई है। श्री भगवन्नाम का तो वे मूर्त रूप ही थे- यहां वृन्दावन के अनेक उत्सवों की शोभा, धूम-धाम, उनके बिना आधी रह गई- शायद आधी भी नहीं। श्री धाम की महत्ता सर्वोपरि है उनके जीवन में। श्री धाम की गरिमा सन्तों के निवास से द्विगुणित अवश्य हो जाती है- परन्तु श्री धाम का अपना महत्व है, उसका अपना ही योगदान है, अपना ही सौन्दर्य है मूलत: श्री धाम स्वयं ही धूम की मादक स्थली है- यहां की धूम-धाम अक्षुण्ण है, तो भी भारी धक्का लगा है।''

इधर श्री हरि बाबा के आकस्मिक लीला संवरण ने सभी के मन संवेदनशील बना दिये। पू० बोबो का मन भी द्रवित हुआ। परन्तु मन की एक विशेष आकांक्षा वश, प्रिया-प्रियतम की कृपा-कोर की याचना कर उनका मन दैन्य से भर गया।

❑ ❑ ❑

छत्तीस

वृन्दावन पुनरागमन

वैराग्य- सरस अनुभूतियां

संयोगा वेशतोऽन्तर्निजदयिततमां सन्निवेश्याति हर्षोत्-
कर्षोत्फुल्लाखिलांगो विविधवरशुभैर्गुम्फिता मन्दकेशः ।
काशमीरालेप पत्रावलिवर तिलकादिन्य पूर्वानि कृत्वा
देशेदेशे विमृग्यन् हरिरवतु वानस्यालि पुंजे निकुंजे ॥ १***

वृ० म० १५/७०

वृन्दावन के सौभाग्य की गाथा का वर्णन करने की सामर्थ्य ही किसमें है । श्री राधाकृष्ण की रसमय केलि, विलास माधुरी उनके निज धाम श्री वृन्दावन में सदैव, अनवरत गतिमान रहती है । यहां की सरसीली एकान्तिक निकुञ्जों में, यमुना तटीय वन्य-स्थली पर, रमणीय कदम्ब वृक्षों की सघन स्थली में, श्यामा-श्याम का लीला विहार अपने जनों को सुख प्रदान करता रहता है । उन्हीं रसीली लीलाओं में, वहाँ के सरसीले वातावरण में भीगे भीगे प्रेमी जन नित्य यहीं निवास करते हैं, विभिन्न लीलाओं के रसिक पात्र बनकर । अत: पूज्या बोबो सुभग रमणीय वृन्दावन में निरन्तर वास करती रहीं ।

वृषभानुपुर की सुखद अनुभूतियों, वहां की लीला स्थलियों का रसास्वादन कर पूजनीया बोबो वृन्दावन लौट आईं । अभी यह उनके मौन का सन् ६८-६९ वर्ष ही चल रहा था । मौन के दिनों में उन्होंने अपनी दिन-चर्या को बहुत ही कस लिया था । अधिक से अधिक समय व्यस्त रहतीं। आराम बिल्कुल न करती थीं । श्री सखा जी द्वारा प्रदत्त लीलाओं को बड़ी कापी में उतारतीं, श्री ठाकुर जी के शृङ्गार तथा अन्य वस्त्राभूषण बनातीं, उन्हीं दिनों गर्म वस्त्र बुन रही थीं । क्षण भर को भी विश्राम न करतीं ।

*** प्रणय मिलन के आवेश में अपनी प्रियतमा श्री राधा को भीतर ले जाकर अनेक प्रकार के श्रेष्ठ मङ्गलकारी चिह्नों से सर्व अङ्गों को पुलकित करके सुन्दर केश विन्यास करते हुए सखियों ने कुंकुम लेपन, पत्रावलि की अपूर्व भाव से रचना की । श्री वृन्दावन में जहां-तहां सखियों से शोभित निकुञ्जों में उन (श्री राधा) की खोज करने वाले श्री हरि हमारी रक्षा करें ।

क्षमता से परे की दिनचर्या श्याम सुन्दर को अच्छी न लगी। एक दिन श्री ठाकुर जी ने पू० बोबो से कहा, ''लीला भी न उतारो, न सीयो-बुनो, केवल खाली रहो।'' इतने पर भी पू० बोबो लीला उतारती रहीं, श्री ठाकुर जी का शृङ्गार बनाती रहीं, बुनाई और कढ़ाई करती रहीं, परन्तु श्याम सुन्दर को इनकी यह व्यस्तता पूर्ण दिनचर्या सुहाई नहीं। इस सबसे रोकने का उन्होंने एक नया ही मिस ढूंढ निकाला- अब जो भी काम यह करतीं, वह बिगड़ जाता। लीलाऐं उतारीं, वह गलत हो गईं, वस्त्र बनाए, खो गए, आनन्दी-वल्लभ ठाकुर जी की शॉल बुनी वह भी खराब हो गई। ऐसा देख इन्होंने श्री ठाकुर जी से कहा, ''सारा दिन कुछ भी न करूंगी तो शृङ्गार आदि का कार्य पूरा कैसे होगा। लीला भी न उतारूं, तुम्हारे वस्त्र भी न बनाऊं, भला यह कैसे सम्भव होगा।'' आप बोले, 'कुछ न करो, केवल खाली रहो, न बनने दो वस्त्र, न उतरने दो लीला' फिर भी यह बनाती रहीं तो यह सब गड़बड़ होता गया।

दो प्रेमियों की इस प्रणय कलह का न तो कोई तर्क ही है और न कोई कसौटी ही। अपने-अपने सम्बन्ध और अधिकार की बात है। पू० बोबो देख रही हैं कि श्री ठाकुर इनके आराम के लिये इस प्रकार का आयोजन कर रहे हैं, पर 'तत्सुखे सुखी' 'भावापन्न' मन को धैर्य कैसे रहे। इसी के वशीभूत ये कार्य करती रहीं। इसमें श्री ठाकुर जी के किसी आदेश की अवहेलना अथवा अवमानना की बात न थी- यह है प्रेम की विचित्र रसानुभूति।

आनन्दी वल्लभ वाले श्री ठाकुर जी के लिये शॉल बनाई- उसे उधेड़ना पड़ा। इन्होंने पुन: कहा, 'यह तो मैं सहन नहीं कर सकती कि अपने आराम के लिये तुम्हारे वस्त्र भी न बनाऊं।' आप बोले, ''मैं भी सहन नहीं कर सकता, तुम सारा दिन व्यस्त रहो, आराम बिल्कुल न करो। बिल्कुल कुछ नहीं करना है।'' अब हुआ समय का एक अनुबन्ध- निश्चित किया गया कि सुबह दस बजे से सायं छ: बजे के अतिरिक्त समय में कोई भी कार्य न करेंगी। परन्तु कार्य अधिक होने के कारण इनका पुन: किया गया प्रयास भी विफल ही हुआ। इन दिनों कुछ भी न करतीं, खाली ही रहतीं। परस्पर एक दूसरे के सुख का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है क्या ?

मौन की यह अवधि जो प्रिया-प्रियतम के संकेत से प्रारम्भ हुई, (उसी बीच एक माह का काष्ठ मौन भी हुआ) समाप्त हो गई। एक नवीन उत्साह-उमंग में भरी पू० बोबो अपने में ही सुखी तथा मग्न रहने लगीं।

× × ×

शास्त्रीय मर्यादाओं के प्रतिबन्धों में पगा पू० बोबो का आदर्शमय जीवन, परम भागवत चरित्र के रूप में अनुकरणीय रहा। ब्राह्मण वर्ग के प्रति इनमें एक श्रद्धा विशेष थी- एक जगह कहती हैं :

'मंगल मूल बिप्र परितोषू' मंगल के मूल ब्रह्मण्य देव के भी आराध्य, परम मंगलमय ब्राह्मण समुदाय मुझ पर अपनी अनुग्रह दृष्टि रखें ऐसी कामना है। बिप्रबंस की असि प्रभुताई, अभय होई जो तुम्हहिं डेराई' विप्र वृन्द मुझे अपनी अनुकम्पा ही से अभय करके श्री हरि पादारविन्दों की छत्रछाया में छोड़ दें- सदा सदा के लिये। एक क्षण भी जीवन में ऐसा न हो, जिसमें वे न हों, उनकी लीला कथा न हो, उनकी सुखद स्मृति न हो। मेरे जीवन के प्रत्येक पहलू में, प्रत्येक निमिष में वही हों- वही केवल वही। सभी ब्राह्मणों, भगवद्भक्तों से मेरी पुनः पुनः यही प्रार्थना, यही याचना है।'' अपनी मन:स्थिति के विषय में एक जगह पुनः कह रही हैं :-

''मैं सच कहती हूँ कि अन्तरतम से मेरी यही कामना है कि अब मेरा .... मेरा ही नहीं, तुम सब भाई बहनों का भी एक-एक क्षण इन्हीं चिराराध्य प्रियतम में लग जाए। हम सभी की सभी वृत्तियां, सभी आवेग इन्हीं नील सुन्दर की अगाध सौन्दर्य राशि में मज्जित हो जाऐं। विलम्ब के लिये अवकाश ही कहां है ? अब उन्हीं, केवल उन्हीं की अधीनता में, उन्हीं के इंगित को समझ कर हम अति आतुरता पूर्वक क्षण-क्षण उन्हीं की प्रतीक्षा में संलग्न कर दें- जब तक वे प्रेम पयोनिधि स्वयं आकर हमें अपने में विश्राम न दे दें- फिर वे हों .... वे ही हों .... और हम ..... अपने उसी सखी-समुदाय के संग उन्हीं युगल रसनिधि के सान्निध्य सुख में मग्न रहें।''

प्रेम का पथ निराला है। प्रेमी को सन्तोष नहीं। लोभ का संवरण कर पाने में वह स्वयं को असमर्थ पाता है। श्यामा-श्याम की प्रीति की प्रबल वासना उसे प्रतिक्षण उद्वेलित करती रहती है। संसार में जो आकर्षण त्यागने के लिये बार बार चेष्टा करते हैं- जब उन्हीं सब का प्रवाह मुड़ कर श्याम सुन्दर के चरणों में लग जाता है तो एक आदर्श रूप ले वे सभी ग्राह्य हो जाते हैं। श्यामा-श्याम की प्रीति में 'आसक्ति' ग्राह्य है, और उसमें सतत लुब्ध और प्रलुब्ध होते रहना अभीप्सित है। श्याम-सुन्दर की मधुर रस वर्षा से निरन्तर स्नात होते रहने पर भी असंतोष वाञ्छनीय है। इसी सब से विभूषित रहा पूजनीया बोबो का जीवन। जिस सुख का निरन्तर आस्वादन कर सदा

सर्वदा मग्न रहीं, प्रतिक्षण उसकी और–और प्राप्ति की कामना वश स्वयं की उस रसीली स्पृहा को, अन्य सभी बहन–भाइयों की भावनाओं में समाविष्ट कर उस मांग की आपूर्ति हेतु अकुलाती रहीं ।

जहां उनके जीवन में अनुभव है, आस्वादन है, श्यामा-श्याम की सुरस लीलाओं की अजस्र रसधारा प्रवहमान है, वहीं उनकी सतत मांग की प्रबलता, किञ्चित् अभाव में विकलता, अनवरत रसपान की पिपासा– ओह ! कहां तक कहे कोई, पिपासा ही मूर्त होकर प्रकट हो गई हो मानों। जिन महानुभावों को उनके सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अथवा देखने और समझने का सुअवसर मिला है, जिन्होंने उनकी विकलता के क्षणों में उनकी फड़फड़ाती भड़कती पिपासा का रूप देखा है– वे सदैव उनकी स्थिति से भिज्ञ हैं । जहाँ उनके जीवन की गरिमा का स्वरूप हमारे सामने प्रकट होता है, वहीं उससे आप्लावित हो अनुकरण करने को लालायित हो उठते हैं ।

सावन की सजीली शोभा, वर्षा का सरसीलापन, उसमें घनों की घुमड़न, तिस पर पपीहे की पी कहां, मयूरों का सामूहिक सा नर्तन, किसे न अपनी छटा से लुभा लेगा । इन्हीं भावों से उद्वेलित, इन्हीं भावों में ओत–प्रोत पू० बोबो के हृदय की उमंग–तरंगों की थाह कौन ले सका भला? इनके जीवन की प्रत्येक क्रिया श्याम सुन्दर से सम्बद्ध रही, उनकी प्रणय पिपासा का प्रत्येक क्षण श्यामसुन्दर में ही केन्द्रित रहा, उनकी भावनाओं का प्रवाह अनजाने में भी प्रणयी रस सिन्धु में जाकर पूर्ण होता रहा । एक स्थान पर कह रही हैं :-

"बादलों का मौसम मुझे मेरे बहुत बचपन से ही आकर्षित करता रहा है । इस श्यामल सुषमा में घुली–मिली सी– लुक छिप कर झांकती सी– न जाने क्या–क्या है वह वस्तु .... जो सहज ही मन को खींचती है । सघन वारिदों की घनी छाया में तिमिराच्छादित वसुन्धरा .... तमाच्छन्न कुञ्ज निकुञ्जें, लता–विटपों की सघनता में समाई घनी श्यामलता– और फिर कभी दिवस की उज्ज्वलता का उसमें अनायास ही प्रवेश– जलद पटल में को झांकता तरणि मण्डल फिर उसी श्यामल, सुरमयी सी शोभा में अपने अस्तित्व को लय करता सा उजाला और कभी–कभी मेघ आवरण से बाहर निकल भगवान मार्तण्ड का इस समस्त वसुधा को आलोकित कर देना–और फिर कुछ ही क्षणों में उसी घन मण्डल में छिप जाना .... । कैसी है यह आंख-

मिचौनी सी। उधर तरणि मण्डल ने जलधर समूह से तनिक झांका और ब्रज तरुणी मण्डल ने किसी न किसी मिस घर द्वार से निकल वन-प्रान्त का मार्ग पकड़ा। कभी मार्ग में ही इन उज्ज्वल चपलाओं के उस घनश्याम-जलद ने इन्हें घेर लिया ..... और ..... या यों कहो कि इस दामिनी मण्डल ने ही उस नव जलधर को अपने घेरे में ले लिया। कैसे भी हो ..... रस की उच्छलित तरंग मालाओं का वह गम्भीर केलि विलास गतिमान हो गया। बात एक ही है- यह एक ही बात अनेक की है। उन अनेक की एक बात और इन एक की अनेक बातें .... भांति भांति से ..... विविध विधि से जब वन मार्ग में थिरक उठीं .... तो भी परिणाम वही हुआ। एक और अनेक यह समूह तमाच्छन्न निकुञ्जों का प्रिय अतिथि हुआ। यही इनका घर है। यह वन-उपवन, कुञ्ज-निकुञ्जें इनका आतिथ्य करती हैं- मनमानी खातिर-दारी करती हैं और वे रस कोविद प्रियतम अपनी प्रियाओं सहित उस आतिथ्य को स्वीकार करते हैं, अपने अनूठे ढंगों से। दिन भर के केलि-विलास ने रस लालसा को तुष्ट नहीं किया...... पुष्ट अवश्य किया, रात्रि के नीरव क्षणों में तुष्ट होने का आश्वासन देकर ..... संध्या ने अपनी वही सुरसता रजनी के अंक में उँडेल दी। बहुत उदार है वह ..... जिस रसासव में डुबकी लगा वह मोहक हो गई है, उसी में अपनी प्रिया सखी निशा को भी बोरने के लिये अधीर हो गई है- और यह लो ! बोर दिया उसे, उसी अगाध रस-राशि में मत्त हुई यह ब्रज तरंगिणी वृन्द ....।''

उस रस का ब्योरा यह लेखनी कैसे दे? जिसने देखा उसके पास वाणी नहीं है, और जिसके पास वाणी है उसके पास अभिव्यक्ति का अभाव है- परन्तु इन सबमें निहित भावानुभाव प्रकट होने का सुयोग ढूंढ ही लेते हैं।

वे हैं तो परम रसमय- 'मय' नहीं, रस ही रस, मधुराति मधुर .... अत्यन्त शीतल सुरभित ...... पर वे जाने क्यों ज्वाला को भड़काते ही हैं .... हृदयानल शिखा को अपनी प्रणयानिल द्वारा अधिकाधिक प्रज्ज्वलित करते रहते हैं। जिन्हें विरह ज्वाला में तपाते हैं, उनकी तो बात ही क्या? वे तो उस धधक में प्राणों की आहुति देते ही रहते हैं, मर नहीं सकते, भस्म नहीं हो सकते, किसी को अपना सर्वस्व सौंप कर स्वतंत्रता कहां। हां ! तो उन विरह-विह्वला, वियोग-कातरा रमणियों की वेदना उनकी सुलगती ज्वाला का तो कहना ही क्या है? यह चतुर चूड़ामणि जिन्हें सान्निध्य सुख देते हैं, उस जितना दुःख और किसी को नहीं देते। जो दूर हैं, विरह

दग्ध हैं वे तो सुलगते ही रहते हैं, जो मिलन सुख में मज्जित है, संयोग रसाब्धि में अवगाहन करते रहते हैं- वे भी तपते रहते हैं । उनके मन प्राणों में उर अन्तर में भी वही भभक, वही धधक, वही वेदना, वही पीर, उद्दीप्त रहती है । क्षण-क्षण वर्द्धित होती रहती है- कैसी विचित्रता है यह । पर करें क्या? विषामृत है यह । न जाने किस मूर्च्छना से भरा है यह सुख । विष की सी तीव्र वेदना- बेसुधि और अमृत की सी शीतलता, मधु-संचारी रसमयता। यह वेदना का साम्राज्य है पीड़ा की नगरी है, विकलता-विह्वलता का वैभव है। इस नगरी में बावरे ही फंसते हैं ।

वे शमन भी करते हैं- पर शान्त करने के लिये नहीं, और और प्रज्ज्वलित करने के लिये । सभी अनुशासनों को अतिक्रमण करता सा प्यार का निरन्तर प्रवाहित निर्झर ...... सब बन्धनों से मुक्त हैं यह बन्धन । मुक्त जन भी इस बन्धन की स्पृहा करते हैं, पर इनकी परम विज्ञा हैं यह ब्रज किशोरियां- अतः ये ही अपने प्राण प्रेष्ठ की किसी अनुराग-कणिका का तनिक सा वितरण कर उस रस सम्पत्ति से सम्पन्न कर दें- कैसा है यह रसीला प्रेम साम्राज्य ।

अनवरत रस पान करती पूजनीया बोबो, उनकी उमंग तरंग सन्निधि-सुख का आस्वादन कर धन्यातिधन्य तो होती ही रही हैं साथ-साथ, और और की सुरस चाह किञ्चित् अभाव बन उनकी उमंग से मैत्री करने की चेष्टा करती रही है, तो उनकी विकलता उनकी विह्वलता, उनकी मनः स्थिति, रस पिपासा कुल हृदय की रसमयी दशा, उसमें छाई निस्तब्धता, अधीरता का प्रणयोन्माद कहां तक कहें ? इसी रस त्वरा से बौराई सी उनकी वृत्ति पूर्णतः सभी इतर-विचारों, व्यवहारों, अनुबन्धों और प्रतिबन्धों को छिन्न-भिन्न कर प्रिया-प्रियतम के सरस आश्रय में जब समाविष्ट हुई तो उन्होंने मुड़कर देखा ही नहीं । जो देखने योग्य हैं, उन्हें देखकर शेष रह ही क्या जाता है ?

ऐसी रसीली लीलाओं में डूबता उतरता रहा पू० बोबो का मन ।

उनके मन की उमड़न, वर्षा ऋतु के घुमड़ते घनों में, छम छम बरसती फुहारों में, प्रकृति की अलबेली झूम में, तो समाती ही रही, मधु मास का प्रारम्भ भी उन्हें सरसीली भावनाओं से झंकृत कर देता- वे प्रफुल्लित हो उठतीं ।

"फागुन का यह मास बहुत ही सुखद, सरस और रसिक हृदयों में रस कामना को और-और उद्दीप्त करके किसी रस केलि की लालसा को कुरेदता सा उन्हें अधीर कर देता है। प्रकृति भी अंगड़ाई लेकर, अलसाई सी आंखें खोल चारों ओर देखती है। उसके नयनों में नयन डाल कर जब कोई मुस्करा देता है तो उसकी चितवन में उन्माद भर जाता है। वही उन्माद ज्यों ज्यों उच्छलित होता है, त्यों-त्यों छलक-छलक कर सम्पूर्ण वसुन्धरा को रोमाञ्चित पुलकित कर देता है। यह लहलहाते मृदुल कोमल पल्लव, मन्द-मन्द हास बिखेरते सुरभित पुष्प आम्र-विटपों में उदित मञ्जरी- धरा का रोमाञ्च ही तो व्यक्त कर रहे हैं। यह मिलन, नयनों का नयनों से संयोग, चितवन का चितवन विलास, अंगों का अंगों को समर्पण, यह सब इस जड़ जगत की क्रीड़ा नहीं है। यह तो हमारे नित्य चैतन्य प्रकृति-पुरुष, हमारी प्रिया स्वामिनी सखी श्री श्री राधा एवं सखीजनों के संग प्रियतम श्याम-सुन्दर का रस रंग भरा सम्मिलन है .... प्रिया-प्रियतम एवं प्रेयसी मण्डल, झूम-झूम कर, सिहर-पुलक कर अपनी मस्ती के निखार में, सारे ब्रज-मण्डल को उल्लास से भर दिया करती हैं। आज भी प्रेमी-जन, प्रेयसियों के उर-अन्तर उस रसमयी लीला-माधुरी को, उन उमंग-तरंग मालाओं की रसमयता को अपने में भर रहे हैं अनवरत-अविराम। लीला का प्रवाह अबाध है और यह लीला नागर अपनी प्रियाओं में आबद्ध हैं। प्रकृति लीला भूमि को नव-नव सज्जा से सजा रही है। पुष्प-गन्ध वाहिनी बयार सौरभ से वन प्रान्तों को महका रही है- केलि अपनी अधीनता में अनेकानेक पंछियों के कल कूजन से संगीत का आयोजन कर रही है। आकाश अपनी निर्मलता से स्थली का मार्जन कर रहा है- और - और यह ब्रज किशोरियां नव रस रंग विलास का अनूठा मदिर मधुर रंगमञ्च तैयार कर रही हैं। नये नये लीलावतरणों की भूमिका बना रही हैं। नटनागर प्रियतम प्रेयसी मुख्या किशोरी राधिका को संग लिये इस रंग-स्थली में विचर रहे हैं ....। उनके पद तलों की लालिमा इन नये नये किसलय दलों ने अपना उर खोल उसमें समेट ली और झूम उठे। उनकी अंग सौरभ को चुपचाप चुरा त्रिविध समीरण इठलाने लगी। उसे क्या पता कि यह चोरी छिपी नहीं-प्रिया-प्रियतम ने उसे चोरी करते देख लिया है, तभी तो उसके झोंकों से रोमाञ्चित हुए वह मुस्करा दिये ...... उसके बाद क्या हुआ, उसकी साक्षी थी वह वन-निकुञ्जें, त्रिविध समीरण तथा वह सुभग स्थली।

यहां की प्रकृति जड़ नहीं है अपितु लीला का उपकरण

ही है। श्यामा-श्याम की इच्छा जान संकुचित, विस्तृत तथा सघन हो जाती है।

एक बार स्वामी श्री शरणानन्द जी महाराज के प्रवचन में जाने का संयोग प्राप्त हुआ। पू. सुशीला बहन जी, कुछ अन्य बहनें तथा विजय भी साथ था। प्रवचन चल रहा था, संध्या के समय, उनके आश्रम के वर्तमान औषधालय में। उसमें बहुत लोग तो अवश्य न थे परन्तु वह स्थली, आस-पास का क्षेत्र श्रोताओं से भरा था। वहां जाकर अपने दैन्य में भरी, बड़ों को सम्मान देती, अपनी धोती से सिर ढके पू० बोबो भी एक ओर बैठ गईं। सामने की ऊंची ऊंची हरियाली बड़ी ही लुभावनी लग रही थी। स्वामी जी महाराज का अपना एक वातावरण था- उनका अपना एक वैयक्तिक जीवन रहा। बड़े ही सार गर्भित होते थे उनके प्रवचन।

हां! तो प्रवचन प्रारम्भ हुए अधिक समय न हुआ था। प्रवचन सुनते-सुनते पू० बोबो बड़ी ही विभोर हो रही थीं। नेत्र सजल हो रहे थे- और कुछ अन्य मनस्क भाव से यह बैठी थीं। लगता था, इनका शरीर तो वहीं था- परन्तु मन से वे श्यामा-श्याम की लीला का दर्शन मात्र नहीं, उसमें सम्मिलित थीं। एक ही समय में भौतिक शरीर की स्थिति वहीं प्रवचन में सभी के दृष्टिगोचर हो रही थी और यह अपने निजी दिव्य शरीर सहित प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में लीला में रत थीं।

प्रवचन में ही जब सहसा इनके नेत्र उठे, इन्होंने देखा और देखती रह गईं। देखा *श्याम सुन्दर सामने खड़े हैं। स्कन्ध भाग से ऊपर कुञ्चित केश राशि लहरा रही है, उन्मुक्त मुस्कान मृदुल अरुणाधरों पर खेल रही है। सुकोमल सुड़ौल स्कन्धों से पटका ढुरक कर नीचे गिर गया है। वक्षस्थल पर दैदीप्यमान कौस्तुभ मणि अपनी सुशीतल उज्ज्वल प्रभा छिटका रही है। श्यामल कोमल वपु और-और द्युतिमान हो रहा है। पू० बोबो श्याम सुन्दर के दाईं ओर खड़ी हैं, अपने निज स्वरूप में। यहां प्रवचन में बैठा शरीर अपने ही दिव्य वपु को नित्य लीला में प्रियतम श्याम-सुन्दर के समीप देख रहा है। इन्होंने बादामी रंग की रेशमी साड़ी पहनी हुई है, उसी से मिलते-जुलते रंग की कंचुकी धारण कर रखी है। श्वेत मुक्ताओं से बनी कण्ठी, बीच में बड़े बड़े मोती तथा दोनों छोरों की ओर किञ्चित् छोटे होते गए दानों से निर्मित, धारण कर रखी है। साड़ी में से उन मुक्ताओं की आभा द्युतिमान है। बात की बात में श्याम सुन्दर ने इनका शीश अपने वक्षस्थल पर टिका लिया। कुछ*

क्षणों बाद कुछ सम्हले से दोनों एक रसोन्माद में भरे, परन्तु सजगता का अभिनय सा करते वहीं खड़े हैं। श्याम सुन्दर ने अपना चञ्चल कर कञ्ज इनकी कण्ठी पर धर दिया। कर कञ्ज की थिरकन ने सिहरन को निमन्त्रित किया अथवा अपने स्वभाववश उसका प्रवेश हो गया– क्या पता, परन्तु ऐसा लगा जैसे श्याम सुन्दर मुक्ताओं की गणना कर रहे हैं। किञ्चित् संकुचित सी हो, किञ्चित् अनखा कर इन्होंने पूछा– यह क्या कर रहे हो। विनोद कोविद प्रियतम ने रसोच्छलन में भर कहा, ''माला जप रहा हूँ'' श्याम सुन्दर की चपलता से संकोच शीला दिव्य स्वरूप धारी पूज्या बोबो के अधर किसी प्रणय मदभार में दबे से, किञ्चित् विकसित हुए और ध्वनि निसृत हुई ''कौन सा मन्त्र ?'' एक बार पुनः विनोद में भरे श्यामसुन्दर प्रणय भार में दबे से बोले, 'मदन मन्त्र' रसीला यह विनोद मन्द सी मुस्कान में परिणत हो गया। मन्द मुस्कान किञ्चित् हास्य में बदल गई और दोनों ही मुस्करा दिये। इसके बाद क्या हुआ, यह कहना कठिन है। लेखनी उस विषय में मौन है– आस्वादन ही की स्थिति है। वहां से आना भी कठिन हो गया।

घर लौटकर इस घटना का प्रकाश भी पू० बोबो से बार बार श्री सुशीला बहन जी द्वारा पूछने पर अपनी किसी लहर में भर उन्होंने कर दिया था। उसके बाद घंटों उनकी क्या स्थिति रही– कैसे भाव निमग्न रहीं– यह सब लेखनी कैसे कहे ?

इन्हीं भावों में मग्न पूजनीया बोबो वृन्दावन की सुभग स्थली में निवास करती रहीं।

प्रत्येक ऋतु अपने उमगते रसोच्छलन से प्रिया-प्रियतम का सत्कार करती है, प्रत्येक मास अपनी सरसीली भूमि का निर्वाह करते हैं यहां। वृक्ष वल्लरियां अपना यौवन समर्पण करती हैं, दिव्य अनुराग में सिक्त होने की आकांक्षावश तथा 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पालित और पोषित। ओह ! अपने जनों के यत्किञ्चित् से समर्पण को भी श्याम-सुन्दर बड़े ही उमग कर स्वीकार करते हैं, ग्रहण करते हैं, तथा उन्हें अपनी उस अथाह प्यार राशि में सराबोर कर, धन्य कर देते हैं। उनके उस अथाह प्यार में भरे उनके अपने जन, उनकी ओर अग्रसर होने वाले साधकों की मचलती हृदय तरंगों को सींच, उन्हें पोषित कर श्याम सुन्दर के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं, इन्हीं प्रेमी युगल रस विग्रह के सम्मुख। सम्मुख कर स्वयं तो उस रूप माधुरी से आनन्द लेते– लीलाओं में खो जाते हैं और यह साधक वृन्द

सम्मुख हो उसी परिपूर्ण रस में निमज्जित हो छक जाते हैं। यह क्रम चलते ही रहते हैं– अबाध तथा अनवरत। इन्हीं रस कणों से भीगी पूज्या बोबो न जाने किस जगत में स्थित जन, जन को सुलभ रही हैं। सुलभ ही क्या उन्होंने अपना सर्वस्व ही श्यामा–श्याम की नित्य चर्या में समर्पित कर दिया। उनका सा अभूतपूर्व व्यक्तित्व अत्यन्त कठिन है। 'कहनी और करनी' एक होना असम्भव तो अवश्य नहीं, परन्तु दुर्लभ अवश्य है। इनका जीवन दोनों का ही उत्कृष्ट समन्वय बन, सभी का आदर्श बना रहा। ऐश्वर्य प्रधान रहनी का सामर्थ्यवान महानुभावों के लिये उन्होंने कभी विरोध नहीं किया और न ही उनके व्यक्तित्व पर इन्होंने कभी रंच मात्र संदेह किया– प्रत्युत वे सदा कहा करती थीं कि 'जिन महानुभावों की स्थिति एक महान आदर्श को लेकर स्थायी हो चुकी है उनके लिये किसी भी बाह्य आवरण का महत्व विशेष नहीं रहता परन्तु एक आदर्श, एक स्थायित्व तथा आने वाले साधक वर्ग के लिये कहीं भी संशयात्मक वृत्ति का परिचायक हो सकता है– अतः त्याग वैराग्य की भित्ति पर टिका अनुरागपूर्ण व्यक्तित्व निस्संदेह श्रेष्ठतम है यही उनकी परिपक्व धारणा थी' तथा उनका जीवन आद्योपान्त इसी निष्ठा से सर्वथा कसा रहा। यह सभी आदर्श उनके जीवन में नैसर्गिक थे। वैराग्य को उन्होंने आदर्श माना– इसी से श्री रूप जी, सनातन जी तथा श्री रघुनाथ दास गोस्वामी की विचारधारा से वे अधिक प्रभावित रहीं।

एक ओर तितिक्षापूर्ण जीवन यापन करतीं तथा दूसरी ओर श्यामा–श्याम की प्रगाढ़ रति में दृढ़ अनुरक्त, उस रस माधुरी से आप्लावित जिसमें तरंगें नित्य उठती ही रहती हैं, जो परसों मेघाच्छादित दिवसों की सरसीली धारा में सिक्त थीं, तथा कल जिसमें तरंगित हो रही थीं मधु मास की प्रणय–माधुरी, आज श्री यमुना जी की सन्निधि ने उन्हें विवश परवश कर दिया।

''इस नील सलिल में आम और कदम्ब की झुकी शाखाऐं प्रतिबिम्बित हो रही हैं। रसीले युगल जल में सरस केलि वश नवनवोन्माद में भरे, नव नव उमंगों–तरंगों से पूरित– भांति भांति से विहर रहे हैं। परस्पर हृदय का मन्थन तो अपनी अपनी उस छवि से कर ही रहे हैं– उसी मदमन्थन–मन मन्थन के प्रबल प्रभाववश यमुना जल को भी मथे दे रहे हैं। क्यों न हो– यमुना जी हैं भी तो प्राण–प्रिया सखी। उन उच्छलित तरंग मालाओं में सिक्त, उन्हीं से भूषित, युगल श्री के झीने वस्त्र, जल में पुनः पुनः डुबकियां लगाने से नील–गौर कलेवरों से चिहुँट गए हैं। अंग कान्ति छन–छन कर, उस स्वच्छ

सलिल को अभिनव सौन्दर्य सुषमा से झंकृत कर रही है। एक दूसरे के नयन उस तन कान्ति की उन्मादनकारी छलक पर अटके हैं। दोनों परस्पर लुब्ध हैं और मुग्ध भी। दोनों के ही नयन आज मतवाले हो रहे हैं। सहज संकोची प्रिया जी भी कभी कभी नयन पूरे खोल प्रिय-रूप सुधा का उन्मुक्त भाव से पान करती हैं पर सुकुमारी से एकदम झिलता नहीं। वे फिर नयन अर्द्धोन्मीलित कर लेती है और रसिक के नेत्र मदभार से भर निमिष भर को तनिक मीलित से होते हैं पर उन्हें चैन नहीं, तनिक धैर्य नहीं। वे फिर पूरे नयन खोल प्रिया की उस रूप तरंगिणी की उमंग को अवलोक- अपनी सब सुधि-भूल, रस विवश हुए, उन्हें मृदुल, मधुर रस विहार, रसमय विहार, उसकी अथाह रस तरंगों का अता-पता कौन देता- नहीं, नहीं पता है हमें- उनके मुख विधु पर आने वाले मृदु-भाव घनों की उमड़ घुमड़ ने अपनी मौन गर्जना से सुरस रहस्य खोल दिया।

सखियां मुस्कराती रहीं- देखती रहीं। वे स्वयं किसी रस लालसा में पगी थीं। वह रस लालसा क्या थी- कैसे कैसे सत्कृत हुई। उसके सत्कार में कौन सी आवभगत का समावेष हुआ। ओह ! इन ब्रज बावरियों की राग भरी भाव ऊर्मियां प्रियतम के उमड़ते प्रणय के सागर में समाश्रय पा मत्त हो जाती हैं- तथा इन्हीं भावानुभावों में पगा पू० बोबो का मन ब्रज की इन्हीं रमणी वृन्द में, उनकी आकुल-व्याकुल मांग में उनके सत्कार और उसके विभिन्न ढङ्गों में घुल-मिल एक होता रहा तथा उसी का आस्वादन करती मग्न रहीं।

''प्रथम बार'' इन दो शब्दों में कितनी मिठास है। प्रथम-भेंट, प्रथम बार का सम्मिलन, प्रथम रसोद्गार- प्रथम प्रणय की सकुचपूर्ण मूकाभिव्यक्ति, प्रथम रसोद्रेक की उद्दाम प्रवाहिनी, प्रथम रस धारा का उच्छलित वेग, और फिर प्रथम- फिर-फिर रस रंग के आवेग का प्रथम आवेग लिये, इन प्रणयी प्रियतम के उर की मधुर-मधुर तरंगित उमंगें- इन उमंगों से विवश हुए रस निधि का उमग कर चपल हो जाना- अमित मधुवर्षण का प्रथम अवसर, रसीला रंगीला परम मादक। मदोन्मादनकारी- वह मदनोन्मत्त रस दशा। और वह रस रंग की- मद-मधु की प्रथम बौछारें- उन बौछारों से अनायास ही उभय मृदुल कलेवरों में होने वाली सिहरन पुलकन, कम्पन। इन सब प्रथम भाव लहरियों का प्रथम प्रणयाभिवादन, प्रणयानुरञ्जना फिर-फिर वही आवर्त ...... मधु वर्षा सदा-सदा ही नवीन रहती है-

अगणित आवर्त भी इसे पुराना होने नहीं देते, सदा प्रथम ही बनी रहती है, हर बार लगता है, प्रथम बार है ।

पिपासा का, अपने सम्बन्ध का, उसमें उच्छलित भाव तरंगों का, रस रंगों का- अतृप्ति का क्षण-क्षण में आकुल-व्याकुल करती भावनाओं का, हृदय की उमड़ती भाव लहरियों का स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि वह सब आस्वादन करके भी पुनः पुनः आस्वादन करने की लालसा इतनी तीव्रता से होती है कि लगता है यह सब प्रथम भेंट में मिली प्रथम वर्षा के रस कण ही हैं । ऐसी थी पू० बोबो की धारणा । इसी रस में सतत मग्न हुई वे वृन्दावन में विराजमान रहीं ।

प्रथम भेंट तथा रसीली मांग की पुकार सुन वे छबीली-प्रिया कहां संयत रह सकती हैं । उमंगों की सघन घटाओं ने घिर कर युगल रस विलासी को अपने वर्जन तर्जन से अपनी रस बौछारों से न जाने किन किन रसावतारणाओं में संयुत कर दिया होगा- उन्हें भिजो भिजो कर । तन भी भीजे ही थे- मन भी भीग रहे थे । रस तृषातुर रसाब्धि प्रियतम आज भी अभी तक भी उसका उपचार खोज रहे हैं- जल विहार के मिस, वर्षा विहार के मिस, रस झकोरों के मिस ।

❑ ❑ ❑

युगल माधुरी में उठी विभिन्न तरंगें

रास रस उल्लास थिरक्यो
तरणि तनया के पुलिन पै।
हास की छवि बदन पै, ज्यों,
चन्द्रिका छिटकी नलिन पै।।
युग युगों का प्यार मानों
मूर्त हो थिरका विपिन में।।
राग रंग अभंग अनुपम
नृत्य बन ठुमका विजन में।।
कामिनी हरि संग शोभित
दामिनी ज्यों नील धन में।
देखिकै फूले लता द्रुम
चन्द्रमा विहँसा गगन में।।
राग बन अनुराग छलका
नूपुरों की छन–छनन से।।
हाव भाव विलास वैभव
बह चला उन्मद हँसन से।।

प्रथम भाग

दशम अध्याय

पृष्ठ ३९३ से ४४८ तक

मोतन निरखि पीत पट झटक्यो
ठुमकि धर्यो पग मृदु मुस्काने ।
मुरली अधर धरि गान मिसान्तर
मन्त्र पढ़्यो सुनि श्रवण लुभाने ॥

मन्मथ को मन मथत जो
ता सों कहा बसाय ।
मन मंथन करि सांवरो
चेटक चित्त लगाय ॥

(१)

सैंतीस | युगल माधुरी में उठी विभिन्न तरंगें

मौलिश्चन्द्रकभूषणो मरकत स्तंभाभिरामं वपु-
र्वक्त्रं चित्र-विमुग्धहासमधुरं बाले विलोले दृशौ ।
वाचः शैशवशीतला मदगजश्लाघ्या विलास स्थिति-
र्मन्द मन्दमये क एष मथुरा वीथीं मिथो गाहते ॥***

कृष्ण कर्णामृत /५७

'श्यामलेन्दु' ब्रज के भूषण हैं, और उनकी अनन्या प्रिया श्री राधा उनकी चन्द्रिका तथा श्याम विलासिनी प्रियाऐं विभिन्न नक्षत्रों के समान इनके साथ नित्य निरंतर रहती हैं । मयूर पिच्छ धारी यह श्यामल श्री, कुञ्ज-निकुञ्जों में विक्रीड़ित रहती है- ब्रज की प्रत्येक स्थली इनकी रस विलास माधुरी से सिंचित हैं, प्रत्येक वीथि में मत्त गजेन्द्र अपनी मस्ती में भरे, मन्द मन्द मुस्कान से सुशीतल रश्मियों का प्रसार करते, इन ब्रजाङ्गनाओं के नेत्रों को सुख प्रदान करते हैं । वास्तव में यह ब्रजाङ्गनाऐं ही इस रस माधुरी को पान करने में सक्षम हैं । उन्हीं की निज स्वरूपा हैं न ! अत: उस अखण्ड वैभव का आस्वादन इन महाभागाओं के ही सामर्थ्य की बात है, अथवा यत्किञ्चित् रसास्वादन इन्हीं ब्रजाङ्गनाओं की अनुगता, इन्हीं की भावापन्ना, इसी मार्ग का अनुसरण करती गोपी भाव भाविता बालाओं ने किया । एकान्तिकी निष्ठा और एकान्तिकी भक्ति ही गोपी भाव के रूप में पुष्ट हुई है।

हां तो पूजनीया बोबो का मन प्रिया-प्रियतम की रस माधुरी में तल्लीन रहता, एक सरसता में भरा उद्वेलित होता रहता, उनकी इस उमगन को, उनकी इस ललक को, उनकी स्थिति को सही आंक पाने की सामर्थ्य किसी में नहीं हो पायी । फिर भी बीच बीच में उनके नेत्रों से बरसती सरस लहरी, हृदय में समाई बेकली, विचारों में समाई विश्वास किरणें, तथा

*** जिनके मस्तक पर मयूरपिच्छ शोभित हो रहा है, मरकत मणि स्तम्भ के समान मनोहर (कोमल एवं स्निग्ध) वपु है, विचित्र एवं विमुग्ध मुस्कान युत जिनके नेत्र अत्यन्त चपल हो रहे हैं, बाल माधुरी पूर्ण मधुर वाणी है, मदमत्त गज की सी विलास माधुरी सहित ब्रज की वीथियों में अपनी अनुपम संगिनी (श्री राधा) को साथ लिये यह कौन चला आ रहा है ?

चाल ढाल में थिरकती नृत्य गति एक आत्म विश्वास का मूर्त रूप बनी रही। एक तन्मयता विशेष में बन्द नेत्रों में भी किसी से बात करती भ्रू लतिकाएं, उनकी मुद्राऐं, प्रत्येक क्रिया किसी सरस सन्निधि की बात कहती । जहां कहीं यत्किञ्चित् अभाव सा लगा, उनकी वह बेकली भी सरस आश्वासन पा धन्य होती रही । वे धन्य हुई और अन्य सभी को धन्य कर गईं ।

उन्हीं के हृद् सरोवर में उठी विभिन्न रस तरंगों को देख उनके विषय में क्या कहें ? वे कह रही हैं :-

''यह भीषण उत्ताप किसी की रस मांग का द्योतक है । धरती की पिपासा जब भड़क उठती है, प्रकृति का अन्त:करण निस्तब्ध हो, जब घुटने सा लगता है, तब, हां तभी वे घनश्याम, वे कजरारे मेघ उमड़-घुमड़ कर आते हैं । वसुन्धरा पर छा जाते हैं, प्रकृति की जड़ता दूर कर उसे चंचल कर देते हैं, और बरसते हैं, बरसते जाते हैं । अपनी गम्भीर गर्जना में प्यार की अगाध कहानी सी कहते हैं-फिर-फिर बरसते हैं । सम्पूर्ण भूमि को सरसा देते हैं, कुञ्ज-निकुञ्जों में रसमयता उंडेल प्रकृति के सन्तप्त उर को शीतल करते हैं । उस शीतलता को और-और शीतलता, मदिर मधुर शीतलता-रस स्निग्ध शीतलता प्रदान करने, उस विगत भीषण उत्ताप की अवशिष्ट चिरमिराहट पर शीतल स्निग्ध विलेपन करने यह रस राज अपनी प्रियतमा और प्रियाओं सहित प्रकृति के इस हरिताभ आंचल पर आसीन हो, कुञ्ज-निकुञ्जों में, वन उपवनों में, भांति भांति की सरस अठखेलियां कर उन्माद भर देते हैं । रसोन्माद की उस नशीली स्थिति में- रस ही रस थिरकता है, बिखरता है- बरसता है ।

× × ×

श्याम सुन्दर का स्वभाव वर्णन करती हुई एक स्थान पर कह रही हैं :

'ऐसा तो नहीं कि बार-बार पुकारने पर ही वे सुनें- वे तो एक पुकार, अत्यन्त क्षीण और दुर्बल सी पुकार सुन कर भी चौंक उठते हैं- वाणी की पुकार भले ही न हो, मन की पुकार हो, प्राणों की बेकली की पुकार हो, फिर वे प्रत्युत्तर देने में, प्रतिदान देने में चूकते नहीं । हां कभी-कभी कुछ न दीखने पर, मन प्रश्न करता है कि यह सब सत्य है- या भावुकता की बातें हैं, कुछ मांगते से मन की बहक है- क्या यह ? वे सुन नहीं रहे हैं क्या?

और यदि सुन रहे हैं तो मौन क्यों हैं ? अपरिचित से क्यों बने हैं- आदि । इसे और कुछ नहीं- उनका कौतुक ही समझना चाहिये । चैन भंग करने का बेचैन कर देने का-भरपूरता से बेचैन करने का उन्हें शौक है । वे बेचैन करके चैन देते हैं- इस प्रेम पथ में यह बेचैनी परम वाञ्छनीय है । वे करुणा ममता के अगाध सिंधु यों अनजान से बन इसी बेचैनी, बेबसी, बेकली से अपने प्रियजनों, विशेषत: प्रेयसियों का शृङ्गार करते हैं- फिर उस शृङ्गार को सत्कारते हैं- स्वयं अपना सान्निध्य सुखामृत पान करा के; ऐसे अद्भुत प्रियतम और अनन्य प्रेमी हैं यह रसिक शेखर ।'

"हमारे इन युगल प्रणय मत्तों के साम्राज्य में सभी बातें उल्टी हैं । यहां आरम्भ में शान्ति है और अन्त में अशान्ति होती है । जब तक लगन नहीं, इन प्रियतम के लिये, ललक पूर्ण चाह नहीं, तब तक मन शान्त ही शान्त रहता है पर जहां किसी की ममता कृपा ने तनिक सा भी छुआ कि मन अशान्त हुआ, आकुल व्याकुल चाह से प्राण उद्वेलित हुए, सब चैन गया। जब तक वे मिलते नहीं तब तक यों बेचैनी बेकली और जब वे रसिया मिल जायें तो उस अगाध रसामृत को रोम-रोम से पान करने पर भी, मन प्राणों की बेबसी- और-और समेट लेने की विकल कामना- और भर-भर कर भी असन्तोष और अतृप्ति के गर्त में ही उतरते जाना । ओह ! कैसे उस बेचैनी को सहन करे कोई- औरों की बात ही क्या, किसी में सामर्थ्य ही कितनी है- पर इन सर्व समर्थ, परम प्रणयी युगलाराध्य को ही देखो । सदा-सदा व्याकुल बने रहते हैं 'मिलेई रहत मानो कबहुं मिले ना' कैसी विवशता की स्थिति है ? इसी से एक जगह प्रियाजी से कह रहे हैं, 'प्रिये ! भले ही जल तरंगों को कोई जान ले, आकाश में उदित तारों की गणना कर ले, शरीर के रोमों की संख्या जांच ले, पर मेरी प्रेम व्यथा का अनुमान कोई नहीं कर सकता' इसी प्रकार किशोरी जी की बात है, वे कहती हैं, 'सखियों ! मैं नयन भर कभी निहार ही नहीं पाती । पता नहीं मेरा कैसा भाग्य है री, जब उचटती सी दृष्टि से भी उन्हें देखती हूँ तो नयनों में जल भर आता है, फिर भी नयन प्यासे ही बने रहते हैं । रोम-रोम व्याकुल हो उठता है, प्राण तड़पते हैं, पर कुछ बस नहीं चलता; क्या करूं ?"

× × ×

कभी श्याम सुन्दर की मचलती कामनाओं में इनका मन बह जाता और कभी उनकी शृङ्गार भङ्गिमा को निरख उसमें खो जातीं, तन्मय हो जातीं, उसी में खोई सी एक स्थान पर कह रही हैं :-

''यह शोभा-विहारी हैं, शोभा में विहार करते हैं, शोभा से अठखेलियां करते हैं, उसे खूब नचाते हैं और फिर रीझ कर उसे अपने अंग अंग में वस्त्राभरणों में, हाव-भाव में चपल चेष्टाओं में, मुस्कान-विहँसन में, चितवन और भृकुटि-विलास में, वनमाला की लहरान में, पीताम्बर की फहरान में, वंशी स्वर लहरी की अमिय-प्रवाहिनी में, कहां तक गिनाए कोई- अपने सर्वाङ्ग में, अपने सान्निध्य में, सर्वत्र ही तो इस शोभा को ठौर दी है- 'श्री' विलास करती है इनके रोम-रोम में, इनके उदार हास में, इनकी मृदुल आर्द्र जल्पना में, इनके संकेत-इंगितों में, इनकी उठन-बैठन में, चलन-फिरन में। श्री की रमण-स्थली कहा है वक्ष-स्थल को-दोनों ही अर्थों में, कितनी समुचित बात है यह 'श्री' अर्थात् श्री राधिका, ब्रज किशोरिकाऐं ...... इनकी रमण-स्थली है- यह। और 'श्री' शोभा .... शोभा की रमणीय-स्थली है यह पीन उरस्थल- जिसमें समा यह ब्रज आभीरिकाऐं अथाह रस सिन्धु की अगाधता में डूब जाती हैं। यही नहीं, आजानु कमल कोमल कमनीय भुजाओं में, अरुणिम कर तलों में, मृदुल अंगुलियों में- सभी में तो 'श्री' मत्त हुई नर्तन कर रही है, विशाल भाल की स्निग्धता में, उस पर अंकित चन्दन तिलक की बंक रेखा में, मध्य के कुङ्कुम बिन्दु में, लहराती केशमाला में, फहराते मोर पिच्छ समूह में, अनियारे कटीले नयनों में, नयनों में अञ्जित दलिताञ्जन की सूक्ष्म रेखा में- मदनशर सी पैनी और सघन पलकों में, नेत्रों की निमीलन-उन्मीलन में, कपोलों की स्निग्ध-श्यामलोज्ज्वल लालिमा में, अत्यन्त मृदुल विद्रुम से अरुण अधरों में, अधरों में मचलती मुस्कान लहरी के अनायास ही बढ़ कपोलों को छू, लौट आने में- और हास तरंगिणी की मदिर वीचियों के झकोरे जाने से स्वच्छ मुक्तावली सी दमक में, बौराई सी यह शोभा, भांति-भांति से विलस रही है, और-और शोभा माधुरी से भरी जा रही है, इस मधुरिम 'श्री' में विलसित, इससे सज्जित मण्डित, अलंकृत यह शोभा- राशि इसके 'श्री' नाम को सार्थक कर रहे हैं, शायद इसीलिये इस पर अधिक रीझ रहे हैं कि यह इनकी प्राण-प्रिया श्री श्री राधिका के नाम (श्री) वाली है और उन्हीं की विलास पगी मधुरिमा के कण उनसे ले यह और-और रम्य होकर पास आई है- अपना सर्वस्व इन्हें समर्पित कर इन्हीं की, बस, इन्हीं की हो गई है। इसी से इन्होंने भी उसे अपनाया है, ख़ूब अपनाया है, उसके साथ सदा-सदा विक्रीड़ित रहते हैं।

मधुरिमा की अनगिन लहरें अनुक्षण उठ रही हैं। इनके रोम-रोम से छलकती शोभा-माधुरी वृन्दावन की कुञ्ज कुञ्ज में, निभृत

निकुञ्ज में, वन-वीथियों में सर्वत्र भर गई है । पंछियों की कलित कुहुक में, पुष्पित-पल्लवित लता विटपों की महक झकोरों में, इठला-इठला कर बहती त्रिविध समीरण के शीतल स्पर्श में, कुञ्ज-निकुञ्जों की एकान्तिक सुरम्यता में, हुलस कर आती सूर्य-प्रभा की उज्ज्वल रश्मियों में, विहँसते चन्द्रमा की सुहास धारा सी शुभ्र चन्द्रिका की मचलती थिरकन में, लहराते सरोवरों की तरंगित लोल लहरियों में, कलिन्द कुमारी की हिलोरें लेती तरङ्ग मालाओं में- यहां के तरल प्रभातों में, मदमाती नीरव निशाओं में, अलसान भरी सन्ध्याओं की सुरमीली छटाओं में, भोर कालीन शीतल सुरम्यता में, सर्वत्र ही 'श्री' ने निवास कर लिया है, जहां जहां भी युगल पदार्पण करते हैं- यह उनका अनुगमन करती है- नहीं, नहीं, पहले से ही वहां पहुँच उनकी अगवानी करती है, और जब यह उसका अभिनन्दन करते हैं, तो यह हुलस-विलस कर अनेकानेक विधियों से, विभिन्न रूपों से अनन्त गुणा हो, इन्हीं के अङ्ग-सङ्ग में मत्त हो और-और खिल उठती है । यहां के अणु-अणु में 'श्री' ने ठौर ली है इसी से यह वृन्दा विपिन- 'श्रीवन' कहलाता है ।

हां ! तो श्रीवन की निभृत-निकुञ्जों में चलकर देखो- अहा! अहा ! शोभा सिन्धु, माधुर्याम्बुधि उमड़ रहा है- उसमें रूप और लावण्य के दो सुभग सुन्दर चन्द्र खिल रहे हैं । समुद्र में चन्द्रमा का खिलना- कैसी विचित्रता है, इस प्रेम नगरी की । यह चन्द्रमा खिल रहे हैं, कल्लोलित है, आलोलित हैं । बात यों हुई कि 'श्री' को यहां मिला सम्मान-सत्कार, प्यार-दुलार देख, केलि भी ललचा गई और उसने 'श्री' से मैत्री जोड़ी । शोभा और केलि पक्की सहेलियाँ हो गईं । 'श्री' का तो सर्वत्र ही प्रवेश है, वास है- केलि भी इसी की भांति व्याप्त हो गई पर इसे अपने पूर्ण विकास के लिये नितान्त एकान्त वाञ्छित हुआ । यों तो समूह में भी केलि अपना रंग जमाए रखती है, पर एकान्त पाकर तो यह तरंगित हो उठती है- इसके विलासाम्बुधि में उत्तुङ्ग तरंगें उठती हैं- उत्ताल हिलोरें लेती यह कोटि-काम विमोहिनी केलि-कला । श्री वन की सम्पूर्ण 'श्री' को अपने चरण तलों की लालिमा में संजोये सुकुमारी श्री वृषभानु नन्दिनी, जब प्रिय के संग विलसित होती हैं तो केलि विलास का बल, कौतुक उमग-उमग कर आते हैं । इन रसिया नागर का विहारी 'श्री' नाम तब पूर्णता को प्राप्त होता है, जब शोभा और केलि इन नीलारूण युगल चन्द्र की अङ्ग विलासिनी हुईं तो इन दोनों की चिर सहचरियां भी इनका अनुगमन करती चली आईं । 'श्री' की अनुगता, सरस रूप छटा, तरल मधुरिमा, लावण्य-लहरी, सौन्दर्य-सुषमा, अंग सुकुमारता,

सुरंग-अंग-भङ्गिमा आदि तथा केलि की नित्य सहचरी आसक्ति-अनुरक्ति, रति-विनति, मान-मदिरा, मनुहार-चातुरी, सुरस-चेष्टा, कन्दर्प-कला, इत्यादि संग-संग आ गईं। रागानुरञ्जना-रागाभिव्यञ्जना की अनुपम-रस-सृष्टि देख, रसोन्मादी युगल मुस्कराए-परस्पर अवलोकन द्वारा उन सब नवागताओं का अभिनन्दन किया- उनकी लालसा का अनुमोदन किया- और-बस- श्री विहारी का विहार-चपल-चंचल, धीर-गम्भीर विहार- सम्पूर्ण अधीरता, आतुरता बटोरे वहाँ उन्मत्त हो उठा। उन्माद की उस सुरसता में पगे यह उन्मादक युगल भी!

× × × ×

पूज्या बोबो के मन की उमगन- उनकी रागानुराग सिञ्चित् भावनाऐं, प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में रत, मग्न और मत्त होती रही हैं। इसके अतिरिक्त उनकी दिनचर्या, उनकी प्रत्येक क्रिया- प्रिया-प्रियतम को लेकर ही पूर्णता को प्राप्त हुई है। एक ओर उनकी उमड़न ने श्यामा-श्याम का आश्रय- प्रश्रय पाया वहीं उन्हीं रस लहरियों से तरंगित हो कह रही हैं :-

'एक के नहीं- दोनों ही के नयन, मदालस और श्रमालस युत हैं- और इस अलस मधुरिम परिपाक के सेवन से और-और श्रमित होकर निशा के अन्तिम भाग में-निद्रालस, फिर भला अनियारे नयनों का क्या दोष। इन सभी रसालसों से भर मुंदे से आ रहे हैं- पर मुंदे नयनों को चैन कहां? प्रिया के मुंदते से वह विशाल लोचन-फिर चपल हो उठे। वह तनिक झुके, प्रिया के उन मुंदते लोचनों पर क्षण भर में ही अमित-अमिय वर्षा कर, विजय गर्व से भर मुस्कराए, प्रियाजी ने भृकुटि चढ़ा प्रियतम की वह चपल विजय श्री विभूषित मुख मुद्रा निहारी- उस अलस सुषमा मण्डित गौरारुण वदन विधु में अधखिले से वे कमल नयन-तनिक बंक हुए-उनसे कटाक्ष शर छूटे, भृकुटी प्रत्यञ्चा पर चढ़े मदन बाण सीधे प्रिय के नयन मग से होते हुए उनके हृदय में जा लगे पर आज विचित्र बात हुई, जिनके शर लगे, आज वह कम आहत हुए, सम्हल गए और शर संचालन करने वाले प्रिया जी के अनियारे नयन- प्रियतम की उस रसमसी, रस पगी, रस स्थिति को अवलोक अपनी सब सार सम्हार खो बैठे- पर बात और ही हो गई- ठीक लक्ष्य बेध करके भी प्रिया जी, स्वयं ही- पता नहीं क्या हो गया उन्हें? वे ठगी सी रह गईं। इन रसिक शेखर ने क्या जाने कौन सा स्तम्भन मन्त्र पढ़ दिया कि वे प्रियतम की उस भाव भङ्गिमा युत मुख मधुरिमा का पान कर स्तम्भित सी रह गईं। नटखट प्रियतम ने उस अवसर का लाभ उठाया- और पता नहीं फिर क्या-क्या हुआ?

× × ×

''प्रेमियों के धन, भक्तों की सम्पदा, प्रेयसियों के सौभाग्य इन ब्रज-वल्लभ की कोई भी सुखद- सरस बात हो जाये, ऐसा मन है । अपनी तो क्या कहें, उन्हीं का बल है, उन्हीं के बल-भरोसे से चाह भी होती है- चाहे वह क्षीण ही क्यों न हो, वरना अपने में तो धुंधली सी चाह करने का बल नहीं है । उन विषयक किसी प्रकार की चाह भी अपने बल पर सम्भव नहीं है । हम अबलाओं का बल ही क्या है- बस वे ही, केवल वे ही हमारा बल हैं । उन्हीं के बल-भरोसे उन्हीं की सरस लीलाओं के आस्वादन के लिये व्यग्र बने रहें ।''

यह माधुरी, यह रसीली वार्ता, इन्हीं भावों में मग्न हुई पू० बोबो के नेत्रों के सम्मुख विविध केलि कलाओं में निमग्न प्रियतम श्याम सुन्दर की छवि माधुरी झलक गई- एक हर्षोल्लास में भर गईं वे, तथा :-

''ब्रज का- विशेषत: वृन्दावन का कोई स्थल, कोई स्थान ऐसा नहीं, जहां यह कोई न कोई नवल केलि न करते हों । वह देखो ! यमुना तट पर धूम मचा रहे हैं । वह देखो-देखो नवीना बाला ने आंचल सम्हाल मुख पर आती लट को पीछे कर तनिक सम्हाल कर गागर श्री यमुना जल में डाली ही थी कि नटखट ने पीछे से मधुरे स्वर में कोई ऐसा अनुराग राग छेड़ दिया कि उसके अङ्ग अङ्ग में मदन सञ्चार हो गया । गगरी हाथ से छूट गई- आंचल कहीं का कहीं गया- अचेत सी बैठी की बैठी रह गई वह उठकर, भागकर, उन रसिया तक पहुँचने की भी सामर्थ्य न रही और यह लो, वह लुढ़कने को ही थी कि रति रस नागर वृक्ष के पीछे से निकल झटपट पास आ गए । सुभग जान्हु पर उसका शीश टिका, थाम लिया उसे । वंशी ने जिस रसोद्गम से रसपान कर सुरंस बरसा, उसे मूर्च्छित किया था- उसी रस निर्झर से अब उसके मुंदे नयनों पर रस की बौछार होने लगी । उसने नयन खोले, खोले नहीं खोलने चाहे पर किसी की रस वर्षा ने खोलने नहीं दिये, पर खुले नयनों से छलकती मदिरा पान के लोभ से मत्त मधुप प्रियतम ने अब उसे अवसर दिया नयन खोलने का । नयन खुले फिर मुंद गये- अधरों पर रसीली मुस्कान सिमटी-सिमटी सी उभर आई और उस मुस्कान की अपने हास-युत अधरों से अर्चना की, इन रसिक पुजारी ने । क्या पता, कितनी देर लगी- समय का प्रतिबन्ध नहीं था- पर और-और सखियों के आने की आशंका थी । किसी गम्भीरतम रस की भूमिका सा वह सुरस विहार, और-और की त्वरा लगा, आज विराम पा गया । और वह बाला नेह घट भर लाई, इसी का ब्योरा देना पड़ा अपनी सखी सहेली वृन्द को ।

वे किशोरियां परस्पर इन्हीं की मादक चर्चा का बखान करती आ रही थीं। एक ओर ओट में छिप, चतुर चूड़ामणि सुनने लगे। सुन-सुन कर सिहरते रहे। वे किशोरियां उसी-उसी तट पर आ गईं। उस रस विवश बाला को खोई-खोई सी देख जान गईं, हँसकर हाल पूछा। पूछते पूछते स्वयं भी बेहाल सी होने लगीं और उन्हें निहाल करने वे नन्दलाल वहां चले आए, हँसते खिलखिलाते, उनकी बातों को कहीं कहीं से उद्धृत करते, किसी की भङ्गिमा का अनुकरण करते और यह लो ! यमुना घाट पर धूम मच गई। उस धूम में अनङ्ग अपनी समस्त कलाओं सहित बौखला गया। अनन्त केलि समूह मत्त हो थिरक उठा। रागानुराग की शत-शत वार्त्ताऐं मुखरित हो उठीं और रस की उस अतलता में डूब मौन हो गईं। मौन की मुखरता और मुखरता पर अंकित मौन का लेखा !

यमुना तट ही नहीं- पनघट भी तो इसी धूम में गूंज रहा है। होली के दिन दूर हैं पर रस रंग की होली, नैन-सैन की होली, रस बैन की होली, अनङ्ग तरङ्ग की होली को तो विराम नहीं है।

हां ! तो पू० बोबो का मन प्रियां-प्रियतम की लीलाओं में उनकी रसीली चेष्टाओं में, उन्हीं की सन्निधि में नित्य ही खोया-खोया रहता। उनकी भावनाऐं, उनकी प्रत्येक चेष्टा में श्यामा-श्याम की लीला, उनकी कथा-ओत-प्रोत रहती। वे रस-युग्म ही परिव्याप्त होकर जो दिखलाते रहे जो आस्वादन कराते रहे, जिस सरस सिन्धु में उन्हें अवगाहन कराते रहे, जिस वातावरण से उन्हें आप्लावित करते रहे- वही रसास्वाद के कण उनके हृदय सिन्धु में उच्छलित हुए, अभिव्यक्ति हेतु मचल उठे- और उनकी लेखनी के माध्यम से प्रवाहित होते रहे, उनकी गरिमा की गाथा दोहराते रहे, उनके इस मङ्गल वैभव विलास का यत्किञ्चित् वर्णन करते रहे, ब्रज की उस महान विभूति का अता-पता देते रहे, उन्हें, उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है।

मैं लिखने बैठी हूँ; क्या लिखा जाऐगा, कह नहीं सकती। 'नमामि श्री विहारिणम्' ही मन में घूम रहा है पर इस समय का क्लान्त मन ......। यों सारी क्लान्ति, शान्ति इस मधुर मादक प्रवाह में किस क्षण बह जाती है- पता नहीं चलता। पर यह तभी सम्भव है जब यह श्री विहारी स्नेहिल अनुग्रह द्वारा स्वयं ही उस सुरस में बोर देते हैं- और लेखनी स्वतः गतिमान हो जाती है।

"आजकल वसन्त वायु बहने लगी है– इतनी ठंड में भी वसन्त झांकता इठलाता सा चला ही आ रहा है धीरे-धीरे। यह मत्त बयार उसके शुभागमन से हीं यों आनन्द में बौराई सी कभी कभी उन्मत्त गति से चल पड़ती है, अत्यन्त शीतलता बिखेरती अपना उन्माद लुटाती। ऐसे में यह विहार-प्रिय, नव-नव विहार की लालसा, उरमें समेटे– अपने उमगते प्यार की छलकन को रोकने में सर्वथा असमर्थ हुए अपनी प्रियाओं और प्रिया मुकुट मणि श्री राधिका की शरण लेते हैं– उनकी शत-शत मनुहारें करते हैं– प्रणय-याचना करते हैं। और वे सुन्दरियाँ, मदन-मद से आलोड़ित वे नव किशोरियाँ और उनकी रंगीली रसीली सखी श्री राधिका इनकी रसमसी दशा का, इनकी सरस उमंगों के ज्वार-भाटे का, लेखा कौन दे– यह स्वयं विवश हैं– रस विवश, परवश, प्रियवश। बस फिर फिर प्रवहमान होती है रस की वही केलि, जंहां माधुर्य का रसाम्बुधि अपने लावण्य मद से गर्वित हो– इन ब्रज आभीरिका वृन्द को अपने सरसाम्बु से सिक्त-सिंचित कर देता है। कैसा है रस का वह अथाह सिन्धु .... और उसमें सिक्त स्नात यह ब्रज आभीरिका वृन्द !

कोई ऋतु हो, कोई मास हो .... दिन हो अथवा रात हो, संध्या हो चाहे प्रभात हो, मध्याह्न हो अपराह्न हो, इनकी अठखेलियों को विराम नहीं। तभी तो 'विहारी' हैं– नित्य ही विहार रत रहते हैं। झूमते हँसते-खेलते, नव नव विहार विलास की नव नव भूमिकाऐं बनाते हैं और भूमिका जब वस्तु स्थिति का रूप रख तरंगित होती है...... तो ...... स्वयं इन्हें भी सम्हलना कठिन हो जाता है। रस की उस अगाधता को झेलने में एक मात्र प्रिया जी ही समर्थ हैं। प्रियतम की रस ललक जब अत्यन्त वेग से उमग कर आती है उस उमगन को, उस वेग को सहन करने की क्षमता– उसे थाम मधुराश्रय प्रदान करने की सामर्थ्य बस इन रसालया-मुग्ध मोहनाश्रया श्री किशोरी जी में ही है, और उनकी परिपुष्टि, पूर्ण सन्तुष्टि युगल रस निधि के अन्योन्याश्रित रस विहार में भरी रहती है। चाहे यह तुष्टि– अतृप्ति और असन्तोष की स्त्रष्टा है– यही इन ब्रज विहारी को इतना नचाती है। सखीजन समूह को भी जो रस रंग की, सुरस विहार की उन्मादन कारी क्रीड़ाओं का सौभाग्य मिलता है– उसका मूल भी प्रिया जी से रस की पूर्ण तुष्टि जनित .... और-और की अतृप्त ललक ही है।

मदन बन्धु की शीतल समीर के झोंके ने ही ब्रज-विहारी के अन्तस्तल में नव नव राग रस की मदिर उत्कण्ठा जगा दी। उनके उर अन्तर

में हल चल सी भर गई, मन-प्राण चञ्चल हो उठे । उधर नव यौवन उद्यान में वसन्त सी फूली राधिका के कैशोर्य ने अंगड़ाई ली । उनके हृदय में भी एक रसीली खलबली मच गई, नवल मृदुल कामनाओं ने सरस बेचैनी से भर करवटें बदलनी प्रारम्भ कर दीं । वह रसाकुल हो उठीं । पर सहज संकोच शीला किशोरी के लिये लज्जा संकोच की परिधि को लांघ पाना सुगम न था। प्रिय के सान्निध्य की लालसा उन्हें उकसा रही थी- पर संकोच की मेंड उन्हें बाहर पग न धरने देती थी- उनके आकुल-आतुर मन-प्राणों की उथल-पुथल का अनुमान कौन करे ? ओह ! यह लज्जा संकोच ...... । पर सुरस विहारी रसिक शेखर के लिये संकोच के कपाटों का कोई अस्तित्व नहीं। वह उसी तरल आकुलता से प्रेरित रसाधीर हुए सहसा ही भवन से निकल चले और पहुँच गए किशोरी के निजी उद्यान में । प्रेम, बिना नेत्रों के भी, नेत्र वालों से अधिक देखता है, अधिक सुनता है- उसकी गम्यता सर्वत्र है अतः, उन्हें पता न था कि प्रिया वहीं होगी- वह तो अनायास ही वहां पहुँच गये। प्रिया जी को भी विदित न था कि प्रियतम आयेंगे पर जाने क्यों वह विवश-परवश की न्याईं बेचैन हुई वहां कब और कैसे चली आईं- उन्हें भी पता न था। वृक्ष झुरमुट के मध्य एक विशाल वृक्ष का सहारा लिये वे खड़ी थीं- शीतल बयार के झोंके उनके आंचल से अठखेलियां कर रहे थे, उनकी अलक लटों को छू छूकर चपल कर रहे थे । किशोरी राधिका कभी नयन खोलतीं कभी मूंद लेतीं । चैन किसी प्रकार भी न था । अपने अनजाने में ही वे प्रियतम की बाट जोह रही थीं और यह लो सचमुच ही रसिक प्रियतम उसी वृक्ष झुरमुट में आ पहुँचे । उन्होंने प्रिया की वह प्रतीक्षाकुल मधुर मूरति निहारी- दो क्षण को वे ठिठके से खड़े रह गये और फिर झट बढ़ पास पहुँचे- प्रिया के स्कन्ध पर कर धर .... ।

वासन्ती बयार की उन्मत्त झकोरों ने उन्हें और-और रसालोड़न से भर दिया । बसन्त की बन्धुता से पुष्ट मदन ने युगल रस मत्त प्रियतम को नव नव विहार रस से सज्जित कर नवल केलि विलास मन्दिर में प्रतिष्ठित किया । और बस अब क्या था । रस विहार विभव का वह रसोपार्जन.... वह रस संचय.... । मदन अवाक् रह गया । रति ठगी सी खड़ी थी। आज इन दोनों रति, मदन की परिचर्या सफल हुई- आनन्दातिरेक से थिरक उठे वे दोनों और इन रस ग्राही, रस पारखी युगल ने उन्हें अपने अङ्ग सङ्ग का वरदान दिया । अपने उर अन्तर में ही नहीं, रोम रोम में उन्हें ठौर प्रदान की । उस रस केलि सिन्धु की उच्छलित कणिकाऐं आज भी प्रकृति

को अपनी सुरसता से सींचती सी उसे सुमधुर बना रही हैं । युगल का वह रस विहार अब भी गतिमान है- अविराम, सतत, निरन्तर ।

अंग-अंग में मदन, रति को वास दिये यह युगल रसिक नित्य निरन्तर वासन्ती उन्मादकता से भरे, नव नव विहार में रत रहते हैं । यह शोभा की धाम श्री राधिका, प्रियतम से, और यह रस सिन्धु रसिक शेखर, अपनी इन प्रियतमा से नित्य नव नव विलास में मत्त रहते हैं- तभी 'विहारी' नाम है । यों तो इनके तन मन में नित्य वसन्त है, सतत वसन्त विहार रत हैं दोनों, पर फिर भी सभी को सेवा का सुअवसर देने में प्रवीण युगल प्रत्येक ऋतु को अपने विहार रस से सम्पन्न कर उसे सत्कृत किया करते हैं । वसन्त की उन्मादक सुषमा और होली फाग के उन्मत्त विलास की, रस रंग बौछार की, मदन मद भञ्जना, रति रस व्यञ्जना की विविध चल-चपल धाराऐं सवेग गतिमान रहीं- नित्य नया रस कौतुक-नित्य नई रस धूम ब्रज सुन्दरियों और सुन्दरी शिरोमणि राधिका- एवं नव नव विहार प्रिय यह रसिक सुन्दर ब्रजेन्द्र नन्दन........ । सब उस रसाम्बुधि की सबल सलोल लहरियों में मज्जित, सब सुधि भूले थे पर वे सहसा ही चौंक उठे- ऊष्ण बयार के संस्पर्श ने उनमें नई रस कामना जगा दी ।

प्रकृति ने ब्रज वसुधा पर एक नया पट परिवर्तन किया । वसन्त की वह शीतल समीर ग्रीष्म की ऊष्णता ले मन्द-मन्द बहने लगी । पर यह ऊष्णता तन को ताप पहुँचाने वाली न थी । ब्रज वसुन्धरा पर भयंकरता, कुटिलता का प्रवेश निषिद्ध है । उस ऊष्णता में भी नव विहार का सन्देश था। तन तो तप्त नहीं हुए पर मन में मदन ताप भर गया । यह उत्ताप न जाने किस शीतलता की कामना करने लगा- कौन सी रस मयता की याचना करता वहां चला आया । युगल रसोदार प्रियतम ने उसकी अर्चना की और यह लो- वसन्त विहार की उन्मादनकारी चपल चेष्टाओं को जल विहार की शीतलता में उन्मुक्त छोड़ दिया । सरोवरों के स्वच्छ सलिल में कलिन्द तनया के सुनील सुधा रस में वह विहार सम्पूर्णता से उतर नई नई सरस अठखेलियों को तरंगित करने लगा । कुञ्ज निकुञ्जों की सघनता, सघन-श्यामलता, श्यामल एकान्तिकता में ग्रीष्म विहारोत्सव होने लगा । महीन परिधानों ने सुभग सुन्दर गौर श्यामल कलेवरों से झरती अंग कान्ति को स्वच्छंद विहार का सुअवसर दिया । शीतल मणियों की चमक-दमक से उद्भासित निकुञ्जों में उनके वह नील पीत द्युति छिटकाते सुभग गात-बरबस ही मदन को बौरा देते- वह मूर्च्छित सा हो भूमिष्ठ होने लगता और तभी यह युगल रसविद् प्रियतम उसे

सम्हाल लेते- भांति भांति से उसे पोषित कर प्राण दान देते- परस्पर प्राणों को रस झकोरों द्वारा झकझोरते से । कभी कभी चन्द्रिका मण्डित रजनी की नीरवता को अपने रस संग से मुखरित करते प्रियतम, श्री राधा और सखी वृन्द को लिये, श्री यमुना पुलिन पर आ जाते । नौका-विहार के मिस अनंग-विहार, रस-रंग विहार, उमंग तरंग विहार, वहां केलि रत हो जाता- नैया की डगमग में जब प्रिया का सुकोमल तन, मन, कम्पित हो उठता- किसी रस भीति को उस भय में छिपाये, तो- तो अहा ! रस लम्पट की उस समय की मौज ! उसका लेखा कौन दे ?

ग्रीष्म के ताप से प्रकृति अकुला उठी । यहां के कण-कण में भर गया ऋतु परिवर्तन । वृन्दावन में भयंकर ताप का प्रवेश नहीं है, यहां सुहाने वाली ग्रीष्म ऋतु की झकोरें तो उठती हैं- 'सदा वसन्त रहत वृन्दावन' अत: नित्य वसन्त का सा सुखद वातावरण बना रहता है । ग्रीष्म ऋतु ने वर्षा को युगल की सेवा का सुअवसर दिया और स्वेच्छा से- स्वयं वहां से विदा हो गई मुड़ मुड़ कर झांकती सी । घनघोर घटाओं ने उमड़-घुमड़ कर नील गगन को आच्छादित कर दिया । सघन वारिद समूह में से चमकता उज्ज्वल रवि जब क्षण भर को ही जलद पटल से मुख निकाल झांकता तो घनों की श्यामल आभा से आवृत्त अवनि पर उज्ज्वलता छिटक जाती । धूप-छाया की यह आंख मिचौनी इन रसिक युग्म की सुप्त भावनाओं को कुरेदती सी जब निशा के आंचल में मुख छिपा लेती तो सघन घनों के मध्य बाल विधु चपल अठखेलियां करता, कभी तो मुख निकाल अपनी विहँसन से पृथ्वी को जगमगा देता और कभी फिर घन अंक में मुख छिपा लेता । दिन और रात की इस सरसीली सुषमा में युगल मदमत्त किन्हीं. नवल-मृदुल सबल कामनाओं से भर एक दूसरे में समा जाने को-अपनी बेकली की गाथा सुनाने, सुना कर उसका निदान खोजने-पाने, करने में रत हो जाते । तरल समीर के सुख स्पर्शी झोंके उनकी दबी प्रणयाग्नि को प्रज्ज्वलित कर शीतलता लाभ के लिये उन्हें अधीर कर देते । प्रियतम की आतुरी सभी सीमाओं को लांघ रस रंगाब्धि की अगाधता में उतर प्रियाजी के सुशीतल श्री अङ्गों में समाश्रय खोजती और पा जाती । वर्षा - विहार के नव नव ढंग, नव-नव रंग नित्य ही गतिमान रहते । मेघों की गम्भीर गर्जना, दामिनी की चपल-विकल कौंध नन्हीं नन्हीं फुहारों का रस वर्षण और धुंआंधार बौछारों की छमाछम, इनके नित्य रसाकुल उर अन्तर में रस की ऐसी उमंग तरंगे, उठा देतीं कि इनसे सहा न जाता । कभी कैसे और कभी कैसे, उनकी रूप रस माधुरी में उन्मत्त हो

उन्मुक्त रस विहार रत हो जाते । प्रिया जी की रस पगी कामनाएं भी अपनी पूर्ति पा और तरंगित हो उठतीं पर उनका स्वरूप कुछ और ही होता । इन रसिया की रस पिपासा भड़कती ही जाती और रस संचय की अदम्य लालसा अपनी तृप्ति खोजती किशोरी राधिका के अंगोद्यान में विचरण करती उन्मत्त हो जाती और उस उन्माद को सम्हाल पाने में असमर्थ प्रियतम.........। कभी वन में, उपवन में, कभी भवन में नित्य ही वर्षा जनित कामनाओं के वेग का निदान होता पर फिर-फिर वही हाल, वही स्थिति ।

श्यामल छाया में प्रिया-प्रियतम सहज ही विचर रहे थे उस दिन । रस रंग भरी बातें करते, हँसते खिलखिलाते वे उद्यान की हरियाली की सराहना करते टहल रहे थे- कि यह लो, टपाटप, छम-छम वर्षा आरम्भ हो गई । भाग कर सघन वृक्ष की छाया में आ भीगने से बचना चाहा प्रिया ने- वे प्रियतम का कर कमल थाम भाग कर उस विटप तले आना चाहती थीं, पर नटखट प्रियतम ने उनका पाणि पल्लव थाम तो लिया पर भागने नहीं दिया-जान बूझ कर देर करा दी । वर्षा की तीव्र बौछार ने कुछ ही क्षणों में तन वसन भिगो दिये । अब एक नई ही सृष्टि हो गई । रंगीली भावनाओं-कामनाओं का नूतन समारोह हो गया । प्रियतम की सुनील अंग द्युति-उनके पीत-परिधानों में से छलकती-छिटकती ओह ! इस अद्भुत सौन्दर्य को, इस अद्भुत मधुरिमा को सम्हाल पाना अत्यन्त कठिन हो गया । श्री 'विहारी' का यह वर्षा विहार, तृषा-वर्षा विहार प्रतिक्षण नव नव रूप ले नई रस धाराओं में बंट, सब बांध तोड़ बह चला उद्दाम-गति से । वह वेगवती धारा, विहार विलास के वह रसावर्त !

निविड़ तमाच्छन्न निकुञ्ज में विहार रत इन युगल को क्या पता कि वर्षा कब थम गई । बाहर तो वर्षा थम गई पर भीतर रस वर्षा की बौछारें पूरे वेग पर थीं । उस सबकी बात कहने की सामर्थ्य लेखनी में कहां है ? धरोहर रूप में संजोई-अपने हृदय में सम्हाल कर उतार ली- उस निकुञ्जान्तर्गत--वल्लरी समूह ने अथवा वहां वृक्षों और वल्लरियों पर विराजित विहगावली ने, यदि उस स्थिति की कुछ भी जानकारी लेनी है तो चलो- उन विहग समूह अथवा वल्लरी वृन्द से पूछें ।

× × ×

वर्षा विगत शरद ऋतु आई । जाती हुई वर्षा ने भीगे नयनों से एक बार ब्रज की कुञ्ज-निकुञ्जों पर अपनी तरल दृष्टि डाली और चल

पड़ी-अपने प्रवास की अवधि समाप्त करके पुनः आने के लिये। जाते-जाते कई बार मुड़ कर देखा- सलिल मुक्ताओं की बौछार कर विवश सी वह चल पड़ी। प्रिया-प्रियतम की सरस सेवा के सुखद कार्य को शरद सुन्दरी के हाथों सौंप गई। शरद बाला ने इस प्रणय सेवा को बहुत ही सुढंग से सम्पन्न किया। इन युगल केलि-प्रिय के मन-प्राण थिरक उठे, प्रियाओं के उर अन्तर नाचने लगे। इस थिरकन का वेग इतना बढ़ा कि शरद् की उस खिलखिलाती, रस सरसाती पूर्णेन्दु मण्डित राका की प्रशान्त वेला में वे रसिया नागर, रसीली-नागरी और अपने चन्द्र-चन्द्रिका के प्रणय रस की नित्य तृषातुरा वे आभीर किशोरियां, सचमुच ही नील सलिला यमुना के उज्ज्वल, निर्मल, सुकोमल पुलिन पर छम-छम कर नृत्य निरत हो गईं। रस की उस थिरकन को ही रास कहते हैं। कैसी कैसी भाव-भङ्गिमाऐं, अङ्ग भङ्गिमाऐं, रस चेष्टाऐं, कन्दर्प-केलि कलाऐं वहां उमग उमग कर आईं, कैसा-कैसा अद्भुत नर्तन किया कराया उन्होंने ! ओह ! शरद् की वहां एक रात्रि अनेक रात्रियों को अङ्क में ले, इन रस रंग मत्तों की अठखेलियों में बेसुध सी स्थिर खड़ी रह गई। उस अनन्त निशा सम्पन्न रात्रि में अद्भुत रस विनिमय हुआ। रस की वैसी अदम्य उमड़न अभूतपूर्व थी। एक-एक केलि, अनेक केलि कौतुकों की भूमिका बन, पुनः पुनः नव-नव रंग-ढंग से उस अनङ्ग रङ्ग मञ्च पर उदय हुई और रस की वह धूम मची कि रस राज शृङ्गार भी स्तम्भित रह गया। रति रस विहारी के अंग-अंग, रोम-रोम में मदनावेग की वह उमड़न, और इस उमड़न में उमड़ती रस धारा की उत्ताल हिलोरों में मज्जित वे किशोरियां और किशोरीमणि श्री राधिका। रसिक विहारी की रस रास पिपासा को अब भी चैन न था, तृप्ति न थी, सन्तोष न था। प्रिया की काय-व्यूह रूपा उन सुन्दरियों से रस-सञ्चय करते, उन पर रस उंडेलते वे सन्तुष्ट नहीं हो पा रहे थे। क्या पता कब तक यह रस विहार, मद विहार, प्रणय विहार, मदन विहार यों गतिमान रहा। विराम, विश्राम का नाम दे और ही विहार की भूमिका बना ली। प्रियतमा और प्रेयसि समूह को ले- श्रम निवारण हेतु हंस-सुता के शीतल सलिल में उतर आये। उषा कालीन शीतल बयार ने उन सबके श्रम जल मुक्ताओं को समेट कलिन्द कुमारी को समर्पित कर दिया। जल विहार के इस केलि विलास में स्थल विहार भी बौराया सा, कुछ अभाव ग्रस्त सा, स्तम्भित रह गया। सलिल मध्य स्वच्छंद रस विहार को पर्याप्त अवकाश मिला। श्री विहारी का यह अंग श्री विहार, अनंग श्री विहार, रति रंग श्री विहार। विहार की वह भीर आज भी उसी प्रकार है- तनिक छीर नहीं हो सकी ..... न हो सकेगी।

शरद् गई शिशिर ने अपना शिविर ब्रज भुवि पर ला उतारा। पैनी बयार बहने लगी- रस कुरेदना द्वारा इन रसिक सुन्दर में और-और रस संचार करती हुई। अब उस शीत को शान्त करने के लिये- प्रियाजी की श्री से ऊष्णता की याचना करने लगे नटखट। शीत का यह सुरस विहार-सुरस स्थिति का सृजन कर इन युगल रसामृत सिन्धु को संग में ले इठलाने लगा। इन सुरस विहारी ने उसके उपकार को माना और कृतज्ञता पूर्वक उसके सभी रसादेशों का पूरी तरह, तन, मन से पालन करने लगे। शिशिर की ठिठुरन से शीतल हुए कर युगल, ऊष्णता लाभ करने लगे- और फिर- फिर वही- रस विहार, रस श्री विहार। ग्रीष्म में जिन वस्त्राभरणों को अपने विहारकाल में उस रस लाभ से वंचित कर दिया था, शीत ने उन सब को रस केलि सम्पदा समेटने का सुअवसर दिया- और शिशिर बयार से नव नव रसोद्दीपन पा रसमत्त प्रियतम। इन दिनों, मान पत्र स्वतः ही झर गए। प्रणय के, मन्मथ मद के नव-नव अङ्कुर उदय होने लगे। हेमन्त के फरहरे से दिवसों ने इन प्रियतम के केलि विहार मद को और ही नवल ढंग से सज्जित कर- पत्तों की मर मर ध्वनि और वृक्ष लताओं की सरसराहट रूपी वाद्यों द्वारा रस की चुनौती दी इस मदमत्त मदन महीपति को। पहले तो वह आमने-सामने आने में आना कानी करने लगा- पर फिर उसे साहस सा हुआ, यह सोचकर कि उसका अनन्य बन्धु ऋतुराज बसन्त अत्यन्त शीघ्र ही सदल बल उसकी सहायता के लिये आ जायेगा। और बस, फिर क्या देर थी .... वह आ डटा और इन रस रण बांकुरे प्रियतम ने ....। अनंग ने ऐसी मद शर मार कभी नहीं सही थी- ऐसे घात प्रतिघातों से पहले कभी वास्ता न हुआ था- वह भाग खड़ा हुआ पर भागने का बल भी न था। मूर्च्छित हो इन्हीं के पाद पद्मों में लुण्ठित हो गया वह। पाद पद्मों में आये को वापिस कर देना जिनका स्वभाव नहीं है- उन रसिया प्रीतम ने उसे उठा अपने कर कमलों से सहलाया और सत्कृत किया- उसे स्वच्छन्द विचरण की छूट दे दी उन्होंने अपने सान्निध्य में ब्रज निकुञ्जों के प्रत्येक तरु-लतिका को मद से सिञ्चित करने की। बस श्री विहारी का अखण्ड रस विहार चल रहा है, अबाध, निर्बाध गति से। हर ऋतु उनकी सेवा में संलग्न, हर निशि-दिवस उनके विहार में रत- आज भी श्री वन में झूम रहे हैं। आज भी श्री विहारी का वह सुरस विहार सतत गतिमान है।

× × ×

इन्हीं भावानुभावों में निमग्ना पू. बोबो की अनुभूति की परिकल्पना करना, श्यामा-श्याम की लीलाओं में उनका अभिनिवेश, उसकी

सीमा मापना, प्रिया-प्रियतम की सन्निधि की परिधि का ओर छोर ढूंढना, उनके मन की सतत पिपासा की परिधि और उनके हृदय की बेकली को भांपना, उनके मन की सूक्ष्मतम विचार धाराओं की स्थिति, श्यामा-श्याम के लीला विहार की सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव धाराओं का अता-पता पाना, अत्यन्त कठिन है। साधारण भावुकों की बात तो क्या कहूँ ? जिन महानुभावों ने उस निधि का पान किया है, उस वस्तु का आस्वाद लिया है- श्यामा-श्याम की लीलाओं में अभिनिवेश है, उनके लिये भी वह महाविभूति एक आदर्श ही रही है। हृदय-प्रधान व्यक्ति ही इस सबका ओर छोर पा सकते हैं, उनकी उमड़न में निहित भावानुभावों का यत्किञ्चित् ओर छोर पा सकते हैं।

वह महाभागा किस जगत में रहती रहीं, किस स्थिति में बनी रहीं, किस वस्तु का आस्वादन करती रहीं और उसे पा, धन्य हुई स्वच्छंद रूप से निश्चिन्त हुई विचरण करती रहीं, और रस पोषित होती रहीं- यह सब उन्होंने इतना गुप्त रखा, इतना गोपनीय कि किसी को भान ही न हो सका। वे एक निधि थीं, एक विभूति थीं, ब्रज की 'श्री' थीं, वृन्दावन का वैभव थीं, और थीं- ब्रज के युगल प्रणयी रस निधि प्रिया-प्रियतम का रसमय गोपनीय विलास, ब्रज की महान विभूति, ब्रज की महान गोपनीय निधि। उस निधि को पा यह ब्रज के निधि स्वरूप युगल रसनिधि प्रिया-प्रियतम भी निधि-वान कहलाए। आज के युग में इस प्रकार की अभूतपूर्व स्थिति-ऐसी दुर्लभ मानव कृति, मैं उसे महामानव की संज्ञा दूँगा, देखने में सहज नहीं आ सकेगी। जिन्होंने उन्हें देखा है, उनके सम्पर्क में आए हैं, उनकी सङ्गति में रहे हैं, वे भी इनकी इस स्थिति को पहचानने में सर्वथा अनभिज्ञ से ही रहे हैं। आज उनकी कृतियों, उनकी अनुभूतियों के आधार पर, उनकी भावाभिव्यक्ति के स्रोत सुदुर्लभ संग्रहों, पत्रों के आधार पर, उनके निज अनुभवों और काव्य में निहित भावों तथा अनुभूतियों के आधार पर उनके उस महान व्यक्तित्व का यत्किञ्चित् प्रकाश करने की बाल चापल्यवत् चेष्टा मैं अवश्य कर रहा हूँ।

❑❑❑

अड़तीस

वृन्दावन पुनरागमन

रसीली-अनुभूतियां

अनन्तैश्चिज्ज्योत्स्ना रस जलधि पूरैस्ततइतो
वहद्भिर्गोलोकावधि सकलसंप्लावनकरम् ।
अहो सर्वस्योपर्यति विमल विस्तीर्ण मधुर-
स्फुरच्चन्द्र प्रायं स्फुरति मम वृन्दावन मिदं ॥ ***

वृ. श० ४/८३

वृ-न्दा देवी द्वारा संरक्षित होने के कारण तो यह स्थली वृन्दावन है ही, साथ-साथ प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं की स्रष्टा होने से वृन्दावन उत्कृष्टता को प्राप्त हो गया है। यों तो समस्त ब्रज ही प्रिया-प्रियतम के लीला विलास से गौरवान्वित है, परन्तु वृन्दावन का महत्व कुछ और ही है। श्यामा-श्याम की लीला यहां नित्य गतिमान रहती है। प्रिया-प्रियतम की इच्छा जान वृन्दा देवी तदनुकूल परिस्थिति, ऋतुओं तथा वातावरण का निर्माण करने में सक्षम हैं। अतः ऐसी स्थली ही युगल को अत्यन्त प्रिय होने के कारण सेवनीय है।

हां, तो पूजनीया बोबो सप्ताह भर गिरिराज, निवास कर पुनः वृन्दावन लौट आईं। वृन्दावन की वही सरसता उनके रोम रोम को पुलकित करने लगी। इसी रस चर्चा में प्रिया-प्रियतम की रस दशा का वर्णन कर रही हैं :-

''कैसी रस स्थिति है- कैसी अद्भुत रसीली दशा है ? फूलों का हार भी सम्हाला नहीं जा रहा है- क्या करें दोनों रस-बावरे किशोर। आज दोनों ने ही, न मणिहार पहना और न हीरक हार ही धारण किया। पुष्प माल भी सहन नहीं हो रही है। सो, हास-किरणावली का हार ही धारण किया है दोनों ने- वह, उत्फुल्लता उनके हृदय में समा नहीं रही है। शरीर शिथिल हो रहे हैं। श्वास सौरभ प्रवाह से मत्त किशोरी, मदालस से भरी इठला रही हैं। क्या कहें .... कहने में आने वाली बात ही नहीं है .... मन उस

*** वृन्दावन की छवि प्रतिक्षण नवीन है। जहां माधुर्य की तरंगें उच्छलित हो रही हों, प्रेम की सरिणी प्रवाहित हो रही हो, प्रिया-प्रियतम का प्रेम उछल उछल पड़ रहा हो- बस उसी को वृन्दावन कहना होगा। वह वृन्दावन ही है। प्रेम का सहज स्वरूप वृन्दावन है।

अथाह आनन्दाम्बुराशि में डूब अकुला रहा है ...... ओह ! कैसी रसीली, कितनी रंगीली आकुलता है यह । श्री अंगों की उस मृदुल मंजुल शोभा का .... युगल सुन्दर की उस अनुपम रूप निकाई का लेखा भला शब्दों में कैसे बांधा जा सकता है- वह तो नैनों की ही बात है । कैसा है यह सब? नैननि की यह बात .... बात में बात .... बात बात में बात ...... उन बातों से सम्पदा-सम्पन्न नैन और उन नयनों से रस वर्षण, रस संचरण करती बातों से भूषित नयन यह सब भी तो वाणी की नहीं ...... लेखनी की नहीं, नैननि की ही बात है ।

रूप ने; परस्पर के रूप रस पान ने, अरस-परस रस रंग को निमन्त्रण दिया । दोनों ही ललक उठे, रोम रोम की उरझन से झरती पीयूष धारा में मज्जित होने को, अंग अंग के मिलन सुख वारिधि में अवगाहन करने को और लो .... लजीली किशोरी के अन्तर में उमगती रस त्वरा को संकोच परिधि से निकलने में अक्षम पा ..... । प्रिया जी ने संकोच मंडित नयन उठाये ..... प्रियतम के मुखाम्भोज पर क्षण भर को वे अलि शावक से मुग्ध नयन, स्थिर रह गए । फिर क्या पता क्यों वे सहसा ही झुक गए । किशोरी के नयन उठे और झुके पर अपनी कहने को नहीं ...... प्रिय की जानने को, और सचमुच ही..... रसमयी गाथा की पुनरावृत्ति हुई- ओह ! वह राग-अनुराग की अनगिन लहरों में, डूब उतरते यह प्रणयी युगल- रस सागर की अगाधता में मत्त हो गए- और; और फिर की बात, वही सब बात, रसीली बात।

रसीली बातों की कोई इति नहीं और न अथ ही है । रस रंग के मतवारे युगल का प्रतिक्षण और रसोच्छलन की प्राप्ति कर निमज्जन, इस निमज्जितावस्था में केवल बेसुधि नहीं है- वहां रस की हिलोरें उठती हैं । प्रणय का यह गम्भीर समुद्र अपने चन्द्र को देख सुधि विहीन हो वैसा ही बना नहीं रहता । वहां अनगिन हिलोरें उठती हैं- और वे हिलोरें सभी को प्रतिक्षण सींचती रहती हैं ।

शिशिर की पैनी बयार स्वच्छंद विचरने लगी, पर यमुना तटवर्ती निकुञ्जों में उसकी उद्दण्ड गति की गम्यता नहीं । ऐसे सुमधुर समय में किसी सघन सुखसन्दोह निकुंज मन्दिर में, अलबेले युगल, अपनी चपल सरस केलि में रत हो गए । शीतल समीर के झोंके इन्हें नव नव लम्पटता का सुअवसर दे रहे थे । एक ओर के लता झुरमुट में विहँसता बाल चन्द्र दीख रहा था । उस मन्द मधुर प्रकाश में प्रिया जी की रस पगी सुन्दर छवि देख रस लम्पट प्रियतम में और-और उन्माद भरता जा रहा था । उनके नयनों से

बरसती सतत रस धारा ने श्री राधा के नयन मीलित कर दिये। कुछ देर बाद प्रियतम ने उन्हें झकझोरा। प्रिया जी ने अर्धोन्मीलित नयनों से प्रियतम को निहारा। ओह ! उस तनिक सी ही अवलोकन ने .... रस विवश प्रियतम को और और विवश कर दिया। इसी समय चन्द्र किरणों ने प्रिया जी के मनोहर चन्द्राभ वदन को अपने आलोक से पूजित किया और उस किरण मालिका का सत्कार ....। ऐसी मनहर स्थिति में मग्ना पूज्या बोबो के मन की बात को समझने की, सामर्थ्य किस में होती भला ...... वे आस्वादन में रत रहीं– मग्न रहीं।

× × ×

पूज्या. बोबो आजकल बांके बिहारी कालोनी में निवास कर रही थीं। यह इनकी बयालीसवीं वर्ष गांठ थी। सांझ के समय पूज्य सरला जी, सन्तोष जी ने अत्यन्त लाड़ उंडेलते हुए इनके हाथ में चूड़ी पहना दी तथा अपने सेव्य श्री शालिग्राम जी की प्रसादी पुष्प माला पहना दी। चूड़ी पहनने का इन्होंने कभी विरोध तो नहीं किया परन्तु अपने बहुत बचपन से ही इनका चूड़ी पहनना छूट गया था, अन्य बहनों को सुहाग का प्रतीक जता, धारण करने को साग्रह कहतीं और अनेक बार स्वयं खरीदवा, पहनातीं। इधर पू. सन्तोष बहन जी के प्रति इनका समादर भाव भी था– अतः उनके किसी भी स्नेह भरे लाड़ का प्रतिरोध करना इनके लिये असम्भव सा ही था– अतः इन्होंने थोड़े समय के लिये यह सब स्नेहवश स्वीकार कर लिया।

रात्रि में शयन करते समय उस माला को अपने सिरहाने रख लिया। ऐसे ही लेटी प्रिया–प्रियतम की रसमयी भावनाओं में पगी तन्मय हो रही थीं। इन्होंने देखा बाईं कलाई अपने हाथ में ले श्री ठाकुर स्वयं अपना निजी एक स्वर्णिम विविध प्रकार के नगों से जटित कंगन धारण करा रहे हैं। वह कंगन बीच में चौड़ा तथा दोनों छोरों पर पतला होता चला गया– इस आकृति का है। वह कंगन किञ्चित् बड़ा रहा। यह जान कि कंगन हाथ में कुछ ढीला है, प्रिया जी अपना किञ्चित् चौड़े आकार का कंगन, जिसके दोनों ओर छोटे छोटे बजने वाले घूंघरू लगे हैं, धारण करा रही हैं। ये प्रसन्नता में भर विभोर हो गईं।

इस सुअवसर पर दोनों ने पुरस्कृत कर, लाड़–प्यार में सराबोर कर दिया– अपनी अभिन्न हृदया सखी को। भावों में पगी, प्रिया–प्रियतम के सरस आश्वासन और मधुर लीलाओं का प्रतिक्षण आस्वादन करती पूजनीया बोबो श्री वृन्दावन की सरसता में मग्न होती रहीं।

× × ×

श्याम सुन्दर की चरण माधुरी ने सहज अपने में उलझा लिया- उनकी सरस गाथा में मग्न हो गईं वे :-

''इनके यह युगल चरण कमल ...... । अहा ! कैसे कोमल, कितने सुन्दर, कैसे सुरभित हैं ? स्थल कमल, जल-कमल की सभी जातियों ने इनसे होड़ ली, बराबरी करनी चाही पर इस होड़ा-होड़ी में परास्त हो गए वह । भला जिनकी किसी पराग कणिका को ले सम्पूर्ण कमल-वन महक उठते हैं, उन्हीं से बराबरी करके यह कैसे विजय पाते । सचमुच इन कमल समूहों ने उन नीलारुण चरणाम्बुजों से समानता करने का प्रयास करके स्वत: ही पराजय को आमन्त्रित किया । पर सखी ! पराजित होकर कमल वन ने अपने कोष में, अपने मृदुल दलों में, अपनी विहँसन में, अपनी सौरभ में रहने वाली सम्पूर्ण श्री, इन्हीं के पाद पद्मों में अर्पित कर दी । वह भी इनकी इस मंजुलता, मनोहरता उत्फुल्लता में घुल मिल कर, अपने को धन्य धन्य कर और-और पुलक उठी है, खिली जा रही है । उनके चरण कञ्जों की सुवास में कमल सुगन्धि ओत-प्रोत हो, इठलाती सी सम्पूर्ण वृन्दावन में पुलकित हुई विहर रही है । तभी तो सम्पूर्ण श्री वन किसी अद्भुत सुवास से अहर्निश महकता रहता है । कमला देवी स्वयं पद्मालय को छोड़, इन्हीं पाद पद्मों में ही नित्य रहने लगीं । अब तो यही चरण उनकी चिर निवास स्थली हैं । यह चरण-युगल भी तो अपनी झूम से अपनी मदोन्मत्तता से, अपनी चपल-चेष्टाओं से उन्हें, नित्य-निरन्तर मुग्ध रखते हैं- कैसे चपल-चंचल, रसीले-रंगीले चरण युगल हैं यह ।''

× × ×

चरण कमलों की चंचल चपलता से सिक्त पूजनीया बोबो ने देखी इन कर कंजों की अरुण माधुरी । इस अरुण माधुरी ने इनकी हृत्तन्त्री को झंकृत कर दिया- यह झंकृति ! ओह ! इस सरसता ने आप्लावित कर दिया, इसी सरस माधुरी में मग्न हो वे विवश हो गईं- उसी रसस्थिति में उनकी भावनाऐं सहज मुखरित हो गईं ।

किसी एक अंग की बात हो तो कह सुन कर संतोष हो जाए । इन रस घन विग्रह का अंग-अंग, रोम-रोम ही किसी अपूर्व सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य का रम्य आश्रय स्थल है । इनके युगल कर कञ्जों को ही देख लो । इस बांस की पोर को- सूखे काष्ठ को भी अपने दुलारामृत से सींच, युगल करों से सुधा संचार कर, सहला-सहला कर रसमय कर दिया । भांति

भांति के रस विनोदों की, प्रणय प्रसंगों की विधायिका हो गई अब यह । प्रियतम का लाड़ प्यार इस पर उमड़ता ही रहता है । उसे कर कञ्जों में थाम अपना सम्पूर्ण अधर रस उस पर उंडेल नव-नव केलि कौतुकों का सृजन करते हैं नट-खट । शोभा की सीम हैं, यह दोनों मृदुल कर कञ्ज । न जाने किस कला की, सरस विलास की परम परिणति इन कर कमलों की सुमधुरता, मृदुलता, मंजुलता में समाई सी, अभिनव-मदन-पर्व का मंगल आयोजन किया करती है, और फिर उससे कन्दर्प नगर की साम्राज्ञी श्री राधा रानी और उनकी प्रणयिनी सखी-सहचरियों का अभिषेक होता है । प्रणय महोत्सव में नव नव कलाओं का उद्घाटन करके सम्पूर्ण कला विलासों का अतिक्रमण करने वाले हैं यह युगल पाणि पंकज । इन चंचल कर द्वय को नित्य नई चपलता सूझती ही रहती है । तनिक भी स्थिर नहीं रहते यह । इनकी स्थिरता में भी एक चपलता है, और इनकी चंचलता में भी एक स्थिरता का समावेश है । विचित्रता की भी सीमा है, यह कर कञ्ज । तभी तो वंशी पर थिरकते हैं । उस वंशोद्भवा को अपनी कोमल अंगुलियों से गुदगुदाते ही रहते हैं । कभी मृदुल अंगुलियां रखते हैं, कभी उठाते हैं । विनोद प्रणयी जो ठहरे। इन्हीं कर सरोजों से यह कन्दर्प देवता की अर्चना करते हैं, वन्दना करते हैं, उसकी सेवा-पूजा करते हैं, उसकी राग रंजित अभ्यर्चना करते हैं । कन्दर्प कला-विलास की, स्मर शिल्प की, मदन श्री की असीमता ही सिमट कर इन युगल कर सरोरूहों में अद्भुत केलि माधुरी बन छलक पड़ती है ।

× × ×

कर कञ्जों की सरसता ने बाहु-द्वय के उद्वेलन में, सरस-स्निग्धता का संकेत किया और यह रस ललक उत्कट लालसा बन छा गई।

यह बाहुद्वय भी तो गज़ब ढाती हैं । ब्रज सुन्दरियों ने अपने उर अन्तर के, अपने मन प्राणों के सम्पूर्ण राग से इन भुज वल्लरियों का सिंचन किया है । उनके प्यार का भाजन हैं, यह बाहु युगल । वे इन पर लाड़ उंडेलती हैं । भांति-भांति की मन्मथ माधुरी से इन्हें सींचती हैं, अपने उर में उमगते अनुरागाब्धि से इन्हें मज्जित करती हैं और वह भुज-युगल भी अपनी माधुरी धारा से, अपने अनुराग सुधा सलिल से, अपनी अपार रस राशि से, इन ब्रज कुमारियों को मज्जित करते हैं । परस्पर प्रणय विनिमय की माधुरी धारा की अमिय रसप्रवाहिनी- यह युगल भुजाऐं । किसी प्रबल अनङ्ग-तरङ्ग से उद्वेलित .... यह बाहुद्वय जब .... इन प्रणयिनी .... प्रिय

विलासिनी सुन्दरियों की कमनीयता को अपने में भर पुलक उठती हैं- उस माधुर्य सिन्धु में प्यार का ज्वार-भाटा आ जाता है ...... परम कमनीय परम सुखद .... परम सरस .... चिर वांछनीय .... चिर स्पृहणीय ....। कभी वे स्मर स्मेराननना, रस विवश सुकुमारी स्वयं किसी रस पुलक से भर इन भुजाओं को ...... अपने रसाकुल उर के उमगते प्यार से .... उस मधुरिम पीयूष प्रवाह से सींचती हैं .... और ..... पता नहीं .... क्या हो जाता है तब .... । दोनों ओर से अनङ्ग रस तरङ्गिणी उमगने लगती है ......उमग उमग कर सभी केलि विलासों की मेंड़ तोड़ती .... बस फिर ....तरंग .... पर .... तरंग .... लहर ...... पर लहर, हिलोरों पर हिलोरें .. ओह ! उभय रस बावरों का वह मतवाला रस रंग ...... प्रणयावगाहन । इन भुज अर्गलाओं में रस धारा नित्य निरन्तर हिलोरें लेती रहती है ...... और वे चकित-हरिणी सी, भोली-भाली, प्रणय-विदग्धा सुन्दरियां, उस धारा में भीगी सी .... प्लावित सी ।

बाहुद्वय में थिरकती रस हिलोरों में डूब उतर, ... रस का प्रवाह अभी गतिमान ही था । दृष्टि उठी, सामने ही दीखी वह श्यामल मधुरिमा की आगार सौन्दर्य-लावण्य मयी छवि - अहा ... अहा ।

श्यामलोज्ज्वल मुख की वह अपरिसीम शोभा-माधुरी । वाणी 'तीर खड़ी अबला सी' । वाणी के वश से परे का वह सलोना-सौन्दर्य किन्हीं मद हिलोरों से चपल श्री समेटता, लुटाता सा वह मुख-माधुर्य तृष्णाम्बुराशि को विवर्द्धित करता वह लावण्य .... । वाणी में कहां सामर्थ्य कि इसका यत्किञ्चित् भी अंकन कर सके । सम्पूर्ण वाग्विलास का उल्लंघन करने वाली यह शोभा- यह सौन्दर्य सुषमा ...... यह सरस माधुरी ।

कौन है ...... यह कौन है- मेरे प्राणों में अपनी मधुरिमा उंडेलता सा, अपने चंचल चरणों से किसी चपल विलास का संकेत देता सा ..... कमल वन को लजाता सा ...... पद्मा का रसीला आश्रय स्थल यह चरण ... हां, इन्हीं चरणों से किसी चंचलता का संचार करता, अपने युगल पाणि पंकजों से वेणु को गुदगुदा कर, प्रणय विनोद का नवल अभिभावक - ब्रज सुन्दरियों के सम्पूर्ण लाड़ का भाजन ...... युगल भुजाओं से माधुर्य धारा बहाता वाग्विषयातीत मुख माधुरी से रस तृषा को उद्दीप्त करता .... यह अभिनव सुन्दर नवल किशोर ...... सरल सुकुमार प्रणय चतुर रसिक सुजान कौन हैं .... ? क्यों मुझे झकझोर रहे हैं - क्यों मुझे विवश किये दे रहे हैं ....?

ओह ! सौन्दर्य सुरा की सुरस मूर्च्छा में मग्न होता जा रहा है मेरा अन्तर ..... मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ...... ? किस से पूछूं ...... ? है न विवशता की सीमा ?

विपुल आनन्द में भरी पूज्या बोबो वृन्दावन की शोभा बढ़ा रही थीं । एक ओर उनके मन में समाया आह्लाद देखते ही बनता था, उनकी उमंग-तरंगे ज्वारभाटे की भांति गतिमान रहती, हृदय में उठे आवेग एक सरस झूम बन, उनके उर अन्तर में समाए तो थे ही, दूसरी ओर उनकी यह झूम एक विशेष ऊहा-पोह में बदल जाती, उनके हृदय के आवेग कभी कभी इन्हें चिन्तन विशेष में ले जाते, उनके आनन्द की यह परिसीमा किसी मुद्रा विशेष में आवृत्त कर लेती । यह सभी उपक्रम एक चुप्पी का सा संकेत तो करते ही थे, साथ-साथ उसमें एक चिन्तन विशेष का पुट लगा, इन्हें किञ्चित् भाव निमग्न सा कर जाते- कभी चुप-चुप रहने की इनकी वृत्ति अधिकाधिक गम्भीर सा कर जाती तथा यह बैठे बैठे चुप हो जाया करतीं । इस सबका भान प्रायः किसी को न होता । पूर्व में ही इन्हें प्रिया-प्रियतम का संकेत मिला तथा सहसा उनके मन की गम्भीर स्थिति होने लगी । कभी कभी किसी से भी बातचीत करने का मन न होता । कई बार सेव्य युगल प्रिया-प्रियतम का शृङ्गार कर श्री यमुना जी की सन्निधि में बैठे रहने का मन होता । यहां तक कि वे सब अपने जन, जिनके प्रति इनका पूर्ण आदर रहा, कई बार, उनकी सन्निधि भी सुखद न लगती उनसे बोलने की अभिरुचि प्रायः न होती थी । भगवत्प्रेरणा वश स्वतः ही मन की कुछ इस प्रकार की स्थिति होने लगी थी कि वे अपने आप में ही सिमट कर रहना चाहती थीं, श्यामा-श्याम की सन्निधि में ही रहना चाहती थीं । उन्हीं की बात, उन्हीं का विचार, उन्हीं का चिन्तन सम्पूर्ण रूप से प्रिया-प्रियतम की सन्निधि सुख की प्रबल लालसा उन्हें आलोड़ित कर देती ।

❑❑❑

(२)

उन्तालीस ‖ युगल माधुरी में उठी विभिन्न तरंगे

राधाकरावचित पल्लव वल्लरी के
राधा पदांक विलसन्मधुरस्थली के ।
राधायशो मुखरमत्तखगावली के
राधा विहार विपिने रमतां मनो मे ॥***

(रा० सु० नि० १३)

अहा-सुरमणीय वृन्दावन, प्रिया-प्रियतम का विहार स्थल, श्री यमुना से आवृत्त यह सरस स्थल, यहां की सघन निकुञ्जें उसमें हो रही विभिन्न केलि, उस केलि का पान करती यह ब्रजाङ्गनाऐं, रस केलि में मत्त हुए युगल रिझवार अपनी नवीन रस तरंगों से, सभी को सिक्त-सिंचित कर, सराबोर ही तो कर रहे हैं । इन्हीं विभिन्न रस तरङ्गों की उच्छलन में रस मग्ना बालाऐं अहा ! अहा ! अपने सौभाग्य मद से भरी गर्वित हो रही हैं ।

रस केलि की विविध भाव तरङ्गों ने पू० बोबो के मन में भी स्पृहा लगा दी । उन्हीं रस लहरियों के प्रवाह में डूबती-उतरती वे कहने लगीं :-

श्याम-सुन्दर की रुचि ही अपनी रुचि है यह तो ठीक है, प्रेमास्पद सदा सर्वदा प्रेमी की ही रुचि को आदर देते आए हैं, परन्तु प्रेमी की रुचि सदैव प्रेमास्पद की रुचि के अनुकूल ही होती है । यह अन्योऽन्याश्रित प्रेम की शाश्वत धारा एक ऐसे मूल से बंधी है, एक ऐसे तार से जुड़ी है जिसमें अन्योऽन्याश्रित अभिरुचि को देखने की, अनुभव करने की पूर्ण क्षमता है- अत: प्रेमी सदा सदा प्रेमास्पद के अनुकूल ही बना रहता है, अन्यथा प्रेम का यह महान आदर्श निखरेगा ही कैसे ? यह है शुद्धतम प्रेम की बात, यह विशुद्ध प्रेम एक मात्र श्याम सुन्दर और इन ब्रज वासियों में नैसर्गिक रूप में विद्यमान है और उसकी महान आदर्श हैं यह गोपाङ्गनाऐं ।

*** रे मन ! तू श्री राधा करों से स्पर्श की हुई पल्लव-वल्लरी से मण्डित, श्री राधा पदाङ्कों से शोभित, मनोहर स्थल युक्त एवं श्री राधा यशोगान से मुखरित मत्त खगावली-सेवित श्री राधा कुञ्ज केलि कानन श्री वृन्दावन में रमण कर ।

इधर मन्दार विटप की छाया में देखा, श्याम-सुन्दर उसके मूल से लगे खड़े हैं। नेत्रों के लिये परम सुखद और सरस हैं यह गोप सुन्दर नन्दनन्दन। उन्होंने अपने मृदुल अरुण अधरों पर वही अपनी चिर संगिनी बांस की पोर धर रखी है। कुञ्चित अधरों से वह अपना राग उंडेल रहे हैं। उनके उसी राग से पूरित होकर यह वेणु चहचहा उठी है। उसका हृदय स्पर्शी स्वर चहुं और गूंज उठा है। समस्त कानन उस मधुर गान से भर गया है, सभी चराचर विमुग्ध हुए उस स्वर लहरी की मूर्च्छना में बेसुध हो गए हैं। लो- सुनो-हां-सुनो तो सही- हमारा प्यारा कन्हैया क्या गा रहा है? इस बांस की छोटी सी पोर में रागानुराग की मादक तरलता भर वह हमें किसी सुरस माधुरी में बोर रहा है- अहा! कैसा उन्मादन कारी गान है यह। वह लो .... वह देखो- गउओं के समूह ने गान सुना और भाग कर चली आईं। मुख के तृण मुख में ही दबाए, वे साश्रुनयना अपने प्यारे गोपाल का मुख अवलोक रही हैं। गोपगण अपने लाला की इस वेणु वादन पटुता पर मुग्ध, सख्य-वात्सल्य भरी दृष्टि से उसे अवलोक रहे हैं। और, और इन प्रेम बावरी गोप सुन्दरियों की तो न पूछो, वे तो बेसुध हुई, गिरती-पड़ती, अस्त व्यस्त वेशभूषा धारण किये भागी चली आईं। कोई नयन मूंदे उस स्वर सुधा में पग गई है- कोई अपलक नयनों से उस अभिनव नायक की भाव-भंगिमा मयी माधुरी का पान कर रही है।

इन्हीं भावों में भरी पू० बोबो वृन्दावन में रस मग्न हुई निवास करती रही हैं। आज श्री ठाकुर जी को शृङ्गार धारण करा अभी बैठी ही थीं कि मन एक विशेष गम्भीरता में जा टिका। विचारों में एक अलग ही गाम्भीर्य ने प्रवेश पाया- मन सुस्थिर सा हो गया- उसमें आ समाई प्रिया-प्रियतम की एक सुरस झांकी। इस झांकी से हिलोरें उठीं- हृदय में मन्थन सा हुआ और वह दृश्य अपनी अभिव्यक्ति का स्रोत ढूंढने लगा। इसमें पगी पू० बोबो कह रही हैं, "युगल केलि विलासी मदन वर्षा में मज्जित हैं। इस मज्जना ने, कुछ ऐसी रागानुरञ्जना से दोनों को मंडित कर दिया कि शोभा माधुरी कुछ और ही रसमयता ले निखर उठी। पारस्परिक शोभा का पान कर के विशाल नयनों में राग मदिरा की खुमारी अधिकाधिक बढ़ने लगी। मद विघूर्णित नयनों की वह अवलोकन छटा- घूमते झूमते अर्धोन्मीलित सुन्दर नेत्रों की वह सरस छवि। परस्पर देख रहे हैं, अर्द्ध मुद्रित मद छके लोचन, और-और मद से भर भारी से हो चले। उस नशे में, मद की उस बेसुधि में और और मदपान की चटपटी बढ़ती गयी- बढ़ती ही गई और पता नहीं उसी

मदमयता में मत्त युगल को क्या हुआ- कैसी रसीली जूझ थी वह- उसके फलस्वरूप केश पाश बिथुर गया- मदमाती अलक लटें निर्भय हो मस्तक पर, कपोलों पर थिरकने लगीं। यों तो सदा होता ही है- इसी प्रणय कलह केलि में दोनों की हारावली टूट गई- अलक लटों ने बिथुर कर ग्रीवा को आवृत्त कर लिया- कोई कोई रस बावरी लट भाल पर विक्रीड़ित हो गई- कोई कपोल सरसी में आ थिरकने लगी। अब तो और ही रंग बढ़ने लगा- दोनों के विशाल स्निग्ध भाल पर जल कण छलक आये। अहा- अहा- वह मदोन्मादक मधुर छवि। नील-पीत जलजाभ आनन पर बलखातीं वह कच लटें- ऐसी रसमयी स्थिति में भी नयनों की पिपासा को चैन नहीं।

इस पिपासा का शमन किस भांति से हुआ यह तो लेखनी कैसे कहे- बस सुरत स्मर-समर में रस विहार प्रमत्त उभय मराल प्रवर। दिव्यानन्द रसानुभूति अपेक्षित हृदय और नेत्रों के लिये ही सम्भव है, वह सब। उस अथाह माधुर्य राशि का आस्वादन .... अहा .... अहा।

× × ×

आज की बात कुछ और ही थी। वह कल से भिन्न थी पर बात के केन्द्र बिन्दु केवल मात्र रस सार-विग्रह यह प्रिया-प्रियतम ही हैं यदि, तभी सार्थकता है- सफलता है। नित्य उन्हीं की बात होने पर भी सदा सदा नई है और नित्य ही उनकी लीला के क्रम सर्वदा नए-नए ही हैं। वे स्वयं प्रतिक्षण वर्द्धित माधुरी में पगे और ही और छवि से युत रहते हैं। इसी छवि का पान कर पू० बोबो मग्न होती रहती हैं।

"आज इस समय वर्षा नहीं है- पर वारिद माला ने नभ को परिवेष्टित कर रखा है। यह श्यामल शोभा बहुत सुखकर लगती है- शीतल, स्निग्ध, सजल। ऐसे में, वृक्ष वल्लरियों की झूम भरी लिपटान दामिनी की मधुर आंख मिचौनी से और और रसोद्दीपन पा हमारे यह प्रेष्ठ युगल किसी नवीन केलि माधुरी में मत्त हो रहे हैं। सखी समुदाय लुक छिपकर और कभी प्रकट होकर इस सुरंग मधुरिमा का अपने नयन पुटों से, अपने अंग प्रत्यंग से, रोम-रोम से पान कर रहा है किसी सखी ने प्यार की इस उच्छलित धारा में अवगाहन करते पूर्व में ही देखा था, वह देखती ही रह गई थी। उसने किसी के सम्मुख कुछ प्रकट नहीं किया- पर कभी किसी दिन अपनी प्राण प्रिया सखी- इन मद मत्ता किशोरी को निकुञ्ज भवन से चुप चाप निकलते देख लिया। वह सखियों की नज़र बचा कर चली थीं- पर सखी ने जा पकड़ा।

मुस्कराई पर उस मुस्कान लहरी को अधरों में ही समेटे उनका कोमल कर थाम, चतुराई भरी कर्ण प्रिय मधुर वाणी में बोली, 'हे प्रिये राधिके ! मेरी एक कामना है। तुम चाहो तो पूरी हो सकती है।' प्रियाजी कठिनाई से सम्हली थीं तब तक। उन्होंने राग रञ्जित विस्मय पूर्ण नेत्र उठाये, नयनों ही नयनों से प्रश्न किया। सखी ने कहा, 'किशोरी एक बार तुम्हें यों देखने को जी करता हैं- चौंकी प्रिया किशोरी; मुख मण्डल पर कुछ कुछ संकोच झलक उठा। वह कुछ बोली नहीं- उसकी ओर देखती रही। वह फिर बोली, 'कभी किसी निभृत निकुञ्ज की एकान्तिक स्थली में अति मत्त किशोर ने तुम्हारा आंचल पकड़ लिया हो, तुम्हारे बार बार वर्जन करने पर भी वे आंचल खींच रहे हों, इस पर तुम्हारे विशाल सुन्दर नयनों में विचित्र दृग भङ्गी का विकास हुआ हो, उस भङ्गिमा से रसिया-प्रियतम और और चपलता पर उतारू हो गये हों- कब ऐसी रस स्थिति में मैं तुम्हारा दर्शन कर सकूंगी ?'' इतना कह सखी मुस्कराई और क्षण भर में ही पहले देखे दृश्य में डूबने लगी। प्रिया स्वामिनी मधुरिमा में पगी सी जा रही थीं, सखी की मुस्कान ने उनकी आशंका को पुष्ट कर दिया। वह जान गईं कि इसने छिप कर यह सब रहस्य देखा है। वे सिहर उठीं पर तब तक वह सखी मदाम्बुधि में उतर चुकी थी- फिर क्या हुआ- उसका ब्योरा कौन देता। पू० बोबो भी उसी रस में सराबोर हो गईं।

× × ×

किसी नवीना के वृन्दावन धाम अपने प्राणधन की नगरी, अपने घर चले आने पर उसके मन की चकित-विस्मित स्थिति, राग-अनुराग भरी भावनाओं से उद्वेलित उसकी मनःस्थिति और उसके स्वागत सत्कार के क्रमों का विचार इनके मन में उठा ......।

वहां सबका, सखी समुदाय का, सखा-समूह का, अगर बगर वासियों का यह पूछना सर्वथा स्वाभाविक ही है। 'को नई' यह कौन नई आ गई, नित्य नवीनता प्रिय के साम्राज्य में, उनकी रागानुरञ्जित छाया में विश्राम पाने ...... मन वाञ्छित समेटने, कामनाओं के वेग को समाश्रय देने के लिये कोई न कोई नई आती ही रहती है। वहां यह कोई विस्मय का विषय नहीं है फिर भी सभी विस्मय विमुग्ध हो प्रश्न करती हैं, 'को नई' इठला-इठला कर रहस्यपूर्ण भाव भाषा में कहती हैं री 'को नई'। कह न तू कौन है ? कहाँ से आई है ? क्या चाहती है यह कैसा वेश ? आवला-बावला सा वेष लिये, अस्त-व्यस्त वस्त्राभरण धारण किये, यहां क्यों घूम रही है तू ?

कुछ बता तो सही। उस मुग्धा पर, नवीन रति रसाविष्टा पर, इन सुनील सुन्दर रस लम्पट की रसमयी चितवन बौछार देख-यद्यपि किसी झुरमुट की ओट से ही देख रहे थे- तो भी इन रसानुभूति लब्धा, उसी रस में सिक्त मज्जिता सुन्दरियों ने, रस विज्ञा ललनाओं ने देख ही तो लिया। हां तो चितवन सुधा वर्षा में उसे यों बोरते देख, वे सुकुमारी रस विदग्धा बालाऐं दौड़ीं और जा पकड़ा इन्हें, कुछ इस सुकुमारी के पास ही रुकी रहीं। उसने इन दौड़ती भागती बालाओं को देखा; भोले, पर किसी रस के पिपासु अपने वह प्यासे नयन उठा कर उधर देखा। ओह ! उस झुरमुट की आड़ में यह श्यामल सौन्दर्य पुञ्ज। ओह ! कौन है यह जिनका नाम हां, न जाने कब से जिसका नाम मन प्राणों में थिरक रहा है- वे, वे ही रसिया किशोर हैं यह। अवश्य ये वे ही हैं। कैसी सुधा वर्षिणी दृष्टि है इनकी, इनके अधरों पर यह कैसी मुस्कान मचल रही है। और मुझे, हां मुझे ही देखे जा रहे हैं यह। यह निश्चय ही वही हैं।

भावों के बवण्डर ने उसे न जाने क्या कर दिया। सुधि हारी सी वह नवीना स्तब्ध सी, अकी जकी सी खड़ी रह गई। हां जब वे सखियां इन रसनिधि को पकड़ने वहां आईं और इसकी ओर इंगित कर इनसे पूछा, 'को नई' ऐसे भोले और भले बने क्यों खड़े हो, अब किसकी रंगीली आफ़त ला रहे हो। होली के राग रंग भरे दिनों में, वासन्ती उन्माद से भरे उन निशा दिवसों में किस को घर बार से खोया है ? नहीं, नहीं किसका घर बसाया है। ओह यह भी नहीं, यह कहो कि किसे घर में बसा रहे हो- कुञ्ज महल की शीतल स्निग्ध सुषमा में किसे ? इतना ही क्यों, इसके मन की बात। हां तो जब ऐसी रसीली वार्ता सुनी, सखियों का कल हास सुना, नटखट की हास झंकार सुनी, तो चौंक उठी वह। मुखमण्डल आरक्त हो गया- प्राणों के देवता, हृदय के मूर्त राग वे सांवर सुकुमार सामने हैं। आज तक उर अन्तर में स्फूर्त होने वाली यह मधुर मूर्ति समक्ष प्रकट है- उनकी रस रंग भरी अवलोकन अब भी सतत रस बरसा रही है, और चारों ओर घिरा यह सखी समुदाय! सखियां, उस रस की परम सुजान, यह सखियां, हंसती, मुस्करातीं रस भरे इंगित संकेत करतीं, वहां से चल पड़ीं- चलते चलते कहती गईं फिर आकर पूछेंगी। और हां ज़रा तू भी सुन ले बीर, तुझे भी बताना ही पड़ेगा। मौन रहने से काम न चलेगा। पुलकित रोमाञ्चित सुन्दरी की वह रीझ भरी झिझक वह संकोच पूर्ण मृदु मुस्कान और रसिक सुजान की रस विनोद भरी वह मनहर मुस्कान, सुरस तरंगिणी की मदिर लहरियों सी कोमल चपल मुस्कान।

रस रंग के इस साम्राज्य में, प्रणय की इस नगरी में कुछ भी तो पुराना नहीं है– कोई भी पुरानी नहीं है । सभी नवीना हैं– अनुक्षण नव–नव सौन्दर्य मण्डिता नव–नव भाव भरिता और इनके प्यार के नित्य आकांक्षी यह रसिक सुन्दर नवल किशोर, नव–नव रस तरंगों से इन्हें सींच और और रस सञ्चय किया करते हैं इन्हीं से । रस का यह विनिमय पुरातन है– पर चिर नवीन, शाश्वत है पर हर क्षण नया, सनातन है पर अभी–अभी उच्छलित सुरस धारा के उद्दाम वेग सा नूतन– यहां नित्य नया वसन्त, नित्य नई वासन्ती समीर झकोरें, कुसुमाकर की सौरभ, सौरभान्वित वायु मण्डल में निरन्तर उठती रहने वाली रस की मधुमयी लहरियां– सभी तो नव–नवल हैं । तभी तो सभी किसी रस विस्मय में पगी सी– मदाश्चर्य में डूबी सी, ऐसे बौराए से प्रश्न करती हैं । वे तो करती ही हैं– इनके यह अभिनव मदन, यह नव प्रणय पूरित नवल सुकुमार भी तो ऐसी ऐसी विमुग्धता में खोये से रहते हैं– कभी कभी जान कर भी अनजान से बन, सखाओं को ठग, अपनी मन मौज लूटा–समेटा करते हैं ।

श्यामा–श्याम का सम्बन्ध नित्य और शाश्वत है । जीव उन्हीं पुरातन पुरुष अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्याम सुन्दर का ही अंश है । उस अखण्ड आनन्द स्रोत का आस्वादन हम पूर्व में कर चुके हैं, हम पूर्व से ही उसी से सम्बन्धित हैं, उनका संग किया है, उसी चिन्मय लीला के पात्र हम रहे हैं, केवल दृष्टि भेद से अथवा बाह्य आवरणों के कारण हम अपने पूर्व में अनुभूत प्रियतम से विलग भर हुए हैं । वास्तव में उन्हीं से संश्लिष्ट, उन्हीं से सम्बन्धित, उन्हीं के नित्य परिकर हैं । अतः पूर्व में आस्वादित, मिलित प्राणधन से ही मिलना है । केवल दृष्टि भेद से संसार में परिव्याप्त अखण्ड ब्रह्म की सत्ता से अपने मन को हटा, अखिल रसामृत सिन्धु में केन्द्रित करके, उनका होना है अथवा उनका होकर अपनी वृत्तियों को केन्द्रित करना है– यह तो एक ही बात है । इनके सान्निध्य में कुछ भी पुराना नहीं है । जो है वह सब नवीन है । अनुक्षण नूतन सौभाग्य सम्पदा समेटता, सहेजता और इनके पास जो भी है, अथवा पहुंचा है, पहुंच रहा है, तथा पहुंचेगा– वह कदापि नया नहीं था, पुराना ही था– इनका चिर परिचित– इनके अंग सुख का उपादान उसका आस्वादक हां– फिर से और और निकटता पा, और और निहाल हो गया । नूतन पुरातन का यह सरस चक्र यह मधुर विनिमय यों चलता ही रहता है । 'को नई', वह नई भी तो पुरानी ही है, और जो वह पुरानी ही फिर फिर सेवा में प्रस्तुत हो रही है– वह चिर नवीन ही है– इन चिर सुन्दर,

अनुक्षण नवीन मधुरिमा के आगार के संग नव नव विहार–विलास में प्रवृत्त मत्त–मुग्ध लुब्ध ।

× × ×

इन्हीं रसीली भावनाओं में ओत प्रोत पू० बोबो की स्थिति का अनुमान लगा पाना सर्वथा असम्भव सा ही रहा। उनका स्वभावगत दैन्य, अपनों से बड़ों तथा बराबर वालों की बात तो अलग, अपने से छोटों के प्रति भी एक समादर के रूप में प्रकट हुआ। वास्तव में उन्होंने अपने आप को, अपने भाव को, अपनी अनुभूति को इतना छिपा कर रखा कि उनके सहज स्वभाव में जो आकर्षण, उनकी भाव स्थिति अथवा श्यामा–श्याम की रसानुभूति से सर्वथा सम्पुष्ट होने पर यत्किञ्चित् अभिव्यक्त हुई, अथवा प्यार का एक नैसर्गिक स्रोत, जो उनके रोम–रोम से प्रवाहित हुआ; प्रिया–प्रियतम से मिले सरस आश्वासनों का प्राकट्य, जो उनके अनजाने में, उनकी स्वाभाविक क्रियाओं से हो गया– वही उनके मुख्यत: आकर्षण का केन्द्र बना रहा। उसके वशीभूत हुए बड़े बड़े महात्माओं, संतों और भक्तों ने उनकी अनुभूति का आकर्षण पाया, उनके स्वभाव में निहित जिस अपनत्व के स्रोत का आस्वाद लिया, उसी के वशीभूत हुए वृन्दावन के वर्तमान महज्जनों ने इन्हें समझने की चेष्टा अवश्य की, समझे भी परन्तु अपने भाव को प्रच्छन्न रखने का उनका संकल्प इतना दृढ़ रहा कि वे महज्जन भी इस महान विभूति से सर्वथा अपरिचित से ही बने रहे– इसका मूल कारण पू० बोबो की गुप्त रहने की कामना रही– उसके समक्ष किसी को कुछ भी अतिरिक्त विचार करने का अवसर ही न मिला। वे गुप्त रहीं, तथा गोपनीय रखा अपने भावों को– अत्यन्त गोप्य वह महान विभूति अब प्रस्फुटित कलिका के मकरन्द की भांति सर्वज्ञात हो गईं।

❑❑❑

(३)

चालीस ‖ युगल माधुरी में उठी विभिन्न तरङ्गें

आद्य एव परो रसः । शृङ्गारः रस नायकः ।

रसों में आदि रस अथवा शृङ्गार रस ही सर्वश्रेष्ठ है । इस रस की सिद्धि 'उत्तम युव प्रकृतिकः'। (नाट्य शास्त्र भरतमुनि) उत्तम युवक तथा युवति में ही शृङ्गार-रस, सिद्ध होता है । अब प्रश्न उठता है- वे उत्तम युवक-युवतिगण कौन हैं ? रूप गोस्वामी पाद ने श्री कृष्ण को 'युवतिभाग्य सिद्धिः' कहा है- अतः श्री कृष्ण ही श्रेष्ठ पुरुष हैं- उधर श्री कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति श्री राधा तथा उनकी काय व्यूह स्वरूपा ब्रजाङ्गनाओं के नैसर्गिक स्नेह को ही प्रेम की संज्ञा दी गई है । वास्तव में प्रेम का चरमोत्कर्ष इन गोपाङ्गनाओं में ही सफल होता है ।

'वृन्दावन रस' अथवा 'ब्रज रस' अलग अलग दो शब्द होने पर भी प्रेम मयी लीलाओं को इयत्ता में बांधने का प्रयास मात्र लगता है । भावधारा का स्वाभाविक प्रवाह जब हम शृङ्गार रस में पूर्णता से स्वीकारते हैं, तो चाहे वह रस विहार-विलास वृन्दावन की परिसीमा में बंधा उत्कर्ष को प्राप्त हो रहा हो, अथवा ब्रज रस की किञ्चित् विकसित सीमा में प्रवाहित होता हो, (शृङ्गार) पुष्ट होकर प्रणय की रसीली अनुभूति में, हमारे मन प्राणों में सरसता का संचार कर पुलकित सरसित कर रहा है- वही रस अपेक्षित अभीप्सित तथा ग्रहणीय है ।

वृन्दावन की सुखद क्रोड़ में आनन्द मग्न होते रसिक जनों के सौभाग्य की गाथा कहने में कौन समर्थ है, जहां सभी ऋतुऐं प्रत्येक समय विराजती हैं- प्रिया-प्रियतम की इच्छा जान, केलि के अनुसार ही ऋतुओं के क्रम बदल जाते हैं । वहां 'रस करवावहि केलि' यह केलि ही रसायोजनों का निर्माण कर उसे चरितार्थ करती है । अतः ऋतुओं का क्रम श्यामा-श्याम की इच्छा शक्ति के ही अधीन रहता है ।

हां ! तो पूजनीया बोबो की हृदय सरसि में लहरा उठीं, ग्रीष्म की सुहावनी तरङ्गें । उन्हीं से आलोड़ित हुई, वे सखियों के स्वर में अपना स्वर मिला- अपनी भावना का समावेश कर यह भी कहने की एक शैली है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिये कि यह उनकी

अनुभूति नहीं है- अनुभूति को जब हम एक सिद्ध अभिमत के आधार पर स्पष्ट कर अपनी धारा का योग देते हैं- काव्य शास्त्र में उसे व्यञ्जना शैली का रूप माना है,) कह रही हैं :-

"ग्रीष्मारम्भ प्रणयानुरागी प्रियतम युगल में नव-नव केलि लालसा के अङ्कुरों का आरोपण कर देती है, और ऐसे ताप के दिनों में भी सरस क्रीड़ाओं की मादकता में लहरा उठती है कि पता नहीं रहता कि अब गर्मी है और उष्णता की प्रबल झकोरें सर्वत्र दाहकता का प्रसार कर रही हैं। कभी कभी तो सरोवर तट पर, निकुञ्जान्तर्गत, कालिन्दी कूलस्थ लता मन्दिर में ऐसी शीतलता का संचार हो जाता है कि यह रसिक सुन्दर प्रणयिनी किशोरी और नव किशोरिका समूह .... सभी रोमांचित हो उठती हैं, शारदीय विहार का सा सुख ले पुलक उठती हैं और सचमुच ही शीत से उनके सुभग गात कम्पित हो जाते हैं। चन्दन से चर्चित वपु, सुवासित पुष्पों से महकती निकुञ्ज स्वच्छ सरोवरों की सुखद सलिल हिलोरें- अहा ! ग्रीष्म विहार का कैसा सुखकर सरस शीतल वातावरण है।"

प्रायः सखियां निकुञ्ज भवन को सजाती हैं, जल विहार का आयोजन करती हैं- पुष्प मण्डप में पुष्प शय्या का निर्माण कर, युगल की केलि लालसा को और-और उद्दीप्त कर देती हैं। स्वयं भी उस सुख में भाग लेती हैं और प्रिय का अंग सुअंग संस्पर्श पा रस मग्न हो जाती हैं पर विहार विलास कोई शृङ्खलाबद्ध, अथवा नियमबद्ध परिपाटी में थोड़े ही बंधा है ! बस विहार-विलास में तो एक ही परिपाटी- एक ही नियम है, रति-रस-केलि और एक ही विधान है- कन्दर्प केलि विधान।

'आज सुजान शिरोमणि ने सखियों से भी छिपा कर प्रिया जी को भी बिना बतलाए श्री राधाकुण्ड वर्ती माधुरी लता कुञ्ज को स्वयं मार्जित, सज्जित किया। मार्ग में कमल पंखुड़ियां बिछा दीं कि मृदुला किशोरी के चरण तल उस सुशीतल कोमल पांवड़ों पर थिरकते मदमाते चले आएं। शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर बहने लगी। प्रकृति तो इनकी अनुगता है- बस इनका रुख देख कर वैसा ही विधान कर देती है। कमल दलों से मण्डित वसुन्धरा की वह सुन्दर वीथिका- त्रिविध समीर के झोंके से लहराते-झूमते विटप-वल्लरियों की वह झकोरें, पुष्प पराग से धूमिल वायुमण्डल की महकती सुवास। अहा ! कैसी छवि छटा बिथुर रही है वहां- उस लता निकुञ्ज में। नए नए कोमल पल्लवों से सुघर किशोर ने शय्या बनाई- और लो ! अपनी वेणु में आमन्त्रण स्वर भर प्रिया जी को खींच लिया। श्री ललितादि कुछ

अन्तरङ्ग सखियों सहित प्रियाजी वहां चली आई अपने उस प्रिय सरोवर पर। शायद आस-पास ही विचर रही थीं वे। यह कुण्ड उन्हें अत्यन्त प्रिय जो है- अन्तरङ्ग लीला विलास की मधुर स्थली से आवृत्त है-स्वयं इनके लीला-विलास का उपकरण है। श्री किशोरी की पदचाप, नूपुर झङ्कार और सखियों की हास परिहास ध्वनि ने उनके आने की सूचना दे दी। प्रियतम कुञ्ज द्वार पर आ गए- अहा ! प्राणों की वह अधिष्ठातृ, मन-नयनों की वह मधुर अनुराग मूर्ति प्रियतमा, प्रियाओं से घिरी चली आ रही हैं- उनके प्राणों में उथल-पुथल मचाती, उनके अन्तर को आलोड़ित-विलोड़ित करती- उनके हृदय का मन्थन करती। प्रियाजी ने प्रियतम के वह प्रतीक्षा माधुरी सम्पन्न नयन निहारे, संकोच सुधा में मज्जित हो गईं वह। सखियों के मधुर मुख-मण्डलों पर भी अनुराग की सरस आभा खिल उठी। प्रियतम ने सभी को रागानुराग द्वारा सत्कृत किया और प्रिया जी को लिये उस पुष्प निर्मित आसन पर आसीन हो गए। सखियां भी उमड़ती घटा सी, इन घन- दामिनी को घेरे आस-पास बैठ गईं। अधरों से उतर वंशी केवल- करों में ही आ गई थी। अब भी उस सुधा-पान से बौराई सी प्रियतम के कर कमल स्पर्श से पुलकती वह मानों उछल सी जाती थी। प्रियतम की दुलार वर्षा से विकम्पित रोमांचित सी वह रह रह कर कभी कभी ऊपर को जाती फिर प्रिय अपने कर कमल में ही उसे ले लेते। इस बार प्रियतम ने जब वंशी को तनिक उछाला तो झट तनिक एक ओर झुक प्रिया जी ने अपने सुकोमल करों में थाम लिया उसे। सखियां हँस पड़ीं-प्रियतम भी हँसे और प्रिया जी भी तनिक खिलखिलाईं। उनकी मन्द हास झङ्कार ने प्रियतम में नव केलि की नवल उत्कण्ठा को झकझोर दिया। उन्होंने बंकिम चितवन से प्रिया जी को अवलोका-मानों स्वीकृति चाह रहे हों। प्रियतम ने अपाङ्ग चितवन द्वारा प्रिया जी की ओर निहारा और फिर मुस्करा कर वंशी अपने अधरों पर धर ली। चहक उठी वह बावरी। कभी प्रियतम अपनी फूंक द्वारा उसे गुञ्जित करते तो कभी प्रिया उसे अपनी सुरसता से सींच अनुप्राणित कर देतीं। सखियां वेणु विनोद निहार-निहारकर खिल रही थीं। लो-संगीत की सब सामग्री प्रस्तुत हो गई। श्री ललिता ने वीणा, श्री विशाखा जी ने मृदङ्ग तथा अन्य सखियों ने और-और वाद्य सम्हाल लिये। उस सङ्गीत ने, वाद्य की मधुर ध्वनियों ने, क्या पता कैसा राग प्रवाहित किया कि कन्दर्प रस धारा उस प्रवाह में उमड़ उठी।

राग अनुराग की वह उमगती, उमग कर प्रवाहित होती रस तरंगिणी और उसकी सुरस हिलोरों में डूबी खोई सी वे सखियां !

× × ×

संध्या को जल केलि का स्थान संगीत माधुरी ने ले किसी और ही सुरस विलास के अङ्कुर रोपण कर दिये थे। अब उनकी लहक के सरस उपयोग का समय था। आज जल केलि इस रस केलि में ही अपने को विलीन कर चुकी थी- उस रसोच्छलन को व्यक्त करने की सामर्थ्य किस में है ?

श्यामा-श्याम की विभिन्न रस लहरियों में मग्ना- पू. बोबो के मन की दशा जाने कैसी हो गई- इन्हीं रस लहरियों- प्रणयावर्तों में निमग्ना इस अथाह राशि के तल में जा खो गई। ओह ! वह सरसता- वह सौभाग्य जिसमें मन की प्रत्येक उमंग प्रिया-प्रियतम के संग सुख में ही लय हो रही हो-अहा-अहा ....।

और यह लो शरद की सुहावनी बयार ने प्रकृति को उमगा, उकसा बौरा सा दिया, पक्षियों में एक नवीन उल्लास भर दिया, वृक्षों में एक मद झूम भर दी और इन वल्लरियों को झकझोर दिया-समस्त प्रकृति ने पुनः प्रिया-प्रियतम की इन रसीली विहार- विलासमयी रात्रियों को सजा दिया- इन्हीं भावों में भर उमग उठीं पू. बोबो की हृत्तरंगें- किसी रसीले आस्वादन में भरी वे कहने लगीं :-

"ब्रज सुन्दरियों के अन्तर में ज्वार भाटा सा उठाती उथल पुथल मचाती चिर प्रतीक्षित शारदीय रात्रियां सुभग वृन्दावन में उतर आईं। स्वच्छ गगन के सुनील वक्ष पर शरद विधु मुस्कराने लगा। चन्द्रिका, इठलाती, मदमाती कुञ्ज-निकुञ्जों में आँख मिचौनी खेलने लगी। वृक्ष वल्लरियां उस रजत सरोवर में नहाई सी लहलहा उठीं। पुष्प पल्लवों की उत्फुल्लता से वन उपवन सज उठा। यमुना पुलिन को छू, चन्द्र किरणों ने कुछ और ही मनोहारी कर दिया। सम्पूर्ण स्थली जगमगा उठी-मानों हीरक चूर्ण बिखर गया हो। कलिन्द नन्दिनी की हिलोरों में नव उमंगें भर गईं। उन हिलोरों में लुकता-छिपता- पुनः पुनः नई अठखेलियां करता चपल शशि इठलाने लगा। वन्य विहगों का गान किसी का स्तवन गान सा करता उस नीरव स्थली को मुखरित करने लगा पर क्या पता क्यों ? गान करती विहगावली सहसा मूक हो गई। यमुना तट नीरव हो गया-मानों किसी की प्रतीक्षा में बावरा मन थक हार कर स्तब्ध सा हो गया हो। पर इस निस्तब्धता में उदासी न थी, अवसाद न था, इसमें तो अदम्य आह्लाद था, उमंग-तरंगों की चहल पहल थी -अथवा चहल पहल में निस्तब्धता उतर आई थी क्या पता ? अब तो उन ब्रज बावरियों

के सतत प्रतीक्षारत हृदय न जाने कैसी कैसी कामनाओं-भावनाओं से उद्वेलित हो उन्हें विवश सा- आकुल आतुर सा, चपल- चपल सा, स्तब्ध स्तम्भित सा करने लगे। वर्ष तो जैसे तैसे कट गया था पर यह कुछ दिन-युगों से लम्बे हो गए थे।

त्रयोदशी का चन्द्रमा खिलखिलाता खेलता नभ मण्डल के अङ्क में जगमगा उठा। किसी पगली की दृष्टि उस पर गई- देखती रही वह और फिर क्या पता वह क्या-क्या कह उठी। उत्तर में एक प्रतिध्वनि सी उसके श्रवणों में प्रविष्ट हुई, 'परसों', 'परसों' चौंक उठी वह। उत्तर देने वाले को निहारने के लिये नेत्र अकुला उठे पर एक हास झङ्कार का अनुगमन करने से वह लोल लोचन प्यासे से ही रह गए पर 'परसों' ने उस पिपासा की छिन-छिन में भड़कती अनल को थाम लिया। एक ही नहीं उन सभी की ऐसी ही अटपटी दशा थी। कोई किसी प्रकार और कोई किसी प्रकार समय यापन कर रही थी। दो दिन और काटने दूभर हो रहे थे। यह लो चतुर्दशी का चन्द्रमा उनकी रही सही धैर्य सम्पदा को छीनता सा फिर खिलखिला दिया। उन अनुरागिणी किशोरियों को कहीं चैन न था, घर-बाहर, भवन-उपवन सभी उन्हें अधीर किये दे रहे थे । वे प्रिय आह्वान- आतुरा बालाऐं चौंक चौंक उठती थीं।

-यह लो वह विहँसती राका छा गई। पूर्ण चन्द्र की विहँसन ने धरा को आलोकित कर दिया। मन्द मारुत की शीतल झकोरों ने कुञ्ज-निकुञ्जों को पुलकित कर दिया। ऐसे में हां- ऐसी सुहावनी रात्रि में- नहीं-नहीं संध्या में ही इन सर्वाङ्ग सुन्दर मदन मनोहर प्रियतम ने अपने वातायन से झांका। अहा ! चन्द्रमा की किरण मालाओं ने उन्हें भूषित कर दिया। वे कुछ क्षणों को स्तब्ध से खड़े चन्द्र देव की उस अनुपम शोभा माधुरी को देखते रहे। पर देर नहीं लगी- वे झटपट अपनी प्रणय दूतिका उस सुभगा वंशी को करों में ले- मत्त मातङ्ग गति से चल पड़े, श्रीवन के कालिन्दी तटीय कुञ्ज प्रान्त की ओर। विशाल वंशीवट के पत्तों में से छन कर आंती ज्योत्स्ना की झिलमिल में, अपनी अङ्ग कान्ति से उस सम्पूर्ण स्थली को उद्भासित करते, अपने आभरणों की जगमगाहट से चन्द्रकिरण मालाओं को चकाचौंध करते वे रसिक सुन्दर- प्राण वल्लभ श्यामल किशोर आ विराजे। उनके अधरों पर छिटकी हास किरण मालिका से कुछ गुप्त परामर्श करने के लिये वह प्रियवाहिनी मुरलिका उन बिम्बाधरों पर विराजित हो गई। क्या पता क्या

परामर्श हुआ- वह चपल दूतिका कुछ गा उठी । ओह ! कैसा अनङ्ग वर्द्धक- मदन मद सञ्चारी गान था वह । इधर प्रवाहित हुआ कि झट जा पहुँचा उन प्रतीक्षाकुला गोप रमणियों के उर अन्तर में । वे सब संयम में न रह सकीं- कुलकानि के पुल को तोड़ती-फोड़ती वे वेगवती सरिताऐं धावित हो, अपने उन नील सिन्धु के सान्निध्य में जा पहुंची- और लो- अहा .... अहा .... ।

हां तो वे रसिक शेखर छेड़ छाड़ से, हास-परिहास से, विनोद-प्रमोद से उनकी भावनाओं को, रस कामनाओं को अधिकाधिक उद्दीप्त करते रजत-रज मण्डित पुलिन पर छम छम कर उठे । शत-शत गोप वनिता यूथों की पायल ध्वनियों से वह वन विभाग निनादित हो गया । अनुकूल उपयुक्त वाद्य ध्वनि स्वयं ही ध्वनित हो उठी । प्रिय कर कमलों में कराम्बुज समर्पित किये वे सुन्दरियां नृत्य निरत थीं । वह नृत्य था- नृत्य की मुद्राऐं अनुराग की भाव भङ्गिमाऐं- ओह, उस सरसीली स्थली में रस की सरिता उमगी- रस सिन्धु ज्वार से युत हुआ उत्तुङ्ग उछालें लेने लगा- उस सरसता की- उस तन्मयता की, कौन कहता- आस्वादन ही आस्वादन था वहां, मत्तता ही मत्तता थी ।''

रस विलास की मत्तता में पगी पू. बोबो के उल्लास की परिसीमा न रही । उनके हृदय में उमंग तरंगें उच्छलित होने लगीं । अपनी भावनाओं को, हृदय में उठती प्रणय हिलोरों को गुप्त रखने में परम निष्णात पू. बोबो के मन की तरङ्गें भरसक चेष्टा करने पर भी दबी न रह सकीं- अन्तत: यत्किञ्चित् रस क़ण छलके । बन्द नेत्रों की कोरों से प्रवाहित हर्ष बिन्दुओं के मिस बह चले । हृदय में उठे ज्वार भाटे ने झंकार और पुलक के मिस अपना परिचय दिया, नयन पुतलियों के नर्तन में समा झकोरने लगा । मुख पर निर्निमेष उठती भाव ऊर्मियों के मिस प्रकट हुआ । इन्हीं भावों में मग्ना पू. बोबो अभी भी रस के उस अथाह सिन्धु में उठी लहरियों में डूब उतरती रहीं- उन्हीं तरङ्गों से स्नात उनकी मूक विवशता मुखरित हो कहने लगी-

''आज सुखद समीर बह रही है- पता नहीं क्या कहती सी- किसका सन्देश देती सी, किसकी प्रणय वार्ता सुनाती सी, किन मधुर क्षणों की बात को दोहराती सी ? संध्या की श्यामलता अब कुछ निशा की अंधियारी में परिणत होती जा रही है । रजनी की कुन्तल केश राशि ने वसुन्धरा को ढक लिया- क्यों, यह क्या पता ? यह रंगीले रसीले युगल अपने ही रस रंग में मत्त, अपनी ही मौज में मदमाते किसी निभृत निकुञ्ज की एकान्तिक

नीरवता को अपनी सुभग अङ्ग कान्ति से आलोकित करते- अपनी अस्फुट ध्वनियों, परस्पर धीमी-धीमी प्यार भरी वचनावलियों से झंकृत करते क्या पता क्या-क्या, कैसे-कैसे विचर-विहर रहे हैं। लाड़ली सखियां भी इन दोनों को खोजती, क्या पता कब उसी कुञ्ज के पास आ छिप गईं। दोनों की अस्फुट-अस्पष्ट मधुर मधुर वार्ता की ध्वनि उनके श्रवण रन्ध्रों से हो उनके उर अन्तर को पुलका रही होगी। और-और फिर, उसी सुखामृत पान हेतु जब उनके तन, मन, प्राण ललक उठे, आतुर आकुल हो न जाने क्या क्या चाहने लगे, तो यह रस निधि उमग कर उन्हीं रसालया स्वामिनी की अनेकानेक मधुरिम धाराओं को अपने अंक में भर, दुलार में सराबोर कर देने को मचल उठे होंगे और सभी ने उसी एकान्तिक सुख का उन्हीं निभृत निकुञ्जों में भांति भांति से आस्वादन किया-कर रही हैं। अभी तो निशारम्भ है- निशा के बढ़ते पगों के साथ-साथ यह विहार विलास-रस कितना गहरा होता जाएगा-क्या पता? रस की उमगन का, उमगते रस प्रवाह का, प्रवाहित रस धाराओं का तथा उच्छलित रस निधि की उमंग-तरंग मालाओं की अगाधता का माप तोल कौन करे।''

× × ×

एक प्रभात में उनकी सरस भावनाओं में मचल उठी ब्रज की सरस झांकी- घर-घर में निनादित मथानियों की रसमयी स्वर लहरी। ओह ! वे बौरा सी गईं- उसी का सजीव वर्णन करती कह रही हैं :

''प्रभात की सुखद वेला में ब्रज सुन्दरियों की मथानियों का मधुर नाद घर घर में निनादित हो रहा है। वे सब अपने प्राणप्रिय ब्रजराज कुंवर के नाम, रूप, यश तथा लीला का गान करती जा रही हैं। उस दधि-घोष से भवन में सुख-निद्रारत सांवर किशोर जगते हैं। जागने का समय ही जो है। रात को अवश्य ही देर में सोये हैं। यह देखो- निद्रा टूट जाने पर इनके सुन्दर सुनील मुख पर, इस रमणीय चन्द्र वदन पर कुछ और ही छटा छिटक रही है, रागानुराग की मनोहर रश्मियां झिलमिला रही हैं। प्रिया-प्रेम की मधुर आभा मुख पर प्रदीप्त हो रही है। अहा ! निद्रालस मण्डित मुख श्री पर यह अनुराग-मधुरिमा, मानों प्रणय की मदिर मुग्ध कहानी अंकित कर रही हो- उस सुरस गाथा का लेखा दे रही हो। इतना ही होता तो भी कुछ नहीं- पर यह उनींदे नयन सब भेद खोले दे रहे हैं। दधि-घोष से निद्रा अवश्य भंग हो गई, पर अभी नींद की खुमारी चढ़ी है। नयन फिर-फिर मुंदे आ रहे

हैं। निद्रालस मदालस से परिपूरित यह विशाल नयन कमल । उनसे अनुराग मकरन्द झर रहा है । नयन खोलते हैं । प्रयत्न पूर्वक खोल रहे हैं, पर फिर, फिर मुंदे जा रहे हैं । उस नव नीरदाभ वदन सरोवर में खिले यह अर्द्ध मुद्रित सुन्दर पद्म युगल । कैसी अद्भुत शोभा है ? कैसी मन प्राण मन्थनकारी छटा है ? यह रात्रि के उनींदे हैं- तभी तो बार बार नयन झपक रहे हैं- पलक झुकी आ रही हैं । रस झिझक से भरे इन मदन मद भरे, सुविशाल लोचन युगल की वह विवश दशा इनके रात्रि विहार-विलास की सब रस प्रहेलिका स्पष्ट किये दे रही है । श्री मुख पर छिटके इस अनुराग मद का रस रहस्य केवल उनींदे नयनों ने ही नहीं खोला- सुन्दर वदन पर छिटकी अनुराग छटा का मर्म इन् अध मुंदे नयनों से ही नहीं झरा-यह देखो- देखो तो सखियो ! इन नव नीरदाभ सुन्दर कुंवर के वाम भाग में दामिनी सी झिलमिलाती- यह कैसी द्युति है ? कैसी छटा है ? देखो देखो यह तो हमारी प्राण-प्रिया सुन्दरी राधिका है ? इन नील घन सुन्दर के वामाङ्ग में- इनके विशाल वक्ष-प्रान्त पर शीश धरे- यह कौन यों निश्चिन्त हुई सोई सी-अलसान माधुरी से भूषित खोई खोई सी- कौन- है ? हां और कोई नहीं-यह अनवद्य सुन्दरी-अभूतपूर्व सौन्दर्य माधुर्य लावण्य पूजिता किशोरी श्री राधिका ही हैं । इसी के अंग संग का, इसी के राग रंग का इसी की रसमयी उमंग तरंग का मादक प्रभाव इन सांवर सुन्दर के सलोने मुख पर छिटक रहा है- अत्यधिक छविमान होता जा रहा है- अनुराग लालिमा की द्युति से देदीप्यमान हो रहा है- अलस श्री भूषित नयन कमलों में जो और और खुमारी भरती जा रही है, जिसके सुरस-भार से यह मत्त नयन फिर फिर झुके चले आ रहे हैं- निद्रालस में और ही प्रकार का जो रत्यावेश का अशेष प्रभाव गोचर हो रहा है- जिससे नयन कमलों की नैसर्गिक शोभा में और ही रसासव सा भरा दीख रहा है- अधमुंदे नयनों से भी छलका छलका पड़ रहा है- और हां ! हां ! जिसके भार से, जिसकी छलक से विवश हुए रसराज मणि हमारे यह प्राणधन प्रियतम जग जाने पर भी उठ नहीं पा रहे हैं- उसका सब भेद खुल गया- वाम पार्श्व में इनके सान्निध्य सुख वारिधि में मज्जित-प्लावित इस किशोरी की सन्निधि ने सब रहस्य समझा दिया । रात्रि भर श्रम-विश्राम के आवर्तों को दोहराते, सहलाते, सम्हारते, तथा बिगाड़ते इन नीरदाभ सुन्दर का क्या दोष ? कैसे भला भोर की इस श्यामलोज्ज्वल वेला में चैतन्य होकर उठें- अभी से नहीं जगाना चाहिये इन्हें, पर क्या करें- घर घर से होते दधि मन्थन का घोष इन्हें जगा रहा है । अब यह न तो सो ही पा रहे हैं और न जगते ही बनता है । कैसी विवश स्थिति है ।

अहा .... देखो देखो तो। सखियों ने, रस रंग भरी इन प्रियरस बौरी ललनाओं ने अभी अभी इन युगल सुन्दर को जगाया है। उनका जी तो नहीं चाहता था कि अभी कुछ ही देर पूर्व निद्रित इन युगल विहारी को इतनी भोर में जगा दें। किसी ने कहा भी- 'अबहि सोये हैं काहे जगावत री।' किसी दूसरी ने उसका समर्थन किया। बात ठीक थी, सभी को सुहा भी रही थी पर फिर भी जगाने का ही निर्णय हुआ सखी मण्डली में। उषा की कजरारी छटा भोर की अरुणिम उज्ज्वलता में परिणत हो चली है। अभी न जगाने से विलम्ब हो जायेगा और फिर इनकी पकड़ाई हो जायेगी और ....। सखियों ने पग तनिक ज़ोर से धरे। अनेक पायलें छम छम कर उठीं- कर कङ्कण बज उठे। पर आज गहरी निद्रा में सोये हैं, श्रमित युगल-देखो तो इनके यह निद्रित मनोहर वदन। कमल नयन मुद्रित हैं- मुखर वदन पर इठलान छिटक रही है- अङ्गों में शिथिलता है। बहुत गहरी निद्रा में हैं अब कैसे जगाऐं भला इन्हें ? यह लो, भोर की लालिमा में लिपटा बाल रवि नभ में ऊपर आता जा रहा है। अपनी आलोक मालिका का प्रथम प्रसून इन्हें भेंट कर इनका मुखावलोकन कर अपने कार्य में रत होने की जल्दी है उसे। यह लो पंछी कब से गा गाकर इन्हें जगाने की चेष्टा में लगे पर अभी भी इनकी निद्रा उसी प्रकार गहरी है। इन कुञ्जवासी विहगों की रस चतुराई देख रही हो न बीर ! इन्होंने विटप शाखाओं में छिप, लता झुरमुटों में दुबक सारी रात इनकी केलि कला कृतियों का बड़े ध्यान से निरीक्षण परीक्षण किया जान पड़ता है। अपने गात में उसी लीला विलास को भर यह चहक रहे हैं। जो रस चेष्टाऐं भली प्रकार हम भी अवलोक न पाईं, इन सुभग पंछियों ने तो वह भी देखी हैं। हम से अधिक भाग्यशाली हैं यह, सखियो ! कहीं इनके गान में अपनी गोप्य लीलाओं का लेखा-जोखा सा सुन संकोचवश तो यों सोये से नहीं पड़े हैं !

सखियों की यह सब मन प्राण सुख कारी वार्ता सुन रही हैं, परम मुग्धा ललिता, विशाखा, चित्रा, रंगिणी आदि कुछ सखियां। रस गाम्भीर्य भंवर से निकल नहीं पा रही हैं वह। पर अब दिन चढ़ते देख सखियों की वार्ताऐं सुन सुन कर वह भी सचेत हुए। उन्हें मुस्कराकर अपनी ओर देखते देख सखियों में मधुर कोलाहल होने लगा। किसी ने ललिता के स्कन्ध पर कर धर उन्हें झंझोड़ते हुए कहा, "ललिता बहन ! तुम भला आज कहां खो रही हो ? देखती नहीं हो बाल भानु हुलस हुलस कर बढ़ा चला आ रहा है। अभी कुछ ही देर में हाट-बाट में भीड़ हो जायेगी। भवन जाना कठिन हो

जायेगा इन्हें । अब तो जगा ही दो इन निद्रावश युगल रस सिन्धु को, एक ने उनकी वीणा ला उनके सम्मुख की । वीणा ध्वनि अपनी गम्भीर रस धारा से निद्रित युगल को सींचने लगी । उस सुरस गाम्भीर्य में निशान्त मिलन की विकल कामना थी– फिर हँस मुस्कराकर अपनी ओर निहारने, देखने की सरस त्वरा थी–साथ युगल रस बावरों के केलि विलास जनित क्रम का मधुर वर्णन भी था । उस मधुर झंकार ने दोनों को तनिक सचेत किया । विशाल नयन तनिक उन्मीलित कर परस्पर कनखियों से निहार फिर नयन मीलित कर लिये युगल सरकार ने । वीणा ध्वनि में क्या पता क्या संकेत था, निद्रालस मण्डित युगल के मधुर अधरों पर मुस्कान किसी रस रहस्य को बरबस छिपाने का प्रयत्न करती सी खिल उठी । सखियों ने यह सब देखा– जी तो नहीं करता था कि दोनों के इस रस विलास में विक्षेप डालें– सुरतान्त के रसोच्छलन में बाधा पहुँचायें– पर अब कुछ उपाय न था । पंछी अपने अपने नीड़ छोड़ उस वन प्रांत में मंडरा रहे थे, सूर्य लालिमा और और उज्ज्वल होती जा रही थी, पर अब और पौढ़े रहने का अवकाश न था । सखियों ने देखा– यह तो अभी भी अच्छी तरह सुधि साम्राज्य में नहीं आये हैं– पर अब तो इन्हें होश में लाना ही पड़ेगा । वह छम छम करतीं, विनोद वाक्य कहतीं, हँसती, खिलखिलातीं निकुञ्ज मन्दिर में आ गईं । अब तो उठे बिना गुज़ारा ही न था। अंगड़ाई ले कुछ झिझकते पुनः पुनः नयन झपकते वे रूप रस निधि युगल उठे ..... प्रिया जी ने फिर नयन खोल देखा– सखियां उन्हें घेरे खड़ी थीं । प्रिया जी के झिझक संकोच भरे अधमुंदे नयनों की वह शोभा, और अहा ! जब सखियों की दृष्टि बचा उन्होंने अपाङ्ग चितवन से प्रियतम की ओर देखा– सौन्दर्य माधुर्य की अनगिन चपल लहरियां तरंगित हो उठीं । सखियों ने संकेत से एक दूसरी से कुछ कहा । सभी की हास ध्वनि ने उन्हें चौंका दिया । अब वह पूर्णतः सजग से हो गये– और उस रसमयी तन्मयता की बात कौन कहता– आस्वादन कर सखी वृन्द भी उसी तन्मयता में बेसुध सी हो गईं और रस का वह अथाह प्रवाह रस मग्न करता रहा ।''

× × ×

श्याम सुन्दर से मधुर रस वार्ता में मग्न इन सखी वृन्द की रसीली दशा में अपनी भावनाओं का योग दे जहां एक ओर पू० बोबो के मन में हुए रसोच्छलन से सिक्त स्नात हो गया वातावरण, उन्हीं रसीली स्मृतियों ने साकार हो उन्हें एक विशेष ही उल्लास में भर दिया– इधर शयनोपरान्त

ललित झांकी का वर्णन कर अपने तन मन प्राणों को सुशीतल करती पू० बोबो मग्न हो गईं। युगल की रूप माधुरी ने अपने वैभव से अपनी श्री से भूषित कर दिया, अपनी अनन्या इस सखी को और उस रूपासव का पान कर मत्त हो गई वह। उसी रस दशा में उच्छलित उनके हृदय की तरंगें- ओह ! उन्हीं में मग्न हुई वे कहने लगीं :-

''सचमुच ही दोनों चन्द्र हैं- पूर्ण चन्द्र। पर नभस्थ चन्द्र इनकी तुलना नहीं कर सकता। वह तो दिन में दृश्यमान नहीं है- केवल रात को ही चमकता है, उसमें भी घटता बढ़ता रहता है। पूर्णिमा के बाद ढलने लगता है, अन्ततः क्षय को प्राप्त हो जाता है अमावस्या की रात्रि को। फिर उदय होता है पर यह दोनों चन्द्र तो दिन रात देदीप्यमान रहते हैं। पूर्ण होते रहने पर भी कभी इनके निखार में, उच्छलित सौन्दर्य में, तनिक सा भी तो ढलाव नहीं आता। क्षय का तो प्रश्न ही नहीं है- यह तो निज जनों के समस्त पाप तापों को हर प्रकार के दाह को क्षय करने वाले नित्य प्रकाशित सतत सौन्दर्य पीयूष प्रवाही मनोहर चन्द्र हैं। इनके इस रूप सौन्दर्यामृत का पान करके अमरत्व लाभ होता है। जिन्होंने एक बार भी उस सोम रस का नयन प्यालियों से, चित्त चषक से पान कर लिया वह सदा सदा के लिये अमर हो गया। फिर उसका क्षय कहाँ ? अमृत पान का फल अमरत्व है।

जैसा चन्द्र, जैसी सुधा, वैसा ही अमरत्व भी। प्रेमी, भक्त, सभी तो उस रूप पीयूष का पान कर आज तक भी अमर हैं। उस पीयूष पान से उनके उर अन्तर में जो माधुर्य का उफान आया उसी के कुछ बिन्दु से उनकी वाणी अपनी प्रेम विवश स्थिति में कुछ गा उठी और वह गान भी अमर हो गया। अमृत की कणिकाऐं भी अमृत हैं- अतः इन प्रेमी महानुभावों की वाणी, उनका काव्य भी अमृत ही है जिससे अनगिन तप्त तन, मन, प्राण शीतल हुए- हो रहे हैं- होते रहेंगे।

परम सुन्दर, परम मंगलमय, परम श्रेष्ठ हैं, बाबा नन्द के यह लाडले लाल और श्री वृषभानु बाबा की लाड़ली श्री राधारानी। सर्वाराध्या, ब्रज राजकुमार की भी परमाराधा (श्री राधिका रानी) सतत अपने प्रियतम की आराधना में रत श्री श्री राधा और 'कुन्दवत् हासोयस्य' वह मुकुन्द एक बार अपनी शरण में जाने वाले को सभी द्वन्द्वों से मुक्त कर देने वाले- सभी पाशों से छुड़ा कर अभय प्रदान करने वाले श्री मुकुन्द परम श्रेष्ठ हैं- श्रेष्ठतम हैं।

उनकी श्रेष्ठता की बात कौन अभिव्यक्त कर सकता है, मन में कुछ दुर्भावना रख कर भी आने वाले को उत्तम गति प्रदान करने में तनिक भी देरी नहीं लगाते। गोकुल में आये सभी राक्षसों तक का उद्धार कर उन्हें उत्तम गति प्रदान कर रहे हैं। उन दयालु को छोड़ किस की शरण में जायें? यह तो उनके गुणों की श्रेष्ठता हुई। रूप की श्रेष्ठता, वह तो कहने में नहीं आ सकती। देखने वाले भी कुछ व्यक्त नहीं कर सके। एक-एक अंग की शोभा को देख कोटि-कोटि अनङ्ग भी जहां स्तम्भित रह जाते हैं- एक एक रति रस कौशल पर जहां असंख्य रति ठगी सी खड़ी रह जाती हैं- उनके रूप की श्रेष्ठता उनके माधुर्य की महिमा, उनके सौन्दर्य का बखान भला कौन कर सकता है ! बस इनके रूप की, इनकी मधुरिमा की इनकी राग भरी चपल चेष्टाओं की, इनके केलि विलास की, इनकी गुणावलियों की, इनके मृदुल स्वभाव की यदि ज्ञाता हैं कोई, तो यह ब्रज किशोरियां ही हैं- 'विदन्ति नाथ गोपिका:' और कोई, पूरी तरह तो क्या एक अंश भी ठीक से नहीं जानता-समझता। 'गवां बिन्दति-इति गोविन्द:' जो सम्पूर्ण इन्द्रिय समुदाय को आनन्द प्रदान करते हैं- वे गोविन्द हैं। तन, मन, नयन, प्राण सभी को अपने दरस परस से- बतरस से, भांति भांति के प्रीति विधान से जो रूप निधान, प्रेम निधान सदा सदा अमित आनन्द प्रदान करते हैं और तो और जो अपना स्मरण करने वालों को नाम लेने वालों को, अपने जनों का संग, उनकी सेवा करने वालों तक को उस महासुख सागर की तरंगावलियों से सिञ्चित कर शाश्वत सुख प्रदान करते हैं, उनसे श्रेष्ठ और हो ही कौन सकता है, और हमारी प्राण प्रिया स्वामिनी, प्राण वल्लभा श्री राधिका के समान श्रेष्ठ और कौन है? जो सहज ही रीझ कर अपनी शरण में आने वालों को आने की चेष्टा करने वालों को आने की इच्छा भर करने वालों को, भी झटपट अपने प्रियतम को समर्पित कर देती हैं, जो किसी के दोषों की ओर ध्यान ही नहीं देतीं, शत-शत भूलें करने वालों को भी अपने प्यार दुलार से सींच कर सहज ही अपना लेती हैं- उनसे उदार और कौन हैं- जिसकी शरण में जा कर चैन मिले-अभाव ग्रस्त मन को प्रेम सम्पदा मिले, तप्त प्राणों को शीतलता लाभ हो- विरह ज्वाला में झुलसते नयनों को अमृत सिञ्चन सुलभ हो, ऐसी उदार- ऐसी ममतामयी, ऐसी करुणा मयी हैं हमारी यह प्रिया- स्वामिनी, इसी से इन दोनों को- श्री राधा मुकुन्द को- श्री गोविन्द चन्द्र और वृषभानु सुता को 'वरिष्ठ' कहा गया है। इन सुधाकर युगल ने, परस्पर सतत प्रवहमान रूप सुधा का. प्रेम सुधा का, गुण सुधा का पान एक बार नहीं, बार बार निरन्तर किया है।

उसी की स्मृति में पुलकित हो रहे हैं, हमारे यह हृदयेश । हमारे प्राणेश यह युगल, सोमराज, यह सुधानिधि अपने जनों का पालन करने में सदा सदा तत्पर हैं। कभी भी चूकते नहीं । यों तो सभी इनके अपने हैं- कोई पराया है ही नहीं- सभी का पालन भी करते हैं यह, पर जो जो, जितने जितने अपनत्व को लेकर इन्हें भजता है, उतनी सीमा तक का इनका निजत्व वह अनुभव कर लेता है। जागतिक सुख सुविधाओं के याचकों को उनकी याचित वस्तु देकर उनका पालन करते हैं । आर्त जनों की पुकार पर दौड़ कर, आर्ति से उन्हें छुड़ा कर नव जीवन दान देते हैं । ब्रज के पशु-पक्षियों तक को अपने संग से- अपने रूप सुधा दान से सदा परिपालित करते हैं । इनके रूप को देख कर, इनके वंशीनाद को सुन खग मृग स्तब्ध खड़े रह जाते हैं- अपलक दृष्टि से इनके मुख की ओर देखते-देखते आत्म विस्मृत हो जाते हैं । उन्हें पुचकार कर, थपथपा कर, अपने कर कमलों से दाने देकर, खिला कर उनका भी अपने स्नेह रस से सिञ्चन करते हैं । माता-पिता आदि गुरु जनों को वात्सल्य सुख देकर रीझ रीझ कर ज़रा ज़रा सी बातों पर मचल कर, हठ कर, उनसे लग-लिपट कर, अंक में बैठ कर, तरह तरह की मधुर मधुर अटपटी बातें बनाकर सन्तुष्ट परितुष्ट करते हैं।

× × ×

ब्रज में उत्सवों की धूम ही रहती है । श्याम सुन्दर का एक नाम 'नित्योत्सवो' भी है । नित्य ही उत्सवमय हैं यह । ब्रज का रसीला वातावरण, किसी रसीली भूमिका का संयोजन जुटाता है ही, साथ साथ उत्सव के लिये उपयुक्त सौंज और सामग्री प्रस्तुत कर, उत्सव की भूमिका बना देता है, अनेक उत्सव तो मान्य हैं ही और अनेक ऐसे उत्सव भी हैं जो बात और बिना बात के भी मनाये जाते हैं । हृदय की प्रसन्नता और उत्फुल्लता अभिव्यक्त करने का यह भी एक सरस माध्यम ही है । यह लो एक सखी की मनः स्थिति में अपने मन का योग दे उसी में आलोड़ित होती पू० बोबो ने देखा- उसी बावरी की स्थिति का वर्णन कर कह रही है :-

"ओह ! एक ब्रज-वधू दर्पण सामने रखे शृङ्गार कर रही थी । आज वह किसी विशेष तन्मयता से शृङ्गार में रत थी । कभी-कभी उसके चपल नयन ऊपर उठते- चारों ओर लोल दृष्टि से घूम जाते और फिर दर्पण में देख वह केश संवारने और अन्य उपकरण सजाने लगती । आतुर प्रतीक्षा, भला विफल जाती है ? जिनकी पग आहट पर कान लगे थे, जिनकी सुकुमार

छवि में नैन अटके थे, जिनके आगमन हेतु उसका उर अन्तर स्पन्दित हो रहा था- वही प्राण रमण, वही जीवन वल्लभ सांवर सुजान सहसा ही भीतर आ उसके स्कन्ध पर कर धर बोले ओहो ! बड़ा शृङ्गार हो रहा है । सज धज कर कहां जाने की तैयारी है ?''

प्रेम की कैसी कुटिल गति है जिनके लिये मन, प्राण बेचैन थे, बेचैनी से राह देख रहे थे, जिनकी पदार्पण ध्वनि के लिये श्रवण चौंक चौंक पड़ते थे, जिनके सामीप्य की कामना ने उसे अधीर कर रखा था, जब वे ही सामने आ गये तो अनमनी-अनजानी सी हो कुछ रूखे से स्वर में बोली, 'ऊँ हूँ, तुम्हें क्या ?' यों भला किसी के घर में चले आना उचित है क्या ? पराई नारी को छूते तनिक भी संकोच नहीं है तुम्हें । 'पराई नारी' कह कर स्वयं ही कुछ चौंकी सी हो गई वह और यह रसिक शेखर खिलखिला दिये, बोले, 'पराई नारी' ! हमारी तो सब अपनी हैं- पराई कहां से आई ? अच्छा तो सच-सच बताओ यह सज्जा आज विशेष क्यों है ? वह हँस पड़ी। इनकी अमृत वर्षिणी सुमधुर वचनावली के सामने भला रूखापन कैसे टिकता- फिर वह भी कृत्रिम । मन प्राण तो न जाने कैसी तरलता से बह चले थे इन माधुर्याम्बुधि में समा जाने को बोली, 'बरसाने जा रही हूं- चलते हो ?' कह खिलखिला दी। नन्द कुंवर के विशाल नयनों में अद्भुत चमक आ गई। सम्भ्रम पूर्वक बोले, सच ! मुझे भी ले चलो 'हां-जी ! कैसे ले चलें तुम्हें ।'' आज केवल स्त्रियों का ही उत्सव है वहां- पुरुष नहीं जा सकते' उसने कहा। आप बोले, 'स्त्रियां तो जा सकती हैं- फिर क्या मुश्किल है ।' वह बोली, 'तो नारी वेष धारण करोगे ?' कहते-कहते पुलक उठी वह । अहा, सारे रास्ते इन सुकुमार सुन्दर का संग रहेगा। इन्हीं का कर थाम मैं भानु पौर पर उतरूंगी। भवन में जाऊंगी और नवला सखी को देख किशोरी उमग कर मेरे पास आ सौ-सौ प्रश्न करेगी। मैं ...... ? हां ! मैं इनका कर, कर में लिये इठला-इठला कर उत्तर दूंगी- और अहा ! अहा ! इनका एकान्तिक सामीप्य मिलेगा- पालकी में जाते हुए- अहा। 'बस फिर क्या था ? उसने झटपट इन्हें सजाया। अपने वस्त्रों से भी सुन्दर वस्त्र पहनाए, मणि भूषणों से अंग अंग को अलंकृत किया । आज उसके अतुल आह्लाद का क्या ठिकाना । अपने हाथों अपने प्रियतम का शृङ्गार- अहा ! सजते, सजाते, हास तरंगों से उस बाला को पुलकित रोमाञ्चित करते नवल किशोर का वह सौन्दर्य ! लो ! सज गए। श्याम अब श्यामा हो गए। इस भाग्यशाली ब्रज वधूटी ने उनका कर अपने कर में ले, और सब समझाती हुई ले चली इन्हें साथ । मार्ग भर का अमित

सुख, सुख की वह हिलोरें, और बरसाने जाकर प्रिया जी को सम्भ्रम-विभ्रम में डाल उनसे मनमाना पुरस्कार पाने की उमंग में मग्न ब्रज-राज-किशोर की वह मधुर दशा- इस नवला सखी को सुख देते-लेते रसिया का वह उदार रस वितरण...... ।

लो ! पहुँच गए वृषभानु भवन में । सचमुच यही हुआ । श्री ललितादि सेवित किशोरी राधिका ने देखा- उस सुन्दरी के संग आती अनगिन रति समूहों की छवि को तिरस्कृत करती उस नवला किशोरी को। वह पास आ, बोली, 'सखी ! यह किसे लेकर आई है तू' झीने पटाञ्चल से इसकी अङ्ग कान्ति, इसके चन्द्र मुख की रश्मियां फूटी पड़ रही हैं- यह अनिन्द्य सुन्दरी बाला कौन है ? बस अपनी इस सखी के गायन की प्रशंसा करती हुई प्रिया जी से बोली, तुम तो रूप पर ही सर्वस्व लुटा बैठीं, इसका गायन यदि सुन लो तो..... गायन आरम्भ हुआ, नेत्रों से नेत्र मिले और उस अगाध रूप राशि से निसृत माधुर्य की रसीली तान तरंगें- अहा ! अहा !

❑❑❑

(४)

इक्तालीस | युगल माधुरी में उठी विभिन्न तरङ्गें

हूं इन चरणों की चिर चेरी ।
अतिशय अनुराग अमिय रस का,
जो करते हैं अविरल वितरण ।
जिनसे प्रेरित उर की उमड़न,
चाहा करती है यही चरण ।
इस उमड़ घुमड़ के संवाहक
इस उथल-पुथल के संचालक
यह चरण सदा मेरी गति हैं-
हैं ये ही सुख सम्पद मेरी ॥

'ऊषा जी'

श्याम सुन्दर की रूप माधुरी का जादू ही निराला है । उस माधुरी से झरती सरसता प्राणों को संजीवनी प्रदान करती है । रूप मधुरिमा का प्रवाह कभी मुख विधु की सुशीतल रश्मियों से, नयन कटाक्षों के बंकिम भ्रू संचालन से, कुञ्चित अलकावली से, सद्यजात अधर पल्लवों की अरुणिमा से झरता ही रहता है, उसी में मग्न-मत्त हो रही हैं पूजनीया बोबो । रूप की इस मधुरिमा में पगी माधुर्य की इन्हीं तरङ्ग मालाओं में, डूबती-उतरती, वृन्दावन की कुञ्ज-निकुञ्जों, वन्य वीथियों, सुरस स्थलियों में विचरण करती रहीं- और लो ! आज उनकी सरसता में केन्द्रित हो गए सुभग सुशीतल, मधुर-मादक चरणाम्बुज । श्याम सुन्दर के इन चुलबुले चरणों से प्रवाहित रस माधुर्य 'शंतमं च ते' । (शान्ति प्रदान करने वाले हैं) वे कहीं खो गईं, सहसा उनकी भाव धारा अजस्त्र स्रोत की भांति प्रवाहित हो सभी को सिक्त करने लगी :-

'अहा कैसे कोमल, कितने सुन्दर कैसे मृदुल-मनोहर कैसे सुभग-शीतल, कैसे चंचल चरण हैं यह । शत शत कमल कोषों की माधुरी का, सौरभ का भी अपहरण करने वाले हैं यह सुभग पाद पद्म । कहां तो यह कोमलता- मृदुलता, सरसता सुमधुरता और कहां भव दुःख दलन का भारी कार्य, पर इन श्री चरणों पर कुछ भार नहीं पड़ता । इनका जादू ही

'होरी में अनुराग लुटत है' भाव निमग्ना पूजनीया बोबो ढप बजाते हुए, श्री सुशीला बहन जी पद गान करते हुए

'प्रियतम छवि नैनन बसी पर छवि कहां समाय' भाव निमग्ना पूजनीया बोबो तथा सुशीला बहन जी

कुछ ऐसा है कि बिना किसी प्रयास के- बिना कुछ विचारे, बिना कोई उपाय किये ही यह श्री चरण अनायास ही भव ज्वाला का शमन कर देते हैं। जगत में होने वाली सभी आधि-व्याधियां इन चरण युगल के स्मरण मात्र से ही नष्ट हो जाती हैं। इन चरण कमल युगल को कुछ नहीं करना पड़ता। इनका नाम, इनका ध्यान इनका स्मरण, इनका चिन्तन ही ऐसा सबल मन्त्र है कि भयंकर से भयंकर कष्ट, दारुण से दारुण यातनाऐं, कठिन से कठिन क्लेश भी इनके तनिक से ही स्मरण से निमिष भर में भस्म हो जाते हैं। भव दु:ख और तो जो हों सो हों- सब से भयंकर दु:ख यही है कि जीव इन श्री चरणों से विलग हो, दूर हो। (यों यह चरण युगल स्वयं किसी को न दूर करते हैं- न दूर होते ही हैं पर अपने ही स्वभाव गत प्रमाद से दूरी का कल्पित निर्माण मनुष्य स्वयं कर लेता है।) यह युगल चरण सरोज इस भयंकर दु:ख से क्षण भर में ही निवृत्ति करा देते हैं, जब इनकी शरण में कोई सचमुच चला जाये। इस कल्पित दूरी का भवन निर्माण जिस नींव पर (कर्म चक्र, प्रमाद आदि) होता है उसका यह श्री चरण पल भर में ही उन्मूलन कर डालते हैं, ध्यान में आने भर से ही। चाहे तो यह स्वयं ही विचरते विहरते हृदय मन्दिर में चले आयें- अथवा इनके स्मरण चिन्तन में रत हो, कोई इनकी प्रसन्नता ग्रहण कर ले- बस, भव दु:ख उसी क्षण पलायन कर जाता है- सबसे भयंकर दु:ख, दारुण कष्ट इनसे विलग होने का ही है। उसे ही जब यह चरण कञ्ज नष्ट कर देते हैं तो भला, संसार में होने वाले छोटे-मोटे क्लेशों भौतिक यातनाओं, वेदनाओं, रोग-शोकों की, त्रय तापों की बात ही क्या है ? वह तो आन की आन में लय हो जाते हैं।

कमल कोष की सौरभ से पूजित परम सुकोमल, परम मृदुल, सुरभित, सुशीतल चरण युगल कैसे हैं- अहा ! इनकी कोमलता मृदुलता, मनोहरता का पूर्णास्वादन किया है- इन ब्रज सुन्दरियों ने ही। औरों को तो उसके किसी अंश का ही भान हुआ है, होता है। हां, तो कैसे हैं यह कमल कोमल चरण। कल्पतरू के प्रथम-पल्लव की कोमलता को भी पराजित कर दिया है- ऐसे कमनीय- ऐसे सुकुमार श्री चरण हैं यह। अम्बुज वन को भी जिन्होंने जीत लिया है, अपनी कोमलता, सुन्दरता तथा सुकुमारता से- ऐसे मदन मनोहर चरण युगल हैं। खिले कमल के मधुकोष को भी पराजित कर लेने वाले चरण सरोज हैं यह। और विशेषताऐं जो हैं सो हैं ही- एक भारी विशेषता तो इन पाद पद्मों की यह है कि यह 'बल्लवी कुच कुम्भ कुङ्कुम' से पङ्किल हैं। इस पङ्किलता ने ही तो इन युगल चरणाम्बुजों की कमनीयता,

मधुरता को अपनी तरल अनुरञ्जना से पोषित, सुशोभित किया है । कमल समूह को यह सौभाग्य भला कहां सुलभ है । एक मात्र विशेषता तो इन्हीं युगलांध्रि कमल कोषों की है ।

कमल भला इन चरण युगल की क्या बराबरी कर सकते हैं ! इन्हीं श्री चरणाम्बुजों की कोमलता, मृदुलता, कमनीयता की तनिक सी छाया को छू सम्पूर्ण कमल वन, कमल की समस्त जातियां उस कोमलता से भर गईं कि कमल सभी पुष्पों का शिरोमणि हो गया । उन्हीं युगल श्री चरण कमल कोषों की सौरभ का कोई कण मदमाती समीर झकोर ने इन कमल वनों में जा छिपाया कि यह सभी प्रकार के कमल महक उठे । इनकी सुवास जगत भर में सर्वोल्लसित हो गई । सो, पाद पद्मों की एक सौरभ कणिका से ही सम्पत्तिवान हुए यह कमल कानन इन चरण कमलों की समता क्या करेंगे। फिर कमल, जड़ और चरण कमल, नित्य चैतन्य । अपना तनिक सा भी ध्यान करने वालों की जड़ता को भंग कर उनमें नव चेतना का संचार कर अपने ही सान्निध्य में ले आने वाले चरण सरोरुहों से इन कमल समूहों की क्या तुलना ?

विरह के उन दारुण क्षणों में ब्रज सुन्दरियों ने इन पाद पंकजों के गुणगान करते हुए कहा ? प्रणत जनों के पापों का कर्षण कर लेते हैं यह चरण कमल- गउओं के पीछे पीछे घूमते हैं, लक्ष्मी जी का तो घर ही हैं और भी प्रणत-जनों की कामनाओं के पूर्ति कारक हैं । श्री लक्ष्मी जी द्वारा अर्चित हैं, भूमि का भूषण है और आपत्तियों में एक मात्र ध्येय हैं । ऐसे चरणाम्बुरूह हैं यह । इन श्री चरणों के लिये प्रार्थना करते हुए वे विरहिणी बालाएं कहने लगीं, विरह ज्वाला का शमन तो हृदय स्थल पर राजित होकर यह श्री चरण ही कर सकते हैं । विरह के भयंकर अनल को अन्य कमल तो और-और धधकाने वाले हैं, फिर भला कैसे कहें कि यह चरण युगल इन कमलों जैसे हैं ।

इस वृन्दाटवि को अपने भ्रमण शील चरण युगल से उदारता पूर्वक चिह्नित किये हैं, यह ब्रजेन्द्र सुन्दर । श्रवणों ने ही नहीं, हृदय ने भी सुनी, इन चरणों में लिपटे मत्त मञ्जीरों की वह हृदय मन्थनकारी छम छम ध्वनि..... ! अहा ! कैसी कर्ण प्रिय पद ध्वनि से मुखरित हो उठी है यह ब्रज भूमि- यह वृन्दाटवि । छम छम करते अपनी मधुर ध्वनि से ब्रज वनिताओं के प्राणों का मन्थन करते, उनके नयनों को चौंकाते, उनके चित्त को उच्चाटन मन्त्र द्वारा बौराते, यह चपल सुन्दर चरण इठला-इठला कर

विचर रहे हैं और अपने चिह्नों को उदारतापूर्वक अंकित करते जा रहे हैं, वृन्दा कानन की इस सुभग भूमि पर। विचित्रता तो देखो, इन चरण युगल की, रस अर्चना से यह अनुरंजित हो उठे हैं। वन्दना में पूजन सामग्री की पूर्ण उपादेयता काम आई है- कुङ्कुम-मण्डित हो गये श्री चरण। अर्चना, वन्दना, अनुरञ्जना- भोग-सामग्री नैवेद्य. यह सब बातें पीछे; पहले इन श्री चरणों की वन्दना कर उनसे प्रार्थना तो कर लें।

यह चरण सरोज युगल, भव दु:ख को दलन करने वाले हैं। और श्री वन की इस पुण्य मयी प्रणयस्थली को अपने उदार चिह्नों से भूषित करने वाले हैं। यह चरणांघ्रि युगल श्री लक्ष्मी के वक्षस्थल के कुङ्कुम राग से पुष्ट हैं इसी से यह यों इठलाते मदमाते हैं। उसी मदमयता, मधुमयता रसमयता के चिह्न इस वृन्दाटवि पर अंकित हो जाते हैं इनके अनजाने ही। अपनी मस्ती में अपनी उमंग तरंग मालाओं में डोलते जब यह नवल कौतुक प्रिय सुजान प्रियतम अपनी प्राण प्रिया से, प्रियाओं से मिलते नवल रसावतारणा की भूमिका बनाते, भ्रमण करते हैं तो इनके यह उदार युगल चरण इनकी उदार प्रणय निधि के अंकों को भूमि पर अंकित कर अपनी उदारता का परिचय देते हैं। सम्पूर्ण निशि माधुर्याम्बुधि में उठती अनगिन मधुरिम वीचियों की उच्छलन-गाथा को अंकित करते विचरते हैं यह उदार चरण कमल।

वृन्दावन की इस रसीली रंगीली भूमि में भला यह लक्ष्मी कहां से आ गई। यह तो पुण्य स्थली वैकुण्ठ धाम में भगवान विष्णु के पाद पद्मों का संवाहन करती रहती हैं। इन्हें वही सुख पर्याप्त है। यह इस ब्रज- भूमि में आई भी, तो सुना है बिल्व वन में श्री गोपिकाओं के रसीले सौभाग्य- प्राप्ति हेतु तपस्या कर रही हैं। यह लक्ष्मी कोई और नहीं है, यह तो इस ब्रज- भूमि की सभी किशोरियां ही लक्ष्मी हैं और इन लक्ष्मियों की भी लक्ष्मी हैं हमारी प्राण वल्लभ-वल्लभा सुकुमारी सुन्दरी श्री राधिका रानी।

यह वृन्दावन सम्पूर्ण विश्व में अपनी कीर्ति फैला रहा है, इन सुन्दर ब्रज राज किशोर के पाद कमलों की शोभा से, इनकी लक्ष्मी से, इनके चिह्नों से अंकित होकर ....। यह युगल चरण सरोज ब्रज वनिताओं की वांछित निधि हैं- सिद्धि हैं। इन्हें परम गोपनीय एवं सुरक्षित स्थल पर धर यह सुन्दरियां, इस अपनी काम्य निधि का मनमाना उपयोग करती हैं। तभी तो अन्तर्धान पश्चात् प्रकट हुए अपने प्राण रमण को पुन: अपने समीप पा, किसी प्रेम विह्वला बाला ने उनके दोनों चरण कमलों को अपने संतप्त हृदय पर धर लिया।

कोमल चरणों को सम्हाल कर रखने के लिये, किसी आत्यन्तिक रस की मधु धारा से अभिषिक्त करने के लिये कोमल, ललित, सरस स्थली ही तो चाहिये। यह सुन्दरियां इस अपनी मधुर सम्पदा को, अपने मधुर कोष में छिपा कर, सहज-समेट कर रखती हैं। भांति भांति से इन पर लाड़ उंडेलती हैं- और वह चपल चरण, यह चञ्चल पाद पद्म स्थिर होकर नहीं रहते वहां। और-और चपल हुए, न जाने कैसी-कैसी माधुरी की बिखेर करते हैं- कैसी सुरसता लुटाते हैं- कैसी-कैसी चपल अठखेलियां रचते हैं- धूम मचाते हैं ...... फिर ......।

वे कुलाङ्गनाऐं तो विरह दशा-उपरान्त अथवा बहुत ही उमगे-उमड़े हृदय की बेबसी से उद्वेलित मना, विवश हुई अपने सहज शृङ्गार, संकोच-भूषण को उस रसोद्वेलन से समर्पित कर, उन युगल चरण सरोज को अपने धड़कते उरों पर धर, न जाने किन किन कामनाओं को पोषित करती हैं- किन किन भावनाओं का यह पोषण अधिकाधिक वेग प्रदान कर उन्हें कैसी कैसी रस विवश स्थिति में डाल देता है- इसे तो यह उनके रस लम्पट किशोर ही जानें। पर यह नटखट रसिया प्रियतम - यह तो रस लोभी हैं, रस लम्पट हैं, मधु लोलुप हैं, मदमत्त हैं सतत और-और की पिपासा से आक्रान्त रहते हैं। इनकी रस तृषा को कभी चैन नहीं और इन कुल बालाओं का सा संकोच भी नहीं- लाज नहीं- यह तो हर क्षण बढ़ता ही जाता है, और इनके यह चरण सरोज युगल कुल-मुला उठते हैं- ललक उठते हैं, किसी चपल केलि विलास हेतु।

सचमुच ही चिन्तन करने योग्य तो इन प्राण बन्धु-प्रणय प्राण सांवर सुन्दर के यह कमल कोमल नीलारुण चरण सरोरुह ही हैं। हृदय सरोवर में सदा-सदा लहलहाते रहें- यह चरण सरोज। अहा। फिर संसार कहाँ ? संसार ताप कहां ? संसार नाम की फिर कोई वस्तु नहीं, प्रतीति भी नहीं। फिर ? फिर तो यदि कहीं कोई संसार है तो इन चपल चरणों की अठखेलियों से इनके केलि विलासामृत की तरंग मालाओं से भूषित-प्रणय सम्पन्न प्यार दुलार की शत शत धाराओं से सिञ्चित संसार है-जिसमें ताप का प्रवेश नहीं, नाम नहीं- विचार नहीं। जिनके हृदय में उदित हो जाने पर सुख ही सुख- आनन्द ही आनन्द-मधुरता, मोहकता, मादकता की झूम ही झूम भरी है। जहां की प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक क्रिया-कलाप बस प्यार-प्यार-प्यार ही की नाना प्रकार की परिणति है। ऐसे सुन्दर सुकोमल लाड़ भरे, रागानुराग

भरे, रस भरे, मद भरे, मधु भरे चरणाम्बुजों के सिवा और चिन्तन करने योग्य भला हो ही क्या सकता है। अन्वेषण करने योग्य भी यही श्री चरण हैं। चरण कमलों की खोज, इनका अन्वेषण, इनकी ढूंढ .... । आश्चर्य है– जो हृदय–कोष की निधि हैं– प्राणों का विभव हैं– जीवन मूरि हैं– उनकी खोज– हाँ, उन्हीं की खोज। चलो, चल कर देखें उन चरणों की मदिर केलि– उनका उन्मद विहार– उनका मधुर–मधुर विचरण–विहरण, अहा, यह देखो कुञ्ज गली में यह कैसी सौरभ महक रही है– अहो ! यह–यह यमुना–पुलिन की स्निग्धता तो देखो– उसमें यह कैसे अंक हैं– किनके चरण चिह्न इसे अलंकृत किये हैं। ओहो ! आओ सखियो– उधर बढ़ो तो, उस निकुञ्ज मन्दिर में– वहां के लता वृक्षों में यह कैसी सुवास है। यहां की धरती इन पौधों के मिस क्यों पुलक रही है– हां–हां– सचमुच ही वे हमारे प्रणय देवता– वे प्राण वल्लभ अवश्य ही प्रिया को संग लिये सुरस चेष्टाओं में संलग्न हैं। हमारी सुधि आ गई है उन्हें यह सुनो– सुन रही हो न ! उनके श्री चरण मञ्जीरों की यह श्रवण मधुर ध्वनि। और यह–लो–सुनो–मुरली अधरों पर, उसे सुधा पान करा, वे हमारा आह्वान कर रहे हैं– अहा ! अनङ्ग–रङ्ग पूरित उनका यह गान–अहा– और–और भी सुनो– हां दोनों ही गा रहे हैं– । प्रिय–पद चिह्नों का अनुसरण करती उनकी गात सुरभि से आकृष्ट, उन चरणों का अन्वेषण करती, किसी अमिय माधुरी में पगी, इन ब्रज सुन्दरियों की टोली में हम भी सम्मिलित हो, इन्हीं पाद पद्मों का अन्वेषण करती चलें– इन्हीं के साथ–उसी कुञ्ज में– उसी पुलिन पर, उसी हाट–बाट में–उसी घाट पर, उसी वन–उपवन में, उसी भवन में, जहां वे रंगीले, चरण–युगल धूम मचा रहे हैं। उस सुन्दरी की अंक में आंचल से ढके ..... यह नीलारुण छवि कैसी है री ! चल, पास चल कर देखें– यह क्या है ? कैसी द्युति है– कैसी शोभा है। अहा प्रियतम के चरण युगल ही तो हैं – अहा–अहा। इन्हीं से यह मधुर सौरभ प्रवाहित हो रही है– यहीं से यह छटा फूट निकली है– अहा .... ! अहा !! ..... अहा !!!

कैसा मधुर अन्वेषण है ? कैसा मधुर फल है ? अभीष्ट फलों के दाता, यह चरण युगल– इनकी खोज–इन्हीं की बात भी कहने सुनने का अवकाश नहीं है, इन प्रिय–पद अन्वेषणरता सुन्दरियों को, बस अपने उर अन्तर में सम्हाले संवारे, यह किशोरियां फिर भी उन्हीं के, अन्वेषण में रत, नव–नव माधुरी में नवल केलि विलास में मत्त हैं। अपने परम इष्ट–अभीष्ट फल प्रदायी– सकल कामना पूरक–सम्पूर्ण भावनाओं के समाश्रय इन श्री

चरण युगल की मन से, वाणी से तथा इस तन से भी मैं परिचर्या करती हूँ। यही मेरे सर्वस्व हैं । यही मेरे हैं- यही मेरे प्राण हैं । मेरा मूर्त प्रणय हैं- मेरी साकार रागानुरञ्जना हैं । अहा ...... यह .... यह .... चरण ।

चरणों की माधुरी में सिक्त, उससे झरती मधुर रश्मियों से आप्लावित, उनकी अरुणिमा में मज्जित-उनकी कोमलता से सुस्निग्ध, भाव धाराओं का प्रवाह श्याम-सुन्दर की सान्निध्य लालसा को व्यग्रता प्रदान कर ही रहा है- इधर मन को भी आलोड़ित करता, प्राणों में रस सञ्चार कर रहा है- ऊपर से छाई वसन्तोन्मादी समीरण ने वातावरण को सरसता प्रदान की, तथा भावों में आकुलता-व्याकुलता । ब्रज बावरियों के मन मचले, तन प्रफुल्लित हो उठे, मन में हास नवोल्लास लिये, मदन आया, छा गया समस्त प्रकृति के कण कण में । उन्हीं भावों में भर उठी यह ब्रज रमणी वृन्द की भीर, उन्हीं के भावों में उद्वेलित मना पूजनीया बोबो की भाव ऊर्मियां- एक गाम्भीर्य में समा गईं, हृदय एक भाव विशेष से मचल उठा और उमंगों का ब्योरा देने की सामर्थ्य ही किसमें रही ।

× × ×

यह वसन्तोन्मादित दिवस, यह सुहास भरी सुखद मनोहारी निशाऐं, वन कानन मध्य हुलसती वसन्त श्री, लता-पादपों की मत्त झूम, कोकिला का कलगान, पंछियों का मधुर रव, ऊपर खुला निर्मल आकाश, उसकी क्रोड़ में विलसता, विहँसता उज्ज्वल शशि और उसकी बिखरती विहँसन सी यह विमल चन्द्रिका, हरी-भरी गोद में, लता-गुल्म-औषधियों को लिये, पुष्प-प्रसूनों से सजी धजी यह ब्रज अवनि ! कैसा है यह सब- कैसी मनोरमता है- कैसी सुरमयी सुषमा है ? क्या पता ब्रज सुन्दरियों एवं इनके रंगीले प्रियतम के मन प्राणों की मदिर झूम ही सम्पूर्ण प्रकृति पर छा गई है- सम्पूर्ण धरा पर- नील नभ में, ललित वृक्ष वल्लरियों में, उल्लास रस में बौराये विहगों में, भर गई है- या प्रकृति देवी के इन रसीले मदभरे उपहारों ने, रंगीली भेंट ने, नवल सज्जा ने, इन किशोरियों के उर अन्तर को झंझोड़, किसी नव-नव रस-पिपासा को उकसा दिया है- इन सबल मृदुल किशोर के तन मन में नवीन रसातुरी का अधिकाधिक संचार कर किसी मधुर रसोद्दीपन के उपकरण सजा दिये हैं । जो भी हो, यह वसन्त सज्जा- यह मदन महोत्सव के नवल उपकरण, नूतन रस सामग्री अद्भुत है, अनूठी है, और वसंत झकोरों, रस हिलोरों में आन्दोलित चित्तगान में कैसी कैसी

रसाधीरता संजोए यह अभिनव ब्रज-राज किशोर, यह वृषभानु कुंवरि लड़ैती राधिका और नव वयस्का यह सुन्दरी बालाऐं। प्रकृति की रंगीन सुषमा को और उद्दीप्त करती यह रस रंग नवानुरागिनी किशोरी राधिका और इनके राग रंग में मत्त इनकी प्रणयानुरञ्जना में रंगे यह रसोन्मादी नील तमाल। अहा, कैसी छवि छटा फूटी पड़ रही है उस कुञ्ज कानन में।

पारस्परिक रूप-माधुरी पर नयन भ्रमर अटके हैं- नव रस लालसा की प्रबल हिलोरें उन्हें रह रह कर चौंका सा देती हैं तन, मन, प्राण सिहर उठते हैं। इधर यह सब देख रही हैं, अपने प्रणय के साक्षात् देवता, अपने प्राणों के प्राण इन नवीन मदन सुन्दर को और उनके नयन मधुकर उस सुनील वदन कमल पर अटके रह गये। कुछ क्षणों को वह सब चहकना भूल गईं और उधर यह रसिया किशोर उन सब की- प्राण-प्रिया राधिका की, वह अद्भुत रूप रस छकी, अकी-जकी सी माधुरी छटा निरख-निरख कर और और रस कामना से भरते जा रहे हैं। आनन्द की बेल नव रंग से रञ्जित हुई लहलहा रही हैं, फल-फूल मण्डित यह किशोरी वल्लरियां- इन्हें अपलक निरख रही हैं, रसीले कुंवर और इनके अंग अंग में सुरस केलि की आशा-अभिलाषा उमगती आ रही है। रस लोभी मत्त मधुकर उन लतिकाओं की मकरन्द मधुधारा से आकृष्ट, उन्हीं की उत्फुल्ल छवि राशि में मत्त हुए पुलक रहे हैं- रह-रह कर भुज वल्लरियाँ फड़क उठती हैं- अधरों में कुछ मधुर कम्पन सा दीख पड़ता है- नयनों में चञ्चलता, अंगों में चपल केलि लालसा, करवटें ले रही हैं। मधुभरे प्रसूनों की भांवरें भरते मधुपों की गुञ्जार ने रसोत्कण्ठित प्रणय सुजान किशोर को और-और रसोत्तेजना से भर दिया- और-और त्वरा लगा दी किसी मधुरासव पान की। धीरे से कुछ कहते- मदन-मोहन मुस्कान से उन सभी के उर अन्तर को झकझोरते यह मत्त विलासी प्रियतम अब चञ्चल हो- नव नव रस चेष्टाओं में प्रवृत्त हो गये सुरस केलि आरम्भ हो गई। नयनों की होरी नयनों तक सीमित कैसे रहती- केलि विलास रस की कोई सीमा है क्या ? उमगते रस निधि को कोई कैसे थाम सकता है। वह देखो ... रस सिन्धु में रस चेष्टाओं का ज्वार भाटा उठ रहा है और उससे अपहृत रस विलुब्धा यह नव किशोरियां, किशोरी कुल शिरोमणि-प्रणयिनी श्याम-विलासिनी श्री राधिका। हां तो नयनों में होने वाली यह होली- यह अनुराग-फाग अब अंग अंग में भर गया- रोम रोम से प्रस्फुरित होने लगा। चपल किशोर ने फेंट से गुलाल अबीर निकाला। प्रिया जी के अरुण कपोलों को अनुरञ्जित कर दिया .... । रसिया किशोर

के नयनों में और रसावेग भरा पर अभी एकान्तिक रस केलि का अवसर न था– यों अनेक मध्य भी एकान्त सुअवसर निकाल ही लेते हैं, रसज्ञ सुन्दर। गुलाल की धुआंधार में मनमाना रस समेटते लूटते हैं । कितने चपल, कितने चञ्चल हैं यह नवल किशोर– अंग प्रत्यंग में रस लाघवता भरी है– उसका पारावार नहीं है । कपोल अनुरञ्जित कर दिये– ओष्ठ अनुरञ्जित कर दिये- अंग–अंग को रस रंग से पूजित किया, गुलाल अबीर से अर्चना करके । सुगन्ध की झकोरें उठ रही हैं– अंग सुवास का अभिषेक किया, इत्र की शीशियों ने ! इनकी रस धूम ने, इन सब सुन्दरियों को भी उकसा दिया । वे सब इन्हें घेर कर खड़ी हो गईं और प्रिया जी को चमकाने लगीं, इन्हें गुलाल–अबीर से रञ्जित करने के लिये । प्रिया जी तनिक उकसीं तो सही, पर रस–लम्पट के नयनों ने उन्हें जाने क्या कर दिया कि गुलाल करों में ही रह गया- हां, सखियों के पुनः चेत कराने पर उन्होंने इत्र उनके सीस पर उंडेल दिया और- इस मिस रस की वह उंडेल- समेट, मधुका वितरण–सञ्चयन, मद की ढोरनि–बोरनि । उद्दाम अनंगारंग केलि प्रारम्भ हो गई– रस लुब्ध किशोर की रस ललक पर आज कोई अवरोध नहीं है– कोई प्रतिबन्ध नहीं है । भीजते पीत पट में से छलकती वह गात छटा- विशाल वक्षस्थल से सटी वह वन माला । ओह ! अपने को सम्हार पाने में असमर्थ होती जा रही है वे सभी। और .... रस धूम .... मद झूम ..... ।

क्या पता कितना समय बीत गया । ज्यों–त्यों वह उद्दाम सुरसधारा तनिक संयम में आई- शायद श्रमित शिथिल हो गई थीं सभी, इसलिये- या किसी नवल रसावतारणा को अपने में छिपाए वह संयम वहां प्रविष्ट हुआ-- कौन जाने ? कुछ देर हास–परिहास हुआ, रसिक शेखर ने अपने कल कण्ठ की मधुरिम गान लहरियों से इन सबका रस स्तवगान किया । मदन गीतों का उफान उस निकुञ्ज प्रान्त में बह चला । अर्द्ध रात्रि बीतने को आई। अब वे सब उठीं– शायद इन युगल रसालय के अंगों में, नयनों में कुछ और ही भांति उठती रति रस तरंगों को, अनंग रंग लहरियों को लक्ष्य कर लिया था उन्होंने । उठीं– उठकर बाहर की कुञ्जों में चली गईं– अपने प्राण वल्लभ को रसीली चितवन से अभिषिक्त करतीं, उनकी लोल अवलोकन से रोमाञ्चित पुलकित ।

अवलोकन से पुलकिताङ्गी किशोरी ! यह- अंगों की पुलकन शमित हो, किसी रस गाम्भीर्य में प्रविष्ट हो, रस की अगाध तरंगों में समा गई- और वह तरंगें- उन नील वारिधि की थाह लेती वहीं लय हो
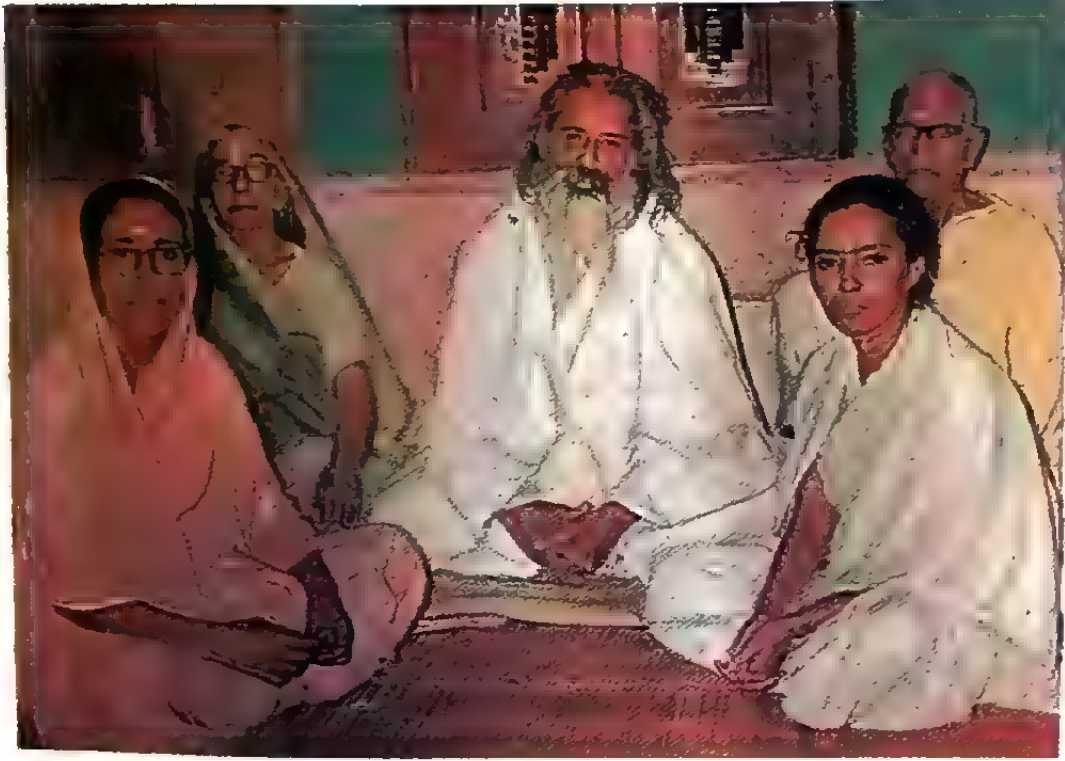
मध्य श्रद्धेय बाल कृष्ण दास जी महाराज, सामने बांए पू० बोबो दांए पू० ललिता बहन जी पीछे गृहस्थ भक्त श्री पन्नालाल जी भाबूटा तथा श्रीमती भाबूटा
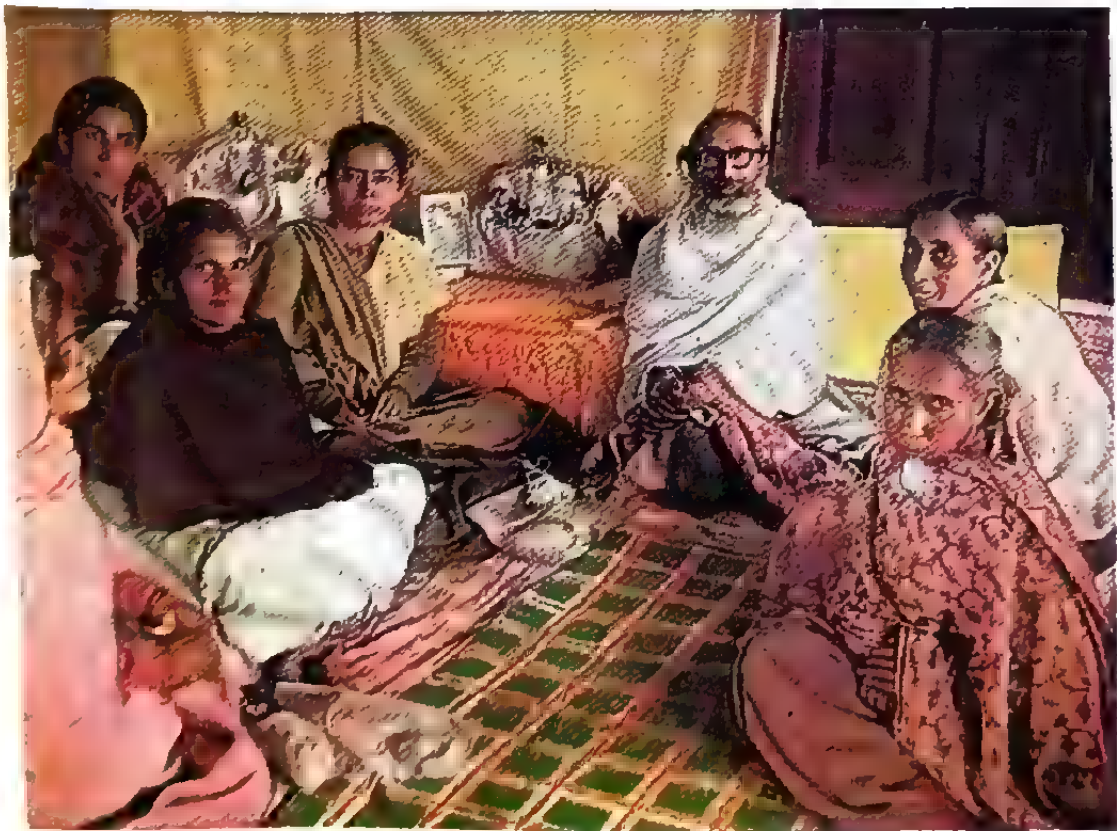
श्री ठाकुरजी सहित पू० बोबो। साथ में बांई ओर पू० मनोहर दास जी, दांई ओर इन्दु बहन सामने श्री विमला नेविल, श्री पुष्पा ग्रोवर दाऐ, बहन विमला महरोत्रा तथा विमला कपूर

गईं। इन्हीं भाव लहरियों में मग्न हुई पू० बोबो रस सिक्त सी- सराबोर सी आनन्दातिरेक से सिहर-पुलक उठीं। यह रसीली मग्नता कब तक इन्हें अपने अंक में लिये विश्राम देती रही, इसकी बात कौन कहता ? अता-पता भी देना कठिन है- वह परम सौभाग्य ! रसीली रंगीली स्थिति ! अहा !.....अहा !

× × ×

वसन्तोन्माद की भाव लहरियों ने मूर्तिमान वसन्त की सन्निधि में पू० बोबो को जहां एक ओर आलोड़ित कर अपने अंक में विश्राम दिया वहीं होली की इस धूम ने, सरस धूम ने नव चेतना भर, और-और उद्वेलित कर, किसी मदमयी झूम से तरंगित कर दिया। इन्हीं राग भरी चेष्टाओं में प्रिया जी की अनवरत सहज प्राप्त सन्निधि को लालायित हो उठीं। वह सान्निध्य एक रस विशेष से पोषित होता रहा, भावानुभावों को सहला, सत्कारता रहा- और इन्होंने देखी प्रिया जी की वही रूप रस माधुरी। उस माधुरी का पान कर, उमगा हृदय छलक उठा- वह रसकण बिखरे- परन्तु लेखनी ने बड़ी सजगता से उन मुक्ताओं का चयन कर, अपनी धरोहर बना सम्हाल लिया।

"वृषभानु नन्दिनी श्री राधिका सखियों की प्राण-प्राणा हैं, प्राण जीवन हैं, प्राण वल्लभा हैं। दिवस-रात्रि, तन, मन-प्राण उन पर वारती रहती हैं- यह प्रेममयी सखियां पर फिर भी तृप्ति नहीं, सन्तोष नहीं। प्राण सर्वस्व श्यामल किशोर के समान ही किन्हीं किन्हीं सखियों को तो उनसे भी अधिक प्रिय हैं यह कीर्ति कुंवरि। दिन रात इन्हीं के मुख चन्द्र को चकोरीवत् जोहती रहती हैं। इनके तनिक से भी इंगित को समझ उनके मनोनुकूल कार्य करती हैं- उनकी सब भाव भंगिमाओं को पहचानती हैं और उनके प्रिय कार्य में जी जान से लग जाती हैं। वे भी इन्हें प्राणों से अधिक प्यार करती हैं- उनका स्नेह वात्सल्य पूरित हृदय अपनी इन सभी सखियों पर उमगा ही रहता है- अपने प्यार दुलार की मधुर रस बौछारों में सदा सदा मज्जित प्लावित रखती हैं उन्हें। अपने प्राणों की निधि-अपनी प्रणय सम्पदा अपने सरस विभव श्यामल किशोर तक का एकान्तिक सुख उन्हें प्रदान करती हैं, उदार मना प्राणप्रिया श्री राधिका। ब्रज सुन्दरियों के नयन मधुपों द्वारा परिसेवित पाद पद्म हैं किशोरी के। श्री चरणों में प्रीति होना, चरण-कमल रस का लोभी होना, वास्तव में तो सर्वाङ्ग सेवन की ही साध रहती है, अभिप्राय भी वही होता है। यह आभीर कुमारियां केवल दास्य भाव- भाविता

नहीं हैं जो श्री चरणों में ही उनके नयन लगे रहें । हां स्नेहाधिक्य में दास्य तो स्वत: ही आ जाता है । सेवा की अभिरुचि आप ही जाग्रत हो जाती है। पर केवल चरणों में ही बैठने, श्री चरण मात्र अवलोकने, चरण कमल सहलाने की ही कामना रहती हो– ऐसा नहीं है; यही बात इन ब्रज किशोरियों की भी है । वे कीर्ति– कुमारी की सखियां हैं, उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं– उनके प्यार दुलार की पात्री हैं । यह उनकी थोड़ी भी सेवा को 'बहुत' करके मानती हैं– और वे इनका मुख जोहती रहती हैं, कुछ तनिक सा भी इंगित हो और हम वह कार्य करें। इंगित की भी प्रतीक्षा नहीं करतीं– जब किसी भी प्रकार की सेवा आवश्यक हो, वह सेवा जिससे– उन्हें सुख मिलता हो, वे प्रसन्न होती हों। प्रिया जी कब क्या चाहती हैं– उनके लिये क्या करना उचित है– उनके बिना कहे– बिना जताए ही सब कुछ जानती हैं और जानकर तत्क्षण करती भी हैं । कई बार प्रिया जी के आदेश के विरुद्ध भी करती हैं, उन्हीं के सुख के निमित्त, स्वसुख वे जानती नहीं । प्रिया जी के सुख से भिन्न इनका कोई सुख नहीं है, कोई रुचि नहीं है– कोई चाह नहीं है । उन्हीं की प्रतिमूर्ति, उन्हीं की काय–व्यूह स्वरूपा जो हैं .... ।

इनके नयन मत्त मधुकरों की भांति सदा सदा अपनी प्यारी सखी के चरण कमल मकरन्द रस पान हेतु मचलते ही रहते हैं– यह इन्हीं चरण कमल युगल के चारों और मंडराती रहती हैं– इन पाद पद्मों की भांवरें भरती रहती हैं– भांति भांति से सेवा में संलग्न रह– सेवा रस का आस्वादन करके मत्त रहती हैं । कभी प्रेम विह्वल प्रियतम के पास अभिसारिणी किशोरी को लेकर जाती हैं– अनुकूल शृङ्गार से सज्जित कर, तो कभी प्रिय मिलनातुरा किशोरी के पास रसिक शिरोमणि सुन्दर किशोर को कहीं–कहीं से बुला, लेकर आती हैं । इस प्रकार नित्य निरन्तर यह इन्हीं चरणाम्बुरुहों के सन्निकट कभी गुञ्जार करतीं– चहकती घूमती हैं तो कभी मौन रह कर स्तब्ध स्तम्भित हुई उनकी, उनके प्राण–प्रियतम की नव–नव रस केलि–माधुरी का पान करती हैं । धन्य हैं यह किशोरियां और धन्यातिधन्य हैं, ब्रज सुन्दरियों द्वारा परिसेवित युगल चरण कमल ।

❑ ❑ ❑

प्रथम भाग

एकादश अध्याय

पृष्ठ ४५१ से ४९७ तक

ये चटक मटक नन्दगांव की।
भ्रू की मटकनि नैन नचावनि
चतुराई रस दांव की।
पट झकझोलनि अटपट बोलनि
डोलनि वन तरु छांव की।
जहँ स्वच्छन्द करत रसकौतुक
बलिहारी वा ठांव की।

बयालीस
श्री जगन्नाथ पुरी यात्रा

हम पूर्व में कह आये हैं कि पू० बोबो के जीवन में माधुर्य रस का अजस्र प्रवाह स्वतः ही प्रस्फुटित रहने लगा था। उनके जीवन के किसी भी क्रम से साधन द्वारा सिद्धि की बात कभी नहीं झलकी। वे जन्म सिद्ध और पूर्व से ही इन संस्कारों को ले किसी विशेष हेतु से भूतल पर आई थीं। उनकी धारा में एक ओर 'महाप्रभु वल्लभाचार्य जी, श्री विट्ठलनाथ जी, सूर, नन्ददास, परमानन्द दास, मीरा और तुलसी की भक्ति-भावना का' सहज दर्शन हुआ, वहीं वैराग्य और माधुर्य की साक्षात् मूर्ति पू० बोबो की उपासना पद्धति श्री श्री मन्महाप्रभु चैतन्य देव तथा रूप जी, सनातन जी प्रभृति महज्जनों की धारा से भी किञ्चित् मेल खाती दीखी, वैसे त्याग और तितिक्षा उनमें स्वभावगत थी। इधर श्रीगीत गोविन्द के प्रणेता श्री जयदेव के विषय में उन्होंने विशद अध्ययन किया था। श्री सूरदास बिल्व मंगल, श्री प्रबोधानन्द जी सरस्वती द्वारा प्रणीत क्रमशः 'कृष्णकर्णामृत' तथा 'संगीत माधव' तथा विद्यापति एवं चण्डीदास जी की भक्ति-भावना-मधुर उपासना से भी कहीं-कहीं मेल खाती थी, इनके हृदय की नैसर्गिक मधुर धारा। ग्रन्थ अध्ययन करने की अभिरुचि वश इन्होंने अनेक महानुभावों के अनेकानेक ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन कर विशद ज्ञान अर्जित किया था, अथवा यों कहना होगा उनमें स्वतः प्रस्फुटित ज्ञान, शास्त्रमत जो धरोहर में उनके जन्म के साथ ही उनमें विद्यमान था, अनेक ग्रन्थों के अध्ययन के साथ-साथ सहज पुष्ट होता चला गया।

अनेक बार श्री चैतन्य चरित्र पढ़ा और उनकी उपलब्धियों से सरसाता रहा इनका मन। नीलाचल में ब्रज माधुरी तथा गम्भीरा में गौराङ्ग प्रभु की उन्मत्त दशा से मेल खाती इनके हृदय की मधुर ऊर्मियां पुनः पुनः इन्हें महाप्रभु जी के वातावरण से स्पृष्ट उस पुण्य स्थली का दर्शन करने के लिये उद्वेलित करने लगी। इनके जीवन में ग्रहों का एक योग विदेश जाने का था, जिसकी स्फुरणा उन्हें कई बार होती रहती थी, सम्भवतः उस भावना की आहूति भी वे इसी यात्रा में कर लेना चाहती थीं।

यात्रा का प्रसङ्ग एक बार पहले भी चला था। किन्हीं

कारणों से तब तो क्रियान्वित न हो सका । इस बार जून मास में अधिक से अधिक बहन भाईयों की अनुकूलता देख, ३ जून सन् १९७५ को यात्रा का तय हो गया । सभी समुचित व्यवस्था हो गई और यहां से Local रेलगाड़ी से पू. श्री मनोहरदास जी (भैया), पू० बोबो, श्री सुशीला बहन जी, मां श्यामा जी, उमा, दर्शन तथा उर्मिल, विमला कपूर, सन्तोष, मलका, सन्तोष नारंग, सुमित्रा, सरोज, पुष्पा, काकी, सुदेश, बीजू, करुणा, निर्मला तथा शर्मा भाई साहब, ओमी, बशेशुर, राजकुमार, मनोज, विजय आदि बहन-भाइयों ने प्रस्थान किया ।

यहां से सवार हो लिये । सभी व्यवस्था हो ही चुकी थी। पू० बोबो को यात्रा में किसी अप्रिय घटना का पूर्वाभास हुआ । ऐसा ही कुछ कुछ संकेत श्री मनोहर दास जी (भैया) को भी हुआ । सारी व्यवस्था हो चुकी थी- कुछ बहन-भाई छुट्टी लेकर भी आ चुके थे, अतः चलना ही उचित समझा और वृन्दावन से Local गाड़ी से रवाना हो गए । प्लेटफार्म पर खड़े श्याम भाई सा. निर्मल गुप्ता तथा अन्य बहनों के हिलते हाथों से दूर होती गाड़ी धीरे-धीरे गति पकड़ने लगी । सहसा ही ऊपर रखे सामान में से एक बर्तन पहले पू. भैया पर तथा पुनः पू० बोबो पर गिरा । पू० बोबो की आँख के पास चोट लगी, खून निकला ऐसा लगा जैसे इन दोनों ने ही अपने ऊपर उस कष्ट को झेल लिया है । उस अप्रिय घटना का संकेत पहले मिल चुका था ।

थोड़ी देर में 'तूफान एक्सप्रैस' गाड़ी मथुरा स्टेशन पर आकर रुकी । अपनी रिज़र्वेशन आदि को खोजे बिना ही जैसे-तैसे सामान रख गाड़ी में बैठ गये । श्री ठाकुर जी को एक बहन को सौंपने में सिंहासन से कुछ गिरा। गाड़ी चल चुकी थी । कुछ भी देख पाना सम्भव न था, पता चला, सेव्य श्री ठाकुर के साथ विराजमान एक गैया रेलवे लाईन में गिर गई है । चेन खींच कर गाड़ी रोकने का भरसक प्रयास होने पर भी गाड़ी न रुकी। श्री बशेशुर भाई को, कुछ गिरा है, ऐसा आभास हो गया था । अतः गाड़ी जाने के बाद उन्होंने लाईन में जाकर देखा, वह स्तब्ध रह गए । अप्रियता का कुछ अंश अपने ऊपर झेला इस गाय ने और वह अपनी स्वाभाविक मुद्रा में लाईन में ठीक से खड़ी मिली ।

पू० बोबो एक दूसरे डिब्बे में बैठ चुकी थीं और श्री ठाकुर जी एक अन्य में थे । इनके मन की दशा देखते ही बनती थी । आगरा जाकर गाड़ी जब रुकी तो श्री ठाकुर जी भी पू० बोबो के पास पहुँच गये । उधर

गैय्या मैय्या को ले बशेशुर भी टैक्सी से आगरा स्टेशन पर सभी के पास पहुँच गया। देखकर सभी प्रफुल्लित हो उठे। गाड़ी चल दी। धीरे-धीरे अनेक स्टेशनों को छोड़ सहस्त्रों मील की दूरी तय करती गाड़ी, हावड़ा स्टेशन पर जा पहुँची। दुर्गापुर स्टेशन पर बहन इन्दु, श्री विजय भाई, वृन्दा तथा रुचिर भी मिले और हमारे साथ हो लिये थे। आसनसोल स्टेशन पर श्रुति पहले ही मिल चुका था।

हावड़ा रुकने का कार्यक्रम तो था नहीं। 'पुरी एक्सप्रैस' का छूटने का समय हो चुका था। शीघ्रता में गाड़ी पकड़ी और रात्रि भर गाड़ी में सफ़र करते रहे और हम सभी लोग, रेलगाड़ी महानदी को पार करती पौ फटने के साथ भुवनेश्वर पहुँच गई। वहाँ से रास्ता अधिक न था। ५ जून को सभी बहन भाई ९ बजते पुरी पहुँच चुके थे।

ठहरने की समुचित व्यवस्था कर सायं में श्री जगन्नाथ जी के दर्शन करने का विचार बना। कुछ अनजाने में ही संयोग ऐसा बना।

प्रेमेर विकार वर्णिते चाहे जेई जन, चांद धरिते चाहे जेनो होइया वामन।
वायु जैछे सिंधु-फलेर हरे एक कण, कृष्ण प्रेम तैछे जीवेरे स्पर्शन॥
क्षणे क्षणे उठे प्रेमेर तरंग अनंत, जीव धार काहां तार पाइबेक अंत।
श्री कृष्ण चैतन्य जाहा करेन आस्वादन, सबे एक जाने ताहा स्वरूपादि गण॥ *

माधुर्य भावापन्न, श्री मन्महाप्रभु जी के अन्तिम अट्ठारह वर्षों के श्यामा-श्याम के अभाव में, और अनेक बार उनकी स्मृतियों में डूबते-उतरते तथा अनेक बार उनकी सन्निधि-सुख में मग्न-मत्त जिस पुण्य स्थली (काशी मिश्र का घर) गम्भीरा दर्शन की विशिष्ट भावना से ओत प्रोत हुई बोबो की श्री जगन्नाथपुरी जाने की इच्छा हुई थी, सहज उनकी प्रबल इच्छा वश उसी स्थली के निकट ठहरने का संयोग बना। यह मात्र संयोग न था-प्रत्युत उनकी भावनाओं का प्रबल आवेग था, उनके अन्तर की आकुल-व्याकुल चाह थी।

जब यह बात पता चली कि गम्भीरा स्थान बिल्कुल निकट

---

* जो पुरुष प्रेम के विकार को वर्णन करने का प्रयत्न करता है, उसका प्रयत्न उसी बौने के समान है जो सबसे छोटा होने पर भी आकाश में स्थित चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है। जिस प्रकार अनन्त, अथाह महासागर में से वायु एक कण को उड़ा लाती है उसी प्रकार कृष्ण प्रेमार्णव पय का एक कण जीवों को स्पर्श कर सकता है। क्षण क्षण में प्रेम की तरंग उठती है, भला, साधारण जीव उनका पार कैसे पा सकता है ? श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जिस प्रेमरस का आस्वादन करते हैं, उसे तो उनके परम प्रिय गण श्री स्वरूप दामोदर तथा रामानन्द राय ही जान सकते हैं अथवा उन्हीं की सी स्तर के महानुभाव।

ही है, तो पू० बोबो एक आह्लाद विशेष में भर गईं। तुरन्त उस स्थली पर जाने को आकुल हो गईं। सन्ध्या के समय गम्भीरा दर्शन कर, उस स्थली का, श्रीमन्महाप्रभु जी की पादुकाओं और उनके प्रसादी वस्त्रों का दर्शन, प्रणाम कर सभी एक भाव विशेष में मग्न हो गए। पू० बोबो के विषय में, उनकी गम्भीर मनः स्थिति, उसमें उठे भावानुभावों को जानने की सामर्थ्य ही किसमें थी? उस समय उनकी एक अवस्था विशेष से, साथ के सभी लोग, कुछ भी भांप न सके। गोपनीय रहने की उनकी इतनी सहज और स्वाभाविक वृत्ति थी कि अपने भावों का किञ्चित् भी प्रदर्शन उन्हें सुहाता न था। वास्तव में सिन्धु के तल में कभी हिलोरों की हलचल नहीं देखी जाती। हिलोरों का प्रभाव यद्यपि उसी सिन्धु का ही सुखास्वादन कराता है, फिर भी सिन्धु का ऊपरी भाग ही हिलोरों से सर्वथा झकोरा जाता है। महाप्रभु जी की मधुर भावनाओं से पू० बोबो का मन झंकृत होता रहता और उनकी यह रसाकुल भावनाएं, अपने प्राणधन सांवर किशोर, वृन्दावन माधुर्याम्बुधि की सरस मधुर हिलोरों से सिंचित होती रहतीं। बीच-बीच में वे अकेली ही उस स्थली पर जा घण्टों उस वातावरण का सुखास्वादन करती रहतीं।

जगन्नाथ जी के दर्शन कर उनका मन एक सरसता विशेष में भर गया। उन्हें जगन्नाथ जी अपने उन्हीं वृन्दावन विहारी रूप में, हाथ में मुरली और गले में वैजयन्ती माला, मन्द मन्द मुस्कराते, नयनों से सरस संकेत करते, अपनी उसी वृन्दावन माधुरी का प्रसार करते दीखे।

श्री मन्महाप्रभु के श्री जगन्नाथ जी के दर्शन करते, शिला पर अंकित अंगुलियों के चिह्न देख जाने 'कैसा हो गया इनका मन। उनकी विरह उच्छ्वास ने इन्हें झकझोर सा दिया।'

इधर सिद्ध बकुल वृक्ष के समीप जा श्री हरिदास जी की स्मृति ने आलोड़ित कर दिया। उनकी नाम निष्ठा की सराहना करती रहीं।

अगले दिन समुद्र स्नान करने का कार्यक्रम बना। अगाध, अथाह नील सलिल को देख जाने कैसा हो गया इनका मन। श्री मन्महाप्रभु जी की स्मृति, श्याम सुन्दर के साथ इन ब्रजाङ्गनाओं का नील सलिला श्री यमुना में अवगाहन, जल विहार, उसमें उठती अनेकानेक रंग तरंगों ने एक विशेष ही उन्माद में भर दिया।

गुण्टिचा उद्यान, टोटा गोपीनाथ के साथ-साथ साक्षि-गोपाल के दर्शन कर आनन्द में मग्न हो गईं। इसी प्रसंग में पुरी से लगभग

तीस मील दूरी पर स्थित अलालनाथ के दर्शन करने भी गये । कटहल के बड़े-बड़े वृक्षों के मध्य इस निर्जन तथा नीरव स्थली का सौन्दर्य वर्णनातीत है । यहां का वातावरण एकान्त, बरबस ही मन को एक निस्तब्धता में ले जाता है । श्री जगन्नाथ भगवान के दर्शन न कर पा सकने के वियोग में, श्री मन्महा प्रभु जी के श्री अंगों के संस्पर्श से, स्थान-स्थान से द्रवित उस महाभागा शिला के दर्शन भी किये । महाप्रभु जी के हृदय की व्याकुलता, भाव रूप में प्रवाहित धरोहर, उनके श्री अंगों से, द्रवित हुई आज भी उनकी उस विरह व्याकुलता का परिचय दे रही है । उसी स्थान पर, उस वातावरण से सर्वथा द्रवित हुई, वातावरण से उद्वेलित मना पू० बोबो ने कहा था- ' श्री मन्महाप्रभु जी की विरह वेदना से द्रवित यह स्थली- यह शिला, जहां वे बैठते, लोटते, उनके मन की बेचैनी से, इस उत्तप्त दशा से यह स्थली द्रवित हो गई और उस द्रवण में सहसा उनके श्री अंगों के चिन्ह, इस शिला पर अंकित हो गये । वहीं इन्हें सुनाई दी श्री मन्महाप्रभु जी की प्रेम और विरह से भीगी मधुर वाणी- '' श्री कृष्ण'' '' श्री कृष्ण'', '' श्री कृष्ण''-'' श्री कृष्ण'' की आवृत्ति सुन गद्गद हो गईं । इन भावनाओं से ओत-प्रोत सन्ध्या में सभी पुरी लौट आये ।'

श्री युगल का स्नान प्रिया-प्रियतम की सेवा-अर्चा, उनकी सुख-सुविधा हेतु ही पू० बोबो का जीवन था । सेवा में किसी भी अभाव की अथवा कमी की बात उन्हें सुहाती ही न थी । समस्त दैनिक क्रियाओं व चर्याओं के साथ-साथ श्री ठाकुर जी का संयोग 'मणिसूत्र इव' जुड़ा था। पू. श्री मनोहर दास (भैया) जी ने सेव्य युगल स्वरूप के समुद्र स्नान का प्रस्ताव रखा । इनका मन खारे जल की भीति और आशंका वश यह सब स्वीकार न कर सका । परन्तु यही युगल स्वरूप उसी दिन समुद्र स्नान करते दीखे । समुद्र की तरंगें उसी प्रकार श्री युगल को आप्लावित कर लौट जाती हैं, उसके उपरान्त एक बड़े ही सहज तथा मुक्त भाव में इन्होंने कहा था, ' श्री युगल ने समुद्र स्नान कर लिया है ।' जो वस्त्र उस दिन धारण कर रखे थे, उन्हीं में स्नान करते इन युगल श्री को सुमित्रा बहन ने भी देखा ।'

ऐसे ही एक दिन समुद्र के तट पर उसकी श्यामल सुषमा निहार रही थीं । बीच-बीच में कभी नेत्र निमीलित भी कर लेतीं । एक बार जैसे ही नेत्र खोले, दृष्टि में एक विशेष ही भाव दीखा- ये एकटक निरखती रह गईं । पता नहीं इनका मन तो कहां और कैसे मग्न होता रहा ? परन्तु उन्होंने देखा बनवासी वेष में श्री सीता जी, श्री रामजी और लक्ष्मण जी जटा जूट बाँधे इन्हीं की ओर चले आ रहे हैं । उनके कद वर्तमान लोगों के कदों से अधिक

ऊंचे हैं । श्री सीता जी का इतना ऊंचा कद देखकर स्तब्ध सी रह गईं । पूर्ण कैशोर्य यौवन श्री सम्पन्न, तीनों ही पृथ्वी से काफ़ी ऊपर आकाश में चले आ रहे थे । किशोरी जी ने लाखे से रंग का बनारसी ज़री की बूटियों का सा लहंगा धारण किया हुआ है, अद्भुत मादक, नूतन मुस्कान से युत हैं । इन्हें देख काफ़ी समय यह ऐसे ही बैठी रहीं, फिर श्री मनोहर भैया जी से कहा था, ऐसा लगता है कि श्री राम जी का यहां से कुछ सम्बन्ध विशेष रहा है ।

जगन्नाथपुरी में यद्यपि इनका मन वहां की स्थलियों का विशेष रूप से आस्वादन करता रहा तथापि बीच-बीच में ब्रज और वृन्दावन की स्मृति से झंकृत हो उठतीं । अतः लगभग एक सप्ताह वहां की स्थलियों में विचरण कर, वहां का सुखास्वादन कर, १० ता. को सभी के साथ कलकत्ता चली आईं । श्री रामचन्द्र जी दम्माणी * पू. श्री मनोहर दास जी से पूर्व में ही परिचित थे । उन्होंने ठहरने और स्थलियों के दर्शन करने की सम्पूर्ण व्यवस्था सुचारू रूप से कर दी ।

यहां, कलकत्ता आकर 'मां' काली के दर्शन करने गईं । इन्हें हो आई अपनी बालपन की स्मृति । अम्बाला में दीर्घायु के लिये इन्हें मां काली का ही प्रसादी वस्त्र धारण करवाया था । उन्हीं को मातृ रूप में पुनः समक्ष देख हर्ष से भर गईं तथा श्रद्धा सुमन अर्पित कर धन्य हो गईं ।

अगले दिन दक्षिणेश्वर दर्शन करने पहुँचे । श्री रामकृष्ण परमहंस जी की रहनी और भाव की निर्भरता ने इन्हें इनके बालपन से ही प्रभावित कर लिया था । गङ्गा का एकान्त तट और पञ्चवटी का सरसीला वातावरण श्री परमहंस जी की सतत सन्निधि का आभास करवाता रहा । परमहंस जी की भजन स्थली, पञ्चवटी के वातावरण ने इन्हें विशेष रूप से आप्लावित किया । अन्दर परमहंस जी का निजी कक्ष देख तो जाने इनका मन कैसा हो गया । इधर मां शारदा का कक्ष देख कर भी यह विशेष रूप से भावान्वित हो उठीं । उधर श्री रामकृष्ण परमहंस जी की इष्ट मां के दर्शन करने गये । उन्हें देखते ही श्रद्धावनत तो हुईं ही, उनके बिल्कुल सजीव रूप में दर्शन कर मग्न हो गईं, बोलीं, 'अहा ! इनका रूप देख लगता है परमहंस रामकृष्ण देव की प्यारमयी सेवा का रस, मां के नेत्रों से छलक रहा है । उनके प्रति इनका लाड़ अब भी उमड़ता दीख रहा है ।'

पुनः बैलूर मठ भी गईं । वहां का विशुद्ध वातावरण श्री

* वैष्णव भक्त

रामकृष्ण परमहंस जी के स्वच्छ और निश्छल भाव को अपने में समेटे सभी को आप्लावित करता रहा। श्री विवेकानन्द जी का निजी कक्ष और उनकी वस्तुओं का संग्रह दर्शन कर बहुत ही सुख हुआ।

दो दिन कलकत्ता रुक कर बहन इन्दु जो बचपन से ही पू० बोबो की स्नेहिल छत्रछाया में पलीं, के स्नेहाग्रह तथा सच्ची प्रतीक्षा के कारण उसके घर दुर्गापुर ठहर भगवान भूतनाथ की पावन नगरी बनारस चली आईं। काशी रेलवे स्टेशन पर आदि वैष्णवाग्रगण्य भगवान शंकर अपने निज जनों के स्वागतार्थ आकाश में सामने ही इन्हें दिखलाई दिये। उन्होंने अपना वरदहस्त इनके शीश पर धर, स्वयं इनका गुरु होने का संकल्प, पुनः पुनः इन्हें आश्वासन प्रदान करते, दोहराया था।

बनारस में श्री बिन्दु माधव घाट, जहां पास ही श्री महाप्रभु जी ठहरे थे, मणिकर्णिका घाट आदि के दर्शन करते भगवान विश्वनाथ जी के दर्शन किये। वहां मन्दिर में पुनः भगवान शंकर इन्हें प्रत्यक्ष रूप में दीखे। अपने जनों के स्वागत सत्कार करने वे काशी रेलवे स्टेशन पर ही दर्शन दे चुके थे। कई अन्य स्थलियों का दर्शन कर 'मां' आनन्दमयी के आश्रम पर उस समय विराजमान श्री गोपीनाथ कविराज के दर्शन कर, उनसे वार्तालाप कर बहुत ही प्रसन्न हुईं।

उधर संकट मोचन, सिद्ध हनुमान जी, जिन्होंने श्री तुलसीदास जी की अनेक विपत्तियों में रक्षा की थी, उस स्वरूप के भी दर्शन किये।

इस प्रकार दो दिन यहां निवास कर, प्रयाग दर्शनार्थ चली आईं।

प्रयाग में त्रिवेणी सङ्गम का दर्शन-स्नान कर बहुत ही प्रसन्न हुईं और यहीं से चित्रकूट के लिये प्रस्थान किया।

चित्रकूट- चित्रकूट की यात्रा- बड़ी यात्रा का एक स्वतंत्र अंग सा ही बन गई। मार्ग में कुछ कठिनाई अवश्य हुई परन्तु संध्या तक चित्रकूट पहुँच गए।

श्री राम भरत मिलन स्थली- मन्दाकिनी नदी में स्नान आदि कर, कामद गिरि की परिक्रमा की। परिक्रमा मार्ग में ही श्री राम और भरत जी की मिलन स्थली को देख इनका मन विशेष रूप से द्रवित हो गया। शिला खण्डों पर अंकित चरणचिह्न ! चरणों के अंकों की भीड़ बनी है

शिलाओं पर। दोनों दलों का आमने सामने आकर मिलना–उन चरणों की छाप से आज भी स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। इस मिलन स्थली की मधुरिमा-प्रेमिलता कहने में आना कठिन है।

स्फटिक शिला– यह आज भी श्रीराम पादारविन्दों से स्पर्शित परम स्निग्ध और सुन्दर लगती है। अपने अंक में आज भी उन मृदुल चरण दलों को संजोये गर्वित हो रही है।

अनसूया कुण्ड, सहस्रधारा, सीताकुण्ड इत्यादि अनेक स्थलियों के दर्शन किये।

'सहस्रधारा' नाव से जाते में एक दुर्घटना होते-होते बच गई। पयस्विनी नदी में जल अधिक था। हम सभी लगभग बीस, बाईस जने उसमें सवार थे। मल्लाह के हाथ से रस्सी छूट गई– नाव डगमगाती हुई धीरे-धीरे सम्हल गई। सभी बहन भाई पूजनीया बोबो पर निश्चिन्त हुए वहां ठीक से ही बैठे रहे। पू० बोबो निश्चिन्त थीं, किन्हीं श्यामल सुन्दर माधुर्य रस सार श्री कृष्ण के सबल, सशक्त आश्रय पर।

वहाँ की सभी स्थलियों का आनन्द ले पू० बोबो सभी सहित आ पहुँचीं लखनऊ। श्रीराम जी की स्थली अयोध्या जाने का योग सवारी के साधन न मिलने और समयाभाव वश नहीं हो सका।

अतः अपनी सुखद यात्रा की सरस स्मृति ले वे श्री धाम आ गईं।

पू० बोबो जून मास, १९७५ के अन्तिम सप्ताह में अपनी यात्रा कर लौट आई थीं। सभी जगह भ्रमण करती रहीं वे, परन्तु मन सतत वृन्दावन और वृन्दावन विहारी की स्मृतियों में, उनकी सतत सन्निधि में संलग्न रहा। श्री वृन्दावन के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी– वृन्दावन से बाहर रहने पर वृन्दावन और वृन्दावन की अनुभूति एवं सतत सन्निधि का सुख सर्वथा सम्भव है परन्तु वहां का प्राकट्य ऐश्वर्य-भावना से ओत-प्रोत ही कहा जावेगा।

'वृन्दावन माधुरी' ब्रज, वृन्दावन के कण-कण में बिखरी पड़ी है। अहा! नित्य ओत-प्रोत है। रति और मदन ने उस बिखरी श्री को कुंज-निकुंजों में, वन-वीथियों में यथा स्थान सज्जित कर यहां की शोभा को बढ़ाने में सहयोग दिया है– अतः विलास श्री सम्पन्न वसुन्धरा की सतत आकृष्ट करती माधुरी धारा में सिक्त, सिंचित होकर ही मग्न क्यों न हो जायें? उनकी धारणा थी, उनकी निष्ठा थी।

❑❑❑

तैंतालीस

श्रद्धेय पण्डित गया प्रसाद जी से भेंट-माँ का देहावसान

बात अस्सी के दशक की है। सन् १९७७ में एक बार पूजनीय पण्डित श्री गया प्रसाद जी ने श्री श्री हरिवल्लभ जी द्वारा विजय से कहलाया पूजनीया ऊषा बहन जी से मिलने का प्रस्ताव। उन दिनों विजय श्री गिरिराज ही निवास कर रहा था। श्री धाम लौटने पर यह सारी बात ज्यों की त्यों, पूजनीया बोबो के सामने रख दी। वे मुस्कराईं। एक-आध बार विजय ने इसका कारण पूछना चाहा। 'फिर बताऊँगी' यह कहकर पू० बोबो मौन हो गईं।

श्री राधाष्टमी निकट आ रही थी। अपने नियम के अनुसार पू० बोबो ने श्री ठाकुर जी सहित श्री गिरिराज जाने का कार्यक्रम बनाया। साथ में पू० बोबो की अभिन्न प्राणा सखी श्री सुशीला जी तथा विजय भी थे। एक-दो बहन और भी साथ थीं, जिसका ठीक से ध्यान नहीं। श्री गिरिराज पहुँचे। अगले दिन समय निर्धारित कर, श्रद्धेय पण्डित गया प्रसाद जी के यहाँ दर्शनार्थ गए। अपने सहज स्वभाव से ही भगवज्जनों को समादर प्रदान करते, वे पहले से ही प्रतीक्षारत, अपने ध्यान-चिन्तन में निमग्न थे। श्रद्धेय पण्डित जी के सेवक श्री ठाकुर दास जी ने उन्हें पू० बोबो के आने की सूचना दी। अपनी विनम्रता से दोनों कर बाँधे, आधे झुके जाते से, पू. पण्डित जी तीव्र गति से इधर से भागे और उधर, श्री सुशीला बहन जी और विजय से भी आगे पग बढ़ा, भागीं पू. बोबो। दोनों ही एक दूसरे के स्नेह और प्रेम में अभिभूत थे। इधर श्रद्धा और वात्सल्य वश अभिवादन करते खड़े थे पू० पण्डित जी और उधर थीं, सफेद धोती पहने, सिर ढके, दैन्य और विनय की मूर्ति पू० बोबो इनके लिये प्रणाम निवेदन-रता, भावाभिभूत दशा में। प्रेम अपने विशुद्धतम रूप में मूर्त हो, दोनों महानुभावों को अपनी स्थिति, स्वरूप और मर्यादा में बाँधे रखकर भी उछल-उछल, छलका पड़ रहा था। एक ओर पू. पण्डित जी, मर्यादा और दैन्य के महान् आदर्श और दूसरी ओर पिता समान समादर देती विनय और श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति पू० बोबो।

यह मिलन-प्रसङ्ग अनुभूति का ही विषय था। प्रेम को कह

कर कोई कितना व्यक्त कर सकता है ! वहाँ वात्सल्य था, मातृत्व था, सख्य था और सर्वोपरि श्रद्धा और समस्त मर्यादाओं में छिपा पुनः पुनः झाँकता विशुद्धतम प्रेम ।

लगा, एक सखी अपनी अनन्या सखी से बहुत लम्बे समय बाद मिली हो अथवा एक ही प्रेष्ठ की प्रीति में मत्त दो भक्तों का अपूर्व मिलन हो गया । वहाँ शान्ति अवश्य थी पर हृदय, हृदय की बात कह भी रहा था और सुन भी रहा था । वहाँ तन अवश्य अलग-अलग दीख रहे थे पर मन से सामीप्य और प्रीतिपूर्ण अभिव्यक्ति का आदान-प्रदान निरन्तर हो रहा था। वहाँ दूरी में भी नैकट्य, मौन की रसीली मुखरता, नयनों से बरसती स्नेह की निरन्तर झरी । ओह ! क्या कहें और कैसे कहें ? उपमाएं भी विस्मित हो गईं थीं । उपमाएँ सदा एकाङ्गी ही होती हैं अतः उन सबका यहाँ कोई सरोकार ही न था । एक रस के द्वय भ्रमर आस्वादन रत हो वहीं बैठ गए ।

उधर बैठे थे पू. पण्डित जी के सेवक और दूसरी ओर पू. सुशीला बहन जी तथा विजय । प्रेमभरी शिथिलता का यह क्रम कब तक बना रहा- क्या कहें । अनेक बातें भी हुईं और श्रद्धेय पण्डित जी की सारगर्भित वाणी, कुछ लेखनी के माध्यम से और कुछ-कुछ वाणी के मिस प्रकट होती रही ।

इसी बीच, वहीं के श्रीमद्‌भागवत् वक्ता पण्डित जी वहाँ आ पहुँचे । पू. पण्डित जी के पास पू० बोबो को बैठे, उन्होंने दूर से ही देख लिया था । अपनी ब्रजवासियों की सी सरलता में बोले, 'पण्डित जी ! आज एक बहुत ही अचम्भो देख के रह न सक्यो । आपके यहाँ महिलान को प्रवेश ! पूर्व में तो न सुन्यौ- देखिबे की कहा कहैं ।'

कुछ क्षण चुप रह कर, वातावरण की निःस्तब्धता को भंग करते हुए, बड़े ही सरल ढंग से पण्डित जी ने कहा, 'भैया ! इनकी स्त्री संज्ञा नायँ । काहू मिस ते नित्य परिकर हू भूतल पै आवै । इनकी कहा कहौं, यह तो निज परिकर हैं । हमारी बड़ी बहन हैं- मैं तो बालक हूँ ।' सभी को अपने सहज कोमल स्वभाव वश समादर देते पू. पण्डित जी का दैन्य भी उनके व्यक्तित्व की अपूर्व शोभा ही है ।

बात वास्तव में बड़ी ही विचित्र थी और है भी । पू. पण्डित जी मर्यादा वश, नारी जाति मात्र से न मिलने का सिद्धान्त बना, उसका सुदृढ़ता से पालन करने का आग्रह रखे हैं । इसमें किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता अथवा

छूट उन्होंने कभी, कहीं नहीं दी। इस मर्यादा का नियम बनाने अथवा पालन करने से पू. पण्डित जी जैसे व्यक्तित्व के लिये तो कोई अन्तर विशेष होगा ही क्या। केवल मर्यादा का आदर्श स्थापित करने और आने वाले साधक वर्ग के लिये एक आदर्श की स्थापना भर की बात है। अतः यह क्रम बड़ी ही कड़ाई से चलता रहा है।

पहले, प्रसङ्ग वश पू० बोबो की हँसी के विषय में विजय एक-दो बार पूछ चुका था। अब कुछ प्रसङ्ग का सन्दर्भ भी अनुकूल था अतः साग्रह उसने पूछा तो पू० बोबो ने बड़े ही अन्यमनस्क और सहज भाव से कहा, 'पूज्यपाद पण्डित जी आज के युग की महान् विभूति हैं। उनके से स्तर का सुयोग्य, सुस्पष्ट, धारणा तथा हृदय-प्रधान व्यक्तित्व जगत में दुर्लभ ही है।' यह कह कर उन्होंने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और बोलीं :-

कुछ वर्ष पूर्व, एक बार वे (पू० बोबो) अपनी मां श्यामा जी, श्री सुशीला जी, बहन उमा-दर्शन आदि अन्य कुछ बहनों सहित श्री गिरिराज परिक्रमा हेतु जा रही थीं। गर्मी के दिन थे। कुछ क्षणों के लिये श्री लक्ष्मी नारायण मन्दिर के पास सभी लोग रुक गए। पता चला, यहाँ एक महात्मा निवास करते हैं। तब तक परिचय नहीं हुआ था। कुछ बहनों की दर्शन करने की सहज ही जिज्ञासा हुई। वहाँ जाकर जब समय आदि के सम्बन्ध में पूछा गया तो पता चला कि वे स्त्रियों से मिलते नहीं- अतः सभी की यह जिज्ञासा शान्त सी हो गई। पू० बोबो को स्मरण हो आई मीरा जी और जीव गोस्वामी जी वाली घटना। भला, पू. पण्डित जी को तो इस सब की आवश्यकता ही नहीं। वे तो सन्त हैं- उनके मन में सहज ही विचार आया, पूज्य पण्डित जी जब स्वतः बुला कर कहेंगे, तभी दर्शन का सुयोग हो सकेगा।' यह संकल्प कुछ वर्ष पूर्व उठा था। उसके पश्चात् भी अनेक बार श्री गिरिराज जाना होता ही था। आते-जाते पू. पण्डित जी के दर्शन भी बीच-बीच में हो ही जाते थे, परन्तु एक आत्मीयता विशेष और अपनत्व के जिस कारण को लेकर दर्शन करने का मन हुआ था, वह कोई साधारण स्तर की बात न थी। अब पू. पण्डित जी का वात्सल्य और अपनत्वपूर्ण व्यवहार देख, गद्गद हो उठीं पू. बोबो।

उसके बाद से प्रत्येक वर्ष पू० बोबो श्रद्धेय पण्डित जी के दर्शनार्थ, जब भी श्री गिरिराज जातीं, वहां अवश्य जातीं। चर्चा होती, अनेक बार सैद्धान्तिक और अनेक बार लीला सम्बन्धी। एक बार पू० बोबो दर्शनार्थ गईं। श्रद्धेय पण्डित जी तथा पू० बोबो का मिलन अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण तो

होता ही था साथ-साथ उसमें हृदय का जो एक विशेष द्रवण होता, सुखमयी उस स्थिति का जिन्हें आस्वादन करने का सुअवसर मिला है, वे अवश्य ही धन्य हुए हैं। जिन्हें इस प्रकार का सुयोग मिला है वे ही, उसका अता-पता पा सकते हैं। ऐसे ही एक बार पू. बोबो ने पूछा- 'पण्डित जी! सभी सन्तों-भक्तों ने श्री गिरिराज की तरहटी में विचरते, विभिन्न लीलाओं में मग्न-मत्त, श्यामा-श्याम को निहार अपने-अपने भावों की पुष्टि की है। आप श्री गिरिराज की सन्निधि में वर्षों से विराज रहे हैं। अवश्य ही वह श्यामलोज्ज्वल छवि अपनी चपलता से आपको आकृष्ट करती रही है। कृपा-प्रसाद कण से हमें भी अनुग्रहीत करें।'

साश्रु नयन, ग्रीवा झुकाए, आत्म विभोर हो उठे पूजनीय पण्डित जी महाराज। बोले, 'रसिकन ने साँची कही है, मेरो कहा है ....।'

इसी प्रकार, एक बार पुनः दर्शन करने पधारीं, साथ थीं श्री सुशीला बहन जी और विजय। पू० पंडित जी इतने अधिक आप्लावित हो रहे थे कि प्रिया-प्रियतम की लीलाओं का वर्णन करने लगे। प्रिया जी के ब्रज में अवतरण की लीला सुनाई। साथ-साथ अन्य सखियों के अवतरण की गाथा कह, सुखास्वादन में रत हो, विभोर हो गए। यह वार्ता, जब वृन्दावन में आकर पू. मनोहर दास जी को सुनाई, तो वे स्तब्ध, सोचते से रह गए, क्योंकि पण्डित जी श्री कृष्ण की बाल लीलाओं के अतिरिक्त कभी माधुर्य आदि प्रसङ्गों का वर्णन करते ही न थे।

माँ का देहावसान

हम पूर्व में कह आए हैं कि पूजनीया बोबो की माँ, श्री श्यामा जी अपनी उदारता और ममतापूर्ण स्वभाव के कारण सभी के प्रति वात्सल्य रखती थीं। सभी को उनमें अपनी ही माँ की सी अनुभूति होती थी। वे वृन्दावन और वृन्दावन-बिहारी के प्रति प्रगाढ़ रुचि के कारण वृन्दावन-वास करने ही चली आई थीं और इन्हीं के साथ रह रही थीं। श्री राधा-कृष्ण-कृपा-कटाक्ष तथा नाम जप उनका अधिक से अधिक चलता रहता था। साधुओं के प्रति निष्ठा उनमें सहज थी तथा उनकी सेवा में उनका मन स्वभावतः ही जाता था। श्रद्धालु हृदय और भक्ति भावना से युक्त उनके जीवन में, ब्रज और वृन्दावन के महात्माओं की कृपा निरन्तर बरसती रहती।

अप्रैल मास, सन् १९७७ में 'जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ

गतिर्मम' उच्चारण करते-करते उन्होंने अपनी इहलौकिक लीला संवरण कर ली।

हां, तो माँ श्यामा जी पू० बोबो के पास बड़ी ही निष्ठा और श्रद्धापूर्वक वृन्दावन वास कर रही थीं। पू० बोबो को बन्धन विशेष तो इस कारण से कुछ न था परन्तु एक कर्तव्य परायणतावश धात्री के प्रति सहज जो भाव होना चाहिये, वह अवश्य बना रहा। उनके रहते पू० बोबो की विरक्ति में स्वच्छन्दता तथा स्वतंत्रता, एक संकोचवश किञ्चित् मर्यादा में बँधी रही। पू० बोबो का वैराग्य, जो उनमें नैसर्गिक रूप से प्रचुर मात्रा में विद्यमान था, प्रत्युत, उनका जीवन ही था, प्रकट होकर सामने आने लगा। अतः उनकी दिनचर्या में विरक्ति का प्रवेश अत्यधिक हो गया। वैराग्य का सुदृढ़ स्वरूप जो श्यामा-श्याम के अनुराग में सर्वथा 'मणिसूत्रमिव' जुड़ा था, प्रकट हो छलकने लगा।

पू० बोबो एक जगह लिखती हैं, 'पू. बऊ जी* ऐसे चली गईं जैसे कोई इस कमरे से उठ कर उसमें चला जाए, बस। न कुछ दुःख तकलीफ़, न किसी की आसक्ति और न ही मोह का जंजाल।'

जननी के प्रति उनका न मोह था और न ही आसक्ति। केवल मात्र एक सौहार्द जो कर्तव्य परायणता की भित्ति पर टिका था। जिस जननी ने उदर में अपने रक्त-मांस से पोषण किया और बाल्यावस्था में अपने मातृत्व और वात्सल्य से पोषित किया, उस माँ के प्रति वही भावना मात्र रही इनकी।

ऐसे रत्न को अपने उदर में धारण करने वाली जननी का कल्याण तो सुनिश्चित ही था। उनके शरीर छूटने के पश्चात् श्रद्धेय श्री बालकृष्ण दास जी महाराज ने कहा था, 'श्यामा-श्याम के दर्शन के उपरान्त ही इन्होंने शरीर छोड़ा है।'

मजीठे (अमृतसर) वाली श्यामा माता जी ने अपनी किन्हीं सहेली से भोर में ही कह दिया था, 'आज किसी सखी को पूर्णतः शृङ्गार-मण्डित हो, गोलोक धाम के लिये प्रस्थान करते देखा है।' जब उन्हें पू. बऊ जी के जाने का पता चला तो आकर दृढ़ता पूर्वक उन्होंने कहा, 'निश्चित ही यह गोलोक धाम में चली गई हैं।'

* अनेक भटनागर परिवारों में 'मां' के लिये 'बऊजी' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

आंध्रवासी संत श्री राधिका दास जी से परिचय**

इन्हीं दिनों पू० बोबो के सम्पर्क में आए श्री श्री राधिका दास जी महाराज (नाना गारू) बालवत् स्वभाव, जगत मात्र के प्रति हित भावना, सभी को आदर देने के सहज स्वभाववश पू० बोबो की प्रिया-प्रियतम के चरणों में दृढ़रति, आध्यात्मिक गरिमा, सुस्पष्ट तथा दार्शनिक विचारधारा से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वात्सल्य के साथ-साथ पू. बोबो के प्रति जो उनकी आदर भावना बनी, वह दर्शनीय ही थी। वे सदैव कहते 'गुरु मां की आध्यात्मिक अनुभूति, उनकी प्रत्येक क्रिया में छलकती, झलकती है। भक्ति क्षेत्र में ऐसा निश्छल भाव, मुक्त हंसी का स्वरूप तथा गरिमा पूर्ण व्यक्तित्व आज के युग में मेरे देखने में नहीं आया।'

'प्रिया-प्रियतम की सेवा में समर्पित जीवन, श्री कृष्ण चर्चा में अनायास ही पिघलता हृदय, सेव्य स्वरूप में सहज माधुरी का प्राकट्य सहज नहीं है। ऐसे महान व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिये शब्द कहां से आवें।' अपने पास आने वाले भक्तों को इनके दर्शनार्थ भेजने का उनका नियम ही रहा।

❑❑❑

** महाराज जी, आन्ध्र प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग में उच्च अधिकारी के पद पर कार्यरत रहे। श्री राधा रानी के चरणों में अनुराग था ही, सहज कृपा हुई और त्यागपत्र दे मुक्त हो गए तथा पूर्णतः श्यामा-श्याम की सेवा में रत हैं। मानव मात्र की सेवा भावना के साथ-साथ उनकी भक्ति धारा ने, अनेक सम्भ्रान्त लोगों तक को प्रभावित किया। आज भी उनके श्रद्धालु भक्तों का श्री वृन्दावन से स्थायी सम्बन्ध बना है।

चवालीस — कुछ अन्य प्रसङ्ग

अनेक बार अनेक बहन भाई पू० बोबो से प्रश्न करते। अपनी विचार धारा तो वे सत्संग आदि में स्पष्ट करती ही रहती थीं, अनेक बार उनके प्रश्नों का समाधान भी करतीं। उन्हीं का संक्षिप्त विवरण हम नीचे उद्धृत करने जा रहे हैं :-

श्याम सुन्दर से प्रीति के विषय में वे कह रही हैं 'वे अपने हैं बस इस बात की सतत प्रतीति हो। यही नहीं, इसे तन भी स्पर्श करे।' बिना देखे उनमें अपनत्व और प्रीति कैसे हो ? उत्तर था 'उनके संगियों का संग करें। जो ब्रज सुन्दरियां उनका साहचर्य पा निहाल हो रही हैं- उनकी दशा देखें। देख देख कर उसी स्थिति को प्राप्त कर वहीं का हो जाय। यह मत्त दशा और उनका रूपासव अलग-अलग नहीं है। उस तन्मय दशा में रूप और रूप में वह तन्मय दशा ओत-प्रोत है।'

उनका मिलना अत्यन्त सहज है। पदगान का, रसिकों द्वारा प्रणीत श्लोकों का सारांश यही है कि जिन सखी हृदयों ने, नेत्रों ने उस रूप रसामृत का पान कर अनायास ही आह्लाद के आवेग में उसका यत्किञ्चित् गान कर दिया- हम भी उसी रूप मधुरिमा में- निर्निमेष निहार रही सखी की तन्मयता में खो जायें- बस तभी वह गान सार्थक है।

× × ×

पुनः कह रही है :-

'दुःख हो चाहे सुख, मन प्रसन्न हो चाहे खिन्न, बाह्य जीवन में अनुकूलता हो चाहे प्रतिकूलता, इन युगल सुन्दर का स्मरण बने ही रहना चाहिये। हर स्थिति में, हर दशा में उन्हें ही पुकारना चाहिये। वे अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं- ठीक है, पर वे प्राण प्रेष्ठ हैं- प्राणों के प्राण हैं, जीवन सर्वस्व हैं, अपने उर अन्तर की उनसे कह कर मन हल्का न करें तो और किससे कहें, क्या करें ?'

× × ×

श्री मद्भागवत और उनके महत्व पर प्रकाश डालती पू० बोबो कह रही हैं :-

"श्री मद्भागवत केवल ग्रन्थ नहीं है- शब्द रचना नहीं है- यह तो साक्षात् श्री हरि ही ग्रन्थ रूप में हैं। इसमें प्रतिपादित परम रसमय विषय, यह ब्रज राज सुन्दर काम विमोहन, गोपीजन वल्लभ स्वयं ही मानों इस रूप में प्रकट होकर अपने जनों को खींचते हैं, अपनाते हैं- अपने में संलग्न कर लेते हैं। लीला, वार्ता, श्री हरि चर्चा- यह सब परम सुख- कर हैं- इनका कहना, सुनना, पढ़ना-लिखना- सब परम रसमय है, सुख-प्रद है। लीला कथा कोमल सरस मन को छूने वाली और आकृष्ट करने वाली है, पर इसका पूरा आस्वादन, उनके लिये जागृत लालसा, ललक पूर्ण व्याकुलता, उनके सन्निध्य सुख राशि लूटने की त्वरा के बिना नहीं होता। इस त्वरा की जागृति हेतु अन्य सब ओर से सो जाना वांछनीय है। सच्ची बात तो संग की कामना है- उसे और चर्चा में, अन्य विषयों में, अपर व्यक्तियों में स्वतः आनन्द नहीं आता। यदि कभी किसी परवशता में बंध ऐसी किसी वार्ता में भागीदार होना पड़े- ऐसे व्यक्तियों में बैठना हो तो उसका मन सर्वथा असंग रहेगा। मन-प्राणों का मधुर विषय ऐसे समय में विस्मृत नहीं होगा, अपितु और-और उकस कर, उभर कर आऐगा मन उस विपरीत दशा में ऊब कर इन्हीं में आश्रय चाहेगा। उस अन्य वार्ता को अल्पाति-अल्प शब्दों में समाप्त कर देगा, उदासीनवत् उसमें कुछ बोलेगा, सुनेगा नहीं- बस अपने को इस कसौटी पर आप ही कस कर देख लेना चाहिये यदि अन्य विषयों में अभिरुचि जान पड़े, तो बार-बार इन्हीं युगल सुन्दर से उसके निवारण हेतु कातर प्रार्थना करनी चाहिये।"

× × ×

त्याग और वैराग्य तथा अनुराग के विषय में अपना अभिमत स्पष्ट करती एक जगह समझा रही हैं :-

"सार गर्भित उपदेश जीवन में किसी भी अंश तक उतर आये तो झट बात बन जाए। जीवन का, भजन साधन का, सत्संग उपदेश का लक्ष्य त्याग वैराग्य पूर्ण समय यापन भर नहीं है इसके साथ- सर्वोपरि लक्ष्य है श्री चरणों में पूर्णतः समर्पण और उनके पाद पद्मों में प्रगाढ़ प्रीति- यह सब किसी साधन के अधीन नहीं है- यह ठीक है; पर भगवत्प्रेमियों का संग और भगवच्चरित्र का बार बार पठन, गान-चिन्तन उनके अलभ्य प्रेम को सहज प्रदान करने वाला है।

× × ×

नाम, जप सम्बन्धी अपना अभिमत स्पष्ट करती, पू० बोबो एक स्थान पर समझा रही हैं : 'नाम' से ही प्रार्थना करनी उचित है कि वह पकड़ ले। सचमुच नाम और नामी अभिन्न हैं। 'नाम' ने पकड़ा तो समझो नामी ने ही पकड़ा।

नाम, जप, केवल माला के दाने घुमाना भर, जीभ का हिलना मात्र नहीं है, पर नाम, जप मात्र नहीं, नाम स्मरण हो, नामी का चिन्तन हो उनके रूप की झांकी, उनकी किसी भी लीला का पुनः पुनः मन में स्फुरण होना– अपने को उन समेत उन्हीं के धाम में देखना। बस यह है– नाम स्मरण। यह ठीक है कि अपने बस में कुछ नहीं है– उनकी कृपा पर निर्भर है पर वे परम कृपालु ममतार्णव, सुहृद स्वामी तो कृपा करने को सदा सदा तत्पर रहते हैं– उसका हमें अनुभव हो जाए– बस उन्हीं से दिन रात यह मांग करते रहना चाहिये।

× × ×

प्रेम के स्वरूप का वर्णन करती हुई पू० बोबो एक स्थान पर कह रही हैं :

"प्यार ! कितना विशाल, कितना पवित्र, कितना निर्मल शब्द है, और शब्द ब्रह्म है। इसी से अंग्रेजी आचार्यों ने Love is God and God is Love" कहा है। सच पूछो तो यह शब्द-शब्द मात्र नहीं है। इन शृङ्गार सुन्दर रस राज का ही दूसरा नाम है– जिसमें अपने ही उर अन्तर की उमगती भावनाओं का मूर्त रूप है। अपनी ही कोमल सरस कामनाओं की सजीव प्रतिमा निहित है। यह आप ही रसराज है .... ।

'रसो वै सः' श्रुतियों ने कहा है। श्री हरि रस हैं– यह रस ही प्यार है। जगत में जागतिक जीवों और सम्बन्धियों में जो प्यार नज़र आता है– वह उसकी धूमिल सी छाया मात्र है। और अधिकतर स्वार्थ पंक से सने होने के कारण मलिन सा भी दीखता है। पर वहां इन अनुरागी युगल को लेकर, इन्हीं के सम्बन्धों से इन्हीं की छत्रछाया में जो प्यार होता है, रहता है, पनपता है– वह साक्षात् श्री हरि की ही उपलब्धि कराने वाला है। उसमें शारीरिक सम्बन्ध, भौतिक वासना, और अपने सुख की चाह का अभाव होता है। शरीर उस प्यार की अभिव्यक्ति का माध्यम अवश्य है, पर उसका मूल नहीं है। अतः प्यार जितना सूक्ष्म और स्वच्छ होगा, शारीरिकता की मात्रा उसमें उतनी

ही कम होगी। प्यार की इस पावन गरिमा को प्राणपन से निबाहना चाहिये। इसे अपने सुख का साधन समझकर, इसका दुरुपयोग करना, अपने को वास्तविक सुख से वंचित करना है- बस हमारे पारस्परिक प्यार का- जो उन्हीं के सम्बन्ध से है- एक ही फल हो- वह यह कि इन प्यार के सागर की किसी नन्हीं सी ही हिलोर के लिये सही- पिपासा जाग जाये- भड़कती जाये और तब तक शान्त न हो, जब तक वे प्रणय सिन्धु अपनी ममता की तरंगों से उसका शमन न कर दें। उनके प्यार की एक हिलोर भी सम्पूर्ण सिन्धु की गहराई, शीतलता, तरलता को अपने में भर उतनी ही पूर्ण है जितना सिन्धु, और प्यार की पिपासा, वह पिपासा है जो कभी शान्त नहीं होती। सम्पूर्ण सिन्धु की उपलब्धि-उसकी शीतलता का संस्पर्श, उस मधुरिमा का पान भी उसे समाप्त नहीं कर सकता। यह शमित हो होकर भड़कती है और भड़क कर इन रसामृत निधि को विवश कर देती है- अपने निदान हेतु। प्यार का यह रस चक्र सतत गतिमान रहता है- यह आवर्त कभी भी थमता नहीं। प्रणय का आदान-प्रदान इसका रसीला विनिमय अनवरत है, अविरल, अविराम है।

सतत प्रवहमान होते रहने पर भी यह सर्वथा नवीन ही बना रहता है। उस नित्य नये प्यार की बात- जिसमें याद, याद भर नहीं; जिसमें स्मरण को स्मरण नहीं- जिसमें याद की बात को कहने-बताने की आवश्यकता नहीं; जिसमें हर पग पर, प्रतिक्षण में आप ही आप एक-एक क्रिया कलाप से, एक-एक चेष्टा से, एक-एक गतिविधि से स्वतः ही उस कमनीय निश्छल, निर्मल प्यार की रसाभिव्यक्ति सर्वथा अपने अनजाने में ही होती रहती है। उन प्रेम रसोज्वला प्रणयिनी बालाओं को यों तो प्रियतम का सतत स्मरण बना ही रहता है पर जिन क्षणों में वह सम्हारे नहीं सम्हलता, थामें नहीं थमता- उनके उर अन्तर में जिस क्षण वह स्मरण, मिलन-लालसा का ज्वार भाटा लिये सवेग प्रवाहित होता है- तो उनका स्मरण, उन प्राण रमण को उसी क्षण खींच लाता है। अहा- वह स्मरण, रमण में परिणत हो गया। उनकी वह उत्कट लालसा नन्दलाल को खींच लाई, वे खिंचे चले आए।

× × ×

ऐसे ही एक बार स्मृति शब्द को लेकर एक स्थान पर समझाती हुई कह रही हैं :-

'याद' कैसा शब्द है, अर्थ को मूर्त करता सा। 'याद' याद लगता है कि अनेक रेखाऐं, दूर दूर तक बिखरी अनेकानेक रेखायें सिमट कर एकत्र हो, न जाने कैसे कैसे सजीव चित्र, कितने कितने उज्ज्वल-स्पष्ट चित्र अंकित कर रही हैं, किये चली जा रही हैं, एक चित्र, दूसरा-तीसरा और बस, मानों रील चल पड़ी। अभी तक पास ही थे वे- अठखेली प्रिय ठहरे-उठे और न जाने कहां चले गये- शायद इस निकुञ्ज से, उसमें ही गये कि यह बावरी बेचैन हो गई। एक क्षण, दूसरा-तीसरा-अभी आते ही होंगे। बस अब आए। ओह ! युग बीत चले, कल्प हो गये- वे अभी तक लौटे क्यों नहीं- अभी तक भी आये क्यों नहीं ? क्यों चले गये थे ? ओह ! कब आवेंगे- आये नहीं- क्यों नहीं आये, कुछ क्षण ही युगों से लगने लगे। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। कैसी है प्यार की अटपटी बान ? पता नहीं, क्या से क्या कर देता है यह- कहां से कहां पहुँचा देता है। हाँ ! देखो ! देखो तो उसे लगता है मानों, वर्षों से रुग्ण है। अभी अभी कुछ ही क्षण पूर्व तो हँस खेल रही थी- रागानुराग की तरंग मालाओं में विलस रही थी- पर क्या हुआ ? सब पलट गया। अब वह है और बस, उसकी एकमात्र संगिनी उनकी प्राणधन की 'याद' है। रमण का स्मरण, उनकी प्रीति की- प्रीत रीत की स्मृति। खो गई वह। देह-गेह से एकदम उपराम-भूली-भूली, खोई-खोई सी। ज़रा सा खटका भी प्रिय-आगमन का भ्रम करा देता है। बेसुधि में भी उनके आगमन की सुधि सजीव बनी है। यह लो, बाहर अमराइयों में कोयल कूक उठी। चौंक कर उठ बैठी वह-। शायद प्रिय आ गये। पर नहीं, नहीं, कहां हैं वे- नहीं आये। यह कोयल क्यों बोली फिर ? उसे स्मृति आई, वसन्त के उन उन्मादक दिवसों की, जब प्रियतम ने कोयल की कुहु ध्वनि का अनुकरण कर चौंका दिया था और फिर किसी सघन निकुञ्ज पार्श्व से निकल उसकी स्मृति को साकार करते-प्रतीक्षा को सफल करते, वहीं सम्मुख प्रकट हो गए। उसके बाद की बात कौन कहने में समर्थ हुआ भला ? अतः वह सुख का अगाध सिन्धु .... अहा ...... अहा।

× × ×

ममता और स्नेह की चर्चा करती एक स्थान पर कह रही है :-

'ममता स्नेह के प्रश्नोत्तरों का समाधान न किसी भाव में है और न भाषा में। इन प्रणयी युगल की मधुमयता- रस मयता में मज्जित होने

पर भी आज तक किसी के प्यार भरे प्रश्नों का उत्तर, उत्तर के तौर पर नहीं मिला। जो, और जितना, मिला उससे आज तक भी किसी का समाधान नहीं हो सका– न हो सकेगा। प्यार का सम्बन्ध समाधान के लिये है ही नहीं। समाधान हो सकता है विषयों का, विषयी संसर्गों का, जागतिक शंका-सन्देहों का। इस प्रणय जगत में तो आशंका और समाधान हाथ में हाथ लिये विचरते हैं और समाधान प्राय: शंका का कारण बन जाया करते हैं– ऐसे साम्राज्य में समाधान कहां ...... ?

× × ×

इच्छा और संकल्प पर अपने विचार स्पष्ट करती हुई कह रही है :-

"कोई भी कार्य आरम्भ हो जाए सही, फिर तो उसे पूरा करने की इच्छा, (भले ही त्वरा न हो) सम्बन्धी विचार बार बार आते ही हैं। यह विचारों का आना, जब धारा रूप में परिणत हो जाता है, तब 'इच्छा' संकल्प का रूप धारण कर लेती है, तब झट काम बन जाता है। सभी सिद्धान्तों का सार इन अनुरागी युगल में पूर्णत: रत हो जाना ही है, उनकी प्रीति सरिता में सतत मज्जित प्लावित रहना ही है। यह सब भी सतत धारावाहिक प्रीति संकल्पों, स्नेहिल भावों, सरस विचारों और सर्वोपरि, इन्हीं ममतामय की ममतापूर्ण दृष्टि से सहज ही हो जाता है। अपना साधन है सतत प्रतीक्षा, आकुल व्याकुल प्रतीक्षा, अधीर आतुर-प्रतीक्षा और आराधन है उस प्रतीक्षा में मज्जित रह कर अनवरत अपने आराध्य इन युगल रस निधि के ही सरस चिन्तन में– उन्हें ही पुकारते रहने में– पुकारते चले जाने में यों अभिरत रहना कि अन्य विचारों की सुधि ही न रहे– अन्य व्यवहारों, व्यापारों का विचार ही न आये। इस साधन, आराधन का फल-रसीला, रंगीला फल है; यह मन, प्राणहरणकारी, अनुराग-सौरभ लुटाते, मधुर मदिर छवि मकरन्द छलकाते, अपनी चितवन पराग से मन प्राणों को उन्मत्त कर अपने में ही लगा– लिपटा लेने की त्वरा लगाते यह प्रणयी प्रिया-प्रियतम। ओह ! ओह उनके यों नयन गोचर होने पर वह उनकी दी– उनकी लगाई त्वरा– क्या त्वरा ही बनी रहेगी? वह त्वरा सत्वरता से इन्हीं में, केवल इन्हीं में, विश्राम पायेगी– इनसे दूरी को फिर स्थान ही नहीं रहेगा।"

× × ×

पू० बोबो एक स्थान पर पुनः स्पष्ट कह रही हैं :-

तनिक भी भीत होने की बात नहीं है कि कहीं बोबो छूट न जाए। प्रथम तो बोबो छूटती ही नहीं- 'उनके' अंग संग तुम रहोगे और 'वे' तुम्हारे संग रहेंगे तो भला बोबो कैसे छूटेगी ? वह तो और निकट हो जायेगी। तुम्हारे उस महारसाब्धि में पगने पर अन्य विचार, अन्य कामना- अन्य इच्छा- अन्य की ललक रहेगी ही नहीं, पर 'यह संग' कुछ ऐसा है कि अपनों को एकत्रित किये ही रखता है- एक तमाल विटप से लिपटी अनेक लताओं के समान इनमें अनुरक्त तन मन- इनकी प्रेम झकोरों में लहलहाते रहते हैं संग-संग, कभी साथ-कभी अलग पर उनके ही संग हुलसते- विलसते रहते हैं- उनके अनुरागी हृदय। हमारे इस परम मधुर क्षेत्र में न तो कुछ छोड़ना ही पड़ता है, और न कुछ पकड़ने के ही प्रयास की आवश्यकता है। जो छोड़ने योग्य है वह स्वतः ही छूट जाता है अनायास और जो पकड़ने योग्य हैं वह स्वयं पकड़ाई में आ जाते हैं, हंसते-मुस्कराते।

लीला चिन्तन के लिये तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। पूज्य पाद सखा जी के स्नेहिल अनुग्रह ने हमें वह सुदुर्लभ लीला माधुरी सहज सुलभ कर दी है- इन रसिक सुन्दर का संकेत पाकर। बस इसका लाभ उठाना चाहिये। रसिक महानुभावों ने भी स्वानुभव पूर्ण लीला विलास का उन्मुक्त कण्ठ से गान किया है, उन्होंने भी हमारे लिये लीला विहार चिन्तन का द्वार सहज खोल दिया है। उस खुले द्वार में प्रवेश पा, उसी निकुञ्ज भवन में स्थित-केलि विलास मत्त युगल सुन्दर की झांकी करें- अहा, वह दृष्टि ! हां- रस की सृष्टि करने वाली वह दृष्टि ! मधुरिमा में सिक्त कर देने वाली वह रसीली वृष्टि ! अहा- अहा !

× × ×

एक स्थान पर कह रही हैं :-

'मन वश में हो, एकाग्र चित्त से इन युगल सुन्दर में रत होता हो, तब तो कहना ही क्या है ? पर मन यदि वश में न हो तो भी, तन को कस कर रखना ही चाहिये। इससे धीरे-धीरे मन भी आप ही वश में हो जाता है।'

× × ×

भक्ति सम्बन्धी अपना अभिमत स्पष्ट करती एक स्थान पर समझाती हुई कह रही हैं :-

"विश्वास से युक्त प्रेम की परिपक्वावस्था का नाम ही भक्ति है। सब प्रकार से छल कपट का त्याग करके निश्छल मन से, अनन्य भाव से उन श्याम सुन्दर की शरण में जाना भक्ति का प्रधान लक्षण है, जब तक मन में दम्भ है, अभिमान है, निज यश और कीर्ति की कामना है तब तक भक्ति का प्राप्त होना कठिन है। भक्ति वह रसमय स्रोत है जिसमें प्लावित होने पर स्वतः ही मन विषय चिन्तन से हट कर उन सर्वेश्वर की ओर लग जाता है।"

× × ×

चाह सम्बन्धी कह रही है :-

वे और उनकी चाह दो नहीं है। फिर भी 'चाह' मूर्त हो, बांह थाम ले। तन, मन, प्राणों में अपनी साकार सुषमा का, मधुरिम छवि का, सरस लीला रस का संचार कर, उसे समक्ष प्रस्तुत कर दे, अपनी सन्निधि में रख ले।'

एक स्थान पर कह रही हैं :-

'कर्तव्य माधुरी के प्रशस्त पथ पर चलते रहने से कहीं अधिक मधुर, मृदुल सरस बात है इन प्राण प्रेष्ठ की प्रेम पीयूष सिञ्चित रसीली गलियों में विचरते रहना। प्यार की ही बस्ती में रह घूम कर मत्त पड़े रहना।'

× × ×

सच्ची शान्ति का उपाय बतलाती हुई एक स्थान पर कह रही हैं :-

जब तक मन सर्वतोभावेन श्री हरि के पुनीत पाद पद्मों में अटक नहीं जाता, तब तक उसकी भटकन समाप्त नहीं होती। तमोगुणी लोग दुराचरण में, रजोगुणी विविध व्यवहारों में, व्यवसायों में, परहित सेवा में, करुणा, ममता आदि सद्गुणों में उलझे रहते हैं– इसी से श्री भगवान ने गीता में कहा, 'तीनों गुणों से ऊपर उठ जा, तभी सच्ची शान्ति मिलेगी।'

× × ×

'तन के रोगों का निदान औषधियों से हो जाता है पर मन के रोग का शमन तो इन ब्रज राज सुन्दर के पाद पद्मों में स्थिरता पूर्वक संलग्न होने से ही होता है।'

❑❑❑

पैंतालीस || काम वन यात्रा

चतुर्थं काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि ! मम लोके महीयते ॥***

(आ० वा० पु०)

वर्ष १९८५ की श्री कृष्ण वर्षगाँठ मना, प्रिया जी के जन्मोत्सव की तैयारी में सदा की भाँति बरसाने जाने का कार्यक्रम निश्चित हो चुका था । अपने क्रमानुसार गिरिराज होते हुए, बरसाना जाना था । श्री गिरिराज पहुँचे, साथ में पू. सुशीला बहन जी तथा विजय थे । अभी गिरिराज की बस में ही थे कि पू० बोबो के नेत्र स्थिर से हो, सामने एक ओर देखते-देखते किञ्चित् मुकुलित से होने लगे- इनकी इस सरस स्थिति, विशेष तन्मयता और सहज मुख माधुरी के विषय में, अनेक बार भाँप, श्री सुशीला बहन जी पूछ लिया करती थीं । इस स्थिति का किञ्चित् अता-पता, अनेक बार विजय भी लाड़ पूर्ण हठ में भर, इनसे पूछने का आग्रह कर लिया करता था । यह सब देखा और समय पाकर ही पूछने के विचार से चुप रहे । श्री गिरिराज जा, जब यह एकान्त में बैठी मानसी गंगा की लोल लहरियों में उठती तरङ्गों में जाने क्या खोज रही थीं, तो पू. सुशीला बहन जी के पूछने पर उन्होंने जो कुछ कहा, उसे मैं नीचे उद्धृत करने की चेष्टा कर रहा हूँ :-

'बस में बैठे बैठे देखा, श्री गिरिराज शिखर पर प्रिया-प्रियतम एक विशेष ही मुद्रा में खड़े कुछ निहार रहे हैं । निहारते निहारते वे कुछ तन्मय से होते जा रहे हैं । सुस्थिर से खड़े युगल श्री के वस्त्राञ्चलों से अठखेलियाँ करती समीरण अपने सौभाग्य पर इठला रही है । नीलाम्बर धारण किये किशोरी जी इनकी छेड़भरी दृष्टि से अपने को बचाने की चेष्टा में प्रियतम से किञ्चित् ओट करने को अपने नीलाम्बर को थोड़ा खींच, और-और ओट करने का प्रयास कर रही हैं । प्रियतम समझ गए । वे मन्द मधुर स्वर में गुनगुना रहे हैं और तनिक टेढ़े होकर प्रिया जी की ओर झाँक भी रहे हैं । प्रिया जी ने अपना वह पट और खींचा । प्रियतम और झुक कर झाँकने लगे । किशोरी

*** चतुर्थ कामवन नामक वन सभी वनों में श्रेष्ठ है । हे देवि, इस वन में गमन करने वाला मेरे धाम में पूजनीय होता है ।

जी अम्बर खींचती गईं और यह लो, नीलाम्बर शीश से पूरा ही उतर गया। अब क्या था। नीलाम्बर के आवरण से बाहर हो, शोभा का सिन्धु लहराने लगा। दोनों ही चन्द्र एक ही समय में प्रकट हो उस स्थली के सौन्दर्य को बढ़ाने लगे।'

पू० बोबो ने देखी यह सरस झाँकी– नीलाम्बर को पूरी तरह खिंचते देख, प्रिया जी की सरस माधुरी का प्राकट्य देख, किञ्चित् मुस्कान बिखर गई थी पू० बोबो के मुख पर– उन्होंने यह बात, उस समय पूछने पर, बड़ी ही तन्मयता से रुक–रुक कर सुनाई थी।

श्रद्धेय पण्डित श्री गया प्रसाद जी के दर्शन करने भी गए। अपनी सदा की सी उत्फुल्लता से उन्होंने स्वागत किया।

अगले दिन कार्यक्रम बना पारासौली जाने का। इसी स्थली को सौभाग्य प्राप्त है श्री सूरदास जी की भजन स्थली, श्री नाथ जी की क्रीड़ा स्थली होने का। श्री श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज, गोसाईं श्री विट्ठलनाथ जी ने भी इस स्थली को अनेक बार धन्य किया है। इसी रसमयी स्थली के आकर्षण में ही वहाँ गए थे। श्री सूरदास जी की भजनकुटी समाधि स्थली दर्शन करने गए तो पू० बोबो ने प्रत्यक्ष रूप में देखा कि 'वहीं पूर्व की भाँति श्री सूरदास जी बैठे पद गान कर रहे हैं। यह चतुर शिरमौर श्यामसुन्दर, सूरदास जी के पीछे खड़े हैं। सूरदास जी को प्रियतम के पीछे होने का भान है। उन्होंने धीरे–धीरे अपनी दोनों बाँहें पीछे ले जा, श्याम सुन्दर को अपनी बाँहों में लपेट, अपनी पीठ से सटा लिया। अपने भक्त के बन्धन में बँध श्यामसुन्दर, ने भी लाड़ से श्री सूरदासजी के गले में भुजा डाल दीं। इस पर सूरदास जी बड़े लाड़ में भर बोले, 'अच्छा, तुम हो।

सामने की ओर श्री किशोरी जी खड़ी हैं। प्रियाजी ने श्री सूरदास जी की चिबुक छू कर शत–शत नूपुर–शिञ्जन स्वर लहरी को भी तिरस्कृत करती बड़ी ही मधुर वाणी में कहा, 'बाबा !'

इतनी मीठी, मधुर, मृदुल और स्निग्ध वाणी थी कि उसे सुन पू० बोबो अपूर्व सुख में भर गईं और कहा, 'वह स्वर लहरी मानों अभी भी मेरे कर्णों में गूञ्ज रही है।' श्री सूरदास जी ने अपने दोनों हाथ बढ़ा टटोलते हुए प्रिया जी के चरण स्पर्श कर कहा, 'लाली' भी है।

सरस सुधि में भर, लीला माधुरी का प्रत्यक्ष दर्शन कर, आनन्द विभोर हो उठीं पू० बोबो।

उधर श्री राधाष्टमी हेतु बरसाने चलने की तैयारी हो गई और श्री ठाकुर सहित हम सभी बरसाने चले आए।

श्री राधा जन्मोत्सव मनाने के बाद वहाँ की लीलाओं तक सर्वदा बरसाना ही ठहरते थे, परन्तु इस बार कामवन की स्थलियों के दर्शन का कार्यक्रम बना और तुरन्त कामवन के लिये प्रस्थान किया। कामवन को आदि वृन्दावन भी कहा गया है। जहाँ ब्रजाङ्गनाओं तथा अन्य सभी का अभीप्सित 'काम' पूर्ण होता है, वही स्थली 'कामवन' नाम से विख्यात है।

वर्तमान में, इन भौतिक चक्षुओं के गोचर अनेक स्थलियाँ आज भी श्री कृष्ण लीलाओं की प्रेरक एवं प्रकट करने में सहायक हैं।

वहाँ विमल कुण्ड, कामेश्वर महादेव आदि अनेक स्थलियों के दर्शन किये। वर्षा की मन्द-मन्द फुहारों ने स्वागत किया। इस सुखद यात्रा का आनन्द बाह्य रूप से तो सभी को सुलभ हो ही रहा था परन्तु पूज्या बोबो की मन: स्थिति एक विशेष भाव में भीजी थी।

चरण पहाड़ी दर्शन करने पू० बोबो भी सभी के साथ पधारीं। श्री मनोहर दास जी साथ थे। चरण पहाड़ी पर चढ़ते-चढ़ते पू० बोबो एक विशेष ही भाववश मग्न होती जा रही थीं, चुपचुप सी होती चली जा रही थीं। उस पहाड़ी पर जाकर चारों ओर दृष्टि घुमाई इन्होंने। ओह ! वहाँ का वह सौन्दर्य- दूर दूर तक दीखते जल के स्रोत से, वर्षा की मन्द फुहारों से स्नान कर नव स्फूर्ति में भरी प्रकृति इठला-इठला कर, जाने क्या सन्देश दे रही थी। वह सन्देश किन्हीं सन्देश-प्रेषक की माधुरी से परिपूर्ण थे। ओह ! इन्होंने देखा, *'उसी पर्वत पर एक ओर श्याम सुन्दर अपने कर में वंशी लिये उसे उछाल रहे हैं। उनकी वह उन्मुक्त और स्वच्छन्द प्रकृति, उनके अंगों की थिरकन से प्रकट हो रही है। प्रिया जी वहीं कहीं पास हैं, इस बात का भान प्रियतम को बना है। वे उन्हीं स्वरों का अलाप ले रहे हैं जो प्रियाजी को अधिक प्रिय है। पास ही एक वृक्ष से लिपटी लता का एक छोर अपने हाथ में लिये, कुछ-कुछ अपने को प्रियतम की दृष्टि से छिपाने की चेष्टा में रत है प्रियाजी। समीप ही, एक केकी अपने पंख फैला, एक विशेष ही भाव में भर, अपनी उमगन से कभी-कभी स्थली की निस्तब्धता को भंग कर देता है। उस स्वर को सुन, प्रियाजी भी झंकृत सी हो जाती हैं। मन में अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं। श्यामसुन्दर ने अपने नयन कोरों से श्यामा जी की वह सुरस स्थिति देख ली और वंशी में सरस तान का अलाप ले, प्रिया जी की उस*

शिथिलता को पुनः झकझोर सा दिया । विवश-परवश सी प्रिया जी, अपने अनजाने में ही आगे बढ़, वहीं चली आईं । अत्यन्त वेग से पग धरती प्रियाजी के नूपुर और कटि-मेखला के मधुर शिञ्जन ने स्थली को और सरसा दिया। उस सरसता में भरी प्रियाजी ने श्याम सुन्दर के दक्षिण स्कन्ध पर शीश धर अपनी उमगन का किञ्चित् परिचय सा दिया । दोनों ही नव-नवल उमंगों में भर मग्न हो गए । इधर श्यामसुन्दर को कौतुक सूझा- अपने अधरों से मुरलिका हटा, प्रियाजी से बजाने का आग्रह करने लगे । प्रिया जी भी वेणु-वादन में अत्यन्त निष्णात हैं 'चौंसठ कला प्रवीण, तदपि भोरी ।' श्यामसुन्दर नयन कोरों से प्रियाजी की ओर देखते भी जा रहे हैं .... और फिर क्या हुआ- सब अनुभूति का विषय है । कहा- पुनः पुनः कहा रसिकों ने, जिन्होंने उस रसमसी दशा से उद्वेलित युगल-रसमाधुरी का आस्वादन किया था । हाँ, हाँ ! बस, उस आस्वादन में रत यह ध्वनि मुखरित हो गई :-

''का जाने का भयो सखी री,
बंधि जु गए दुहुँ जन रस दाँमन ।''

प्रिया-प्रियतम की नेह-डोर से बँधे महज्जन ही इन सुरस लीलाओं का दर्शन, प्रवेश पाने के अधिकारी हैं ।

गोकुल चन्द्रमा जी के दर्शन

अगले दिन पू० बोबो भोर में श्री गोकुल चन्द्रमाजी के उत्थापन-दर्शन करने गईं । श्री ठाकुर जी के दर्शन कर उन्हें अपूर्व सुख हुआ। उस एकान्त और नीरव वातावरण में सात्विक चहल-पहल के कारण ही कुछ मुखरित थी प्रकृति । अतः मग्न होती चली गईं पू० बोबो । वहीं, श्री ठाकुर जी के कीर्तनिया एक दान-लीला का पद गा रहे थे । श्याम सुन्दर अपनी अभिन्न- प्राणा इन ब्रजाङ्गनाओं से दधिदान की याचना करते हुए कह रहे हैं- 'नागरी दान दै' और उत्तर में सखियाँ मोहन से मार्ग छोड़ देने का आग्रह कर रही हैं, कहती हैं 'मोहन ! जान दै' बस, दान-लीला की इस झाँकी में पू० बोबो मग्न हो गईं और उसी दिन उनकी लेखनी- बद्ध हुई एक सरस अनुभूति जो काव्य में रचित है । मैं उसी को किञ्चित् अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रहा हूँ । वह अनुभूति केवल लीला-दर्शन मात्र तक सीमित न थी, उस लीला में वह स्वयं भी सम्मिलित थीं ।

''प्रिया-प्रियतम एक निकुञ्ज में विराजमान हैं । जहाँ से बाहर आ, श्याम सुन्दर ने बाहर खड़ी एक बावरी से हँस-खिलखिला कर

कुछ कहा। क्या कहा ? वह सब तो उस बाला तक ही सीमित रहा। इधर, दूसरी ओर प्रिया जी विराजमान हैं, प्यार की किसी सरसीली हिलोर में पगीं, संकुचाई सी। अरुण वर्ण की साड़ी धारण किये हुए हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर ने उन्हें अपने पीत पट की ओट कर, छिपा लिया और मुस्करा कर, ग्वालिन से पुनः कुछ कहने लगे। उस बाला ने अपने शीश पर दही की मटुकी धर रखी है। उसी अलबेली अदा से निश्शंक सी उस ग्वालिन ने, यौवन मद झकोर में उमड़ प्रियतम को देखा, देखती की देखती रह गई। ओह ! छिन-छिन उठती रस लहरियों से दोलित वह श्यामल सिन्धु, उस बाला के नेत्रों के मग से उसकी हृदय-सरसी में प्रविष्ट होता जा रहा है। उसी रसमसी दशा में वह पग बढ़ा, एक वृक्ष की ओट में हो, चलने लगी। वह ग्वालिनी तो दूध-दही बेचने चली गई, अपने नयन-मन के लिये एक सरस पुष्ट आहार समेटे और इधर प्रियतम श्यामसुन्दर ने झुक कर प्रियाजी से कुछ कहा। उनके कहने के साथ-साथ प्रियाजी के मुख पर विक्रीड़ित चञ्चल तरङ्गों को दूसरी ओर झुरमुट के पास वाले वृक्ष की ओट में खड़ी अन्य बाला (पू० बोबो) ने देख लिया। प्रिया जी के हृदय में उठने वाली रस तरङ्गों ने आप्लावित कर दिया इस बाला को। कभी वह वृक्ष की दाईं ओर से उस सुख का आस्वादन करती और कभी बाईं ओर से झाँक कर। नवीन अनुराग में भरी इस बाला का नवीन भाव ही प्रगट होने लगा हो जैसे। अनन्त केलि कलाओं में प्रवीण कन्हैया, जाने किस कौतुकवश, रसीली भूमिका बना, प्रिया जी के श्रवणों में कुछ कह मुस्कराए। प्रियाजी ने अपने दाएं कर से प्रियतम को किञ्चित् दूर करने की चेष्टा की। उस मुस्कान-मदिरा से शत-शत मद-झकोरों का प्रसार करते श्यामसुन्दर ने मेरी ओर (एक बाला, पू० बोबो की ओर) देखा। बस, देखा। यह 'देखना' ही किसी मधुर सामीप्य में, रस-झकोरों में, रस-सिन्धु की अगाध लोल लहरियों में सराबोर करने लगा। कैसा है मधुरस का यह विशाल सिन्धु, जहाँ रस ही पूर्णतः परिव्याप्त हो रहा है- तथा आप्लावित कर रहा है।"

आज ही के दिन उन्होंने देखी श्यामसुन्दर की एक अन्य रसीली झाँकी। उसी को पंक्तिबद्ध कर वे कहती हैं :-

'अति सुख लह्यो आज इन नैननि।
कुञ्ज द्वार पै ठाढ़े मनहर
मृदु मुस्काए कहि कछु सैननि ॥

अति सुख लह्यो आज इन नैननि ॥
बैठि शिला पै माल सँवारी
दृगनि कह्यो कछु, कह्यो न बैननि ॥
अति सुख लह्यो आज इन नैननि ॥
पुनि ठाढ़े भे उठि अति छवि सों,
भौंह नचाई नचावत मैननि,
अति सुख लह्यो आज इन नैननि ॥'

इन्हीं सरसीली लीलाओं का आस्वादन करती अपनी निमग्नावस्था में अमित सुखास्वादन करती पूजनीया बोबो २-३ दिन वहाँ निवास कर पुनः बरसाना लौट आईं।

श्री जी के दर्शन करने जाने का पू० बोबो का नियम ही था। इसके अतिरिक्त, 'प्रिया कुण्ड' कभी 'भानु सरोवर' और प्रायः 'गह्वर वन' (श्री जी के दर्शन करने) से होकर जातीं। साँकरी खोर, चकसौली, 'श्रीकृष्ण कुण्ड', कभी 'मोर कुटी' और कई बार 'विलास गढ़ी' और 'मान गढ़ी' होते हुए, परिक्रमा करते हुए ऊपर जातीं। आज भी साँकरी खोर होते हुऐं गह्वर वन से जा रही थीं। साथ में कुछ बहनें और भाई भी थे। गह्वर वन की शोभा निहार आनन्द में भर उठतीं बोबो। कभी चुपचाप चारों ओर निहारतीं, मग्न होती चलतीं। एक बार साँकरी खोर के पास होकर निकल रही थीं कि इन्होंने देखा *'विलास गढ़ी की ओर पर्वत श्रेणी पर लाखे रंग के पर्दे पड़े हैं उसी मखमल जैसे कोमल और मृदुल वस्त्र से स्तम्भ मढ़े हुए हैं। नीचे चबूतरे पर भी वही सुकोमल वस्त्र बिछा है। प्रियतम वहाँ उलटे लेटे हैं, लगता है प्रतीक्षारत हैं। चारों ओर वृक्षों के झुरमुटों से कभी-कभी पक्षियों का कलरव सुनाई देता है और कभी-कभी केकी समूह उस स्थली की नीरवता को भङ्ग करता, बड़े ही मधुर स्वर में कूजन करने लगता है। अहा! सामने की वृक्ष शाखा पर विराजित शुक और शुकी बड़ी ही तन्मयता में कुछ कह-सुन रहे हैं। अवश्य ही प्रिया-प्रियतम की किसी लीला का गान कर रहे हैं। यह लो, बड़ी ही तीव्रता से दाईं ओर से उड़ बाईं ओर को जाते केकी की उत्फुल्लता ने उस स्थली को झंकृत सा कर दिया। श्यामसुन्दर ने भी ग्रीवा उठा ऊपर की ओर चौंक कर देखा। उनके नेत्रों में भरी सरसता और कुतूहल।*

लगता है, दूध-दही लेकर आती ग्वालिनी की प्रतीक्षा में हैं श्यामसुन्दर और इधर चकसौली ग्राम की ओर, से दधि-मटकी शीश पर

धरे एक गोपिका मुग्ध हुई प्रियतम की इस रसदशा को निहार रही है। मटकी को अपने कर से थाम रखा है। मुग्धता में पगी वह इतनी तन्मय हो गई कि कब वह पीछे की ओर झुक गई, उसे भान ही न रहा और मटकी उसके शीश से नीचे गिर फूट गई। वृषभानु नन्दिनी ने, जो एक अन्य पथ से इधर ही आ रही थीं नयन उठा, सामने देखा। अभिप्राय सर्वथा यही था कि मटकी कैसे फूट गई? लकुटी श्यामसुन्दर के पास ही रखी थी। उठा कर उन्होंने दिखला दी, मानों प्रियाजी से कह रहे हों कि उन्होंने नहीं फोड़ी। प्रिया जी मन ही मन कह रही हैं :- लकुटी से नहीं, नयन कटाक्ष द्वारा ही फोड़ दी है। दोनों ही नयन-कोरों से उस बाला को निहार रहे हैं और लाड़ लड़ा रहे हैं।''

पल-पल में श्यामा-श्याम की रूप माधुरी का, उनकी सरस लीलाओं का आस्वादन करतीं, उनकी लीलाओं में एक पात्र बनीं, उनकी सन्निधि सुख में सदा-सदा मग्ना पू० बोबो के जीवन की किस घटना को लिखें और किसे छोड़ दें। लिख कर कलेवर बढ़ने का भय और न देकर उनके व्यक्तित्व के साथ अन्याय। अत: जिसका श्वास-श्वास ही श्याममय हो रहा है, वे तो सतत सुखास्वादन रत रहीं।

× × ×

ऐसे ही एक कविता लिख रही थीं। उसके अन्तिम चरण में एक शब्द इन्हें नहीं सूझा, सोचती सी बैठ गईं। श्याम सुन्दर ने कहा 'परिष्वङ्गी' लिख दो। यह शब्द सर्वथा उपयुक्त एवं ऊपर की पंक्तियों से मेल तो खाता ही था, ध्वनि तथा लय और भाव भी उसी के अनुकूल थे। मुझे याद आई श्री जयदेव जी के काव्य की वह पंक्ति 'स्मर-गरल-खण्डनं, मम शिरसि मण्डनम्। देहि मे पदपल्लवमुदारम्।' प्रियतम श्यामसुन्दर ने इस प्रकार अपनी कृपा कोर से अनेक प्रियजनों को प्रणय पगे आश्वासन दे, अपना सामीप्य प्रदान किया है।

❑❑❑

छयालीस ‖ श्री गोकुल-महावन यात्रा

लाय रहे इक घूंघट की दिस, लोभ की आंखिन नंददुलारो।
जात छली मुख सों मुख छ्वाय, उड़ाय गुलाल कैं कैं अंधियारो।
हारन सों उरझाय दै हार री, होत है नागर न्यारो अबारो।
औरहु गांव सखी बहुतैं, पर गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारो॥

'है न ब्रज की अलबेली धूम ! कन्हैया की रसमयी होरी गोकुल गांव का मार्ग कुछ अलग ही है।'

श्री कृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध स्थली गोकुल/वृहद्वन के लिये पू. बोबो का मन अनेक बार आकृष्ट हुआ था। सांवरसुन्दर ही जिसे अपनी लीलाओं के लिये प्रेरित करते हों, उसका इतर विचार होगा ही क्यों। अनेक बार, वे किसी विशेष आकर्षण में खिंची बरबस ही जाती भी रहीं, अल्प काल के लिये। एक बार वहाँ, ग्राम से पहले ही उन्होंने बाईं ओर के श्री यमुना घाट पर घन्टों किसी भाव-निमग्नावस्था में सुखपूर्वक बिताए थे। इधर, श्री ठकुरानी घाट की चिन्मय स्थली ने अपने दिव्य वातावरण से उन्हें आलोड़ित कर एक विशेष सरसता में भर दिया था। श्री नन्दघाट, श्री वल्लभ घाट की विशिष्ट स्थली को देखते देखते मग्न मत्त होती रहती थीं। इधर, श्री गोकुलनाथ जी की माधुरी ने अनेक बार उन्हें रस में सराबोर कर दिया था। उनका मन कुछ दिन स्थायी रूप से वहाँ वास करने को बीच-बीच में व्याकुल हो जाया करता था। कई बार कार्यक्रम बना भी परन्तु इस बार श्यामसुन्दर की प्रेरणा से जाना निश्चित हो गया।

वर्ष १९८९ की श्री कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव सोल्लास वृन्दावन में मनाया गया। सदा की ही भांति प्रियाजी के जन्मोत्सव हेतु श्री गिरिराज होते हुए श्री बरसाना जाने का तय हो गया। श्री ठाकुर जी सहित पू. बोबो, पू. सुशीला बहन जी तथा विजय गोवर्द्धन पहुँचे। श्री गिरिराज की सुचिक्कण शिलाओं पर बिखरी प्रिया-प्रियतम की रस माधुरी से सराबोर होती रहीं पू. बोबो। उसी से छलके रसकणों ने पू. श्री सुशीला बहन जी को भी आह्लादित किया। उसी के रसावशेष अन्य भाई-बहनों के आस्वादन का क्रम जुटाने लगे।

पू. बोबो ने देखी, श्री गिरिराज की श्यामल-गौर शिलाओं पर विराजित प्रिया-प्रियतम की रूप मधुरिमा, सघन कुञ्जों में छिटकी उस शोभा को तिरस्कृत कर रही है। घन-घटाएँ उमड़-घुमड़ कर छाई हैं। लगता है, इस निबिड़ एकान्त को और-और एकान्त प्रदान कर रही हैं, वृक्षों पर कूजित शुक और सारिका जाने क्या कह सुन रहे हैं। निश्चय ही युगल-केलि का गान करने में संलग्न हैं। वह देखो, सामने ही ऊँची शिला पर नृत्य निरत केकी इठला रहा है। घनों की घुमड़न ने उसे बावरा बना दिया है, परन्तु इन नील घन सुन्दर का सामीप्य उसे रस में सराबोर किये दे रहा है। गौर श्याम छवि छटा का पान करने को घन नीचे की ओर झुके आ रहे हैं, और यह लो! श्यामल जलद झुकते-झुकते अपने उल्लास का संवरण न कर सके। नन्हीं-नन्हीं फुहारों के मिस प्रकट होता श्यामघनों का उल्लास प्रिया-प्रियतम को रस में सराबोर करने लगा। युगल रंगीले उन फुहारों में भीज रहे हैं। यह फुहारें बड़ी-बड़ी बूंदों में परिणत हुई घनों के धैर्य का बांध तोड़ प्रवाहित हो गईं। वर्षा की यह अनवरत धाराऐं दोनों के गात को भिजो वस्त्राभरणों के सहारे धरती का अभिषेक करने लगीं। उसी में स्नात युगल कभी केश छिटका रहे हैं, कभी परिधान निचोड़ने में संलग्न हैं। ऐसे में दोनों के श्री अंगों से छलकी मुक्त छवि-राशि ! ओह ! वे हँस मुस्करा रहे हैं, उनके श्री अंगों की शोभा सभी को सराबोर कर रही है परस्पर एक दूसरे को निहार रहे हैं। शोभा ही पुञ्जीभूत हो वहां स्थापित हो गई है- ऐसा लगता है लीला की रुचि जान वर्षा, मन्द-मन्दतर होती हुई थम गई और शीतल समीर प्रवाहित होने लगी। वर्षा तो थम गई परन्तु अनुराग मेह और-और अधिक उमगने लगा। नेह की झरी ही लग गई। उस नेह झरी में भीजे प्रिया-प्रियतम गिरिराज शिखर पर विराजमान अपनी प्राण-प्रियाओं को रस भरे संकेत दे सराबोर कर रहे हैं :-

यह छटा निरखति हैं सखियां।
प्रिय नेह सलिल महँ सराबोर॥

पू. बोबो क्षण-प्रतिक्षण प्रिया-प्रियतम की लीलाओं के आस्वादन में मग्न हैं। वही नित्य सिद्ध देह से, चिन्मय वपु से वे कब उसी लीला में सम्मिलित हो रसमग्न हो जाती हैं, यह निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है। यह विषय इतना गम्भीर है कि यत्किंचित् अनुभूति और आस्वादन के पश्चात् ही इसका अता-पता पाया जा सकता है।

हां ! तो, इस बार भी दो–तीन दिन श्री गिरिराज में प्रिया-प्रियतम की लीला–माधुरी में छकी बोबो सदा की भाँति श्री प्रियाजी के जन्मोत्सव की धूम में सम्मिलित होने को वृषभानु पुर चली आईं। यहां की स्थलियों की गरिमा, सरसता- सदा–सदा अपने वातावरण से आप्लावित करती रही है उन्हें।

वर्ष १९८९ में भादों मास की पंचमी का विशेष उल्लास सभी सखियों को सराबोर किये दे रहा है, उन्हीं के मध्य पूजनीया बोबो इस सुख में रत हैं। "श्री चन्द्रावलि जी की वर्षगांठ पर उन्हें भेंट देने, उनकी मन–वांछित निधि का सामीप्य प्रदान करने का हेतु ले प्रिया जी सखियों सहित श्री चन्द्रावली जी के पास जा पहुँची। उधर अपनी अनन्या–प्रिया की उमंग तरंगों को उनके हृदय की भाव लहरियों को स्वीकारने, सत्कारने यह छलिया शिरमौर भी वहीं पहुँच गए। फिर क्या था ....

'और बढ़ी उमंग सबनि उर
आनन अमिय उजास।'

सभी में एक विशेष ही उमंग भर गई, सभी के मुख अत्यधिक खिल उठे। वहां चली- 'भेंट–समेट की बात कछु।' वह भेंट-समेट क्या थी- अपनी प्राण प्रिया की वर्षगांठ पर उनके राग–अनुराग को अपनी सबल तरंगों से रससिक्त करते, सहलाते .... और भी न जाने क्या-क्या करते श्याम सुन्दर .... बस यही कहते बना :-

'मच्यो हास परिहास-
आज कछु न्यारोई उल्लास।'

यह न्यारा उल्लास ? अहा ! सौभगमद गर्विता सखियां ...।"

अगले ही दिन श्रीराधा अपनी अभिन्न प्राणा सखी श्री ललिता जी के जन्मोत्सव की धूम में जा पहुँची। श्री ललिता जी और कुंवरि किशोरी दोनों ही प्रेम प्रसंग का वर्णन करती सुख में निमग्न होती जा रही हैं। श्यामसुन्दर की रसीली स्मृतियों को स्मरण कर आनन्दमग्न हो रही हैं। अपनी स्मृति को साकार करने को सदा सदा व्यग्र हुए श्यामसुन्दर वहीं पास आकर उनकी रसीली–चर्चा को सुन मग्न होते जा रहे हैं। यह लो ! उनकी विवशता अब और धैर्य धारण न कर सकी। श्यामसुन्दर की ध्वनि सुन दोनों ही चौंक गईं- दोनों ही के मुख प्रसन्नता में भर अरुण हो गये। सभी के हृदय एक आह्लाद में भर गये .... वहां जो रस प्रवाहित हुआ, श्री ललिता जी

की वर्षगांठ पर जो रंग बरसा, उन रसकणों को सभी ने बड़ी ही कुशलता से सम्हाल लिया, फिर भी उत्सव में, एकत्रित समूह में जा बिखरा वह रस और सभी सराबोर हो गए।

इधर कुंवरि श्री राधा के जन्मदिवस पर वृषभानुपुर, पूर्णरूपेण सरसा गया। वृषभानु भवन में चारों ओर नवोल्लास में भरी ब्रज गोपिकाएँ और गोपों की उमंग तरंगे अपने साथ नव नव उपहार लिये द्वार पर उमग पड़ीं ...... गलियों और राजमार्गों पर उमड़ कर आता जनसमूह और भिन्न-भिन्न स्वरों में प्रवहमान संगीतमयी स्वरलहरी .... ओह ! सभी नाच रहे हैं, गा रहे हैं। प्रिया जी की हँसनि और बोलनि को सुन सभी उन्माद में भरे अपना सर्वस्व ही लुटाये दे रहे हैं। समस्त ब्रज मण्डल ही इस प्रसन्नता में योग दे रहा है फिर नन्द के इन लाड़ले सुकुमार की बात कोई क्या कहे? देखकर कहे बिना नहीं रहा जा रहा :-

सुन्दरता सुखराशि नन्दसुत,
मनमोहन ब्रजरानो री।
कीरतिजा के रूप जाल महँ,
नख शिख लौं अरुझानो री ॥

आनन्द का यह उल्लास जन-जन को मोहित किये दे रहा है- उनके हृदय की पुलकन .... नयन पुतलियों के चंचल नर्तन में झलक रही है, चरणगति की रुनझुन में समाई है, वस्त्राभरणों के विविध रंगों में भरी है। उसी रस में सिक्त-सिंचित पू. बोबो के हृदय का उल्लास उनकी पंक्तियों में भरा उछला पड़ रहा है। अपनी भावाभिव्यक्ति में एक स्थान पर वे कह रही हैं :-

या उत्सव महँ मग्न-भयो मन,
नेक न अजहुँ अघानो री।

इन जन्मोत्सवों की झूम में भरी- रसधूम में भीजी, मदझूम में झंकृत सी .... रसरंग की सरस धूम में भर गा उठीं। उनके मन की उत्फुल्लता व्यक्त हुई .... होती गई और सभी को सराबोर करने लगी।

बरसानो नन्दगाँव गोवर्द्धन,
जन्मोत्सव की धूम मची है।
रूप राशि छविराशि विलोकत
रतिहू की मनु मती लची है ॥

सो धौं कौन विधाता है री,
जाने यह रस राशि रची है ।
सकल विश्व की मृदु मोहकता,
वृषभानु भूप के भवन सची हैं ॥
रूपसींव नन्दलाल लाडिलो,
जोरी अनुपम रुचिर जंची है ।
हम सखियों की प्राण-प्राण यह,
नूतन जोरी हृदय खची है ॥

प्रिया-प्रियतम की रसीली मधुर लीलाओं में रत, अपने स्वरूप में स्थित हुई पूजनीया बोबो सरसता में भरी, रस में आलोड़ित हो मग्न होती रहीं ।

सन्तों के चरित्र एक आदर्श होते हैं । मैं केवल उन्हीं सन्तों की बात कह रहा हूं- जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण प्रिया-प्रियतम को समर्पित है । क्षण ही क्या, उनका जीवन, केवल प्रिया-प्रियतम को लेकर ही है और रस के यह अनुरागी युगल उनकी दृढ़ निष्ठा और निर्भरता को, पग-पग पर सम्हालते और सहलाते रहते हैं, प्रत्युत वहां कुछ भी विलग है ही नहीं ।

नाम मात्र का यह जगत और उनका नित्य सिद्ध गोलोक धाम उसमें नित्य गतिमान माधुर्य की अजस्र रस प्रवाहिनी, परस्पर अनुस्यूत रहते हैं । अलग अलग भासने पर भी एक हैं । पलकान्तर भी जहां नहीं सुहाता, जो कुछ भी साधारणतया दीखता है, उसी चिन्मय संसार का अंशमात्र है । उस जगत की बात जाननी है, उसका कुछ अता-पता पाना है, उस स्थिति का ओर-छोर जानना है, अथवा ब्रज की दिव्य विभूति, दिव्य चरित्र का कुछ परिचय पाना है तो आइये दृढ़ता और पूर्ण निर्भरता सहित इन प्रिया-प्रियतम की शरण लें, उनकी अभिन्न प्राणा इन सखियों की शरण लें अथवा उन्हीं भावापन्न इन महाभागाओं की शरण लें, तभी वह सब सम्भव है ।

यह बात कैसे कहें कि पू. बोबो क्या थीं ? उनकी क्या स्थिति रही ? कहां तक उनकी गम्यता रही ? प्रिया-प्रियतम से उनका सामीप्य, सामीप्य ही नहीं, 'अन्तरङ्गता' कहां तक थी ? किस परिसीमा तक वे उनसे घुली-मिली थीं ? जहां जहां तक दृष्टि जा सकती है, उनके

हस्तलिखित संग्रह से पता चलता है, काव्य में लिपिबद्ध उनकी अनुभूतियों से अता-पता मिलता है, उन द्वारा समय-समय पर सुनाई उनकी दशाओं का यत्किंचित् ब्योरा मिल पाया है अथवा उनके मुख से निसृत वाणी का जहां-कहीं संग्रह देखने का अवसर मिला है, उससे लगता है, उनका प्रिया-प्रियतम से सम्बन्ध नित्य का रहा है । क्षण-प्रतिक्षण वे श्यामा-श्याम की सन्निधि में रही हैं । उनकी लीलाओं में निमग्न रही हैं । उन्हीं लीलाओं में अपने दिव्य वपु से सम्मिलित रही हैं । साथ-साथ जब उनके भौतिक चक्षुगोचर स्वरूप और स्थिति की ओर ध्यान जाता है, उनके मर्यादा मय तथा शास्त्रसम्मत चरित्र को देखते हैं, उनके मृदुल स्वभाव, व्यवहार, कलात्मक प्रकृति, अद्भुत काव्य प्रतिभा, क्या-क्या कहें ? ऐसा विरोधाभास ...... दोनों ही स्थितियों में इतना बड़ा साम्य, उन जैसी महान विभूति के ही बूते की बात है । साधारण मानव की न तो वहां गम्यता ही है और न किसी प्रकार का अभिनिवेश ही । जहां बुद्धि की गम्यता नहीं, तर्क की सम्भावना नहीं, साधारण मस्तिष्क की कल्पना नहीं, जहां श्रद्धा है, विश्वास है, भावना है और उपयुक्त तथा संयुक्त बुद्धि है, वही राजमार्ग है, शास्त्रानुकूल पथ है, पूर्ण भगवदाश्रय है, वही ग्राह्य है, अभीप्सित है, वांछित है तथा ग्रहणीय है, इसी में पली मर्यादाऐं दीप्तिमान होती रही हैं, आलोकित करती रही हैं ।

हां ! तो, वृषभानुपुर में श्रीचन्द्रावली जी, श्री ललिता जी और कुंवरि किशोरी की वर्षगांठ में सम्मिलित पूजनीया बोबो रसास्वादन रत रहीं ।

गोकुल चलने का सहसा बन गया, सभी ने आग्रह किया। इनका मन वहां जाने के लिये बीच में उठता रहता ही था । सहज ही सब तय हो गया और दस-बारह सितम्बर के आसपास गोकुल के लिये चले तथा वृहद्वन में ठहरने का बन गया । महावन से बाहर ही एक स्थान पर व्यवस्था हो गई । ग्राम से किञ्चित् दूर, एकान्तिक स्थली, वहां का प्राकृतिक दृश्य तथा मनोहारी वातावरण सभी को सुखद लगा । सुदूर लम्बे-लम्बे वृक्षों की पंक्ति, ऊंची-नीची घाटियां तथा करील कुञ्जों को देख भक्त प्रवर रसखान जी की स्मृति हो आती ।

चारों ओर की अलबेली प्रकृति, बड़े बड़े वृक्ष झुरमुटों की शोभा को निहार इनका मन सरसता में भरा जा रहा था । घनों ने घुमड़ कर प्रकृति में किंचित् सरसता भर दी । चारों ओर धूप-छांह की आँख मिचौनी

का आनन्द लेते हम सब पूज्य भैया, पू. बोबो, श्री सुशीला बहन जी, दुलारी बहन जी, श्री स्नेह बहन जी, उत्तमा, उमा, दर्शन, विमला कपूर, तृप्ता, उर्मिल, मलका, सुमित्रा, सरोज, सन्तोष, सन्तोष नारंग, सुदेश, काकी, पुष्पा, दीपा, वेणु, निर्मल, मिसिज़ साँगरा, निर्मल की माताजी, कामदा, सन्तोष महाजन, बेबी, ओमी, बशेशुर, निर्मला, विजय और अनिल आदि भाई-बहनों ने यमुना तटवर्ती स्थली गोकुल के लिये प्रस्थान किया। चारों ओर समीरण की झकोरों से गुदगुदाये वृक्ष-वल्लरियां रसझूम में भर गए और वहीं देखा पूजनीया बोबो ने, रसिक रिझवार की रसीली अठखेलियों से आप्लावित सखी समूह। उसे देख सरसता में भर गईं वे। हां ! तो, पू. बोबो ने देखा :-

''एक सघन कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजमान गोकुल के राजकुमार अपने दोनों चरण फैलाए, एक कर में कमल का पुष्प और दूसरे में चिरसंगिनी इस बांस की पोर को लिये, अपनी मस्ती में बैठे हैं। श्यामल जलद घिर रहे हैं, समीरण वृक्षों और वल्लरियों को छू-छेड़ गुदगुदा रही है। उनके नेत्रों से अनुराग की रश्मियां प्रवाहित हो रही हैं। कमल पुष्प को अपने कर में ले घुमा रहे हैं, साथ-साथ किसी मधुर तान का अलाप ले रहे हैं। यह भी कौन कह सकता है, अनुराग की रसधारा जहां एक ओर उनके नेत्रों के मिस प्रवाहित हो रही है, दूसरी ओर उनकी वाणी से लयबद्ध वह शब्दावली संगीत के स्वरों में उतरने को अकुला सी रही हैं। बीच-बीच में उनके पगनूपुरों की झंकार सुन लगता है मानों संगीत के लिये ताल बज रही हो। सुदूर कुछ अन्य सखियां खड़ी प्रियतम की इस रसीली दशा को निहार निहार कर रूप की अपार राशि में तन्मय हुई जा रही हैं। श्याम सुन्दर की दृष्टि सहसा उठी और उन्होंने उन सखियों को देखा, देखकर कुछ हँसे। ओह ! शत-शत मञ्जीरों की ध्वनि को भी तिरस्कृत करती वह हास-झंकार सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त हो गई। श्याम सुन्दर से अपने नाम की पुकार सुन वे सखियां पुलकायमान हो गईं और त्वरित गति से ..... उस रूप छवि का पान कर अपनी आतुर ललक के मिस शिथिल होती सी उनके पास चली आईं। उनका सरसीला अभिवादन करने को श्यामसुन्दर ने उनकी ओर पुष्प उछाले तथा प्रसन्न, मग्न से उठकर खड़े हो गये, अपनी इन अभिन्न प्राणा सखियों के सत्कार हेतु, और फिर रस की उस मधुर उच्छलन में सभी सराबोर हो गईं।''

यह छवि निहारी पूजनीया बोबो ने। उनकी भावोद्दीप्त स्थिति, भाव तरंगे, उनके नेत्रों से उनकी मत्त झंकृति से सहज प्रकट होने लगी। इसी भाव में भरी पूजनीया बोबो सभी बहन भाइयों के साथ श्री यमुना तटवर्ती गोकुल के लिये चली आईं। वहां कलिन्द नन्दिनी के सुरम्य तट पर

जल में उठती लोल लहरियों से, श्यामल सुषमा से तरंगित होती रहीं । श्री श्री वल्लभाचार्य जी महाराज की स्थलियों में विचरण करती एक विशेष भाव में भरी घूमती रहीं, झूमती रहीं । गोकुलनाथ श्री ठाकुर स्वरूप के दर्शन किये। वहां की शोभा अकथनीय ही है ।

अगले दिन श्री दाऊजी महाराज के दर्शन करने गईं । अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर ब्रह्माण्ड घाट होती हुई, अनेकानेक श्री कृष्ण की बाल लीलाओं से धन्या स्थलियों के दर्शन कर लौट आईं ।

वहीं रमण रेती और श्री कृष्ण भक्त 'रसखान टीले' पर भी गईं । वहां काफ़ी समय उस वातावरण का रसास्वादन करती, बैठी रहीं । श्री रसखान के भावपूर्ण वातावरण से आप्लावित वह स्थली उन्हें अपने वातावरण से सिक्त करती रही । चारों ओर की ऊंची-नीची घाटियां- वन बीहड़, करील कुंजें, नीरव स्थली आज भी रसखान के पदों को मूर्त करती- उसी में सराबोर कर रही है । उन महाभाग रसखान की अनूठी मांग-सहज अभिव्यक्ति, आत्म निवेदन और लीला माधुरी पान की उत्कट लालसा .....। धन्य हैं यह मुसलमान भक्त कवि, जिन पर कोटि-कोटि हिन्दुओं को वारा जा सकता है। अतः इसी सरस वातावरण से आप्लावित हुआ पू. बोबो का हृदय उल्लास में भरा निमग्न होता रहा ।

अगले दिन प्रिया जी की प्राकट्य स्थली 'श्री रावल' ग्राम के लिये प्रस्थान किया । श्री यमुना तटवर्ती इस निकुंज स्थली से इतनी प्रभावित हुईं कि इनका मन वहां कुछ दिन निवास करने को लालायित हो गया । वह एकान्त, श्री यमुना तट किसी विशेष ही रस में सराबोर करता रहा।

कुछ दिन 'महावन' में निवास कर, सभी को अपने-अपने स्थानों पर भेज, सदा की भाँति अपने नियम के अनुसार 'श्री वृषभानुपुर' चली आईं ।

वृषभानुपुर पुनः लौट कर कुछ दिन वहां की माधुरी में पुनः इन रसीले, रंगीले युगल की रसकेलि का आस्वादन करने लगीं । इन्हीं दिनों, एक दिन गह्वर वन से जाते में इन्होंने देखा "युगल विहार विपिन महं ।" देखा और देखती रह गईं वह शोभा, वह अनुपम माधुरी, वह सुरस विहार ...... बस ।

"आज इन नवल कौतुकी ने नवीन कौतुक वश नीली चूनरी ओढ़ ली और उसका एक छोर अपने स्कन्ध पर डाल नारी वेष बना,

इन सुघर सखियों के मध्य आ विराजे । लगा, मानों मत्त मधुकर कमलों के समूह में आ छिप गया हो । अत्यन्त सुघर (चतुर) होने पर भी सखियां जान न पाईं । थोड़ी ही देर में वहां प्रिया जी गुलाबी वस्त्र धारण किये चली आईं। वे पूर्व से वहीं लताओं के मध्य छिपी थीं, जिससे यह रहस्य किसी को भी पता न चल सके, परन्तु श्याम सुन्दर से तो पहले से ही साठ-गांठ हुई थी। जैसे ही प्रिया जी ने उस सखी मण्डली मध्य प्रवेश किया कि उनकी निज स्वरूपभूता यह सखियां समझ गईं । रहस्य प्रकट हो गया । प्रिया-प्रियतम परस्पर अवलोक, मुस्कराऐ , उधर ताली बजा बजा वह सखी समूह भी हँसने लगा- क्योंकि प्रियतम का वह रहस्य सहज प्रकट हो गया था । उस हास परिहास में सभी गोपाङ्गनाऐं, उनके जीवन-प्राण, किशोरी श्रीराधा तथा श्याम सुन्दर रसमग्न हो गए ।''

उन्हीं दिनों पू. बोबो दर्शनार्थ ऊंचे ग्राम गईं । वृक्षों की हरी हरी श्रेणी, उसमें संकुचित सी पगडण्डी- वहीं से दूर झांकती ऊंचे ग्राम की धवल अट्टालिका, दूसरी ओर पर्वत शृङ्खला, उसी स्थली में अपनी अभिन्न प्राणा सखी श्री सुशीला जी से परस्पर चर्चा करती जा रही थीं ...... श्री ललिता जी की चातुरीपूर्ण माधुरी ही उस मार्ग में परिव्याप्त थी ...... सहसा इनकी दृष्टि उठी ...... सामने इन्होंने देखा :-

''श्री ललिता जी हरी साड़ी पहने निज उच्च अटारी पै विराजमान हैं । सुदूर एकटक निहारती- किसी भाव विशेष में खोई सी दीख रही हैं । उनका दक्षिण कर उनकी साड़ी की कोर पर यन्त्रवत् ऊपर से नीचे की ओर आता जाता दीख रहा है । एक वृक्ष डार पे पूर्व से बैठे श्याम सुन्दर की दृष्टि उनकी उस झिलमिलाती सारी पर सहसा पड़ी । वे कूदे और दूसरे ही क्षण, त्वरित गति से श्री ललिता जी के पास जा पहुँचे । बस, रसबावरों की वार्ता, वहाँ की स्थली में, आसपास की सखी मण्डली में बिखर गई ...... जिन्होंने इस रस रहस्य को देखा, पान किया- उनकी किसी मत्त दशा में यह रसकण छलके, बिखर, सुलभ हो गए हम सभी के लिये ।

वृषभानुपुर तथा ऊंचे ग्राम की रसमाधुरी में भीजी-भीजी उस रस माधुरी का आस्वादन करतीं श्री नन्दग्राम चली आईं । रसास्वादन का उनका क्रम नित्य का था । यह कोई प्रयास अथवा साधनार्न्तगत का क्रम न था- उनका मन, उनका तन, उनका रोम-रोम, श्यामा श्याम की रसमाधुरी से परिपूर्ण था, ओत-प्रोत था- अतः वह माधुरी, वह लीला, प्रिया-प्रियतम

का रसविहार, उनका केलि विलास पू. बोबो के लिये सदा, सर्वदा तथा सर्वत्र सहज और सुलभ था। यदि यह कहें कि एक ही समय में अपने एक वपु से वे हम जैसे क्षुद्र जीवों के लिये सहज सुलभ रहीं, वहीं दूसरी ओर, उसी समय में अपने चिन्मय तथा दिव्य वपु से प्रिया-प्रियतम की दिव्य तथा चिन्मय लीला का आस्वादन तथा लीला में विहार रत रहीं तो कोई अत्युक्ति न होगी। अब वे अपने ग्राम, नन्दग्राम चली आईं। उन्होंने देखी वही छवि माधुरी :- 'श्याम सुन्दर लटक में भरे अपने भवन की छत पर खड़े कुछ गुनगुना रहे हैं। ललिता सरोवर से कुंवरि श्री राधा अपनी अभिन्न सखी श्री ललिता, विशाखादि सहित चली आती दिखलाई दीं। श्यामसुन्दर ने तुरंत अपनी चिर संगिनी वंशी में स्वर भर कुछ सन्देश दिया। वह सन्देश सुना और समझ गईं प्रिया जी तथा उनकी सखियां। उन्होंने चकित, विस्मित हो उस वंशीरव के उद्गम स्थल की ओर देखा .....। नयनों से नयन मिले- हृदय आत्मविभोर हो गया। उस रस दशा में आंचर सरक गया परन्तु सम्हालना पड़ा। वे तीनों ही ठिठक कर वहीं खड़ी की खड़ी रह गईं। अगले ही क्षण श्यामसुन्दर वहीं चले आए। अब रसरंगी युगल अपनी इन सखियों सहित पुनः रास्ते भर हास-विनोद, रंग रस छलकाते, बरसाते ललिता-सर पर आ मधुर तरंगों की गणना करने लगे।'

बस, इन्हीं भावों में निमग्ना, रसमग्ना पू. बोबो चली आईं, मधुर कानन, 'वृन्दाकानन' की मधुर-मधुर निकुञ्जों में।

❑❑❑

सैंतालीस ‖ श्री नन्दग्राम-विशेष यात्रा-१९९०

पावने सरसि स्नात्वा कृष्णं नन्दीश्वरे गिरौ ।
दृष्ट्वा नन्दयशोदां च सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ।***

(मथुरा माहात्म्य)

सदा की भांति इस बार भी श्री कृष्ण जन्माष्टमी उत्सव वृन्दावन में ही मना, पू. बोबो, श्री ठाकुर जी, श्री सुशीला बहन जी, विजय तथा ओमी सहित गोवर्द्धन चली आईं। कई बार से कुछ बहनों का श्रीनन्दगांव अथवा ब्रज में ही किसी अन्य स्थली पर जा कुछ दिन वहां की लीला स्थलियों के दर्शन तथा आस्वादन का आग्रह था ही, अतः उसी निमित्त को ले पू. बोबो दो, तीन दिन के लिये श्री गिरिराज चली आईं ।

श्री गिरिराज का सरस वातावरण सदा-सदा से ही पू. बोबो को आप्लावित करता रहा है। यहां की श्यामल गौर सुचिक्कण शिलाओं पर थिरकते प्रिया-प्रियतम के चरण नूपुरों के शिञ्जन ने उन्हें झंकृत किया है, गिरि गुहाओं में सखियों के संग दान-मान में हुई रार-तकरार ने उन्हें झकझोरा है- प्रिया जी के साथ गिरि गुहाओं में हुए विहार-विलास ने उन्हें मदमयता में भर सराबोर किया है ।

गोचारण में हुई सखाओं सहित क्रीड़ाओं ने उन्हें सरसाया है .... उसी में सखाओं से छल कर अपनी प्रणयिनी इन रस रंगाकुला ब्रज बालाओं के साथ आ धूम मचा, उन्हें छेड़ उनके साथ रस विहार की अनेक लीलाओं का संयोजन जुटा, आस्वादन कर, रात्रि विहार के संकेत दे, न जाने कितनी-कितनी रसमयी लीलाओं, रसीली हिलोरों उनमें प्रवहमान माधुर्य की अनगिन चपल चेष्टाओं ने पू. बोबो को सरसा, एक रसातुरी वश आकुल-व्याकुल भी किया है। रस का आस्वादन कर जहां वे आनन्द मग्न हुई विचरण करती रही हैं, वहीं दूसरी ओर लीला में सम्मिलित हो किसी अगाध माधुर्य में रसमग्न हो सरसती भी रही हैं ।

हां !तो गिरिशिखर पर, वहां की सघन निकुंजों में, नवदूर्वा

*** श्री नन्दग्राम में पावन सरोबर में स्नान करके श्री कृष्ण, श्री नन्दराय जी तथा श्री यशोदा जी का दर्शन करने से सर्वाभीष्ट फल की प्राप्ति होती है ।

से शोभित हरी-हरी निकुंज स्थली में, वृक्ष झुरमुट के मध्य एकान्तिक स्थली में, यहां के सरोवर तटों पर, रार-तकरार में मान-मनुहार में, रस विलास में, रस-रंग छलका है, बरसा है, बरसता ही रहता है तथा रसिकजन सदा-सदा उसमें आप्लावित रहते हैं, सरसाये रहते हैं।

"एक बार गिरिराज के ऊंचे ऊंचे शिखरों पर कूदते-फांदते श्यामसुन्दर सहसा रुक गए। एक वृक्ष का सहारा ले उससे टेक लगा खड़े हो गये। उसी समय उन्होंने अपनी फेंट से मुरलिका निकाल, उसमें रस उंड़ेल, वातावरण को सरसा दिया। आज इस मुरली गान ने प्रकृति में जहां एक ओर सरसता भर दी वहीं वन्य पशु-पक्षी क्षण भर को किञ्चित् स्तब्ध से हो खड़े के खड़े रह गये। तभी वृक्ष वल्लरियों ने झूमकर-अपनी पुलकन को प्रकट कर, श्यामसुन्दर के इस समायोजन का अभिवादन किया। सम्भवतः श्यामसुन्दर के नेत्रों से प्रवाहित नेह-मेह के परिणामस्वरूप ही यह सब क्षण भर में हो गया। यह लो ! सामने ही सखियों की भीड़ चली आती दिखलाई दी। वंशी-निनाद किञ्चित् उच्च स्वर में होने लगा। उन्हीं सखियों के मध्य प्रिया जी को देख प्रियतम के हर्ष का पारावार न रहा और वे एक विशेष ही भाव में भर मग्न हो गये। प्रिया जी ने चौंक कर नेत्र उठा सामने देखा .... उनके प्राणों के प्राण हृदयधन श्यामसुन्दर भी उनकी अस्त व्यस्त व्यग्रता, शिथिल पग-गति, उसी से आविष्ट मुखद्युति निहार, रस मग्न होते जा रहे थे। वे क्षणभर को ठिठकी सी रह गईं .... परन्तु उनके इन इंगितों और संकेतों ने उनके मन की बात अवश्य ही प्रियतम तक पहुँचा दी। यह लो ! प्रियतम धैर्य न रख सके, बड़े वेग से बढ़े और सखियों के मध्य ही प्रिया जी से जा मिले। सखी-समूह मध्य सुशोभित प्रिया-प्रियतम की रूप माधुरी, रस चातुरी- उसका ब्योरा कौन देता ?"

पूजनीया बोबो ने देखी विवश-परवश सी यह युगल की रसमयी स्थिति। रस की इस सरिणी के प्रवाह में बह चला उनका हृदय भी। बस- वह रूप माधुरी-वह अनुपम शोभा वह रसमयी स्थिति- समस्त प्रकृति में परिव्यास हो सरसाने लगी। यही कहते बना :-

ये उमगि बढ़ीं, वे ललकि मिले
सो उमंग सुख कहत न आवत।

कहने की बात भी क्या थी .... और कहें तो तभी न जब उस सुरस स्थिति से बाहिर निकल कर आवें। ऐसी कामना करेगा ही कौन?

श्री गिरिराज की सरसीली लीलाओं के आस्वादन में रत बोबो का मन सहज उमड़ा 'चन्द्र सरोवर' चलने के लिये। अपनी भावनाओं को व्यक्त करती हुई वे एक सखी को सम्बोधित कर कहने लगीं :-

"सखी ! चल ! चन्द्र सरोवर के सुभग तट पर चलकर श्यामसुन्दर का दर्शन कर आवें। सुना है प्रणय राज्य का वह अलबेला अधिपति, प्राणों को जीवन प्रदान करने वाला, मधुर रस का प्रणेता और उपभोक्ता, नवराज कुमार चन्द्र सरोवर तटीय निकुंज में किसी विशेष आयोजन वश विराजमान है। संग प्रिया जी तथा अन्य सखियां भी हैं। तू आ ! हम भी वहीं चलें।" यह कह चल दीं, अपने प्यारे श्यामसुन्दर की रूप माधुरी में पगी, रसीली चर्चा में मत्त हुई वे दोनों। पुनः पुनः नवीन लीलाओं में सम्मिलित होने की व्यग्र लालसा लिये। अहा ! अहा ! सामने ही देखा उन्होंने- "अपने सुभग शीश पर मणियों से निर्मित मुकुट धारण किये मयूर पिच्छ की चन्द्रिका धारण कर रखी है, उनके स्निग्ध करों में कङ्कण मधुर ध्वनि कर रसमय संकेत दे रहे हैं। कटि में स्वर्णिम करधनी शोभायमान है। बीच-बीच में करधनी का मधुर स्वर हो रहा है। फेंट में मुरली धारण कर रखी है। रूप की वह अथाह राशि, सभी आभरणों से अलंकृत, शोभायमान है। यही नहीं, सरोवर के उसी सुभग तट पर चटक-मटक करते धूम मचा रहे हैं। कभी जल में कूद जाते हैं, कभी जल उलीचते हैं और कभी भ्रू-संचालन द्वारा अपनी इन अनन्य प्रियाओं से रस विनिमय करते हुए चपल हो रहे हैं। उनके नयनों से सुधा धारा प्रवाहित हो रही है। इस रसधारा से प्रियाओं के हृदय सरसा रहे हैं। उनकी प्रणयपगी भावनाओं को दुलार रहे हैं।" वह सब वातावरण आप्लावित कर रहा है पूजनीया बोबो को।

सखीजनों के उसी समूह में सम्मिलित हुई पू. बोबो रस में भरी, मग्न हो रही हैं।

श्री गिरिराज की लीलाओं का आस्वादन करतीं पू. बोबो अपने पूर्व कार्यक्रमानुसार वृषभानुपुर चली आईं। श्री ललिता जी की वर्षगांठ पर इन्होंने देखा-

"प्रिया-प्रियतम श्री ललिता जी से परस्पर विनोद कर प्रफुल्लित हो रहे हैं। यह सरस विनोद क्या है- कुछ कहने की बात नहीं। अपनी समवयस्का अभिन्न प्राणा श्री ललिता जी को सामीप्य प्रदान कर उसी में रत रहने की शुभाकांक्षा कर रही हैं प्रियाजी और श्री ललिताजी संकुचित

सी हुई जा रही हैं । श्याम सिन्धु के युग्म तटों में दोनों सरिताऐं विलीन होती जा रही हैं । श्री ललिता जी ने पीली साड़ी के साथ नीली कञ्चुकी धारण कर रखी है । प्रिया जी अपने दोनों करों से नील तरौना उनके श्रवणों में धारण करा रही हैं । श्याम सुन्दर इस छटा का पान कर उमंग में भर, मस्ती में गा झूम रहे हैं । श्याम सुन्दर ने श्री ललिता जी के भाल पर वेंदी लगा उन्हें सरसता में बोर दिया । श्रीं ललिता जी संकोच वश प्रिय रस भीनी सिमटी सी जा रही हैं । इधर प्रिया जी अपने लाड़ और प्यार की वर्षा कर उन्हें सुख में सराबोर कर रही हैं । अपनी सखी की वर्षगांठ मनाते रसिक युगल प्रमुदित तथा प्रफुल्लित हो रहे हैं ।'' इन रसमयी चेष्टाओं और सरस रस विहार को निरख पू. बोबो रस मग्न हो रही हैं ।

अगले दिन पूजनीया बोबो गह्वर वन की एकान्त स्थली में अपनी ही मस्ती में चली जा रही थीं कि उन्होंने देखा यह सांकरी गली दान-मान की, रार-तकरार की अनेक सरस स्मृतियों से ओत-प्रोत, इठला रही है । आने जाने वालों को नटखट श्याम सुन्दर की लीलाओं का सन्देश दे सावधान भी करती है परन्तु कभी किसी का आंचल थाम उसे चौंका भी देती है, अनेक बार उस बाला का उसी के लहंगे में पांव उलझा, रोकने के मिस से भी चौंका देती है । अपनी मस्ती में घूमती पू. बोबो के पांव सहसा ठिठके और वे रुक गईं । एक वृक्ष के सहारे खड़ी हो गईं । ऊपर से कुछ संकेत पा सहसा चौंक कर उन्होंने जो दृष्टि उठाई तो देखा, ''अपनी नवल माधुरी का प्रसार करते किसी नवीन भूमिका का संयोजन करते श्याम-सुन्दर खड़े हैं । यहां से आने जाने वाली बालाओं के दूध दही लूटने का आयोजन बना रहे है । आने जाने का यह संकुचित मार्ग यहां से होकर जाने वाली महाभागा ब्रजाङ्गनाओं की श्याम-सुन्दर को ज़ी भर देखने की लालसा, उनकी किसी सरस अवलोकन से झरती मधुधारा के पान करने की प्रबल इच्छा की रंगमयी भूमि ही है यह ।

हां ! शीतल पवन झकोरों से प्रकृति इठला रही है । वृक्ष और वल्लरियां रस रंग में भरे झूम रहे हैं । ऊपर एक शिला पर श्यामसुन्दर खड़े हैं । उनकी केशावलि से अठखेलियां करती समीरण कभी कच लट को विलुलित करती स्निग्ध भाल पर ले आती हैं तो लगता है अलिछौना रस लालसा वश, अरविन्द से रस याचना कर अकुला रहा है और कभी इनके पीत पट को हिलोर इन्हें गुदगुदा देती है । जब अपना पीत पट सम्हालने को श्याम-सुन्दर अपना दक्षिण हस्त ऊपर ले जाते हैं तो उनके करों में स्वर्ण

मुद्रिका दीप्त हो आकृष्ट करने लगती है। इसमें उनकी रसातुरी तो झलकती ही है साथ-साथ उस रस से, हृदय की उमगन और पुलकन से वनमाला सिहर उस प्रेम बावरी को रस मग्न कर देती है।" फिर की बात- इसी सुभग स्थली ने, यहां की वृक्ष वल्लरियों ने, यहां के वन्य पक्षियों ने अपने हृदय पर अंकित कर ली है- चलो उन्हीं से पूछें। हां ! हां ! तभी तो वे प्रफुल्लित हो अपने सौभाग्य मद पर गर्वित हो रहे हैं।

पू. बोबो सभी बहन-भाईयों सहित श्रीनन्दगांव चली आईं। अपना गांव नन्दगांव, श्री कृष्ण भक्तों के लिये पूजनीय तो है ही सेवनीय भी है। बीच-बीच में यहां आ प्राय: कुछ समय निवास तो पहले भी करती रही हैं, परन्तु इस बार का आगमन किसी विशेष ही आकर्षण को लेकर था, वहीं उनकी वाणी मुखरित हुई और वे गा उठीं :-

'सखि ! यह धन्य नन्दजी को गांव
जहां नित मिलि हैं सांवरिया।'

श्याम सुन्दर की निज स्थली, नन्दराय जी की निवास स्थली ही नन्दगांव नाम से आज भी सुशोभित हुई वैष्णव मात्र को आकर्षित कर रही है। नन्दनन्दन ब्रज की समस्त स्थलियों में ही धूम मचाते रहते हैं, पर नन्दगांव की छटा ही निराली है। श्री यशोदा कुण्ड, पनिहारी कुण्ड, पावन सरोवर, ललिता कुण्ड आदि का सौन्दर्य तो अपूर्व है। पूर्णमासी गुफा, श्री सनातन जी की भजन स्थली, श्री रूप गोस्वामी पाद की भजन स्थली, आसेश्वर महादेव प्रभृति सभी स्थलियां अत्यन्त सजीव सी अपना इतिहास दोहरा रही हैं। इन्हीं रसमयी स्थलियों में पू. बोबो मग्न होती रहीं। श्याम सुन्दर की लीलाओं से जुड़ी यही स्थलियां, अपने नित्य परिकर हेतु आज भी प्रकट ही हैं। इन चिन्मय स्थलियों में विक्रीड़ित प्रिया-प्रियतम अपने रस विलास में मग्न रहते हैं, सखाओं सहित विभिन्न क्रीड़ायोजनों में मग्न रहते हैं। उन्हीं भावों में भरी पू. बोबो सभी के साथ घूमती हुई भी अपने ही भाव में, अनुभूति में, उस दिव्य तथा सरस वातावरण में मग्न होती रहीं। उनकी उस मन:स्थिति को उनके साथ-साथ बने रहकर भी आंक पाना सर्वथा असम्भव ही रहा। हां ! उनकी वाणी से, उनके काव्य से तथा उनके लिखे पत्रों के आधार पर अवश्य ही किञ्चित झांकी करने का अवसर प्राप्त हुआ। अत: ब्रज की वह श्री अत्यन्त गोप्य रहकर अपनी दिव्य अनुभूतियों से रस सिक्त करती अपने में ही सिमटी रही। जो जो उन्होंने आस्वादन किया, अपनी
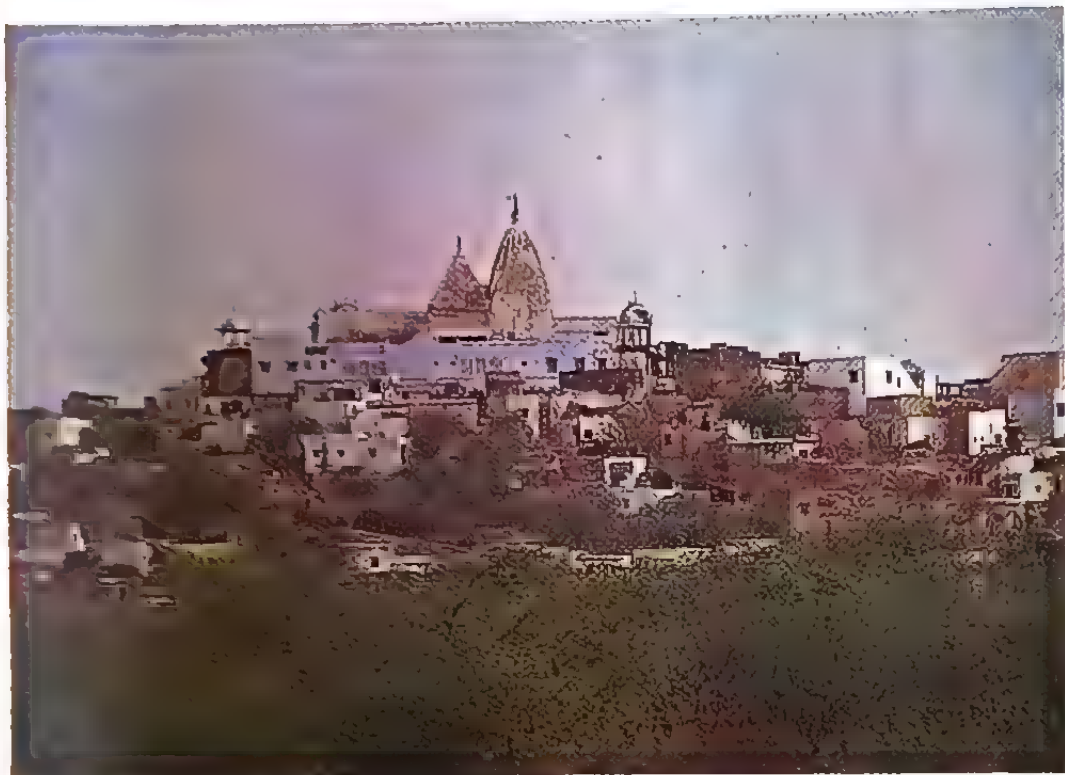
नन्दग्राम-विशेषयात्रा

गोपाल चले गो चारन को।
कर मँह लकुटी फेंट मुरलिया।
संग लै संग के ग्वारन क़ो।।
इत उत चितवत, विहंसत, ठुमकत
कण, कण प्रति नेह–प्रस़ारन को।।
जित तित को ठाड़ीं ब्रजबाला
सो छ़वि दृग भरि उर, धारन क़ो।।

अनुभूति का यत्किञ्चित् गान किया परन्तु उनकी उस रसीली ध्वनि को सुनने में सभी असमर्थ से ही रहे ।

उन्होंने देखा, 'वन वीथियों की सघन निकुञ्जों में प्रकाशित नवघन श्याम सुन्दर चले आ रहे हैं । नेत्र, मद विशेष में भरे हैं । वे कुछ गुनगुना रहे हैं । कभी कभी उच्च स्वर में अलाप भी लेते हैं । उस समय उनके चंचल नयन इधर उधर जाने किसे खोजते हैं । दिन भर के श्रम से, पाग किञ्चित् टेढ़ी हो गई है । उसमें मोर पंख खोंस रखे हैं । वन्य सुकोमल पुष्प गुच्छ से अलंकृत हुए सभी का चित्त हरण किये ले रहे हैं । कटि में वंशी अपने सौभाग्य से गर्वित हो रही है । कर कमल में कन्दुक उछालते चले आ रहे हैं । कन्दुक उछालने की उनकी शोभा सभी का मन चुरा रही है । यही क्या ! मद पूरित नयन, चंचल चितवन, टेढ़ी पाग, श्रवणों में पुष्प गुच्छ सभी मन को बरबस ही खींच रहे हैं और यह लो 'मेरा धीरज ही जाता रहा । मैं भूल गई कैसा था उनका यह मद-प्रवाह, उनकी विशेष चितवन ओह !' फिर क्या हुआ क्या कहें ? डूब कर, तन्मय होकर कहेगा भी कौन ? 'तदपि कहे बिनु रहा न कोई' जो कुछ कहा वह रसोच्छलन में बिखरे कण ही थे ।'

उसके अगले दिन सभी बहन-भाईयों के साथ 'टेर कदम' जहां, श्याम सुन्दर वन से लौटते अपनी गउओं को नाम ले ले बुलाया करते थे तथा श्री रूप गोस्वामी जी की भजन स्थली दर्शनार्थ पधारीं । सभी के साथ जाते में पू. बोबो ने देखी सामने की एक सघन कुञ्ज; इतनी सघनता थी, मानो अन्धकार सा ही हो । चारों ओर से लताच्छादित स्थली, नीरवता ने नितान्त एकान्त प्रदान कर दिया था । कभी कभी शुक तथा सारिका उस नीरवता को भंग कर चुप हो जाया करते थे, और कभी केकी की मधुर स्वर लहरी दूर दूर तक गूंज जाया करती थी । इस घनी कुञ्ज में थोड़ी थोड़ी दूरी पर मणि दीपक रखे थे । घनी तमाच्छन्नता में कहीं कहीं चमकते मणि दीपक, बड़ा ही मनोरम दृश्य था । वृषभानु नन्दिनी तथा सांवर सुकुमार नन्दनन्दन वहीं उसी कुञ्ज मध्य विराजमान थे । उनके नेत्रों में मद भरा था । उसके कारण उनके विशाल नयन बंक हो रहे थे । कर्ण फूल से कुण्डल तथा मालाएँ परस्पर उलझ रही थीं । विशेष भाव में भरी मन में स्पृहा लिये पूजनीया बोबो यह दृश्य निहार रही थीं । अपनी रसस्थिति से किञ्चित् सजग हो सहसा- प्रिया-प्रियतम की दृष्टि उठी तो उन्होंने, इन्हें देखते हुए लीलास्वादन करते हुए देखा। देख कर क्या किया- उसे पू. बोबो ने IIIrd person में गाया है, 'ताहि बुलाई दै कर झाला' रस भरे संकेत से उसे (ताहि अर्थात् पू. बोबो को) अपने पास

बुला लिया और फिर क्या किया- यह कौन कहता ? रस की अनगिन चेष्टाओं, प्यार की शत-शत धाराओं, मद की बिखेर में- रस वर्षा हुई और उस रस वर्षा में सभी और-और सिंचित हो गए ।

अभी पू. बोबो श्री नन्द गांव में ही निवास कर रही थीं । ललितासर का सरसीला वातावरण, वहां की मनोरम स्थली सदा-सदा ही आकर्षित करती रही थी उन्हें । सघन वृक्षावली तथा लता वितान और चारों ओर से झुके वृक्षों के मध्य से आती एकान्तिक पगडण्डी से रंग-बिरंगे परिधान धारण कर हंसती खिलखिलाती चली आती सखियों की भीर, सभी कुछ सुन्दर था, सुन्दर से संयुत सभी सुन्दर हैं । यह दृश्य निहार तन्मय हो गईं-ऐसी अनेक स्थलियों में उनका मन उमड़ता रहा है, नयन सरसाते रहे हैं, एक आत्म सुख में मग्न होती रही हैं । आज भी उसी आकर्षण में उनके पग अनायास ही मनोहर झांकी के रसास्वादन हेतु अग्रसर हो जाते हैं । आज ही की बात है पू. बोबो ने मार्ग में ही सामने देखा, वे ठिठक गईं । देखती की देखती रह गईं ।

''उन्होंने देखा एक सघन विटप के नीचे त्रिभङ्ग मुद्रा में, नयनों को परम सुख प्रदान करने वाले श्याम-सुन्दर एक कर से अपने पीत पट को संवारते हुए और दूसरे में वंशी लिये बड़े ही अदा से खड़े इन्हें देखकर मुस्करा रहे हैं । हंसने में रहस्य क्या था- यह तो क्या कहें परन्तु, भावनाओं का सत्कार अवश्य था । रहस्यपूर्ण हंसी ने अपनी मादकता का प्रसार किया तथा उनकी भ्रू संचालन ने सुधि का अपहरण कर लिया । प्राणों को विद्ध कर दिया नयनों से निसृत विषामृत से युक्त चितवन सायकों ने । कैसा है यह विष? अमृत से युक्त होने से जीवन्त शक्ति का संचार करने वाला है । प्राणों में जहां एक ओर रस का संचार करता है, वहीं प्राणों में मिलन लालसा जागृत कर झंकृत कर देता है । हां ! तो उनके अंगों की थिरकन में, लटकन तथा मटकन में हृदय का अनुराग छलका पड़ रहा है । अभी तो देख कर हंसे ही थे परन्तु अब और भी विवश कर दिया । पू. बोबो की ओर देख कर पुन: हंसे और अलाप लेते हुए कुछ गाया । उनका वह मधुर गान ! क्या भरा था उस गान में। एक रसमयी झकोर उठी, रसीली हिलोर उठी, उनके गान से प्रवाहित हुई- हृदय को सरसाने लगी, सरसता के मिस छलके रस कण सन्निकट हो बरसने लगे- उसमें भीजे तन, मन रस में भर गये, सराबोर हो गये । बस- फिर की बात .... ।

इसी वर्ष सन् १९९० में श्री मद्भागवत का आयोजन था, अतः श्री नन्दगांव कुछ दिन ठहर कर श्री ठाकुर जी सहित पू. बोबो श्री वृन्दावन चली आईं। रास पूर्णिमा का उत्सव यमुना तटवर्ती बड़ी कुञ्ज में मनाया गया। रास का उल्लास यमुना तटवर्ती स्थली पर गूंज उठा। विशाल तट पर विश्राम करती चन्द्रिका, प्रिया-प्रियतम और उन्हीं की अभिन्न प्राणा ब्रज ललनाओं के चरण-नूपुर-शिञ्जन को सुन कर चौंकी और सम्हल कर सजग हो गई, विटपों और वल्लरियों से विचार-विमर्ष करने लगी। मन्द मन्द समीरण बहने लगी और स्मरोन्माद से परिव्याप्त यह स्थली अपने उर की पुलकन से सभी को एक भाव विशेष में सराबोर करने लगी। सुदूर नभ में विकसित चन्द्र इन नील चन्द्र की समता न कर सकने के कारण सकुचा दूर ही खड़ा रह गया। ऐसे मादक और हृदय स्पर्शी वातावरण में पूजनीया बोबो ने देखी वह मन हर झांकी, प्रिया-प्रियतम, उस सुरस चांदनी में नहाए से रस मग्न हो परस्पर बातें कर उल्लसित हो रहे हैं। उनमें रस की उमंगें, रास रंग की भंगिमाऐं प्रकट होती जा रही हैं। उन्हीं स्मृतियों के सुख में मग्न हो मत्त हो रहे हैं।

❑❑❑

निश्छल वृत्ति

पूजनीया बोबो की भावना एक ऐसी मर्यादा में पल्लवित हुई, ऐसी सुदृढ़ निष्ठा के आधार पर पोषित हुई तथा सत्व और निष्कपट रूप में विकसित होकर, भगवदाश्रय में ही सर्वदा सत्कृत होती रही, जिससे अपने अनजाने में भी उन्होंने स्वयं को वास्तविकता के विपरीत प्रस्तुत करने की चेष्टा नहीं की, प्रत्युत किसी हंसी-विनोद में भी उनके जीवन में किसी ऐसी घटना का संयोग नहीं हो सका। वे जो थीं- वही कहती थीं। किसी भी छिपाव और दुराव के वे सर्वथा विपरीत रहीं।

वे सदा कहा करती थीं 'कैतव रहित' वृत्ति पर श्याम सुन्दर सहज रीझ स्वयं को सुलभ कर देते हैं। सभी ओर से सिमट कर मन, जब निर्मल भाव और निश्छल वृत्ति से प्रिया-प्रियतम की चरण शरण में स्वयं को समर्पित कर देता है तो माधुर्य का वह अगाध सिन्धु मूर्त हो जाता है। लोकेषणा की प्रवृत्ति एक सात्विक प्रपञ्च का रूप धारण कर साधक के जीवन में इतनी सहज प्रविष्ट होती है जिसकी कल्पना भी कठिन है। प्रतिष्ठा की इस प्रवृत्ति से सर्वथा सजग रहना ही सावधानी है।

'कहनी और रहनी' एक हो इसी आदर्श रहनी और मर्यादा में पोषित हुआ उनका जीवन।

प्रथम भाग

द्वादश अध्याय

पृष्ठ ५०१ से ५४६ तक

नैननि मँह अनुराग रस
सैननि मदिर विलास ।
बैननि मोहन मन्त्र मृदु
अंगनि मैन निवास

कर मंह कर लीन्हें खरे
बंधे मनोभव डोर ।
नयना मधुमद सों भरे
छवि की छलक अथोर ।

अड़तालीस ‖ शारीरिक अस्वस्थता

पूजनीया बोबो की अस्वस्थता का इतिहास बहुत लम्बा है। अस्वस्थता, दुर्बलता तथा अत्यन्त परिमित आहार उस पर भी अपने नित्य कर्म, विद्यालय के कार्य, बाहर के समाजिक कार्य, आध्यात्मिक आयोजन, सत्संग तथा अध्यापन, इसी के साथ-साथ पुस्तक लेखन, शरीर धर्म के अनुसार देखें तो असम्भव ही है, परन्तु उनकी आध्यात्मिक चेतना, प्रिया-प्रियतम पर निर्भरता, उन्हीं की इच्छा जान कर्म करने की सहज भावना तथा सर्वोपरि उनका आत्म बल इतना सशक्त और पुष्ट रहा है कि बड़ी से बड़ी बीमारी, ज्वर का प्रकोप तथा अन्य भीषण रोगों को भी कभी उन्होंने रोग माना ही नहीं ।

वे कहा करती थीं अगर डा. द्वारा परीक्षण कराया जाय तो अनेक भयंकर रोगों से आक्रान्त है यह शरीर परन्तु मेरे सर्व समर्थ स्वामी ने अपनी सहज कृपा द्वारा अपने लिये ही इस शरीर को चला रखा है । श्यामसुन्दर की इच्छा को सहर्ष स्वीकार, उन्हीं से प्राप्त संकेतों के आधार पर वे अपनी जीवन नौका को जल के साथ-साथ तो खेहती ही रहीं उसके विपरीत प्रवाह में भी उतनी ही सहज और सजगता से खेहती रहीं । बड़ी-बड़ी बीमारियों को उन्होंने कुछ समझा ही नहीं । १०५° ज्वर में उन्हें देख कर कोई कह ही नहीं सकता था कि वे बीमार हैं । उनकी स्फूर्ति और स्वभाव में नैसर्गिक उत्फुल्लता को देख कोई कहता ही न था कि वे बीमार हैं । अम्बाले में तो सभी लोग, डाक्टर आदि इनके इस व्यवहार और सजगता को देख अचम्भे में आते ही थे- यहां श्रीधाम में आने के उपरान्त भी अनेक जन इनकी अस्वस्थता का समाचार सुन आते तो देखकर स्तब्ध हो जाया करते । अत्यधिक बीमारी में भी इनका आत्म बल इतना सशक्त दीखता सम्भवत: ऐसा उदाहरण देखने में आया ही न होगा । अपनी उसी स्वाभाविकता से मिलतीं कि इनकी बीमारी का किसी को भी भान ही नहीं होता था । आने वाले सदा कहते अरे तुम्हारे मुख को देख कर बीमार कौन कह सकता है ! इसका कारण था, पू. बोबो अपने प्राण सर्वस्व श्याम सुन्दर के बल भरोसे सदा-सदा निश्चिन्त बनी रहतीं ।' श्याम सुन्दर का विरद था, एक आश्वासन

दे रखा था 'जब चाहे ये ठीक हो सकती हैं' परन्तु स्वस्थ होने के लिये अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग इन्होंने कभी नहीं किया। हां, कभी कभी कुछ समय के लिये स्वस्थ रहें इस प्रकार के अनुबन्ध श्री ठाकुर ने इनके अवश्य निभाए हैं- ये प्राय: कह दिया करती थीं। जो लोग इनके सम्पर्क में यत्किञ्चित् भी आए हैं वे अवश्य ही इस बात से परिचित होंगे। इनकी दृष्टि अत्यधिक कमज़ोर थी- यहां तक कि बहुत मोटा अक्षर भी आसानी से पढ़ नहीं पाती थीं- परन्तु श्री ठाकुर जी की सेवा, शृङ्गार तथा कढ़ाई का काम, सुन्दर से सुन्दर तथा महीन से महीन श्यामा-श्याम के कृपानुग्रह से कर लेती थीं। वे सभी कलाओं में प्रवीण थीं, सभी गुणों से सम्पन्न थीं।

एक बार अम्बाला में, पिताजी ने स्वास्थ्य रक्षा हेतु विश्राम करने की सम्मति दी थी, तभी श्री ठाकुर जी ने कहा था, 'तू लीला चर्चा से व्यर्थ क्यों रोकता है। इनके सुख-दु:ख की चिन्ता मुझे है। महाभारत काल में भीष्म पितामह के शरविद्ध शरीर की वेदना मैं ही तो सहन करता रहा' जब श्यामसुन्दर अपने जनों की चिन्ता यहां तक करते हैं तो स्वयं उसके द्वारा चिन्ता करने से क्या होगा ? वे सदा कहा करती थीं, ''चिन्ता मेरी हरि करें मम चिन्ते का होय'' अत: इसी प्रबल आश्रयवश, कई बार बड़े बड़े रोग, ज्वर, कण्ठ के घाव तथा अन्य रोगों को इन्होंने बड़े ही सहज रूप से भोग लिया था।

नेत्रों के कारण जब कभी चश्मा लगाने की बात चलती वे सदा कहा करतीं 'मेरा सब वहीं से चलता है और यदि तुम लोग यहां का कुछ भी उसमें मिश्रण करोगे तो वहां की कृपा ममता की अनुभूति से वंचित हो जाओगे'- और ऐसा ही हुआ।

सन १९९० के दशक में ही इन्हें मधुमेह नामक रोग ने आक्रान्त कर दिया था। इनके पिता इस रोग से ग्रस्त थे इसी कारण से वंशगत रोग ने इन्हें भी प्रभावित किया। प्रारम्भ में तो किसी प्रकार के परहेज़ और उपचार के पक्ष में इनकी धारणा ही न थी। प्रसाद में इनकी अटूट श्रद्धा थी और उसी से सभी उपचार सहज सम्भव हो जाते हैं- अत: भगवत्प्रसाद उसी भावना से ग्रहण करना चाहिये- इनका जीवन ठीक इसी सिद्धान्त के अनुकूल ढला था।

अपने शरीर से, उसके धर्मों से इनका मन सर्वथा उठा रहता था। वे इस धरातल की थीं ही नहीं- अत: किसी भी ऐसे कृत्य का उन्होंने

कदापि समर्थन नहीं किया। डाक्टरी जांच तथा उपचार करवाने के लिये इन्हें न तो कभी उत्साह ही होता था और न ही किसी भी डाक्टर को अपना शरीर छूने देने के लिये सहमत होतीं। उन्हें पता था, एक ही वैद्य का और वे थे उनके प्राणों के प्राण, जीवन की जीवन्त शक्ति, रसिकेन्द्र मौलि सांवरिया वैद्य। 'म्हारो वैद्य सांवरिया होई' उन्हीं के भरोसे वे सदा निश्चिन्त रहीं। बीमारी में कभी कह भी दिया करती थीं कि 'यह निश्चित है कि मेरी सार सम्हार श्यामा-श्याम कर रहे हैं और करते रहेंगे, यदि कदाचित् कभी ऐसा क्षण आता दीखे और सभी लोग दवाखाने में ले जाने के लिये आग्रह करें तो मुझे वहां न ले जाना मैं यहां श्री ठाकुर जी की सन्निधि में, उन्हीं के सामीप्य में अपने भोग समाप्त करना अपेक्षाकृत ठीक समझती हूँ,' अतः बीमारी की न तो उन्होंने कभी विशेष चर्चा ही की और न कभी चिन्ता ही। इस मधुमेह रोग की रोकथाम का कोई विशेष उपाय उन्होंने नहीं किया। आहार आदि के संयम के अतिरिक्त उन्होंने कुछ भी उपचार नहीं किया। इनका आहार इतना थोड़ा था कि किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती और ऐसे आहार के पश्चात् इतना परिश्रम करना सर्वथा असम्भव ही है। सारे दिन की व्यस्तता, इतना परिश्रम, तिस पर भी आहार के नाम पर मात्र आधी रोटी और अनेक बार इससे भी कम। हां ! प्रसादी चाय अवश्य दो बार ले लेती थीं। फल तथा दूध के नाम पर अत्यन्त सूक्ष्म सा ही।

इसी दशक में इन्हें अनेक रोग हुए। मियादी बुखार, टांगों के भयंकर रोग, मलेरिया ज्वर आदि का तो कहना ही क्या, सिर में असह्य कष्ट, परन्तु इतनी विकट बीमारियों में भी इनका मन कभी म्लान नहीं हुआ और न ही कभी आत्म बल में कमी आई। श्याम सुन्दर की कृपा ममता के भरोसे उन्हीं की कृपा मान सभी रोगों को सहर्ष सहन किया क्योंकि ये जानती थीं कि सभी भोग पूरे भुगतवा, श्याम-सुन्दर इनका कुछ भी बकाया नहीं रखना चाहते- अतः सभी सहज और शान्त भाव से व्यतीत हो गया।

इधर बीमारी जब भी आई, विकट रूप धारण करके आई। कष्ट इन्हें नहीं हुआ- ऐसा भी नहीं। इस कारण शरीर धर्म के अनुसार सभी कठिनाईयां आईं, झेलीं भी परन्तु उस सबमें भी प्रिया-प्रियतम की सेवा-निष्ठा, श्यामा-श्याम पर निर्भरता, अपने सभी कृत्यों में पूर्ण सजगता, प्रिया-प्रियतम की इच्छा जान सहर्ष स्वीकार इनका प्रत्येक क्षण सुखद और रसीली स्मृतियों में तल्लीन रहा। इनके इतने सुदृढ़ विचार और धैर्य को देख इनकी

सहन शीलता की चरम सीमा प्रकट होती रही । इनके सशक्त आत्म बल को देख कैसे कहें कि रोग का इन पर यत्किञ्चित् भी प्रभाव पड़ा । वे सभी रोग इनकी सेवा में उपस्थित हो अपने अपने भोग इनकी सन्निधि में पूरे कर समाप्त हो गए ।

बीमारी की अवस्था में जहां इनका शरीर रुग्ण दीखा वहीं इनका सरस मन, ब्रज में, वृन्दावन में, निकुञ्जों में, वंशीवट पर, यमुना तट पर, सरस स्थलियों में, गिरिगुहाओं में, सरोवर तटीय निकुञ्जों में, वृषभानुपुर की सुखद मनोरम स्थलियों में, गह्वर वन में, सांकरि खोर में, और भी अन्यान्य स्थलियों पर, श्री नन्दग्राम, ललितासर, प्रेम सरोवर आदि स्थलियों पर जन्मोत्सवों की छलकती रस धारा में, वसन्त के उल्लास में, होली की धूम में, ग्रीष्म की सरस सुगन्धित भोर में, सुखद दोपहरी में, सुरमीली सांझ में मग्न हुआ, मत्त हुआ, लीलाओं का आस्वादन करता रहा, उनमें मग्न रहा, लीलाओं का उपकरण बना अपने चिन्मय स्वरूप से प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में रत रहा । अतः यह बीमारियां भी सरस स्मृतियों को लेकर आईं और सुरस सुधियों को इनकी सन्निधि में छोड़ गईं ।

इनकी इन अनुभूतियों को हमने यथा सम्भव और यथा प्रसङ्ग इनके चरित्र में यत्र तत्र गुम्फित करने का प्रयास किया है । कुछ पद्यांशों को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :-

'एक दिना कछु सोचति ठाड़ी,
सघन कुञ्ज वन ओर ।
पाछे ते आ अछन अछन पग,
खींच लई कच डोर ॥'

●

'मोतन निरखि पीत पट झटक्यो,
ठमकि धर्यो पग मृदु मुस्काने ।
मुरली अधर धरि गान मिसान्तर,
मन्त्र पढ्यो सुनि श्रवण लुभाने ॥'

●

'मोतन निरखि सखी ! वे विहंसे,
कछु आन भांति सों मुस्काए ।'

●

निर्जन यह, औचक मिलि जु गए ।
वे नव नागर प्रीतम रसिया ॥'

मीठी चाय लेने का श्री ठाकुर जी का स्नेहाग्रह

पू० बोबो के मीठा छोड़ने के साथ सेव्य स्वरूप युगल सरकार की एक अत्यन्त आत्मीयता पूर्ण घटना जुड़ी है, जिसे देकर मैं पाठकों की निष्ठा-पुष्टि मेंअकारण करुणा वरुणालय श्यामसुन्दर की भावना से अवगत अवश्य कराना चाहता हूँ।

हम पूर्व में कह आए हैं कि श्री ठाकुर जी को भोर में चाय का भोग उत्थापन के समय ही समर्पित किया जाता है क्योंकि इस भोग का निमित्त केवल श्री ठाकुर जी ही होते हैं। उन्हीं की इच्छा और प्रेरणा से यह क्रम अद्यावधि चला आ रहा है। पू. बोबो भी प्रसाद रूप में अवश्य ग्रहण करती रहीं। जब मधुमेह रोग की बात सामने आई तो कुछ बहन-भाईयों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया। पू. बोबो से फीकी चाय लेने का प्रस्ताव किया। उनका स्वभाव बड़ा ही विचित्र था। उन्होंने सहर्ष 'हां' कर दी। चाय आदि का उन्हें कोई व्यसन तो था नहीं। 'व्यसन' शब्द को इनके चरित्र में कहीं ठौर थी तो केवल श्याम सुन्दर के प्रति प्रीति पूर्ण भाव को लेकर ही। उनका अपना जीवन, निश्छल, कांच की भांति पारदर्शी तथा निर्मल था- अतः उन्होंने सहज ही स्वीकार कर लिया। हाथ में गिलास ले, जैसे ही फीकी चाय की घूंट भरने लगीं कि यही सेव्य युगल श्री विग्रह *बड़े ही स्नेह और अपनत्व में भर सिंहासन से उतर चौकी पर आ खड़े हुए और मीठी चाय लेने के लिये आग्रह करने लगे। श्री ठाकुर जी की इस आत्मीयतापूर्ण घटना से इनका मन द्रवित हो गया- इसे टालने का तो प्रश्न ही न था।*

श्रीनाथ जी के दर्शन

श्री नाथ जी ठाकुर स्वरूप ब्रज में विराजमान रहे हैं। उनके बड़े ही अनूठे चरित्र जग विख्यात हैं। पू. बोबो ने अनेक प्रसङ्ग सुने, पढ़े तथा देखे। श्री गिरिराज जाने का एक मुख्य आकर्षण श्रीनाथ जी के दर्शन भी होता था। उनमें पू. बोबो की एक आत्मीयता विशेष रहती। अनेक बार श्रीनाथ द्वारा जाने का कार्यक्रम बना, परन्तु किसी न किसी कारण से टलता ही रहा। बात सितम्बर १९८५ की है कुछ बहन-भाईयों सहित श्री गिरिराज जाने का कार्यक्रम बना, वहां जाकर चन्द्र सरोवर जाने का भी सहसा हो गया। सूरदास जी की भजनस्थली, श्री महाप्रभु जी की बैठक में भी दर्शनार्थ गये। श्री नाथ जी वहां उन दिनों, चित्र रूप में विराजमान थे। पू. बोबो को सहसा श्रीनाथ जी की स्मृति हो आई, देखती हैं श्रीनाथ जी अपनी उसी अलबेली अदा से खड़े मन्त्र मुग्ध कर रहे हैं। उन्होंने ग्रीवा झुका तनिक छेड़ने की सी

मुद्रा में पू. बोबो की ओर देखा तथा मुस्कराने लगे। उनकी मुस्कान माधुरी ने न जाने किस रस का संचार किया कि अन्दर तक आह्लादित हो उठी पू. बोबो, और फिर मुस्कान पाश में फंस किस प्रकार मग्न रहीं– यह कहने की सुधि किसे रही ?

'दोनों ही मद मस्त हुए।'

उसके पश्चात् इन्होंने कहा था कि मेरा अब नाथद्वारा जा श्रीनाथ जी के दर्शन का सङ्कल्प समाप्त हो गया है।

श्रीठाकुर गोकुलनाथ जी के दर्शन

बात अधिक पुरानी नहीं है, विजय वृन्दावन आ चुका था। एक दिन सहसा पू. बोबो ने इन्हीं अपने सेव्य स्वरूप का शृङ्गार करते-करते विजय से कहा, 'गोकुल चलता है' उसने हां तो अवश्य कर दी, साथ-साथ अनेक प्रश्नोत्तरों का समाधान पूछते हुए बोला, "बोबो ! अभी श्री ठाकुर जी का शृङ्गार बाकी है। समय हो गया है। उधर गर्मी के दिनों में राजभोग पश्चात् आरती का समय लगभग साढ़े नौ होता है समय से वहां पहुँचना कैसे होगा?" इन सबका उत्तर दिये बिना ही पू. बोबो ने पूछा, 'तू बता, चलेगा क्या ?' अब बात में कुछ रहस्य सा लगा– और उसने 'हां' कर दी। आज शृङ्गार भी समय से पूर्व हो गया। पू. बोबो और विजय अति शीघ्र मथुरा यमुना पार जहां से गोकुल के लिए बसें मिलती हैं, पहुँच गए। वहां जाकर पूछताछ करने पर भी सभी ने कहा, "दर्शन तो बन्द होने वाले हैं– जब तक वहां पहुँचोगे आरती हो चुकेगी।" विजय तो तटस्थ सा ही रहा परन्तु पू. बोबो का चलने का आग्रह बड़ा ही दृढ़ था।

बस से गोकुल, रिक्शा लेकर गोकुलनाथ जी के मन्दिर पहुँचे। सभी वैष्णव दर्शन करके लौट रहे थे। पुष्टि-मार्गीय सेवा-मर्यादा का स्वरूप भी सभी के सामने प्रकट है। जैसे ही हम लोग वहां पहुँचे, पर्दा डालकर सेवकों ने कहा, 'कर लो दर्शन।' बात तो विचित्र थी परन्तु अपने जनों के लिये श्री ठाकुर जी क्या नहीं कर सकते। उस पर्दे के भीतर पू. बोबो, विजय, वहां के पुजारी (मुखिया जी) तथा अपनी दोनों प्रियाओं सहित श्री गोकुलनाथ जी ही थे। दर्शन करके बाहर आये। विजय ने बोबो से पूछा, तो उन्होंने कहा, श्री वृन्दावन में गोकुलनाथ जी ने गोकुल आने का संकेत किया था और जब यमुना पार बस अड्डे पर पहुंचे तो पुनः सामने ही दिखलाई दिये– कहा 'निश्चिन्त होकर चले आओ, दर्शन हो जावेंगे।' इस प्रकार पू.

बोबो की आवभगत हेतु श्री गोकुल नाथ जी साथ-साथ चलते गए। इस सबमें क्या भावना रही और इससे आगे क्या हुआ- यह कुछ तो विजय जान नहीं सका, परन्तु आश्चर्य पर आश्चर्य उसे अवश्य हो रहा था।

बात अभी यहीं समाप्त न हुई। भण्डारी आया और बुलाकर ले गया रसोई घर (भण्डार) में, एक पत्तल प्रसाद और राज भोग का लड्डू दिया।

कैसा अपनत्व है श्री ठाकुर जी का ! अपने जनों के लिये वे सब कुछ करने को तत्पर रहते हैं।

श्री बांके बिहारी रूप में दर्शन

श्री बांके बिहारी की बांकी छवि ने भावुक भक्तों को, सभी को मोह रखा है, यह बात झलकती है दर्शन हेतु उमड़ते जन समूह को देखकर। पू. बोबो भी अनेक बार दर्शनार्थ जातीं। एक बार, बाईं ओर के वरांडे में ऊपर खड़ी दर्शन कर रही थीं। सहसा देखती हैं कि श्री बिहारी जी अपना श्री विग्रह रूप अन्तर्हित कर अपने निज सांवर किशोर, लावण्य-माधुर्य तथा सुन्दर रूप में अपनी अनुराग पूर्ण चितवन से इन्हें निहार रहे हैं, साथ-साथ बहुत ही सावधानी और सजगता से यह देख रहे हैं कि कोई अन्य इनकी इस छवि को देख तो नहीं रहा है।

पू. बोबो, बिहारी जी की इस छवि का पान कर मत्त हो गई।

श्रीराधा वल्लभजी के दर्शन

होली फाग की धूम का वास्तविक आनन्द तो ब्रज में ही है। यहां पर जन-जन के मन में भरा उत्साह देखते ही बनता है। श्री ठाकुर जी भी इन दिनों अपने भक्तों को अपने नित्य छलकते रस कणों से सिक्त कर देते हैं, रस रंग के मिस अनुराग बरसा, अपने जनों को सरसा देते हैं। एक बार होली के दिनों में पू. बोबो भी श्रीराधावल्लभ जी के दर्शन करने गईं। यह सामने खड़ी थीं कि पिचकारी से पुजारी ने इन पर रंग डाला। यह मन में विचार करने लगीं, पुजारी से रंग क्या डलवाया भला, स्वयं डालें तो बात है। अभी यह वाक्य इनके मन में पूरा भी न हो पाया था कि अपनी अलबेली अदा मदविघूर्णित नेत्रों द्वारा तन-मन सरसाते सामने आ, बोले, ''मैंने ही डलवाया है रंग'' उसके बाद पू. बोबो वहां कुछ देर मग्न खड़ी रह गईं। आश्चर्य यह था कि पुजारी जी रंग डाल रहे थे, परन्तु रंग आस-पास के अन्य भक्तों पर ही गिरता रहा।

विचित्र है प्रेमियों का और उनके प्राणों के सर्वस्व-श्यामा-श्याम का स्वभाव ! क्या कहें, और कैसे ?

नव्वे का दशक धीरे-धीरे अपने में ही सिमट गया। बीमारियों के प्रकोप, उसके प्रभाव से शरीर धीरे-धीरे क्षीण होने लगा। उपचार आदि के नाम पर स्थूल रूप से इन्होंने परहेज़ के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की औषधि का सेवन नहीं किया। दुर्बलता बढ़ती गई। इसमें भी अपने सभी नियमों, श्री ठाकुर सेवा, विनम्रता का महान आदर्श और सभी को पूर्ण रूप से मान देने में सर्वथा सजग रहीं।

१९९१ उपलब्धियां तथा विपरीत परिस्थितियां

शारीरिक अस्वस्थता की आंख-मिचौनी में भीगा-भीगा सा, सकुचाया सा अपने नाम को कलंक रहित रखने की चेष्टा में सिहरा-सिमटा सा वर्ष १९९१ प्रारम्भ हो गया। शारीरिक दुर्बलता, अधिक अवश्य हो गई परन्तु उत्सवों और श्री ठाकुर जी की लीलाओं के उल्लास में भरी पूजनीया बोबो उस समय इस सबको, अपने शरीर तक को भूल जाया करतीं। अनेक बार अपनी अस्वस्थता को कुछ दिन के लिये विश्राम करने का कह अलग कर देतीं तथा उत्सवों में पूर्णतः स्वस्थ, सजग तथा प्रफुल्लित दीखती रहतीं तथा बाद में उस भोग को पूरा करतीं, अथवा क्या होता यह सब तो पूछने का उत्साह कभी नहीं हुआ पर यह बात निर्विवाद है कि उनमें सामर्थ्य थी कि वे अपने भोग को अपने संकल्प से टाल सकती थीं। यह स्थिति साधारणतः सम्भव नहीं हो सकती। मुझे याद आती है, समर्थ गुरु रामदास जी महाराज की। जिस प्रकार अपना ज्वर अपनी गुदड़ी को सौंप, बाबा महाराज स्वस्थ हो गए और गुदड़ी ज्वर से कांपती रही; ठीक ऐसी ही सामर्थ्य पू. बोबो में थीं, जिसे वे कभी कभी श्री ठाकुर-सेवा उत्सव आदि में प्रयोग कर लेती थीं। उनके जीवन में अनेक ऐसे प्रसङ्ग आए, घटनाऐं घटीं, जिस समय उनकी इस स्थिति का प्रकाश होता रहा।

जहां एक ओर उनका शरीर रुग्ण दीखता था वहीं दूसरी ओर उनका मनोबल, उनकी आध्यात्मिक चेतना, मनः स्थिति, तथा भाव राज्य सतत श्यामा-श्याम की सन्निधि में, उनकी लीला में प्रवेश पाकर मग्न होता रहता।

वसन्त के अनुराग में भरी पू. बोबो, प्रिया-प्रियतम संग सखियों के वसन्तोन्माद की झूम में सम्मिलित होती रहीं, होली की धूम का

आस्वादन करती रहीं, रंग बिरंगे वस्त्रों से सज्जित होलिकोत्सव में आनन्द मग्न होती रहीं। गुलाल की धूँधर में मग्न हो पिचकारी के सुरंग रंग में सराबोर होती रहीं। ग्रीष्म की दोपहरी में उशीर निकुञ्जों में, खसखाने की लीला और संध्या में जल केलि-विहार, केलि विलास में मग्न होती रहीं। वर्षा की सुखद फुहारों से भीगी प्रिया-प्रियतम की सतत बरसती नेह रस धारा से आप्लावित होती रहीं। प्रेम का राज्य ही विचित्र है। प्रेमी, प्रेमास्पद के सुख में सुखी रहते हैं, और यही प्रेम की मर्यादा है। प्रेमास्पद इस त्याग को, स्वसुख से रहित भाव को जानते हैं- अत: इस सब से अपने जनों को सदा सर्वदा पुरस्कृत करते रहते हैं, अपने प्रणय पगे आश्वासन देकर-अपनी सुखद स्मृति देकर और अपना सरसीला सामीप्य देकर-यही सब प्रेमियों की जीवन मूरि बना, उनकी युग-युगों की पिपासा का, उनकी प्रिय सामीप्य लालसा का सबल सम्बल रहता है।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

एक-एक कर दिन बीतने के साथ सप्ताह और मास बीतने लगे। अपनी स्वाभाविकता में ऋतुऐं भी बदलती गईं। वर्षा ऋतु की सरसीली फुहारों ने जन जन के मन में उमंग और उल्लास भर दिया। समस्त प्रकृति नहा-धोकर विशेष चेतना में भरी अत्यन्त सजग दीखने लगी। श्रीकृष्ण भक्तों के जीवन धन, प्राणों के प्राण सुकुमार सुन्दर श्री कृष्ण की वर्षगांठ भी आ पहुँची। २ सितम्बर १९९१ का वह दिन अत्यन्त उल्लास लेकर समीप आ रहा था। दो दिन पूर्व पू. बोबो को पक्षाघात का प्रकोप हुआ। एक सितम्बर को श्री यमुना जाते समय पुन: प्रकोप हुआ। अस्पष्टता आई, मुख भी किञ्चित् टेढ़ा हुआ, परन्तु इनका धैर्य, सहन शीलता और कर्मठता के आगे सभी नत मस्तक थे। ऐसी स्थिति में भी श्री यमुना तट तक पैदल गईं। वहां से बिना किसी सहारे के लौट आईं। आसपास के सभी बहन-भाई चिन्तित हो गये, परन्तु इलाज के नाम पर न तो इन्होंने किसी से कुछ कहने ही दिया और न स्वयं कुछ उपाय करने का विचार किया। इस भौतिक शरीर पर रोग का प्रभाव क्या कहें ? सदैव कहती रहीं, "मुझे क्या हुआ है जो तुम लोग इस प्रकार कह रहे हो। ज़रा सोचो तो ! ऐसा रोगी इस प्रकार चल फिर सकता है क्या? "इनकी इस दलील को नकारने का कोई प्रमाण अथवा आधार किसी के पास न था। इधर जब जमुना जी से लौट रही थीं तो साथ में गई सुशीला बहन जी डर गईं, और उन्होंने इनकी ऐसी स्थिति की बात वेणु विनोद कुञ्ज में पू. श्री मनोहरदास जी को कह आने के लिये रिक्शा वाले, कन्हैया को भेज दिया। यह बात भी इन्हें सहन न हुई- अत: अकेली ही सेवा कुञ्ज के सामने से लौटने

लगीं। अभी कुछ दूर चलीं थीं कि श्री मनोहरदास जी, तथा श्री घनश्याम जी ने आकर इन्हें रास्ते में ही रोका तथा बहुत आग्रह पूर्वक रिक्शा में बिठा कर भेजा और कहा, 'श्रद्धेय श्री श्री महाराज जी भी आने को तैयार हो गये थे– हम उन्हें जैसे-तैसे रोक कर आये हैं।' अपनी ऐसी स्थिति में भी जन्माष्टमी के दिन लगभग बारह स्थानों पर श्री ठाकुर जी के दर्शन हेतु गईं। ओह ! ऐसे सुदृढ़ सङ्कल्पयुत व्यक्तित्व को शत शत नमन। ऐसे महान व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष में आश्रय था श्यामा-श्याम का। उन्हीं के बल भरोसे वे निश्चिन्त थीं। श्री कृष्ण जन्माष्टमी को शृङ्गार भी कुछ अस्त व्यस्त सा ही हुआ– परन्तु इन्हें श्री ठाकुर ने अपने दिव्य स्वरूप का ही दर्शन करा यह भान ही नहीं होने दिया। इन्हें ठीक ही दीखता रहा, यही बात ये दोहराती रहीं। श्यामा-श्याम की सतत सन्निधि में मग्न और मत्त पू. बोबो को बाह्य कुछ भी प्रभावित नहीं कर सका। वे कुछ ही दिनों में स्वस्थ सी दीखने लगीं।

श्री जन्माष्टमी का उत्सव, नन्दोत्सव सभी सहर्ष तथा आशंका सी में बीत गया। नीचे लिखी पंक्तियों में उन्होंने अपने हृदय की बात, श्यामा-श्याम की सेवा, निष्ठा, शृङ्गार की सतत पिपासा का ब्योरा तो दिया ही साथ-साथ उन्हीं दिनों की मनः स्थिति उपचार, पथ्य, औषधि और आश्रय के लिये वे कह रही हैं :-

मेरे एक मात्र आधार।
भानुनन्दिनी, नन्द कुमार॥
मेरे हिय यह दृढ़ विश्वास।
रहैं राखिहैं संतत पास॥
सेवा सुख मो जीवन मूर।
नहिं करिहैं सेवा सों दूर॥
होन न दैहैं मो मन म्लान।
नव घन-सुन्दर नेह-निधान॥
उनकी अवलोकन मुस्कान।
पोषित मेरे तन-मन-प्राण॥
करूं, निहारूं नव सिंगार।
मेरो एक यही उपचार॥
औषधि रूप रसासव पान।
पथ्य नाम, लीला रस गान॥
आश्रय श्री वृन्दावन धाम।
संगिनी यमुना ललित ललाम॥ ४.९.९१

❑❑❑

उन्चास

गोवर्द्धन-बरसाना तथा श्रीनन्दगांव यात्रा

समय की गति बड़ी बलवान है। वह कभी रुकता नहीं- सतत, अनवरत गतिमान रहता है। पू. बोबो का स्वास्थ्य क्रमशः सुधरने लगा। श्रीगिरिराज, वृषभानुपुर तथा नन्दग्राम जाने का उनका नियम था ही। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, वृन्दावन में ही मना श्री गिरिराज के लिये प्रस्थान किया। स्वास्थ्य में सुधार तो होने लगा था परन्तु दुर्बलता अभी भी बनी थी- अपने पूर्व कार्यक्रमानुसार श्री ठाकुर जी सहित पू. बोबो श्री गिरिराज पहुँची। साथ में थीं श्री सुशीला बहन जी श्री ओमी भाई तथा विजय।

'श्री गिरिराज की मनोरम तलहटी में एक स्निग्ध शिला पर प्रिया-प्रियतम विराजमान हैं। चारों ओर का दृश्य बड़ा ही मन भावन है। पीछे श्री गिरिराज दीखते बड़े ही भले लग रहे हैं। पवन की किसी सुरभित झकोर से झूम, नीलाम्बर और पीताम्बर परस्पर उलझ रहे हैं, और मोर पिच्छ वेणी से। रस का प्रवाह उछल उछल पड़ रहा है। प्रेमाधिक्य के कारण वे मुग्ध होकर निहार रहे हैं और इधर रसमयी खीझ से सिक्त दृष्टि बौरा रही है। प्रिया जी ने अधरों ही अधरों में न जाने क्या कुछ कहा और प्रियतम हँस कर उमंग में भर बोले, 'एक बार पुनः कहना। नयनों ही नयनों में किसी विलास महोत्सव की सज्जा सजी है और उसमें छाया रहा परिहास का अमित सुख। इन्हीं सुभग नेत्रों में चञ्चल हो अनंग, नृत्य निरत रहा। इस मधुर और मदिर केलि सुधा रस का पान कर, पूजनीया बोबो का हृदय तृप्त नहीं हो रहा, और-और की कामना-सतत पान करने की लालसा पुनः पुनः सजग कर आकुल व्याकुल किये दे रही है।'

हां तो श्री गिरिराज तलहटी में रस मग्न हो गई पू. बोबो, वहां बरसते अमिय सुधारस का पान कर, अपनी सारी बीमारी को तो भूल ही गईं। उनकी अस्वस्थता, शारीरिक दुर्बलता, सभी प्रिया-प्रियतम की प्रीति पूर्ण रस कामना के प्रवाह में कहां विलीन हो गई, उन्हें कुछ भान ही न रहा।

बीमारी पूजनीया बोबो पर कभी हावी नहीं हो सकी।

उनका आत्मबल और आध्यात्मिक अभिनिवेश इतना प्रबल और स्थायी होता कि श्यामा-श्याम का विचार आते ही उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता। उनका ध्यान कर वे उमग जातीं, निरख कर सर्वस्व ही न्योछावर कर, धरोहर रूप में, उन्हीं से रस प्रसाद प्राप्त कर मग्न हो जातीं। कहां वह रोग का प्रकोप और कहां उनके मन की उत्कृष्ट उपलब्धि। दोनों का कहीं सामञ्जस्य ही नहीं है।

वृषभानुपुर आगमन

कुछ समय गिरिराज परिसर में आनन्द ले, पू. बोबो, प्रियाजी का जन्मोत्सव मनाने वृषभानुपुर चली आईं। यहां आकर पूर्व की भांति अपने कार्यों में संलग्न हो गईं। शरीर में दुर्बलता तो थी ही। ऊपर चढ़ना, श्री जी के दर्शन करने जाना अधिक सुरक्षित नहीं लगा। किसी भी वाहन के द्वारा जाने के पक्ष में कभी न होती थीं। सहज कोई संयोग उपस्थित होने पर उन्हें कोई दुराग्रह भी नहीं होता था। उनकी यह धारणा थी कि दर्शन न करने से, इस माध्यम से भी दर्शन कर लेना श्रेष्ठ है। उन्हीं दिनों सहसा श्री राहुल नेविल* को इनकी बीमारी का पता चला। इनका स्वास्थ्य समाचार जानने को वह स्वयं वहीं चला आया तथा यह संयोग सहसा बन गया। गाड़ी छोड़ जाने तक का आग्रह करने लगा- परन्तु पू. बोबो इसके लिये सहमत नहीं हुईं।

प्रिया-प्रियतम के सहज प्रकट सहयोग का अवसर देख पूजनीया बोबो का हृदय द्रवित हो गया और प्रिया-प्रियतम की कृपा ममता का स्मरण कर गद्‌गद् होकर कहने लगीं :-

"मन की सब विधि आस पुरावत-
उनके हृदय मँह नेह न थोर।
पोषत, तोषत परमाश्रय मम
राखत ध्यान सबहिं विधि मोर॥
ममता सींव स्वामिनि मेरी,
प्रेम परावधि नन्द किशोर॥"

स्वास्थ्य तो ख़राब था ही। दुर्बलता भी बढ़ती जा रही थी। चलने-फिरने में कठिनाई होती थी, परन्तु अपने पूर्व के वर्षक्रम में किसी भी प्रकार की शिथिलता करने को इनका मन न होता था। श्री जी के दर्शन

* एक कृपा पात्र

करने का सुयोग कार के माध्यम से हो गया था- अतः ऊपर दर्शन करने गईं। इसी रात्रि श्री राधाष्टमी के उत्सव पर जकार्ता (इन्डोनेशिया) से देहली पहुँच, स्कूटर लेकर जब, शान्तनु रात को दो बजे बरसाने पहुँचा उसकी पीठ थपथपाते हुए बोलीं, "शाबाश ! पर यह हिम्मत और ख़तरा और किसी भी कार्य के लिये न लेना। श्री जी के उत्सव की बात और है- वे स्वयं रक्षा करने वाली हैं।" श्री जी के उत्सव के लिये उन्हें इतना अधिक चाव रहता था कि यदि कोई न आ पाता तो, बेचैन हो जातीं- इसी प्रकार ऊपर रात्रि में रहने के लिये साग्रह भेजतीं, यह कहकर, कि 'श्री जी की दृष्टि में तो आओगे'। उत्सवों को वे साधारण न मानती थीं। इस बार पुनः जब दर्शनार्थ जाना था तो शान्तनु के आने से ऊपर गाड़ी में जाने की सुविधा पुनः प्राप्त हो गई थी।

एक बार गह्वर वन से पैदल ही जाना चाहा, ऐसा कभी नहीं हुआ कि इनका संकल्प कभी अधूरा रह गया हो- धीरे धीरे इतनी दुर्बल होने पर भी पैदल ही चली गईं। वे सांकरि खोर पहुंचने को ही थीं कि इन्होंने देखा और अपने संग चल रही श्री सुशीला बहन जी को सम्बोधन कर दिखलाती हुई कहने लगीं :-

"सखी ! देख सामने सांकरि खोर की सुचिक्कण शिलाओं पर श्याम सुन्दर नव किशोर खड़े हैं। तू देख रही है न ! हमारी ओर देख कर विशेष भाव में भर वे कुछ कह रहे हैं और मुस्करा रहे हैं, कुछ हमारी ही ओर संकेत भी कर रहे हैं। उनके अंग प्रत्यंग से स्वच्छन्द और मुक्त रूप से छवि छलकी पड़ रही है। हमारे मन, प्राणों में रस का संचार कर रहे हैं- मन स्वतः ही किसी रस विशेष में मग्न हुआ जा रहा है। अहा ! अहा .... देख न सखी ! उन्होंने अपने अरुणिम अधरों पर मुरलिका सुशोभित कर रखी है। बड़े ही नवीन ढंग से मुरली में स्वर भर रहे हैं। नयनों की पुतलियां किसी रस विशेष में भरी, मादक संकेतों द्वारा प्राणों को स्पन्दित कर रही हैं। उनके कुंचित घुंघराले केशों में स्वर्णिम मिश्रित पीत कलिका शोभायमान है और उनकी घुंघराली कच लट बलखाती भाल पर आ रही है, मानों भ्रमर का छौना मुख कमल पर छा अधर कलिकाओं से रस याचना वश झुका चला आ रहा है। उनका पीत पट, झकोरों से लहरा लहरा कर, ब्रज वनिताओं में स्पृहा जगा रहा है सखी, कैसा सौभाग्य शाली है यह। नित्य ही लहरा लहरा कर उनके श्री अंगों में लग लिपट, रस पान कर हममें स्पृहा का संचार कर रहा है। देख सखी ! तू देख रही है न ! देख सामने देख- प्रियतम- अहा- अहा- अहा।"

गह्वर वन, सांकरि खोर, जिन-जिन स्थलियों का दर्शनकर रही हैं, श्याम सुन्दर अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्री राधा तथा उन्हीं की काय

व्यूह स्वरूपा इन ब्रज बालाओं के साथ, रस रंग में, रंग अनङ्ग, में, केलि विहार में मग्न हैं और अपने जनों को, निज जनों को उस सुख से आप्लावित किये दे रहे हैं।

पूज्या बोबो की दुर्बलता बढ़ती जा रही थी। श्री जी के दर्शन करने जाने के लिये गाड़ी की व्यवस्था एक बार हो चुकी थी। इस बार प्रयास करने पर भी सम्भव नहीं हो पाया। लगभग २०० सीढ़ी की चढ़ाई पैदल जाकर ही दर्शन कर आईं। सभी प्रसन्नता से भर गए। कुंवरि किशोरी का इन्हें भरोसा था। उन्हीं के सहारे निश्चिन्त होकर चली गईं और सुगमता से दर्शन कर आईं। *बाद में जब इनसे पूछा, कि तुम्हें कोई कष्ट तो नही हुआ। बड़े ही सहज भाव से इन्होंने कहा, ''जब घर पर यह चर्चा चल रही थी, तो करुणामयी किशोरी अपने भवन के प्राङ्गण में, (हल्की आसमानी रँग की साड़ी पहने जो दूर से ही झमझमा रही थी) खड़ी हो ऊपर चले आने का संकेत करती दीखीं। मैं तो निश्चिन्त हो गई थी। यदि शरीर की ओर देखूं तो निश्चित ही इस प्रकार का भार वहन करने के योग्य कदापि नहीं रहा। परन्तु किसी के बलिष्ठ भुज द्वय का सुदृढ़ आश्रय असम्भव को भी सम्भव बना सकता है।''*

यात्रा क्रम का तीसरा और अन्तिम पड़ाव था श्रीनन्दगांव, अपना गांव; श्री नन्दराय जी की निवास स्थली, नन्दनन्दन का अत्यन्त प्रिय ग्राम। अहा-अहा यही है अपना मनभावना गांव। इसी के लिये आकुल-व्याकुल हुईं पू. बोबो कहने लगीं, 'चल री चल नन्द गांव चलें, जहं मनहर नन्दलाल मिलें' उन्हीं से मिलने चली आईं पूजनीया बोबो भी। इनकी अगवानी में प्रतीक्षातुर श्याम सुन्दर, दाऊ भैया के साथ, अपने भवन की छतरी पर आ खड़े हुए और 'अचक हाथ को झाला दै दै' बुलाने लगे। उन्हीं के रस इंगितों को पा-एक आत्म विश्वास में भरी, रस में मग्न हुईं, पूजनीया बोबो, अनायास ही, श्री नन्दगांव में ऊपर दर्शन करने चली गईं- लौट कर इन्होंने सहज ही कहा था, ''श्याम सुन्दर, भैया बलराम जी सहित खड़े ऊपर छतरी से चले आने का संकेत कर रहे थे अतः मैं निश्चिन्त होकर चली गई।''

ऐसे प्रत्यक्ष और पग पग पर श्यामा-श्याम के स्नेह भरे, प्यार भरे और प्रणय पगे आश्वासनों को पा, आश्वस्त हुई पूजनीया बोबो के व्यक्तित्त्व के विषय में क्या कह कर स्पष्ट करें। जहां क्षण-प्रतिक्षण, श्यामा-श्याम से, उनकी माधुरी से जुड़ा हो; जहां प्रत्येक भावना और कामना का रसीला सत्कार हो रहा हो, वहां किस परिस्थिति और समय का वर्णन कर अलग से दर्शाएं। जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण इस जगत में तथा उसी समय

वहां श्यामा-श्याम की सन्निधि में निरन्तर, मग्न और मत्त हो- वही सब उनकी चाल में, उनकी ढाल में, उनके स्वभाव में है उनकी वाणी में, उनकी लेखनी में सम्पूर्ण रूप से उनमें समाया हुआ छलक रहा हो फिर क्या कहें और कैसे किसी इयत्ता में बांध उनके जीवन के मुक्त और सतत प्रवाह को सीमित कर दें ? इसी आशा अभिलाषा के साफल्य से राग में भर कह रही हैं :-

सबहिं भांति राख्यो मेरो मन ।
पंगु गिरि चढ़ै नेक कृपा बल,
प्रकट दिखायो यह अपनो पन ॥
दूर करी म्लानता सारी,
प्रिया स्वामिनी पिय जीवन धन ।
सदा सम्हारत, कर दै राखत
या ही बल पै रहौं मगन मन ॥
निज जन संग दयौ करुणा कर,
'अपनी' मानत रसिक सन्त जन ।
देखे बिना योग्यता रञ्चक,
राखत स्नेह अरु कृपा-अकारनु ॥ ४/१०/९१

इतना ही नहीं अभी अभी पूजनीया बोबो ने देखा :-

"हाथ में एक पुष्पित डाल लिये श्याम सुन्दर चले आ रहे हैं । ग्रीवा झुका कभी कभी पीछे को मुड़ कर देख भी लेते हैं । उनकी केशावली बिथुर रही है- परन्तु हँसते मुस्कराते, बीच-बीच में ठुमका लगाते, प्रसन्न होते, अकेले ही चले आ रहे हैं । उनका हासमुख पर छलका पड़ रहा है- उनके नयनों में मद भरा है, मनोहारी सघन पलकें बरबस ही चित्त को चुराये ले रही हैं- अहा ! उन्होंने कमल पुष्पों की माला धारण कर रखी है। कमल पुष्पों की नीलिमा श्याम सुन्दर की श्यामलोज्ज्वल रूप माधुरी के आगे तिरस्कृत सी हुई मुख नीचे कर संकोच में भरी जा रही है । उनकी भृकुटी कुटिल अवश्य है- परन्तु नेत्रों से रस रंग पगे संकेत कर रहे हैं- सम्भवतः भृकुटि की कुटिलता, किसी निगूढ़ भाव का संकेत भी कर रही है । उन्हें देख लगता है- हमारे प्राणों के प्रतिपाल नवीनतम अनंग का सा वेष धारण कर हमारे मन मन्थन करते, सामीप्य की स्पृहा लगाते- ओह ! कैसी है मनो मुग्धकारी उनकी छवि राशि .... रस से सिक्त हैं, रस से पूर्ण है हां, हां रस से ओत प्रोत हो रही है- माधुरी का प्रसार कर रही है ।

श्री नन्दग्राम की मनोरम स्थलियों का दर्शन/आस्वादन कर पूजनीया बोबो श्री वृन्दावन चली आईं ।

पूजनीया बोबो की शारीरिक दुर्बलता तो दृष्टिगोचर अवश्य होती थी- अपेक्षाकृत कुछ अशक्त भी दीखने लगी थीं परन्तु- इन शरीर धर्मों को न तो उन्होंने कभी महत्व ही दिया और न कभी इस कारण से उनके मन में म्लानता आई। श्री ठाकुर जी की सेवा, उनका शृंगार, उनका भोग राग- और चर्चा जहां एक ओर उनके जीवन का अभिन्न अंग थी- वहीं उनका मन- उनका तन और उनका यह वपु प्रत्येक क्षण प्रत्येक निमिष प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में उनकी लीला में रत रहता। उनका एक तन तो भौतिक रूप से सभी के लिये प्रत्येक समय सुलभ था ही और वे अपने दिव्य वपु से, चिन्मय देह से श्यामा-श्याम की लीला का आस्वादन निरन्तर करती रहीं। वे उन्हीं के साथ-साथ उन्हीं की रसमयी लीलाओं में रत मग्न होती रहीं।

एक स्थान पर इन्होंने देखा 'एक सांवरी सखी ने आ, प्रिया जी का मंजुल कर अपने कर में ले लिया और बोली, "सखी ! चल उस सामने के कदम्ब वृक्ष के वाम पार्श्व स्थित नव निकुञ्ज में चल न ! प्रियतम श्याम सुन्दर ने, अपने ही करों से, मृदुल पुष्प पंखड़ियों से, उस नव निकुञ्ज को सज्जित किया है।" इधर प्रिया जी ने स्नेह और सशंकित सी दृष्टि से उस सांवरी सखी की ओर देखा, हँस कर अपना आंचल सम्हालने लगीं। जब नेत्र परस्पर मिले तो दोनों ओर ही नवानुराग उमड़ पड़ा और दोनों ही किशोरी और सांवरी सखी वेषधारी श्याम सुन्दर उस निकुञ्ज की ओर चल दिये- फिर क्या हुआ उस स्थली में चलकर ही देखना होगा- अथवा किन्हीं रसपगी महाभागा का अनुकरण कर यत्किञ्चित् अता पता पा सकेंगे।"

श्री नन्दग्राम से श्रीठाकुर जी सहित पू. बोबो, श्री सुशीला बहन जी तथा विजय सहित वृन्दावन में निर्मल गुप्ता के यहां पधारीं। पू. बोबो का अमित, अगाध लाड़ पा उसी स्नेह में भीजी-भीजी निर्मल, श्री ठाकुर जी सहित अपने घर पधारने के लिये आग्रह करती रही थी। एक ओर पू. बोबो के अध्यापन के नाते समीप हुई विमला शर्मा तथा निर्मला शर्मा अत्यन्त आत्मीयता वश श्रद्धा और समर्पण तथा दूसरी ओर वात्सल्य स्नेह प्रदान करती पू. बोबो श्री ठाकुर जी सहित, दोनों बहनों के यहां भी थोड़े-थोड़े दिनों के लिये गईं। दीपावली का उत्सव निर्मल गुप्ता के यहां मना कर गोविन्द घाट पर, रासमण्डल समीपस्थ राधावल्लभीय स्थान पर जहां एक बहन सन्तोष नारंग रहती हैं, उसे बरसाने में ही यमुना जी के निकट कमरा खोज तय कर लेने को कह दिया था, अपनी पूर्व परिचित दिव्य स्थली में स्थायी रूप से वास करने के लक्ष्य से चली आईं थीं।

उसी दिन उनका मन सुख में भर गया। उन्होंने देखा :-

"नवल निकुञ्ज में रंगीले-प्रिया-प्रियतम विराजमान हो गये। हाथ में गुलाब का फूल लिये उसकी भीनी गन्ध से मत्त परस्पर कुछ रसीली चर्चा भी करते जा रहे हैं। प्रिया जी की सुकोमल बाहु प्रियतम सहला रहे हैं। और पुलकित हो रहे हैं। धीरे से उनके कर्णों में कुछ कह कर प्रियतम चपल हो गये। परस्पर एक दूसरे को निहार रहे हैं नयनों से नेह झर रहा है। किसी भाव में भरी प्रिया जी रोमाञ्चित हो गईं और नेत्र बन्द कर लिये। प्रेमावेग में भरे प्रियतम क्षण भरके लिये भी ओट सहन न कर सके। उसी समय उन्होंने प्रियाजी के मुख पर फूंक दे उन्हें सजग कर दिया। प्रियाजी ने सचेत हो उसी क्षण अपने नेत्र खोल लिये।" इस रूप माधुरी को निहार उन्हीं भावनाओं में भरी खोई-खोई सी पूजनीया बोबो वहीं निवास करने लगीं।

यमुना तट से, आते-मुस्कराते प्रिया-प्रियतम को देखतीं, कभी विटप तर किसी भाव में निमग्न देख प्रफुल्लित हो उठतीं, कभी परस्पर छेड़-छाड़ में रत देखतीं और वहीं जुड़ आती, सखी समूह की भीर और गतिमान हो जाता रस रंगका मुक्त प्रवाह, उसी आस्वादन में मग्न हो जातीं पू. बोबो।

आज की बात और ही रस बरसाने, सरसाने लगी। कुछ सखियां पुष्प चयन कर लाईं। उन्हें थालियों में बड़े ही सरस ढंग से सजाया। प्रिया-प्रियतम के सामने कुछ दूरी पर रख दिया। दोनों ही उन्हें देख कर बड़े ही प्रफुल्लित होने लगे। पीले तथा श्वेत पुष्पों की मालाऐं उन्होंने कक्ष द्वार तथा वातायन पर लटका दीं और उन्हीं के बीचों बीच एक एक लड़ी गुलाब की लटका दी जो अत्यन्त मनोहर दीख रही थी। उन पुष्पों की मन्द और मधुर सुगन्ध ने अनेक भावानुभावों का सृजन कर युगल को विभिन्न भावों से आलोड़ित कर दिया। दोनों के नेत्र और-और सरस हो गए। दोनों ही परस्पर रस में मग्न से शय्या से उठ कर बैठ गये। उसी भाव में भर रसाविष्ट युगल ने सखियों की ओर देखा। उनकी उस अनुराग पूर्ण दृष्टि से सभी सखियां रस में मग्न हो गईं।

पूजनीया बोबो बीमार रहीं। लम्बे-लम्बे अरसे की अस्वस्थता, कई-कई बार ज्वर का प्रकोप भी हुआ, यह सब, शरीर धर्म के अनुसार प्रभावित भी करते रहे होंगे, यह तो निर्विवाद है, परन्तु उनका आत्म बल इतना पुष्ट और ठोस रहा कि इनके संकल्प के सामने उसका कुछ विशेष

प्रभाव इनके जीवन में नहीं दीखा। विश्राम आदि का स्वभाव इन्हें था ही नहीं बीमारी कभी इन पर हावी नहीं हो सकी। इनके स्वभाव के सामने सदैव उसका प्रच्छन्न स्वरूप ही सबके सामने प्रकट हुआ।

एक ओर तो बीमारी में इनका आत्म बल सशक्त रहा और सर्वोपरि प्रिया-प्रियतम की चर्चा में, उनकी लीलाओं में मग्न पू. बोबो का अध्यात्म और लीला रसास्वादन, कभी भी बीमारियों के अथवा उसके बाद के प्रभाव से म्लान नहीं हुआ। वे सदा सदा लीलाओं में मग्न, मत्त हुई उसी नवीन उत्साह और संलग्नता में रत दीखती रहीं।

❑❑❑
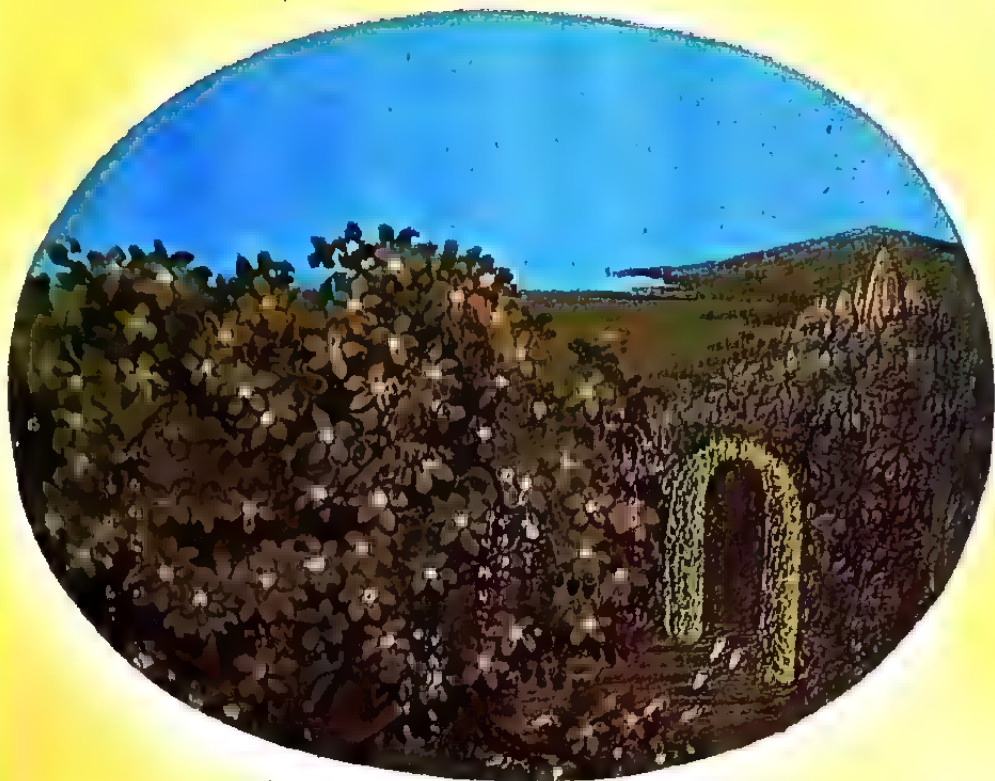
निकुंज प्रवेश

सखि! हौं सुरंग चूनरी पहरौंगी।
लाल रंग लालहिं अति भावै
या ते यह सिंगार करौंगी।
निकसि कुंज ते लाल कह्यो हंसि
हौं जु लाल कहु, इनहिं वरौंगी।
इन ही सौं करि गात विभूषित
अपने उर करि हार धरौंगी।
सुनि सखि बोली बात रसीली
हौं या छवि निज दृगनि भरौंगी।
कह्यो लाड़िली, सुन सखि तो पै
लाल समेत सहेत ढरौंगी।

पचास ‖ निकुञ्ज प्रवेश

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं ब्रजमथो करवाम किं वा ॥ ***

(श्रीमद्भा० १०/२९/३४

जिसकी इच्छा से भूतल पर प्रादुर्भाव हुआ था आज उसी ने बरबस चित्त को चुरा लिया । इतर सभी बन्धनों को शेष कर दिया । जिस हेतु से आगमन हुआ था, उसकी परिसीमा हो गई । इस जगत का कार्य शेष हो गया । जिस जिस कलिका को चुनना था, सिक्त-सिंचित कर अपनी सन्निधि में ले लिया, उन्मुख कर लिया । जिसे माध्यम बना इस जगत में भेजा था, उसका कार्य भी शेष हो गया । श्याम सुन्दर ने अपनी उसी रसीली, मधुर सन्निधि के लिये आह्वान किया, रुकने का प्रश्न ही क्योंकर होता ? वहां तो चलना ही चलना है– बस एक बार घूम कर देखना भर है– श्याम सुन्दर की सरस आश्रय स्थली–सम्पूर्ण उत्सुकता से सज्जित हुई प्रतीक्षारत है । अत: जाने के लिये इससे अधिक सुखकर स्थान ही और कौन सा है ? इस जगत से उठ उस नित्य धाम, नित्य लीला में सम्मिलित होने का संकेत मिला– आकुल–व्याकुलता वहीं जाकर उसी सन्निधि सुख का आस्वादन कर विश्राम पा गई ।

श्याम सुन्दर की मुरली बजी, एक ही भावापन्न, एक ही मन होने पर सभी व्यग्रता पूर्वक धावित हुईं एक दूसरी को न किसी को पुकारने का समय था और न ही इस प्रकार का कोई विचार ही आया । अपने शृङ्गार तक की सुधि न रही, इतर सभी कुछ विस्मृत हो गया । एक ही लक्ष्य, एक ही उद्देश्य और एक ही इच्छा– श्याम सुन्दर से मिलने की व्यग्र लालसा

*** हे प्रियतम ! हमारा चित्त आनन्द से घर के कामों में आसक्त हो रहा था, उसे तुमने चुरा लिया । हमारे हाथ घर के कामों में लगे थे, वे भी चेष्टा हीन हो गये और हमारे पैर भी तुम्हारे पाद पद्मों को छोड़कर एक पग भी हटना नहीं चाहते । अब हम घर कैसे जाएँ और जाकर क्या करें ? अर्थात् तुम्हारी ही सन्निधि में रहना चाहती हैं ।

लिये वे महाभागाऐं, वंशी ध्वनि का अनुसरण करती हुईं अस्त-व्यस्त वस्त्राभरण धारण कर धावित हुईं- क्योंकि लक्ष्य वही था। उन्होंने पुकारा था- उनके रसमय संकेतों का अनुगमन ही रागानुगा भक्ति की सर्वोच्च स्थिति है- अतः उन्हीं के अनुगामी महज्जन इसके अतिरिक्त कुछ सोचेंगे ही क्यों कर ?

हां ! तो वर्षा के सुखद और मनोरम दिवस शरद् की गुलाबी ठंड में बदल गये। हल्की-हल्की ठंड अत्यन्त सुहावनी लगने लगी थी, परन्तु यह भी स्थायी न रहा। जल्दी ही शरद को, पैनी बयार ने बरबस ही निर्वासित कर, अपना प्रभुत्व जमा लिया। एक-एक दिन कर, अपनी सभी उपलब्धियों और विपरीत परिस्थितियों को समेटे वर्ष १९९१ भी बीत गया। ऋतुओं के क्रम पुनरावृत्ति कर एक बार पुनः बदल गए। शिशिर की भोर के साथ-साथ प्रारम्भ हुआ सन् १९९२ का वर्ष। सन्तों के जीवन में सुख और दु:ख, चक्र के अरे के समान कोई विशेष महत्व नहीं रखते। उनके दोनों ही हाथों में मोदक रहते हैं यहां इस लोक में रहकर श्यामा-श्याम की स्मृति और लीला चर्चा मूर्त हो उन्हें आप्लावित करती रहती है और उनके नित्य धाम में जाकर उनकी सतत सन्निधि और लीला का आस्वादन उन्हें सहज सुलभ रहता है, अतः जो भी हानि अथवा अभाव होता है वह सर्वथा समाज तथा साधक वर्ग का ही होता है, इसी वर्ष ने अनेक बड़े-बड़े सिद्ध महानुभावों को समाज से छीन लिया, साधकों के लिये न पूरा होने वाला अभाव प्रस्तुत कर दिया। कराल काल से युत भासते इस वर्ष को कौन क्षमा करेगा भला ? ओह ! जिन महज्जनों के लिये हम सर्वथा लालायित बने रहते हैं, उनके मुख से निसृत वाणी को बड़ी सजगता से श्रवणरन्ध्रों से पान कर अपने हृदय का भूषण बना जीवन को सजाते हैं, जिनके सतत सामीप्य की लालसा हमें प्रतिक्षण उद्वेलित करती रहती है, जिनके अभाव का विचार भी सालता है, जिन अपने प्राणों की निधि को, समर्पण सहित अपने प्राणों से सींचते हैं- हाय रे विडम्बना? उन्हीं अपने स्वजनों को, श्रद्धास्पद महानुभावों को, अपने सामने ही देखते देखते विदा कर देते हैं। नियति के इस विधान को क्या कहें? एक आशा और विश्वास संजोए, जीवन यापन करते हैं। ''सन्तों की कभी अनुपस्थिति नहीं होती, उनका कभी अभाव नहीं होता। वे सदैव बने रहते हैं। अपने जनों को समय समय पर परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में आश्वासन देते हैं, स्वयं को उपलब्ध कराते हैं। यह सम्बल, सम्बल बना रहता है।

पू. बोबो का दैहिक स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था।

दुर्बलता बढ़ रही थी। मधुमेह का प्रकोप तो था ही, साथ साथ हृदय रोग भी उभर आया। शीत का प्रकोप बढ़ने लगा। इस रुग्णता में जहां एक ओर उनका शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था वहीं दूसरी ओर उनका आत्मबल उतना ही सशक्त दीखने लगा था। डाक्टरी जांच आदि के प्रति वे सर्वदा उदासीन ही रहीं।

रोग आदि सन्तों के लिये विशेष महत्व नहीं रखते। उनके स्वयं के भोग और संस्कार का तो कष्ट ही क्या होगा ? शरीर जाने के लिये किसी न किसी क्रम से, किसी न किसी कारण का निमित्त बनता ही है और वह निमित्त भी उनका अभीप्सित तो होता ही है- साथ-साथ श्रेयस्कर भी। सन्तों को वह निधि रूप में ही प्राप्त होता है। उसी का सहारा ले महज्जन अपने अभीष्ट की प्राप्ति कर लेते हैं, अपने गन्तव्य पर जा विराजते हैं, उस सर्वोत्कृष्ट फल को प्राप्त कर लेते हैं, जिसके लिये जीवन धारण किया होता है, अपने प्राणधन श्यामा-श्याम की सतत सन्निधि में विश्राम पाते हैं- अतः यही सब पूर्णतः चरितार्थ हो रहा था पू. बोबो के जीवन में।

इतनी रुग्णावस्था में भी सर्वथा सजग और सोत्साह श्री ठाकुर जी की सेवा, उनका शृङ्गार बनाना, अष्ट प्रहर सेवा तथा भोग राग व्यवस्था में तत्परता के साथ-साथ अपने सभी नियमों को पूर्ववत् निबाह रही थीं। धीरे-धीरे शरीर कुछ अधिक अशक्त होने लगा- सभी ने उनसे डाक्टरी जांच और उपचार का प्रस्ताव पुनः दृढ़ता से रखा। इससे पूर्व भी कई बार आग्रह कर ही चुके थे। इस बार विचित्र बात यह हुई कि इस प्रस्ताव का उन्होंने उतनी दृढ़ता पूर्वक विरोध अवश्य नहीं किया। अन्यमनस्क मन से वे मान तो गईं- उनका यह मानना ही उनकी प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल लगा। प्रकट रूप से उनका शरीर सम्बन्धी यह अन्तिम योगदान था। मन से वे पूर्णतः तटस्थ हो ही चुकी थीं।

सन्तों के चरित्र बड़े ही विलक्षण होते हैं। श्री राम कृष्ण परमहंस देव से नरेन्द्र ने एक बार कहा, आप मां से कहते क्यों नहीं कि आपको ठीक कर दे। रामकृष्ण परमहंस जी का उत्तर था :-

Sri Ramkrishna : Do you think that I have been under going this suffering voluntarily ? I do wish to recover. But how is that possible ? It all depends upon the Mother."

Narendra : Then Please pray to her for your recovery. She cannot but listen to you.''

Sri Ram Krishan : It is easy for you to say so, but such words I can never utter.'' ***

संतों का चरित्र भगवदिच्छा पर ही निर्भर करता है वे स्वयं संकल्प विकल्प से रहित होते हैं । अतः परमहंस जी का मन शरीर के प्रति सर्वथा अनासक्त था । उनका मन इस धरातल से सर्वथा उठा रहता था । शरीर के रहने अथवा न रहने में उनका सम भाव था ।

पू. बोबो अस्वस्थ सी चल ही रही थीं । एक बार नित्य की भांति जब वे दोपहर में अपने एकान्त हेतु गईं तो श्री ठाकुर जी की आवाज़ सुनाई दी *''ठीक हो जाएगा, अपनी इच्छा शक्ति से काम लो ।''*

उक्त घटना जब उन्होंने श्री सुशीला बहन जी को सुनाई तो कहा था, 'मेरे ठाकुर का काम ठीक से चलना चाहिये । जैसे वे चाहें रखें। इच्छा शक्ति का उपयोग क्या शरीर रोग दूर करने के लिये करूँ ?'

× × ×

महर्षि रमण की बांह की शल्य चिकित्सा हेतु उनके शिष्यों ने जब प्रस्ताव रखा तो उन्होंने अनासक्त मन से कहा था,' जिस पत्तल में भोजन कर लिया, उसे चाहे टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दो अथवा समूचा ही फेंक दो ।'

शरीर से भगवत्प्राप्ति का हेतु तो पूरा हो ही चुका था– अब तो जैसे चाहे ले जावें ।

× × ×

इसी प्रकार स्वामी शिवानन्द जी महाराज मधुमेह के रोगी होने पर भी भक्तों द्वारा अर्पित की जाती सामग्री अवश्य आरोगते ही थे । शरीर रक्षण के लिये जगत में व्याप्त उस अखण्ड सत्ता का तिरस्कार कैसे करते?

× × ×

इधर स्वामी शरणानन्द जी महाराज को सात बार जल्दी जल्दी Heart Attack हो चुका था । सभी डाक्टरों ने किसी से भी न मिलने

*** श्रीरामकृष्ण क्या तुम सोचते हो कि मैं स्वेच्छा से इस बीमारी को भोग रहा हूँ ? मैं चाहता हूँ कि ठीक हो जाऊं । परन्तु यह कैसे सम्भव है, सभी कुछ मां पर ही निर्भर करता है । नरेन्द्र ! कृपया अपने ठीक होने के लिये मां से कहिये वे अवश्य सुनेंगी । श्री रामकृष्ण तुम्हारे लिये ऐसा कहना बड़ा सुगम है परन्तु ऐसे शब्द मैं अपने मुख से उच्चारण नहीं कर सकता ।

देने तथा विश्राम करने का ही परामर्श दिया था, परन्तु स्वामी जी महाराज भला यह सब किस प्रकार सहन करते, वे पूर्ववत् सभी आने वालों से, जिनका उन्हें पता चलता, मिलते रहे । शरीर अपने धर्म के अनुसार एक दिन जाने ही वाला है अतः आने वालों के मन को क्यों दुखाऊं ?

उधर जहां सन्तों का अपनी इस भौतिक देह के रहने, न रहने में एक समभाव बना रहता है– अपनी देह की वे चिन्ता ही नहीं करते, वहीं अपने इस शरीर रक्षण हेतु उनका कोई संकल्प विकल्प भी नहीं रहता। श्यामा–श्याम का संकेत मिल रहा हो– वे ले जाना चाह रहे हों, सन्त जन कैसे उसका प्रतिरोध कर सकते हैं । अपने प्रेमास्पद से संकेत पा, उनकी सतत सन्निधि हेतु वे तत्पर बने रहते हैं ।

× × ×

श्री यामुनाचार्य जी का चरित्र भी बड़ा ही विचित्र रहा । श्री रङ्गनाथ जी की सेवा में उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया था । अब उनका पञ्च भौतिक शरीर शिथिल होने लगा तथा वे रुग्ण भी रहने लगे थे । सभी वैष्णव महानुभावों से परामर्श कर अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने की बात, उनकी सोच का विषय बन गई थी ।

इधर यामुन मुनि जी जब सेवा में उपस्थित हुए तो भगवान ने कहा "अब आप मेरे नित्य धाम को चले आइये ।" उन्होंने कहा, 'प्रभो। इतनी जल्दी क्या है, कुछ दिन और सेवा में रहने दीजिये ।' भगवान ने कहा, "मुझे आपके बिना अच्छा नहीं लगता ।" इस पर भी उत्तराधिकारी नियुक्त करने के विचार से आठ दिन के लिये यामुन मुनि ने अतिरिक्त समय के लिये प्रार्थना की । भगवान ने पहले तो मना कर दिया, परन्तु पीछे स्वीकृति दे दी । इधर श्री रामानुज जी अभी श्री रङ्गम् पहुंच भी न पाए थे कि यामुन मुनि को भगवान अपनी सन्निधि में ले गए ।

भगवान ने स्वयं ही रामानुज जी को उत्तराधिकारी नियुक्त कर लेने हेतु अतिरिक्त समय प्रदान किया था – परन्तु 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्' भगवान सर्व समर्थ हैं । विभिन्न धर्मों के आश्रय हैं, अपनी इच्छानुसार पहले ही यामुन मुनि को अपनी सन्निधि में ले गए । इस घटना को आप किस श्रेणी में रखेंगे ? अतः भगवान की इच्छा सर्वोपरि है– वे चाहे जैसे करें, रखना चाहें तो रखें अन्यथा अपनी सन्निधि में ले जावें ।

× × ×

उधर स्वामी योगनन्द जी महाराज, जिस समय अमेरिका में थे– उन्होंने किसी विशेष स्थान पर प्रवचन देने की स्वीकृति दे दी थी– सभी सुनिश्चित हो गया था– परन्तु भगवद्विधान कुछ अलग ही था। सुनिश्चित तिथि से कुछ दिवस पहले ही Los Angeles, California U.S.A. में प्रवचन करने के तुरन्त बाद वे महासमाधि में चले गए। इसमें उन महात्माओं के किसी भी संकल्प की अवमानना अथवा अक्षमता का प्रश्न नहीं है। भगवदिच्छा को ही सर्वोपरि मान, वे समर्पित रहते हैं, पूरी तरह*।

× × ×

पिछले दिनों श्रद्धेय श्री राधा बाबा ने अपने अत्यन्त आत्मीय स्वजनों से दृढ़तापूर्वक कहा था, अमुक तिथि को, इसी देह से, इसी रूप में निश्चित ही उपस्थित रहूँगा। परन्तु भगवान की इच्छा कुछ भिन्न ही थी। कुछ ही समय बाद परम पूज्य बाबा श्यामा–श्याम की सन्निधि में चले गए। इसमें न तो श्री राधा बाबा का कोई व्यक्तिगत संकल्प ही था और न ही वे स्वजनों को किसी प्रकार से वंचित ही करना चाहते थे। उनकी वाणी तथा संकल्प अकाट्य ही था। वे परम सिद्ध संत थे– अतः किसी भी प्रकार से उनके संकल्प अन्यथा नहीं हो सकते, परन्तु इसके साथ–साथ सर्वोपरि इच्छा तो श्यामसुन्दर की ही होती है। प्रिया–प्रियतम जब, जिस किसी को अपनी सन्निधि में लेने का संकेत दे देते हों तो कोई भी व्यक्ति प्रतिरोध कर ही कैसे सकेगा ? जिस वस्तु की प्राप्ति हेतु जीवन मिला था, प्राप्त होने तक तो उस देह का औचित्य रहता ही है, पर जिसे श्यामसुन्दर स्वयं ही अपनी सन्निधि में ले जाने को आतुर हो रहे हों, न तो उस समय कोई संकल्प की ही स्मृति रहती है और न ही अनुबन्धों की। संकल्पों और अनुबन्धों की परिणति तो श्यामा–श्याम की सन्निधि में समा विलीन हो जाती है। वहां न तो दक्षिणायन में लीला संवरण करने की सुधि रहती है और न ही उत्तरायण की प्रतीक्षा का विचार, न वहां किसी दिन और तिथि की इयत्ता का प्रश्न उठता है और न ही समय, भोर संध्या और रात्रि का। रागानुगा भक्ति का पथ ही कुछ ऐसी मर्यादाओं में पलता, पनपता है– वहां स्वयं का कुछ रहता ही नहीं। समर्पण–समर्पण और पूर्णतः समर्पण। जहां प्रिया–प्रियतम के सुख को, उनकी इच्छा को ही प्रधानता दी जाती है, वहीं प्रेम है। प्रेम का उच्चतम, परिपूर्ण आदर्श इसी भाव में निहित है। यह भाव उनके अभाव का पूरक

* उक्त घटना स्वामी जी के एक श्रद्धालु ने सुनाई थी।

होकर ही सहज स्वभाव बन जाता है तो भावग्राही जर्नादन इसी के वश मूर्त होकर प्रत्यक्ष हो जाते हैं। प्रत्यक्ष तो वे बने ही रहते हैं । संकल्प विकल्प रहित हो जाना ही श्रेष्ठ भक्त का लक्षण है ।

पू. श्री राधा बाबा की 'स्मृति और विस्मृति' की सी स्थिति काफ़ी समय से चली आ रही थी । इसको हम दूसरे ढंग से उनके मन का योग होता तो वे सुनते और बिल्कुल ठीक उत्तर देते और यदि नहीं होता तो कुछ भी कहते, 'कहकर अपने अभिमत को स्पष्ट कर सकते हैं । एक ही बात की पुनरावृत्ति भी वे करते रहते, बाह्य रूप से विक्षिप्तावस्था की सी स्थिति भासने पर भी उनके से व्यक्तित्व के लिये उनकी गरिमा से हटकर कुछ कह सकना कठिन है । वे परम सिद्ध सन्त थे- वैसी ही उनकी स्थिति सदैव बनी रही । कभी-कभी किसी बात की गहराई में न जाकर कुछ इस प्रकार की घटनाऐं अवश्य बन गईं । अपने महाप्रयाण से कुछ दिन पूर्व उनकी दुर्बलता चरम सीमा पर जा पहुंची । Saline दी गई आस-पास के लोगों ने, अभिभावकों ने, अत्यन्त आत्मीय स्वजनों ने जी तोड़ सेवा की, परन्तु पूर्णतः सजगता से सेवारत होने पर भी उनके जाने का, किसी को भान तक न हुआ। ग्लूकोज़ चढ़ना जब बन्द हो गया तभी पू. बाबा के महाप्रयाण का पता चल सका । इसके अतिरिक्त अत्यन्त आत्मीय स्वजनों की भी उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार जानने की आकुल व्याकुल आकांक्षा होने पर भी, समाचार पाकर ही उनके निकुञ्ज गमन की पुष्टि हो सकी । इसमें उनके भाव की, मनः योग की, आत्मीयता की कमी तो कदापि नहीं कहूंगा और न ही इसमें परम पूज्य बाबा का ही कोई छिपाव का लक्ष्य रहा होगा परन्तु जहां अपना कुछ है ही नहीं, सम्पूर्ण सङ्कल्पों-विकल्पों को हम श्यामा-श्याम को अर्पित कर चुके हैं- वहीं से उन्हीं का संकेत पाकर किसी भी प्रकार से अपनी स्थिति बनाए रखना, प्रेमा भक्ति का लक्षण तो अवश्य नहीं कहा जा सकेगा । वहां तो श्यामा-श्याम के सुख के लिये सजगता सदैव बनी रहती है- इसी को 'तत्सुखे सुखित्वं' की संज्ञा से भूषित किया गया है ।

× × ×

फरवरी मास सन् १९७० में पूजनीया आनन्द मयी मां के आश्रम वाराणसी में 'श्रीमद्भागवत सप्ताह' होने की बात तय हो चुकी थी । श्री हरिबाबा जी महाराज उसमें उपस्थित रहने का निमन्त्रण स्वीकार कर चुके थे- परन्तु ३ जनवरी को ही उन्होंने महासमाधि ले ली- अतः अब संकल्पों और विकल्पों की परिणति को क्या कहा जाए ? वे मां के लिये तो अवश्य दीखे भी परन्तु ....

× × ×

अभी हाल में पिछले दिनों परम पूजनीय श्री श्री आनन्द दास बाबा जी महाराज ने अपनी एक शिष्या से कहा "कल एकादशी का फलाहार तुम्हारे साथ ही करूंगा।" यह निश्चित तो अवश्य हो गया, परन्तु भगवान राघवेन्द्र की इच्छा कुछ इससे भिन्न ही थी। एकादशी की भोर को वे उन्हें अपने नित्य धाम में ले गए।

इससे न तो पू. बाबा की स्थिति में ही कोई कमी आई और न ही उनकी किसी गरिमा का, संकल्प का खण्डन ही हुआ। जब प्रिया-प्रियतम रस संकेत दे अपनी सन्निधि में बुला लेते हैं, तो उस समय न कोई संकल्प रहता हैं और न ही कोई अनुबन्ध, प्रत्युत इस सबका अतिक्रमण हो जाने पर भी वह अतिक्रमण नहीं कहलाता।

× × ×

ठीक यही उक्ति पूर्णत: चरितार्थ हो रही थी पूजनीया बोबो पर भी। यहां रागानुगा मार्ग की उपासना थी। मन के सहज द्रवण की बात थी। एक स्नेह और आत्मीयता की प्रबलता थी। उसी के वशीभूत आस पास के सभी स्वजन, इनके स्वभाव में इस मूल-परिवर्तन को इसमें निहित संकेतों को ठीक से आंक नहीं सके। स्नेह और आत्मीयता वश ऐसा होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। हम यह जानते हैं, मानते भी हैं कि जिनका जन्म हुआ है, भौतिक रूप में उनसे हमारा बिछुड़ना एक दिन होगा ही, परन्तु स्नेह का आतंक हमारे मन और मस्तिष्क पर इतना प्रभावी होता है कि चाह कर भी हम उसे कहने और सुनने में संकोच करते हैं।

पूजनीया बोबो डाक्टरी जांच के लिये अब 'हां' कर चुकी थीं। उपचार की व्यवस्था की जा रही थी। उनका मन पूर्णत: तटस्थ हो चुका था। शरीर के प्रति आसक्ति तो उन्हें पहले भी न थी, परन्तु अब उसका मरणधर्मा स्वरूप भी उनके सामने प्रकट हो चुका था। जिस हेतु को लेकर इस देह का भार सौंपा गया था वह पूरा हो चुका था। श्यामा-श्याम की, सन्निधि सुख उपभोग का माध्यम बने इस शरीर के प्रति, मात्र उतना ही आकर्षण उनका बना था, अन्यथा अपने को वे सभी ओर से समेटती जा रही थीं।

बाह्य और अन्तर से समभाव

अपने प्राणों के प्राण, जीवन की जीवन्त शक्ति हृदय के सर्वस्व, जिनकी बरसती कृपा ममता ने अपनी सन्निधि का आस्वादन कराया,

जिनका वे निरन्तर चिन्तन करती रहती थीं, जिनके लिये क्षण भर भी किसी का विश्वास न करती थीं, वे युगल सुन्दर बाह्य तथा अन्तर, समान रूप में दीखने लगे थे। सामने विराजमान सेव्य स्वरूप, सामने विराजमान होते हुए भी अन्तर की भावनाओं की अभिव्यक्ति को, उसमें उठी उमंग-तरंगों को, प्रकट हो कर उसी सुख की अनुभूति कराने लगे थे। बाह्य रूप में जिस सुख और अनुभूति का आस्वादन कर रही थीं, आज उसी का आस्वादन और अनुभूति अपने सिद्ध स्वरूप से सतत करने लगीं थीं। समान भाव से दोनों ही रूपों में आस्वादन होने लगा था। इतर वृत्तियों से मन और तटस्थ होता चला गया। अनुराग की पराकाष्ठा मूर्त हो गई। बाह्य और भीतर किसी भी अन्य सहयोग की अलग से आवश्यकता न रह गई थी।

श्री यमुना

श्री यमुना स्नान के प्रति भी समभाव होता चला गया। बाह्य रूप से क्षण-क्षण में अपनी मधुर रसीली तरंगों के मिस रस में सराबोर करतीं, श्री यमुना अपना नैकट्य, अपना सामीप्य प्रदान कर उसी रस में, घर पर ही सराबोर करने लगीं, *अपनी किशोरावस्था में रुग्ण होने पर चिन्मय देह से श्री यमुना तटवर्ती कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजमान प्रिया-प्रियतम से जिस गोविन्द घाट पर पूर्व में सम्मिलन सुख प्राप्त कर चुकी थीं (जबकि यह पञ्च भौतिक दृष्टिगोचर होता देह अम्बाला में ही रुग्ण पड़ा था) उसी स्थल पर स्थायी निवास की लालसा लिये इनका मन स्थिर हो चुका था।*

भोर और सांझ के क्रम एक-एक दिन बीतने के साथ-साथ परिवर्तित होते जा रहे थे। शिशिर का आतंक बढ़ता ही जा रहा था। इन सभी क्रमों के साथ पू० बोबो का शरीर अधिक दुर्बल होता जा रहा था। दुर्बलता स्वतः ही एक रोग है। इस सबके उपरान्त भी पू० बोबो का आत्म बल, आन्तरिक आस्वादन, आध्यात्मिक चेतना, श्यामा-श्याम की प्रगाढ़ानुभूति तथा लीलांनुभूति, अधिकाधिक होती जा रही थी। उनकी दिव्य भावनाऐं मूर्त होती जा रही थीं। शरीर का तेज निखरता जा रहा था। नेत्र भीजे-भीजे रहने लगे थे। श्यामा-श्याम की रूप मधुरिमा, लीला विलास, अनुराग बन छलकने लगा था। उन्हीं दिनों इन्होंने देखी श्यामा-श्याम की अनूठी शोभा माधुरी-उसी का आस्वादन कर वे कह रही हैं :-

"इस नवीन निकुञ्ज की बड़ी ही अनोखी शोभा हो रही है। नवीन 'श्री' इसमें बिखरी पड़ी है। उसी 'श्री' को सत्कृत कर रहे हैं-

अभिनव किशोर श्याम-सुन्दर तथा नवीन भावों में मग्ना श्री राधा। प्रणय रस की नवीन कलाओं से नवीन लीलाओं का संयोजन तो कर ही रहे हैं, उनके हास से भी प्रतिक्षण नवीन रस निसृत हो रहा है। प्रणय साम्राज्य की नवीन 'श्री' का नव नव आस्वादन कर रहे हैं दोनों ही।''

हां ! तो पूजनीया बोबो बाहर से अपने को समेट ही रही थीं। उनके अन्तर की सजगता तथा अनुभूति का ब्योरा देना इस जड़ लेखनी के सामर्थ्य की बात नहीं है। पू. बोबो की अभिन्न हृदया सखी, सहेली श्री सुशीला बहन जी, जिन्हें वे अपना ही दूसरा रूप कहा करती थीं, को १८ जनवरी १९९२ की रात को जागृति में ही एक दृश्य दीखा। उसे मैं पाठकों के सम्मुख ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर पू० बोबो की अन्तिम समय की मनः स्थिति और उनके स्वरूप के विषय में एक सुदृढ़ योग का सूत्र अवश्य कहूँगा।

पू० बोबो का चिन्मय स्वरूप

''रात साढ़े बारह बजे के लगभग मैंने अपनी इन्हीं दोनों खुली आंखों से देखा, उनका रुग्ण तन यहीं राधा वल्लभीय स्थली में लेटा है पर दिव्य वपु से एक नवीना किशोरी, दिव्य वेषभूषा से सज्जिता, पूर्णतः स्वस्थ, सुन्दर सुगठित शरीर, देदीप्यमान तन द्युति, विशाल नेत्र, मुग्ध भाव से, सुध-बुध हारी सी बैठी एक टक निहार रही है। बैठने की मुद्रा अति अलबेली है। वहां की स्थली दिव्य और अत्यन्त मनोहर लग रही है। चारों ओर प्रकृति का सौन्दर्य छिटका पड़ रहा है। उस बाला की दृष्टि कहां अटकी है यह कहना कठिन है, परन्तु यह बात पूर्णतः स्पष्ट है कि वह नवीना यही हैं, यही हैं, यही हैं (पू० बोबो)। इनके पास ही पीछे की ओर एक और

*** श्री कामदा बहन पू. बोबो से पढ़ती रहीं। उनका पू. बोबो से लगाव तो था ही, श्यामा-श्याम के चरणों में दृढ़ अनुराग भी था। लीला कथा वार्ता में उनके हृदय पर उमड़ते भावों से उनकी विकलता का आभास अवश्य होता था- परन्तु पू. बोबो में उनकी प्रगाढ़ प्रीति समय -समय पर झलकती रहती थी। पू. बोबो के निकुञ्ज प्रवेश का समाचार उन्हें जींद जहां वे, निवास कर रही थीं, मिल चुका था। वे अपना धैर्य खो चुकी थीं- परन्तु कोई दिव्य शक्ति आशा बंधाए थीं। पू. बोबो के जल प्रवाह के कुछ समय पूर्व वे यह कहती भागती उनके अन्तिम दर्शनों की लालसा वश श्री यमुना तट पर आ पहुंची। उन्हें प्रणाम किया- बोलीं, ''बोबो ! मुझे भी ले चलो, बोबो मुझे भी ले चलो।'' नाव से वे उतर गईं, श्री यमुना की लोल लहरियों में हिलोरें लेतीं नाव चल दी और इधर उसके साथ ही यमुना तटीय स्थली पर वे भी गिरीं। पास खड़े लोगों ने जमुना जल मुख में डाला और वे भी पू. बोबो के साथ-साथ उसी दिव्य धाम को चली गईं। ओह ! अपने साथ-साथ अपनी एक अन्य सखी को ले जाने की ऐसी अपूर्व घटना सम्भवतः महाप्रभु जी और स्वरूप दामोदर के बाद यही हुई। ऐसी कातर-पुकार तथा उसका उसी समय सत्कार इन दोनों विभूतियों को शत-शत नमन तथा इन दोनों विभूतियों के चिर संरक्षक नील-गौर प्रिया-प्रियतम को शत-शत नमन।

*भी सखी बैठी है, वह छाया सी दीख रही है। पहले ऐसा लगा कि जैसे वह सखी मैं ही होऊं परन्तु बाद में कामदा*** के इनके साथ ही शरीर त्याग देने से पुष्टि हुई कि वह महाभागा निश्चित ही कामदा थी इस प्रकार से जिसका शरीर त्यागना असाधारण ही था। उसने उन्हीं का अनुगमन किया।''*

इसी दृश्य की पुष्टि में आ जुड़ी पू. बोबो की मन: स्थिति की एक और अपूर्व घटना। उनके शरीर की अस्वस्थता तो अलग थी और मन की प्रफुल्लता बिल्कुल अलग। जहां एक ओर उनका भौतिक देह रुग्ण दीख रहा था, वहीं उनकी स्थिति का प्रत्यक्ष प्राकट्य और दिव्य स्वरूप का दर्शन हुआ पू. सुशीला बहन जी को। अपनी उसी तन्मयता की स्थिति में श्यामा-श्याम की माधुरी लीला में छकी पू. बोबो की अनुभूति स्पष्ट हो झलक उठी।

''अपनी मन्द मन्थर गति से बरबस ही मन को आकृष्ट करते श्यामा-श्याम हंसते मुस्कराते, किसी रसीली चर्चा में संलग्न मग्न हुए चले आए अपनी अनन्या सखी के पास। उत्फुल्ल हो, प्रफुल्लित हो गईं वे माधुरी मुस्कानयुत रूप राशि का पान कर। उसी तन्मयता में लेखनी बद्ध हुई उनकी निम्न पंक्तियां- अन्तिम लिखित अनुभव के रूप में हम सभी के लिये प्रकाशित हो गई :-''

प्रिया-लाड़िले श्याम घन,
लाल लड़ैती बाल।
हँसत-हँसत आवत चले,
मन्द मनोहर चाल॥

पू० बोबो के इहलौकिक लीला संवरण तथा नित्य सिद्ध देह से लीला में प्रवेश करने का संकेत श्री सुशीला बहन जी को हो ही चुका था। वे पू. बोबो को कह, इस अनुभव को सुना कर सम्पुष्टि कर लेना चाहती थीं, परन्तु अपनों से विलग होने की बात- ओह ! भीति वश उनसे कुछ भी कह न पाईं। इसी ऊहा-पोह में एक सप्ताह बीत गया।

सभी बहन भाई समाचार जानने की उत्सुकता में स्वयं भागे आते। श्रीमति प्रवीण नारंग बीकानेर से चली आईं, इधर श्रीमती इन्दु बहन दुर्गापुर से, आभा बहन ग्वालियर से बहन उत्तमा हिसार तथा उमा बहन देहली से, मनोज तथा नीलू भी चले आए और भी अनेकानेक बहन भाईयों का आना जाना निरन्तर बना था। आँखों से देख आत्म सन्तोष अवश्य होता परन्तु लौटना भी आवश्यक होता।

'डाक्टरी जांच' कराने का आग्रह सभी बहन भाई कर ही रहे थे। पूज्य श्री मनोहर दास जी भी कई बार आग्रह कर चुके थे। इन्हीं दिनों अम्बाला से श्री श्याम भाई साहब, व पू. बोबो से मिलने चले आए। उधर श्री उर्मिल राजेश्वरी, श्री शन्नो गुप्ता, निर्मल गुप्ता, विमला शर्मा प्रभृति अनेक और बहनें भी आ गई थीं। इन सब ने भी आग्रह किया। होम्योपैथी के डा. सक्सेना जी, प्राय: पू. बोबो का समाचार लेने, परामर्श देने आते ही रहते थे। परम आदरणीया श्री ललित बहन जी भी, एक बार निदान करवा ठीक से उपचार व्यवस्था हेतु अनेक बार आग्रह कर चुकी थीं, सबके बार-बार कहने पर जब श्री ललित बहन जी को पू. बोबो के विचारों में तनिक शिथिलता सी दीखी, तो उन्होंने हस्पताल की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार अपने ऊपर ले, जितना प्रयास किया, उसके लिये कुछ भी कह कर, साधुवाद देकर उनकी उस गरिमा को हल्का कैसे करूं ? वास्तव में पू. बोबो के प्रति उनका स्नेह और भाव उनके अन्तर की भावना थी, उनके हृदय का द्रवण था तथा रोम-रोम से वे उन्हें स्वस्थ देखने को आकुल-व्याकुल रहती थीं। प्रतिदिन तो आतीं ही थीं, कई बार दूसरी बार संध्या में भी आतीं, सभी को सजग तथा सावधान भी करती रहती थीं। मुझे याद आती हैं उनकी अत्यन्त लाड़ और स्नेह वश कही वह पंक्तियां, "बच्चो ! सावधान रहना, इस अमूल्य निधि को गंवा न देना, सभी लुट जाऐंगे," ओह ! दुर्भाग्य ! कहां सम्हाल पाए हम उस अमूल्य निधि को ? यह सब उनकी महानता एवं अगाध ममता का ही परिचायक रहा। उन्होंने सभी प्रकार से पूर्ण सहयोग दिया, अपने बाह्य प्रयास द्वारा तथा सर्वोपरि अन्त: प्रेरणा द्वारा। पू. बोबो के कुछ वाक्यों और शब्दों से भावी का संकेत सम्भवत: उन्हें (श्री ललित जी) शंकित कर रहा था।

२५ जनवरी सन् १९९२ का दिन हस्पताल जाकर जांच करवाने के लिये तय हुआ। लगता है उसी दिन पू. बोबो ने अपनी वृत्तियों को पूर्णत: समेट लिया था। आज से पूर्व वे कभी भी हस्पताल जाने और जांच कराने के लिये सहमत न हुई थीं। अपने स्वभाव के प्रतिकूल इस प्रकार तैयार हो जाना एक और संकेत था उनके निकुञ्ज लीला प्रवेश की तैयारी का।

परम हंस स्थिति बालवत् स्वभाव

पूजनीया बोबो का मन पूर्णत: अन्तर्मुखी हो चुका था। बाह्य रूप में वे किसी से भी कुछ न कहती थीं। किसी भी कार्य में कोई विशेष योगदान भी न करती थीं। खान-पान से भी उनका मन उपराम हो गया था।

उनका स्वभाव सर्वथा बालवत् हो गया था। कुछ खिलाने, दवा आदि देने के लिये अधिकांश विजय ही उनके पास रहता था। उन्हीं के लाड़ प्यार और वात्सल्य सुख को उन्हीं की कृपा ममता वश घंटों उनकी सन्निधि में समेटने का अवसर उसे प्राय: मिलता रहा था। आज इन्हीं के स्वभाव में बालवत् आचरण देख विजय का उनके प्रति वात्सल्य उमड़ता रहता। चम्मच से उनके मुख में ग्रास देना, उन्हें बहला,-बहला कर औषधि आदि कह दुग्ध आदि देना उसके अतिरिक्त कुछ अन्य कृत्य जिसे वे अनिच्छा पूर्वक ही करती थीं, उसके वात्सल्य पूर्ण स्नेहाग्रह से कृपावश वे ले लेती रहीं।

पू० बोबो, श्याम सुन्दर की माधुरी का निरन्तर पान करती रहतीं। उस अखण्ड आनन्द और मधुर आस्वादन के सम्मुख उन्हें सभी फीका भासता। वे क्वचिद् ही किसी से कुछ कहतीं। दुग्ध आदि पेय आहार देने के लिये कई-कई बार कहकर उन्हें उनकी वृत्ति से बाह्य धरातल पर ला, कुछ खिलाने का उपक्रम करना पड़ता। कभी-कभी तो स्वेच्छा से किञ्चित् ग्रहण कर लेतीं और कई बार इतनी तन्मय हो जातीं कि मुख का ग्रास अन्दर ले जाने की भी सुधि न रहती। बार-बार कह कर, उन्हें सजग कर ग्रास अन्दर ले जाने की स्मृति करानी पड़ती। अनेक बार मुख में ग्रास ग्रहण करने के बाद भी वे मुख बन्द करते-करते तन्मय हो जातीं तथा मुख खुला का खुला ही रह जाता। बार-बार स्मरण कराने पर ही मुख बन्द करतीं और अनेक बार मुख खोलती ही न थीं। स्वाद नाम की वस्तु से उनका मन सर्वथा उपरत हो चुका था।

ऐसा बाल-स्वभाव, ऐसा भोलापन तथा ऐसी अन्तर्मुखी वृत्ति तिस पर भी उनके मुख में भगवन्नाम हाथों की उंगलियों पर गणना का क्रम चलता रहता, नेत्र रूप माधुरी का पान कर आस्वादन रत रहते। वास्तव में उनका मन और चित्त वृत्ति सभी प्रक्रियाओं से सहज उठ चुकी थीं, अभ्यास वश अपनी जपादि क्रिया को सजगता से चलाती रहतीं। वे परमहंस स्थिति को प्राप्त कर नितान्त सिमट चुकी थीं।

३ फरवरी सन् १९९२ को अमावस्या थी। ग्रहों का योग भी विकट था। अम्बाले से आए बहन भाईयों ने वहां के डाक्टर से भी परामर्श किया। इधर इन्हीं दिनों अरुणाचल से डा० निशा भी चली आई थीं। पू. बोबो के स्वास्थ्य समाचार जानने के लिये अनेक बहन भाईयों के पत्र लगातार आ रहे थे। 'जकारता' (इन्डोनेशिया) से शान्तनु पूनम का पत्र मिला, अमेरिका

से अभय तथा कल्याणी का, चण्डीगढ़ से वशेशुर भाई, तथा देहली से श्री श्रीश भाई सा०, लक्ष्मी भाई सा०, बहन उमा, उत्तमा, नीलू तथा मनोज तथा अन्य सभी के पत्र आ रहे थे। इधर दुर्गापुर से बहन इन्दु का पत्र आया। अपने बाल्यकाल से ही अनजाने आकर्षण वश स्कूल में उनके प्यार की सतत प्यास वश पीछे-पीछे घूमती इस बहन के पत्र के भाव, उसमें छिपी बेचैनी, एक विवशता तथा विकलता को पढ़ सभी के मन द्रवित हो गए। अनिल, मुदित आदि तो यहीं चले आए। बीच-बीच में अन्य सभी बहन-भाईयों का आना-जाना बना रहता था। पू. श्री ललित बहन जी तथा चक्रपाल भाई साहब प्रतिदिन एक बार तो नियम से आते ही थे, कई बार संध्या में भी समाचार जानने चले आते।

वृन्दावन में वेणु विनोद कुञ्ज से पू० श्री मनोहर दास जी, श्रीदेवी जी, मनोरमा तथा अन्य सभी बार-बार आते-जाते रहते। इधर कालोनी वाले सभी बहन भाई, बाग बुन्देला वाली बहनें तथा बड़ी कुञ्ज वाली बहनें निरन्तर स्वास्थ्य सुधार के लिये प्रार्थना करती रहतीं।

अमावस्या की रात्रि को सभी बहन-भाईयों ने अखण्ड रूप से जप किया। शारीरिक कष्ट बढ़ा अवश्य जैसे तैसे रात बीत गई। सभी के चिन्तित, सशंकित तथा म्लान चेहरों पर एक आशामयी भोर को देख, आशा बंधने लगी। धीरे-धीरे समय बीतता गया तथा भोर, संध्या में और संध्या, भोर में परिणत होती गई। एक-एक कर दिन व्यतीत होने लगे। इसी के क्रमानुसार पू. बोबो अपने को और-और समेटती अन्तमुर्खी, होती चली गईं। वे किसी से कुछ न कहतीं। किसी के पूछने पर एक, आध शब्द में ही उत्तर देतीं। ६, ७ फरवरी को पू. सुशीला बहन जी के पूछने पर उन्होंने कुछ कहना चाहा (विजय भी वहीं मौजूद था) परन्तु यह कह कर कि 'तुम सभी में प्रचार कर दोगी'- वे चुप हो गईं। आश्वासन देने पर पुनः बतलाने के लिये मान गईं। उनकी शारीरिक दुर्बलता होने पर भी बिल्कुल न लगता था कि इतनी जल्दी चली जावेंगी। अनेक बार, इस बीमारी से भी अधिक रोग को उन्होंने इतने सहज और सरल ढंग से झेल लिया था- अतः इस बार भी किसी को शंका न होती थी। पूर्व के अनुभवों के आधार पर यह बीमारी भी सहज लग रही थी।

उनका यह वाक्य ''यदि अस्वस्थता के कारण श्री ठाकुर की सेवा में यत्किञ्चित् भी व्यवधान लगा तो यह शरीर अधिक नहीं टिकेगा,''

बीच-बीच में झकझोर जाता, परन्तु उसमें भी अनुकूल अर्थ निकाल पुनः पुनः सभी आशावान हो जाया करते ।

श्री धर्म बहन जी से विदाई के लिये आग्रह

पूजनीया बोबो की शारीरिक अस्वस्थता दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी । प्रेम का स्वभाव बड़ा ही विचित्र होता है, तथा इसकी सामर्थ्य का तो कहना ही क्या ? श्री धर्म बहन जी के प्रति पू. बोबो का विशेष स्नेह रहा । उनकी बीमारी ने श्री धर्म बहन जी को भी विचलित सा कर दिया। पू. श्री मनोहर दास जी ने भी श्री धर्म बहन जी से अमावस्या की विकट रात्रि की सकुशलता के लिये कह दिया था । यह रात्रि सहज निकल चुकी थी । पीछे पू. बोबो का स्वास्थ्य गिरता देख उनके मन में पुनः सङ्कल्प उठा । उन्होंने पाठ पुनः प्रारम्भ कर दिया । यह बात फरवरी १९९२ के प्रथम सप्ताह की है । दूसरे सप्ताह के अन्त में, श्री धर्म बहन जी, रात के लगभग ढाई-तीन बजे अपनी शय्या पर लेटी थीं । उस जागृति में ही इन्हें पू. बोबो की आवाज़ सुनाई दी, ''धर्म जी ! आप मुझे जाने दो, मेरा काम पूरा हो गया है । श्याम-सुन्दर मुझे बुला रहे हैं । मुझे जाने दो ।'' यह पूर्ण वाक्य सुन श्री धर्म बहन जी व्याकुल हो गईं । उनसे बिछुड़ने की भीति उन्हें थी ही, साथ-साथ सभी बहन-भाईयों का ध्यान आया । उन्हें स्मरण कराती हुई धर्म बहन जी बोलीं, ''नहीं, नहीं बोबो ! इन बहन भाईयों का क्या होगा ? अभी तो सभी अपनी साधना में ही लगे हैं । हम सब अनाथ हो जायेंगे- हम सब लुट जावेंगे । मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी ।'' यह कह कर श्री धर्म बहन जी का मन उदास हो गया । पू. बोबो ने पुनः कहा, ''आप मुझे न रोकें'' इधर साथ ही श्याम सुन्दर की गम्भीर वाणी सुनाई दी, ''आप इन्हें जाने दें । मैं ले जाना चाह रहा हूं । इनका कार्य पूरा हो चुका है'' श्याम सुन्दर की गम्भीर वाणी सुन पू. धर्म बहन जी चुप हो गईं । पुनः बोली, ''यदि ऐसा है, आप ही इन्हें अपनी सन्निधि में ले जाना चाहते हैं तो मैं रोकने वाली कौन हूँ ? अच्छा बोबो, 'विदा'-'विदा'-'विदा' कह कर सर्वथा अनिच्छा पूर्वक स्वीकृति दे

*** पू. बोबो के पूर्व प्रकाशित संक्षिप्त परिचय में इस घटना का ब्योरा जैसे हमें उस समय उपलब्ध हुआ था, उसी प्रकार से दिया गया था, परन्तु अब एक दिन अपनी लटक में आकर श्री धर्म बहन जी ने, पू. श्री मनोहरदास जी श्री रमादेवी जी तथा अन्यान्य बहन भाईयों के सम्मुख स्पष्ट करते हुए कहा था कि यह जैसा पहले कहा गया यह स्वप्न नहीं था । जागृति में ही अपने मुख से यह सारी बात मैं करती रही और 'विदा' कह कर बड़े ही दुःख से अपने आँसु पोंछते हुए मैंने स्वीकृति दे दी ।

दी। उसके पश्चात् धर्म बहन जी का मन अत्यन्त दु:खी हुआ। अपने अश्रुओं को पोंछती हुई वे उठ खड़ी हुई उन्होंने कहा था, "मुझे केवल ध्वनि ही सुनाई देती रही, परन्तु जो वार्ता थी वह निश्चित रूप से श्याम-सुन्दर और बोबो की ही थी।"

पू. बोबो के श्यामा-श्याम की सन्निधि में जाने का स्पष्ट संकेत श्री धर्म बहन जी आठ, दस दिन पहले जान गई थीं,* परन्तु इस घटना को जानबूझ कर, उन्होंने पहले से प्रकाशित कर सभी को दु:खी करना नहीं चाहा। २१ फरवरी को ही उन्होंने इस घटना को सभी के लिये प्रकाशित किया।

नियति का चक्र गतिमान रहा। धीरे-धीरे दिन व्यतीत होते गये। पूज्या बोबो अपने को पूर्णत: समेट ही चुकी थीं। कष्ट को वे कष्ट न मान सहर्ष सहन करती जा रही थीं।

निकुञ्ज प्रवेश के कुछ दिन पूर्व

श्री सन्तोष जी तथा सरला जी की प्रत्यक्ष अनुभूति :-

पूजनीया बोबो का स्वास्थ्य पहले से ही खराब चला आ रहा था। कुछ बहनें बीच-बीच में स्वास्थ्य सुधार का समाचार देती रहती थीं। १४, १५ फरवरी को भी कहा बोबो ठीक हो रही हैं- वे यह कह कर चली गईं। पू. बहन जी अपने श्री ठाकुर जी के लिये भोग सामग्री तैयार कर रही थीं कि बहन जी ने देखा सामने एक सघन मनोहर श्यामलोज्ज्वल पुञ्ज है, उसमें पूज्या बोबो ऊपर को उठती चली जाती दीख रही हैं। उन्होंने तुरन्त सरला बहन जी को सम्बोधन कर कहा, 'सरला ! ये सब कह गए हैं कि ऊषा जी ठीक हो रही हैं परन्तु मैं तो उन्हें एक श्यामलोज्ज्वल सघन पुञ्ज में सामने ऊपर को जाते देख रही हूं- अत: वे तो जा रही हैं मेरे सामने, सामने जा रही हैं।' सरला बहन जी ने भी तुरन्त यही कहा 'हां वे तो निश्चित ही जाने वाली हैं।'

इस घटना के लगभग डेढ़ वर्ष बाद पू. बहन जी वेणु विनोद कुञ्ज में श्रद्धेय श्री महाराज जी के दर्शनार्थ गईं। इसी प्रकार श्रद्धेय राधा बाबा को वे उनके महा प्रयाण के समय देख चुकी थीं। उनके उस अनुभव को पुन: सुनने के लिये श्री घनश्याम जी ने बहन जी से प्रश्न किया, पू. बहन जी ने सहज स्वभाववश सारी घटना सुना दी। साथ-साथ कहा इस घटना से भी अधिक स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष घटना मुझे श्री ऊषा जी सम्बन्धी दीखी थी।

× × ×

पूजनीया श्री ललित बहन जी को किसी आवश्यक कार्य से देहली जाना पड़ा था। वहाँ से उन्हें जांच करने वाली स्टिक्स की भी व्यवस्था करनी थी। इधर चेतन भाई को लन्दन से स्टिक्स भेजने के लिये फोन कर चुकी थीं। उन्होंने दूसरी डाक से पार्सल करवा दिया। श्री कमला बहन जी स्वास्थ्य समाचार जानने को आईं तो पू. बोबो ने श्री ललित बहन जी के देहली से लौटने के विषय में पूछा।

पू० श्री ललित बहन जी को देहली में अनुभूति

चौदह-पन्द्रह फरवरी सन् १९९२ को पू. श्री ललित बहन जी को सहसा देहली जाना पड़ा। वहां से वे जल्दी न लौट सकीं। २० फरवरी को ब्राह्म मुहूर्त में उन्हें स्वप्न में एक नील पुञ्ज में पू. बोबो का मुखारविन्द लहराता हुआ दीखा। उसके साथ कोई छाया सी भी थी। उसी समय से वे एक अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनन्द में मग्न रहीं। ऐसा अपूर्व सुख पूर्व में कभी न मिला था। उनका हृदय बार-बार पुलकित होता रहा। रुक रुक कर प्रेमाश्रु छलक जाते तथा हृदय द्रवित हो जाता, उसी में उन्हें दीखा श्याम सुन्दर, किशोरी श्री राधा तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा सखियां विशेष उल्लास में भरी किसी महोत्सव की तैयारी में संलग्न हैं। सुन्दर शृङ्गार मण्डित हैं सभी, तथा प्रफुल्लित हुई इधर उधर बड़ी ही व्यस्त हैं। ये उस दृश्य को देखती रहीं- परन्तु अभी भी इसका हेतु स्पष्ट नहीं हो पाया था। कुछ समय बाद उन्हें आवाज सुनाई दी कि यह सब आयोजन अपनी अभिन्न प्राणा सखी के स्वागतार्थ किया गया है।

पू. श्री ललित बहन जी को अभी भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया था, पू. बोबो का समाचार जान उन्हें निर्णय करने में देरी न लगी। उनका अनुभव पू. बोबो के निकुञ्ज प्रवेश संकेत शृङ्खला में अतिरिक्त कड़ी बन कर जुड़ गया।

× × ×

१९ फरवरी की रात्रि में पू. बोबो को श्वास लेने में बेचैनी अवश्य लगी। आज २० फरवरी हो गई। प्रकृति में निस्तब्धता छा गई। पक्षियों का उल्लास उनके नीड़ों में ही विलीन होता दीखने लगा। आज की भोर में कुछ और ही वातावरण लगा। नियति का चक्र गतिशील था। ७, ८, ९, और दस बज गए। इसी समय श्रद्धेय श्री बालकृष्ण दास जी महाराज पधारे श्री घनश्याम जी भी साथ थे। श्री मनोहर दास जी, श्री रमा देवी जी, बहन कुसुम,

मनोरमा आदि (पू. महाराज जी के परिकर) पहले से ही उपस्थित थे। पू. बोबो ने श्री महाराज जी को प्रणाम किया। थोड़ी देर बैठ कर वे चले गए। थोड़ी देर पश्चात् अन्य सब भी चले गए।

बारह बजे अत्यल्प सा दुग्धादि ले पू. बोबो लेट गईं। विजय उन्हीं के पास बैठा रहा। एक बजा, वे अपनी शय्या श्री ठाकुर जी की बांई ओर करने के लिये आग्रह करने लगीं, जहां वे प्रतिदिन तीन बजे आया करती थीं। उनसे अनेक बार कहा कि अभी समय नहीं हुआ है, परन्तु वे वहीं लेटने के लिये आग्रह करने लगीं क्योंकि वहां से श्री ठाकुर जी (सेव्य युगल) समीप थे। उनकी इच्छानुसार बिस्तर की अनुकूल व्यवस्था कर दी गई। दो बजे के आसपास पू. सुशीला बहन जी काकी को साथ ले श्री यमुना दर्शन/आचमन करने चली गईं। नित्य की भांति उनके द्वारा लाया जमना-जल पू. बोबो ने ग्रहण किया। आज वे पूर्णत: सजग दीख रही थीं। मध्याह्न ढाई बजे पू. बोबो नाम मात्र का दुग्धादि पेय लेकर लेट गईं। उनकी दृष्टि सतत प्रिया-प्रियतम की ओर लगी थी। बीच-बीच में कुछ बात पूछने पर क्षण भर को वे 'हां', 'न' में उत्तर देतीं, परन्तु उनका मन अपने लक्ष्य पर केन्द्रित था, नेत्र श्यामा-श्याम की छवि माधुरी का पान कर मत्त हो रहे थे, इसी आनन्दोल्लास में भरी वे बीच-बीच में अपने अश्रु पोंछ लेतीं। पुन: पुन: उनकी दृष्टि श्यामा-श्याम को निहार, खो जाती। नेत्र बन्द कर वे जाने कहां खो जातीं तथा मुक्ताओं का अनवरत प्रवाह नेत्रों से बरसने लगता। हर्षोल्लास में भर मग्न हो जातीं।

चार बज गए। पू. मनोहर दास जी (पू. भैया) ने आकर नाड़ी देखनी चाही, परन्तु पता न चली। पुन: बड़ी ही सावधानी से देखने का प्रयास किया- परन्तु यह क्या ? आज उन्हें भ्रम हो रहा था अथवा उनकी चेतना ही छल कर रही थी कुछ भी स्पष्ट कहा नहीं जा सकता। उन्होंने दवा दी, उसके पश्चात् भी नाड़ी की गति में कुछ सुधार न दीखा। पास ही बैठे विजय ने शूगर की जांच की परिमाण में बहुत कम थी। उन्हें ग्लूकोज़ तथा शर्करा पिलाई गई। ब्रजेश भाई मथुरा से डाक्टर को ले आया। रक्त चाप देखने का प्रयास किया गया। विचित्रता यह थी कि यन्त्र में रक्तचाप शून्य था परन्तु पू. बोबो सर्वथा सजग होकर बात कर रही थीं। उसी समय डाक्टर को चाय पिलाने के लिये उन्होंने कहा। इधर अपने चरणों की ओर महन्त जी को उधर से हट दूसरी ओर बैठाने का तथा उन्हें चाय-दूध पिलाने को कहा। वे पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति की भांति सजगता से व्यवहार कर रही थीं। इतना सब देख

कर कैसे कहें कि वे सजग न थीं ? वे पूर्णतः सजग थीं, चेतन थीं, तथा उनकी वृत्ति श्यामा-श्याम के नेह रस में भीजी थी, वही स्नेह उनके नेत्रों से, उनके मुख से, उनके व्यवहार से छलक-छलक कर सभी को सिक्त कर रहा था। ऐसी सजगता, ऐसी स्थिति अच्छे-अच्छे सन्तों में भी सहज मिलनी दुर्लभ है ।

वहीं विराजमान थे डा. राज कुमार सक्सेना, अरुणिमा आदि अनेक अन्य स्वजन, जिन्होंने उनकी बीमारी में अपना पूरा सहयोग दिया तथा समय-समय पर अपनी उपस्थिति उपलब्ध करा सेवा की । सभी बहन-भाई डाक्टर के विचार जानने को इच्छुक थे ।

डा. जा चुका था- अन्य बहनों को पू. बोबो ने श्री ठाकुर जी की सेवा हेतु कहकर अपने-अपने घर भेज दिया था । श्री ठाकुर जी की सेवा के प्रति वे इतनी सजग थीं कि उसमें प्रमाद उन्हें सह्य ही न था उस समय भी वे सर्वथा सावधान थीं । घड़ी की सुइयां चलती रहीं- आसपास से कभी 'श्रीराधा' और कभी 'श्रीकृष्ण' की ध्वनि इस शांत वातावरण को सरसा देती ।

पू. बोबो ने समय पूछा । 'छः बजे हैं' पास ही बैठे विजय ने उत्तर दिया । उन्होंने श्याम सुन्दर की ओर देखा । अनुराग से उमड़ा उनका हृदय, बन्द नेत्रों में पुतलियों के संचालन सहित एक बार शान्त सा हो गया। सुरस-राग रङ्ग से भरा उनका मन चुप सा हो गया, नाम रस सिक्त उनकी जिह्वा, सुरस रस में भरी रस मग्न हो गई, यह सब उनकी स्वाभाविक क्रिया थी, उनके मन का सहज लगाव था, द्रवण था- अतः श्यामा-श्याम के आश्रय में पूर्णतः समर्पित जीवन, अपने प्राणधन से सतत सरस आश्वासन पा रहा था । थोड़ी देर में पुनः समय पूछा । 'साढ़े छः' कहकर विजय चुप हो गया। कुछ ही क्षणों बाद उन्होंने हाथ उठा श्री ठाकुर जी की ओर संकेत किया । श्यामा-श्याम से मिला आमन्त्रण था वह- उसी का अभिवादन वे कर रही थीं- निश्चित श्यामा-श्याम के पास जाने का वह संकेत था । अनुमान से 'भोग तैयार है' आदि कह विजय उन्हें साथ के कमरे में ले गया । पीछे-पीछे चली आईं श्री सुशीला बहन जी । वहां पू. बोबो ने श्री सुशीला बहन जी तथा विजय दोनों को ही अपनी बाँहों में भर चिपटा लिया । निकुञ्ज प्रवेश का संकेत वे पहले कर ही चुकी थीं- अब अपना सर्वस्व ही उंडेल देना चाह रही थीं और ऐसा ही हुआ । दोनों को एक साथ ही अपनी बांहों में भर अपने प्यार की

सुरस धारा से सराबोर कर दिया तथा इसी प्रकार मिल कर रहने का संकेत भी कर दिया।

गोद में ले, विजय श्री ठाकुर जी के सम्मुख ले आया उन्हें। अभी उनका शरीर विजय के हाथों में ही था, ओमी तथा मुदित उनके चरणों को सहला रहे थे। पास में थे पू. श्री मनोहर दास जी, श्री घनश्याम जी, श्री सुशीला बहन जी, डा. सक्सेना, बहन उमा, विमला कपूर, सन्तोष नारंग, निर्मला शर्मा, दीपा आदि। कुछ अन्य बहनें भी बाहर खड़ी थीं। *सभी के देखते देखते नयन पुतलियां सहज ही श्री ठाकुर जी की ओर घूम गईं, मानों, जी भर उन्हें निहार, कुछ कह-सुन रही हों। सिंहासन उनकी ओर सरकाया, नेत्र गोलक एक बार पुनः बाऐं से दाऐं श्री ठाकुर जी की ओर पूरे घूम गए और ब्रज वसुन्धरा की अपूर्व निधि, इन ब्रज निधि की सन्निधि में चली गई।*

अपनी अन्तिम पंक्तियों में उसी अनुभूति का वर्णन वे पहले ही कर चुकी थीं- आज उसी को चरितार्थ करते प्रिया-प्रियतम हंसते मुस्कराते पास आए और उन्हें अपनी सन्निधि में ले गए।

प्रिया लाड़िले श्याम घन
लाल लड़ैती बाल।
हंसत हंसत आवत चले,
मन्द मनोहर चाल॥

गोविन्द घाट पर जहां प्रिया-प्रियतम ने अपनी कृपा ममता द्वारा, अपने सन्निधि सुख का वरदान दिया था, रास मण्डल समीपस्थ इसी निकुञ्ज स्थली ने श्री ध्रुवदास जी, श्री सेवक जी तथा श्री नरवाहन जी की प्रिया-प्रियतम से मिलने की लीला निहारी है- वहीं अपने चिरमिलन का स्मृति चिह्न बना, अमर हो गईं पू. बोबो भी।

इस मिलन माधुरी का ब्योरा सम्भवतः इन्होंने पहले से ही अपनी पंक्तियों में अंकित कर दिया था :-

ह्वै सम्मुख वे नैननि झांके
नवल रसिक चित चोर।
खिलखिलाई कछु बोले अटपट
नैनन सों नैना जोर॥
धीमे स्वर पुनि कह्यो मधुर कछु
हौं विहंसि परी मुखमोर।
ह्वै सम्मुख वे नैननि झांके
नवल रसिक चित चोर॥

प्रिया-प्रियतम की मधुर मूर्ति सम्मुख आकर खड़ी हो गई। अपनी अभिन्न प्राणा सखी को साथ ले चलने के लिये। नयनों में झांक उन्होंने न जाने क्या संकेत दिया ? नवल रसिक चित चोर ने चित्त रूपी वित्त का अपहरण कर लिया और खिल-खिला कर हँस दिये। चुपके से धीमे स्वर में उन्होंने कुछ कहा। वह 'कुछ' क्या था- इसके पीछे छिपी थी रस रहस्य की अनेक गाथाऐं, लीला माधुरी की अनगिन चपल चेष्टाऐं तथा हास विनोदों की शत-शत धाराऐं।

प्रणय रस माधुरी में छकी, उसी से आप्लावित पूजनीया बोबो परस्पर हाथ में हाथ ले, सभी के देखते देखते चली गईं, गौर श्याम-छवि सागर की तरल तरङ्गों में, मधुर रस सिन्धु की अगाध तरलता में, इन प्रणयी युगल के सरसीले साम्राज्य में, भावुकों के लिये आलोक स्तम्भ तथा साधकों के लिये पथ प्रदर्शक बनीं।

उनकी इस रस मयी स्थिति को देख मुझे स्मरण आ रहा है श्री हरिराम व्यास जी का एक पद, जो उन्होंने श्रीहित हरिवंश जी की स्मृति में गाया था।

'हुतौ सुख रसिकन को आधार।
बिनु हरिवंशहि सरस रीति कौ कापै चलि है भार ॥
को राधा दुलरावै गावै, वचन सुनावै चार ।
श्री वृन्दावन की सहज माधुरी, कहिहै कौन उदार ॥
पद रचना अब का पै ह्वै है निरस भयो संसार ।
बड़ो अभाग अनन्य सभा को उठिगो ठाठ सिंगार ॥
जिन बिनु, दिन-छिन सत युग बीतत सहज रूप आगार ।
व्यास एक कुल कुमुद बन्धु बिनु उडगन जूठो थार ॥'

अनेक जनों को प्यार से आप्लावित कर, उन्हें एक सूत्र में पिरो धीरज प्रदान करती प्रेम की वह स्रोतस्विनी, श्यामा-श्याम को लाड़, लड़ा, अपूर्व प्रेममयी सेवा का आदर्श बनी वह महाभागा, ब्रज और वृन्दावन को, उसके विस्तृत स्वरूप को, भौतिक चक्षु गोचर वृन्दावन को, गोलोक धाम और प्रकट काल की लीला को एक ही स्वरूप की छाया-प्रतिछाया मानती ब्रज वसुन्धरा की उदार विभूति, सरस भावों का मर्म स्पर्शी वर्णन और भाव प्रधान सरस पदों का सृजन कर एक अपूर्व अभिव्यक्ति करने वाली ब्रज वृन्दावन की वह अपूर्व प्रतिनिधि- ओह ! इस विभूति का पार पाने में कौन समर्थ है भला ?

पूजनीया बोबो हमारे भौतिक चक्षुओं से ओझल अवश्य हो गईं, परन्तु उनकी दिव्य अनुभूति, लीला-प्रवेश, उनका सरस सामीप्य आज भी अपने वातावरण से आप्लावित कर रहा है, अपनी सन्निधि का भान करा रहा है, तथा अनेक अपनों को आश्वासन प्रदान कर रहा है ।

श्री सुशीला बहन जी द्वारा श्री ठाकुर सेवा

अपने सेव्य युगल की सेवा में पूर्णतः व्यस्त रहती थीं पू. बोबो । उन्हीं की अभिन्न प्राणा सखी सहेली श्री सुशीला जी उनकी अन्य सभी प्रकार की सेवा पूर्ण सजगता से करती थीं । श्री ठाकुर जी के भोग राग की व्यवस्था का भार पूर्णतः सुशीला बहन जी पर ही था । इस कारण श्री ठाकुर-सेवा में अधिक सहयोग न दे पाती थीं । पू. बोबो के निकुञ्ज प्रवेश के पश्चात् सेवा कार्य उन्होंने सम्हाला । इतनी कुशलता और पूर्ण सजगता से वे सेवा रत रहती हैं कि शृङ्गार देख सभी कहते हैं ऐसा लगता है पू. बोबो ने ही जैसे शृङ्गार किया है । अनेक बार सेवा पूजा में पू. बोबो द्वारा सहयोग की अनुभूति उन्हें होती रहती है ।

श्री धर्म बहन जी को दर्शन

पिछले दिनों श्री धर्म बहन जी ने देखा, इसी कमरे में जैसे पू. बोबो के साथ वे प्रायः बैठी रहा करती थीं, उसी मुद्रा में बैठी हैं । श्री धर्म बहन जी को यह भान बना है कि पू. बोबो निकुञ्ज प्रवेश कर चुकी हैं। उन्होंने अपनी सहज लटक में पू. बोबो से पूछा, 'अरी बोबो ! अब तो श्याम सुन्दर की अनुभूति तुझे नित्य रहती होगी ।' पू. बोबो बोलीं, 'अनुभूति हां, अनुभूति ही नहीं, श्यामा-श्याम तो सदा अंग-संग ही रहते हैं ।' यह सुन श्री धर्म बहन जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं । दोनों हाथों से पू. बोबो को चिपटा लेने को आगे बढ़ीं, परन्तु वे स्पर्श न कर सकीं । उसी समय पू. बोबो ने कहा, 'धर्म जी ! आप मुझे छू न सकेंगी क्योंकि मैं इस समय आपसे चिन्मय देह से मिली हूँ । यह विचार नहीं है । मैं आपसे प्रत्यक्ष ही मिली हूँ ।'

श्री मनोहर दास जी को दर्शन :

पू. बोबो के निकुञ्ज प्रवेश को कुछ समय हो चुका था । उनसे अत्यन्त आत्मीयता होने पर श्री मनोहर जी पूर्व से ही अपने जन्म दिवस पर उन्हें याद करते रहते थे । इस बार यह अभाव इन्हें खला । परन्तु यह क्या? उसी दिन इन्हें स्वप्न में दीखीं । अत्यन्त आत्मीयता वश इन्होंने उनकी अंक

में अपना शीश टिका दिया। जब वे जगे तो स्मरण करके अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा, इस मिलन की छाप मेरे हृदय पर इतनी गहराई से हुई है कि मुझे लगता रहा मैं उनसे प्रत्यक्ष मिलन से भी अधिक आत्मीयता से मिला हूं। उन्हें वहां भी मेरी स्मृति हुई, मेरा सौभाग्य है।

विजय पर कृपा

पिछले दिनों पू. बोबो दीखीं तन्द्रा सी में, इसे स्वप्न तो अवश्य नहीं कहेंगे, परन्तु जागृति कह कर कैसे छल करें। उनके अगाध प्यार और ममत्व ने उसका जीवन ही बदल दिया था। बहुत छोटी अवस्था से ही उनके प्यार-दुलार से पोषित होता रहा है वह। उसने बतलाया, एक जगह पू. बोबो लेटी हैं एक कपड़ा ओढ़े, अपने ढुरकन के स्वभाववश वह भी उनकी दांई ओर लेट गया। बाल स्वभाववश वह उनसे चिपट गया और उनके मुख पर मुख रख दिया। थोड़ी देर में उसने पू. बोबो से कहा, "मैं भी तुम्हारे पास आ रहा हूँ।" उत्तर में पू. बोबो ने कहा, 'अभी नहीं। काम जो सम्हाल रखा है।' उसके मन में कुछ इस प्रकार के सङ्कल्प-विकल्प उन दिनों उठते ही रहते थे। उसे इससे बहुत बल मिला- यह जान कर कि पुस्तक लिखने में उनका योग बना है और वे बीच-बीच में प्रेरणा भी दे रही हैं।

पू. सुशीला बहन जी के प्रति आत्मीय भाव

दिसम्बर माह सन् १९९३ के प्रारम्भ की बात है पू. बहन जी ने देखा :-

इन्हीं सेव्य युगल के समीप, दीवार के सहारे पू. बोबो किसी मदिर, मधुर तन्मय और मग्न हो कुछ सुन्दर मनहर शब्दों में अभिव्यक्त कर रही हैं। पूरे शब्द तो उन्हें स्मरण नहीं रहे पर किशोरी जी के लिये :

'माधुर्याधिष्ठात्री' - 'सौन्दर्याधिष्ठात्री' - 'लावण्याधिष्ठात्री' शब्दावली पूर्णतः स्मरण है। उनकी अभिव्यक्ति सुनने के लिये मैं, उनके और और समीप हो सुनने लगी। सभी बहन भाईयों के लिये कहा 'रूप माधुरी का चिन्तन करें' पुनः कहा, सभी के लिये 'सहज'-'सहज'-'सहज'।

---

* अम्बाले में ही लगभग सन १९५२ की बात है। पू० बोबो ने अपने कमरे से एक बहुत बड़ा बिछौना घसीट कर कमरे के बाहर वाले वरांडे में ला कर बिछा लिया विश्राम हेतु। सांझ का समय था, अंधेरा सा था। कहीं एक जूता बिछौने के नीचे आ गया था। जब लेटीं वह इनके सिर के नीचे आ गया था- उस जूते को बिछौने के नीचे हाथ देकर श्री ठाकुर जी को निकालते हुए इन्होंने देखा था। यह अनुभूति उन्हें तब सुनाई थी। अब उसकी स्मृति करा दिखलाया कि वे कितना ध्यान रखते हैं।

क्षणिक दृश्य परिवर्तन हुआ उसी समय श्री ठाकुर जी की सन्निधि में दीखीं, बोलीं, ''तुम्हें जूते वाली घटना याद है न !, मेरा कितना ध्यान रखते हैं ।''*

निशा पर कृपा

निशा अरुणाचल में कार्यरत थीं । वहां के स्थानीय लोगों में, बाहर प्रान्त के लोगों के प्रति भावना अच्छी नहीं रही थी । ग्रामीण लोग उत्पात करते रहते थे । प्रतिदिन की भांति वह अपने श्री ठाकुर जी के सामने बैठी कीर्तन कर रही थी कि कुछ आहट हुई, सुन, मुड़कर देखा तो पू. बोबो खड़ी दीखीं । अभी कुछ कह भी न पाई थी कि उन्होंने वहां से चलने का संकेत किया । जब यह चलने को उद्यत हुई तो श्री ठाकुर जी को भी साथ ले लेने के लिये बोल कर कहा । निशा उन्हीं के पीछे हो ली । वहीं कार्यरत उसी के एक सम्बन्धी के घर के मार्ग पर छोड़ अदृश्य हो गईं ।

निशा अब कुछ सजग सी हो स्तब्ध रह गई । अन्ततः अपने उन्हीं सम्बन्धी के यहां रात्रि भर रही । दूसरे दिन भोर में पता चला कि रात्रि में वहां के आदिवासी समाज ने विरोध स्वरूप निशा के घर में भी तोड़ फोड़ की ।

पू. बोबो द्वारा, समय से इस प्रकार सुरक्षित स्थान के लिये प्रेरणा दे ले जाने की बात देख वह गद्गद हो गईं । इस प्रकार की उनकी अनेक घटनाऐं प्रसिद्ध हैं ।

श्री धर्म बहन जी को पुनः दीखीं

पू. श्री धर्म जी के प्रति पू. बोबो का अत्यन्त आत्मीयता पूर्ण सखी भाव रहा । अब भी इसी प्रकार उन्हें प्रतीति कराती रहती हैं ।

एक दिन पू. श्री धर्म बहन जी सेव्य श्री ठाकुर से स्वयं कहती रहीं, (अपनी पंजाबी भाषा में ही) ठाकुर ! तुसीं दस्सो, मैं पाठ करां कि जप, कीर्तन करां कि सत्संग च जावां ।* उन्हें सहज श्री ठाकुर जी की ध्वनि सुनाई दी, (पंजाबी में ही) जो तैनूं चंगा लगदै ।**

श्री ठाकुर-जी का उत्तर अपनी ही भाषा में सुन चकित सी

१. हे ठाकुर ! आप बतलाईये मैं पाठ करूं या जप, कीर्तन करूं अथवा सत्संग में जाऊं ।
२. जो तुझे अच्छा लगता है ।

हुईं और तभी उन्हें जानी पहचानी खिलखिलाहट सुनाई दी, पीछे मुड़कर देखा तो पूज्य बोबो थीं। छेड़ भरी वाणी में मुस्कराते हुए पू. बोबो पूर्व की भांति बोली, 'कितना प्यार है- कितने उदार हैं ये।'

पू० सन्तोष बहन जी को पुनः अनुभूति

पू. सन्तोष बहन जी पू. बोबो के विषय में विभिन्न प्रकार की बातें सुन सुन कर उनके विषय में अधिक जानने को उत्सुक थीं। एक विशेष श्लोक का पाठ कर वे नित्य लेट जातीं। दस दिन तक उन्हें किसी भी प्रकार की अनुभूति न हुई। पीछे उन्हें रात्रि में दीखा रास में सखियों के गोलाकार सामूहिक नृत्य में पू. बोबो भी अपने दिव्य स्वरूप और वेष सहित नृत्य निरत हैं। प्रिया-प्रियतम मध्य में विराजमान हैं। अपने दिव्य स्वरूप में होने पर भी पू. बोबो को बहन जी पहचान रही हैं।

इस प्रकार पू. बोबो ने पू. बहन जी के लिये स्पष्ट किया।

× × ×

इस प्रकार की अनेक अनुभूतियां, संकेत, स्वप्न आदि के माध्यम से बड़े ही स्पष्ट अनुभव करा उन्होंने ज्वलंत विषयों पर अपना अभिमत स्पष्ट किया है।

एक बार श्री श्रीश भाई साहब अपनी किसी मानसिक उलझन से संत्रस्त से थे कि उन्हें पू. बोबो की आवाज़ सुनाई दी 'वृन्दावन चले जाओ' वे यहां चले आए और सभी समाधान हो गया।

× × ×

श्री शान्तनु राणा को अपने महा प्रयाण सम्बन्धी संकेत पूर्व में ही दे दिया था।

× × ×

श्री उमा बहन जी को, जब वे होली पर बरसाना गईं और श्री जी से प्रार्थना कर रही थीं कि 'हम सब बहन भाईयों को अपने उत्सव में सम्मिलित कर लो,' पू० बोबो वहीं अपने दिव्य स्वरूप में खड़ी दीखीं। गुलाल उड़ा रही हैं और देख कर संकेत से कह रही हैं इसी प्रकार उमंग से उत्सव मनाओ।'

× × ×

एक बार राजेश भाई की नौकरी सम्बन्धी कठिनाई चल

रही थी। वह बड़ा ही चिन्तित था। उसके मन में आया पू. बोबो होतीं तो उनसे समाधान कर लेता। इसी विचार में वह सो गया। पू. बोबो दीखीं बोलीं, 'चिन्ता न कर, सब ठीक हो जायेगा।' यदि कोई कठिनाई हुआ करे तो वृन्दावन में सूत जी (पू० सुशीला बहन जी) के पास चला जाया कर। दूसरे दिन वह कार्यालय गया– तो सभी उसके पक्ष में निर्णय हो गया। वहीं से सीधा वह वृन्दावन चला आया–तथा यह घटना सुनाई।

स्वजनों को पग–पग पर आश्वासन देतीं, उनसे प्रकट में मिल, मार्ग निर्देशन करती पू. बोबो की अनुभूति और सन्निधि का भान, अनुभव, निरन्तर सभी को बना रहता है। उनका पूर्ववत् सहयोग परोक्ष और अपरोक्ष रूप में समय–समय पर सभी बहन भाई पा रहे हैं।

❑ ❑ ❑

सामने से क्रमशः दांए से बांए काकी, पू. भैया, बहन कामदा जिसने पू. बोबो के साथ साथ ही महाप्रयाण किया, सन्तोष गुप्ता, पू. बोबो, राजदुलारी, श्री विमला जी सरोज तथा तृप्ता

इक्यावन

उपसंहार
अद्भुत सामर्थ्य

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च, कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो, वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥ ***

सन्तों तथा भक्तों की महिमा कह पाना साधारणतः सम्भव नहीं है । देखकर, सही मूल्याङ्कन करना भी असम्भव है । एक ही श्रेणी के सन्तों के विषय में यह आवश्यक नहीं कि वे एक दूसरे की स्थिति को, अनुभूति को पूर्णतः जान सकें, परन्तु यह निर्विवाद है कि उनका विलक्षण चरित्र, विचित्र रहनी तथा कल्पनातीत स्थिति यत्किञ्चित् उनके हाव भाव से, उनके वातावरण से प्रकट अवश्य होती रहती है । उनका महाप्रयाण भी एक लीला कौतुक ही होता है । उसके पश्चात् भी वे पूर्ववत् प्रकट और प्रत्यक्ष बने रहते हैं । यद्यपि उनके जीवन में चमत्कारों के लिये विशेष स्थान नहीं रहता फिर भी अनायास ही भगवान कुछ इस प्रकार की घटनाओं का प्रकाश कर उनके व्यक्तित्व का अता-पता अवश्य देते हैं, हमारा इतिहास भरा पड़ा है तथा भक्तमाल तो यशोगाथा बन साक्षी है । सन्तों की सामर्थ्य कल्पनातीत होती है ।

पूजनीया बोबो की अद्भुत स्थिति/सामर्थ्य का यत्किञ्चित् अनुमान पाठकगण अवश्य कर ही चुके होंगे । उनकी एक ऐसी अभूतपूर्व, सामर्थ्यपूर्ण घटना के विषय में मैं वर्णन करने जा रहा हूँ जिसका उदाहरण आज के युग में असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है ।

पू. बोबो के निकुञ्ज लीला प्रवेश की स्थिति, जो भी स्वजन वहां उपस्थित थे, उन्होंने देखी ही है । इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रकट तथा सजग रूप में नेत्रों का सरस संचालन, प्रिया प्रियतम की ओर नेत्र गोलकों का पूरे घूम जाना, विलक्षण स्थिति है । मुझे नहीं लगता, ऐसा उदाहरण कोई अन्य रहा होगा ।

हाँ, तो अगले दिन पू. बोबो की इच्छानुसार उन्हें श्री यमुना की सतत सन्निधि, जिसके लिये उनके मन-प्राण आतुर बने रहते थे, प्रिया-

***कल्पतरु के समान समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले, करुणा के सागर, पतितों को सर्वथा पावन करने वाले वैष्णव महानुभावों को प्रणाम है ।

प्रियतम उसी तटीय निकुञ्ज का संकेत पहिले ही कर बुला रहे थे, सदा-सदा उनकी सन्निकटता हेतु सभी उपक्रम सज चुके थे ....। उसी मिलन लीला हेतु ले जाते समय, उन्हीं की एक अनन्या कृपापात्री 'कामदा' बहिन ने पू. बोबो के श्री चरणों में प्रणाम किया और प्रार्थना की, 'बोबो ! मुझे भी साथ ले चलो। मुझे भी ले चलो।' उसी समय वह बहन यमुना तट पर उन्हीं के साथ चल दी, मानों पूर्व से ही तैयारी करके आई थी। धन्य है, इस अभूतपूर्व घटना को, अतुलनीय अद्भुत सामर्थ्यवान गुरु को तथा पूर्ण निर्भर, वृन्दावन रस पिपासु शिष्या को।

इतिहास साक्षी बना दोहराता रहेगा, उपस्थित स्वजन इस सामर्थ्य का वर्णन करते-करते थक जाऐंगे, पृष्ठ के पृष्ठ लिख बखान करती करती लेखनी रुक जाएगी, परन्तु यह महिमा स्वर्ण अक्षरों में अंकित हो सभी के लिये आलोक-स्तम्भ बनी मार्ग प्रशस्त करती रहेगी।

ऐसे अनाज्ञात, अप्रमेय, महिमाशाली गुरु को शत-शत नमन।

❑❑❑

१३-१२-५३ को विजय को लिखे पत्र से

... अनंग रंग के सागर हैं यह नागर अभिनन्दन-बन्धु। 'अनंग' क्या है प्रिय! यहाँ स्थूल अंगों तक ही रस-प्रवाह सीमित नहीं है — वही 'अनंग-रंग' है। भौतिक काम तो 'रंग' नहीं रहने देता, 'बदरंग' कर देता है हृदय की सरसीली जन्मभूमि को। यह है 'अनंग-रंग' जिसमें एक बार लीन हो जाने पर ---- और! लेखनी कैसे व्यक्त करे उस सुख-समुदाय को, उस सरस संगीत को, उस रसात्मिक गतिविधि को --- उस रसपूरित सौभाग्य को? हाँ, तो अनंग रंग के इन सागर के अन्तर में ज्वार पड़ते हैं, उनमें लहरें उठती रहती हैं, प्यास-तरंगें उन लहरों से मन की प्रेयसियों के रोम-रोम में नवल रस संचार कर देती हैं --- और वे बावरी रस-विवश हुई-सी, कुल वधू से अपनी सभी लोकलाज को तिलांजलि दे, कुलकानि को त्याग कर आ जाती हैं इस रससिन्धु के अंक में विश्राम पाने को। उनकी अधीर, आतुर तरंगमालाओं को इन अनंगरंग सागर के विशाल अन्तर हृदय में विश्राम मिलता है। उनकी तरंगें एवं चंचल यह लालायें संवेग-स्पंदित होती हैं और इस महा-अनुभूति में ही लय हो ...... पता नहीं क्या कहता जा रहा हूँ पगला। हाँ, फिर भी --- लवलीनता पर भी सरिता, सरिता ही रहती है और सागर, सागर ही। प्रेम की इस अद्भुत जादूगरी में लय होने पर भी अस्तित्व बना रहता है --- पर 'अहं' के कारण नहीं -- प्रणय के उपभोग हेतु -- प्रियतम को और रसदान करने के निमित्त। यही है प्रेमियों का अद्वैत ... जिसमें द्वैत और अद्वैत दोनों ही थे।

बहन जी की अनुभूति

हाँ, तो कल पड़ी रही कम्बल ओढ़े। मन कुछ खिन्न सा था। सहसा उस झुंझलाहट में झूले हिन्डोलों की स्वभाव गति रासेश्वरी श्री श्रीराधा का स्मरण हो आया। झुंझलाहट तो तुम पर थी। उन्हीं से तुम्हारी शिकायत कर दी। तभी क्या देखती हूं कि अपने दाहिने कर सरोज से तुम्हारा वाम पाणिपंकज थामे श्री श्री राधिका तुम्हें कहीं से ला रही हैं। तुम ऊपर की सीढ़ी पर हो और वह नीचे की पर। उनके हाथ में तुम्हारा हाथ है। दूसरी ओर एक कोई महाभागा और थीं पर मैं उन्हें ठीक नहीं देख पाई, वह कुछ दूर खड़ी थीं। श्रीराधा की साड़ी कुछ किशमिशी से रंग की थी, उस पर सुनहरी ज़री की धारियां सी थीं झिलमिल झिलमिल कर रही थी साड़ी। वे निचली सीढ़ी पर खड़ी ऊपर को मुख उठाये, मुस्कराकर तुम्हें नीचे उतरने का संकेत कर रही थीं। तुम्हारा मुख उतना स्पष्ट स्मरण नहीं है, तुम पर झुंझलाहट जो

पर तुम्हारा शरारत भरा, ~~खिजाने~~ खिजाने की क्षमता परिपूर्ण मुखमण्डल कुछ-कुछ स्मरण है। अधरों पर मृदु हास और नयनों में मादक चपलता लिये तुम खड़े थे

ब्रज विभव की अपूर्व श्री

द्वितीय भाग

कतिपय अनुभूति प्रसङ्ग

भक्तिमती ऊषा बहन जी

(पू० बोबो)

देख सखी चलि कुञ्ज कक्ष में–
उरझनि अद्भुत हार बार की ।
कर्ण फूल कुण्डल की उरझनि,
कहत कहानी रस प्रसार की ।।
उरझनि उरझावनि चितवनि की
अति विचित्र गति रति सुमार की ।।
ललक छलक मनुहार रार की ।

कतिपय अनुभूतिप्रसंग

आओ बैठें जमुना तट पै
वंशीवट की छाँह।।
छबीली! वंशी वट की छाँह।।
यों कहि उन पकर्‌यो कर मेरो,
कटि मँह डारी बाँह।।
अति सनेह उन चितयो मोतन,
काह करौं वह रूप विमोहन,
हौं लखि रीझि रही री आली!
मुख ते कढ़ी न नाँह।
सैननि सों हौं हाँ, कहि दीन्हीं,
दुहुँकर रसिक बलैया लीन्हीं।
चिबुक परसि झाँक्यो मो नैननि,
भरि अनुराग उमाँह।। सखीरी–
हौं आँचर लै, मूँदें नैना,
वे स्रवननि बोले रसबैना,
आँचर खैंच्यो, कर मेरो झटक्यो,
बाढ़्यो प्रेम प्रवाह।। सखी तब–

भाव-रति

अनुभूति

शुद्ध सत्त्वविशेषात्मा प्रेम सूर्य्यांशुसाम्यभाक् ।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते ॥***

भक्ति रसामृत सिन्धु/३/१

शुद्ध तथा सात्विक भाव से अपने प्रेमास्पद के चरणों में प्रीतिपूर्वक समर्पण, जो हृदय को बरबस ही द्रवित कर दे, उसी को प्रीति अथवा भक्ति कहते हैं । नैसर्गिक प्रेमपूर्ण आवेश तथा तन्मयतापूर्ण भक्ति को ही रागात्मिका भक्ति की संज्ञा दे स्पष्ट किया गया है ।

अपने इष्ट की कथा, पूजा-अर्चा में मन जब सहज ही द्रवित होता हो, अपना सर्वस्व अपने प्रेमास्पद के श्री चरणों में निवेदन कर दे तथा यत्किञ्चित् अभाव भी जब खलने लगता हो, प्राण व्याकुल हो जाते हों तो समझो कृपावृष्टि का समय आ गया । जब हम अपना सर्वस्व अर्पित कर चुके हैं तो विस्मृति का कोई औचित्य नहीं लगता । यथा :-

नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलेति

ना० भा० सूत्र/१९

प्रेम पथ बड़ा ही विचित्र है । इसकी गति कुटिल है । दूर रहने पर भी समान धर्मियों में प्रेम का स्वाभाविक विकास झलकता है । सामीप्य न रहने पर भी अत्यन्त परिष्कृत होकर भक्ति का स्वरूप निखरता है । चन्द्रमा तथा समुद्र का नित्य और शाश्वत सम्बन्ध है । सूर्य के उगते ही जलज में चैतन्य का संचार हो जाता है तथा वह खिल उठता है, कोसों दूर होने पर भी घनों के घुमड़ते ही चातक सजग हो उठता है, केकी समूह का उल्लास गूंज उठता है, पुष्प के विकसित होते ही भ्रमर का नैसर्गिक प्रेम प्रवाह उसे वहीं खींच लाता है । यह मन का सहज लगाव है- जिसे प्रीति ही कहा जायेगा ।

श्यामा-श्याम के चरणों में पूर्ण आवेश सहित भक्ति,

*** शुद्ध सत्व विशेष स्वरूपा, प्रेम रूपी सूर्य की देदीप्यमान किरण मालिकावत्, रुचि पूर्वक (अपने इष्ट सम्बन्धी कथा-पूजा आदि) वार्ता द्वारा चित्त की द्रवणता ही भाव कहलाता है ।

प्रेमास्पद को आकर्षित कर लेती है। जिस क्रम से हमारे मन का सहज द्रवण होता है- अपने प्रेमास्पद के प्रति हमारी समस्त इन्द्रियां चारों ओर से सिमट पूर्णतः न्योछावर हो जाती हैं, वही हमारा भाव है। पहले श्रद्धा, फिर सङ्ग, तदुपरान्त भजन, अनर्थ निवृत्ति, फिर निष्ठा और उससे रुचि, आसक्ति, भाव, तदनुसार प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। प्रेम, प्रेमी और प्रेम पात्र अलग-अलग नहीं है :

त्रिधाप्येकं सदागम्यं गम्यमेक प्रभेदने ॥
प्रेम, प्रेमी प्रेमपात्रं त्रितयं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥***

सू० सु०/५८

'भाव' और 'रति' अन्योन्याश्रित हैं। परिपक्व होकर भाव ही जब प्रेम का रूप धारण कर लेता है तभी प्रेम के वशीभूत हो प्रेमास्पद प्रत्यक्ष हो जाते हैं। प्रत्यक्ष दर्शन, सामीप्य में परिणत हो परस्पर चर्चा/वार्ता का रूप ले, संस्पर्श और फिर लीला विहार, कुञ्ज तथा निकुञ्ज विहार में परिणत हो जिन क्रमों से प्रेम का आस्वादन करवाने में सक्षम है, तथा सतत आस्वादन कराता रहता है- वही हमारी अनुभूति है। अनुभव स्वानुभूति का विषय है। इसका न तो कोई क्रम ही है और न कोई विधान। अनुभूति एक स्वतंत्र विधा है। सार्वजनिक तो इसे अवश्य माना नहीं जा सकता- तर्क सङ्गत होने पर भी इसे स्वतंत्र ही मानना होगा। प्रेमास्पद सामने उपलब्ध हो रहे हैं- उमग कर जिस भांति हम उन्हें अपना सर्वस्व समर्पित कर न्योछावर हो जाते हैं, उसे ही भाव की संज्ञा देनी होगी।

यह विषय इतना स्वतंत्र है कि किसी भी मर्यादा अथवा इयत्ता में बांध इसे ससीम नहीं किया जा सकता। प्रेमियों की बात जाननी है तो प्रेमियों की ही-शरण में जाना होगा। उसके लिये किसी भी मर्यादा अथवा बन्धन का क्रम नहीं हो सकता। जिस प्रकार प्रेम की गति स्वतंत्र है, इसी प्रकार अनुभव का स्वरूप भी स्वतंत्र है। अतः प्रेमियों की बात, उनकी अनुभूति, मन का सहज द्रवण, उसका रसीला सत्कार-यह सब अनुभूति का विषय है। अनुभव को व्यक्त नहीं किया जा सकता फिर भी प्रेमियों की किसी उमंग तरंग में रस कण छलक कर यत्किञ्चित् अभिव्यक्ति के स्रोत ढूंढते रहे हैं, उनके संग्रह का माध्यम क्या बना, यह सब कैसे कहें ?

*** प्रेम, प्रेमी और प्रेम पात्र तीन होकर भी एक ही हैं, ये सदा पहचानने में नहीं आते। इन्हें एक रूप ही जानना चाहिये।

श्री मन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने अनेक जगह उद्धरण देकर 'भाव अथवा रति को तर्क की कसौटी पर परखा नहीं जा सकता' इस मत की पुष्टि की है :-

'अलौकिका खलु ये भावाः न तांस्तर्केण योजयेत्'

अतः अनुभूति को अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में, भावानुभावों के क्रमानुसार, हृदय के समर्पण तथा द्रवण के आधार पर ही यत्किञ्चित् समझने का प्रयास किया जा सकता है। यह एक परम गोपनीय, वैयक्तिक तथा स्वानुभव का विषय होने पर भी तर्क सङ्गत अवश्य होता है।

पू० बोबो की अनुभूति के विषय में अलग से क्या कहूँ? उनके जीवन प्रसङ्गों में यथा स्थान, यथा-प्रसङ्ग उसका वर्णन हुआ ही है; उनके जीवन को, उनकी रहनी को देख कर लगा जैसे उनका सम्पूर्ण जीवन एक अलौकिक वातावरण में विकसित हुआ। जिस दिव्य भाव में वे नित्य और निरन्तर रसास्वादनरत रहीं- माधुर्याम्बुधि की सरसीली वीचियों में सतत अवगाहन करती रहीं (अथवा उनका जीवन उस सबसे निरन्तर सिक्त और सिञ्चित् रहा) उस भाव को उन्होंने सप्रयास इतना गोपनीय रखा कि उनके सम्पर्क में आने वाले सन्त महात्मा भी उनके दैन्य और कोमलतम स्वभाव से प्रभावित हुए इतने अधिक समर्पित रहे कि उनके व्यक्तित्व को, अनुभूति को जानने का विचार ही न कर सके।

जिसके जीवन का क्षण प्रतिक्षण, अनुभूतिमय रहा हो, जिसकी प्रत्येक क्रिया में रसानुभूति झलकती रही हो- श्यामा-श्याम का सतत संग-सानिध्य जिसके जीवन में सहज रहा हो- उसकी किस क्रिया को, किस चर्चा को अलग से अनुभूति के परिवृत्त में रखें- अतः अपनी अभिन्न प्राणा सखी, हम सभी बहन भाइयों के लिये परम पूजनीया, श्री सुशीला बहन जी को संकेत कर समय-समय पर वर्णित यत्किञ्चित् भाव लहरियाँ, जिन्हें बहन जी ने पू. बोबो से छिपा कर संग्रहीत किया (एक बार कुछ कागज़ देखते में हमारी चरित्र नायक ने कहीं-कहीं किसी शब्द को बदला, इससे उनकी सहमति का अनुमान हो सका) वही पू० बोबो के अन्तस् की तरंगें हमारे सामने प्रकाशित हुईं। ऐसी अनेक रसानुभूतियों में कुछ तो यथा प्रसङ्ग उनकी जीवनी में आ चुकी हैं; शेष में से कुछ, इसी अध्याय में प्रस्तुत की जा रही हैं। ग्रन्थ-विस्तार के भय से कुछ प्रसङ्गों को भविष्य में अलग से हम प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।

रसानुभव की बात जाननी है तो इसी के परिप्रेक्ष्य में, इन्हीं मर्यादाओं में बंध हमें विषय को स्वीकार करना होगा। हीरे-जवाहरात के लिये जौहरी की ही परख को मान्यता देनी होगी, प्रेम की गरिमा को प्रेमी ही बता सकेगा, जल की गहराई का अता-पता उसमें डुबकी लगा कर ही लग सकेगा, हमारी माँग किसी भी सांसारिक वस्तु की नहीं है, अध्यात्म जगत की रसानुभूति के लिये किसी महान विरक्त, प्रिया-प्रियतम के श्री चरणों में पूर्णतः अनुरक्त, जग प्रपञ्चों से दूर, किसी भी भौतिक ऐश्वर्य के प्रति सर्वथा उदासीन, माधुर्य तथा लावण्य से युत, प्रेम सिन्धु की रस तरङ्गों में आस्वादन-रत किसी विरले सन्त की खोज करनी होगी- खोज करने की सामर्थ्य भी हम में नहीं है तो आइये सहज, साधारणतः सभी में घुल-मिल सभी को सहज उपलब्ध उन महाभागा की रसानुभूतियों का, उन्हीं से प्रार्थना कर उन्हीं की कृपा से आस्वादन करें, समझने का प्रयास करें। अन्यथा महज्जनों की अनुकम्पा के बिना तो यह विषय सर्वथा अगम्य ही है।

अनुभव प्रसङ्गों को हमने ज्यौं का त्यौं प्रस्तुत करने का अपना पूरा पूरा प्रयास किया है, फिर भी कुछ प्रसङ्गों को रिक्त स्थान छोड़ कर अथवा वर्णन करने में कौन समर्थ है भला अथवा 'आगे की बात वे ही जानें' कह कर ही अपना अभिमत स्पष्ट किया है। रसिक तथा विज्ञ महानुभाव निश्चय ही भाव ग्रहण कर सकेंगे।

❑ ❑ ❑

मदनोत्सव / वसंतोत्सव

पूजनीया बोबो का मौन प्रारम्भ हुये कुछ मास बीत चुके थे। वे मौन में किसी से भी कुछ बात नहीं करती थीं, परन्तु श्री सुशीला बहन जी आदि स्वजनों से कदाचित् कोई बात कर लेती थीं। मौन के दिनों में इनका मन बहुत ही चुप-चुप रहने लगा। अनेक बार प्रसन्नता की लहरें इतनी आवेग से प्रस्फुटित होतीं कि कल्पना से दूर की बात हो जाती। अनेक बार ये बहुत ही गम्भीर हो जाया करतीं। इनकी इस प्रफुल्ल और गम्भीर स्थिति में केवल मात्र श्यामा-श्याम की लीला, उनकी सन्निधि ही हेतु होता। इस बार चुप-चुप रहते कुछ समय अधिक हो गया। उनका यह मौन वाणी से आगे नेत्रों में भी झलकने लगा।

मौन के इन्हीं दिनों में अपनी अत्यन्त प्रिया (पू० बोबो) को श्यामसुन्दर ने एक संकेत दे सरसा दिया। सन् १९६७ के अन्तिम दिनों में श्याम सुन्दर ने आश्वासन दिया कि *इस बार के मदनोत्सव में तुम सम्मिलित हो सकोगी।* मदनोत्सव में कन्दर्प कलशों से अर्चना होती है। उस दिन से पू० बोबो नित्य, वसन्त की प्रतीक्षा में रहने लगीं। बड़ी बेचैनी और व्यग्र लालसा से अनुप्राणित हो 'वसन्त कब आऐगा' 'वसन्त कब आऐगा,' प्रतीक्षारत रहतीं। कभी-कभी अत्यन्त उदास और खिन्न भी हो जाया करतीं।

प्रतीक्षा के इन्हीं दिनों में इन्होंने अपने अभाव को कभी-कभी प्रकट भी किया है। एक जगह कह रही हैं :-

'पहले तुम कहते रहे मदनोत्सव की बात।
फिर दिन होली फाग के क्यों नीरस से जात॥'

पहले पाए प्यार दुलार में भरी, उसी की स्मृति में आलोड़ित हो एक अन्य स्थान पर अपने मन की कह रही हैं :-

"लाड़ प्यार सों भर जिसे, सहलाया निज हाथ।
अब भी तो मैं वही हूं, वही तुम्हारी नाथ॥"

भावों ने करवट बदली, अभाव के वे क्षण मिलन की आशा अभिलाषा लिये दिखलाई देने लगे, श्याम सुन्दर की छवि किरण झलकने लगी। वे मूर्त हो आश्वस्त करने लगे। इन्हीं आशा पूर्ण क्षणों में प्रफुल्लित हुई पू० बोबो कहने लगीं :

अब फिर मन में चैन है, प्राणों में विश्राम ।
मन में फिर आशा जगी, आवेंगे घनश्याम ॥

और यह लो ! आशा प्रत्यक्ष हो गई । इसी प्रसन्नता में भर उछल पड़ा उनका हृदय । लेखनी सरस होकर उनकी आवनि में मग्न हो गई ।

चपल नयन चितवनि चपल
मुख मुस्कान अमन्द ।
झूमत आवत भवन ते
मोहन मत्त गयन्द ॥

(श्याम सुन्दर झूम में भरे मत्त गयन्द की सी चाल से सामने ही आते हुये दीखे ।)

इन्हीं दिनों एक घने वृक्ष के चारों ओर एक मण्डप सा दीखा । खूब सजा सजाया, चारों ओर हरियाली से आवृत्त एक चबूतरा; उससे कुछ दूरी पर एक नव वयस्का किशोरी एक फूल तथा एक पत्ता सा कुछ हाथ में लिये खड़ी है । यह सब अधूरा सा ही दिखलाई दिया । इसे देख ये और अधिक खिन्न हो गईं । 'दिखलाई भी दिया मुझे पर वह सब अधूरा अधूरा सा । पूरी तरह जो कुछ दीखना था– वह क्यों नहीं दीखा भला !' इस बात ने इनकी मनः स्थिति को किञ्चित् और गम्भीर कर दिया ।

२०.१.६८ को इन्हें दीखी, भोर कालीन लीला । उसी का ब्योरा हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :–

'भोरकालीन लीला'

"नि कुञ्ज में एक शयन कक्ष (प्रायः इन्हें दीखा करता है– वह) दीखा । उसी में सोफ़ा नुमा एक शय्या जो प्रायः इन्हें दीखा करती है, वह भी दीखी । उस शय्या पर प्रिया–प्रियतम दोनों ही आसीन हैं, प्रियाजी ने प्रियतम के स्कन्ध पर अपना सुभग शीश टिका रखा है । पू० बोबो उस लता कक्ष के झरोखे के पास उदास खिन्न सी खड़ी, इन दोनों को निहार रहीं हैं। मन में यह विचार भी आ रहा है कि प्रिया–प्रियतम क्या सोचते होंगे कि 'मैं इस प्रकार खड़ी देख रही हूँ ।' इतने में देखती हैं– प्रिया जी ने श्याम सुन्दर को झरोखे की ओर संकेत कर उनका ध्यान इनकी (पू० बोबो की) ओर आकर्षित किया । प्रियतम के हाथ में कुछ अभ्रक मिश्रित गुलाल है । श्याम सुन्दर ने वह गुलाल तथा अभ्रक प्रिया जी के वस्त्रों (कंचुकी) में भर दिया।

इनके मन में उस को प्रसादी रूप में प्राप्त करने की लालसा बनी है । बहुत ही उदास और चुप सी देख रही हैं .... । उसी क्षण इन्हें लगा, जैसे पीछे से आकर किसी ने इनके शीश पर हाथ धरा है । इन्होंने पीछे की ओर घूम कर देखा तो वह श्रीललिता जी थीं । उन्होंने पकड़ कर इन्हें अपने हृदय से लगा लिया और विशाखा जी इनकी भुजा को अपने कोमल कर से सहलाती रहीं, अपना कर सरोरुह इनकी भुजा पर फिराती रहीं ।

इन्होंने देखा, इनका यह रूप तिरोहित हो गया । ललिता जी के हृदय से लगाते ही इनका रूप, इनका वेश सर्वथा बदल गया । एक नव वयस्का किशोरी हो उन्हीं सखियों में सम्मिलित हो गईं । पीले रंग की इनकी साड़ी है, इसी रंग का ब्लाउज़ धारण किये हैं । श्रीललिता और विशाखा की भी पीली साड़ियां हैं । विशाखा जी ने कुछ हरित सी शनील की शॉल ओढ़ रखी है। श्री ललिता जी की नीली सी है । श्री ललिता जी ने एक डलिया सी इनके हाथ में देते हुये कहा कि जा, तू बसंती फूल चुन ला । उन्होंने यह विचार कर कि फूल तोड़ने बाहर जायेगी, ठंड है अपनी नीली शाल इन्हें ओढ़ा दी । ''यह सोच रही हैं कि श्री ललिता जी ने अपनी शॉल तो मुझे ओढ़ा दी– वे स्वयं क्या ओढ़ेंगी । तभी इन्होंने देखा श्री ललिता जी ने एक और शॉल ओढ़ रखी है ।

पू. बोबो अपने दिव्य स्वरूप में ही उस कुञ्ज कक्ष के उपवन में फूल चुनने प्रविष्ट हुईं । दो चार पुष्प तोड़कर इन्होंने उस डलिया में डाल भी लिये । इस भौतिक दृष्टि गोचर होती देह से इन्होंने कभी भी फूल पत्ता तक नहीं तोड़ा– अत्यन्त कोमल मन होने के कारण कभी तुलसी दल भी न चयन करतीं । वहीं देखती हैं श्री ठाकुर चले आ रहे हैं । इनके स्कन्ध पर अपना कर सरोरुह धर, इनका मुख ऊपर उठा कर बड़े सान्त्वना पूर्ण शब्दों में प्यार भरी मधुर वाणी में बोले, ''घबराने की क्या बात है, सब ठीक हो जायेगा .... ।'' यह आश्वासन भरे शब्द इनके कानों में गूँजते रहे । यह और भी विह्वल सी हो गईं । इस प्रसङ्ग को सुनाते–सुनाते भी इनकी स्थिति .... ! गद्‌गद पुलकित नेत्रों से अश्रु प्रवाह ! और–और विह्वल होती जा रही थीं ।

श्याम सुन्दर ने इन्हीं की डलिया में से एक फूल उठा, उसी गुच्छे में एक आसमानी और एक श्वेत पुष्प है, तथा थोड़े पत्ते हैं, इनकी कुंचुकी में धारण करा दिया । किसी अन्य सखी द्वारा देख कर बाद में व्यंग्य विनोद की आशंका वश पू० बोबो किञ्चित् भीत सी हो गईं । श्याम सुन्दर

बोले, 'डरो मत; यहां कोई किसी को कुछ नहीं कहता, सब परस्पर जानती हैं। सभी के साथ यहां एक सा ही होता है। श्याम सुन्दर के पास कुछ अभ्रक और गुलाल भी था। उन्होंने इनके मस्तक पर धारण कराया और कहा, 'यह उन्होंने (प्रियाजी ने) तुम्हारे लिये भेजा है'' प्रियतम अब चले गये ..... जाते जाते उस डलिया में से एक छोटा पुष्प गुच्छ अपने साथ ले गये और जाकर प्रिया जी की कंचुकी में धारण करा दिया। यह उसी स्थान पर लौट आईं, किञ्चित् भीत सी, श्री ललिता जी क्या कहेंगी कि इतनी देर लगा कर आई है और थोड़े से फूल लाई है।

अब देखती हैं, वही जो अधूरा सा मण्डप पूर्व में दीखा था, वही है तथा उस वृक्ष के पास अब एक मेज़ सी रखी है। उस पर इत्रदान, फूलदान, वही फूल-पत्ता जो वह नव वयस्का लिये थी, वह भी वहीं रखा है, और भी अनेक सखियाँ अपने हाथों में कुछ लिये वहीं चली आ रही हैं और उसी मण्डप में ला कर रख रही हैं। कुछ ने उसी मेज़ पर रख दिया। सभी ने पीले रंग की (कुछ-कुछ अन्तर सहित) साड़ियां पहनी हुई हैं। श्री ललिता जी ने रसमयी (बोबो) से कहा, ''देखो ! उस दिन तो उतना ही था, आज पूरा आयोजन हुआ है इस मण्डप का।''

अब यह देख रही हैं, प्रिया-प्रियतम उस निकुञ्ज कक्ष से निकल कर आ रहे हैं। श्री राधा ने पीली साड़ी धारण कर रखी है। उस पर नीले टिपारे लगे हैं और उन टिपारों में नग बहुत ही झिलमिल-झिलमिल कर रहे हैं। (यह बता नहीं पा रही थीं उस झिलमिलाहट को। वही झिलमिलाहट अब भी इनके नेत्रों में समा रही है, पर वाणी असमर्थ है, 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी)'' श्री राधा जी ने बहुत ही सुन्दर हरे रंग की सलमें के काम की शॉल ओढ़ रखी है और इन्होंने (श्री ठाकुर ने) लाखे से रंग की जब यह दोनों चले आ रहे थे तो श्री ललिता श्याम सुन्दर की ओर तथा विशाखा जी श्री राधा की ओर साथ-साथ चली आ रही थीं। श्री राधा जी ने स्नेह वश अपनी शॉल विशाखा जी को ओढ़ा दी और उनकी स्वयं ओढ़ ली। श्याम सुन्दर ने अपनी शॉल श्री ललिता जी से बदल ली। यह सब स्नेह मिश्रित कौतुक ही है।

प्रिया-प्रियतम ने उसी मण्डप में प्रवेश किया। एक सखी ने अपनी ओढ़नी वहां बिछा रखी थी। वहां रखे इत्रदान को जब छुआ तो उसमें से छः प्रकार की मधुर भीनी सुगंध के फव्वारे से छूट गए और दोनों (प्रिया-प्रियतम) को अद्‌भुत सुगन्ध में मज्जित कर दिया। उसी फूल पत्ते

रसमयी अनुभूतियाँ

होरी भई कि भई चितचोरी।

आज अचानक नन्द कुंवरवर

आन मली मुख रोरी, सौंधे बोरी।।

हों चौंकी वे विहंसि परे री

बांह पकरि झकझोरी, कहि हो होरी।।

बंकिम तिलक नैन अनियारे

आन भांति चितयोरी, मेलि ठगौरी।।

वे छलिया छलबल बहु जानत

जानत हैं बरजोरी, सखि हौं भोरी।।

को इन्होंने उठाया और घुमाया तो इन दोनों के मुख पर केशर के छींटे सुशोभित हो गये। उस फूल-पत्ते से केशर मिश्रित मन्द मन्द फुहारें फूट पड़ीं सभी उन फुहारों से भीज से गये। वे इसी प्रकार वहां रखी सभी चीजों को छू छूकर कौतुक सा कर रहे थे। सभी प्रसन्न वदन थीं वहां।

उन्हीं सखियों में से किसी ने कहा, 'ऐसी ऐसी पांच लीलाऐं होती हैं मदनोत्सव की। यह भोरकालीन लीला है। मध्याह्न कालीन, अपराह्न कालीन, संध्या कालीन तथा निशा कालीन। यह लीला पू. बोबो ने अपनी इसी देह से जागते में देखी- सुबह संकीर्तन और संकीर्तन के बाद लेटे हुये, वसंत को दोपहर में भी देखी।'

मध्याह्न कालीन लीला (२३.२.६८)

मध्याह्न का सा ही समय होगा। जैसे सुबह दस बजे के आसपास का समय हो। धूप खूब चढ़ी हुई है परन्तु एक सुखद सुहावनापन लग रहा है। उसी निकुञ्ज के आस-पास खुले उपवनीय प्राङ्गण में अनेक फूल खिल रहे हैं। उनमें वसन्ती फूल मानों अन्य पुष्पों की छवि को भी चुराए ले रहे हैं, उन्हीं पुष्पों की मादक सुगन्धि चारों और व्याप्त हो रही है। बीच-बीच में मतवारे भ्रमर एक ओर से दूसरी ओर को उड़ जाते हैं। अनेक सखियां रंग बिरंगे परिधान धारण किये पुष्प चयन करने में इतनी अधिक संलग्न और मग्न हैं कि एक दूसरी का मानों भान ही न हो।

केशरिया पीला पटुका पहने उसी समीपवर्ती निकुञ्ज में से निकल कर श्याम सुन्दर अकेले वहीं चले आये। हाथ में एक छोटी सी अत्यन्त चमकीली स्वर्णिम शीशी जैसी है। एक शिला पर खड़े हो प्रियतम श्याम सुन्दर ने उस शीशी को तनिक दबाया। उसमें से घुली हुई केशर की फुहारें निकलीं, चारों ओर सुगन्धि परिव्याप्त हो गई। सभी सखियों पर रस की छीटें पड़ीं। वे सभी विस्मय विमुग्ध सी चौंक गईं। सभी के मुख कमल स्वतः ही श्यामसुन्दर की ओर घूम गये। सखियों के विस्मय विमुग्ध आश्चर्य तथा आह्लाद पूर्ण मुख मण्डल देखने ही योग्य हो रहे हैं। इतने में श्री राधा भी उस निकुञ्ज से निकल कर यहीं आ गईं। उन्होंने पीत वर्ण की साड़ी धारणकर रखी है। उसमें से दो रंगों की सिन्दूरी और पीली झलक निकल रही है। उस साड़ी की झिलमिलाहट से उद्भासित स्थली को देख लगता है मानों सूर्य तथा चन्द्रमा की आभा छिटक रही हो। (वह झिलमिलाहट उनके

नेत्रों में अभी भी समा रही है) उनके (श्री राधा) दोनों ओर दो सखियां हैं। श्री राधा जी जाकर प्रियतम के पीछे खड़ी हो गईं और उनके स्कन्ध पर अपना कर सरोरुह धर दिया। उन्होंने प्रणय पगी चितवन से, विस्मय-विमुग्ध होकर देखा। नेत्रों ही नेत्रों में न जाने क्या-क्या-क्या हो गया।

इतने में एक सखी ने आकर एक छोटी सी डिबिया श्री राधा के कर कञ्ज में दे दी और उनका कर पकड़ अपने साथ ले आई। उसमें से तीन रंगों की (पीली, गुलाबी और मटियाली) सुगन्धित फुहारें निकलीं, पर श्री राधा, प्रियतम श्याम सुन्दर की प्रणय पूर्ण चितवन से इतनी प्रणय विह्वला थीं कि उनसे वह डिबिया भी दबाई न गई। उस डिबिया को उस सखी ने तनिक दबाया। डिबिया के दबाते ही उसमें से तीन रंग की फुहारें निकलीं और प्रियतम को रंजित करने लगीं। उधर से विस्मय-विमुग्ध, प्रणय-भीनी सखियों को और तो कुछ सूझा नहीं, बीने हुए पुष्पों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। वसंती पुष्पों की वर्षा उस धूप में अति मनोरम लग रही थी। वहां फूलों से समस्त स्थली आवृत्त हो गई। कुछ सखियों की झोलियों में अबीर तथा गुलाल भी था। वे झोली भर भर लाल और पीले रंग का तथा हरा अबीर गुलाल उड़ाने लगीं। उड़ते गुलाल की घटाओं का वह दृश्य, उसमें भी अभ्रक की चमकीली उठती किरणें, वह शोभा ! ओह ! उसका वर्णन कैसे करें ! वाणी इसका वर्णन करने में असमर्थ है।

इस लीला का पू० बोबो आस्वादन करती रहीं। श्री राधा जी ने अपनी मुक्ता माल श्री ललिता जी को दी। प्रियतम ने अपनी छोटी सी माला विशाखा जी को, एक अन्य सखी को दो स्वर्णिम पुष्प दिये जो उसने अपनी कंचुकी में धारण कर लिये। ऐसे कुछ कुछ उपहार प्रिया-प्रियतम दोनों ने ही, अन्य सभी सखियों को भी दिये।

अपराह्न कालीन लीला

"दिवस कुछ कुछ ढलता सा हो गया। शीत का प्रचण्ड रूप तो न था परन्तु ढलते आतप को देख धूप की प्रखरता किञ्चित् कम होने लगी थी। बाहर की सुहावनी धूप अत्यन्त मनोरम लगने लगी। उसी प्राङ्गण में एक निकुञ्ज पार्श्व को सखियों ने आम्र पत्तों से पूरी तरह सजाया है। ऊपर भी आम्र पत्रों की छत सी बनाई है। चारों ओर की भीत भी आम्र पत्तों से सजाई है। कहीं-कहीं पुष्पों से भी सजाया है। अधिकांश वसन्ती पुष्पों का ही उपयोग कर रखा है। रंग बिरंगे पुष्प भी कहीं-कहीं चमक रहे हैं। उसी

कुञ्ज में दो झूले डले हैं । बाईं ओर के झूले की ओर ऊपर आम्र पत्तों पर ही अभ्रक से लिखा है "जय सरला सुकुमारी- वश कीन्हें कुञ्ज विहारी- गिरिवरधारी" पीछे के लता झरोखों से छन-छन कर आती सूर्य रश्मियां प्रवेश करती भली लग रही हैं । प्रिया-प्रियतम दोनों साथ ही आए । श्री राधा गुलाबी साड़ी धारण किये है, शॉल इत्यादि कुछ भी नहीं है । श्याम सुन्दर ने केशरिया सा पटका धारण किया है । इन दोनों के आने के साथ-साथ ही अत्यन्त उल्लास में भरी सखियों ने एक स्वर से उन्हें, झूले पर आसीन होने का संकेत किया।

श्याम सुन्दर जान बूझ कर बाईं ओर के झूले में बैठे; डरते, डरते, इस आशंका में कि कहीं सखियों ने कोई शरारत-अथवा कौतुक न किया हो । श्री राधा स्वभावतः ही दाईं ओर बैठीं क्योंकि प्रियतम पहले ही बाईं ओर बैठ चुके थे । झोंटे अधिक लम्बे नहीं आ रहे, केवल मन्द मन्द हिल रहे हैं झूले । जब यह बैठे, मन्द-मन्द झूलते हैं तो ऊपर के आम्र पत्रों में सूर्य रश्मियों से चमकती वह अभ्रक से लिखी, दोनों झूलों के सामने की पंक्तियां खूब झिलमिलाती हैं । यह दोनों उस श्यामल हरित आम्र कुञ्ज में झिलमिलाती अपनी महिमा को पढ़ आश्चर्य चकित रह जाते हैं । विस्मय-विमुग्ध हो मन्द-मन्द मुस्कान से, अपनी प्रणयिनी सखियों को प्यार-दुलार भरी दृष्टि से पुरस्कृत करते हैं । वे सब हर्षोत्फुल्ल मुख कमलों से अपने इन दोनों प्राणाराध्य युगल को प्रसन्न कर रही हैं ।

सभी सखियां इन दोनों को साथ लेकर एक अन्य स्थान पर चली आईं । उसी घने वृक्ष के पास एक विशेष गोलाकार स्थान बनाया। उसमें चारों ओर अनेक स्थानों पर दो-दो झूले पड़े थे । बीच में भी दो झूले हैं । बीच वाले झूले पर प्रिया-प्रियतम, झूल रहे हैं । चारों ओर के झूलों में सभी अन्य सखियां मन्द मन्द झूल रही हैं । संगीत का स्वर मुखरित हो रहा है । पग पायलों के, कटि किङ्किणी के, नूपुर शिञ्जन को सुन वन्य पशु-पक्षी भी मोहित हुए इसी ओर को नेत्र उठाये, टकटकी बांधे, श्रवणों से ध्वनि पान करते आतुर से हुये जा रहे हैं । प्रियतम इतनी लाघवता से झूल रहे हैं कि बीच-बीच में चतुराई पूर्वक कभी एक झूले पर जा और कभी दूसरे पर विराजमान हो- अपनी इन प्राण प्रियाओं को रस में सराबोर कर रहे हैं । उनके इस सामीप्य से सरसायी सभी बालाऐं, श्याम सुन्दर को अपने-अपने पास ही अनुभव कर रही हैं ।

सखियों ने पहले से ही एक अन्य कुञ्ज सजायी है । उसमें हरी मखमल सी बिछी है । अत्यंत मुलायम सुन्दर वस्त्र है । बीच में इन दोनों

के लिये बैठने का स्थान बना है । उस स्थान के चारों ओर सुन्दर-सुन्दर लुभावने पुष्प-पल्लवों से मण्डित स्तवक रखे हैं । उन स्तवकों के बीच-बीच में एक एक आयताकार उज्ज्वल स्निग्ध, अनेक चौकियां सी भी रखी हैं । इन दोनों को लेकर यह सब सखियां उस कुञ्ज में प्रविष्ट हुईं और बीच में बिठा कर आप चारों ओर खड़ी हो, इन्हें निहार रही हैं । इतने में एक सखी ने एक तोते का जोड़ा लाकर इनके सामने उन चौकियों में से एक पर रखा और बटन दबा दिया । वह शुक युगल परस्पर चर्चा करने लगे । इन दोनों के किसी गुप्त प्रणय सम्बन्ध की लीला का गान करने लगे । लगता है- इनके इस केलि विहार के समय निकुञ्ज में पहले से ही किसी बाला ने इन शुक युगल को विराजमान कर दिया था । प्रिया-प्रियतम की वहां हुई वार्ता जो स्वतः अंकित हो गई थी, उसी को अब यह दोहरा रहे हैं । इनकी इस चर्चा को सुन पास की सभी सखियां हास विनोद में भरी खिलखिला रही हैं । यह छेड़-छाड़ चलती रही । प्रिया-प्रियतम दोनों भी विस्मय विमुग्ध से लज्जा-संकोच भरी दृष्टि से परस्पर एक दूसरे को देख रहे हैं तथा सखियों की ओर देख कर मुस्करा रहे हैं ।

प्रिया-प्रियतम को एक अन्य निकुञ्ज में ले जाने को सभी सखियां उद्यत हैं । उस निकुञ्ज में सखियों ने शिलाओं को सजा रखा है । किसी ने कहा, "यह गोवर्द्धन का दृश्य है । हास-विनोद में रत सभी वहां पहुंच गए । अपराह्न कालीन लीला इस प्रकार समाप्त हो गई ।"

यह लीला देखने के बाद पू० बोबो का मन प्रसन्नता से खिल उठा । इसी सुख में मग्न रहीं वे, पर पुनः अत्यन्त बेचैन हो गईं । व्याकुल हो उठीं । दिन रात व्याकुलता और बेचैनी बनी रहती । यहां तक कि जब भी अकेली ऊपर छत पर बैठतीं तो अपने आवेग को सम्हालने में असमर्थ हो जातीं । अश्रु उमड़ आते यह सोच कर, वसन्त आने को है, "मुझे ऐसे ऐसे आश्वासन भी दिये- पर मैं क्या करूं ?" किसी प्रकार से चैन नहीं आ रहा । अत्यन्त उदास, खिन्न हो जाती हैं ।

इधर श्री ठाकुर जी से आदेश मिला कि कोई भी काम न करो । लीला आदि भी न उतारो, न ही वस्त्रों का कोई किसी प्रकार का काम करो । इस आदेश के उपरांत भी यह सभी कार्य करती रहीं, लेकिन श्री ठाकुर जी इनके अत्यधिक व्यस्त रहने के स्वभाव से इन्हीं के स्वास्थ्य को देख स्नेहवश कुछ कुछ खीजते रहे और इनके सारे ही कार्य बिगाड़े, क्योंकि इन्होंने आराम सर्वथा करना छोड़ दिया था, क्षण भर को भी विश्राम न करती

थीं, अतः श्री ठाकुर जी को यह सुहाया नहीं । इन्होंने पूछा भी कि अन्ततः क्या करूं ? सभी कार्य किस प्रकार पूरे होंगे ? लीला भी गलत उतारी गई; दो पृष्ठ ही फाड़ने पड़े । वसन्त के काकी और निर्मल के सेव्य गोपाल जी के वस्त्र बनाए तो खो गये । आनन्दी वल्लभ वाले श्री ठाकुर की शॉल ठीक न बनी, उधेड़नी पड़ी । संक्षेप में, सभी कार्य बिगड़ गये । अन्ततः पू० बोबो ने कहा आखिर अपने आराम हेतु मैं यह कैसे सहन कर सकती हूँ कि तुम्हारे वस्त्रादि भी न बनाऊं । आप बोले 'मैं भी यह सहन नहीं कर सकता कि तुम अत्यन्त व्यस्त रहो और आराम बिल्कुल न करो ।' इसी प्रकार की प्रेम कलह में अन्ततः निश्चय यह हुआ कि सुबह १० बजे से सायं छः बजे तक ही जो भी कुछ करना हो करो– शेष समय में खाली रहो । इस पर भी पू० बोबो ने छः बजे के पश्चात भी सेवा लालसा के प्राबल्य से कुछ कार्य कर लिये, उनमें भी गड़बड़ी हुई । अतः पू० बोबो को इन दिनों पूरी तरह से खाली ही रहना पड़ा । ऊपर छत पर जाकर भी एकान्त में, विचार मग्न बैठी रहतीं, चुप चुप रहतीं ।

ऐसी मनःस्थिति में इन्होंने अपने मन की बात कही श्याम सुन्दर से । अपना स्नेह निवेदन कर रही हैं– उसमें छिपी है एक प्रणय–भीनी माँग :–

लगी न थी अब तक कभी, अपनेपन को ठेस ।
मन को आदत और है, सहि न सकत यह क्लेश ॥
जाने क्यों बिनु बात ही, भरि भरि आवें नैन ।
उमड़ि उमड़ि आवत हृदय, मुख ते कढ़ें न बैन ॥

× × ×

वसन्तोत्सव

वसंत की बहुत, बहुत प्रतीक्षा थी । उत्कट एवं विह्वल प्रतीक्षा के पश्चात् एक एक क्षण गिनते यह सुहावना मनभावना दिवस आ पहुंचा । पूर्व में प्राप्त आश्वासन के अनुरूप फल की प्रतीक्षा संजोए, अत्यन्त व्याकुल हैं । इसी दिन पुष्पा बहन जी ने मण्डप सजाने हेतु आम्र पत्र लाकर दिये तो यह आश्चर्य चकित रह गईं । इससे पूर्व इन्होंने युगल को आम्र पत्तों से सजी कुञ्ज में विराजमान देखा था– प्रिया–प्रियतम की उसी घटना से मेल खाती घटना का स्मरण कर तथा इन आम्र पत्रों को पाकर प्रफुल्लित हो उठीं। उमंग

में भरी उस छवि को निहार बार-बार दोहराती रहीं, निम्न पंक्तियों में बद्ध अपनी अनुभूति :-

''यह मूरतिवन्त वसन्त सखी !
निज प्रेयसि संग विराजत हैं ।
लखि शोभा, शृंगार, मनोहरता,
शृंगार महारस लाजत है।
मन नैन प्रिया छवि में अटके
कर कंज पै बांसुरी साजत है ।
मधुरे स्वर में कछु गावें मनो
रण भेरी मनोज की बाजत है ॥''

हां ! तो इन्होंने देखा- सुबह ८ बजे का सा समय है धूप अत्यंत सुहावनी लग रही है, सभी सखियों ने उस घने वृक्ष से कुछ दूरी पर गोलाकार स्थली पर चारों ओर तराजू की आकृति के ऊपर से तारों में बंधे से हुए और नीचे से खुले पर्दे लटकाए हैं । वे सभी पर्दे वसंती रंग के हैं । बीच में जो स्थान खाली रहे, उनमें और और रंगों के वस्त्र लटका रखे हैं। बीच में सफ़ेद झालरदार चादर बिछी है । वहां रंग बिरंगी चमकीली तश्तरियों में (जो प्राय: इन्हें दीखती हैं) भांति-भांति की मिठाइयां (सम्भवत: बर्फ़ी ही) सजी हुई हैं । कुछ और मिठाइयां भी सखियां ला लाकर रख रही हैं- वहां सजा रही हैं; उमंग तरंग में भरी सभी हर्षोत्फुल्ल हैं ।

प्रिया-प्रियतम वहां आकर बैठ गये । किशोरी श्री राधा ने सफ़ेद जरी से खचित तारों की बसन्ती साड़ी धारण कर रखी है और श्याम सुन्दर ने केशरिया रंग का पटका । प्रिया-प्रियतम उन मिठाइयों को ग्रहण कर रहे हैं- स्वयं तो पा ही रहे हैं, साथ-साथ अपनी इन अभिन्न प्राणा सखियों को भी खिला रहे हैं, परस्पर हास विनोद भी चल रहा है ।

एक सखी ने श्री ठाकुर के सामने एक सुन्दर सा गुलाल से प्रपूरित पात्र ला कर रखा । प्रियतम श्याम सुन्दर ने प्रिया जी के मस्तक पर उसी गुलाल से बिंदी लगाई, इधर प्रियाजी ने भी प्रियतम के मस्तक पर गुलाल लगाना चाहा पर वह हाथ में ही रह गया । वे उन्हें देखती ही रह गईं, हाथ उठा ही न सकीं, प्रणय भार में भर उन्होंने अपने नेत्र झुका लिये । प्रियतम श्याम सुन्दर ने सभी अन्य सखियों की दृष्टि बचा प्रियाजी की..... में गुलाल भर दिया । प्रिया जी ने बंकिम दृष्टिपात किया, बोलीं, 'यह क्या करते हो ! प्रियतम ने नेत्रों में ही कुछ उत्तर दे दिया ।

प्रियाजी ने ललिता, विशाखा, प्रभृति सभी सखियों के उसी प्रसादी गुलाल में से बिंदी लगाई और श्याम सुन्दर ने अपने चंचल स्वभाव से सभी को सरसा दिया ।

पर्दे के पास खड़ी पू० बोबो यह सब दृश्य देख रही थीं। प्रिया-प्रियतम के बिल्कुल पीछे थीं । एक सखी बड़े ही वेग से बढ़ी और इनकी भुजा पकड़ कर साथ ले आई । यह (पू० बोबो) किशोरी श्री राधा के पीछे जाकर बैठी ही थीं कि किशोरी जी ने इनकी बांह खींच अत्यन्त लाड़ प्यार से अपने सम्मुख कर लिया । इनके मस्तक पर भी अपनी कमनीय अंगुली से गुलाल की बिंदी लगाई । श्री ठाकुरने इन पर भी अन्य सभी की भांति अपने चंचल करों से गुलाल भरा । सरसता में भर आत्म विभोर हो गईं पू० बोबो। अपना हाल सुनाते सुनाते इनकी दशा कैसी हो गई- इसे कैसे अभिव्यक्त करें? इनकी गद्‌गद, विह्वल दशा-प्रेमाश्रु, पुलकिताङ्ग- बस देखते ही बनता था । इन्हें लेकर सभी सखियां अत्यन्त आह्लाद में भरी हास विनोद करती रहीं इनसे प्रेममयी छेड़-छाड़ करती रहीं ।

कुछ समय बाद प्रियतम श्याम सुन्दर ने कहा, "आओ हम सब चित्र बनायें ।" वहां चित्रकारी के लिये रंग आदि कुछ तो था नहीं- पुष्प बहुतायत में थे । फूलों से ही सभी चित्र बनाने लगे । लगभग सभी सखियों ने प्रिया-प्रियतम के लीलापरक चित्र ही बनाये । किशोरी जी ने प्रियतम श्याम सुन्दर का चित्र बनाया । पर प्रणय विह्वला, रूप विमुग्धा, वे बनाते-बनाते इतनी मुग्ध हो गईं कि पूरा ही न कर पाईं । श्याम सुन्दर ने रति और कामदेव का चित्र बनाया । कामदेव का पुष्प बाण अपनी ओर बना कर प्रियाजी को झंझोड़ते, दिखलाते हुये बोले, 'देखो ! कामदेव का बाण मेरी ओर है' प्रियाजी ने बंक भृकुटि से नयन तरेर इनकी ओर देखा, और सभी में हास परिहास का दौर चल पड़ा । उन सबकी खिलखिलाहट से वन प्रांत गूंज उठा। सभी परस्पर चित्र देख, दिखला रहे हैं ।

वहीं किसी ने कहा यह 'मदनोत्सव' सारा दिन चलेगा । इसलिये प्रिया-प्रियतम दोनों ही बीच में विश्राम करने जाऐंगे । इन्होंने पर्दे के पीछे झांक कर देखा 'एक सुन्दर शय्या बिछी है । उस पर सफ़ेद उज्ज्वल दुग्ध फेन सी, झालरदार चादर बिछी है । झालरदार दो तकिये रखे हैं, अत्यन्त ही सुकोमल शय्या दीख रही है । शय्या के चारों ओर बन्दनवार सी बंधी हुई है । वहां लिखा है 'मदन विलास गृह" प्रिया-प्रियतम दोनों ही वहां विश्राम हेतु चले गए, सखियां भी इधर उधर विश्राम हेतु चली गईं ।

पू० बोबो ने यह सब देखा और दोपहर में अकेली छत पर जाकर बैठ गईं। प्रतीक्षा कर रही हैं- यह विचार बार बार कौंध रहा है कि यह उत्सव तो सारा दिन चलना था- इस समय क्या हो रहा है- वहीं बैठे बैठे वे देख रही हैं :-

''सोफ़ा सा जो प्राय: इन्हें दीखा करता है, उसी पर प्रिया प्रियतम दोनों ही आसीन हैं। एक सखी सुन्दर सी तश्तरी में पान लेकर आई। पहले प्रियाजी के मुख में दिया, पश्चात् प्रियतम श्याम सुन्दर के। श्याम सुन्दर ने प्रियाजी के मुख से पान लेने को अपना मुख बढ़ाया। प्रियाजी ने संकोच वश, आना-कानी की, भृकुटी तरेर इनकी ओर देखा, परन्तु वे कब संयम रखने वाले थे। इसी प्रकार परस्पर विनोद और मन-मौज करते प्रिया-प्रियतम ने पान खाए- खिलाए। इसी प्रकार सखियां आतीं, इनके मुख में पान देतीं उसमें से ये ले लेते, शेष भाग प्रसाद रूप में सखी को ही दे देते। दिव्य स्वरूप धारिणी पू० बोबो भी इसी प्रकार पान देने गईं; इनसे पान लेते समय प्रिया-प्रियतम दोनों ने ही बड़े प्यार से इनके करतल को तनिक दबाया। यह सिहर उठीं, सरसता में भर नयन नत कर लिये। अपनी मृदुल मुस्कान तथा प्रणय पूरित दृष्टि से इन सबको प्रिया-प्रियतम रिझाते रहे।

इस प्रकार रीझते रिझाते यह लीला सम्पन्न हुई। इसके पश्चात् कुछ नहीं दीख रहा- अत: अत्यन्त बेचैन हैं पू० बोबो। उनकी मन:स्थिति का ब्योरा अलग से एक स्थान पर उपलब्ध है।

× × ×

प्रिया जी द्वारा प्रियतम की भक्ति का आश्वासन

पू० बोबो अपने कैशोर्य में पदार्पण कर चुकीं थीं आयु १५, १६ वर्ष की रही होगी। बीमारी के कारण शरीर काफी कृश हो गया था। Typhoid (टायफायड) हुआ। उसका Relapse (रिलैप्स) हुआ- पुन: Relapse (रिलैप्स) हुआ। इतनी अधिक कमज़ोर हो गई थीं कि करवट भी न ले सकती थीं। वहीं लेटी रहतीं। मृत्यु योग ही था। शरीर अपने धर्म

---

* श्याम सुन्दर को सम्बोधन कर कह रही हैं 'मुझे आज भी प्रत्यक्ष की भांति स्मरण है वह दृश्य- उनका हास भरा चन्द्रानन, युगल विशाल नयनों से झरती हुई ममता करुणा और अपनत्व की शत-शत रश्मियां। हां यह शरीर तो यहीं पड़ा था रोगी और कृश पर जाने किस प्रबल प्रेरणा से मैं सूक्ष्म शरीर से वहां पहुंच गई थी। स्वामिनी शायद भूल गई हैं वह दिन- तुम उन्हें ज़रा शीघ्र ही एक बार स्मरण करा दो, अपने वचन की लाज बचा लें।'

को निबाहता रहा– इधर इनका मन– पूर्णतः स्वस्थ, आत्म–बल पूर्णतः सशक्त और भावनाओं में स्फूर्ति–उत्साह ! उस जगत की बात क्या कहें ?

उसी स्थिति में इन्होंने देखा– इनका यह रुग्ण तन तो वहीं अम्बाला में पड़ा था और यह अपने दिव्य स्वरूप (नित्य सिद्ध स्वरूप) से यमुना तट वर्ती वर्तमान गोविन्द घाट पर एक सघन विशाल कदम्ब वृक्ष के नीचे आ गईं* कुछ ही पलों में किशोरी श्री राधा की पालकी वहीं पास आ कर उतरी। उस पालकी को कौन लाया– यह सब ये देख नहीं सकीं। स्वामिनी श्री राधा उस पालकी में से बाहर आईं और आकर इन्हें अपने हृदय से लगा लिया। पूछा, 'क्या चाहिये' इन्होंने बड़े ही संकोच वश नयननत होकर कहा, 'प्रियतम की अनुरक्ति' प्रियाजी ने इनके शीश के पृष्ठ भाग पर लाड़ प्यार से हाथ फेरते हुये कहा, अच्छा ! होगी, होगी।' श्री राधा जी के लाड़ प्यार भरे उसी आश्वासन को याद करके प्रायः गद्‌गद हो उठती हैं। उनके वर्ण तथा कान्ति के विषय में कहती कहती अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठीं। उनका सिंदूरी लहंगा, हल्की आसमानी ओढ़नी, गुलाबी कंचुकी जिसकी बांहों पर ज़री का काम हुआ है, उसे स्मरण कर आज भी तन्मय हो जातीं हैं।'

चौसर में विशेष कृपा

एक सघन निकुञ्ज में चारों ओर हरियाली व्याप्त है। ऊपर से भी घनी आच्छादित होने के कारण एक लताच्छादित कुञ्ज सी लग रही है। पौधों और लताओं से विनिर्मित उस निकुञ्ज का सहज बना द्वार बड़ा ही आकर्षक लग रहा है। समीर झकोरों से लता और वृक्ष झूम रहे हैं। उसी में द्वार के सामने ही एक सुन्दर और स्वच्छ स्थान, बैठने के लिये विनिर्मित बड़ा ही भला लग रहा है। उसके पीछे लताओं और डालियों की दीवार दीख रही है। प्रकृति की उस दीवार सी में से अनेक रंग बिरंगे पुष्प झांक रहे हैं। बैठने के लिये उस विशेष स्थली पर सुकोमल बालुका पर बिछा महीन वस्त्र अपने सौभाग्य पर इठला रहा है। लताओं की दीवार के पास श्याम सुन्दर दोनों घुटने जोड़े विशेष मुद्रा में विराजमान हैं। उनकी पीली धोती की नाखूनी किनारी झिलमिला रही है, पटका हरिताभ वसन्ती सा है। इसके छोरों पर ज़री के छल्ले से बने खूब गुथे हुए अत्यन्त आकर्षक लग रहे हैं। पीछे की ओर मुक्त उन्मुक्त केशावली लहरा रही है। मुकुट तो धारण नहीं कर रखा परन्तु स्वर्णिम लड़ियां शीश पर बंधी है। उनमें बीचों बीच एक स्वर्णिम पुष्प

सभी को आकर्षित करता इठला रहा है। अर्ध विकसित से उस स्वर्णिम पुष्प में एक मयूर पिच्छ गुच्छ शोभायमान है। मुकुट का ऐसा ढंग अद्भुत ही लग रहा है।

श्याम सुन्दर के सामने एक घुटना खड़ा किये और दूसरा भूमि पर टिकाए एक स्वाभाविक मुद्रा में प्रिया जी विराजमान हैं। उन्होंने झिलमिलाता आसमानी सा लहंगा तथा वसन्ती दुपट्टा ओढ़ रखा है। दुपट्टे पर श्वेत किरण लहरा रही है। वह दुपट्टा इतना महीन है कि उसमें प्रिया जी का केशपाश और उसे वेष्टित किये हुये स्वर्णिम पुष्पयुत शृङ्खला स्पष्ट दिखलाई पड़ रही है। उनके बाऐं कर सरोज में मेंहदी (आभूषण) बहुत ही जगमग-जगमग कर रहा है। नासिका में छोटे छोटे पांच नगों की तीली झिलमिला रही है। हाथों में कई कई चूड़ियां धारण कर रखी हैं। उन्होंने मणि जटित स्वर्णिम आभूषण भी धारण कर रखे हैं।

उस पल्लवित और पुष्पित दीवार के पास, उनके दाईं ओर एक सखी बैठी है। उनके ठीक सामने सांवर किशोर के दांई ओर भी एक सुकुमारी बैठी है। उसने आसमानी दुपट्टा और सिन्दूरी मिश्रित तरबूज़ी सा लहंगा धारण कर रखा है। प्रिया-प्रियतम दोनों के मध्य में चौसर बिछी है। दोनों ही पासे फेंक रहे हैं। अपने अपने पक्ष के दाव की बात पुष्ट करते हैं। कभी कभी यह बातें, हास्य, गम्भीर विचार, और आना कानी में भी बदल जाती हैं। सखियां भी अपने अपने पक्ष की पुष्टि कर रही हैं- उस स्थली में हँसी का वातावरण परिव्याप्त है।

प्रियतम के अनियारे नयन सहसा उठे, कुञ्ज द्वार के बाहर की ओर एक किशोरी पर उनकी दृष्टि पड़ी। यह सुकुमारी (पू० बोबो स्वयं) न जाने कब से, विस्मय-विमुग्ध चितवन से उन्हें निहार रही हैं। बीच-बीच में संकोच सुलभ चितवन से सखियों को भी निहार लेतीं। (प्रियतम उस बाला को देख मुस्कराये) उस सुकुमारी ने कत्थई से रंग का लहंगा तथा दो रंगों की झलक देता दुपट्टा धारण कर रखा है। हवा के झोंकों से जब वह दुपट्टा हिलता है तो गुलाबी और कभी केशरिया झलक दिखलाई पड़ती है। सुनहरी काम से जटित सफ़ेद कञ्चुकी धारण कर रखी है।

प्रियतम की चितवन-मुस्कान में अभिनव लहरी विक्रीड़ित होती देख, प्रिया जी ने तनिक और मुख उठाया। कुछ क्षण प्रियतम को अवलोकती रहीं, पुनः पीछे मुड़ कर देखा। उनकी दृष्टि भी उस सुकुमारी पर पड़ी। प्रिया जी के अधरों पर भी मुस्कान छिटक गई। प्रियाजी ने एक

बार पुनः श्याम सुन्दर की ओर देखा। अब तो वह चौसर का खेल रुक गया। पासे हाथ के हाथ में रह गये। पास बैठीं दोनों सखियां भी देख देख कर मुस्कराने लगीं। बाहर खड़ी वह सुकुमारी सकुचाई सी, अपने में सिमटी सी खड़ी की खड़ी रह गई। कभी नयन उठा उधर देखती है और कभी नयन नत कर लेती है। वह स्तब्ध सी हो, न तो अन्दर ही जाने को तत्पर हो रही है और न वहां से चले आने को ही उसका मन होता है।

प्रिया जी ने एक बार पुनः घूम कर देखा तथा भीतर चले आने का संकेत किया। प्रियतम एक बार पहले भी अन्दर चले आने के लिये संकेत कर चुके थे– परन्तु संकोचशीला वह बाला अपने संकोच में ही दबी सी वहीं खड़ी रही। अब श्याम सुन्दर ने पुनः चले आने का संकेत किया। अब भी वह बाला स्तम्भित सी खड़ी रही– धैर्य बटोर लड़खड़ाते से पगों से आगे बढ़ी। प्रिया जी का संकेत पा, उनके पास बैठी सखी उठी और उस कुमारी की भुजा थाम, अपने साथ ला, उसे श्री राधा के बाईं ओर बिठा दिया। प्रियतम के पास बैठी सखी ने चौसर समेट ली।

वह नव किशोरी प्रिया जी से लगी बैठी है। उसका मस्तक उनके स्कन्ध पर टिका है। श्री राधा ने दाऐं कर सरोज से उसके कपोल और मस्तक को सहलाया और मुस्कराती रहीं। प्रियतम उन दोनों को इस प्रकार देख देख अपनी मुस्कान माधुरी से आप्लावित करते रहे। सखियां भी निमग्न सी चुप–चाप इस सुखद दृश्य को देखती रहीं। न जाने कब में को सखियां वहां से उठकर अन्यत्र चली गईं।

श्री राधा ने प्रियतम को कुछ संकेत किया। वे मुस्कराये। अपने भावों में डूबी वह बाला और संकुचित हो गई। प्रिया जी ने पुनः कुछ संकेत किया। श्याम सुन्दर उठे। ओह ! सौन्दर्य की अगाध मधुर रस धारा प्रवाहित होने लगी .... मन्द मन्द गति से वे प्रियाजी के पीछे आ बैठे। स्वामिनी से अमित प्यार दुलार पा, सुख में मज्जिता उस बाला के नयन मुंदे ही रहे। श्री राधा ने धीरे–धीरे उसका मस्तक अपने स्कन्ध से उठा प्रियतम के स्कन्ध पर टिका दिया। वह चौंकी तो अवश्य पर नयन नहीं खोल पाई। प्यार का वह अथाह रस सागर और–और अतलता में ले गया। किञ्चित् अर्धोन्मीलित नयनों से देख वह विवश सी, और–और सुख में निमग्न होती चली गई। प्रिया जी उठीं .... उनके उठने पर भी न जाने कैसी, विद्युत छटा .... छहर गई। प्रिया–प्रियतम की सरस चितवन में कुछ रस–विनिमय हुआ और श्री राधा मन्द मन्थर गति से चल दीं। उस लता–पत्र निर्मित भीत के पीछे चली गईं। कहां गईं– वे ही जाने।

उस बाला को लिये प्रियतम श्याम सुन्दर उसी प्रकार बैठे रहे। वह बाला तो बेसुध सी- स्तम्भित सी, विस्मय-विमुध सी थी ही। प्रियतम ने उस बाला का शीश अपने स्कन्ध से हटा अपना विशाल सरस आश्रय प्रदान किया। वह बाला कभी नेत्र खोलती और कभी सहसा उसके नेत्र स्वतः ही मुंद जाते। वह सुख, वह रसाश्रय- वह रस .... उसका वर्णन कौन कर सकता है भला ? उस अमित- अगाध सरस आश्रय में, रस पान कर वह बाला झंकृत हो उठी- उसके रोम रोम से आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा। प्रियतम हँसे, उनकी विहँसन में एक और नवीन सुराग की सृष्टि हो गई। उन्होंने कमली से उसे परिवेष्टित कर लिया। कमली के खुलते ही उसमें जगमगाती कढ़ाई की बूटियां और छोर झमझमा उठा। अनेकानेक विद्युत छटाओं का सा मधुर मधुर झीना प्रकाश ! ऐसे प्रकाश से मण्डित उस निकुञ्ज में रस, अभिनव करवटें लेने लगा और .... और .... फिर की कौन जाने।

'सो सुख जाइ न बरना'

× × ×

जल विहार

ब बरसाने जा भानु सरोवर पर विराजित श्री शचीनन्दन बाबा के यहाँ दर्शन करने जाने का पू. बोबो का नियम सा ही था। अनेक भाई बहन भी साथ जाया करते थे। एक बार बाबा सभी को जल विहार लीला सुना रहे थे, इधर उस लीला को पू. बोबो जहाँ एक ओर इस देह से प्रत्यक्ष रूप में देख रही थीं, वहीं अपने दिव्य स्वरूप से उस लीला में सम्मिलित भी थीं। इनकी वहां पर स्थिति की बात जब शचीनन्दन बाबा ने दोहराई तो ये चौंक गईं। उस लीला को हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं।

"एक स्वच्छ शीतल जल से परिपूर्ण कुण्ड है। प्रिया जी श्वेत महीन वस्त्र धारण कर जल अवगाहन हेतु उस कुण्ड के स्वच्छ जल में उतरीं। प्रियतम वहां आस पास दीख नहीं रहे हैं। कुछ सखियां अवश्य उस एकान्तिक स्थली की नीरवता को किञ्चित् भङ्ग करती वहां खड़ी हैं। वे प्रिया जी के साथ ही आई हैं। उस कुण्ड के एक ओर वृक्ष झुरमुटों में कहीं छिपे प्रियतम की उपस्थिति का भान, वहाँ समीरण में व्याप्त, गात सौरभ से अवश्य हो रहा है।"

पूजनीया बोबो श्वेत, बहुत ही महीन वस्त्र धारण किये तट पर खड़ी हैं; प्रिया जी की रूप माधुरी पान कर तल्लीन हो रही हैं, किसी परम सुख में मग्न हो रही हैं। इधर प्रिया जी की रूप माधुरी निहार रही हैं साथ-साथ प्रियतम की उपस्थिति इन्हें भी निरन्तर उद्वेलित कर रही है। उनके वंशी रव की प्रतीक्षा बड़ी ही सजगता तथा आतुरी से कर रही हैं। प्रियतम के आह्वान के लिये इनके श्रवण प्रतीक्षाकुल हैं, उत्कंठित हैं। लो! यह भी जल में उतरती जा रही हैं- अभी कुछ आगे बढ़ी ही थीं कि श्याम सुन्दर जल में आ कूदे। चारों ओर जल में तरंगे उठ आईं। शान्त और नीरव स्थली जल बौछारों से मुखरित हो गई। इसके बाद क्या हुआ- यह कहने की सामर्थ्य लेखनी के वश में नहीं- अनुभूति- सामीप्य में परिणत हुई रस रंग से आलोड़ित तथा तरंगित होती रही।

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'

× × ×

वृन्दावन की अधिष्ठात्री-वृन्दादेवी

चिन्मय वृन्दावन की दिव्य स्थली, प्रकृति, निकुञ्जों का सौन्दर्य, मनोरमता- सभी मन को सहज आकर्षित कर लेती हैं। ऐसी ही अलबेली प्रकृति का मनोरम दृश्य, उसमें चहचहाते पक्षियों से मण्डित सुरमणीय एकान्तिक स्थली है।

एक परम सुन्दर गोपिका बदली रंग की साड़ी धारण किये खड़ी है। सिर पर शीश फूल में अटका साड़ी का छोर सिर से किञ्चित् खिसक गया है। अपने गरिमायुत सौन्दर्य का प्रसार करती वह गोपिका किसी विशेष हेतु से रुकी है।

उन्हीं की ओर आती वीथिका पर, किंकर्तव्य विमूढ़, एक सुन्दर पुरुष, हाथ में धनुष लिये खड़ा दीखा। गोप किशोरी ने उँगली के संकेत से मार्ग निदर्शन कर, जाने को कहा। कहीं से आवाज़ सुनाई दी कि यह किशोरी वृन्दा देवी हैं- और यह पुरुष 'कामदेव'। इस बात से इनकी धारणा (वृन्दादेवी ही वृन्दावन की अधिष्ठात्री देवी हैं) की पुष्टि हुई।

दृश्य बदल गया। एक सुन्दर सुरम्य स्थली में प्रिया-प्रियतम आसीन हैं। दोनों के चरण कमल दीख रहे हैं। कामदेव आकर, युगल किशोर के श्री चरणों में लोट-पोट हो रज में लीन हो गया। इधर पास ही

की स्थली से मधुर वाद्यों की ध्वनि सुनाई दे रही है। पता चला कि 'रति' और 'वसन्त' इधर ही चले आ रहे हैं। उनके चरण मञ्जीरों की ध्वनि ही नाना वाद्यों सी गूंज रही है। वे दोनों आकर युगल के श्री चरणों में लोट-पोट हो, वृन्दावन की सुकोमल रज में लुप्त हो गए। लग रहा है यह रज इतनी सुन्दर और सुकोमल होने के अतिरिक्त रति, कामदेव, वसन्त प्रभृति सौन्दर्य के अधिष्ठाताओं की श्री से भी अधिक सम्पन्न और सुन्दर है।

दृश्य पुनः बदला। अनेकानेक वृक्ष स्वतः ही एकत्रित हो पास हो गये। उनकी शाखा-प्रशाखा इस प्रकार उलझ गई, मानों पूरी कुञ्ज की छत सी बन गई। उस निकुञ्ज में एक शय्या पर कटवर्क (Cut-work) की श्वेत चादर बिछी है। दो श्वेत तकिये उसी प्रकार के काम के उस पर रखे हैं। उसी प्रकार की एक ओढ़ने की श्वेत चादर भी वहीं रखी है; केवल इतना अन्तर अवश्य है कि इसके काम में चम्पई वर्ण की कुछ कुछ झलक दीखती है। श्री राधा ने अरुणिम वर्ण की साड़ी धारण कर रखी है। श्वेत शय्या पर आसीन होने से श्वेत और अरुणिम प्रभा झलक रही है। प्रियतम पीत वसन धारण किये हुए हैं। उनकी श्यामल गात छटा और पीत प्रभा घुली मिली सी अद्‌भुत शीतल द्युति छिटका रही है। 'प्रिये' 'प्रिये' कह, कुछ कहने को उत्सुक हैं श्याम-सुन्दर। प्रिया जी उनके सुभग रसाश्रय पर अपना शीश टिका, और तन्मय हो गईं। प्रियतम की रसमयी उस वाणी को सुन और-और रस सिक्त होती जा रही हैं। अपने दिव्य स्वरूप में पूजनीया बोबो निकुञ्ज द्वार पर खड़ी युगल श्री की रस माधुरी का पान कर मग्न होती जा रही हैं। इन्होंने भी श्वेत रंग की सुनहरी किनारी की साड़ी धारण कर रखी है। प्रियतम उठे, इनके पास आकर इनके स्कन्ध पर अपना कर कमल रख दिया। यह पुलकित रोमाञ्चित सी हो गईं। एक विवशता तथा बड़े ही संकोच और विनीत भाव में भरी खड़ी रहीं। सामने की ओर देखा- प्रिया जी वहां न थीं। दिव्य शरीर धारिणी पू. बोबो ने श्यामसुन्दर से प्रिया जी के पास ही जाने के लिये आग्रह किया। बार-बार पीछे की ओर घूम-घूम इन्हें देखते हुए, इनकी प्रिया जी के सुख के लिये त्यागपूर्ण भावना से गद्‌गद से होते श्याम सुन्दर प्रिया जी के पास चले गये। कुछ दूर जा कर एक वृक्ष की टेक लगा, दोनों घुटने अपनी बाहुद्वय में बांधे भोर होने की प्रतीक्षा में पू. बोबो वहीं बैठ गईं। इतने में इनके ओढ़ने के लिये एक चादर इनके पास आकर गिरी। इन्होंने ओढ़ ली- उसकी गरमाई का अनुभव कर मन में सोच रही हैं कि कुञ्ज में एसी गरम चादर के कारण ही शीतलता सुहावनी लगती है। प्रिया जी के सुख हेतु

अपने त्याग के पुरस्कार स्वरूप, युगल की उस चादर को ओढ़ सुख में निमग्न होती रहीं ।

× × ×

उपवन विहार

एक बहुत ही रमणीय तथा मनोरम वाटिका में श्याम सुन्दर पादुका पहने विचर रहे हैं । कभी उस वाटिका की सघन द्रुमावली की ओट में छिप जाते हैं तो कभी लताओं में से झांकता उनका मुख विधु मन को सहज आकर्षित कर लेता है । उनका फहराता पीत पट, बिथुरी केश-राशि, मन्द-मन्द नूपुर-शिञ्जन, उनकी चाल से होड़ ले रही है । कभी किसी पुष्प के पास जा ठहरते हैं- उसकी पंखुड़ियों की मसृणता का अता-पता पूछते हैं- और कभी सौरभ से मत्त हुये- विचरण करते हैं ।

उसी सघन द्रुमावली से मण्डित उस वाटिका के वाम पार्श्व में पू. बोबो अपने दिव्य तथा चिन्मय स्वरूप में विराजमान हैं । प्रियतम की दृष्टि इन पर पड़ी । एक अरुणिम पुष्प तोड़ने को अपना दक्षिण कर कमल बढ़ाया । किसी कांटे के चुभने की आशंकावश यह भीत हो गईं- कहीं कांटा प्रियतम के श्यामारुण कर कमल में चुभ न जाए । फूल तोड़ते हुये प्रियतम के कर कञ्ज की शोभा इनके मन में गहराई से घर कर गई । श्याम सुन्दर ने चारों ओर दृष्टि घुमा कर देखा, कहीं कोई और तो नहीं है, पुनः पू० बोबो को देखा और वह अरुणिम पुष्प इन पर उछाल दिया । पीछे की ओर मुड़-मुड़ कर देखते जा रहे हैं, अधरों पर मुस्कान खिल रही है, प्रियतम आगे चले गये। श्याम-सुन्दर से स्पर्शित उस पुष्प की भीनी-भीनी मदिर सौरभ से- उसके मादक संस्पर्श से पुलकायमाना पुनः पुनः सिहर रही हैं, उन्हीं सुखद स्मृतियों में तन्मय हुई जा रही हैं ।

यह लो, किञ्चित् सजग, स्वस्थ सी हुईं और उस पुष्प को ध्यान से देखती रहीं- इसमें कांटा तो न था पर उस पुष्प के स्पर्श ने इन्हें और-और प्रमुदित कर दिया । इसी संस्पर्श सुख में खोई, जाने कब तक मग्न होती रहीं ।

× × ×

गोचरण का श्रम

ग्रीष्म की दोपहरी में पूजनीया बोबो अपने एकान्त में बैठी श्याम सुन्दर की सुखद लीलाओं में तन्मय हो रही हैं । सहसा इन्हें बड़े जोर से हिचकियां प्रारम्भ हो गईं । बहुत सोच विचार रही हैं, सहसा इस प्रकार क्या कारण बना । इनके मन में यह कहावत स्फुरित होती रही– 'इस प्रकार हिचकियां तभी आती हैं जब कोई अत्यन्त अपना स्मरण करता हो' अतः इन्होंने कई अपनों के नाम ले लेकर विचार किया; हिचकियां बन्द न हुईं । इनकी जिह्वा से सहज श्याम सुन्दर के स्मरण करने की बात स्फुरित हुई, वे ही अपने हैं– अत्यन्त अपने और घनिष्टतम प्रेमी हैं । जब इनका नाम लिया– तुरन्त ही हिचकियां बन्द हो गईं । यह हिचकियां साधारण न थीं ।

अभी तक जो स्थिति सहज बनी थी अब उसमें अपनत्व का एक विशेष पुट लग गया । अपने प्राणों के प्राण, प्रेमास्पद से जुड़ी स्मृति ने सरसता का संचार कर दिया । गद्‌गद हो मग्न होती रहीं– इस अपनत्व ने अनेक स्मृतियों को एक बार स्मृति पटल पर झलका दिया– और यह लो ! यह स्मृति अब साकार हो सामीप्य सुख में परिवर्तित हो गई– गोचारण में सखाओं की प्रवञ्चना कर श्याम सुन्दर अपनी इन अनन्य प्रिया की रागमयी भावनाओं को सत्कृत करने, आकर सम्मुख खड़े हो गये । ग्रीष्म की तप्त दोपहरी के कारण, श्रमित से दीख रहे हैं । आकर पू० बोबो के घुटने पर शीश टिका लेट गए; लेटे रहे, कितनी देर, यह सब कौन कहता । क्या–क्या हुआ, यह न कहने की बात ही है और न ही अभिव्यक्ति की सीमा में ।

'नहीं कछु कहन सुनन की बात'

× × ×

ऐसे रंञ्जित करो

फागुन, मनभावन मास की बात न पूछो । प्रकृति गर्वित हो छू, छेड़ती है ही– उमगे उर की बात कौन कहे– किस से कहे ...... ? कहने के लिये और है ही कौन और सुनने वाले एक मात्र अपने प्राण सर्वस्व ही तो हैं । राग–अनुराग की समस्त भावनाऐं प्रियतम–श्याम सुन्दर में ही विश्राम पा सकती हैं । उन्हीं के समाश्रय में पल्लवित पुष्पित आशा–लता अपने सौभाग्य पर गर्वित तो है ही– उल्लास में भरी अपने में समा नहीं रही हैं ।

ऐसे ही सरस रंगीले दिनों की बात है, धीर-समीर यमुना तट के समीपस्थ एक बहुत ही सुन्दर अट्टालिका की (इस जगत में दर्शनीय नहीं है)। विशाल खिड़की में (पू० बोबो) प्रिय-प्रतीक्षा में रत खड़ी हैं। रसीली रंगीली प्रतीक्षा इनके नेत्रों के सरस संचालन से प्रकट होती जा रही है। आशा- एक सुदृढ़ विश्वास का सम्बल पा टिकी है। इन हुल्लड़ भरे दिवसों में मन को सरसाने वे अवश्य ही आऐंगे इधर से। इस प्रकार की आकुल व्याकुल प्रतीक्षा यों ही चली जाए, ऐसा सम्भव नहीं है।

सखाओं को किन्हीं रंगीले कौतुकों के संयोजन में संलग्नता पूर्वक व्यस्त कर, श्याम सुन्दर रंग भरी पिचकारी लिये सामने से इधर ही चले आ रहे हैं, इनकी मनोरथ लता का सिञ्चन करने, पल्लवित-पुष्पित और फलीभूत करने, लहलहा कर स्वयं भी झूम उठने। नीचे से ही इन पर इस प्रकार पिचकारी से रंग डाला कि ठीक इनके उर अन्तर को भिगोता सम्पूर्ण अंगों का रंगीला-रसीला अभिषेक कर दिया। स्वयं इतनी लाघवता से इनके पास ऊपर आ गए कि इन्हें सोचने का अवसर ही नहीं मिला। प्रणय की खीज भरी रीझ से अनुरक्त पू० बोबो का मुख मण्डल देख वे और-और प्रफुल्लित हो गए। प्रणय कोप में किञ्चित् भर वे बोलीं, 'मेरे पास तो रंग नहीं है ....।' पुनः मन में विचार कर रही हैं इन्होंने तो इस प्रकार रंजित कर दिया मुझे और मैं इन पर किस प्रकार रंग डालूं- अभी यह विकल्प इनके मन में उठा ही था कि श्याम सुन्दर समझ गए और इनके भीजे वस्त्रों के रंग से अपने को अनुरंजित कर, बोले- 'ऐसे।' फिर क्या हुआ- कौन कहता! कह सका भी कौन ?

'तदपि कहे बिनु रहा न कोई'

× × ×

'लो ! तुम मुझ पर डाल लो'

बात अधिक पुरानी है। पू० बोबो अभी अम्बाला में ही विराज रही थीं। जिस कमरे में इनका अधिकांश समय व्यतीत होता था- उसी में एक ओर लकड़ी के बने सिंहासन में सेव्य श्री ठाकुर जी विराजमान रहते। उस सिंहासन को सभी लोग 'मन्दिर' कहा करते थे। उस मन्दिर के सम्मुख एक ओर पू० बोबो इस प्रकार दीवार से सट कर बैठतीं कि श्री ठाकुर जी इनके बाईं ओर होते। एक प्रकार सी ओट भी हो जाया करती।

एक बार मन्दिर के सामने ही खाट पर बैठी थीं, नित्य नूतनता प्रिय यह सांवर–किशोर हाथ में गुलाल लिये– अपने पटके को धोती के ऊपर बांधे, धीरे–धीरे पग धरते समीप आए, जिसे यह सर्वथा जान न पाईं। आकर इन पर धीरे से गुलाल डाला । अपनी सहज खीजभरी रीझ में भरी, तनिक कोप का सा अभिनय करतीं, (बोबो) पीठ फेर बैठ गईं । यह रसिक रिझवार भला कहां सहन कर सकते थे ! इनके पास चले आए । स्कन्ध पर अपना कर कमल धर, इनके पीछे से मुख के पास मुख ले जा इन्हें मनाते हुये बोले, "क्या हुआ ! तुम मुझ पर रंग डाल दो, मैं भी कभी रूठा हूँ ?" इस प्रकार रार और तकरार..... । कब तक सरसता में डूबते उतरते रहे– कौन कहता ? रस रंग के विविध ढंग ..... प्रणय–विनिमय के नवल रंग ।

'ढंग नए हैं राग रंग के'

× × ×

'कपोलों की स्निग्धता'

बात अम्बाला की ही है । अपने उसी कमरे में पू० बोबो विराजमान हैं । सामने सेव्य युगल विराजमान हैं । श्याम सुन्दर पूर्ण किशोर वेश में वहीं प्रकट हो गये । सम्पूर्ण शृङ्गार से मण्डित, मुकुट धारण किये, हाथ में वंशी लिये, धोती पहने– नवीन उमंग में भरे इनके पास आकर बैठ गए । इनके मुख के पास मुख ले जा कपोलों की स्निग्धता की बात कह रहे हैं । अपने मणिमय कङ्कन मुकुर को सामने कर रखा है– उसमें दोनों के पुलकित हर्ष–विस्मययुत रागानुरञ्जित मुख कमल प्रतिबिम्बित हो रहे हैं ।

पास ही कोई संन्यासी आए हुए हैं– इन्हें स्वयं में संकोच हो रहा है– और सोच रही हैं कि मेरा ऐसा मुख देख यह संन्यासी क्या कहेंगे। यह रस रंग गतिमान है । कब तक गतिमान रहा– कौन कहता ?

उन संन्यासी से बीच–बीच में बात भी करती जा रही हैं– उन संन्यासी को कुछ भी पता न चला; एक विशेषता का भान तो उन्हें अवश्य हुआ परन्तु और कुछ भी वे जान न सके ।

'सोई जानइ जेहि देहु जनाई'

× × ×

'मोहे मिल्यो है सांकरी खोर'

श्रीधाम आने के पश्चात गोवर्द्धन, बरसाना तथा नन्दग्राम जाने का क्रम प्रायः रहता ही था । इसमें मुख्य रूप से हेतु वहां की एकान्तिक

स्थलियों में विचरण कर प्रिया-प्रियतम की रसमयी लीलाओं का आस्वादन करना तथा वहां के सौन्दर्य में- वहां के वातावरण में विशेष रूप से रमण, भ्रमण करना था। अन्य बहन भाई भी सुविधानुसार आया-जाया करते थे।

एक बार इसी हेतु से श्री वृषभानुपुर गईं। गह्वर वन जाते में सांकरी खोर से होकर जा रही थीं। दाईं ओर की ऊंचाई पर हरी घास की एक स्थली, कुछ वृक्षों से आवृत्त बड़ी भली लगी। वहीं जाकर बैठ गईं। साथ में श्री सुशीला बहन जी, दर्शन, निर्मल और विजय भी थे। श्री सखा जी द्वारा प्रदत्त लीला सुना रही थीं। सुनाते-सुनाते इनकी दशा बदलती जा रही थी। कभी हँसती और कभी चुप हो जातीं, पुनः सुनाने लगतीं ......। उस दशा में मत्त इनकी वाणी लड़खड़ाती रही। शब्दों को कुछ का कुछ ही पढ़ती रहीं। सामने की ओर भी बीच-बीच में देखतीं, कभी दृष्टि स्थिर भी हो जाती। ठीक सुना पाने में भी असमर्थ सी होती गईं। कई बार ज़ोर से हँस, सभी को बहकाने भरमाने की सी चेष्टा भी करतीं भाव गोपन का असफल सा प्रयास भी करती दीखतीं। बीच में ही लीला वाली कापी श्री सुशीला बहन जी ने इनसे ले ली- इन्हें इसका भी भान सम्भवतः न हो पाया। शेष लीला, बहन जी ने ही पढ़ी।

आगे चलने के लिये हम सब उठे, परन्तु इनसे ठीक से चला ही न गया। डगमगाती सी, हँसती, कभी ज़ोर से हँसतीं, बहन जी का सहारा लिये जैसे तैसे चली जा रही थीं। धीरे-धीरे चलते चलते इन्होंने सुनाया,

"लीला सुनाते समय श्री राधा इनके स्कन्ध पर अपना कर कमल धरे, इनके पीछे खड़ी हैं, और सामने एक वृक्ष की ओट में खड़े श्याम-सुन्दर नयनों ही नयनों में अपनी मूक संकेतात्मक भाषा में इनसे तथा प्रिया जी से न जाने क्या-क्या-क्या कह-सुन रहे हैं। वह संकेत क्या थे- यह सब कहना अत्यन्त कठिन है।"

'उन्हीं संकेतों में छविमान।
प्राण ! आकुल हो जाते प्राण ॥'

संकेतों में छविमान प्राणधन ! कब समीप हो गए- यह कौन कहता ! जहां रस है- वहीं रस विनिमय भी है।

× × ×

चाय पीने का अनुपम ढंग

प्रेम का पथ बड़ा ही विचित्र है। प्रेम में नेम नहीं रहता। परन्तु इससे अधिक मर्यादा की गरिमा कहीं अन्य हो ही नहीं सकती। प्रेम अन्धा होता है पर प्रेमी की दृष्टि से बढ़कर दृष्टि अन्यत्र दुर्लभ है। हृदय का जो सहज प्रवाह श्यामा-श्याम के चरणों में ही विलुण्ठित होता हो- वही सच्चा प्रेम है, इसकी आदर्श हैं ब्रज की महाभागा यह गोप सुन्दरियां। 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पगी हृदय की रागानुराग पूर्ण भावनाऐं ही सच्चे प्रेम की आदर्श कही गई हैं।

पूजनीया बोबो श्री ठाकुर जी के सामने बैठी कुछ पेय ग्रहण करने को उद्यत हैं। हाथ में प्याला है। अपने सहज स्वभाववश श्री ठाकुर जी को समर्पित किये बिना कोई भी वस्तु ग्रहण करती ही न थीं। हाथ में प्याला पकड़ा, मुंह से लगाते हुए सहज भाव से सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर जी की ओर देखा। अपनी मधुर मादक चितवन का प्रसार करते हुए न जाने श्री ठाकुर ने इन्हें क्या कहा- यह मुस्कराईं। प्याला सहज ही श्री ठाकुर जी की ओर बढ़ा दिया- श्री ठाकुर प्रत्यक्ष रूप में एक घूंट भर कर उस पेय का पान कर रहे हैं और साथ-साथ दूसरी घूंट यह स्वयं भरतीं। पान कर पुनः श्री ठाकुर के सम्मुख कर रही हैं। इस प्रकार से- प्रेम की उच्चादर्शमयी भावनाऐं तोषित पोषित हो रही हैं।

पेय पान के साथ-साथ प्रेम की यह मर्यादा कहां तक सीमा में बंधी रही, यह कौन कहता- कहने की बात ही क्या हो सकती है ?

करुणार्द्र सिन्धु

श्याम सुन्दर अनन्य प्रेमी तो हैं ही, वे करुणा के सागर हैं, औदार्य की मूर्ति हैं, रसिक रिझवार हैं, निज जनों के लिये जो कार्य उनकी इच्छा शक्ति से, भृकुटि संचालन मात्र से हो जाता है- उसे भी प्रेम के उच्चादर्श स्थापन हेतु वे स्वयं अपने ही हाथों करके गौरवान्वित होते हैं। एक ही समय में विभिन्न धर्मों के आश्रय भी हैं। ऐसे अनेक भक्त-चरित्रों से हमारा इतिहास भरा है। करुणा-मिश्रित प्रेम की प्रतीक ऐसी ही एक घटना को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

गर्मियों में घर के सभी लोग आँगन में रात्रि-विश्राम करते। श्री ठाकुर क्योंकि अन्दर कमरे में होते थे, पू० बोबो रात्रि में कमरे में ही रहतीं। कभी कभी वरांडे में लेट जाया करती थीं। एक बार अधिक व्यस्त होने के कारण श्रम अधिक हुआ- लेटने का आसन आसानी से उठा न सकीं। घसीट कर वरांडे तक ले आईं और ऐसे ही लेट गईं। जैसे ही लेटीं तो इन्हें लगा श्याम सुन्दर स्वयं निज करों से बिस्तर के नीचे से कुछ निकाल गद्दा, ठीक व्यवस्थित कर रहे हैं। यह बात इन्हें सहन कैसे होती भला ? एक दम हड़बड़ा कर उठीं- और देखा, सचमुच ही वहां जूता होने के कारण बिस्तर ठीक न बिछा था। इन्हें सोने में कहीं कष्ट न हो- अनन्य प्रेमी श्याम सुन्दर अपने सहज करुणार्द्र स्वभाववश अपनी अनन्या प्रिया के सुख के लिये तुच्छ से तुच्छ कार्य भी करने को व्याकुल हो रहे थे।

श्याम सुन्दर के स्वभाव को न तो करुणा ही की इयत्ता में बांधा जा सकता है और न किसी मर्यादा की सीमा में। वे प्रेमी हैं- अनन्य प्रेमी हैं और साथ-साथ प्रेमास्पद भी हैं। इससे बढ़कर प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण और क्या होगा भला ?

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या मा भजन् दुर्जरगेह शृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥***

श्री मद्भा० / १० / ३२ / २२

निकुञ्ज में शीत

वन प्राङ्गण के प्रकोष्ठ में सखियों ने एक सुन्दर शय्या को विचित्र ढंग से सज्जित किया है। प्रिया-प्रियतम विराजमान हैं। निकुञ्ज के एक ओर खड़ी पूजनीया बोबो यह सब देख रही हैं। शीत की ठिठुरन अधिक है। इनके मन में विचार आया कि इस लता कुंज में प्रिया-प्रियतम को तो

*** प्रियाओं ! प्रयत्न करने वाले साधकों से भी घर गृहस्थी की बेड़ियां नहीं टूटतीं, तुमने उनको भली भांति तोड़कर मुझसे यथार्थ प्रेम किया है। मेरे साथ तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्दोष- निज सुखेच्छा लेश, से भी रहित परम पवित्र है। तुम लोगों ने केवल मुझको सुख देने के लिये ही इतना त्याग किया है। मेरे प्रति किये जाने वाले तुम्हारे इस प्रेम, सेवा और उपकार का बदला मैं देवताओं की लम्बी आयु में भी सेवा करके नहीं चुका सकता। तुम अपनी साधुता, सौजन्य से ही चाहो तो मुझे उऋण कर सकती हो। मैं तो तुम्हारा ऋण चुकाने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

शीत का अनुभव होता होगा पर उसी समय देखा, शय्या के समीप एक बहुत ही सुन्दर मणि जटित अंगीठी रखी है, तापने के लिये। इन्होंने झुककर उसमें देखा, अग्नि न थी; उसमें उष्ण मणि रखी थी। इसी से तीक्ष्ण असह्य ठिठुरन का प्रकोप वहां न था। अत्यन्त सुहावना, मनभावना तथा सुखद वातावरण था-ऐसा देख, अनुभव कर इन्हें अत्यन्त सुख हुआ।

× × ×

श्री सन्तोष बहन जी के वेश में

श्री वृन्दावन ही की बात है, पू० बोबो, पेट में अधिक दर्द के कारण, बेचैन थीं। कमरे का द्वार ऐसे ही उढ़क लेटी हैं। सहसा दरवाज़ा खुला, पू. सन्तोष बहन जी ने अन्दर प्रवेश किया। इनके पास आकर बैठ गईं। लेटने का कारण पूछा- इन्होंने कहा, "पेट में दर्द है।" स्नेह वश पू० बहन जी ने इनके पेट पर हाथ रखा। रखते ही दर्द बन्द हो गया। यह स्वस्थ सी हो गईं फिर भी वे पेट पर हाथ फेरती रहीं। पू० बोबो के मन में कुछ-कुछ शंका सी होने लगी। दर्द तो ठीक सा हो ही चुका है- फिर भी .... यह चंचलता सी क्या सूझ रही है बहन जी को। अरे ! यह क्या ! वे हाथ पू. सन्तोष बहन जी के न थे, स्वयं श्याम सुन्दर ने छद्मवेश धारण किया था। लो ! सामने प्रकट हुए छद्म शिरमौर, उनके चंचल करों का रसमय..... विलास! अहा .... अहा .... अपना चांचल्य प्रकट करते रसिक शिरोमणि।

'चंचलकरयुगशाली'

अनोखी रीझ

श्री वृन्दावन का रमणीय वन प्रान्त है। चारों ओर सघन हरियाली बड़ी लुभावनी लग रही है। लताओं और पौधों की शोभा तो है ही; साथ-साथ कुछ पुष्पित बड़े वृक्ष भी कहीं कहीं दीख रहे हैं। यह एकान्तिक स्थली बड़ी ही मनोरम है। पुष्पों को झकझोरती समीरण प्रवहमान है। कहीं कहीं पक्षियों का सुमधुर स्वर, स्थली को और-और सरस बना रहा है। यह स्थली पूजनीया बोबो ने वृन्दावन की परिक्रमा करते में देखी।

हां ! तो प्रिया जी उस रमणीय स्थली पर लेटी हैं और श्याम

सुन्दर के चंचल कर अपनी चंचलता से रस प्रवाह की अगाधता की थाह ले रहे हैं । पू० बोबो एक ओर खड़ी यह सब देख रही हैं । किशोरी जी दूसरी ओर मुख किये लेटी हैं अतः श्याम सुन्दर के अतिरिक्त कोई वहां और भी है, इसका भान उन्हें नहीं है । श्याम सुन्दर की मदिर मादक चंचलता में प्रिया जी भी सराबोर हैं- फिर भी स्वेच्छा से वे दूसरी ओर मुख किये लेटी हैं । इधर श्याम सुन्दर ने पू० बोबो को देख लिया । यह अपने सिद्ध सखी स्वरूप में वहीं विराजमान हैं । श्याम सुन्दर ने इन्हें संकेत से पास आने को कहा, परन्तु यह संकोच वश जा नहीं रहीं, कहीं प्रिया जी के रस में किसी प्रकार की बाधा न आ जाए । इन्होंने भी वहीं खड़े खड़े संकेत से ही मना कर दिया। प्रियतम ने पुनः आग्रह किया- अब विवश परवश सी हुइ यह किसी भी प्रकार मना न कर सकीं- और पास चली गईं । श्याम सुन्दर के चंचल कर पूर्व की भांति रत हैं- इधर पास आने पर प्रियतम ने इन्हें (पू० बोबो) रस में सराबोर कर दिया । कैसा है रसीला, यह मादक संस्पर्श ! (श्याम सुन्दर का प्रत्येक अंग पूर्ण है और पूर्णता का आस्वादन करा सकता है । नेत्रों से संस्पर्श सुख प्रदान कर सकते हैं वे, संकेतों से बात कर सकते हैं ।) उसी में मग्न पू० बोबो पुलकित और रोमांञ्चित हुई वहां से चली आईं, प्रिया जी के रस में विक्षेप न हो- इस भाव से ।

'रीझ के अनोखे ढंग'

× × ×

'चितवन सुरा'

बहुत पुरानी बात है। इन दिनों पू० बोबो लाहौर में अपने घर में ही थीं । आयु ग्यारह वर्ष की रही होगी । श्री ठाकुर जी की सेवा में अधिक से अधिक रत रहने के हेतु से इन्होंने एक प्रकार से श्री ठाकुर जी का कमरा साफ़ करने का नियम सा ही ले रखा था । आज भी श्री ठाकुर जी का कमरा साफ़ कर रही थीं । सहसा दृष्टि उठी, इन्होंने सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर जी की ओर देखा । नहीं कहा जा सकता प्रतिदान में अथवा सहज रूप रस की बरसती अनवरत चितवन सुरा ने इन्हें मद की कैसी खुमारी से सराबोर कर दिया- कि यह सम्हल न सकीं; उसी प्रकार बेसुध सी वहीं चौकी पर सिर रखे आधी लेटी सी हो गईं । कमरे में कौन आया- गया, इसका इन्हें भान ही न रहा ।

वह चितवन सुरा की मादक बेचैनी आज भी अनेक बार कौंध जाती है– इतनी गहराई से उस बंक अवलोकन ने हृदय को झंकृत कर दिया कि रोम रोम ही उस सरस सुधा से परिपूर्ण हो गया। कई बार उसी स्मृति में आज भी मग्न हो जाती हैं।

'नयनों से झरती मधु धारा'

× × ×

'रसीले छल'

व न प्रान्त का एक दृश्य है। रमणीय प्रकृति प्रफुल्लित दीख रही है। पूजनीया बोबो वहां अकेली खड़ी हैं। श्री ठाकुर कहीं से चले आए। एक श्वेत चादर से इन्हें पूर्णतः आवृत्त कर खड़े हो गए। श्यामसुन्दर का सुडौल–सुठानयुत स्कन्ध, मुख कमल चादर से बाहर है। थोड़ी ही देर में वहां कुछ ऋषि–मुनि चले आए–और श्री राम जी समझ कर श्री ठाकुर को प्रणाम करते हुए चले गए। श्याम सुन्दर पू. बोबो को नयन संकेतों से ही दर्शा रहे हैं कि इन सबको मेरा राम रूप ही दीखा पर .... तुम्हारा तो मैं .... वही .... अब भी हूँ। तभी मैंने केवल इन्हें मुख ही दिखलाया। उसके बाद की वार्ता–सरस–उलझन कुछ भी कहने में लेखनी समर्थ नहीं।

'नहीं सुरझत उरझन प्रेम की'

× × ×

श्रीकृष्ण–राम रूप–ऐक्य

व न प्रान्त का एक दृश्य है। सामने धनुष लिये रामजी खड़े हैं। पू० बोबो देख कर विचार कर रही हैं कि रूप में छलकता सलोनापन, नेत्रों में भरी शरारत, अंगों में समायी चञ्चलता–चपलता श्याम सुन्दर की सी दीख रही है, धनुष देख श्री राम जी का सा भ्रम होता है। अब जब दृष्टि उठी तो धनुष के स्थान पर वंशी हाथ में थी– और वही चपल मुस्कान बरबस ही हृदय का अपहरण कर रही थी। यह कौतुक देख विस्मित हो रही हैं। प्रियतम ने अब वंशी उछाली तो हाथ में धनुष दीख रहा है– अब पुनः वंशी .... इस प्रकार श्री राम और श्री कृष्ण रूप के ऐक्य की पुष्टि दिखला रहे हैं।

× × ×

अभीप्सित रस रंग

किसी एकान्तिक स्थली पर प्रियाजी एक स्वच्छ चबूतरे पर प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में आसीन हैं। सम्भवत: स्नान से तभी निवृत्त होकर आई हैं। पू० बोबो एक ओर खड़ी यह दृश्य देख रही हैं। प्रिया जी की केशावली अभी सम्हली नहीं। उसी सुचिक्कण– सघन श्यामल केशावली से आवृत्त प्रिया जी का मुख कमल– ओह ! सौन्दर्य पुञ्जीभूत हो मूर्त हो गया है मानों।

एक सखी ने, अत्यन्त सुन्दर, सुगन्धित छोटी सी पुष्प-माला जो केवल प्रिया जी की नाभी तक ही लम्बी है, ला कर श्री राधा को दी। प्रियाजी ने उसे देखा, परन्तु धारण नहीं की। अपनी बांह में डाल, किसी नवीन मधुर भाव में तन्मय हो उन्होंने कर कञ्ज अपने सुभग कपोल पर धरा और नयन मूंद लिये। यह एक तन्मय दशा थी अथवा प्राणनाथ की सरस स्मृति– यह कहना कठिन है। हथेली में कुछ अटकी सी उनकी मृणालिनी सदृश भुजा पर यह माला इठलाने लगी।

सहसा श्याम सुन्दर वहीं चले आए। उन्होंने दूर से ही प्रियाजी की तन्मय भाव भङ्गिमा निहारी। दबे पांव पास आए और उसी माला में अपनी भुजा डाल, अपने कपोल पर हस्त कमल धर धीरे से पास ही बैठ गए। कपट–चतुर ने कमल नयन मूंद लिये। कभी–कभी नयन कोरों से प्रियाजी को निहारते और नयन मूंद लेते। न जाने कब वे भी भावस्थ हो गए, उन्हें भी भान न रहा। प्रियतम की चपलता का भान सम्भवत: हो गया–अथवा उनकी गात सौरभ ने अनजाने में ही प्रिया जी को चौंका दिया– वे किञ्चित् सजग हुई, नयन खोले। बंक चितवन–पुष्प, प्रियतम की तन्मय रूप मधुरिमा पर चढ़ाए और धीरे धीरे अपना कर कञ्ज माला में से निकाल, प्रिय की भुजा में पड़ी माला, धीरे से उन्हीं के कण्ठ में डाल दी। सुनील वक्षस्थल पर श्वेत पुष्पों की माला खिल गई। इस हलचल से अथवा प्रिया सहित माला के शीतल संस्पर्श से श्याम–सुन्दर अब सजग से हुए। अर्द्धोन्मीलित नयनों से उन्होंने प्रिया को अपने समीप एकदम सामने पाया।

नयनों में चपलता थिरक उठी, अधरों पर मुस्कान बिखर गई। श्यामल सुडौल भुजाओं में कम्पन हुआ .... और ..... और .... वही हुआ .... जो अभीप्सित था .... बहुत कुछ हुआ।

रस की इन तरंगों ने अपनी नित्य दिव्य देह में वहीं विराजमान पू० बोबो को सिक्त किया और .... और ....।

× × ×

उभयाङ्गमिलन मधुरिमा

घ ने निकुञ्ज पार्श्व में स्थित किसी एकान्त स्थली पर प्रिया-प्रियतम विराजमान हैं। वहीं पास खड़ी पू० बोबो देख रही हैं इन दोनों का रसीला कौतुक। ऐसा लगता है आज कोई विशेष पर्व है अथवा दोनों ही साभिप्राय स्वर्णिम मुकुट तथा चन्द्रिका धारण किये हुए हैं। भांति-भांति की मणि मुक्ताओं से झिलमिल झिलमिल करता शृङ्गार धारण किया हुआ है।

प्रियतम की बंक ग्रीवा कुछ अधिक झुक रही है। यह लो! (बातों ही बातों में) देखते-देखते श्याम सुन्दर किञ्चित् अधिक झुके और अपनी मुकुट लटक को प्रिया जी की चन्द्रिका में उलझा दिया। यह कोई नई बात न थी। नटखट जो ठहरे। अब और नई शरारत सूझी और तनिक और झुके; अपने मुकुट को प्रिया जी की चन्द्रिका में उलझा, चन्द्रिका ही उतार ली। श्री राधा का केशपाश मुक्त हो झूमकर लहरा उठा। श्याम सुन्दर ने चन्द्रिका सहित अपना मुकुट भी उतार पास ही रख लिया। प्रियतम की केशावली भी लहराने लगी। उस झूम और लहरान ने युगल प्रणयी के उर अन्तर को झकझोर दिया। उनकी उमंग तरंगे भी लहरा उठीं। भाव घन झूम झूम कर लहराने लगे ....। बस फिर क्या था। प्रियाजी के सलज्ज सरस नयन प्रियतम के विविध भाव रस पूरित नयनों से मिले ....। नयनों के इस मिलन ने हृदय को मिलने की ललक लगा दी ..... फलतः नयन, नयनों से मिले, अधर और हृदय भी समाश्रय ढूंढने लगे। वहां कुछ भी असम्भव न था। प्रेम राज्य की रसीली बात ... बात-बात में रस घात, सभी सुखद था।

इन्हीं भावों में भरी रसास्वादन रता पू० बोबो सुख की सरस स्मृतियों में मग्न हो गईं। इस सौभाग्य सुख की ललक किसे न होगी भला ?

× × ×

'गौरी ध्यान का फल'

श्री राम चरित्र के प्रति पू० बोबो का मन समान भाव से जाता था। श्री राम रूप में भी हमारे श्याम सुन्दर ही तो हैं- अपने इष्ट की बात तो अलग ही है। रामायण का पाठ भी उत्सवों पर, विशेष अवसरों पर अवश्य करतीं। एक बार पुष्प वाटिका का प्रसङ्ग चल रहा था, यह भी पाठ में बैठी थीं- वहीं बैठे-बैठे इन्होंने देखा श्री राम जी का शयनागार।

अत्यन्त शोभामय- अलंकारों से सज्जित बहुत ही सुन्दर और मणिजटित राज प्रासाद का शयन कक्ष है। चारों ओर भीनी-भीनी सुगन्ध महक रही है। बीचों बीच, बहुत ही सुन्दर विशाल शय्या बिछी है। उस पर लाखे रंग का चारों ओर लटकता हुआ पलंग पोश बिछा है। उस पलंग पर तथा पलंग पोश पर अत्यन्त सुन्दर चित्रकारी हुई है, वह सौन्दर्य देखते ही बनता है। पलंग पोश के बीचों बीच श्वेत, उज्ज्वल दुग्ध फेन सी कोमल चादर बिछी है। श्री राम जी शय्या पर शोभायमान हैं। लगभग सभी अलंकार उतार कर पास रखे, चरण लटकाए, सहज स्वाभाविक मुद्रा में बैठे हैं। उनकी नित्य नूतन प्रणयिनी श्री जानकी जी पास ही सकुचाई सी बैठी हैं। उनके आवश्यक अलंकार उनकी छवि को और और वर्द्धित करते हुए धन्य हो रहे हैं। उनके स्कन्ध पर से होता हुआ उनका पीला दुपट्टा शोभायमान है। आभरण वस्त्र सुशोभित हो रहेहैं। (विवाह के आसपास के दो चार दिनों में किसी विशेष समय का दृश्य है)

श्री राम जी ने अपना कपोल श्री जानकी जी के मुख से सटाते हुए धीरे से उनके कान में कहा, ''अब श्री गौरी का ध्यान हो रहा है।'' जानकी जी के कपोलों पर अरुणिम आभा तथा अधरों पर मृदु मुस्कान झलक उठी। उन्होंने सकुचाते हुए, अपना एक कर कञ्ज श्री राम जी के अंक में रख दिया। श्रीराम जी ने एक बार पुनरावृत्ति कर पूछा। श्री जानकी जी ने बहुत धीरे से उत्तर दिया, ''गौरी ध्यान का फल।'' पू० बोबो सोचने लगीं, श्रीराम जी का प्रणय चापल्य कोई अब देखे; श्री राधाकृष्ण इस रूप में अभिनय कर रहे हैं या श्री राम जानकी जी ही उन दोनों का अनुकरण! यह प्रश्न है या उत्तर।

पूर्ण लाभ

गह्वर वन (बरसाना) में एक सघन निकुञ्ज स्थली पर बने चबूतरे पर अपनी दाहिनी कोंहनी टिकाए, कपोल हथेली पर धरे अलबेले ढंग से श्यामसुन्दर लेटे हैं। (पास ही के एक सघन वृक्ष के नीचे खड़ी पू० बोबो यह सब निरख-निरख कर मग्न हो रही हैं) श्री राधा, प्रियतम के वक्षस्थल पर शीश धरे लेटी बड़ी ही मुग्ध हो रही हैं। उनके नेत्र तन्मयता के कारण मुंदे जा रहे हैं। सघन अलकावली से उनका मुख विधु आवृत्त है।

श्याम सुन्दर ने अपने कर सरोरुह से प्रियाजी की मुख चन्द्र सुधा का पान करने के लिये सघन अलकावली को सम्हार एक ओर करने की चेष्टा की। ऐसे में प्रिया जी के अधर का स्पर्श करती उनकी सरस करांगुली

वहीं टिक गई। इधर रस की झूम में भर और सरसा गईं वे। श्यामसुन्दर को तो कोई मिस ही चाहिये– उस सरस सरिणी की मर्यादाओं को आँक पाना अत्यन्त कठिन हो गया।

पास ही के एक सघन वृक्ष के नीचे खड़ी पू० बोबो यह रस रहसि केलि निरख कर रस में मग्न हुई जा रही हैं।

× × ×

शयन विवशता

पूजनीया बोबो का श्री यमुना स्नान / दर्शन / आचमन का नियम ही था। जब भी सुविधा से जैसा सहज हो जाता वैसे ही करतीं। आज भोर में श्री यमुना स्नान करने जाते हुए देखा :-

"प्रिया-प्रियतम दोनों ही अलसाए से, डगमगाते किसी-निकुञ्ज से आए हैं। यह मादकता, कौन जाने नींद वश है अथवा प्रेम राज्य की किसी सरसता में भरे डूब-उतर रहे हैं। अपना वाम कर श्री राधा की कटि में लपेटा हुआ है, उनींदे से भी दीख रहे हैं। पांव रखते कहीं हैं, पड़ते कहीं हैं। कभी नेत्र बन्द कर लेते हैं फिर नयन खोलकर सावधान होने की चेष्टा करते हैं। श्री राधा ! उनकी कुछ न पूछो। भोला-भाला गौर मुख कमल नींद वश अलसाया बड़ा ही लुभावना लग रहा है। कुछ पग चलने के पश्चात् उनके नेत्र बन्द हो गए। कमल-कली से मुंदे नयन अनुपम लग रहे हैं। क्या क्या कह कर प्रशंसा करें ? जो सुन्दर हैं अधिकाधिक सुन्दर हो रहे हैं। भोलापन! वह तो अपने में सुन्दर था ही। उनके पग आगे बढ़ ही नहीं रहे। उनके अनजाने में उनका शीश प्रियतम के स्कन्ध पर टिक गया। प्रियतम ने बंक चितवन से प्रिया जी की यह स्थिति देखी। प्रियतम के अलसाए मुख मण्डल पर मुस्कान छिटक गई। कुछ क्षण तो कनखियों से मुख सुधा का पान करते रहे फिर शयन हेतु साथ की निभृत निकुञ्ज में चले गए।

इस सरस माधुरी का पान कर मग्न हो रही हैं– पूजनीया बोबो।

'डगमग चाल चलत मतवारे'

× × ×

सू र्योदय से पूर्व भोर में पू० बोबो को प्रायः एक ही निकुञ्ज दीखा करती है। ऋतु परिवर्तन के अनुसार, उसमें भी परिवर्तन होता रहता है। ग्रीष्म ऋतु में यह, सीधे खड़े हुए वृक्षों की खुली हवादार निकुञ्ज होती है और शीत काल में उन्हीं वृक्षों की डालियां कुछ इस प्रकार परस्पर उलझ कर, मिल कर स्थली को आच्छादित कर देती है कि घनी, बन्द तमोमयी सी निकुञ्ज दीखती है। बाहर की तीव्र तीक्ष्ण शीत वायु, वहां प्रवेश नहीं कर पाती अपितु शीत ऋतु में सुहावनी सी उष्णता वहां बनी रहती है।

ऐसी ही घनी आच्छादित निकुञ्ज में (एक बड़े सोफ़े सी बड़ी कुर्सी के समान) लाखे रंग की दिव्य एवं कोमल मखमल जैसे सुन्दर वस्त्र से मंडित पीठ है। (यह सोफ़ा भी प्रायः दीखता है) इस वस्त्र पर बहुत सुन्दर काम हुआ है, जो दमक रहा है और नेत्रों के लिये सुखदायी भी है। निकुञ्ज के चारों ओर वस्त्र इस प्रकार मण्डित है कि कहीं से भी ज़रा सी भी हवा अथवा ठंड नहीं आ सकती। हल्की हल्की उष्णता इस वस्त्र में से झरती सी प्रतीत हो रही है।

प्रणयी प्रिया-प्रियतम दोनों ही अपना एक एक चरण कमल अपनी सहज मुद्रा में अपने-अपने सुकोमल जाह्नु पर रखे बैठे हैं, इन दोनों के दूसरे चरण, नीचे एक एक छोटी पीठ पर अलग अलग टिके हैं। प्रिया जी की चरणपीठ पर हरा सुन्दर कोमल दिव्य वस्त्र बिछा है और श्याम सुन्दर की चरण पीठ पर वैसा ही लाल।

पू० बोबो एक ओर खड़ी, लता रन्ध्रों से इन्हें निहार रही हैं। सोच रही हैं चरण पीठ पर टिके होने के कारण कहीं इन्हें ठंड न लग रही हो। परन्तु इन्हें साथ ही लगा, मानों उन चरण पीठों पर मंडित वस्त्रों में से हल्की-हल्की सुहावनी उष्णता झर रही है। इससे इन्हें बहुत सन्तोष हो रहा है।

× × ×

वसन्त विहार (नन्दग्राम में)

भो र में संकीर्तन चल रहा है- और पूजनीया बोबो देख रही हैं :-

एक वन प्रांत में आयताकार कक्ष है। इस कक्ष के चारों ओर खूब घने वृक्षों और पौधों से इसकी सीमाएं बंधी हैं। सुन्दर पुष्पों से

मण्डित हो रही है यह स्थली । इस कक्ष के मध्य में लम्बाई की ओर एक गोलाकार चौकी बिछी है । उसके दोनों ओर, केले के पत्तों जैसे दो पत्ते निकले। उन दोनों पर प्रिया–प्रियतम आसीन हो गए– इनके (पू० बोबो के) मन में विचार आया कि केले के पत्तों पर किस प्रकार बैठा जा सकता है भला? वे तो बड़े कोमल होते हैं– परन्तु यह पत्ते निर्मित हैं, अत: बैठा जा सकता है, इन्हें स्पष्ट हो गया । यह भी विचार हुआ कि यह दोनों इतनी दूरी पर क्यों बैठे हैं भला ? उसी समय दोनों उन पत्तों के मध्य कर्णिका सदृश चौकी पर आसीन हो गए । देख रही हैं उस चौकी के दोनों ओर तीन–तीन पत्ते और निकले। इस प्रकार अष्ट दल कमल का आकार स्वत: ही बन गया और छम–छम करती अष्ट सखियां आकर स्वत: इन आठों पत्तों पर आसीन हो गईं और प्रिया–प्रियतम इनके मध्य में, कर्णिका पर । परस्पर छेड़छाड़; हास विनोद रस चेष्टाओं में सभी मग्न हो रहे हैं । देखते–देखते उनके सामने ही एक बहुत बड़े आकार का दर्पण प्रकट हो गया– उसमें सभी प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। इस सबको देख ये सभी प्रमुदित और प्रफुल्लित हो रहे हैं ।

यह दर्पण थोड़ी देर में पारदर्शी शीशे के रूप में परिणत हो गया, बीच में से उसके दो भाग खुलते चले गये । मानों कोई द्वार खुला हो । प्रिया–प्रियतम उतर कर, उस द्वार के भीतर प्रविष्ट हुए पीछे–पीछे अन्य सखियां भी चली आईं । फूलों से सुशोभित रमणीय मार्ग से होकर ये भीतर चले जा रहे हैं । अत्यन्त सुन्दर पुष्पोद्यान है, उसमें एक गोलाकार रम्य पीठ सी बनी है । उस पर यह दोनों आसीन हुए । सामने ही पुष्पों से निर्मित एक नौकाकार स्थली है । उसमें यह सब सखियां विराजमान हो गईं ।

इन दोनों स्थलियों के मध्य में तिरछी छोटी–छोटी नालिकाऐं सी बनी है । उनमें सुगंधित घुली हुई केशर भरी है । उस पुष्पोद्यान में कुछ तो विविध पुष्पों की भीनी–भीनी सुगन्धि महक रही है, वासन्ती सुरभित बयार बह रही है । केशर गन्ध इस में अपना सम्पुट लगा, न जाने कैसे–कैसे उद्दीस कर रही है– इन्हीं सबसे उद्दीसमना, प्रणयमत्ता यह किशोरी वृन्द, मदनोत्सव में मत्त प्रणयी प्राणधन की गात–सुरभि से और–और सरस हो रहे हैं ।

श्री राधाजी ने लाल रंग का टिपारों से मण्डित अद्भुत लहंगा तथा केशरिया रंग का सुनहरी झिलमिल काम का दुपट्टा धारण किया हुआ है । श्री राधाजी की अद्भुत तथा दिव्य वेशभूषा है । श्याम सुन्दर का पटका श्री राधा के दुपट्टे से किञ्चित् हल्के रँग का है, धोती पीत वर्ण की अवश्य

है परन्तु दुपट्टे से हल्के से कुछ भिन्न रँग की है (पटके में उनाबी रंग की झलक लगती है।) नीचे चौड़ा सा सुनहरी काम, उसके ऊपर लाल, फिर सुनहरी सा। प्रियतम का पृष्ठ भाग, पटके में से चमकती अंग श्री, ग्रीवा, श्यामल, कोमल, सुन्दर, मधुर लावण्य से परिपूर्ण; न जाने क्या-क्या उसमें छलका पड़ रहा है।

हां ! तो जब प्रिया-प्रियतम अपनी इन प्राण प्रिया ब्रजाङ्गनाओं सहित इस पुष्पोद्यान में आकर विराजे थे, तो श्याम-सुन्दर ने उस घुली केशर में अपनी अंगुली डुबा प्रिया जी के मस्तक पर बिन्दी लगानी चाही तो उन्होंने सभी सखियों की ओर संकेत कर, लगाने को कहा, ऐसा कर प्रियतम ने प्रियाजी के लगा अपना मस्तक उसी केशर से अनुरंजित किया। इधर प्रियाजी ने भी इसी प्रकार सभी सखियों के कपोलों पर केशर लगा, प्रियतम को सरसा अपने कपोल को अनुरञ्जित किया।

अब वे उस खुले पुष्पोद्यान में आ गए। सभी सखियां पुष्प चयन करने हेतु चली गईं और यह प्रणय मत्त युगल पास ही एक स्थान पर पुष्प चयन करने लगे। प्रियाजी पुष्प चयन कर प्रियतम के आंचल में सम्हालने लगीं। अनेक रंगों के छोटे-छोटे सुन्दर पुष्प हैं। पुष्पों से भरे अपने आंचल को श्याम सुन्दर अपने हृदय से लगाते हैं- और कभी उन्हें मस्तक से छुआ लेते हैं और बीच-बीच में प्रियाजी की ओर रहस्य पूर्ण मुस्कान से निहार, प्रणय भीनी मुस्कान से न जाने क्या संकेत दे रहे हैं। प्रिया जी संकोच, सिहरन पुलकन भरी चितवन से उन्हें निहार रही हैं तथा मुस्करा रही हैं। वहीं आस पास एक ऊँचा स्तूप सा है, उसके पास ही भूमि पर एक सुन्दर वस्त्र बिछा कर आंचल में भरे पुष्पों का ढेर लगा दिया तथा दोनों पास पास बैठ गए। वहीं उपवन में पौधों से निर्मित सुन्दर सुन्दर पक्षी बने हुए हैं, वह बड़े ही सजीव लग रहे हैं। उस उपवन का दृश्य बड़ा ही मनोरम है। चारों ओर विविध सुरभित पुष्पों से, सुन्दर प्राकृतिक वनस्पतियों से सुशोभित है वह उपवन। शीतल मन्द सुगन्धित बयार सुहावनी लग रही है। सौरभ-मंद, मधुर भीनी भीनी महक रही है। अब सभी सखियां पुष्प चयन कर इसी स्थान पर चली आईं। उसी पुष्पों की ढेरी में अपने अपने भी मिला सामने बैठ गईं। सभी उन पुष्पों से सुन्दर-सुन्दर अलंकार बनाने में संलग्न हो गये। प्रियतम ने कई पुष्पों के सिरों को जोड़ एक सुन्दर सी कोमल गेंद बनाई तथा सभी सखियों की दृष्टि बचा, मद मत्त शिरोमणि चतुर नागर ने वह गेंद प्रिया जी के वस्त्रों में छिपा दी। अलंकार बनाने में व्यस्त होने के कारण प्रियाजी का

आँचल किञ्चित् सरक गया था– चतुर चूड़ामणि ने उसका लाभ उठाया। प्रिया जी संकोच वश वैसे ही बैठी रहीं– क्या करतीं ? हां सभी सखियों की दृष्टि बचा बंकिम अवलोकन से प्रियतम को देखा तो सही– परन्तु सकुचा कर दृष्टि नीचे कर बैठी रहीं । इधर श्याम सुन्दर ने उसी सुभग गेंद को धीरे से निकाल लिया– अपने भाल पर, कपोलों पर भूषित कर मग्न होते रहे । उस गेंद को खोल एक और आकृति में परिवर्तित कर, चपटा सा बना उसे अपने मुकुट में धारण कर लिया । मुकुट में पहले से ही एक सुन्दर लम्बा सा पत्ता लगा था । पल्लव और पुष्प–गुच्छ से संयुक्त उस मुकुट की शोभा अनिर्वचनीय हो गई ।

सामने से एक सखी ने पुष्पित गेंद बना बड़ी ही सुकोमलता से प्रियतम की ओर फेंकी । इन्होंने उसे बड़ी लाघवता से अपने कर कंज में थाम लिया और हृदय से लगा, उसी बाला की ओर फेंक दी– उसके अंक में जा गिरी । वे सिहरीं, गद्‌गद हो पुलकित सी अनुरागरञ्जित हो उठीं । रागानुराग की इस सुरस गाथा का अंकन कोई क्या करे ! हृदय ही यत्किञ्चित् समझ सकता है, सराह सकता है । इसी प्रकार सभी सखियों को समूह में भी एकान्तिक सुख प्रदान करते हुए यह वसन्त–नायक अपनी अभिन्न प्राणा इन ब्रज कामिनियों के साथ वसन्त विहार में संलग्न हो गए । वे सब भी इतनी तन्मय हो रही हैं कि समूह में बैठे होने पर भी परस्पर एक दूसरी का भान नहीं है तथा पुष्पालंकारों से भी भूषित हैं ।

एक ओर खड़ी पू० बोबो यह सब दृश्य देख देख कर सिहर पुलक रही हैं परन्तु मन में एक संकोच भी है और किञ्चित् खिन्नता भी। प्रियतम से रस–सिक्त होने की लालसा बार–बार उन्हें सरस स्मृतियों से आलोड़ित कर रही है । यही भावना लिये अपने घर नन्दग्राम को चल दीं। सखी स्वरूपा पू० बोबो (नन्दग्राम) निवासिनी हैं । अपने गृह में प्रविष्ट हो गईं, पर उसी खिन्नता और बेकली में तुरन्त बाहर चली आईं । बाहर आ ही रही थीं कि प्रियतम वहीं–इनके पास अकेले ही जा पहुंचे । इनके स्कन्ध पर अपना कोमल कर कमल धर बोले, 'इसीलिये तो आया हूँ ।' किसलिये यह कौन कहता– उसी सुरस विहार में सामीप्य लालसा और जिन रसीली कामनाओं को उर में संजोए यह चली आई थीं उनकी चरितार्थता हेतु ही श्याम सुन्दर समीप पहुंचे थे ।

नन्दग्राम निवासिनी– रस विलासिनी

× × ×

अम्बाले के पूजागृह में सेव्य युगल, मन्दिर में विराजित हैं। पू० बोबो सामने बैठी उन्हें निहार रही हैं । पार्वती जी, जो सेव्य श्री ठाकुर जी के पास ही सिंहासन में विराजमान हैं, अपनी कमनीय तर्जनी से इन्हें संकेत कर, कुछ देखने के लिये आग्रह कर रही हैं । इन्होंने देखा, 'मन्दिर में एक सुन्दर शय्या बिछी है । उस पर श्री ठाकुर जी अपने कर कमल पर शीश टिकाए अपनी कोहनी के सहारे लेटे हैं । एक चरण कमल शय्या से नीचे की ओर लटका रखा है । इनके पीछे श्री जी भी बहुत सुन्दर शृंगार में सुसज्जित, उसी शय्या पर विराजमान हैं । दोनों ही सरसीली चेष्टाओं में निमग्न अपने जनों को परम सुख प्रदान कर रहे हैं ।'

होली-फाग में जगा महाभाग

एक वन प्रान्त में हरी भरी घनी वृक्षावली के मध्य एक आयताकार मेज़ सी है । बड़ी निराली शोभा हो रही है । उस मेज़ के चारों ओर थोड़ी-थोड़ी इतनी जगह खाली है कि एक-एक व्यक्ति खड़ा हो सकता है । उसके पीछे हरे भरे पुष्पित गमले रखे हैं ।

अपने चरण नूपुरों के मधुर शिञ्जन से उस स्थली को और-और सरसाते, अपनी मदमाती चाल से उस मेज के एक सिरे पर एक गमले के पास श्यामसुन्दर आकर खड़े हो गए । उनके बांई ओर कोई उनकी अभिन्न प्राणा सखी आकर खड़ी हो गईं- सम्भवतः श्री चन्द्रावली जी हैं और दांई ओर श्री राधा विराजित हैं ।

थोड़ी ही देर में छम-छम करतीं अष्ट सखियां वहां चली आईं और मेज़ के दूसरी ओर इन तीनों से पीठ किये, एक-एक गमले के मध्य आकर खड़ी हो गईं । स्वतः ही उस मेज़ के चारों ओर गोल सी आकृति बना, सभी को बीच में कर वह मेज बढ़ सी गई । उस गोलाकार स्थली में यत्र-तत्र, घुली हुई केशर के स्वर्णिम पात्र धरे हैं । श्याम सुन्दर तथा सखियाँ अपने अपने कर कञ्जों से उन कुण्ड सदृश पात्रों में से केशर ले ले कर परस्पर छिड़क रही हैं । हल्के हल्के छींटों से उनके गात तथा वस्त्राभूषण अद्भुत रूप से रंजित हो गए । केशर की मधुर मधुर भीनी सुरभि सारे वायुमण्डल में फैल गई ।

मेज़ के एक सिरे से थोड़ी दूरी पर एक छोटा सा कुण्ड है, जिसमें कुछ और ही रंग का जल भरा है । ऐसे जल को देखकर यह

(पू० बोबो) सोच रही हैं, इन सबने जो केशर छिड़की-उलीची है, वही बह कर इस कुण्ड में भर गई है, इसी से इसका जल निर्मल नहीं दिखलाई दे रहा है। कुण्ड के बीचो-बीच फव्वारा सा बना है, परन्तु चल नहीं रहा। उसी कुण्ड के चारों कोनों पर खड़े होने के लिये स्थान बने हैं। कुण्ड तक जाने का मार्ग अति रमणीय है। दोनों ओर पुष्पित पल्लवित तथा सुरभित पादप हैं। मालाओं से भी सज्जित है, यह मार्ग। सखी वृन्द श्याम सुन्दर सहित मदन महोत्सव में उमंगित हो इस कुण्ड पर चली आईं। इन चारों छज्जों तथा फव्वारे के पास कभी कोई, कभी कोई आ विराजते हैं और परस्पर हास विनोद- रस विनोद सहित मदन केलि क्रीड़ा में सभी रत हो जाते हैं। रस प्रवाह की हिलोरों में मत्त, मग्न यह बालाऐं........ ! इनके सौभाग्य की बात कौन कहे- कैसे कहे ?

× × ×

'ऊषा जी अन्दर आओ'

दो कक्ष हैं। इन दोनों के बीच का द्वार खुला है, सामने एक वरांडा है। वरांडे में खड़ी पूजनीया बोबो देख रही हैं :-

जामनी चैक की सुन्दर कोटी तथा उसी प्रकार का लहंगा पहने, दुपट्टा ओढ़े, नारी वेश धारण किये, रसिक शिरोमणि एक ओर खड़े हैं। अपना अगाध सौन्दर्य भी किञ्चित् अर्न्तहित कर लिया है जिससे पहचाने न जा सकें। परन्तु सहज मदिर चितवन मधुधारा को अन्तर्हित करने में सर्वथा असमर्थ हैं रसिक सुन्दर। अपनी इस खुमारी भरी अवलोकन से नारी वेश धारी प्रियतम ने बाहर खड़ी इन्हें (पू० बोबो) अपने पास बुलाया। इस मदिर चितवन को देख यह सिहर-पुलक उठीं और गात झनझना गया। अपने को सम्हालने में सर्वथा असमर्थ सी हो गईं तथा इन्होंने बंक भृकुटी से किञ्चित् अनखा कर संकेत से ही अन्दर जाने को मना कर दिया परन्तु शरीर की दशा कुछ ऐसी हो रही थी कि अपने को सम्हालने में असमर्थ सी हुई जा रही थीं।

दूसरे कक्ष में एक सुन्दर शय्या पड़ी थी। वहां खड़ी ललिता जी किसी कार्य में संलग्न थीं उन्होंने वहीं से पुकार कर कहा, ''ऊषा जी ! तुम अन्दर आओ न !'' यह नव वधू आई है। अन्दर आकर इसे देखो। यह सभी के चरण छूऐंगी। सहज संकोच भरी वाणी में पू० बोबो नकारात्मक सा उत्तर दे ही रही थीं, कि ललिता जी, नववधू को लिये बाहर वरांडे में इनके

पास चली आईं और वह वेशधारी नववधू इनके पांव छूने को आगे बढ़ झुकी, इन्होंने रोकना चाहा .... नववधू ने एक बार पुन: मादक चितवन से इनकी ओर देखा...... मादक मधुमद से और-और विवश परवश कर दिया ...... बस, कब में को श्री ललिता जी अपनी पूर्व व्यस्तता में संलग्न हो गईं; और इधर यह उलझन ...... प्रेम की उलझन। इन उलझन और सुलझन के आवर्तों में मग्न हो गये राग रस के द्वय मतवारे

'नहिं सुरझत उरझन प्रेम की
रही रोम रोम में भोय ॥'

× × ×

होली की धूम

होली की धूम से अकुलाई, उमगी प्रकृति ने समस्त ब्रज में धूम मचा दी। उसी धूम में भरे युगल रस बावरे अपनी न्यारी ही धूम का जय घोष करते- मदझूम में भर गए। इसी झूम में- रस रंग की धूम में मग्ना पू० बोबो- इनकी रसमयी लीलाओं का रसास्वादन कर आत्मसुख में भरी प्रफुल्लित हो रही हैं। इन्होंने देखा :-

"वन प्रान्त की एक एकान्तिक स्थली में एक छोटा सा कुण्ड बना हुआ है। उसमें केशर घुली हुई है। वह कुण्ड चौरस नहीं है। उसका कोई कोना नहीं दीख रहा है। उस कुण्ड पर बड़े छिद्रों वाली एक जाली पूरी तरह ढकी है। उन छिद्रों में से पिचकारी सुगमता से भरी जा सकती है। उस जाली के बीचो बीच किसी धातु विशेष का दिव्य गोलाकार सा ढक्कन है। इस कुण्ड के एक ओर श्याम सुन्दर पिचकारी लिये खड़े हैं और दूसरी ओर सखियों का समूह विराजमान है। प्रियतम श्याम सुन्दर उस ढकी जाली के छिद्रों में से पिचकारी से रंग भर-भर कर इन ब्रजाङ्गनाओं पर डाल रहे हैं। सखियां कुछ देर तो रंग बौछार को जिस किसी प्रकार से झेलती रहीं, कभी पीठ पर और कभी कर कञ्ज की आड़ लेकर और कभी दौड़कर और कभी बैठकर उस रंग बौछार से बचने का विफल सा प्रयास करती रहीं। अन्तत: सचेत, सजग सी हो एक दूसरी का सहयोग सम्बल लेती हुई सखी सैन्य प्रियतम श्याम सुन्दर को पकड़ने के लिये सामूहिक रूप से भागी पर चतुर चूड़ामणि पिचकारी वहीं छोड़ उस धातु निर्मित गोलाकार ढक्कन पर अपना कर कमल टिका बड़ी लाघवता से एक कलाबाज़ी सी लेकर कुण्ड

के दूसरी ओर विराजमान हो गए और अपनी सफलता पर उन्मुक्त खिलखिलाहट से विजय घोष युक्त गम्भीर गर्जना करने लगे उस उन्मुक्त खिलखिलाहट से वह स्थली गूंज उठी; झंकृत हो गई । सखियां आश्चर्य चकित सी विवश परवश सी, सकुची-सिमटी सी, रंग सिक्ता सी, कम्पित वपुषा सी सिहर रही हैं, पुलकित हुई जा रही हैं ।

वह होरी रंग की धूम, राग रंग की झूम- सभी कुछ सरस हो गया और यह रस बावरे मत्त हो गए ।

'राग-रस रंग की झूम'

× × ×

ग्रीष्म ऋतु की तप्त दोपहरियों में राहत देती वर्षा की फुहारें अपने यौवन में प्रविष्ट हो गईं । मूसलाधार वर्षा हो रही है । वन प्रान्त जल मग्न हो गया है । वृक्ष-वल्लरियां, फूल-पौधे सभी जल मग्न हैं । पृथ्वी भी जल से सिक्त हो गई है । वर्षा के कारण भूमि पर चलना भी कठिन हो गया।

प्रिया-प्रियतम वन प्रान्त में ही वर्षा का आनन्द ले रहे हैं। वे भी खूब भीग रहे हैं । घूमते-घूमते एक घने वृक्ष के नीचे आकर सहसा रुक गए । वर्षा कम होने पर वहां से चले । रपटन के कारण ठीक से न चल सकने पर, प्रिया जी को प्रियतम अपनी आजानुभुजा से थामे धीरे-धीरे चल रहे हैं । अपना पीत पट उन पर डाल वर्षा की बौछारों से बचाने की चेष्टा कर रहे हैं ।

अब दोनों ही वन प्रान्त के एक कक्ष में आ गए । यह कक्ष बड़े ही विचित्र ढंग का बना है । इसकी छत विशेष कलात्मक चित्रकारी से सज्जित है । चारों ओर कोई दीवार नहीं है, अपितु, नीची नीची लटकती रंग बिरंगी दिव्य कांच की नलियां सी लटक रही हैं । उन पर से होकर जाती वर्षा की फुहारें विभिन्न वर्णों की सी प्रतीत होती बहुत ही मनोहारी लग रही हैं ।

उस कमरे नुमा कक्ष में श्वेत दुग्ध फेन सी शय्या है । प्रिया-प्रियतम इस कक्ष में प्रविष्ट हुए । प्रियतम ने अपना गीला पटका एक खूंटी पर टांग दिया । किशोरी जी उस शय्या पर बैठ गईं, परन्तु अपने दोनों चरण-कमल शय्या पर न रख लटकाए रहीं । लहंगे के भीगे छोर को अपने दोनों कर कञ्जों से पकड़े, सुखाने का प्रयास कर रही हैं । प्रियतम श्याम सुन्दर भी पास ही बैठे हैं । कुछ ही क्षणों में पास ही की निकुञ्ज से तीन सखियां

अपने कर कमलों में तीन रंग की हरी, आसमानी और स्वर्णिम मणिमय तश्तरियों में बर्फ़ी नुमा कोई मिठाई लिये आ रही हैं। उन तश्तरियों में रखी बर्फ़ी उसी वर्ण की दीख रही है।

प्रिया-प्रियतम को मिष्ठान्न समर्पित करने पर, प्रियतम अपने स्वभावानुसार चपलतापूर्वक स्वयं ले रहे हैं, प्रियाजी को खिला रहे हैं, सखियों को खिला रहे हैं, परस्पर उछाल-उछाल विनोद भी कर रहे हैं।

सामने एक वृक्षमूल के सहारे हल्के मोतिया रंग की सुनहरी किनारी की साड़ी पहने पू० बोबो सब कुछ देख रही हैं। प्रियतम ने संकेत से इन्हें अपने पास बुलाया, संकोच वश यह गई नहीं- वे इनकी 'तत्सुखे सुखित्वं' की भावना पर रीझ उठे। उन्होंने एक बर्फ़ी इनकी ओर भी उछाली। उसमें से कुछ ग्रहण कर शेष अपनी साड़ी के छोर में बांध ली; कुछ आगे बढ़ उस कक्ष के एक सुन्दर से स्तम्भ को पकड़े खड़ी रहीं।

इसी समय एक सखी ने मल्हार राग में निम्न पद गाया :-

आज घन घनी कृपा कीन्हीं।
श्यामा जू की सहज माधुरी नेह मिसान्तर दीन्हीं॥
रूप निधान नवल रस भीजे, नेह दशा रस भीनी।
निरखत नवल सखी रस भीनि, रूप रसामृत पीनी॥

उक्त पद भी पू० बोबो ने उसी दशा में सुना और स्मृति में रख लिया।

× × ×

अद्भुत दृश्य

नवीन ढंग का एक वरांडा है। प्रातः कालीन सुहावना समय है। उस वरांडे के बीच में एक सिंहासन है, जिस पर प्रिया-प्रियतम अलसायी सी मुद्रा में विराजमान हैं, प्रातःकालीन समीरण भीनी-भीनी गंध लिये इठलाती सी प्रवहमान है। सामने उद्यान में रंग बिरंगे कई फव्वारे चल रहे हैं। बड़ा ही मनोहारी दृश्य है। हवा के झोंकों से फुहारें युगल पर पड़ रही हैं। शीत के कारण प्रियाजी किञ्चित् संकुचित सी होने लगती हैं तो प्रियतम उन्हें अपने सन्निकट कर लेते हैं।

पू० बोबो यह सब दृश्य देख रही हैं। फव्वारों को देख सोचती हैं कि एक फव्वारे में कई रंग का जल कैसे भरा गया होगा। इतने में पास जा कर देखा फव्वारे के प्रत्येक छिद्र के मूल में भिन्न भिन्न रंगों की मणियाँ रखी हैं। इसी से फव्वारे में जितने छिद्र हैं उतने ही रंग का जल प्रतीत

हो रहा है । जल बिल्कुल निर्मल और स्वच्छ है पर मणियों के प्रकाश में रंग बिरंगा प्रतीत हो रहा है।

इनके मन में विचार आया कि यह तो प्रात:कालीन शोभा है, रात्रि की लीला क्या रही होगी ?

तत्काल ही दृश्य बदला । प्रिया–प्रियतम उसी प्रकार विराजमान हैं, परन्तु वे अब उद्यान में नहीं हैं । उनके सामने श्री यमुना जी विशाल रूप में ठाठें मार रही हैं । चन्द्रमा तथा नक्षत्र भी जल में झिलमिलाते दीख रहे हैं । जल में श्री यमुना जी प्रकट हुईं । उनके दोनों ओर एक एक सखी हैं । श्री यमुना जी का वर्ण गौर प्रतीत हो रहा है और सखियां भी गौर वर्ण दीख रही हैं । पता नहीं उनकी आभा से अथवा चन्द्रमा के प्रकाश में श्री यमुना जी गौर वर्ण दीख रही हैं । वह तीनों ही उस वरांडे की पिछली ओर आईं । बीच में श्री यमुना तथा दाऐं बाऐं वि सखियां हैं । तीनों ने उस वरांडे को छुआ तो वह तुरन्त चलने लगा । वास्तव में वह वरांडा न होकर उसी आकार की नाव ही थी, भ्रम वरांडे का होता था । नाव के नीचे पानी आ गया और श्री यमुना की लोल लहरियों में प्रवहमान नौका में विराजित युगल श्री की शोभा का ब्योरा कौन दे .... !

आइये श्री यमुना महारानी से अनुनय विनय कर यत्किञ्चित् हम भी जानें आगे की बात ।

होली में नृत्य

होली की धूम की बात ही निराली है । भोर हो अथवा सांझ, कोई भी समय क्यों न हो– इस धूम में झूम उठते हैं श्याम सुन्दर । इन्हीं दिनों की सार्थकता हेतु वे आज भोर में ही वृषभानुपुर चले आए । पू० बोबो ने यह सब दृश्य देखा और .... रस में भर गई ।

श्याम सुन्दर ने विचित्र से वस्त्र धारण कर एक सखा के वेश में श्री जी के मन्दिर में प्रवेश किया । सुबह चार बजे का धुंधला सा समय है । आप निचले प्रांगण में उद्दाम नृत्य करने लगे । नृत्य की मुद्राऐं ऐसी हैं मानों मानिनी किशोरी की मनुहार कर रहे हों । श्री राधा मखमल की लाल चप्पल अपने सुकोमल चरणों में धारण करे मन्द मन्थर गति से सीढ़ियों से नीचे उतर कर चली आ रही हैं । अपनी मान तथा प्रियतम की मनुहार मुद्राओं को इन छद्मी सखा के उद्दाम नृत्य में देख सिहर रही हैं, पुलकित हो रही हैं,

विवश हुई जा रही हैं । इन अलबेले नटवर नर्तक पर आप भी बलि बलि जा रही हैं । यह लो, वे अपने वश में न रह सकीं । सोच रही हैं, इतनी ठंड में सुबह ही सुबह, वस्त्र भी ऐसे ही धारण कर रखे हैं, नंगे पैरों नृत्य कर रहे हैं । यह विचार कर अपनी मखमली पादुकाऐं उतार, नयन-संकेत से प्रियतम की मनुहार कर रही हैं कि वे धारण कर लें । प्रियतम अब रह न सके, श्री राधा के मृदुल चरणों में अपना सुभग शीश झुका दिया । श्री राधा ने इन्हें उठा अपने हृदय से लगा लिया- भला वे यह सब कैसे सहन करतीं । अंक में लिये लिये अपने निजी मन्दिर में ले आईं । छद्म वेशधारी श्याम सुन्दर ने जिस हेतु से छद्म वेश धारण किया था वह मधुर मादक अर्थ सिद्ध हुआ ।

रंग-बिरंगी फुहारें

ग्री ष्म कालीन दिवसों में एक बार सखा जी आए हुए थे। नामामृत पान में मदहोश थे । तन्मयता के कारण कुछ लीलादि तो दे न सके परन्तु पू० बोबो एक दृश्य देखती रहीं ।

'सब सखियों ने मिलकर एक सुखद रचना की । एक श्वेत संगमरमर की स्थली है । गोल चबूतरा सा है, उस पर बैठने की जगह बना रखी है । उसके पीछे एक श्वेत ही स्तम्भ सा है । बीच में एक सुन्दर फव्वारा है जिससे स्वच्छ सुगन्धित जल प्रवाहित हो रहा है । प्रिया-प्रियतम दोनों रस भीने से, उस सुन्दर स्थली को देख वहीं बैठ गए । दोनों ही आश्चर्य-चकित बड़े विभ्रम में पड़ गए । चकित से हो कर चारों ओर देख रहे हैं । इनके बैठते ही एक Spring सा दबा । चारों ओर से रंग बिरंगी मणियों में से निसृत विचित्र रंग बिरंगे फव्वारे, हल्की हल्की फुहारों के मिस इनका अभिषेक करने लगे। इनके झीने वस्त्र कुछ-कुछ गीले हो गए । मुख मण्डल जल में सिक्त हो गए। नेत्रों में विस्मय मिश्रित, स्मित छा गई । अपने मुख कमल से जल कण निवारण करते- बहुत ही सुन्दर लग रहे हैं प्रणयी युगल ।

छिपी सखियां बाहर चली आईं और प्रसन्न हो-हो कर चहकने लगीं .... आगे की बात उस स्थली ने अपने गर्भ में संजो रखी है । वही रंग जमा ... वही रस प्रवाहित हुआ .... ।

यमुना तट-प्रणय भीति

भो र कालीन समय है । वर्तमान धीर-समीर घाट समीपस्थ यमुना तट पर आगे प्रियतम खड़े हैं और पीछे किञ्चित् प्रणय-भीत सी प्रिया

जी । प्रियतम ने कर पकड़ प्रिया जी को जल में लाना चाहा– वे डर रही हैं सम्भवतः प्रियतम के चपल स्वभाव की उन्हें कल्पना भी है और सम्भावना भी । ''पू० बोबो उसी तट पर कुछ दूरी पर बैठी यह सब दृश्य निहार रही हैं। इसी बीच प्रिया जी की मधुर दृष्टि इन पर पड़ी– वे मुस्करा दीं– यह जान कि हम दोनों को पू० बोबो देख रही हैं । प्रियतम श्यामसुन्दर भी प्रिया जी के मुख के पास मुख ले जा, उनकी मुस्कान में सहयोग देते इन्हें देख देख कर प्रफुल्लित हो रहे हैं ।

नील-गौरारुण कर कमल शोभा

श्री गिरिराज परिक्रमा में चतुर्भुज दास जी की स्थली के पास कुछ बहिनों सहित कुछ देर को बैठे थे । एक बहन निर्मला शर्मा ने चतुर्भुज दास जी का एक पद सुनाया । पू० बोबो ने देखा सामने गोवर्द्धन तलहटी में शिलाओं पर एक मयूर चुगता घूम रहा है, उसे सभी बहिन, भाइयों ने देखा । पू० बोबो को मोर के साथ-साथ नूपुरों की छम छम ध्वनि भी सुनाई दे रही है । वह ध्वनि अब भी कानों में गूंज रही है । आसमानी लहंगा जिस पर चौड़ा चौड़ा कुछ काम भी है, सिर पर दुपट्टा ओढ़े जिसके दोनों छोर आगे की ओर लहरा रहे हैं, किशोरी श्री राधा कभी एक शिला पर और कभी दूसरी शिला पर चरण रखती उस मयूर के साथ साथ, अपनी गौरारुण हथेली पर दाने धरे उस मयूर को चुगाती हुई चल रही हैं । कभी किसी शिला पर दाने रखती हैं और कभी किसी अन्य पर । बहुत सुन्दर लग रही हैं । कुछ समय बाद एक वृक्ष के सहारे (अपने दोनों कराम्बुज पीछे की ओर ऊपर ले जाकर वृक्ष को पकड़) अपनी अलबेली अदा से खड़ी हो गईं । इस मुद्रा में खड़ी श्री राधा अत्यन्त कमनीय लग रही है । वह वृक्ष सचमुच वहां मौजूद है ।

पीछे से प्रियतम श्याम सुन्दर आए और उनके दोनों कर कमल थाम लिये । दाईं ओर उनसे सट कर खड़े हो गए । श्री राधा सम्भ्रम पूर्वक चौंकी– पर जाना-पहचाना संस्पर्श पाकर पुलकित हो उठीं । उस समय की किशोरी जी की मुस्कान छटा अब भी इनके (पू० बोबो) नेत्रों में बड़ी गहराई से बसी है । अधरों की अरुणिमा, उसमें झिलमिलाती दन्त पंक्ति, सभी शोभा को निहार मग्न हो रही हैं पू० बोबो । प्रियतम ने बांई भुजा से प्रियाजी की कटि को लपेट लिया और उनके मुख के पास मुख ले जा रस रंग में रत हो गए ।

कुछ समय बाद प्रियतम ने अपना दायां कर कमल श्री राधा

के बाऐं कर कमल से जोड़ दिया। उन दोनों में दाने थे- अब दोनों ही सरस भाव में भरे झुक कर उस मयूर को दाने खिलाने लगे। उन नीलारुण गौरारुण कर सरोरुह की वह शोभा .... अहा .... अहा।

छद्म वेष

इन दिनों 'वन विहार' रमण रेती में श्री प्रिया शरण जी महाराज श्री राधासुधानिधि पर प्रवचन कर रहे थे। पू० बोबो भी सत्संग सुनने जाती रहीं। कथा तो थोड़ी बहुत जो भी सुनी होगी सो तो क्या कहें? इनके नेत्र वहीं कुछ और ही दृश्य देखने में संलग्न थे।

श्यामसुन्दर सलेटी से वर्ण की सुन्दर साड़ी जिस पर बड़े-बड़े चमकीले सफ़ेद फूल बने हैं धारण किए हुए हैं। सखियों में सम्मिलित प्रियतम इतनी सुघड़ता से छद्म-वेष धारण किये है कि उन्हें कोई भी पहचान नहीं पा रही, सखी ही समझ रही हैं। उनके नूपुरों की छम-छम ध्वनि अब भी पू० बोबो के कानों में समायी है। प्रियाजी पीत वर्ण की साड़ी धारण किये एक वृक्ष की आड़ में छिपी अपने अलबेले प्रियतम को इस वेष में सखियों के साथ साथ देख कर प्रफुल्लित हो रही हैं। उनके मन प्राणों में सिहरन भर रही है। प्रियतम श्याम सुन्दर ने भी अपनी प्रणय प्राणा प्रियाजी को छिपे देख लिया- सभी की दृष्टि बचा अपनी सांकेतिक दृष्टि से प्रियाजी को कुछ कह सुन रहे हैं और मन ही मन प्रसन्न भी हो रहे हैं। वह आन्तरिक प्रसन्नता नेत्रों से मुस्कान के मिस छिटकी पड़ रही है।

उस सुख सुधा की लोल लहरियों में सभी मग्न हो रहे हैं।

वहीं कथा श्रवण करते दूसरे दिन देख रही हैं, प्रियतम पीतवर्ण की सुन्दर कामदार साड़ी पहने एक घने वृक्ष पर छिपे बैठे हैं। श्री राधा ने आसमानी रंग के वस्त्र धारण कर रखे हैं। उनके चरणों की अरुणिमा, कोमलता और उस पर भी महावर से रंजित लालिमा ने और-और सौन्दर्य लावण्य का विस्तार कर दिया। चरणों की अरुणिमा मानों सर्वत्र फैल रही है।

प्रियाजी प्रियतम को सर्वत्र ढूंढती घूम रही हैं। प्रियाजी की विस्मय-पूर्ण दृष्टि, सर्वत्र अद्भुत आश्चर्य का विस्तार कर रही है। ढूंढते ढूंढते प्रियाजी एक वृक्ष के नीचे आकर खड़ी हो गईं। श्रमित और शिथिल सी हैं। सौभाग्य से उसी वृक्ष के ऊपर सखी वेषधारी प्रियतम बैठे हैं। उन्होंने अपने कमल कोमल चरण लटका कर प्रियाजी को और विस्मय में डाल

दिया। प्रियाजी के आश्चर्य युक्त हर्ष का ठिकाना न रहा उन चरणों को देखकर। उन चरणों का किस किस प्रकार से सत्कार किया, अपना प्यार-दुलार उंडेला ...... यह तो वही दोनों जानें। श्री चरणों को आश्रय प्रदान करती .... प्रिया श्री राधा .... ।

× × ×

श्री हनुमान जी की तन्मयता

संगमरमर का एक सुन्दर विशाल कक्ष है। उसमें एक ओर ऊंची सी वेदी बनी हुई है। (मानों तख्त पर बनी वेदिका पर रामायण का पाठ चल रहा हो) पू० बोबो उस कक्ष के भीतर चली गईं। मन प्राणों में सरसता का संचार कर देने वाली सुन्दर, सुमधुर, हृदय-मन-प्राणों का प्यार-दुलार लिये 'राम राम' की ध्वनि सुनाई दे रही है- मधुर नाम ध्वनि का अनुसरण करती वे आगे बढ़ीं तो वहां देखा, अपनी तन्मय अवस्था में वेदिका पर विराजित श्री हनुमान जी प्रमुदित हैं। बड़ी ही प्रेम पूर्ण दशा में मत्त, पूर्णतः तन्मय, पुलकित, रोमाञ्चित्, प्रमुदित हैं- मानों नामी से पूर्णतः संश्लिष्ट हैं। हनुमान जी की उस आनन्द मग्न दशा को देख कर पू० बोबो भी स्तब्ध सी रह गई। वह ध्वनि पू० बोबो को भी पुलकित रोमांचित किये दे रही है।

भोर का समय है। राम जी चुपके चुपके, सोते उठ कर आए और हनुमान जी को हृदय से लगा लिया। पू० बोबो के मन में आया कि महल में सीता जी एवं भाई लोग क्या कहेंगे कि इस तरह राम जी उठते ही चुपके से यहां चले आए। तभी गम्भीर आकाशवाणी सुनाई दी ''यह साम्राज्य ईर्ष्या द्वेष का नहीं है।''

यह सुन, अपनी बात का उत्तर पा पू० बोबो अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

× × ×

जन्म दिवस पर युगल द्वारा उपहार

जौलाई, ३०, १९६७ (पू० बोबो के जन्म दिन) की बात है। संध्या में संतोष बहन जी तथा सरला बहन जी ने लाड़ और स्नेह वश पू० बोबो के एक हाथ में एक चूड़ी पहना दी और अपने सेव्य श्री शालिग्राम जी का प्रसादी हार गले में पहना दिया। पू० बोबो ने सोते समय वह हार अपने

सिरहाने रख लिया परन्तु चूड़ी धारण किये रहीं। रात को सो रही थीं तो देखा बाईं कलाई में अपना विविध नगों वाला स्वर्णिम कंगन श्याम सुन्दर पू० बोबो को धारण करा रहे हैं। वह कंगन बीच में से चौड़ा है और दोनों छोरों पर पतला होता गया है। बड़ा होने के कारण वह कंगन कलाई में नहीं आया तो कुछ ऊपर बांह में पहनाने लगे और दाईं कलाई में श्री राधा जी अपना चौड़ा सा कंगन जिसके चारों ओर छोटे-छोटे नूपुर लटके हुए हैं, पहना रही है। इनके जन्म दिवस पर प्रिया-प्रियतम दोनों ही इन्हें पुरस्कृत कर रहे हैं। इस पुरस्कार के मिस मिले अगाध स्नेह और प्यार का लेखा कौन दे भला?

× × ×

श्री राधा, प्रियतम श्याम सुन्दर को सखियों से छिप कर किसी बड़े से मैदान में खोज रही हैं। अकेली ही कभी एक निकुञ्ज में प्रवेश कर रही हैं और कभी दूसरी में। देखते देखते, सुशीतल सजल बयार चलने लगी। घनघोर घटाऐं घिर आईं, बूंदाबांदी प्रारम्भ हो गई और लो ! वर्षा इतनी बढ़ी कि मूसलाधार होने लगी। देखते देखते चारों ओर जल भर गया। सर्वत्र घुटनों तक जल हो गया। श्री श्री राधा ने अपना लहंगा दोनों कर कञ्ज से थाम रखा है और पूर्णतः भीग गई हैं। भीगे वस्त्रों में से झरती उनकी गौर अंग कान्ति छलक रही है। वस्त्र गौर तन से चिहुँट गए हैं। पास ही की निकुञ्ज में छिपे श्याम सुन्दर प्रियाजी की इस विवश स्थिति को निहार निहार मग्न हो रहे हैं।

प्रियाजी से उस गहरे जल में चला नहीं जा रहा- यह लो, श्याम सुन्दर बाहर गए। प्रिया जी के कमनीय स्कन्ध पर अपना कर कञ्ज धरा। प्रियाजी भीत नहीं हुई। संस्पर्श से समझ गईं कि प्रियतम ही हैं। उन्होंने कनखियों से देखा- वह दृष्टि, उस में उठीं प्रणय राग की रसमयी तरंगें, उधर से प्रियतम की मुस्कान मयी चितवन- यह सब देख-देख पू० बोबो अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

प्रिया जी की कटि को अपनी सुकोमल बाहु में लपेट श्याम सुन्दर उन्हें आश्रय देते हुए, भीगते, पानी में डगमगाते-लड़खड़ाते चले आ रहे हैं। भीगते-भीगते एक विरल कुञ्ज में आ गये। घनी कुञ्जें वहां नहीं हैं। सखियों ने उस कुञ्ज में पहले से ही इन दोनों के लिये आयोजन कर रखा है। अन्दर एक चबूतरा सा बना है। चारों ओर जल से भीगी धरती है- परन्तु यह चबूतरा बिल्कुल सूखा है। वहीं दो-तीन सखियां विराजमान हैं। उन्होंने

इन दोनों को बदलने के लिये सूखे वस्त्र दिये। इन्होंने बदले– आगे क्या हुआ– कौन कहता।

यह सम्पूर्ण दृश्य देख देख कर पू० बोबो मग्न हो रही हैं ...... मत्त हो रही हैं।

× × ×

पू. जनीया बोबो की अवस्था बारह वर्ष की रही होगी। छोटे भाई बहन इन्हीं के कमरे में सोए हुए थे। माता-पिता इत्यादि सब दूसरे कमरे में थे। कमरे के बाहर गैलरी में अपनी ही अवस्था के एक श्यामल सुकुमार को घूमते देखा। हरे रंग का सुन्दर कोट पहने एक विशेष चितवन से इन्हें देखते रहे। इन्हें पता नहीं क्या होता गया। यह जोर से चीख उठीं, उसे सुन घर के सभी लोग जाग गए। पिताजी ने चीख का कारण पूछा तो अपने भोले भाले स्वभाववश इन्होंने बड़े ही सहज ढंग से कहा, ''एक मेरी ही अवस्था का श्यामल सुकुमार हरा चिन्मय सा कोट पहने यहां खड़ा मेरी ओर देखता रहा।'' बड़ेही गद्‌गद कण्ठ से पिताजी ने कहा, 'वह तो साक्षात् राम जी ही थे।'

× × ×

वंशीवट विहारी के मंदिर के आंगन में विजय के साथ दर्शन की प्रतीक्षा में पू. बोबो बैठी हैं। वहीं पास में एक वृक्ष के सुदृढ़ तने पर एक तोते को अपने कर में लिये हुए श्री ठाकुर बैठे हैं। दूसरे कर कञ्ज से उसे प्यार से सहला रहे हैं। उस वृक्ष पर अनेकों तोते बैठे श्याम सुन्दर की माधुरी का पान कर रहे हैं। अपने स्नेहिल स्वभाव से श्याम सुन्दर बीच-बीच में सभी तोतों को देखते जाते हैं।

'प्रेम-प्रवाह'

पू० बोबो २६-१०-६७ से कुछ अधिक चुप-चुप थीं। 'बीमार हैं' सभी को ऐसा भ्रम होता रहा– परन्तु यथार्थ कुछ और ही था।

इनकी चुप्पी का कारण कोई बाह्य न था। श्यामा-श्याम की अनुराग लहरी ने आज कुछ और ही प्रकार से उद्वेलित सा कर दिया था। किसी गम्भीर विचार में मग्न रहीं, विश्राम आदि करने में भी विशेष रुचि न थी। ऐसे ही देखा :–

"लताओं से सुसज्जित एक दीवार है । आगे चार स्तम्भ लगे हैं । ऊपर एक शय्या भी बनी है । उस पर प्रिया-प्रियतम विराजमान हैं। श्री ठाकुर जी ने केशरिया पीला पटका धारण किया हुआ है। दोनों ने एक दूसरे से शीश मिला रखे हैं । इनके मन में विचार आया कि सीढ़ियां तो कहीं दीख नहीं रहीं- यह दोनों इतनी ऊपर कैसे चढ़े होंगे ! विचार आते ही दिव्य सुन्दर सीढ़ियां दिखलाई दीं । यहीं एक पीठ बनी है, उस पर श्री राधा जी अपना एक चरण धरे हैं और दूसरा घुटना मोड़े उस शय्या पर विराजमान हैं । श्री ठाकुर जी ने अपनी बांई भुजा प्रियाजी की कटि में लपेटी हुई है, दोनों ही किसी मद झूम में भरे सुरस वार्ता में संलग्न हैं । श्री राधा जी का दुपट्टा बहुत ही महीन, हल्का काश्नी रंग का है, उस पर किरण लगी हुई है। बाऐं हाथ से उसका एक छोर ठीक कर रही हैं- उसमें से रश्मियाँ निसृत हो रही हैं।

इस दृश्य को निहार पू० बोबो परम सुख में मग्न हो रही हैं ।

× × ×

'गिरिराज पूजन की व्यस्तता'

श्री यमुना पुलिन पर बहन सुमित्रा के साथ बैठी पू० बोबो यमुना की लोल लहरियों का, आनन्द लेती हुई प्रिया-प्रियतम की चर्चा के सुख में मग्न बैठी हैं । वहीं उन्होंने देखा :-

श्री ठाकुर जी एक कर में घर की बनी गुंजिया लिये उधर ही चले आ रहे हैं । वहां गिरिराज पूजन चल रहा है, सामग्री तैयार की जा रही है । वहीं वन में एक सघन स्थली पर प्रिया जी केशरिया सा पीला दुपट्टा धारण किये, नाक में मीने के काम की बड़ी सुन्दर नथ पहने, जिसकी एक स्वर्णिम मुक्ता-लड़ी केश-पुष्प से जुड़ी है, त्योहार की सी वेशभूषा में विराजमान है । सम्भवतः किसी पूर्व के संकेतानुसार गिरिराज पूजा की अत्यधिक व्यस्तता से ऊब वे वहां चली आई हैं । श्यामसुन्दर भी वहीं आ गए । प्रियाजी एक हाथ से वृक्ष की डाल पकड़े खड़ी हैं, मुख मण्डल श्रमित है परन्तु उद्दीप्त हो रहा है । श्री राधा ने विस्मित हो श्याम सुन्दर से सहसा पूछा, 'क्या मिस बना वहां से चले आए ? कैसे निकले वहां से?' प्रत्युत्तर में श्याम सुन्दर ने कहा, 'वहां तो श्री गिरिराज ही प्रकट हो कर भोग लगा रहे हैं- और मैं इधर भाग आया हूँ ।' यह कहकर मिष्ठान्न प्रियाजी के मुख में दिया । प्रियाजी मुस्कराईं और अपना मुख प्रियतम के मुख के पास ला प्रफुल्लित हो रही हैं ।

पू० बोबो यह सब दृश्य देख ही रही थीं, उन्होंने प्रियाजी से प्रार्थना की कि तुम्हारा दुपट्टा तो दीख रहा है परन्तु लहंगा नहीं दीखा- प्रियाजी ने दुपट्टा उठा लहंगा दिखाया। हरे रंग का लहंगा देख और प्रिया-प्रियतम की रस वार्ता सुन, मग्न होती रहीं पू० बोबो।

× × ×

'श्री वृन्दा दर्शन'

अभी पू० बोबो अम्बाला में ही विराजमान थीं। बात उनकी छोटी ही अवस्था की है, तब तक वे खाट पर शयन करती थीं। भोर में जल्दी उठने का अभ्यास था ही, अतः जल्दी जग गईं। अभी खाट पर बैठी थीं कि इन्हें तुलसी (महारानी) के पास कुछ हलचल सी लगी। उधर ठीक से ध्यान देकर देखा 'श्वेत वसना परम सुन्दरी कोई बाला' खड़ी हैं। वह वस्त्र दिव्य हैं। ऐसी दिव्य आभा में उनका वर्ण भी ठीक से नहीं दिखलाई दे रहा। इन्होंने उन्हें दोनों हाथ जोड़ प्रणाम किया। उन्होंने अपना कर कञ्ज उठा कर आशीर्वाद दिया और धीरे धीरे वहां से अन्तर्धान हो गईं। इस सारी घटना को इन्होंनें अपने पिता जी से कहा। वे बड़े ही धार्मिक थे- गद्गद होकर बोले, 'वे साक्षात् वृन्दादेवी थीं, तुम्हें उन्होंने दर्शन एवं आशीर्वाद देकर अनुग्रहीत किया है।'

× × ×

'बिहारी जी का अनुग्रह'

एक जगह कहीं उत्सव हो रहा है। वहीं एक छोटी सी कन्या नृत्य कर रही है। उसी विस्तृत प्रांङ्गण में दरवाज़े के एक ओर उसी के आकार की सीकचों वाली एक खिड़की थी। उस खिड़की के दोनों ओर पुराने ढंग के चबूतरे बने हैं। एक चबूतरे पर बैठी पू० बोबो वह नृत्य देख रही हैं। इन्होंने झुक कर देखने के लिये खिड़की के सामने अपना सिर किया हुआ था। सामने बैठे एक संत ने संकेत से कहा कि पीछे खिड़की में देखो।

इन्होंने पीछे खिड़की की ओर मुड़कर देखा, वहां बिहारी जी खड़े हैं। सफ़ेद कढ़ी हुई गर्म शाल ओढ़े, बड़ी अदा से खड़े उस कन्या का नृत्य देख रहे हैं। उन्हें इस प्रकार देख, हर्ष में भरी पू० बोबो मग्न हो रही हैं।

× × ×

'नौकाकार शय्या'

कीर्तन के पश्चात् प्रायः लेट जाती हैं। श्यामा-श्याम की माधुरी लीला में मग्न कभी सरसता में भर, और कभी उनकी लीला में रत- और मत्त हुई।

आज भी भोर के संकीर्तन के पश्चात् लेट गईं। उसी समय देखी एक निकुञ्ज, (जो प्रायः इन्हें दीखती है) 'वही शयन कक्ष है। उसमें लगभग एक-डेढ़ फुट ऊंचा चबूतरा बना है। हल्का श्यामल कालिन्दी से वर्ण का सा मृदुल वस्त्र बिछा है। मंद समीरण के झोंके से हिलते हुए उस वस्त्र को देख, ऐसा लगता है जैसे कालिन्दी ही तरंगित हो रही हों। उसी पर नौकाकार एक शय्या बनी है। उस पर श्वेत उज्ज्वल दुग्ध फेन सा एक वस्त्र मढ़ा हुआ है। उस नौका के दोनों सिरे लताओं से बंधे हैं। मंद समीरण की लहरान में यह नौकाकार शय्या भी डगमगाती सी सुन्दर, लग रही है। एक ओर श्वेत मणि से मंद, सुखद, शीतल ज्योत्स्ना का प्रसार हो रहा है।

उस नौका में दोनों प्रणयी रसमत्त युगल शयन कर रहे हैं। उन्होंने उन्नाबी रंग का मखमल का लिहाफ़ ओढ़ रखा है जिसमें रूई नहीं है- सम्भवतः मोटा सा कपड़ा ही है, मणि के शीतल मन्द प्रकाश में झिलमिलाता बहुत ही रमणीय लग रहा है। प्रिया जी का शीश प्रियतम के स्कन्ध के समीप टिका है, नेत्र मुंदे हैं। छोटी सी नथ पहनी हुई है, उससे जुड़ी स्वर्णिम छोटे-छोटे छल्लों की कमनीय लड़ी उनके श्रवण एवं केशावली की ओर जा रही है। छल्लों में नगों की झिलमिल हो रही है। प्रियतम ने अपने दाऐं कर कञ्ज से वह ओढ़ने का वस्त्र, प्रिया जी को ओढ़ाने के लिये ठीक कर उठाया तो उसकी झिलमिल सम्पूर्ण स्थली में भर गई और प्रियतम की उँगली में धारण की हुई मुद्रिका की जगमगाहट ने मन मोह लिया।

प्रिया-प्रियतम ने अपनी रसमयी झांकी से सराबोर कर दिया पू० बोबो को।

'प्रियतम की विह्वलता'

विशाल मैदान में दूर दूर तक कहीं कहीं छोटे छोटे पौधों के साथ पुष्प मण्डित लताऐं हिलती हुई बड़ी ही भली लग रही हैं। उन पौधों पर कहीं कहीं रंग बिरंगे पक्षियों का मधुर रव उस स्थली को सरस बना रहा है। वहीं एक पुष्पाच्छादित विशाल कदम्ब वृक्ष है। अपने हृदय के उल्लास

सूचक पुष्पों के घने गुच्छों से आवृत्त है। प्रिया-प्रियतम पर न्योछावर होता सा लग रहा है- तभी तो उसके रोमाञ्च स्वरूप यह कदम्ब पुष्प खिल रहे हैं। उसकी सघनता का तो कहना ही क्या ?

प्रिया-प्रियतम दोनों ही उस वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। प्रियतम अत्यन्त विह्वल से दीख रहे हैं। प्रणय राज्य की बात ही कुछ और है। उनकी शिथिलता, पुलकन तथा उमंग-तरंगें, सभी इसका परिचय दे रहे हैं। सहसा मस्तक प्रिया जी के स्कन्ध पर टिक गया। प्रियतम का मुख पू० बोबो को स्पष्ट नहीं दीख रहा है- प्रिया जी भी प्रियतम की दशा देख विह्वल सी हो रही हैं, उन्होंने अपनी सुकोमल सुगौर बाहु से प्रियतम को सहारा दे रखा है। प्रिया जी की उमड़न भी प्रत्यक्ष दीख रही है- यह उमड़न-घुमड़न कब रसावर्तों में खो सी गई, यह बात कौन कहता भला ?

इसी रसास्वादन में मग्न पू० बोबो एक ओर खड़ी सब निहार रही हैं।

× × ×

गह्वर वन की सुहावनी भोर, सभी के मन का बरबस ही अपहरण कर लेती है। भाव रस की उच्छलित लहरियों में मग्ना, श्यामा-स्याम की सरस स्मृतियों में भरी पू० बोबो अपने दिव्य स्वरूप में गह्वर वन से जयपुर मन्दिर की ओर चली जा रही हैं।''कुछ ही दूर गई होंगी कि सफ़ेद वस्त्र पहने- अत्यन्त सादे वेश में कोई इनके आगे-आगे चली जा रही हैं। उन्होंने मुड़ कर पीछे की ओर तो नहीं देखा केवल अपना एक कर कञ्ज पीछे किया, जिसमें एक मोर पंख है- इन्होंने ले लिया। मोर पंख को बिल्कुल श्लथ सा देख पू० बोबो ने उसे फेंक दिया, यह समझ कर कि काम तो आऐगा नहीं। मन में साथ साथ यह विकल्प भी उठ रहा है कि ऐसा मोर पंख देने में कुछ हेतु भी हो सकता है। यह विचार कर इन्होंने उस मोर पंख को पुनः उठा लिया- सोचने लगीं- यह कौन हैं ? ऐसा छद्म वेश है इनका- अकेली कहां चली जा रही हैं बिना इधर-उधर देखे। यह सभी प्रश्न, जिज्ञासा का सा रूप ले क्षण भर में ही इनके मस्तिष्क में उठे और विलीन हो गए।

अभी यह विचार कर ही रही थीं कि सहसा किसी की मधुर ध्वनि सुनाई दी, 'यह श्री राधा हैं। रस विलास मंदिर में जा रही है। यह मोर पंख प्रियतम के रात्रि विहार का है। इसी से इसकी यह दशा हो गई है। प्रियतम का मोर पंख तुम्हें दिया है।' यह ध्वनि सुन रही हैं पू० बोबो।

प्रिया जी को विलास गढ़ी की ओर प्रविष्ट होते देख रही हैं। १५-२-६८ को सखा जी द्वारा प्रदत्त लीला में रस विलास मन्दिर का प्रसङ्ग आया है। श्री श्री सखा जी उस लीला में सम्मिलित रहे, उन्होंने ही संकेत किया है।

× × ×

होरी की धूम ब्रज में प्रसिद्ध है ही। उसी रस रंग में झूमे ब्रज-बावरियों के मन अपने प्रणयी प्राण सर्वस्व की प्रत्येक रंगीली चेष्टा में सिक्त रहते हैं और यह रस विनोदी प्रियतम कोई न कोई मिस बना होली के राग रंग में मत्त रहते हैं। आज सखियों के साथ होली के हुरदंग में श्याम सुन्दर का पटका ही फट गया। उसी का एक छोर कर में लिये हुए हैं।

एक स्तम्भ के पीछे छिप कर खड़े मुस्करा रहे हैं। मुस्कान में छल पूर्ण शरारत झलक रही है। उसी ओर चली आ रही हैं अपने दिव्य सखी वेश में पू० बोबो। फटा पीत पट देख मुस्कराईं और पूछा, यह क्या?' आप और मुस्कराए और फटा पीताम्बर इन्हें देते हुए बोले, 'यह होली का उपहार है'। उपहार लेकर रख लेना तो सहज हो नहीं सकता फिर मची राग रंग की होली- रस रंग की होली, प्रणय तरंग की होली। ओह ! परम सुख की बात कौन समर्थ हुआ कहने में ?

× × ×

'प्रणय विह्वलता'

भीड़ के कारण एकान्त में तीन घंटे बैठने का जो नियम ले रखा था- 'समय नहीं मिल सकेगा' यह विचार कर पू. बोबो पहले से ही कुछ कुछ क्षुब्ध सी हो रही थीं। सहसा बिना कहे उठ कर अपने एकान्त में चली गईं। वहां लगा जैसे श्री राधा कृपा कटाक्ष स्तोत्र का एक दृश्य सामने दीख रहा है। प्रिया-प्रियतम के क्रीड़ा-कौतुक दीख रहे हैं।

एक लता मण्डप में श्री राधा अकेली बैठी हैं। उनके आन्तरिक प्रणयावेग के भाव, मानों बाह्य गौर तन पर, अंग-प्रत्यंग में रोम रोम में, यहां तक कि उनके वस्त्राभूषणों पर भी अंकित हो रहे हैं। उन्हें देख जाने कैसा-कैसा होता जा रहा है मन ?

प्रणयी प्रियतम से मिलन की प्रबल आकांक्षा, तीव्र ललक, प्रणय का उद्दाम वेग मानों स्त्रवित होकर संयमित नहीं रहने दे रहा। उनकी प्रणय विकलता को देख पू. बोबो दंग सी रह गईं। उनकी यह पुलकन, कंपन और गद्गद भाव ! ओह .... ।

पीछे लता वितान में छिपे प्रियतम, प्रियाजी की यह दशा देख रहे हैं। पहले इनके बांई ओर से इन्हें (पू० बोबो को) झांका और पीछे चले गए, फिर दांई ओर आ प्रियाजी से लग कर बैठ गए और उनके स्कन्ध पर अपना शीश टिका दिया। प्रियाजी ने प्रियतम को इस प्रकार विह्वल देख उनकी इस विह्वलता का निदान किया- प्रणय समुद्र में उठे उफान का निदान .... अहा वह सुख ...... अनिर्वचनीय सुख ...... ।

× × ×

'प्रियाजी का अगाध स्नेह'

बांके बिहारी कालोनी में एक धर्मशाला 'चौकस राम की' नाम से विख्यात थी। पू० बोबो इन दिनों उसी में निवास कर रही थीं। एक कमरे में पाठ हो रहा था। पू० बोबो उसी के साथ के कमरे में जा लेटीं। श्यामा-श्याम की सन्निधि और लीला में रत वे अनेक बार एकान्त का सुअवसर ढूंढा भी करती थीं। आज साथ के कमरे में ही बैठने पर एकांत सहसा मिल गया।

अभी कमरे में लेटी ही थीं कि प्रियाजी इनके पास प्रकट हो इनके सहारे, अन्तरङ्ग सखी की भांति इनसे लग कर बड़ी ही ममता और सौहार्द से बैठ गईं। उनकी कमनीय स्निग्ध कलाइयों में सुन्दर चूड़ियों तथा अन्य आभूषणों का पू. बोबो को अभी भी प्रत्यक्ष की भांति स्मरण है। उन्होंने आसमानी कंचुकी, जिस पर चमकीले रंग का बाहों पर काम है धारण कर रखी है। बड़े ही प्यार से भरी पू. बोबो को सहला रही हैं। अपनी सखी की भावनाओं का पोषण कर रही हैं।

× × ×

उष्ण मणि

सन् १९६४ के आस-पास की बात है। पू० बोबो मौन थीं। इस बार ठंड बहुत अधिक हुई। ऐसी सर्दी सम्भवतः बहुत दिनों से नहीं पड़ी थी। भुवन-भास्कर के दर्शन दोपहर में ही कुछ समय के लिये होते थे। लिहाफ़ में उन दिनों बैठी रहतीं। लिहाफ़ में भी इतनी अधिक ठंड लगती कि इनके घुटनों में दर्द सा हो गया। किसी तरह घुटने गर्म होते ही न थे। ऐसी ठंड के दिनों में श्री ठाकुर को कम्बल तो ओढ़ाए रखतीं परन्तु फिर भी ठंड का विचार आता रहता।

एक दिन इन्होंने देखा, एक सखी कमरे में आई और श्री

ठाकुर के सामने चौकी पर एक स्तवक सा रख कर उसके दो ढक्कन खोल कर चली गई। ढकने खुलते ही उसमें से बहुत सुन्दर सुन्दर फूल-पत्तियाँ प्रस्फुटित हो गईं। उस स्तवक के भीतर उष्ण मणि रखी थी। जिसके कारण सब ठंडक दूर हो गई। कमरा गर्म हो गया यहां तक कि पू० बोबो के घुटनों की ठंड तथा दर्द भी स्वतः दूर हो गए।

× × ×

ज़रीदार कमली

लगभग सन् १९६१ की बात है, सर्दियों के दिन थे। पू० बोबो बस स्टैन्ड से पैदल ही बांके बिहारी कालोनी वाले घर में लौट रही थीं, ब्रह्म निवास से कुछ पहले रेलवे लाइन वाले खाली मैदान में श्यामसुन्दर को आते देखा। यह ठिठक कर खड़ी हो गईं। श्यामसुन्दर ने अपनी काली कमली को अपने स्निग्ध स्कन्ध से उठा कर ओढ़ने के लिये खोला, उस कमली की ज़रीदार बूटियों की झिलमिल को देख स्तब्ध सी, रह गईं। ओढ़ते समय श्यामसुन्दर के स्निग्ध गात की उज्ज्वल कान्ति ...... देखती रह गईं।

उस स्मृति से अब भी जाने कैसा हो जाता है इनका मन।

× × ×

भीजे गात

सोफ़े के ढंग की एक पुष्प शय्या है- उसमें दो कुर्सी सी बनी हैं। उन दोनों के बीच पुष्पों से मंडित डालियां दोनों ही ओर झुकी हुई हैं। यह सब एक लताच्छादित कुञ्ज में ही है। लताओं में खिले रंग बिरंगे पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध समस्त कुञ्ज में व्याप्त हो रही है।

श्यामसुन्दर ने पीले तथा लाल और प्रिया जी ने आसमानी परिधान धारण कर रखे हैं। दोनों ही इस शय्या पर आसीन हैं। सखियां कहीं आसपास दीख नहीं रही हैं। पू० बोबो एक ओर खड़ी इस दृश्य को देख देख कर मग्न हो रही हैं। इन्हें सखियों का पता केवल तभी लगा जब प्रिया-प्रियतम के उस शय्या पर आसीन होते ही सामने से फव्वारा चला। यह दोनों ही चकित और विस्मित रह गए, उस शीतल सुरभित फव्वारे को देख कर,

उसकी मन्द–मन्द बौछारों में यह दोनों अभिषिक्त हो गए। उनके वस्त्र, उनके सलोने गात से चिहुँट गए। फव्वारे की श्वेत द्युतिमान उच्छलन से एक कृत्रिम बादल सा प्रकट हुआ जिसके श्यामल प्रकाश में इन युगल सुन्दर की तन द्युति– ओह ! प्रियाजी श्रमित सी प्रियतम के स्कन्ध के सहारे बैठ गयीं और इन्होंने अपना सुभग शीश उनके शीश पर टिका दिया।

यह दृश्य देख देख कर मग्न होती रहीं पू० बोबो।

× × ×

'श्याम के श्यामल कर कञ्ज'

बहुत पहले की बात है, अभी पू० बोबो विद्यालय में अध्यापनरत थीं। बीमारी इनके जीवन में अनेक बार आई, परन्तु उसमें बरसा सुख इनके जीवन में एक सबल और सशक्त आशा और विश्वास बन निखरा मात्र नहीं प्रत्युत उसी सबल सम्बल पर इन्होंने सभी कष्टों को सहर्ष झेल लिया। इसी प्रकार की घटना का सुयोग इनके जीवन में इस बार पुनः हुआ।

टाईफ़ाईड ज्वर पहले भी हो चुका था। इस बार की बीमारी में सिर में अधिक तकलीफ़ होती। यह कष्ट इतना अधिक हुआ कि सिर कहीं भी आसानी से टिका ही न सकती थीं। करवट से ही लेटतीं। यह तकलीफ़ इनके सिर में लगभग एक–डेढ़ वर्ष तक रही परन्तु इस कष्ट में आ जुड़ी इनके जीवन की एक मधुर अनुभूति। इनके सिर के पीछे आश्रय देते श्यामसुन्दर के दोनों श्यामल सुस्निग्ध कर कञ्ज सदैव बने रहते– इन्हें इसका सतत भान बना रहता।

एक बार विद्यार्थियों को पढ़ा रही थीं। अपने सहज स्वभाववश इन्होंने कुर्सी पर सिर टिकाने की चेष्टा की तो वहीं श्यामल मृदुल कर कञ्जों की अनुभूति इन्हें हुई– परन्तु आज एक विचित्र घटना यह भी हुई कि यह श्यामल कर कञ्ज कुछ बहनों को भी इनके शीश के पीछे दीखे। उन सबने पू० बोबो से यह बात जब कही– तो यह आंख बन्द कर मौन हो गईं। कुछ समय बाद कार्यालय में आकर बैठ गईं। उस समय की इनकी मनोदशा का वर्णन कर सकना लेखनी के वश की बात नहीं है।

× × ×

'निजी उद्यान में प्रिया जी'

पू० बोबो इधर बांके बिहारी कालोनी में ही थीं। वर्षा के

दिन थे। घन घिरने लगे थे। सेव्य युगल के सम्मुख पद गान चल रहा था। बीच में ही पू. बोबो उठ बाहर वरांडे में आकर बैठ गईं। वहां देखा :-

श्री श्री राधा चिन्मय गुलाबी रंग की साड़ी (ऐसा रंग इस जगत में कहीं नहीं देखा) पूरे जाल के काम की, बीच-बीच में कट वर्क (Cut Work) के फूल भी बने हैं, धारण किये बैठी हैं, उस स्थली में। लग रहा है उनका निजी उद्यान ही है। स्नान कर के चुकी हैं। भौहें और पलकें भीगी-भीगी हैं। स्नान के पश्चात् नेत्र कुछ-कुछ रक्तिम से हो रहे हैं। केशावली से जल बिन्दु टपक रहे हैं, अपने एक मृदुल कर कञ्ज से केश सुखा रही हैं।

प्रियतम वहीं कहीं छिपे बैठे थे। प्रियाजी की इस उन्मुक्त छवि सुधा का पान कर आकृष्ट हुए, लताओं का निवारण करते हुए, प्रियाजी के समीप आ रहे हैं- उस समय की इन दोनों की मुस्कान रश्मियों से आलोकित तथा पुलकित हो रही हैं पू० बोबो।

× × ×

कृष्णान्वेषणकातरा

पू० बोबो का स्वास्थ्य कुछ ढीला सा चल रहा था। श्री ठाकुर जी का शृङ्गार कर लेट गईं। पास ही बैठी श्री राजदुलारी बहन रास पंचाध्यायी का पाठ सुनाने लगीं। लेटे लेटे वे उन्हीं रसीली स्मृतियों में खो सी गईं और तन्मय हो गईं। चौथे अध्याय में एक श्लोक है, उसमें 'चित्रधा' शब्द आया है।

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शन लालसाः॥

पू० बोबो ने वही सुना .... देख रही हैं एक सखी श्री कृष्णान्वेषण रता पूर्णतः उन्मत्त, मदहोश सी, चित्र सी प्रतीत हो रही है। चित्र और उसकी दशा में कोई अन्तर नहीं दीख रहा। उसे पुनः पुनः देख रही हैं। एक अन्य सखी की भी यही दशा है, वह लता पत्रों से पूछती विस्मित, स्तब्ध, मुग्ध, मौन, उन्मत्त, चित्रवत् ही लग रही है। एक को दूसरी का भी भान नहीं है। दोनों के परिधान मटमैले से ही दीख रहे हैं- वास्तविक रंगों का पता नहीं चल पा रहा। केशपाश ढीला है, अस्त-व्यस्त, वस्त्राभूषण अनस्थानीय हैं, श्री कृष्णान्वेणकातरा जो ठहरीं- मौन, बौराई सी, चित्रवत् खड़ी हैं। पहली

सखी पू० बोबो ही हैं। एक शरीर से तो यह वहां रास पंचाध्यायी सुन रही हैं और दूसरे दिव्य शरीर से श्री कृष्ण को ढूंढती वन में विचरण कर रही हैं।

दूसरी सखी ने अपने उस प्रणयोन्माद में प्रियतम के साथ किसी मिलन प्रसङ्ग का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। उस प्रसङ्ग को सुन चैतन्य हुई उस सखी के पास पू० बोबो रुक गईं। सुनते–सुनते उन्हें अपनी मिलन स्मृति भी हो आई और भाव मग्न हो पू० बोबो (अपने नित्य स्वरूप में) वही सुनाने लगीं।

इस शरीर से रास पंचाध्यायी का प्रसङ्ग सुन रही थीं– वहीं किसी ने कहा– यह साधनावस्था की बात है। यह तुरन्त ही उत्तेजित हो झुंझला कर बोलीं–, "यह तुम्हें साधनावस्था दीख रही है ? यह मिलन सुख के परे की सिद्धावस्था है जिसमें साधनावस्था लय हो चुकी है।"

× × ×

श्री यमुना द्वारा अभिवादन

पू० बोबो भोर में संकीर्तन के बाद लेट गईं – तभी दीखा एक सखी मांगलिक वस्तुऐं हाथ में लिये जा रही हैं। उसी दिन पू० बोबो दोपहर में श्री निवासाचार्य जी की समाधि वृन्दावन में जा कर बैठी रही थीं। श्री निवासाचार्य जी श्वेत वस्त्र धारण किये साधुवेश में समाधि मंदिर में घूम रहे हैं। उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने भी अभिवादन स्वीकार कर शुभ कामना सूचक आशीर्वाद दिया।

वहीं बैठे बैठे लगा श्री यमुना जी खूब हिलोरें ले रही हैं। अनेक अरुण कमल खिल रहे हैं। कमलों के मध्य में एक सुन्दरी गौर वर्ण बाला खड़ी है। उसके शरीर का आधा ऊपरी भाग ही दीख रहा है। आगे कमलों के कारण पूरी तरह नहीं दीख रहीं। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ प्रणाम किया। पू० बोबो निर्णय नहीं कर पा रहीं कि आखिर श्री यमुना के इस प्रकार हाथ जोड़ कर प्रणाम करने के पीछे हेतु क्या है ? इन्हें यह भान अवश्य हो रहा है कि वे बाला श्री यमुना ही है।

इन्हें यह भी भान हो रहा है लता झुरमुट में छिपे श्याम सुन्दर वहीं हैं– कदाचित् श्री यमुना जी का अभिवादन श्याम सुन्दर को ही होगा।

× × ×

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

श्री कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव श्री कृष्ण भक्तों के लिये विशेष महोत्सव बन कर आता है। उसी दिन भोर में पू. श्री महाराज जी के यहां पू. बोबो को वेणु विनोद कुञ्ज में पद सुनने के लिये आमन्त्रित किया गया था। वहां पद गान चल रहा था, परन्तु पूजनीया बोबो वहीं बैठे बैठे देख रहीं थीं नंदभवन में नन्दनन्दन की सरस लीलाओं को।

पू. बोबो ने देखा नन्द भवन का बाहरी द्वार है, उसकी विशाल श्वेत दुग्ध सी सीढ़ियों से उतरते हुए नन्द कुंवर एक सीढ़ी पर एक, और दूसरी पर दूसरा चरण धरे, पीली धोती जगमग- जगमग कर रही है, उसी का एक छोर अपने कर कञ्ज में थामे, अपनी सहज स्वाभाविक अलबेली अदा से खड़े हैं। उनका सहज प्रफुल्लित मुख कमल कुंचित अलकावली से आवृत्त सुन्दर मधुर द्युति मण्डल, श्यामलोज्ज्वल छवि किञ्चित् गम्भीर सी है। प्रफुल्लता और चापल्य में, गाम्भीर्य ! है न विचित्र? पू० बोबो आश्चर्य में हैं- पुनः सोच रही हैं, इस उत्सव में अपने मन प्राण रिझाने आई किसी वयस्क गोपिका को बाहर तक छोड़ने आए हैं कदाचित्; इसी से यहां इस मुद्रा में खड़े हैं। देखते देखते वह छोर उन्होंने अपनी श्वेत दन्तावली से थाम लिया, और-और खिजा- रिझा रहे हैं उसे ...... अब दोनों कर कञ्ज जोड़ रहे हैं ... यह छवि देख पू० बोबो खिल उठीं- विशेष प्रफुल्लित होती रहीं।

'नैन हिये के द्वै फल पावें।'

× × ×

'माला जप रहा हूं'

मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज का प्रवचन सुनने कई भाइयों के साथ पू. बोबो गईं। एक हरे भरे प्रकोष्ठ में उनका प्रवचन चल रहा था। पू० बोबो की दृष्टि हरी भरी सद्य स्नात झूमती इठलाती प्राकृतिक शोभा पर, रमणीय दृश्य पर अटक गई- और वहीं देखती रह गईं वे, देखा :-

"श्याम सुन्दर सामने उस हरियाली के मध्य खड़े हैं। स्कन्ध भाग से ऊपर कुंचित केशावली लहरा रही है। उन्मुक्त मुस्कान, मृदुल अरुण अधरों पर खिल रही है। सुकोमल, सुडौल स्कन्धों से पटका ढुरक कर नीचे खिसक गया है। वक्षस्थल पर देदीप्यमान कौस्तुभ मणि अपनी

शीतल उज्ज्वल प्रभा से श्यामल कोमल वपु को और–और द्युतिमान करती सी शोभायमान है । पू० बोबो श्याम सुन्दर के दांई ओर बादामी सी रेशमी साड़ी, उसी से मिलता जुलता वर्ण का पीत ब्लाउज पहने बीच में बड़े और इधर उधर छोटे–छोटे होते गए श्वेत मोतियों की कण्ठी धारण किए खड़ी हैं । श्यामसुन्दर ने इनका शीश अपने हृदयस्थल पर टिका लिया । रस की इस रीझमयी स्थिति में दोनों ही मग्न हो रहे हैं । प्रियतम ने उस कण्ठी के मोती गिनने का मिस सा बनाया .... पू० बोबो ने पूछा, ''यह क्या कर रहे हो ।'' आप बोले, ''माला जप रहा हूँ ।'' इन्होंने पूछा, ''कौन सा मंत्र'' आपने तुरन्त कहा, 'मदन मंत्र' यह वाक्य सुन दोनों ही खिलखिला कर हँस पड़े। दोनों की उन्मुक्त हँसी, संकोच मिश्रित स्वच्छंद मुस्कान– इसके आगे की बात रसाघात में मिल वहीं कहीं छिप गई ...... चलो ढूंढ कर देखें ....।

× × ×

श्री ललिता जन्म महोत्सव

श्री ललिता जी के जन्म महोत्सव वाले दिन ठीक उत्सव के समय दोपहर को पू० बोबो देख रही हैं, तथा वहीं सभी सखियों में स्वयं भी उस रस धूम में सम्मिलित हो– आनन्द निमग्न हो रही हैं ।

''ललिता जी के भवन का खुला द्वार है, जहां विशेष वेदिका बनी है, उसी में श्री ललिता जी विराजमान हैं । अभिषेक तो नहीं, पर कुछ विशेष आयोजन होने को है । सभी–अष्ट सखी समुदाय, तथा अन्य किशोरियों की भीड़ में हास विनोद, चहल–पहल हो रही है, कोई बैठी है कोई खड़ी है और कोई हास विनोद में और कोई बात–चीत में संलग्न है । एक ओर कुछ वयस्का वधुऐं भी हैं, उन्हीं में श्री कीर्तिदा जी को पू० बोबो पहचान नहीं पा रहीं । एक ओर कुछ सीढ़ी चढ़ कर दालान सा है– वहीं किशोरी श्री राधा आकर विराजमान होंगी ऐसा लगता है । श्री विशाखा जी भी सम्भवतः प्रियाजी की सेवा में संलग्न हैं– इसी से दिखलाई नहीं दे रही हैं । श्री भद्राजी को बड़े बड़े फूलों की छपाई वाली साड़ी पहने देखा, सुभगाजी, सुदेवी, चित्राजी, सभी वहां उपस्थित हैं । श्री रंगिणी जी बिल्कुल पतली और लम्बी, इकहरा बदन, चम्पक वर्ण की साड़ी पहने आईं और श्री ललिता जी को हृदय से लगा लिया । वे स्वयं लम्बी हैं, और ललिता जी कुछ

छोटी अतः श्री ललिता जी के सुभग शीश पर अपनी चिबुक धर अपना कपोल उनके मस्तक से छुआया। ऐसा लाड़-प्यार देख गद्गद हो गईं पू० बोबो।

श्री राधा वहीं दालान से छम-छम करती हुई उतरती दीखीं। वे किसी अन्य द्वार से वहां आ गईं। आकर श्री ललिता जी को चिपटा लिया और दो झमझमाते स्वर्णिम क्लिप ललिता जी की केशावली में धारण करा दिये और बहुत लाड़ किया। पू० बोबो के मन में आया- यह आभूषण.... भला ? इस पर सखियों में परस्पर बहुत हास विनोद होते रहे- यह विचार कर कि यही आभूषण रात्रि में न जाने किस किस केलि का उपकरण बनेंगे।

उसी दालान से उतरते हुए ब्रज वधू के वेश में प्रियतम श्यामसुन्दर दीख रहे हैं। प्रियाजी के कहने से ही वे इस प्रकार का वेश धारण करके आए हैं। श्री ललिता जी को वेदिका पर बिठा सभी विशेष कार्यों में संलग्न हो गए। इनके छद्म वेश को प्रियाजी और श्री ललिताजी ही पहचान रही हैं। श्री ललिता जी ने आसमानी वस्त्र धारण कर रखे हैं। सभी सखियों के हाथों में मांगलिक वस्तुऐं हैं।

यह दृश्य देख पू० बोबो प्रफुल्लित हो रही हैं।

× × ×

श्री राधाष्टमी महोत्सव

श्री राधाष्टमी के दिन सभी बहन भाई ऊपर श्री जी मन्दिर में अभिषेक में गए हुए थे। पू० बोबो अकेली ही घर पर थीं। भोर में ही वे देख रही हैं :-

श्री राधा भानुभवन की उस दिन की भीड़ से घबरा रही हैं। थकी-हारी सी हो गईं। उनकी ऐसी दशा देख कर ललिता जी (उनकी अनन्य प्राणा सखी) उन्हें भवन के एक छोटे से कमरे में ले आईं- उस भीड़ से किञ्चित् राहत देने के लिये। कमरा साधारण सा, खाली ही है। एक चौकी पर श्री राधा जी को बिठा दिया। श्री ललिता जी प्रियाजी को स्नान करवाने के लिये सामग्री जुटाने में व्यस्त सी हैं। प्रियाजी को चौकी पर बिठा उनकी एक भुजा पर इत्र मलने बैठीं। पू० बोबो एक ओर खड़ी यह सब देख रही थीं।

श्री ललिताजी ने इन्हें बुलाया और कहा, ''प्रिया जी की भुजा पर इत्र मलो'' पू० बोबो श्री ललिताजी के पास आईं। श्री ललिता जी

ने प्रिया जी की भुजा इन्हें पकड़ा दी। इन्होंने बहुत धीरे-धीरे भुजा पर इत्र मला। कैसी मृदुल, सुस्निग्ध, सुगौर, उज्ज्वल उनकी भुजा थी। प्रियाजी की कलाइयों में कई-कई चूड़ियां थीं पर मलते-मलते उनकी कलाइयों में २,२ चूड़ियां रह गईं। शेष पता नहीं स्वतः ही अदृश्य हो गईं। अभी इत्र मल ही रही थीं कि एक ओर से श्याम सुन्दर आते दिखलाई पड़े। प्रिया-प्रियतम ने परस्पर देखा और मुस्कराए। प्रियतम ने पू० बोबो को भी देखा, श्री ललिता जी को भी। सबके मुख मण्डल मुस्कान सुधा से रंजित हो गए। पू० बोबो ने झट प्रियतम को प्रिया जी की भुजा पकड़ा दी कि 'तुम इत्र लगाओ'। अब श्यामसुन्दर इत्र मलने लगे। कैसे कैसे मला होगा यह तो प्रिया-प्रियतम ही जानें परन्तु दोनों ने ही सिद्ध देह-धारी पू. बोबो को बड़ी ही कृतज्ञता पूर्ण, लाड़ भरी तरल दृष्टि से देखा।

× × ×

दो पहर को एकांत में जाने का नियम ही ले रखा था। सदा की भांति आज भी एकांत में गईं। आज मटकी लीला का आयोजन था।

श्याम सुन्दर ब्रज वासियों के साथ मिल कर गोरस-स्निग्ध शिला का सांकरी खोर में पूजन कर रहे हैं। फूटी मटकियों के टुकड़े उठाते-धरते घूम रहे हैं। ऊपर किशोरी श्री राधा वृक्षों की ओट से श्याम सुन्दर को देख रही हैं। दोनों की परस्पर दृष्टि मिली। रहस्य भरी मुस्कान दोनों के ही मुख कमलों पर इठलाने लगी। पू० बोबो को श्याम सुन्दर तो बिल्कुल स्पष्ट दीख रहे हैं परन्तु प्रिया जी कुछ ओट में होने के कारण ठीक से नहीं दीख रहीं।

× × ×

पू० बोबो नन्द गांव की धर्मशाला में लेटी हैं। संध्या का समय है। श्री मनोहर दास जी ने कहा, 'कहीं घूम आओ, पर वृन्दावन, 'वृन्दावन' ही है- पू० बोबो ने हाँ में हाँ मिलाई और नेत्र कुछ समय को सहज ही मुंद गए। श्यामा-श्याम की सहज रस माधुरी में पगी मग्न हुई लेटी रहीं। वहीं इन्होंने देखा :

"धर्मशाला के सामने एक नीम का विशाल वृक्ष है। उसी के नीचे गउओं के पीछे ग्वाल बालकों के साथ हँसी ठट्ठा करते हुए श्यामसुन्दर चले आ रहे हैं। वहीं पू० बोबो भी खड़ी हैं। श्याम सुन्दर की, श्रवणों में मधु घोलती मधुर ध्वनि अलग ही पहचानी जा रही है। अवस्था

छोटी है, आकर पू० बोबो का अंगूठा पकड़ लिया- अरे यह क्या ? उसे पकड़ते ही किशोर रूप में हो गए-

अब हीं ते ढोटा चित चोरत
आगे आगे कहा जु करैगो ।

....

तेरी सों मन्मथ ते लरैगो ।

× × ×

एक खिरक है कच्चा सा । पू० बोबो सोच रही है नन्दभवन में ऐसा सा क्यों है ? राजसी क्यों नहीं ? तभी लगा यह नन्द बाबा का खिरक है और उसमें कुछ घर गउओं के लिये कच्चे से भी हैं, इस खिरक में दो खम्भे गड़े हैं । खम्भों पर बल्ली लगा कर दो झूले डाल रखे हैं । उसी के पास ही, साथ-साथ दो वृक्ष हैं । प्रिया-प्रियतम दोनों ही झूला झूल रहे हैं । नन्दभवन की धूम-धाम, चहल-पहल से एक ओर को है यह स्थली । इसी से एकांत में झूल रहे हैं ।

× × ×

पू० बोबो आज कल इमलीतला में रह रही थीं । रात को शयन के पश्चात् सन्तोष बहन ने अपनी जप माला को प्रसादी करने के लिये पू० बोबो से कहा । विजय उनके घुटने के पास ही लेटा था । उन्होंने देखा:-

"एक निकुञ्ज में एक आयताकार कक्ष है । उसमें एक शय्या बिछी है । पर्यङ्क पर दुग्ध फेन सी उज्ज्वल चादर तथा तकिये रखे हैं। पर्यङ्क पर ही मसहरी का सा ढांचा लगा है । किशोरी जी दाऐं घुटने पर चिबुक धरे तथा बायां चरण पर्यङ्क से नीचे लटकाए सकुचाई सी, मधुर स्मृतियों में खोई सी, नत मस्तक बैठी हैं । उनका लहंगा हल्का सलेटी, कंचुकी सिन्दूरी, (आसमानी मिश्रित) हल्का पीला सा दुपट्टा हैं । सभी वस्त्रों पर सफ़ेद काम हुआ है ।

प्रियतम आकर किशोरी जी के पास बैठे । दोनों कर कञ्जों से थाम उनका नीचे लटका पीतारुण चरण कमल उठा कर पर्यङ्क पर रखना चाहा, चरण थामते ही इतना लाड़ उमड़ा कि अपने श्यामारुण कपोल पर धर लिया । प्रियाजी के नत मुख मंडल की सकुच सीमा को बोरती श्री प्रवाहिनी को देख देख कर मुग्ध हो रहे हैं । प्रियाजी ने नयन उठाए । प्रियतम के मुग्ध नयनों पर मुग्ध हो गईं; उस समय की पारस्परिक मुग्धता ...... !

प्रियतम श्याम सुन्दर ने प्रियाजी को मृदुल पाश में बांध लिया, इतने में ही दोनों ओर से उस पर्यङ्क में लगे ढांचे से झीने, पर्दे गिरते दीखे। सामने जिस ओर पर्दा न था उस ओर एक झरोखे में रखे मणि प्रकाश की शीतल कान्ति में झीने पर्दे से छन कर युगल पाश बद्ध सुरत निर्झरिणी का उत्स झलक-छलक कर मुग्ध किये दे रहा था।

× × ×

प्रणय केलि महोत्सव

पू० बोबो एक बार श्री जी की बड़ी कुञ्ज से श्री यमुना जी जा रही थीं। वहीं देखा :-

श्यामा-श्याम के लिये उपयुक्त संयोजन जुटा कुछ अन्तरङ्ग सखियों ने श्री राधा को एक रमणीक स्थली में अकेला ही छोड़ दिया। इस एकांत का लाभ उठाने रसिक शेखर श्याम सुन्दर वहीं जा पहुंचे। प्रियाजी की उमंगित, तरंगित, उत्कण्ठित विविध लालसाओं, भावनाओं से अलंकृत मुग्धा श्री राधा .... उस मृदुल स्निग्ध प्रणय भीति वश पुलकन-सिहरन कम्पन में भरी सी संकोच वश तिरछी सी बैठी हैं। प्रियतम की रूप मधुरिमा का पान करने की लालसा निरन्तर बनी है। संकोच और भीति दोनों ही बाधा बने हैं- फिर भी बंकिम चितवन से निहार रही हैं।

प्रियतम बार-बार मधुर सान्त्वना देते से .... मधु घोलते से, अपने चंचल-चपल कर-कलह से अपना रसीला परिचय दे रहे हैं।

कैसा है रसीला-रंगीला, प्रणय केलि महोत्सव .... !

× × ×

ये भी तो मेरी रसिकनी है।

सायं को पुष्पा बहन जी के यहां होते हुए पू० महाराज जी और घनश्याम जी, पू० बोबो के पास चले आए। रात्रि ९-९१/२ का समय होगा। श्री घनश्याम जी से पू० बोबो एक पद ''ऐरी ! तेरो कछु दोस नहीं, मेरो पिय रसिया'' प्राय: सुना करती थीं। वे भी बड़ी ही उमंग में भर इस पद को गाते।

आज भी वह पद गाया- इन्होंने इस पंक्ति को दोहराया भी,

इस पद के प्रारम्भ करते ही वातावरण एक विशेष रस से भर गया। पद समाप्ति के पश्चात् कुछ और चर्चा चलने लगी, परन्तु पू० बोबो के दाईं ओर श्री ठाकुर जी विराजमान होकर किस-किस तरह अपने स्पर्श-सुधासव में इन्हें बोरते, खिजाते-चिड़ाते से कहते रहे मेरो प्रिय रसिया' मेरी प्रिय रसिया-' पू० बोबो तो एक विशेष ही सुख में मग्न हो गईं।

अगले दिन पू. सन्तोष बहन जी बड़ी ही मग्न सी अपने घर से आईं और पू० बोबो को छेड़ते हुए बोलीं- 'तुम्हारी पोल खोल दी श्री ठाकुर ने-' उन्हें श्री ठाकुर कहते दीखे 'जैसे दोनों ही को चिड़ाते हुए से कह रहे हैं' कि मैं ही रसिया थोड़े हूँ यह भी तो मेरी रसिकनी है'।

यह बात सुनते ही पू० बोबो पुनः मग्न हो गईं, मुख मण्डल आरक्त हो गया यह विचार कर।

'अब तो प्रकट भई जग जानी'

× × ×

पू० बोबो दोपहर को एकांत में बैठती हैं। पंखा तो रखती ही नहीं। इस ठीक दोपहरी में १२ से ३ बजे तक का प्रतिदिन का नियम ही है। जून की गर्मी में कई बार पसीने में तर हो जाती हैं परन्तु वहीं बैठी लेटी रहती हैं, अपनी सरस मग्नता में।

एक दिन इन्हें लेटे-लेटे लगा जैसे कोई पंखा कर रहा है। अत्यन्त मदिर मधुर सुशीतल धीमी-धीमी सुहावनी समीरण का इन्हें अनुभव हो रहा है। आँख खोल कर देखा। कोई न दीखा। यह सोचकर पुनः आंखे बन्द कर लीं कि सम्भवतः मेरा भ्रम ही हो, पर ज्यों ही इन्होंने आंखें बन्द की फिर उसी प्रकार शीतल, मधुर मृदुल समीर से चौंक कर उठ बैठीं- समझ गईं, निश्चित ही रसिया नागर हैं। यह .... पुलकित होती रहीं।

प्रायः कहा करती थीं- श्री वृन्दावन में शीत और घाम खलने वाला नहीं होता।

× × ×

ग ह्वर वन में एक लताच्छादित बड़ी ही सघन झाड़ी है। सभी बहिन-भाइयों के साथ पू. बोबो जब कभी भी बरसाना जातीं तो अवश्य ही इस स्थली पर कुछ समय बैठतीं। सदा इसे 'कूलर' नाम से सम्बोधित किया करतीं।

आज भी परिक्रमा हेतु जा रहे थे, सभी बहिन-भाई कृष्ण कुण्ड से आगे इस स्थली पर बैठे। बहनों से पद सुने। पद सुनते-सुनते इन्होंने देखा, श्री राधिका रानी आसमानी झिलमिल वस्त्रों से सुशोभित हैं- वह झिलमिल, वह वर्ण भी अलौकिक था, अद्‌भुत विचित्र सा दुपट्टा, कंचुकी और लहंगा एक ही रंग के हैं पर भिन्न-भिन्न भांति का काम हुआ है। प्रिया जी की रूप माधुरी में पगी पू. बोबो मग्न और मत्त होती रहीं।

× × ×

श्री ललिता जन्म-महोत्सव

श्री ललिता जी के जन्म महोत्सव पर सभी बहन भाई श्री जी के दर्शन हेतु गए। पू० बोबो घर पर ही रहीं। लगभग बारह बजे का सा समय था। देखा :-

"एक ऊंची पहाड़ी पर स्थित किसी विशेष प्रासाद का खुला प्राङ्गण है। बीचो-बीच एक गोल चबूतरा है। बीच में तिदरी नुमा तीन जनों के बैठने के लिये एक पीठ सी बनी है। उस प्राङ्गण में अनेकानेक सजी-धजी सखियों की चहल पहल की रंगीली भीड़ है। सभी किसी न किसी कार्य में संलग्न हैं, व्यस्त हैं।

श्री ललिता जी नीला झमझमाता लहंगा, पीत ओढ़नी तथा विविध जड़ाऊ आभूषणों से सज्जित अत्यंत संकुचित सी, उसी पीठ पर बैठी हैं। श्री शारदा मैया भी आरती का थाल सजाए वहीं विराजमान हैं। पू० बोबो इस समायोजन में स्वयं भी सम्मिलित हैं। इनके नयन प्रिया-प्रियतम को खोज रहे हैं। एक विशेष कक्ष में प्रिया-प्रियतम दोनों ही होंगे- ऐसी धारणा पू० बोबो की है। अभी यह विचार किया ही था कि दोनों ही एक कक्ष से निकल श्री ललिता जी की ओर चले आ रहे हैं। प्रियतम नारी शृङ्गार में आसमानी साड़ी धारण किये हैं तथा पीत आभा इनके वस्त्रों में झलक रही है। पीत आभा युत जड़ाऊ आभूषण हैं, इनमें चूड़ामणि विशेष सुन्दर है। श्याम सुन्दर साड़ी से आधा मस्तक ढके हैं। ओट से छलकती मुख द्युति! साड़ी का छोर। ग्रीवा के पीछे से होता हुआ कंचुकी में उरसा है। श्री राधा की साड़ी कुछ अलग ही रंग की, आसमानी झमझमाती सी। उसमें से गुलाबी मिश्रित अरुणाभा झलक रही है। सब आभूषण गुलाबी झलक लिये हैं। गौर मस्तक पर छोटा सा टीका है जिसमें छोटे-छोटे तीन नग अत्यन्त मनोरम लग रहे हैं।

श्री ललिता जी की ओढ़नी का छोर भी उसी प्रकार कंचुकी में उरसा हुआ है। उनकी नथ, बड़ी, गोल तथा कलात्मक है; उसमें अत्यन्त छोटे-छोटे झिलमिलाते स्वर्णिम पत्र हैं। उन पत्रों में बहुत छोटे मोतियों के लटकन लगे हैं। इन मोतियों की हिलन-डुलन, झिल-मिल अत्यन्त मोहक है। इन दोनों प्राण प्रेष्ठ युगल को अपनी ओर आते देख श्री ललिता जी सम्भ्रम पूर्वक आत्म विभोर हो गद्गद सी, प्रणय संकोच में पुलकित सी, उनके स्वागतार्थ उठना चाह रही हैं। आगे बढ़ना चाहा, परन्तु श्री राधा त्वरित गति से आगे बढ़ीं और श्री ललिता जी के मृदुल स्कन्धों पर अपने कर पल्लव धर बड़े लाड़ से उन्हें बरबस बिठा दिया। आज श्री ललिता जी को बीच में ले श्यामसुन्दर बाईं ओर विराजे, तथा दाईं ओर श्री राधा बैठीं उस पीठ पर। मैया ने इन तीनों की आरती की।

आरती के बाद तीनों ही त्वरित गति से उसी कक्ष में चले गए। वहां जाकर चैन की सांस ली और अपनी विश्राम की मुद्रा में विराजमान हो गए।

× × ×

श्री कृष्णस्वरूपिणी-कृष्णा

सदा की भांति आज भी भोर में श्री यमुना स्नान कर प्रतिदिन की भांति कालिन्दी से कहा, "हे श्री कृष्णासक्तिनी ! हे श्री कृष्णस्वरूपिणी !" (उन से विशेषत: प्रार्थना करतीं मुझे भी अपने समान श्री कृष्णासक्ति प्रदान करो !)' पर आज यों ही सोचती सी खड़ी रह गईं कि यह श्री कृष्णासक्तिनी तो है ही स्वयं, पर श्री कृष्ण स्वरूपिणी कैसे हैं ? चित्रों में भी देखते हैं, वेश-भूषा, वर्ण, स्वरूप सब कुछ श्री कृष्ण के समान ही है- अभी यह विचार समाप्त भी न हुआ था कि जल में ही श्री यमुना जी प्रकट हो गईं- और सारी लीला क्रमानुसार प्रथम पुरुष (First Person) में सुनाई। श्री यमुना जी कह रही हैं :-

"प्रिया जी ने किसी बात पर श्यामसुन्दर से मान ठान लिया। श्याम-सुन्दर ने उन्हें भांति-भांति से मनाना चाहा। सोचते रहे ऐसी कुछ बात भी नहीं हुई, फिर भी मान का ऐसा रूप ! जितना श्यामसुन्दर मनाते, मान उतना ही गहन होता जाता। श्याम सुन्दर ने सोचा जब तक मैं सामने

रहूंगा– मान गहन ही होता जावेगा अतः ललितादि अन्तरङ्ग सखियों को मना लाने को कह स्वयं आकर मुझ (यमुना) में छिप गए। मुझे भी सब सुनाया, कुछ सिखाया– मेरा वर्ण भी श्याम ही है– अतः भ्रम होना कोई अस्वाभाविक नहीं है।

श्री ललितादि सखियां अपनी प्राण प्रिया सखी को सिखातीं– पढ़ातीं, बहलातीं सी कहने लगीं, चल किशोरी यमुना पुलिन पर चलें। प्रिया जी चाहे मान ठानें थीं पर एक आतुरी, एक बेचैनी तो उनमें भी प्रियतम से शीघ्र मिलने की थी ही। वे सहज ही मान गईं। सभी श्री यमुना पुलिन पर एकत्रित हो गईं। किशोरी श्री राधा भी एकांत चाहती ही थीं– सखियां भी प्रियाजी को वहीं छोड़ कुछ देर को इधर–उधर घूमने चली गईं। (श्री यमुना ने प्रत्यक्ष जल में ऊपर निकल अपनी बांह फैला कर इंगित करते हुए कहा) "मैं यहीं इसी जगह घूम रही थी। प्रिया जी को एकांत में पाते ही मैंने उनकी बांह पकड़ ली। प्रिया जी ने मुझे उन्हें (श्याम सुन्दर) ही समझा। उनका सा ही रूप था मेरा। प्रिय मिलनातुरी में वे इतनी विभोर थीं कि बांह पकड़ते ही इतनी अधिक आनन्द में भर गईं कि उन्हें स्पर्श निर्णय का भी भान न रहा। वह स्वरूप देख आत्म विस्मृत सी हो गईं– आँखें मूंद स्तम्भित सी खड़ी रह गईं।

मैं जल में लीन हो गई। सभी सखियों ने प्रियाजी को आ घेरा– अब तक वह भी सम्हल चुकी थीं। श्याम सुन्दर भी वहीं आ गए। प्रिया जी को, उनकी इच्छा में सहयोग दे रिझाया। सभी सखियां इन दोनों को छेड़ छेड़ कर हास परिहास कर ही रही थीं कि मैने स्वयं जाकर चेताया, "अरी किशोरी ! देख तुझे कैसे भ्रम में डाला। एकांत में तेरी बांह पकड़ने वाली तो मैं थी, हे चतुरे ! तू आत्म विभोर सी यह सब जान ही न सकी। प्रियतम भी मुस्कराने लगे, मैं तथा अन्य सखियां भी। श्री राधा ने अत्यन्त रीझ भरी खीझ के स्वर में कहा, 'अरी, कृष्ण स्वरूपिणी !' एक बार पुनः सभी में आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा।

पू० बोबो भी उन्हीं सखियों के मध्य सुख में मग्न होती रहीं।

× × ×

ब रसाने में श्री जी के मन्दिर के पीछे कुऐं के सामने ही दो वृक्षों के नीचे एक छोटा सा चबूतरा था। एक बार कई बहन भाइयों सहित पू० बोबो वहां बैठीं। सभी ने श्री राधा–कृष्ण कृपा कटाक्ष स्तोत्र का पाठ किया।

किशोरी श्री राधा, मंदिर के ऊपर झरोखे में से झांकती सुनती रहीं। पीला सा ज़रीदार दुपट्टा ओढ़े, अपनी दोनों मृदुल कोहनियाँ झरोखे में टिकाए खड़ी हैं। पू० बोबो को लगा कि कोहनियें इतनी मृदुल हैं- कैसे टिकाए रखी होंगी ? वहीं देखा कोमल कोमल से चार तोषक धरे हैं उनमें से दो पर किशोरी जी ने अपनी कोहनी टिका रखी है। उसी समय देखा पीछे से आकर श्यामसुन्दर भी खड़े हो गए। किशोरी के मृदुल स्कन्ध पर अपने दोनों पाणि पङ्कज धर दिये। एक और सुन्दर सा दुपट्टा है उनके पास। प्रियाजी का पहना दुपट्टा उतार कर यह नया धारण करवा दिया, उनका मुख निहारा। उपरांत किशोरी जी पुनः जानकर या अनजाने में झांकने लगी। उनके शीश से शीश जोड़ श्याम सुन्दर भी अपनी मृदुल कोहनियाँ उन बचे दो तोषकों पर टिकाए झांकते रहे तथा स्तोत्र सुनते रहे।

× × ×

एक बार सभी के साथ श्री ललिताचरण गोस्वामी जी के यहां गईं। वे अपने घर न थे। पास ही समाज में गए थे। हम सब भी वहीं जा बैठे। वहां से सामने द्वार और झरोखों से विशाल आंगन में खड़े वृक्ष अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे। समाज के पद तो पू० बोबो ने जैसे सुने वैसे ही, पर उस वृक्षावली में देखा :-

उसी आँगन वाला वही वृक्ष है। संध्या पांच बजे की ढलती सी धूप, उस शीतल समय में सुहावनी लग रही है। ग्यारह- बारह वर्ष वय की श्री राधिका वहीं एक स्वच्छ सरोवर के तट पर खिले, विविध वर्णों के पुष्पों पर उड़ती बैठती एक पीली तितली का पीछा करती, अत्यन्त भली लग रही हैं। कभी बैठती हैं, उसे अपनी अरुणिम उँगलियों से पकड़ने का भरसक प्रयत्न कर रही हैं पर तितली हाथ नहीं आती, कभी एक पुष्प पर बैठती है और दूसरे ही क्षण दूसरे पर। उड़ती है फिर बैठती है। एक नील पुष्प पर आकर वह तितली बैठी, कुछ देर बैठी रही। किशोरी श्री राधा सुअवसर जान धीरे-धीरे उसे पकड़ने के लिये बढ़ीं। उनका एक घुटना खड़ा, एक लेटा है। लहंगे की फहरान देखते ही बनती है। पीछे से प्रियतम ने आ उनके स्कन्ध पर अपनी चिबुक टिका, कपोल से कपोल सटा नीलपुष्प पर बैठी पीत तितली की ओर संकेत करते हुए, प्रणय को लेकर कुछ कहा। श्री राधा की भृकुटि में संकोच पूर्ण मुस्कान रेखा तथा उसकी रक्तिम आभा से उनका मुख मण्डल उद्दीप्त हो उठा- फिर

× × ×

होली के पश्चात् नए संवत् के आस पास की बात है कि पू० बोबो वेणु विनोद कुञ्ज गईं। श्री सुशीला बहन जी तथा उमा बहन साथ थीं। श्री रमा देवी जी ने पूज्य महाराज जी के अनुभव की एक लीला सुनायी। उसमें कुछ सुरभित वातावरण का वर्णन सुना। सुनते-सुनते देखा :-

एक वन प्रांत में पू० बोबो खड़ी हैं। सारा प्रांत पीत पुष्पों से सुशोभित है। सामने एक झुरमुट से निकल प्रियतम श्याम सुन्दर आकर खड़े हुए। नेत्रों में ही पू० बोबो को कुछ संकेत किया, मानों बुला रहे हैं। अपनी सहज प्रकृति के अनुसार भृकुटी मरोर, नयनों से पू० बोबो ने 'न' कर दी, परन्तु मन में अभिलाषा कुछ और ही बनी रही; श्यामसुन्दर भी कब चूकने वाले थे। इनके पीछे की ओर खड़े खड़े इनके दोनों मृदुल स्कन्धों पर अपने दोनों कर कञ्ज धर, मुख के पास मुख ले जा, शीश से शीश भिड़ा न जाने क्या किया कि शीतल उज्ज्वल ज्योत्स्ना में वही पीत पुष्प, श्वेत पुष्पों में परिणत हो अपनी शीतल मधुर सौरभ लुटाते, इन दोनों पर बलिहार हो गए।

× × ×

श्री रामनवमी के दिन आनंद दास बाबा के यहां पू० बोबो मंदिर में श्री सीताराम जी का अभिषेक देखने गईं। अभी पट खुले न थे, देखा :-

श्री सीता-राम जी दोनों गठ जोड़े से अपने महलों में किसी कक्ष में प्रवेश कर रहे हैं। पू० बोबो के मन में आया कि वर्ष गांठ को यह गठजोड़ा क्यों ? तुरन्त मन में लगा जैसे यह कोई रिवाज होगा। उधर सभी माताऐं, अनेक रमणियों और पुरस्त्रियों सहित मंगलगान कर रही हैं।

यह दृश्य देख परम सुख हुआ- और मग्न रहीं।

× × ×

भीजे गात

एक बार की बात है पू० बोबो छत पर टहल रही थीं। देखते-देखते इन्हें घटाओं की घनघोर तमाच्छन्नता दीखने लगी। बहुत अंधेरा हो गया। शीतल सजल समीर बहने लगी। देखते-देखते बड़ी बड़ी बूंदे बरसने लगीं। यह सोचने लगीं श्री राधिका अभी तो हमारे साथ थीं, अभी न जाने कहां निकल गईं, ऐसी घनघोर घटाओं में। वर्षा बादलों में अकेली कहां घूम रही होंगी- एक वन प्रांत में खड़ी हो (पू० बोबो) सोचने लगीं।

बहुत चिंतित हो रही हैं, कहां ढूंढूं। सोचते हुए एक ओर

एक चबूतरा दीखा उसके पास ही एक वृक्ष है। आगे-आगे प्रियाजी भीगी चली आ रही हैं, पीछे-पीछे श्याम सुन्दर भी हैं, परन्तु यह बात प्रिया जी को पता नहीं है। दोनों भीगे हुए हैं। प्रियतम ने श्री राधा के स्कन्ध पर अपना कर धर उन्हें चौंका दिया। वे सिहर उठीं। दोनों ही चबूतरे पर आकर आसीन हो गए। रास्ते में जहां जहां कुछ अधिक जल था, वहां प्रिया जी को श्याम सुन्दर ने उठा कर पार किया।

दोनों के चबूतरे के ऊपर बैठने के पश्चात् एक सखी श्री राधा के वस्त्र उन्हें बदलने को दे गई और उस के कुछ क्षण बाद प्रियतम के वस्त्र लाकर एक अन्य सखी ने दिये। दोनों ही रस मत्तों की बात मत पूछो।

यह देख पूजनीया बोबो पुलकित और मग्न होती रहीं।

× × ×

कामदेव को प्राणदान

श्री यमुना जी से लौटते हुए युगल घाट के आस पास एक बार देखा :-

"श्याम सुन्दर का सा रूप वेश है, पर वे नहीं है। दूर से देख कर भ्रम अवश्य होता है, सम्भवतः वही (श्यामसुन्दर) हों पर वास्तव में वे नहीं हैं, नहीं हैं। यह रूप वेश अलौकिक, अमित सौन्दर्य पूर्ण होते हुए भी, आकर्षण उनका सा नहीं लग रहा।

आश्चर्य हो रहा है सुरम्य वन-प्रांत में यह रूप राशि लुण्ठित हो किसे दण्डवत् कर रही है। उपरांत, एक दृश्य और दीखा, एक सुन्दर चबूतरे पर किसी घने वृक्ष के नीचे प्रियतम श्याम सुन्दर अपनी असीम सौन्दर्य, माधुर्य और लावण्य पूर्ण सज्जा में बैठे, विशेष भाव में भर मुस्करा रहे हैं। पास ही किशोरी जी भी मुस्कराती दीखीं। तभी पता लगा कि 'कामदेव' इन प्रणयी युगल के सौन्दर्य माधुर्य तथा लावण्य पर न्योछावर हुआ लुण्ठित हो इस प्रकार दण्डवत कर बलि बलि जा रहा है, और यह दोनों अपनी सहज रसीली चितवन-मुस्कान सुधा-धारा से सिक्त कर उसे प्राण दान दे रहे हैं।

× × ×

एक बार सभी बहनें और भाई इकट्ठे बैठे थे। पू० बोबो कुछ पढ़ कर सुना रही थीं। सुनाते सुनाते इनकी विचित्र स्थिति हो गई। कभी हँसती और चुप हो जातीं, कभी इक टक निहारती रहतीं- उसी में वे देखती रहीं।

"अपने ही दिव्य शरीर को किसी सुरम्य स्थली में लेटे देख रही हैं । जाने किस ओर से सहसा प्रियतम वहां चले आए और इनकी दाईं भुजा पर अपना शीश टिका पास ही लेट गए । उनकी मृदुल सुचिक्कण रेशमी केशावली के सुखद स्पर्श एवं सौरभ से पू० बोबो सिहर उठीं । मधुर संस्पर्श से झनझना उठीं । धीरे धीरे उल्टे लेट वे अपनी रसना से इनकी बांह पर चपल, मृदुल और मधुर अठखेली के मिस न जाने क्या करते रहे– अपने से सहज चपल कौतुक ।"

उसके बाद की बात का अता पता कौन देता ....बस इतना अवश्य पता लगा कि उस संस्पर्श की सुखद सिहरन तन मन को अनेक दिनों तक झनझनाती रही ।

× × ×

एक बार श्री वृन्दावन रेलवे स्टेशन पर किसी को छोड़ कर लौट रही थीं । रास्ते में एक एकान्तिक सी स्थली है वहां पर देखा :

श्यामसुन्दर काली कमली ओढ़े निकुञ्ज वीथिका में खड़े हैं । उस कमली का रंग भी दमक रहा है । उस कमली में से भी छन छन कर प्रियतम की अंग कान्ति छलकी पड़ रही है । धीरे–धीरे उनके एक स्कन्ध से कमली खिसक गई । उस कमली की बूटियां झमझमा उठी । इनकी अंग श्री की लावण्यमयी कान्ति और और उच्छलित हो उठीं । न जाने श्याम सुन्दर को क्या सूझा कि कमली के दोनों छोर पू० बोबो के दोनों स्कन्धों को आवृत्त कर सामने ही लटका दिये । इन्होंने अपनी दोनों भुजाऐं फैलाईं तो विशाल वक्षस्थल की मृदुल, दमकती–कान्ति किरणों से लाड़ प्यार की शत्–शत् धाराऐं निसृत हो, कल्लोलित हो इन्हें अपने भुजतटों में बांध लेने को आंदोलित हो उठीं, उस समय की छवि छटा का पान कर, पू० बोबो पुलक उठीं और कुछ देर निस्तब्ध हो, स्थिर रह गयीं । वह स्मृति बाद तक भी आलोड़ित करती रही ।

× × ×

श्यामल गात पर गहरे रंग की माला

वेणु विनोद कुञ्ज में जल विहार हो रहा था । कई जनों के साथ पू० बोबो वहां गईं । वहां पदगान बड़े उत्साह से हो रहा था । एक 'गुलाब के फूल' वाला पद गाया जा रहा था । इन्हें दीखा :–

"प्रिया–प्रियतम दोनों ही एक सिंहासन में विराजित हैं । दोनों ने हल्के गुलाबी वर्ण के फूलों की मालाऐं धारण कर रखी हैं । भीनी–

भीनी शीतलमंद बयार सर्वत्र व्याप्त हो रही है। गौर श्यामल गात द्युति और-और दमक रही है। उसी समय देखते देखते गौर वर्णा किशोरी की गुलाब के पुष्पों की माला गहरे गुलाबी वर्ण में परिवर्तित हो गयी। उस गहरे वर्ण की माला देख लगा, किशोरी जी गौर वर्णा हैं, इनकी माला तो इस गहरे रंग में परिवर्तित होकर और सुन्दर लगी पर प्रियतम के श्यामल गात पर गहरे वर्ण की माला कैसी लगेगी पू. बोबो सोचने लगीं, अभी यह वाक्य पूरा भी न हुआ था कि श्याम सुन्दर की माला भी गहरे वर्ण में परिणत हो गई। यह हर्ष में भर विस्मय-विमुग्ध हो गईं, इनके उज्ज्वल श्यामल, मृदुल तथा स्निग्ध कलेवर पर वह गहरे वर्ण की माला और-और फबती देख कर।

× × ×

सन् १९७० की ग्रीष्म की बात है। छुट्टियों में अनेक बहनें आई हुईं थीं। युगल घाट पर वे सब स्नान हेतु गई थीं। पू० बोबो भी साथ थीं। वहां इन्हें दिखलाई दी निम्न झांकी :-

'युगल घाट के कच्चे तट पर यमुना जी की क्षीण धारा में आ कर श्यामा-श्याम खड़े हो गए। दाईं ओर किशोरी जी हैं और बाईं ओर श्याम-सुन्दर खड़े हैं। दोनों पर जल के छींटे पड़े हैं। दोनों अपने करों से अपने मुग्धानन बचाने के लिये ढांपने की सी चेष्टा कर रहे हैं। दोनों के नेत्र, उन स्नान करती हुई बालाओं पर ही टिके हैं। ऐसा लगता है इन दोनों ने उन सब बालाओं पर भी जल के छींटे बरसाए हैं और अब उससे बचने के लिये चपलता पूर्वक बाहर तट पर आ कर खड़े हो गये हैं। उन बालाओं ने इन पर बौछार की तो अपना बचाव इस प्रकार कर रहे हैं।

इन्हें (प्रिया-प्रियतम को) इस प्रकार सभी पर जल के छींटे देते देख पू० बोबो बहुत ही प्रसन्न हो रही हैं।

× × ×

पू० बोबो इन दिनों बांके बिहारी कालोनी में 'अनन्त भवन' में रह रही थीं। भोर में कीर्तन के बाद छत पर लेटी थीं। लगा जैसे किशोरी श्री राधा पग नूपुरों की सुमधुर ध्वनि से इनकी ओर, जहां इनके दोनों पांव हैं आकर खड़ी हुईं। अपने श्री चरणों से इनके पांवों पर कुछ करना चाह रही हैं। उसी समय चतुर सुजान प्रियतम श्याम सुन्दर ने बड़ी चपलता-चतुराई से किशोरी जी को पकड़ कर पीछे कर दिया। दोनों मुस्कराकर खिलखिलाने लगे। दोनों ने ही अपने चरणों से इनके दोनों पैरों को कौतुक

से धकेला .... जिससे उन दोनों के चरण नूपुर बज उठे .... दोनों खिलखिला उठे। यह भी इन दोनों के इस कौतुक पर अपनी हँसी संवरण न कर सकीं। धकेलने की उस क्रिया से इनकी टांगें सचमुच सिकुड़ गईं।

पग नूपुरों की उस समधुर ध्वनि का निनाद अनेक दिनों तक इनके कर्णों को झंकृत करता रहा।

× × ×

एक वन्य स्थली पर आगे कुछ खुला सा प्राङ्गण है और पीछे सुन्दर हरा भरा सद्य स्नात सा वन प्रांत। एक घने विटप की डाल पकड़े किशोरी जी खड़ी हैं। उनकी साड़ी का छोर एक ओर को लटक रहा है। फूल तोड़ कर आंचल में भरने को हुईं प्रियाजी, ऐसा लग रहा है। पीछे से श्याम सुन्दर आ इनके सम्मुख खड़े हो गये। किशोरी जी का आँचल पकड़ अपने कर में लपेट-खोल रहे हैं। दोनों ही मधुर रसीली वार्ता में मग्न हैं। दोनों की दृष्टि एक साथ उठी, पू० बोबो पर पड़ी। देख कर मुस्कराए, और अपने समीप आने के लिये संकेत किया। यह वहां चली गईं- दोनों ने ही बड़ी उमंग में भर इन्हें अपने समीप कर- क्या किया, यह सब कहना तो लेखनी के वश की बात नहीं है।

उस सुख की कौन कहे।

× × ×

बाबा आनन्द दास जी का एक्सीडेन्ट (Accident) हो गया उन्हें अधिक चोट आई। पू० बोबो उन्हें देखने आश्रम में गईं। कुछ सेब तथा अंगूर साथ ले गईं। आश्रम में राम जी को उनका भोग लगाया- इन्होंने देखा :

श्री जानकी जी पू० बोबो के हाथ से साफ़ किये अंगूर ले-लेकर श्री राम जी के मुख में डाल रही हैं। पू० बोबो उनको अंगूरों के तिनके निकाल कर देती जा रही हैं और प्रिया जी, श्री राम जी को अंगूर खिलाते हुए कभी श्री राम जी को देख मुस्कराती हैं और कभी पू० बोबो को। श्री राम जी भी खाते-खाते, इन्हें देख मुस्करा रहे हैं।

अत्यन्त सुख में भर भावाभिभूत हो गईं पू० बोबो।

× × ×

सु बह तीन बजे के लगभग पू० बोबो घुटने तथा कोहनियों के सहारे, किसी स्थली पर लेटी हैं। इनकी पीठ- पीछे, पैरों की ओर उमा तथा उत्तम दोनों बहनें बैठी हैं। कुछ दूरी पर सामने, मां श्री श्यामा जी भी बैठी हैं।

नटखट शिरोमणि श्याम सुन्दर अपनी उन्मुक्त स्निग्ध, सुरभित, सुचिक्कण, कुञ्चित केशावली छिटकाए इनके मुख के सामने मुख कर वैसे ही उल्टे लेट धीरे से इन्हें अपनी मादक, परिहास वचनावली से छेड़ रहे हैं। 'गोप्य निधि' 'रसकोष' शब्दों का उच्चारण कर रहे हैं।

यह सुन, भोंह तरेर इन्होंने प्रियतम को सरस झुंझल सी बतलाई। श्यामसुन्दर को इनके पास बैठे दोनों बहनों ने भी देखा। छोटी बहन उत्तमा ने वह छेड़भरी वाक्यावली भी सुनी। मां श्यामा जी ने दूर बैठे कुछ सुना नहीं; वे समझती रहीं कि तीनों बहनें परस्पर हँसी-मज़ाक कर रही हैं। छोटी बहन उत्तमा ने इन्हें छेड़ते हुए कहा, "बोबो ! मैंने सब देख सुन लिया है।"

× × ×

ब ड़ी कुञ्ज वाले मकान में ऊपर के छोटे कमरे में दोपहर को पूजनीया बोबो, एकान्त के लिये नित्य ही जातीं। वहां जाकर अपने विचारों की सरसता में खोई रहतीं। आज भी उसी कक्ष में गईं।

पू० बोबो उसी कक्ष में लेटी मधुर सिन्धु की सरस लहरियों में लहरान्वित हो रही हैं, प्रियतम श्यामसुन्दर वहां चले आए। इनके पास आकर बैठ गए। एक हाथ तो पू० बोबो पर टिकाया और दूसरा उस कक्ष की चौखट पर। इस प्रकार कर कञ्ज धर श्याम सुन्दर ने श्रमित किया अथवा विश्राम दिया- यह सरसता गोपनीय ही रही।

× × ×

स घन उपवन के खुले प्राङ्गण की ओर जाती अनेक वीथिकाओं में पुष्पों से सज्जित लताऐं रस में भरी झूम रही हैं। प्रिया-प्रियतम दोनों ही विशेष आह्लाद में भरे-उमंगित-तरंगित वहां विचरण कर रहे हैं। उसी में एक वीथिका के समीप एक लता झुरमुट के पास खड़ी हैं पू० बोबो। इन युगल रसराज की रसीली चेष्टाओं को निरख, रस विवश सी होती जा रही हैं।

प्रिया-प्रियतम के रोम रोम में रस की हिलोरें उठ रही हैं। प्रत्येक अंग मद झकोर से पूर्ण दीख रहा है । अंगों की शोभा में वय श्री ने सम्मिलित हो जहां एक ओर शोभा को अगणित कर दिया है वहीं मादकता और उन्माद का मानों सम्मिलन ही हो गया है । सौन्दर्य की उस निधि में प्रत्येक क्षण नव-नवल भंवर पड़ मन मीन को अपने चक्र के आवर्तों में भ्रमित किये दे रहे हैं ।

उनके अधरों की लालिमा, मुस्कान राशि, नयन कोरों से छलकती मदिर और मन्मथ मरोर से सिंचित, किञ्चित् बंक विलोकन, सभी ने अंग प्रत्यंग में वास कर श्याम सुन्दर की राग रंग मयी उच्छलन से विवश परवश कर दिया है, मन्त्र मुग्ध कर दिया है ।

यह विवशता और परवशता प्रियतम श्याम सुन्दर की सुरस चेष्टाओं की अनुगामी हो रस मग्न हुई जा रही हैं इन्हीं रस चेष्टाओं से पूर्णतः आवृत्त पू० बोबो की मनः स्थिति- उसकी कौन कहे ?

× × ×

नित्य की भांति आज भी श्री यमुना स्नान हेतु गईं । वहां जा उनसे नित्य ही अपने मन की कहतीं, श्याम सुन्दर की प्राप्ति के लिये निवेदन करतीं और अनेक बार अपनी भावना उनसे कहतीं, श्री यमुना को वे मात्र नदी न मानती थीं- अपनी सखी, सहेली से अपने मन की कहा करती थीं- उधर श्री यमुना भी इनकी सुनतीं; उत्तर प्रत्युत्तर भी देतीं- हां तो आज इन्होंने कहा :-

बड़ी अनमनी सी हो रही थीं पू० बोबो- अतः मन की इस प्रकार की स्थिति में श्री यमुना से कहा, "माना, मुझे तो, श्याम सुन्दर से कुछ नहीं है । उनके लिये कुछ होता भी नहीं । सब कुछ ठीक है- पर उन्हें तो मुझ से है ही न ! फिर क्यों इतना विलम्ब कर रखा है ?" और भी न जाने क्या कहा । मिलने पर भी सतत सामीप्य की कामना में, और-और की मांग में, मन की दशा ऐसी होना कोई अस्वाभाविक नहीं है ।

पू० बोबो को अपने अन्दर (भीतर) ही एक आवाज सी सुनाई दी, मानों श्री यमुना उत्तर दे रही हों "तुम समझती हो, तुम्हारा उनसे इस प्रकार दूर रहना, विलम्ब होना सह्य हो रहा है ? वहां का इतना समय तो यहां के युग, वर्ष होते हैं- अतः तुम्हारा तो वहां का बहुत ही कम समय बीता है । तो फिर कहां विलम्ब हुआ कहां दूर हो तुम ? घबराओ नहीं; तुम्हें जो ऐसा लग रहा है, श्यामसुन्दर दूरी और देरी नहीं रहने देते ।"

× × ×

प्रिया-प्रियतम द्वारा नगों की गणना

सेव्य युगल को शृङ्गार धारण करा रंग बिरंगे रेशम से लहरियेदार कढ़ाई वाला तोतिया हरा पर्दा बिछाया, श्री ठाकुरजी ने तोतिया रंग की ऊन के वस्त्र धारण कर रखे थे। दोनों को ही अनेक नग धारण कराए। श्री सेवा दास जी (एक महात्मा) महामंत्र का जप करवा रहे थे। पू० बोबो दोनों का शृङ्गार निरख परख रही थीं। (जिन जिन द्वारा लाए जो जो नग युगलश्री को धारण करातीं उनकी स्मृति भी श्री ठाकुर को करातीं।) ऐसे ही दोनों को धारण कराए नगों को गिनती रहीं। पता लगा किशोरी जी के शृङ्गार में श्यामसुन्दर से एक नग अधिक है।

पू० बोबो मन ही मन किञ्चित् व्यंग्य करती कहने लगीं, "आज तो किशोरी जी जीत गईं। हे श्याम सुन्दर ! तुम हार गए।" इसी श्रीविग्रह स्वरूप में किशोरी जी खूब ताली बजा रही हैं और चिढ़ाती सी मुस्करा रही हैं, कह रही हैं, "अहा- अहा मेरे पास 'एक नग' (पुल्लिंग शब्द) नग प्रियतम हैं जी, तुम्हारे पास नहीं है" इधर श्याम सुन्दर भी प्रसन्न होकर खिलखिलाए और बोले, मेरे पास एक मणि अधिक है (स्त्रीलिंग शब्द किशोरी जी के लिये मणि का प्रयोग किया है।)

इस प्रकार इन दोनों की बातचीत, हास विनोद सुना, इन्हें सहसा याद आ गया कि एक नग और है उसे श्यामसुन्दर को धारण कराया। श्री ठाकुर ने झुक कर देखा, और अपनी विजय श्री पर मुस्कराए यह विचार कर कि अब मेरे पास श्री किशोरी जी जितने नग हो गए।

× × ×

सन् १९६८ की बात है जब पू० बोबो काष्ठ मौन रहीं। इन्हें अपने इस देह से अलग अपना दिव्य देह (निज स्वरूप) दीख रहा है। गोधूलि का समय है मृदुल-श्यामल लावण्यमय वातावरण है। चुपचाप एक वृक्ष के नीचे अपने घर के बाहर ही, इन छलिया की प्रतीक्षा में (पू० बोबो) बैठी हैं। सम्भवतः श्याम सुन्दर उधर से निकले भी परन्तु इन्हें नहीं देखा- जान बूझ कर या अनजाने में यह कहना कठिन है। इनकी प्रतीक्षातुरी इस कारण और- और व्याकुलता में परिणत हो गईं।

नैन मूंदे, वृक्ष की टेक लगाए, चुपचाप बैठी थीं, कि इनके पीछे से सहसा आकर उस वृक्ष की झुकी एक डाली से इनके शीश को, मुख मण्डल को श्यामसुन्दर छू छू कर छेड़ते हुए हिलाने घुमाने लगे। इन्होंने मुख उठा ऊपर देखा तो वे मुस्कराने लगे और उनका पीताम्बर छोर उस वृक्ष की डाली में उलझा फहराता रहा।

इससे आगे क्या हुआ– कौन कहता ? वाञ्छा कल्पतरु श्यामसुन्दर सभी की मनोकामनाऐं पूर्ण करते हैं, अपने राग रंग की रसीली चेष्टाओं द्वारा, अपनी सुरस रस वर्षा द्वारा..... और वही हुआ भी ।

× × ×

स्पृहणीय स्पर्श

सं कीर्तन के बाद सदा की भांति आज भी पू० बोबो लेटी रहीं। वहीं देखा :-

वसंतोत्सव (मदनोत्सव) की वही रंगीली-स्थली है । भोर का मृदुल सुरमीला, कुछ-कुछ अरुणिम, स्वर्णिम प्रभायुक्त सुहावना समय है । शीतल, मन्द, समीरण प्रवहमान है । सभी अत्यन्त सुखद है । उस रंग-स्थली के चारों ओर वृक्षावली है । बीच में खुला प्राङ्गण सा है । बीच में लता विटपों की सुन्दर प्राकृतिक बाड़युत रंगस्थली बनी है । एक ओर सुन्दर लता विटपों से मंडित कक्ष भी है । कई सखियां मदनोत्सव की तैयारी में व्यस्त हैं । उनमें से एक सखी (पू० बोबो) अत्यन्त प्रसन्न वदना रंग बिरंगे वस्त्रों से सज्जित एक चमकीली छोटी थाली में लाल गुलाल की सुन्दर ढेरी सजा कर लिये चली आ रही हैं । रंगस्थली की एक ओर कुछ ऊंचाई पर चढ़ने को जैसे ही पग धरा कि पीछे से आ श्यामसुन्दर ने इन (पू० बोबो) की बांई भुजा पकड़ ली । ये भीत न हुईं । इनका जाना पहचाना, रोमांचकारी स्पृहणीय स्पर्श था वह ।

ठिठकी, सकुची तथा भृकुटी मरोर पीछे की ओर देखती रह गईं । मदखुमारी से नयन मत्त हो गए । कपोलों पर रक्तिम छटा, अधरों पर विकसित मुस्कान बिखर गई । उस समय की वह शोभा– उस का पारावार नहीं । वह रस, वह मद प्रवाह – अहा – अहा ।

× × ×

उ मा तथा दर्शन बहन इन दिनों क्रमशः बरसाना तथा गोवर्द्धन निवास कर रही थीं । पू० बोबो उन्हीं दिनों श्री गिरिराज जा, दान घाटी की रमणीक स्थली में कुछ देर को जा बैठीं– किसी सुखद चर्चा में मग्न हो गईं और देखा :-

जब भी श्री गिरिराज जातीं है, श्री नाथ जी कहीं न कहीं गिरिराज शिलाओं पर घूमते अवश्य ही इन्हें दीखते । आज भी ऊंची ऊंची शिलाओं पर एक ऊंचे स्थान पर खड़े, एक मोटा सा सोटा हाथ में लिये, उसी

पर दोनों कर धरे, कमनीय चिबुक टिकाए, एक चरण उसी में लपेटे श्री ठाकुर मुस्करा रहे हैं। गुलाबी पाग ढीली सी हो रही है। स्निग्ध केश राशि उसमें समा नहीं रही। सुरभित समीरण से इधर उधर छिटकी सी लहरा रही है। पाग में एक ओर चमकीले फुन्दने लटकते बड़े ही आकर्षक लग रहे हैं।

पू० बोबो मन ही मन सोच रही हैं। भला इतना भारी सोटा कहां से उठा लाए ? इन कमनीय कर कञ्जों में इसे किस प्रकार उठाते होंगे। श्री ठाकुर ने इनके मन का भ्रम दूर करने के लिये उस सोटे को लकुट की तरह कई प्रकार से घुमाया और मुस्कराने लगे। इन्हें यह भान कराया कि यह सोटा भारी नहीं है।

× × ×

श्री राधावल्लभ जी की सहज कृपा

सुबह संकीर्तन के बाद कुछ समय लेटने का नित्य ही इनका एक नियम सा ही रहा। आज भी लेटे लेटे इन्होंने देखा :-

"श्री राधावल्लभ नख शिख शृङ्गार किये झमझमाते वस्त्रों से सज्जित, सामने चले आए। उनका मुखचन्द्र, घुंघराली अलकावली तथा मदविघूर्णित नेत्र, अहा ! इस रूप ज्योत्स्ना को देख आश्चर्य चकित रह गईं, यह शीतल कान्ति, इनकी अंग लावण्य प्रभा है या वस्त्राभूषणों की दीप्ति है अथवा नभ चन्द्र की ज्योत्स्ना है ?

इस सौन्दर्य छवि को निहार असीम राशि की थाह कहां तक पा सकी यह तो वही जानें ....।

× × ×

वेणु विनोद कुञ्ज में झूला था। वहां पद गान चल रहा था। सभी महानुभाव वहाँ बैठे थे। श्री हरिवल्लभ जी पद गा रहे थे। पूजनीया बोबो ने वहीं बैठे-बैठे देखा :-

"यमुना जी में, अनेक नौकाऐं हैं। एक नौका बड़ी सजी धजी है, उसी में प्रिया-प्रियतम विराजमान हैं। वह नौका जल में स्वयं ही चल रही है, उसे कोई खे नहीं रहा। दूसरी एक और नौका, बड़े ही नए ढंग की है। उसमें रस्सियों से बांध कर इस प्रकार झूला बनाया है कि नौका सीधी न बह कर आप ही आप एक ही स्थान पर ऊपर नीचे हो रही है, जिससे झोंटे देने नहीं पड़ते, नौका इतनी विशाल है कि पूरे झोंटे आ रहे हैं। जल तो अत्यन्त गहरा है तथा नौका अन्दर तक गई हुई है। सभी सखियां मिल कर गान कर रही हैं।

बाद में पता चला कि उस दिन सचमुच ही श्री यमुना तट पर अनेक नौकाऐं सजीं। एक नौका में झूला पड़ा और युगल श्री झूलते रहे हैं।

× × ×

श्री राधाष्टमी की भोर में पू० बोबो ने देखा :

"अपनी शय्या पर किशोरी श्री राधा उनींदी सी आलस में भरी उठ कर बैठी हैं। नेत्र रात्रि भर की केलि-क्रीड़ा के कारण झुके से, शिथिल से हैं, पलकें मदभार से नयनों को पूरे खुलने नहीं देतीं। बार बार जम्हाई लेती हुई अपनी अस्त-व्यस्तता सम्हार रही हैं। गुलाबी कंचुकी में सुनहरी झिलमिल-अतीव शोभनीय है। कंचुकी के आगे जंजीरदार स्वर्णिम बटन लटक रहे हैं। दोनों ओर प्लेटें पड़ी हैं। प्रिया जी अपने बटन बन्द करने का शिथिल सा प्रयास कर रही हैं। वस्त्राभरण सम्हाल रही हैं।

इधर प्रियतम श्याम सुन्दर अपने 'चापल्य सीम', 'चपलानु भवैकसीम' नामों की सार्थकता के प्रयास में रत हैं। उस अथाह माधुर्य धारा में अवगाहनरत युगल ! उनकी रसमयी बात का ब्योरा देने में कौन समर्थ है भला !

× × ×

सदा की भांति श्री राधाष्टमी पर बरसाना जाना तो रहता ही था। श्री राधाष्टमी के बाद के दिनों में मन्दिर की पिछली सीढ़ियों में गह्वर वन के मार्ग की ओर संध्या में पूजनीया बोबो सभी के साथ बैठी थीं। वहीं देखा :-

"सामने एक उपवन है। आसमानी झिलमिलाते वस्त्रों से अलंकृत प्रिया-प्रियतम, श्री ललिताजी सहित मौज में विचरण कर रहे हैं। शीतल बयार से श्याम सुन्दर का पीताम्बर लहरा न जाने क्या संकेत दे रहा है। प्रियाजी और ललिता जी के वस्त्र भी लहरा रहे हैं। तीनों बड़े ही प्रफुल्लित हैं। श्री ललिता जी फूल बीनने को एक ओर चली गईं। श्रीकिशोरी जी भी मस्त सी मौज में कुछ आगे बढ़ी ही थीं कि शीतल बयार के एक झोंके से उनकी वेणी लहरा उठीं; प्रियतम श्यामसुन्दर वेणी की लहरान पर मुग्ध हो ठिठके से खड़े रह गए पर अविलम्ब आगे बढ़ वेणी को थाम लिया और कराह उठे। इन छलिया की घबराई सी ध्वनि सुन, जल्दी से घूम कर प्रिया

जी ने देखा। प्रियाजी के स्कन्ध तक अपना श्यामारुण कर कञ्ज ले जा, उनके अधरों तक ले जाने को व्यग्र हो बोले, "मदन भुजङ्गिनी ने डस लिया है।" किशोरी जी ने झट इनके मृदुल करों को अपने करों में बांध तुरन्त फूंक मारी, आप और-और व्यग्र हो बोले, "मदन विष ज्वाला फूंक से और-और बढ़ गई है। अब इसे सुधा अवलेह से शीतल करो।" किशोरी श्री राधा की सहज मन्द मुस्कान, उन्मुक्त खिलखिलाहट में बदली और भरपूर सुधा सिञ्चन कर-सिक्त होती रहीं।

× × ×

श्री ललिता जन्म महोत्सव

पू० बोबो सदा की भांति ललिता जी की वर्षगांठ के उत्सव में सम्मिलित होने बरसाने आ ही चुकी थीं। आज वह पुण्यप्रद उत्सव था। बरसाने में ऊपर श्री जी के मंदिर में अभिषेक देखने जा रही थीं। मार्ग में जाते-जाते इन्होंने देखा :-

"जिस मार्ग पर जा रही थीं वह मार्ग नहीं दीख रहा। अब जो मार्ग दीख रहा है वह श्री ललिता जी के भवन का मार्ग है। उसी पर चली जा रही हैं। बहुत ही मनोहारी वृक्ष पौधों में लगे रंग बिरंगे पुष्पों से मण्डित, पक्षियों की चिहुक से निनादित, रमणीय मार्ग पर चली जा रही हैं। मन में सोच रही हैं, वहां जाकर श्री ललिता जी को क्या उपहार भेंट करूंगी ! यह विचार अभी मन में आ ही रहा था कि इनके हाथ में तिकोनी दो लड़ी की स्वर्णिम कंठी अपने आप ही आ गई। उस कण्ठी को मुग्ध हुई देखती चली जा रही हैं पू० बोबो।

श्री ललिता जी के पास पहुंची। परिहास-चपला-चंचला किशोरियों से घिरी श्री ललिता जी को देखा। वे भी इन्हें देख खिल उठीं। इन्हें लेने को आगे बढ़ीं। पू० बोबो ने तीव्रता से बढ़ कर उनके मृदुल कण्ठ में वह जगमगाती कण्ठी धारण करा दी। सभी में प्रसन्नता भर गई। इसी प्रसन्नता में सहयोग देते- उसे और-और वर्द्धित करते प्रिया-प्रियतम भी चले आए। उपहारों से सम्पन्ना श्री ललिता जी पुनः पुरस्कृत हुईं- अब की भेंट और उपहार अपने जैसा ही था।

आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। रस प्रवाहित होने लगा- और-और की बात इन्हीं प्रणय युग्म तथा उनकी अनन्या प्रियाओं से पूछो।

× × ×

कृपा कटाक्ष स्तोत्र उपरान्त सुबह लेटी थीं- देखा :-

"एक साफ़ सुथरी घनी निकुञ्ज में भोर में श्री किशोरी जी शय्या से उठ कर खड़ी हुई हैं। किशमिशी वर्ण का सादा लहंगा-कंचुकी-दुपट्टा धारण कर रखा है। इन वस्त्रों पर किसी प्रकार का काम नहीं है। लगता है रात्रि विश्राम के यह विशेष वस्त्र हैं- इसी से सादे हैं दोनों स्कन्ध ढांप, सादे ढंग से दुपट्टा ओढ़ रखा है। उठ कर अपने वस्त्राभरण सम्हार रही हैं।

प्रियतम अभी सो ही रहे हैं। सहसा सम्भ्रम से जग गए, पर नयन उनींदे हैं। रात्रि भर के जगे, नींद भरे, अरुणारे नयन ठीक से खुल नहीं रहे- परन्तु फिर भी उठ बैठे और अपनी बिथुरी केशावली संवारी। प्रिया-प्रियतम दोनों ही रहस्य पूर्ण मुस्कान से खिल उठे, और उसके आगे की किसी भी गाथा को आंकने में लेखनी असमर्थ है। हृदय की बात हृदय ही जानता है, रसिकों के परिप्रेक्ष्य में ही सुलभ भी है।

× × ×

शिव पूजन

आज शिव चतुर्दशी का उत्सव है। संकीर्तन हो रहा है- इधर पूजनीया बोबो देख रही हैं :-

, श्याम सुन्दर ने पाग धारण की हुई है। हाथ में पूजा का थाल लिये गोपेश्वर महादेव के मंदिर के बाहरी द्वार से प्रविष्ट हो रहे हैं, शिव पूजन हेतु। (पू० बोबो ने मन में सोचा ब्रज में सभी शिव पूजन हेतु जाते हैं, ये भी जा रहे होंगे) कुँए के पास देवी का मंदिर है, वहीं एक टीला सा पहले भी दीखा था- उसी टीले पर पहले भी एक बार श्यामसुन्दर को एक गोपिका के स्कन्ध पर हाथ धरे खड़े देखा था।

शिवजी वहां प्रकट विराजमान हैं। पूजन कर श्यामसुन्दर चरण स्पर्श हेतु जैसे ही झुके तो भोले बाबा ने इनके दोनों कर सरोरुह अपने करों में थाम अपने चरण छूने नहीं दिये, प्रत्युत अपने हृदय से लगा लिया। वैष्णवाग्रगण्य भगवान शंकर श्यामसुन्दर का स्पर्श पाते ही, परम सुन्दर गोप रमणी के रूप में परिवर्तित, श्यामसुन्दर से आलिंगित हैं। दूर खड़ीं प्रियाजी इन दोनों को देख कर मुस्करा रही हैं, खिलखिला रही हैं।

पुनः भगवान शंकर अकेले ही दीखे, बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में। विशेष आनंद में भर पू० बोबो पर कृपा वृष्टि कर रहे हैं।

'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि'

× × ×

होली को त्योहार

होली की रंगीली धूम ब्रज की वन वीथियों में, गली गिरारों में छाई रहती है । ऐसे ही होली के धूम भरे दिवसों में संकीर्तनोपरान्त लेटे लेटे पू० बोबो ने देखा :-

"एक सखी चली जा रही है, मस्तानी चाल से अपनी भाव तरंगों में भरी-रस में सिक्त सी । श्याम सुन्दर ने चुपके से जा अपने पीत पट से उसके दुपट्टे का छोर चलते चलते बांध लिया । आप तनिक रुक गए । दुपट्टा खिंचा- उस गोपिका ने मुड़ कर देखा उसकी ग्रीवा की मरोर की वह छवि ! दो नयन चार हुए, अंग प्रत्यंग उभयाश्रय चाहने लगा- और उमंगों की उमड़ घुमड़ के उस रेले में कोई भी पीछे न रहा ।

उसी के कुछ समय बाद दृश्य बदल गया । एक रमणीक वन प्रांत में एक चबूतरा सा है । वहीं बैठे श्यामसुन्दर, न जाने क्या कर रहे हैं। अगरु का सा सुन्दर सुगन्धित धुआं उठ रहा है । पू० बोबो सोचने लगीं, क्या यह हवन कर रहे हैं ! आज भला इसकी क्या आवश्यकता थी । वहीं कहीं वृक्ष झुरमुट में छिपी प्रियाजी भी इनकी माधुरी छवि का इकटक पान कर रही हैं । किशोरी जी का लहरियेदार लहंगा ही दीख रहा है केवल । लुकती-छिपती, श्यामसुन्दर की छवि माधुरी का पान करती मुग्धा किशोरी के नेत्र मुंद गए श्याम सुन्दर ने भी किशोरी जी को देख लिया । और उन्होंने अत्यन्त चपलता से पीछे से जा उन्हें चौंका दिया तथा सुअवसर का लाभ उठाया ।

प्रिया जी की रसीली असावधानी का सरसीला-रंगीला तथा अनूठा अभिषेक .... ।

× × ×

पू० पू० बोबो ने बाबा आनंद दास जी महाराज के ठाकुर श्री राम जी तथा सीता जी के मुकुट चन्द्रिका बनाए । बहुत ही व्यस्त रहीं । आंखें, बांहें थकी-थकी सी हो गईं । एकान्त में जाकर भी मुकुट और चन्द्रिका का ही चिन्तन बना रहता । मन में विचार आया, सभी इन मुकुट चन्द्रिका की सराहना करते हैं । श्री राम जी और सीता जी को पसंद आएँ- यह पता भी तो लगे । ऊपर एकांत में बैठी थीं- देखा :-

" श्री राम जी दीखे, मानों इन्हें अपनी भुजाओं में भरने को अत्यंत आतुरी से आगे को चले आ रहे हैं । इन्होंने तुरन्त कहा," मुझे मत

छूना इस रूप में।" वे वहीं रुक गए, परन्तु मुस्कराते रहे प्रसन्नता में भरे। यह भी गद्‌गद रहीं यह सोचकर कि मुकुट और चन्द्रिका की श्री राम जी भी सराहना कर बलि बलि जा रहे हैं। अपने को ही दिये दे रहे हैं और क्या देना शेष रहा भला !

श्री आनंद दास बाबा ने भी किशोरी जी की चन्द्रिका तथा श्री राम जी के मुकुट की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

× × ×

सन् १९७२ की श्री कृष्ण जन्माष्टमी से पहले ज्वर का वेग रहा। कमज़ोरी अधिक हो गई। जन्माष्टमी के वस्त्र बनाने भी कठिन लगने लगे। कढ़ाई आदि का काम बहुत था। स्वयं अपने हाथों ही बनाना चाहती थीं- बहुत कष्ट हुआ। जब देखा समय बहुत कम रह गया है तो घबराईं। अपने एकांत के समय में भी बहुत ही खिन्न और उदास होती रहीं। प्रिया-प्रियतम से तथा अन्य सेव्य परिवार से बहुत ही अनुनय विनय की। कहने लगीं यदि वस्त्र न बने तो मेरा शरीर ही छूट जाएगा- यह सेवा भी जब न कर पाऊंगी तो शरीर रख कर ही क्या करूँगी। प्रिया-प्रियतम दोनों ही दीखे:-

"एक सुन्दर उपवन है। श्याम सुन्दर और श्री राधा दोनों ही बड़े प्रफुल्लित हो उसमें घूम रहे हैं। पू० बोबो को निहार रहे हैं। उन्हें प्रसन्नता में भर निहारते देख, आनन्दित हो उठीं- प्रफुल्लित हो गईं, आशा- सुख में भर गईं। वस्त्र अवश्य बनेंगे यह विश्वास हो गया- अपनी कामना पूर्ति पर आह्लादित हो उठीं।

× × ×

श्री राधाष्टमी के पश्चात् श्री जी के मन्दिर के पिछली ओर गह्वर वन के रास्ते में शिलाओं पर सभी बहन भाइयों सहित जा कर पू० बोबो बैठ गईं। संध्या का श्यामल-धूमिल सा समय था। किशोरी श्री राधा आसमानी परिधानों से सज्जित, प्रियतम श्याम सुन्दर की रसीली खोज में शिलाओं को अपने श्री चरणों से धन्य करती घूमती दीखीं। उनके चरण पड़ने से यह मृदुल शिलाऐं और-और सुकोमल हुई दीखीं।

खोजती-खोजती प्रियाजी कभी एक लता विटप के पीछे से झांकती हैं और कभी पास के लता वितान से। आज नूपुर धारण न किये थे। अति व्यग्रता में भरी, इधर उधर निहारतीं बड़ी ही व्यस्त और तल्लीन हो रही हैं। उनके कण्ठ में मुक्तामाल सुशोभित हैं।

कैशौर्य यौवन का भार .... ओह ! यह छवि मोतियों की लड़ियों से सुशोभित है। उरेबवां लहंगा, उसकी डोरी में बंधे फुंदने छवि को और बढ़ा रहे हैं। पू० बोबो किसी वृक्ष के तने का सहारा ले निहार रही हैं। मुख मण्डल उत्फुल्ल सा और प्रफुल्लित हो रहा है। प्रिया जी का दुपट्टा उसी वृक्ष की डाल पर अटका रह गया। अपनी व्यस्त खोज में उन्हें कुछ भी पता नहीं चल रहा।

प्रियतम अपनी प्राण-प्रिया की आतुरीपूर्ण प्रतीक्षा, अकुलाहट देख उनके पीछे से आए। उनका दुपट्टा अपने स्कन्ध पर ले उन्हें सम्भ्रम में डाल दिया। यह सम्भ्रम, विभ्रम- एक आत्मीयता में परिणत हो रस की भूमिका बना- और भी न जाने क्या-क्या-क्या बना।

पू० बोबो यह सब निरख कर परम सुख में मग्न होती रहीं।

× × ×

अभी पू० बोबो बरसाने में ही निवास कर रही थीं। सेव्य स्वरूप श्री युगल सरकार के सम्मुख पद गान चल रहा था। इन्होंने देखा :

श्री ललिता जी ने अपने विवाहोत्सव से पहले दिन, मोरकण्ठी रंग का लहंगा, जिस पर टेढ़ा लहरिया बना है, बीच-बीच में फूलों की बनी पंक्ति अतीव सुन्दर है, लगता है खग पंक्ति का स्वरूप है, फूलों की रचना का कलात्मक सौन्दर्य मनोरम है, किसी पेटिका में से निकाला और अपनी कटि से लगाया, मानों माप रही हों- और फिर धारण कर लिया; उसी रंग का दुपट्टा अत्यन्त महीन है। चमकीली शृङ्गारपट्टी शीश पर धारण कर रखी है। बार बार वस्त्र शीश से फिसल जाता है। वे पुनः पुनः सम्हालती हैं। उन्होंने शृङ्गार पट्टी के क्लिपों में दोनों ओर से शीश का पट उरसा, तो ठीक हुआ। करधनी स्वर्णिम फूलों से बनी अति सुन्दर है, ऐसी ही मेल की शृङ्गार पट्टी है। करधनी धारण करने को अपने दोनों कर कञ्ज कमर के पिछली ओर ले जाकर उसके बंद बांध रही थीं, तथा दुपट्टे के छोर करधनी में उरसे हुए थे, उसी समय प्रियतम आ उपस्थित हुए। अपने छद्म वेश के वस्त्राभरण श्याम सुन्दर ने ही श्री ललिता जी को भेजे थे- और स्वयं ही धारण करवाने चले आए। उनके सामने प्रियतम दोनों घुटनों के बल बैठ गए, तथा युग्म तटों में बांध अपनी सरणी से याचना करता माधुर्य परिपूर्ण श्यामल सिन्धु रस की अगाधता में खो गया और श्यामल सिन्धु की थाह लेती वह रस सरणी .... अहा .... अहा ...... ।

× × ×

वि मला कपूर बहन के यहां श्री भद्भागवत का पाठ सुन रही थीं। सुनते-सुनते पू० बोबो देखती रहीं :-

''उस दिन गर्मी अधिक थी। श्याम सुन्दर ने स्वयं एक कदम्ब कुञ्ज का मार्जन कर, एक विशाल वृक्ष के नीचे लिपे पुते चबूतरे पर कोमल कुसुम दलों से एक शय्या का निर्माण किया। कुञ्ज के चारों ओर खस के पर्दे बांध दिये और ऊपर उस मध्यवर्ती कदम्ब की शाखाओं में को भी खस की छत सी बना दी। प्रिया जी को लिये रसिक शेखर वहां चले आए। हास-विनोद, छेड़-छाड़, बहुत कुछ होता रहा। मध्य दोपहरी का उत्ताप वहां प्रविष्ट नहीं हो सकता था, पर तो भी श्रमित युगल कुछ-कुछ उनींदे से हो गए। तोषक पर शीश धरे सीधे लेटे प्रियतम के ऊरु प्रदेश पर सुभग शीश टिकाए किशोरी राधिका उस शय्या से चरण लटकाए लेटी थीं। उनका आसमानी लहंगा, उसकी झिलमिलाती कोर बड़ी लुभावनी लग रही थी। पीला दुपट्टा अनुराग बेसुधि में पगा अस्त-व्यस्त हो रहा था प्रियतम का सुनील वक्षस्थल ! नील कान्ति की वह अनूठी छटा .... ! पीत-पट इधर-उधर लटक रहा था।

सहसा प्रियाजी ने एक चरण ऊपर किया। ..... छम-छम, पग पायल मत्त हो झंकृत हो उठी। अर्द्धनिद्रित प्रियतम ने वह झंकार सुनी। शीश उठा, अधखुले नयनों से एक बार देखा ....। तभी प्रिया जी ने अपना दूसरा चरण ऊपर कर लिया ...... फिर वही मन प्राण हारिणी सुरीली झंकार मुखरित हुई, प्रियतम में नव नव प्रणय माधुरी जगाती हुई। श्याम सिन्धु में उठी रस हिलोरों से रस की अनवरत वर्षा होने लगी- और रस वर्षा में सिक्त युगल बावरे ....। वह मिलन मधुरिमा।

एक अन्य सखी इन्हीं भावों में रत, ओत-प्रोत, मग्न सी श्याम-सुन्दर को खोजती-खोजती वहां चली आई। उसने भी यह दृश्य देखा- देखती रह गई।

तिरछी जल बौछार से पर्दे भीज गए। शीतल बयार की मत्त झकोर भीतर जा इन युगल की सेवा में रत हो गई। कुञ्ज द्वार के बाहर खड़ी वह बाला न जाने किन-किन भावों में खोई थी। प्रियतम ने सहसा ग्रीवा मोड़ उधर देखा उन्हें लता रन्ध्रों में से वह कुमारी वहीं खड़ी दिखलाई दी। इतने में प्रिया जी ने भी सहज मुख उठाया। प्रियतम ने इंगित कर उन्हें सामने देखने का संकेत किया। प्रेममयी किशोरी का हृदय उमड़ पड़ा। तनिक उठ उन्होंने उस किशोरी को भीतर आने का संकेत किया। अपनी उस बेसुधि सी में भी वह संकेत समझ गई। प्रिया-प्रियतम दोनों से ही भीतर चले आने की प्रेरणा पा, सकुचाई सी वह सखी भीतर चली गई।

श्री राधा उठ बैठीं । उस बाला को लगा प्रिया जी उसे सुअवसर प्रदान करने को कहीं जाने को तत्पर हैं । सखी ने उनकी वह उदारता लक्ष्य कर, उनकी बांह पकड़ वहीं लेटे रहने का आग्रह किया । प्रिया जी मुस्कराईं । प्यार से उसे वहीं बिठा, निद्रा के मिस आप एक ओर हो लेट गईं। अब वह श्याम सुन्दर के अत्यन्त निकट थी । अमित प्यार दुलार में भीजी वह बाला अपने सौभाग्य मद पर इठलाने लगी । खस के पर्दों से छू कर आती समीरण के स्पर्श में वह रोमाञ्च कहां था जो श्याम सुन्दर के शीतल स्पर्श से प्राप्त हो रहा था । उस एकान्तिक निकुञ्ज में तीनों, दो का सा ही सुख ले रहे थे; अद्‌भुत प्रेम साम्राज्य है यह । प्रेम की उस स्थली में प्रणय के उन्मत्त रसावर्त .... अहा ...... अहा ।

सो सुख जाइ न बरना

× × ×

श्री राम-कृष्ण एक्य

सन् १९७३ में श्री राम जन्म दिवस पर घर में ही पाठ चल रहा था । पूजनीया बोबो को श्री राम जी शिशु रूप में दीखे- उनके लाल लाल सुकोमल मृदुल चरण कमल हैं ।

थोड़ी देर में दृश्य बदल गया । श्री वृन्दावन की रमणीय निकुञ्ज स्थली है । सुन्दर वृक्षावली, लता वितान मण्डित एक चबूतरा सा है। श्याम सुन्दर और प्रिया श्री राधा पूर्ण शृङ्गार धारण किये वहां विराजमान हैं। उनके सामने ही एक ओर सखा मण्डली विराजित है और दूसरी ओर अन्तरङ्ग सखी समुदाय है । सभी युगल की छवि का अनवरत पान कर रहे हैं ।

युगल, रामलीला का अनुकरण कर रहे हैं- अतः श्री सीता-राम रूप में विराजमान हैं । प्रियतम अपने स्वभाववश प्रिया जी की ओर तनिक झुके बैठे हैं । प्रिया जी स्मरण कराते हुए श्यामसुन्दर से कह रही हैं कि अब तुम राम रूप में हो, अतः चंचलता और चपलता, शोभा नहीं है- मर्यादा रूप ही अभीप्सित है । श्याम सुन्दर ने मुस्करा कर उत्तर दिया "रमणी रमण" राम हूं, अर्थात् रमण करने के लिये ही हम दोनों राम लीला कर रहे हैं ।

दोनों की ऐसी रसीली चेष्टा देख देख कर सखा मण्डली तथा सखी समुदाय प्रसन्न हो रहे हैं । यह सब दृश्य देख पू० बोबो भी फूली नहीं समा रहीं ।

× × ×

अप्रैल मास सन् १९७३ की बात है । महात्मा श्री सेवा दास जी, घर में सेव्य स्वरूप श्री युगल के सामने सदा की भांति महामंत्र जप करवा रहे थे । पू० बोबो के मन में विचार आया कि मुख में तो हरिनाम है– और हृदय में चरण कमल विराजमान हैं ।

सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर ने वहीं से अपना श्री चरण बढ़ाया पू० बोबो के हृदय पर रख दिया बोले, "तव मत चरणं यथा" । यह कह ज़ोर से खिलखिला कर हँसे ।

× × ×

बहुत पहली बात है । पू० बोबो श्री हरिद्वार 'हर की पौड़ी' पर रेलिंग के सहारे खड़ी मां जाह्नवी की लोल लहरियों को निहार रही थीं। कुछ अपनी सी कह सुन रही थीं । उसी समय अपने कनक भूधराकार शरीर में हनुमान जी दीखे और इनसे बोले, 'स्नान करो' पू० बोबो बोलीं, "मैं श्री गंगाजी में अपने पांव नहीं डालती ।"

यह सुन हनुमान जी आनन्दित होकर मुस्कराए और अञ्जलि भर जल ला इनके ऊपर छिड़क दिया । उनकी अमित कृपा बौछार पा कृतकृत्य हो गईं– गद्‌गद होती रहीं ।

× × ×

अभी पू० बोबो ने अपने कैशोर्य में पदार्पण किया था । एक और इनके दांत में बहुत अधिक पीड़ा थी । दवाइयों का अधिक प्रयोग करना तो इनके स्वभाव में ही न था फिर भी आवश्यक उपचार के उपरान्त भी सभी प्रयास विफल से ही रहे ।

जैसे-तैसे निद्रा देवी ने थपकियां दे अपने अंक में विश्राम दिया । स्वप्न में श्री हनुमान जी दीखे, उन्होंने एक लकड़ी का टुकड़ा इनके हाथ पर रख कहा 'इसे मुंह में रख लो ।' इन्होंने ऐसा ही किया । इनके दांत का दर्द चला गया । जब आंख खुली तो लकड़ी का वह टुकड़ा इनके मुख में ही था । यह सारी घटना इन्होंने अपने पिता जी को यथावत् सुनाई तथा वह टुकड़ा भी मुख से निकाल कर दिखलाया । वे भी सुन, देख गद्‌गद होते रहे । वह टुकड़ा पुनः पू० बोबो ने मुख में रख लिया । थोड़ी ही देर में वह टुकड़ा स्वतः मुख में ही विलीन हो गया और दर्द पूर्णतः ठीक हो गया ।

× × ×

राम तथा श्याम रूप की एकता

मई ११, १९७३ को श्री सीता नवमी थी। सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर के शृङ्गारोपरान्त श्री रामचरित मानस में से पुष्प वाटिका प्रसङ्ग का पाठ चल रहा था। इन्होंने देखा :-

श्री सीता जी स्नानोपरान्त, राज-प्रासाद के एक सुन्दर विशाल कक्ष में आकर विराजमान हैं। शृङ्गार भी पूरा धारण नहीं कर पाईं। केशावली भी मुक्त सी ही है। साड़ी का रंग केशरिया सा है। सिल्क की इस साड़ी पर सुनहरी टिपारों का काम है। साड़ी सम्हाल रही हैं। कक्ष के द्वार और झरोखों से बाहर की लताऐं उनकी शोभा माधुरी के पान के लिये ललकती सी झूम रही हैं। उन्हीं लताओं में विराजमान शुक-सारिका मृदुल स्वर में प्रिया प्रियतम की रूप-लीला का मधुर गान कर रहे हैं।

श्री राम जी दरबार से आज जल्दी ही चले आए, आज किशोरी जी का जन्मोत्सव जो है। किशोरी जी को अपने हृदय से लगा लिया। भांति भांति से रसाभिषिक्त कर बोले, "सुनती हो यह शुक और सारिका क्या कह रहे हैं ?" किशोरी जी ने विस्मय विमुग्ध भोले नयन उठा, प्रश्न सूचक दृष्टि से श्री राम जी की ओर निहारा। उस समय शुक सारिका वाटिका प्रसङ्ग बड़ी ही मधुरता से गा रहे थे। सुन कर दोनों ही गद्‌गद रोमांचित पुलकित होते रहे।

कक्ष के बाहर गैलरी सी में खड़ी पू० बोबो सब दृश्य निहार कर प्रसन्न होती रहीं। इन्हें देख श्री राम जी ने अपनी कटि में बंधे पटके की ओर हाथ कर कुछ दिखलाया। उन्होंने वंशी उरस रखी है। आज राम रूप धारण कर, वंशी छिपा, उत्सव के मिस रंग रलियां मना रहे हैं। इन्हें तो कोई मिस चाहिये, चाहे किसी भी रूप में हों, इन दोनों का उत्सव तो बना ही रहता है।

× × ×

एक बार की बात है पू० बोबो निधिवन में घूम रही थीं। श्री बिहारी जी की प्राकट्य स्थली के पास इन्होंने शीश टिका प्रणाम किया। वहीं श्री हरिदास जी दीखे। इनके सुभग शीश पर उन्होंने आशीर्वाद रूप में स्पर्श भी किया। थोड़ी ही देर में इन्होंने देखा वहां श्री ललिता जी विराजमान हैं। एक समय में श्री हरिदास जी और श्री ललिता जी साथ-साथ दीखती रहीं- पुनः ललिता जी बोलीं, "उत्सुकता, उत्सुकता, उत्सुकता।"

× × ×

एक बार अकेली ही श्री यमुना आचमन/पान हेतु जा रही थीं। उस वर्ष शरीर पर बहुत अधिक फुन्सियां हो रही थीं। मदन मोहन मन्दिर के पास के मार्ग से जाते में श्री यमुना में एक निकुञ्ज दीखीं– "भोर का समय है। श्री राधा तेज़ फिरोज़ी रंग का लहंगा तथा कंचुकी धारण किये हैं– पर दुपट्टा नहीं ओढ़ा। धीरे-धीरे श्री यमुना जी में स्नान हेतु उतर रही हैं। श्यामसुन्दर भी आस पास ही हैं परन्तु दीख नहीं रहे हैं। किशोरी जी इन वस्त्रों को धारण किये श्री यमुना जी में अवगाहन हेतु उतरते हुए अपनी लावनी को हाथ में ले ऊंचा सा करती बड़ी ही भली लग रही हैं। बहुत ही मनहर दृश्य देख प्रसन्न हो रही हैं पू० बोबो।

× × ×

लहंगे की घूम

इन दिनों गर्मियों में हल्के फिरोज़ी रंग के पतले वस्त्र बनाए। उन पर पीला बार्डर लगाया था। यही सेव्य स्वरूप श्री ज़ी पूर्ण किशोरावस्था में निधिवन में घूमती दीखीं। पूजनीया बोबो देखती रहीं, यही शृङ्गार धारण कर कभी एक वृक्ष के पीछे छिप जाती हैं, कभी दूसरे वृक्ष के पीछे छिपती घूम रही हैं; कभी किसी लता झुरमुट के पीछे से खिलखिलाती कौतुक सा कर रही हैं; अपने लहंगे को पकड़ कभी फहराती हैं। बड़ी ही उमंग में भरी मग्न हो रही हैं।

श्याम सुन्दर भी एक लता वितान के समीप सटे तमाल वृक्ष के पीछे से प्रियाजी को निहार प्रसन्न हो रहे हैं।

पू० बोबो के हर्ष की सीमा नहीं। सुखद स्मृतियों में मग्न हो रही हैं दोनों को निहार कर।

× × ×

इस जगत तथा प्रकट लीला का ऐक्य

बात इक्कीस अगस्त सन् १९७३ की है। श्याम सुन्दर की वर्ष गांठ है, आज संकीर्तन के पश्चात्, पू० बोबो अपने दिव्य स्वरूप से नन्द भवन में उत्सव में सम्मिलित हैं तथा वहां की बात यहां भी कह रही हैं।

"वृषभानु बाबा नन्द भवन में श्यामसुन्दर की वर्षगांठ के उपलक्ष्य में बधाई लेकर पधारे हैं। श्री नन्दबाबा उनकी अगवानी हेतु आगे बढ़े, बड़ी ही अस्त व्यस्त दशा में कहा, 'मखाने लाओ।' पू० बोबो वहां

के उसी स्वर को सुन, यहां अपने इसी शरीर से बहन जी को तले हुए मखाने लाने का आग्रह कर रही हैं, परन्तु बाबा ने कहा तले हुए नहीं, साबत चाहिये न्योछावर करने के लिये ।'

अब क्या कहें यहां और वहां के एक्य की गाथा । दिव्य शरीर और यहां के शरीर की स्थिति रसिक जन स्वतः ही अनुमान लगा सकते हैं ।

× × ×

श्री गिरिराज की तलहटी में पू० बोबो बैठी हैं । साथ में हैं पू. सुशीला बहन जी, दर्शन बहन, उमा बहन, मनोज तथा विजय । दर्शन बहन ने मीरा जी का पद सुनाया,

'छांड़ो डगर मेरो बईयां गहो ना
मैं तो नार पराए घर की
मेरे भरोसे गोपाल रहोना'
वृन्दावन की कुञ्ज गली में
रीत छांड़ अनरीत करो ना ॥

सामने के झुरमुट से श्यामसुन्दर गुलाबी पाग लपेटे, पाग में से सुचिक्कण लट भाल पर बिखर रही है तथा पाग का छोर पीछे की ओर लटक रहा है सामने आ, पद में वर्णित गोपिका के भावों को अपनी नाट्य मुद्रा में दिखा कर अनुकरण कर रहे हैं । अपने एक कर कञ्ज से दूसरे हाथ की कलाई पकड़ कर कभी एक कर कमल से अपनी चिबुक, कभी दोनों कपोलों को छू, मोरे भरोसे गोपाल रहोना, का भाव व्यक्त कर रहे हैं। जब 'रीत छोड़ अनरीत करो ना' का भाव व्यक्त करना पड़ा तो स्वभाव वश अपना पद रोप धड़ाके से बोले, "यह तो करूंगा ही" दोनों हाथों में लकुटी को भूमि पर टेढ़ी टिका उसके सहारे खड़े हैं– वहीं से चपलता बिखेरते लौट कर सखाओं में जा मिले ।

× × ×

पू० बोबो के साथ श्री सुशीला बहन जी और विजय दोनों ही शरद् पूर्णिमा के एक दिन पूर्व वेणु विनोद कुञ्ज गए । वहां श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी का श्री राधाष्टमी का व्याख्यान चल रहा था । सेवा सम्बन्धी चर्चा चल रही थी । 'सेवा में विज्ञापन नहीं होता, सेवा ऐसी हो कि सेव्य को भी पता न चले ।'

वहीं सामने श्यामसुन्दर और किशोरी जी दीखे । श्याम सुन्दर अनेक मुद्राओं द्वारा संकेत करते रहे कि 'मेरी सेवा का स्वरूप तो यही है, प्रतीति होने में ही स्वाद है । अन्यथा इस सेवा का क्या मूल्य?' और भी अनेक रसीली चेष्टाओं से अपना अभिमत स्पष्ट कर खिलखिलाते रहे ।

× × ×

स न् १९७३ की शरद् पूर्णिमा और दीपावली के बीच की बात है । अपने एकान्त समय में पू० बोबो एक कमरे में लेटी हैं । पास ही के एक अन्य कमरे में रेडियो पर एक पद आ रहा था जिसमें किशोरी जी के मान का सा प्रसङ्ग है। इन्होंने देखा :

"किशोरी जी ने मान किया है– एक अन्तरङ्ग सखी उनके स्कन्ध पर हाथ धरे समझा रही है कि प्रियतम श्यामसुन्दर तुम्हें पुकार रहे हैं– जल्दी चलो ।"

पू० बोबो एक ओर तो वही पद सुन रही हैं इस शरीर से और दूसरी ओर किशोरी जी और उनकी अन्तरङ्ग सखी को उनके स्कन्ध पर कर धरे समझाते भी देख रही हैं । आस पास के लता झुरमुटों में छिपे श्याम सुन्दर, किशोरी श्री राधा की ललक पूर्ण प्रतीक्षातुरी देख– अत्यन्त हर्षित हो रहे हैं ।

× × ×

छ ब्बीस अक्टूबर, ७३ को श्री गिरिराज पूजन के दिन बहन उमा के यहां सभी बहन भाई एकत्रित थे । वहीं सब ने प्रसाद भी पाया, वहीं बैठे-बैठे पू० बोबो की आंखें सहज मुँद गईं और वे देख रही हैं :

श्री विट्ठलनाथ जी , श्री गिरिराज पूजन कर रहे हैं । जो-जो नैवेद्य वे सामने रखते जाते हैं, श्री गिरिराज प्रकट होकर ग्रहण करते जा रहे हैं । यह दृश्य देख देख कर गद्‌गद होती जा रही हैं पू० बोबो ।

सन् १९७३ की गोपाष्टमी के दिन, सुबह ही सुबह पू० बोबो सोचने लगीं इतनी दुर्बल गउओं को देख कर दु:ख होता है । उसी समय सुपुष्ट, सुस्निग्ध और सुन्दर-सुन्दर अनगिनत गउओं का समूह सामने से चला जाता दीख रहा है। गउओं के पीछे पीछे स्वयं श्यामसुन्दर चले जा रहे हैं– अपनी अलबेली चाल से, मस्ती में भरे ।

निज अनुभूति

आन भँवति उन चितयो मो तन,
सो चितवन मो हृदय गड़ी री ।
के काढ़े है वा कुसुम वीथियाँ,
हौं आपने गृह द्वार खड़ी री ॥
सो चितवन मो हृदय गड़ी री ॥

उन कछु कह्यो मद मधुरे स्वर,
सो धुनि मेरे श्रवन पड़ी री ।
मदिर मनोहर वाणी मानो,
अमृत सिञ्चित पुहुप झड़ी री ॥
सो धुनि मेरे श्रवन पड़ी री ॥

तन सुधि रही न, रही ठगी सी,
निकट आय उन भुज पकड़ी री ।
तन रोमाञ्च भयो परसत ही,
का जाने सो कौन घड़ी री ॥
निकट आय उन भुज पकड़ी री ॥

पू० बोबो यह सब देख कर बहुत ही सन्तुष्ट हो गद्‌गद हो गईं ।

× × ×

पू० बोबो विजय को साथ ले श्री वृन्दावन की परिक्रमा हेतु गईं । कदम्ब वृक्षों की रमणीक स्थली टटिया स्थान में कुछ देर विश्राम करने को बैठ गए । वहां उन्होंने देखा :-

"हरी भरी लता वितान मण्डित वीथिका को पार कर एक सुन्दर स्वच्छ सरोवर है । सरोवर में अनेक प्रकार के कमल खिले हैं। वहीं युगल सुन्दर आसीन हैं । प्रियाजी आसमानी वस्त्र धारण किये सरोवर के तट पर विराजमान हैं । वे झुकीं और सरोवर से एक नील कमल तोड़ा । पीछे खड़े प्रियतम की ओर देख कर मुस्करा रही हैं। श्याम सुन्दर ने भी एक पीत कमल सरोवर में से तोड़ा और पीछे से आकर किशोरी जी के केशपाश में धारण करा दिया । एक अरुण कमल अब भी प्रियतम के हाथ में ही है- वह उन्होंने प्रिया जी के वस्त्रों में अटका दिया । इधर प्रियाजी ने भी अपने हाथ का कमल श्याम सुन्दर की केशावली में सजा दिया । सम्भवत: दोनों के पास अरुण कमल ही थे । दोनों ही परस्पर गलबहियां दिये चल दिये । एक ओर एक अन्य सघन वृक्ष के नीचे, एक कच्चे पर लिपे-पुते चबूतरे पर आसीन हो गए और परस्पर ..... ! तब की बात कहता भी कौन ? रसरंग की धूम के आवेग में सभी चेष्टाऐं मेंड तोड़ सीमा को लांघ गईं ।

ऐसी रसीली स्थिति, रंगीली चेष्टाओं को निरख, सिहरती-पुलकती, मगन होती रहीं पू० बोबो ।

× × ×

बात १५.११.७३ की है । सदा की भांति पू० बोबो एकान्त में चली गईं थीं । वहां उन्होंने देखा एक खुला प्रांगण । उसमें श्याम सुन्दर एक ओर खड़े हैं, उनके हाथ में डंडे हैं । इधर सखियों का समूह भी हाथ में डंडे लिये वहीं खड़ा दीखा । देखते-देखते सभी सखियां गोलाकार रूप में खड़ी हो गईं । श्याम सुन्दर और प्रिया जी उस गोलाकार सखी समूह के मध्य विराजित हो गए । देखते देखते ताल में बद्ध उन डंडों की ध्वनि सुनाई देने लगी- ओह ! सामने ही, अपनी उमंग तरंग में भरा सखी समूह नृत्य में संलग्न हो गया । सभी सखियां खेल रही हैं- बीच बीच में श्याम-सुन्दर भी

आ जाते हैं । अपनी अनन्या प्रियाओं के साथ इस खेल में संलग्न हो उन्हें अमित प्यार में सिक्त कर, उस घेरे से बाहर चले जाते हैं, इसी प्रकार बीच बीच में सभी सखियों को आनन्द में सराबोर कर रहे हैं ।

पू० बोबो को पहले इस प्रकार के नृत्य की जानकारी न थी, परन्तु रास में भी यह नृत्य होता है- ऐसा पता चला तो वे आह्लाद में भर गईं ।

श्री यमुना के दूसरे तट पर पू० बोबो ने विजय को भी खड़े देखा । साथ-साथ यह दृश्य भी देख रही थीं ।

× × ×

एक दिन अपने मध्याह्न कालीन एकान्त के समय पू० बोबो ने देखा :

इनकी दोनों हथेलियों से कोई विशेष वस्तु प्रवाहित हो रही है, अभी यह सोच ही रही थीं कि किसी की ध्वनि सुनाई पड़ी, 'इसे विजय को दे दो ।' वह श्री राधाकुण्ड जा चुका था । प्रायः कहता भी रहता है कि अपने हाथों से कुछ दे दो, कर दो आदि । परन्तु पू० बोबो ने उसी समय कहा, "नहीं इसकी आवश्यकता विजय को नहीं है, ओमी को इसकी आवश्यकता है ।" अतः वह ओमी को दे दिया । कुछ ही दिनों बाद स्पष्ट हुआ कि ओमी ने एक प्रकार का विष खा लिया था । उसके प्राणों की रक्षा असम्भव ही थी। यह द्रव्य पदार्थ देने से ही उसके प्राणों की रक्षा हो सकी ।

× × ×

सरोज एक शनील लाई थी । उसके वस्त्र बने । उन हरे वस्त्रों पर दुलारी बहन जी द्वारा लाई गई कमनीय हरी डोरी तथा सीप का काम बहुत ही फबा । वही वस्त्र धारण किये थे ।

अभी यह निर्णय नहीं कर पाई थीं कि किस प्रकार का और कौन सा काम वस्त्रों पर करें । दीखा :- 'नई डोरी को यह सेव्य युगल स्वरूप अपने शरीर पर लपेट रहे हैं । इन्हें स्पष्ट हो गया कि वस्त्रों पर इसी डोरी का काम करना ठीक रहेगा। हुआ भी वही, यह वस्त्र बनकर बेहद सुन्दर लगे।

अभी वस्त्र बन ही रहे थे । दुपट्टा बन चुका था । किशोरी श्री राधा उसे पहन-ओढ़ कर उसे देख रही हैं कि कैसा लगेगा ? तभी श्री ठाकुर अपने बिना सिले पटके को ओढ़ कर संकेत देने लगे कि अमुक वस्त्र सुन्दर लगेंगे । यह वस्त्र बनने से पहले ही युगल सुन्दर ने संकेत दे दिया था।

पू० बोबो यह सब देख देख कर परम सुख में मग्न होती रहीं।

× × ×

अ ट्ठारह फरवरी सन् १९७४ की बात है। पीले रेशम से आसमानी वस्त्रों पर कढ़ाई की थी। आज श्री ठाकुर ने वस्त्र धारण किये। इन्होंने देखा :

श्री ठाकुर जी अपने पटके, कोट तथा धोती के फूल गिन रहे हैं। पुनः किशोरी जी के वस्त्रों पर दुपट्टा और लहंगे के फूल गिन श्री ठाकुर, किशोरी जी को 'तीस'–'तीस' शब्द कह कर संकेत कर रहे हैं और साथ-साथ विनोद भी। उँगलियों से दो का सा संकेत भी कर रहे हैं।

पू० बोबो ने वस्त्रों के फूल गिने तो श्री ठाकुर जी के तीस और किशोरी जी के वस्त्रों पर अट्ठाईस फूल कढ़े थे। दो उँगलियों का संकेत कर 'तीस' 'तीस' का संकेत किया।

यह देख कि यह कढ़ाई, युगल श्री को पसंद आई, प्रसन्न हो रही हैं पू० बोबो।

× × ×

मार्च मास में पू० बोबो श्री ठाकुर जी सहित हसनपुर, सन्तोष नारंग के यहां गईं। वहां इन्होंने देखा :-

सन्तोष नारंग ने दो प्याले चाय बना श्री ठाकुर जी को भोग लगाया। किशोरी श्री राधा तथा श्यामसुन्दर ने पूर्ण वेश में चाय के प्याले अपने हाथ में उठा कर चाय ग्रहण की। युगल सुन्दर दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न रहे।

× × ×

ह सनपुर की बात है। श्री ठाकुर जी को कुछ अधिक भोग लगाया था। संध्या में खिचड़ी बना कर भोग लगाया जावेगा– ऐसी व्यवस्था कर ली थी। खिचड़ी भिगो कर संध्या को श्री यमुना जी के दर्शन/आचमन हेतु चले गए, अधिक दूर होने से पहुंचते ही लगभग (भोग का) समय हो जाएगा। लौट कर सारी व्यवस्था करने में अधिक समय लगेगा। पू० बोबो को बहुत चिन्ता हुई।

भोग के विषय में समय का प्रतिबंध पू० बोबो इतनी कड़ाई से पालन करती थीं कि एक मिनट की देरी भी इन्हें सहन नहीं होती थी– अतः इन्हें यमुना तट पर ही चिंता हुई। यमुना कूल पर बैठे-बैठे श्री ठाकुर

जी सामने प्रकट हो गए, बोले, 'खिचड़ी तो मैं बना दूंगा' यह बहुत हँसती रहीं, डरती भी रहीं कहीं सचमुच ही बना कर न रखें। साथ में श्री मनोहर दास जी भी थे- उन्होंने इनकी हँसी का कारण जानना चाहा परन्तु इन्होंने कुछ नहीं बताया।

घर आकर चाय का भोग लगाया। विचित्र बात यह हुई कि जैसे ही खिचड़ी बनाने के लिये रखी, २ ३ मिनट बाद ही लगा कि तैयार हो गई है। जाकर देखा तो सचमुच तैयार हो चुकी थी। समय के हिसाब से तो ऐसा हो पाना कदापि सम्भव न था- प्रेमियों के भगवान सभी कुछ कर सकते हैं। ऐसा ही हुआ। सभी ने प्रसाद ग्रहण किया- ऐसा अपूर्व स्वाद पहले कभी न मिला था।

× × ×

अप्रैल ७४ की बात है। श्री ठाकुर जी कमरे में ही शयन कर रहे थे। बहुत हल्की ठंड सी भी थी, परन्तु मच्छरों के कारण हल्का-हल्का पंखा भी चलता रहता था। श्री ठाकुर जी को जाली भी ओढ़ा दी थी। शयन कराते हुए पू० बोबो ने श्री ठाकुर जी से कह भी दिया था, यदि ठंड लगे तो मुझे बता देना। चादर आदि समीप रखी ही थी।

रात को २, २१/२ बजे इनकी आँख खुली भी क्योंकि अपने को ठंड इन्हें कम लगती है- निर्णय नहीं कर सकीं कि ओढ़ाऐं अथवा नहीं। बिना ओढ़ाए ही लेट गईं। थोड़ी ही देर में शत शत वीणाओं को भी तिरस्कृत करती मधुर वाणी सुनाई दी। एक दम चौंकी, देखा, 'किशोरी जी शय्या पर लेटी हैं शीश उठा कर कह रही हैं, ललिते !''हमें दोहरी चादर ओढ़ा दो। हल्की हल्की ठंड में हल्का हल्का ओढ़ना अच्छा लगता है।'' इन्होंने चादर दोहरी कर ओढ़ा दी- सारा ही दिन वह दिव्य ध्वनि कानों में गूंजती रही तथा बहुत ही प्रसन्न होती रहीं।

× × ×

अप्रैल १९७४ की बात है। श्री राधा दामोदर मंदिर में पू० बोबो 'वृन्दावन महिमामृत' की कथा सुनने गईं। श्री रूप गोस्वामी की समाधि के पास दोनों वृक्षों पर निर्निमेष दृष्टि स्थिर कर देखती रहीं। उन्होंने देखा:-

'दोनों वृक्षों की दो टहनियां आकर परस्पर इस प्रकार जुड़ गईं कि एक झूला सा बन गया। उस पर सखियों ने एक मृदुल पटरी सी बिछा दी। प्रिया-प्रियतम गलबहियां दिये उस पर आसीन हो गए। पू० बोबो सोचने

लगीं यह झूला कहीं से बंधा हुआ नहीं है- अतः दोनों इस पर किस प्रकार बैठेगें ? परन्तु देखा-मिलते-जुलते रंग की डोरियों से सखियों ने दोनों टहनियों को नीचे से इस प्रकार बांधा था कि पता न लगता था। झूला सुदृढ़ता से बंधा था। इसके साथ-साथ एक स्तूप सा भी था जिस पर यह झूला स्थिर होकर झूल सकता था। इतनी सुदृढ़ता देख पू० बोबो निश्चिन्त हो गईं।

प्रिया-प्रियतम दोनों ही झूले पर बैठे थे। श्री ठाकुर उतर कर झोंटा दे पुनः प्रियाजी के पास जाकर बैठ गए। दोनों परस्पर चरण उलझाए अमित शोभा का प्रसार कर ही रहे हैं, मग्न भी हो रहे हैं। अब दोनों ही साथ-साथ झोंटा ले रहे हैं और मौज में झूल रहे हैं। वहीं खड़ी सखियां भी बीच बीच में झोंटा दे देती हैं। सभी परस्पर देख देख कर रीझ रहे हैं, प्रफुल्लित हो रहे हैं। बीच-बीच में श्याम सुन्दर, पास खड़ी सखियों को अपने चरणों से गुदगुदा भी देते हैं। संकोच में भरी वे सब ठिठकी सी रह जाती हैं। यही प्रमोद- यही प्रफुल्लता, इस हिलोर-झकोर में उच्छलित हो रही है।

पू० बोबो इस परम सुखद दृश्य को निहार, सरसता में भरी मग्न हो रही है।

× × ×

श्री राधा दामोदर मन्दिर में कथा श्रवण करते में एक और दृश्य पू० बोबो ने देखा :

एक एकांतिक वन्य प्रदेश में श्याम सुन्दर वंशी धारण किये खड़े हैं। प्रिया जी, प्रियतम श्याम सुन्दर के मृदुल स्कन्ध पर अपने दोनों कर सरोज धरे, उन पर अपनी चिबुक टिकाए, चुपचाप आ खड़ी हुईं। नेत्रों से प्रियतम को वंशी बजाने का संकेत किया। नेत्रों ने नेत्रों की भाषा को पढ़ा, समझा। वंशी को दोनों ने ही अधरों पर धारण कर लिया। प्रिया-प्रियतम दोनों ही अत्यन्त निकट हुए, मुख से मुख जोड़े खड़े ही थे, गौर श्याम मुखाम्बुजों को वंशी ने और-और सन्निकट करने का मिस बना दिया। दोनों के मधुस्रावी अधरबिम्ब इस वंशी में अपना रस भरने लगे।

यही प्रसङ्ग सहसा कथा में कथा वाचक महोदय ने सुनाया .... सुनकर गद्गद होती रहीं पू० बोबो।

× × ×

पू० बोबो एकान्त के लिये आजकल एक छोटे से कमरे में बैठती हैं। वही स्थान स्नान आदि के लिये सभी प्रयोग में लाते हैं। उसी में बैठी थीं, देखा :-

वह छोटा सा स्थल एक रम्य वनस्थली में परिणत हो गया। प्रिया-प्रियतम परस्पर कटि में भुजा डाले, मुस्कराते, नयनों से मद छलकाते इन (पू० बोबो) की ओर चले आ रहे हैं। किशोरी जी ने लाल लहंगा तथा कामदार ब्लाउज़ धारण कर रखा है। ब्लाउज़ का काम प्रिया जी की सुगौर भुजा पर बहुत ही फब रहा है। जैसे-जैसे दोनों इनकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं, यह रोमांचित पुलकित तथा गद्‌गद सी होती जा रही हैं। वह परम सुख पू० बोबो को बाद तक भी सरसता सेआप्लावित करता रहा।

× × ×

पू० बोबो आजकल श्री नंदगांव में निवास कर रही थीं। साथ में मां श्यामा जी, श्री सुशीला बहन जी तथा विजय भी थे। स्नान हेतु श्री ललिता कुण्ड जा रही थीं। मार्ग में जाते जाते देखा :-

'एक रम्य कुञ्ज स्थली में भोर की श्यामलता में श्री ललिता जी, आसमानी अस्त-व्यस्त वस्त्रों में शय्या पर अपने, मृदुल चरण लटकाए, एक कर कुञ्ज अपनी पीठ पीछे से शय्या पर टिकाए, शीश किञ्चित् पीछे को ढुरकाए, आधे-आधे नेत्र मूंदे, उनींदी सी बैठी हैं। अधरों पर रहस्यमयी संकोचपूर्ण मुस्कान खिली है। लगता है रसीली केलि निमग्न सी, मृदु शैथिल्य से ही श्रमित ललिता जी उनींदी सी है। मादकता में भरी-निमग्न सी वे इस प्रकार बैठी हैं। श्याम सुन्दर को जाते देख, उन्हीं की स्मृतियों में खोई सी-श्री ललिता जी ....।

यह दृश्य पू० बोबो को भी रस में सराबोर करता रहा, कब तक .... यह कुछ कहने की सामर्थ्य, किसी में भी नहीं है।

× × ×

श्री नन्दगांव में, ललिता कुण्ड से लौटते हुए पू० बोबो ने सड़क के आस पास निकुञ्ज पार्श्व से निकली, दूसरी ओर जाती एक लम्बे कद की सखी को देखा। जामनी पोत के काम का झिलमिलाता लहंगा पहने, पीत वर्ण का महीन दुपट्टा ओढ़े तीव्र गति से चली जा रही है। उसके चरणों में नूपुरों का शब्द उसकी गति की तीव्रता का अता-पता दे रहा है।

यह सखी निश्चय ही अष्ट सखियों में तो नहीं है, परन्तु यह

निश्चित है कि श्याम सुन्दर के साथ किसी रस रहस्य का अता पता पा-लड़खड़ाती सी अपनी मस्ती में चली जा रही है, वन से ग्राम की ओर ....।

× × ×

ए क बार रहीम जी की समाधि का उद्यान स्वप्न में देखा। उसे देख इनको परम सुख हुआ। उसी उपवन में पू० बोबो विचरण कर रही हैं। उधर उसी पुष्पित उद्यान में किशोरी श्री राधा तथा श्याम सुन्दर नृत्य निरत हैं। एक सखी युगल की ओर चली आई और मुग्ध हुई उनका नृत्य देखती रही। नृत्य करते-करते दोनों ने बड़ी उमंग में भर, गति ली और उस सखी को आवृत्त कर अपने मध्य में ले लिया। इस प्रकार नृत्य करते-करते दोनों उस सखी पर लाड़ बरसा रहे थे। रहीम जी ही सखी रूप में थे।

यह दृश्य देख इन्हें (पू० बोबो को) रहीम जी के प्रति विशेष आस्था तो हुई ही, परम सुख भी हुआ।

× × ×

श्री ललिता जन्म महोत्सव

स न् १९७४ में सदा की भांति बरसाने जाने का योग बना ही था। ललिता जी के जन्म महोत्सव के दिन सभी दर्शनार्थ गये थे। पू० बोबो भी अपने एकांत में प्रतिदिन की भांति गईं। उन्होंने वहां बैठे-बैठे देखा:-

"श्री ललिता जी, गुलाबी तथा पीले रंग के मिले जुले वस्त्राभरणों से सुसज्जित, एक कक्ष में खड़ी अपनी नथ की लड़ी को ठीक कर रही हैं, जिससे उनकी केशावली खिंच सी रही है। मृदुल कर कञ्जों से नथ की लड़ी को केशावली से सुलझाती हुई अत्यन्त मनोहर लग रही हैं, बीच बीच में अंगूठे की आरसी में अपना मुख भी देख लेती हैं। उनके पीछे खड़े रसिक सुन्दर यह सब शोभा निहारते हैं और फिर उस लड़ी को सुलझाने में स्वयं भी संलग्न हो गए। आरसी में अपने सहित श्याम सुन्दर को भी देख श्री ललिता जी सकुचा गईं तथा उनके वक्ष में मुख छिपा लिया। प्रियतम की नाभि तक लटकती श्वेत उज्ज्वल माला के मुक्ताओं को छेड़ती ....। श्यामसुन्दर रसमग्न होते रहे ....।

उस सुख की गाथा कौन कहता ....!

× × ×

श्री ललिता जी के जन्मोत्सव की संध्या में पुनः देखा :

सेव्य स्वरूप श्री किशोरी जी अपने पूर्ण वेश में श्री राधाष्टमी के लिये बनाई आसमानी पोशाक, जिस पर सफ़ेद सलमे का काम हुआ है, धारण किये हैं। ओढ़नी पर बहुत ही झमझमाता सा ऐसा ही काम है। शीश के अग्रभाग पर भी खूब काम है, दुपट्टे के दोनों छोर कंचुकी में उरसे हैं- अत: दुपट्टे का पूरा काम दूर से ही दीख रहा है। वे खड़ी स्वयं भी अपने वस्त्रों को देख रही हैं।

यह वस्त्र पहने देख पू० बोबो ने कहा, 'अरे ! यह क्या? अभी से यह परसों वाला शृङ्गार धारण कर लिया, नयनों से ही संकेत कर प्रिया जी ने कहा, 'क्या हुआ ? परसों भी धारण कर लूंगी यही ।'

पू० बोबो को यह जानकर कि प्रिया जी को यह शृङ्गार विशेष पसन्द आया है, बहुत ही प्रसन्नता हुई ।

× × ×

एक बार बसन्त के आस-पास पूजनीया बोबो ने देखा:-

प्रिया-प्रियतम तथा अन्य कई सखियां बैठी हैं। सभी ने पुष्पों से चित्र बनाए। सखियों ने प्रिया-प्रियतम की कलित-केलि कौतुकों के चित्र बनाए। प्रियाजी ने प्रियतम का चित्र बनाया। प्रियतम श्याम सुन्दर ने कामदेव का चित्र अंकित किया, उसके हाथ में पुष्प बाण दिया, प्रियाजी किञ्चित् मानमना सी पीठ मोड़ कर बैठी थीं। श्याम सुन्दर अपनी ओर संकेत कर प्रिया जी से कह रहे हैं, कि, "मुझे काम वाण से बचाओ, ऐसे मुख मोड़ क्यों बैठी हो।"

परस्पर चित्र दिखला- सभी हास विनोद कर रहे हैं। पू० बोबो सुख में निमग्न हो रही हैं।

× × ×

आजकल पू० बोबो, सेव्य युगल सरकार सहित श्री नन्द गांव में निवास कर रही थीं। साथ में मां, श्री सुशीला बहन जी तथा विजय थे। अपने एकांत में प्रतिदिन की भांति आज भी गईं। वहां देखा :

"ललिता कुण्ड की ओर जाते हुए पथ में एक किशोरी को देख रही हैं। समय मध्याह्न का है। गोल टिपारों वाला लाल लहंगा जिस पर प्रिन्टिड काली गोट लगी है- पीली ओढ़नी धारण कर तीव्र गति से चली

टेढ़े गीत पीम परिवङ्गी' ठाकुर जीने
स्वयं लिख कर दिखलाया,

સાંવરો નવરંગી ....
સખીરી .... સાંવરો નવરંગી ॥

ટેઢી પાગ બલ ઝિલમિલાવન,
ટેઢી ગ્રીવ કુટિલ ભ્રૂ સંગી ॥
સાંવરો નવરંગી - - સખીરી - - - ॥

ટેઢે ચરણ, ઝુમક કટિ બાંકી,
ટેઢી માલ સુછંદ સુઅંગી ॥
સાંવરો નવરંગી - - - સખીરી - - - ॥

ટેઢે બૈન, વિનોદ અટપટે,
ટેઢે સૈન, અનંગ ઉમંગી ॥
સાંવરો નવરંગી - - - સખીરી - - - ॥

ટેઢી ચાલ ચલ ત્રુટિ આંખવનિ,
ટેઢે ગીત પીય પરિવંગી ॥
સાંવરો નવરંગી - - - સખીરી - - - ॥

जा रही है। अपने दिव्य देह से उसका अनुगमन कर रही है पू० बोबो। यह देखने को कि यह सखी जा कहां रही है ?

ललिता कुण्ड के चबूतरे पर श्याम तमाल की सुखद छाया में, दोनों घुटनों को अपनी भुजाओं में लपेटे तथा बांई भुजा पर अपना शीश टिकाए चुपचाप न जाने किन विचारों में मग्ना सी बैठ गई।

इसी समय लगभग दस वर्ष के बालक के रूप में श्याम सुन्दर आए, आकर उसकी भुजा से लग उसी किशोरी के पास बैठ गए। उस बाला के मुख उठा उधर देखते ही वे (श्याम सुन्दर) किशोर रूप में परिणत हो मुस्करा दिये पू० बोबो ने उस किशोरी का मुख जब देखा तो पता चला- अपने दिव्य स्वरूप में श्री सुशीला बहन जी थीं। इससे आगे की बात कौन कहने में समर्थ है भला ?

दोनों ही सुख सिन्धु में मग्न हो गईं।

× × ×

पू० बोबो गीतावंती जी के मकान में ड्योढ़ी में बैठी थीं। मीरा जी (वेणु विनोद कुञ्ज) अपने मन की कुछ उलझनों का निराकरण करवाने इनके पास एकांत में आईं, और बात करने लगीं।

मीरा जी की अनेक क्षुब्ध बातों का निराकरण भी कर रही हैं- उन्हें सम्मति भी दे रही हैं, साथ-साथ बाहर आंगन में सुन्दर फुलवारी और हरियाली के मध्य श्यामसुन्दर को खड़े देख रही हैं। श्याम सुन्दर ने अरुण कमल की मुकुलित कलिकाओं का लम्बा हार तथा उन्हीं कलिकाओं के कर्ण कुण्डल धारण किये हैं। प्रसन्नता में भरे खिलखिला रहे हैं श्यामसुन्दर तथा नेत्र पू० बोबो पर ही टिके हैं उनके।

परम प्रसन्न हो रही हैं पू० बोबो।

× × ×

हल्के हरे ऊन के वस्त्र श्री ठाकुर जी के लिये बनाए गए, वही धारण करवाए। दूसरे दिन भोर में कीर्तन करवा रही थीं पू० बोबो, तभी देखा :-

'श्री ठाकुर जी बिना पटका पहने, तथा बिना ही आभूषणों के जिस प्रकार शयन की पोशाक पहने होते हैं, उसी प्रकार अकेले दीखे।

अपनी मुट्ठी में गुलाल लिये पू० बोबो पर गुलाल डाल रहे हैं । हँसते हँसते पीठ मोड़ कर खड़े हो गए; यह जान कि अब यह (पू० बोबो) उन पर गुलाल डालेंगी । पीठ किये इतना अधिक हँस रहे हैं कि इनके हिलते शरीर से अनुमान हो रहा है अवश्य ही कोई नवीन कौतुक की भूमिका बना रहे हैं ।

इससे आगे की कुछ भी बात लेखनी कहने में असमर्थ है। कैसे कहें ?

× × ×

पू० ललित बहन जी के यहां फरवरी, १९७५ में श्री मद्भागवत सप्ताह का आयोजन था । श्री ठाकुर जी की रंगीन फ़ोटो लेने की बात थी । उसी के अनुकूल पोशाक धारण करानी थी । कुछ निर्णय नहीं कर पा रही थीं पू० बोबो । श्री ठाकुर पर झुंझला कर कहने लगीं 'अपनी सम्मति भी कभी दे दिया करो- जो तुम पहनना चाहते हो ।

श्री ठाकुर जी ने प्रत्यक्ष में कहा, ''गुलाबी ऊन का कोट, किञ्जल्क रंग से कढ़ा पटका, धोती तथा दुपट्टा ।'' यह मिले जुले रंगीन वस्त्रों वाली पोशाक धारण कराई तो सभी ने बहुत ही सराहा- क्यों न हो, श्री ठाकुर जी ने स्वेच्छा से अपनी पोशाक का चयन किया था ।

पू. श्री महाराज जी, पू. मनोहर दास जी तथा घनश्याम जी उस समय उपस्थित थे- सभी परम सुख अनुभव करते रहे ।

× × ×

सन् ७५ मार्च के दूसरे सप्ताह की बात है । होली के झूम भरे दिन अपने आगमन का परिचय, गली गली में, हाट-बाट में और यमुना तट पर, वन उपवन में देने लगेथे । श्री भट्ट जी के यहां समाज में पू० बोबो पद सुनने जाया ही करती थीं । आज वहां समाज सुनते-सुनते देखती रहीं।

अपने सेव्य ठाकुर, सिंहासन में ही पीठ के बल झुके से दाऐं कर में कुछ भरे, मुट्ठी पीठ के पीछे किये, छिपाते मुस्कराते हुए सिंहासन के दाऐं कोने में पीछे की ओर झुके; पीछे होते होते केले के एक छोटे से पौधे से सटे जा रहे हैं । पीठ पीछे हाथ ले जा उस केले के स्तम्भ को जैसे दबाया हो । उसके पत्ते वर्तुलाकार मुड़े मुड़े से हैं । ऐसा लगता है जैसे उनमें कुछ भरा है। प्रिया जी मुस्करातीं हुई दुबकी सी सिंहासन की पीठ पर जा बैठीं । किशोरी जी बैठी हुईं तथा प्रियतम खड़े हुए अब समान से लग रहे

हैं। दोनों ही केले के पत्तों में छिपे से दीख रहे हैं। किशोरी जी के बाएें कर के अंगूठे में आरसी है। आरसी के छल्ले को उन्होंने अपने एक कर से दबाया। उससे इत्र सौरभ की मधु-भीनी, सुहावनी, मन लुभावनी सुरभित बौछार कर, बाईं ओर से आती सखी मण्डली का अभिषेक-सत्कार कर, उन्हें तरल शीतल सौरभ से महका, सराबोर कर दिया। इधर से प्रियतम श्याम सुन्दर ने केले का स्तम्भ दबा, वर्तुलाकार केले के पत्तों से विभिन्न रंगों की अनगिन पिचकारियों से बौछार तथा गुलाल, अबीर, केशर, कुंकुम चूर्ण की महकती धूंधर से रस रंजित कर दिया। दोनों ने मिलकर यह रसायोजना पहले से बना रखी थी।

उधर अनेक सखियां अपने कर कञ्जों में गुलाल, अबीर, केशर, कुमकुम तथा चोबा चंदन के थालों झारियों, स्वर्णिम मणि जटित पिचकारियों, पुष्प निर्मित लकुटियों, पुष्प कन्दुकों और भी न जाने क्या क्या रंगीले साजों से सज्जित उमड़ी चली आ रही थीं, अपने रंगीले-रसीले युगल को रंग से रंजित करने, अभिषिञ्चित् करने। अभी वे इन दोनों पर रंग डाल भी न पाई थीं, केवल रूपासव पान कर मत्त रह गई थी कि दोनों ने इन उन्मत्त बालाओं का स्वागत-सत्कार उन्मुक्त रस रंग वर्षण से किया। सखियों की मण्डली से हँसती खिलखिलाती अपने दिव्य स्वरूप में बहन दर्शन भागी चली आईं। वहीं पूजनीया बोबो भी अपने दिव्य स्वरूप से विराजमान हैं। इन्हें देख दोनों के कौतुक पर हँस रही हैं पू. दर्शन व उमा बहन, भी हर्षातिरेक से विस्मित अकी-जकी, चौंकी सी खड़ी हैं। सभी प्रसन्न और मग्न हैं।

× × ×

श्री ठाकुरजी आजकल बड़ी कुञ्ज में डा० साहब वाले मकान में विराजमान हैं। पू० बोबो ऊपर के छोटे से कमरे में एकांत में चली जाती हैं। वहीं देख रही हैं :-

''श्री यमुना तटवर्ती सुरमणीय स्थली पर प्रियतम होली की धूम में भरे, मस्ती में, सखाओं के साथ विभिन्न कौतुकों में रत से, विचरण कर रहे हैं। कुछ गोले जैसे ऊपर आकाश में उड़ा रहे हैं। रंग बिरंगे इन गोलों की अनुपम शोभा हो रही है। ऊपर जा कर ये गोले फट जाते हैं। उनसे रंग-बिरंगा गुलाल, अबीर बरसता है। ऐसे ही खेलों में रत हो रहे हैं। सभी इन कौतुकों को देख खिलखिला कर हँसते हैं।

यह सब देख पू० बोबो मग्न हो रही हैं।

× × ×

सन् १९७५ के मई मास की बात है पू० बोबो दोपहर में प्रतिदिन की भांति एकांत में बैठी थीं तो देखा :-

वंशी अपने हाथ में लिये एक सुरमणीय वन्य स्थली पर प्रिया जी विराजमान हैं । पू० बोबो के हाथ में वंशी देते हुए बोलीं, लो ! 'मदनाङ्कुश छिपा दो ।'' पीछे खड़ी पू० बोबो प्रियाजी के कर से वंशी ले लेती हैं । पास ही प्रियतम श्यामसुन्दर भी बैठे-बैठे किशोरी जी के दोनों स्कन्धों पर कर धरे कह रहे हैं, ''यह मदानांकुश मदन को और-और उकसाने वाला है ।''

किशोरी जी तथा बोबो इनकी बात सुन खिलखिला कर हँस पड़ीं ।

× × ×

ग्यारह मई १९७५ की बात है । पू. महाराज जी, अपने परिकर के दो चार जनों सहित, उमा-दर्शन के यहां आए थे । वहां नींबू का पेय (शिकंजबीं) बहुत ही अच्छी बनी । उसी का वहां सेव्य श्री ठाकुर जी को भोग भी लगा । साथ ही दूध का ठंडा पेय (लस्सी) भी बनाया । पू० बोबो तथा श्री रमा देवी जी ने वही ग्रहण किया । उसका भोग वहां नहीं लग सका।

लस्सी पीते समय पू० बोबो का मन किञ्चित् खिन्न सा भी हुआ। सोचने लगीं, ''इतनी स्वादिष्ट वस्तु श्री ठाकुर जी को समर्पित करनी चाहिये थी- मुझे अकेले ही ग्रहण करनी पड़ रही है ?'' इन्हें तभी दीखा- ''इनकी पीठ से घुटने अड़ाए, स्कन्ध की ओर से अपना मुख इनके मुख के पास ले जा श्री ठाकुर जी कह रहे हैं 'तुम्हारे साथ साथ मैं भी तो पी रहा हूँ ।' और घूंट भरी । पू० बोबो का मन संकोच मिश्रित आह्लाद में भर गया। तथा संकोच में पड़ गईं ।

× × ×

वृन्दावन में ही कुंज गली में से एक बार पू० बोबो चली जा रही थीं । गली की छवि बड़ी ही दिव्य और रमणीय लग रही है। उसी हरी भरी पुष्पों से सज्जित वीथिका में किशोरी जी चली आ रही हैं । मुख कमल से उठती सुगंधि के पान हेतु बावरा हुआ भ्रमर, बार बार वहीं आ मंडरा रहा है। उसे देख किशोरी जी भयभीत हो रही हैं । प्रियतम श्यामसुन्दर साकूत

मुस्कान से किशोरी जी को निहार, अपने पटके से भ्रमर को बार बार उड़ा रहे हैं ।

उसी रस दशा से विभोर श्यामसुन्दर मानों विवश परवश हो रहे हैं ।

आगे की बात उसी निकुञ्ज स्थली में बिखरी पड़ी है– आओ चलकर देखें ।

× × ×

पू० बोबो सितम्बर १९७५ में बिहारी जी की बगीची में ललिता छट के अवसर पर समाज सुनने गईं । बगीची की अद्भुत तथा मन मोहक शोभा को देख बहुत ही प्रसन्न होती रहीं । सांध्य वेला में किञ्चित् श्यामलता के निवेश के साथ निशा सुन्दरी का पदार्पण देख मग्न होती रहीं। हरित तिमिराच्छादित वीथिका और–और सुहावनी लगने लगी । उसी तिमिराच्छादित वीथिका में एक ओर खड़े प्रियतम श्याम सुन्दर दीखे । उनका हरित पट शीतल सुहावनी पवन झकोर से फहरा रहा था । उन्होंने किञ्चित् नारंगी रंग का एक पुष्प तोड़कर पू० बोबो के कण्ठ प्रदेश से तनिक नीचे, इनके वस्त्रों में उरस दिया, और मुस्कराने लगे । इस शरीर से अपने दिव्य वपु को श्याम सुन्दर के ही समीप देख रही हैं ।

अगले दिन बरसाने जाकर श्री युगल के हरे वस्त्र देखे, वैसे ही रंग के पुष्प भी बरसाने के मंदिर के पास के मार्ग में लगे देखे ।

× × ×

सदा की भांति इस बार भी श्री राधाष्टमी पर पू० बोबो बरसाना सभी बहन भाइयों के साथ गईं । वहां देखा

"किशोरी जी अपने मन्दिर के जगमोहन में खड़ी हैं । गहरे पीले वस्त्र धारण किये हुए हैं । वेणी स्कन्ध पर से होती हुई सामने है, जिसे अपने हाथ में पकड़ रखा है । किसी ने पू० बोबो को श्वेत पुष्प लाकर दिये और कहा इन्हें किशोरी जी की वेणी में सजा दो । इन्होंने किशोरी जी की वेणी में आदि से अन्त तक पुष्प सजा दिये । एक स्वर्णिम लड़ी सी भी है वह भी पुष्पों के साथ–साथ, वेणी में सजा दी । पू० बोबो ने किशोरी जी से पूछा, वे (प्रियतम) कहां है ? किशोरी जी ने संकेत से बतलाया, मंदिर के अन्दर हैं, सचमुच अन्दर ही थे ।

इन्हें ध्यान आया कि हमने तो हल्के जामनी से रंग के वस्त्र पहनाए हैं, इन्होंने पीले धारण किये हैं कैसे पता चले कि जामनी वस्त्र भी इन्हें पसन्द आए हैं ?

प्रियतम का पता देकर प्रियाजी पहले ही अन्दर मन्दिर में चली गईं थीं। कुछ देर में जामनी वस्त्र धारण किये बाहर चली आ रही हैं? लहंगे पर सुनहरी बूटी का काम किया हुआ है। इन्होंने पूछा कि अभी तो पीले वस्त्र धारण किये हुए थे- और अभी जामनी धारण किये हैं। किशोरी जी बोलीं, ''इतने वस्त्र भेंट में आए हैं; सभी तो थोड़ी-थोड़ी देर के लिये पहनूंगी।''

उस के बाद ब्रज गोपिकाओं को जगमोहन में नृत्य निरत देखा- उन्हीं के बीच कुछ बहनें भी शृङ्गार सहित नृत्य कर रही हैं, पू० बोबो प्रसन्न होती रहीं।

× × ×

सं कीर्तन के पश्चात् पू० बोबो प्रायः लेट जातीं वहां देखा :-

श्री जी का बरसाने वाला यही मन्दिर है। उसके अन्दर एक शय्या तो नहीं कह सकते, सोफ़ानुमा बैठने की पीठ है। ऐसी सी किसी चौकी पर दोनों ही उठ कर बैठे हैं। प्रिया-प्रियतम दोनों के ही सामने दो हरी सी कामदार छोटी छोटी गद्दियाँ रखी हैं। किशोरी जी ने पू० बोबो को संकेत से उस गद्दी पर बैठने को कहा। ये उस गद्दी पर बैठ गईं। किशोरी जी ने अपना गौरारुण कोमल चरण कमल इनकी अंक में रख दिया। अपने दोनों करों से सहलाते हुए पू० बोबो उस श्री चरण की शोभा को निरख परख रही हैं।

इधर प्रियतम श्यामसुन्दर ने भी अपनी स्वर्णिम वंशी से, जिसमें सुन्दर सी एक लटकन भी शोभित है, पू० बोबो की वेणी को सरका, स्कन्ध के ऊपर से आगे की ओर कर दिया। अपनी लटक में वे उन्हें छेड़ते और उनसे विनोद भी करते रहे और अपना एक मृदुल चरण कमल इनके अंक में रख दिया। उस मृदुल चरण को सहलाती, समेटती सी पू० बोबो निरखने लगीं। सोचने लगीं, प्रिया प्रियतम दोनों के चरणों में अधिक सुन्दर कौन सा है ? गद्‌गद हो रही हैं, पुलकित हो रही हैं और दोनों ही चरणों का मिलान कर निर्णय लेने में असमर्थ सी हो रही हैं। सौन्दर्य, माधुर्य और लावण्य की अपरिसीम छवि राशि को समेटे बैठी हैं।

प्रिया-प्रियतम दोनों ही इन्हें देख देख, विमुग्ध हो मुस्करा रहे हैं और इधर पूजनीया बोबो परम सुख में भरी मग्न मत्त हो रही हैं।

× × ×

सितम्बर सन् १९७५ में पू० बोबो श्री गिरिराज गईं। सहसा गिरिराज परिक्रमा करने का बन गया। सुरभि कुण्ड के आगे, जतीपुरा ग्राम से कुछ पहले ही परिक्रमा करते करते कुछ देर को विश्राम किया। कुछ बहन भाई भी साथ में थे। बहन दर्शन ने एक पद सुनाया। पद सुनते सुनते पू० बोबो मग्न हो गईं। वहीं बैठे-बैठे देखा :-

''सुन्दर वन प्रान्त में एक भवन की अट्टालिका पर एक छज्जे का द्वार पकड़े कोई ब्रज किशोरी प्रतीक्षा में खड़ी प्रियतम श्याम सुन्दर की बाट जोह रही है। आशा दीप्ति से उसका मुख मण्डल प्रफुल्लित है। कुछ समय पश्चात् प्रियतम उसके पीछे से आए, और दोनों स्कन्धों पर अपने कर सरोरुह रख दिये और उसके कपोल के पास कपोल ले जा- अभिषिक्त किया, सिञ्चित किया तथा और भी न जाने .... क्या .... क्या ?

वह सब लेखनी कैसे वर्णन करे।

पू० बोबो सब देख देख कर प्रसन्न होती रहीं।

× × ×

दिसम्बर १९७६ की बात है, पू० बोबो ने देखा :-

''एक सुन्दर भवन है। उसके बाहर एक वरांडा सा भी है। उसके आगे एक छोटा सा रमणीय उद्यान है। उपवन में एक बैंच जैसा पर्यङ्क है। उस पर्यङ्क पर सेव्य स्वरूप युगल लेटे हुए हैं। किशोरी जी के पास ही, मुख दूसरी ओर किये प्रियतम लेटे हैं। इसी पर्यङ्क के पास नीचे पू० बोबो बैठी हैं। श्री ठाकुर जी ने (पू० बोबो) की बांह पकड़ अपने पास खींच लिया। इन्होंने उनके ऊपर अपना शीश टिका दिया। श्याम सुन्दर इन पर अपना कर कञ्ज फिरा रहे हैं, सहला रहे हैं और यह भी कह रहे हैं ''फिर यों कहती हो, फिर यों कहती हो'' जान बूझ कर यह (पू० बोबो) तन्द्रा का अभिनय सा करती रहीं- रस में भीजी भीजी अहा .... अहा .... ।

× × ×

सत्ताईस जौलाई सन् १९७७ की बात है। पू० बोबो का स्वास्थ्य कुछ ठीक न था। और कोई पास था नहीं, श्री ठाकुर जी का पर्दा स्वयं ही बदलने लगीं। कुछ ठीक से कर नहीं पाईं, श्री ठाकुर जी बोले, "लाओ, मैं ठीक कर दूं" स्वयं पर्दा ठीक किया। जिस ओर डोरी पू० बोबो बांधा करती थीं, उसके दूसरी ओर डोरी बांधी थी। उसके पश्चात् कभी भी पर्दा डालने में कठिनाई नहीं आई।

× × ×

पंद्रह अगस्त सन् १९७७ को सुबह, आदिगुरु भगवान शंकर की स्तुति करते समय श्री ठाकुर जी देर तक विभिन्न चेष्टाओं द्वारा पू० बोबो को विविध विनोद कर-करके हँसाते रहे, कभी मुंह बनाते और कभी हँसते-खिलखिलाते, छेड़ते। इन्हें देख कर पू० बोबो बहुत ही हँसती रहीं। ऐसे में ही एक बार अपने करतल से इनके करतल पर ताली देकर झूम कर ज़ोर से हँसे जिससे उनकी केशराशि भी झूम उठी और इनके कोमल करतल पर दूसरे कर कञ्ज की उँगलियों के रक्तिम चिह्न अंकित हो गए।

× × ×

सन् १९७७ की हरियाली तीज के दिन, कीर्तन के बाद पू० बोबो ने प्रिया-प्रियतम दोनों को हिंडोले में बैठे देखा। आमने-सामने अलसाए से बैठे हैं। जैसे कुछ खाद्य वस्तु तश्तरी में लिये पू० बोबो सिद्ध स्वरूप से खड़ी हैं। दोनों के पास गईं। श्री ठाकुर ने अपना मुख खोल आगे किया कि स्वयं खिला दो अपने हाथ से।" किशोरी जी ने भी अपना मुख खोल कर इसी प्रकार किया।

दोनों को अपने हाथ से खिला प्रसन्न होती रहीं पू० बोबो।

× × ×

श्री राधाष्टमी के दिन किशोरी जी की मृदुल तथा स्निग्ध केशावली में तेल लगाने के लिये, एक सखी ने पू० बोबो से कहा। दूसरी सखी ने तेल लाकर दिया और कहा, "प्रियाजी की केशावली संवार दो।" यह कह रही हैं मन ही मन कि मुझे तो वेणी गुंथन भी नहींआता- कैसे

करूंगी? परन्तु बड़ी ही कोमलता से प्रियाजी की केशावली में सुगन्धित तेल लगा रही हैं- पुलकित तथा गद्‌गद हो रही हैं ।

× × ×

प्र कृति की अलबेली छटा और हरिताभा मण्डित एक रमणीय कक्ष में प्रिया-प्रियतम तथा श्री ललिता जी विराजमान हैं । प्रियतम श्याम सुन्दर ललिताजी से विनोद कर रहे हैं । प्रिया जी ने श्री ललिता जी से कुछ कहा और बाहर जाने को उद्यत हुईं कि एक पर्दा हटा प्रियतम श्याम सुन्दर ने जाती हुई किशोरी को पकड़ कर वहीं ललिता जी के पास बिठा दिया । परस्पर विनोद में पुनः रत हो गए । कुछ संकेत कर किशोरी श्री राधा वहां से चली गईं । पुनः सरस सुख प्रवाहित हुआ- मुखरता अब मूक हो रस वर्षण और संचयन में संलग्न हो गई ।

यह सब दृश्य देख देख कर सिहरती पुलकती रहींपू० बोबो ।

× × ×

अ ट्ठाईस सितम्बर १९७० को पू० बोबो, अनेक भाई बहनों सहित गह्वर वन से होकर श्री जी के दर्शन को जा रही थीं । वहां एक ऊंची सी स्वच्छ स्थली मर कुछ देर प्रकृति की क्रोड़ में दृश्य निहारने को सभी के साथ बैठ गईं । एक बहन निर्मल (काकी) ने पद गाया । 'रंग की राशि विलास की मूरति विहरत हैं' पू० बोबो ने श्री मनोहर दास जी से पूछा, 'रंग की राशि' कौन और 'विलास की मूरति' प्रिया-प्रियतम दोनों में से कौन हुआ भला? उन्होंने उत्तर में कहा, "जिसमें विलास की अधिकता हो वही विलास की मूरति"

उत्तर से पू० बोबो को सन्तोष न हुआ । वहीं पू० बोबो को सामने दीखे प्रियाजी सहित श्यामसुन्दर । श्याम सुन्दर खड़े हैं और प्रिया जी पास ही बैठी हैं । प्रियतम दोनों ही बाहें उठा कर विभिन्न चेष्टाऐं कर इन्हें देख-देख संकेत कर रहे हैं । अब प्रिया जी की चिबुक उठा बोले, "विलास की मूरति तुम, और रंग की राशि मैं" प्रिया जी के मन की जान पुनः बोले, "विलास की मूरति से रंग की राशि में तरंगें उठती हैं- इसलिए मैं रंग की राशि और तुम विलास की मूरति"

पू० बोबो का मन इस सब दृश्य को देख, वार्ता श्रवण कर आह्लाद में भर गया ।

× × ×

वे णु विनोद कुञ्ज, वृन्दावन में सन् १९७८ में एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई, जिसके कारण सभी जन बहुत ही परेशान रहे। लगभग पांच छः मास तक विशेष कठिनाई रही। बहुत दौड़–धूप रही। पू० बोबो को भी कुछ खिन्नता सी रहती।

एकांत में ऊपर छत पर वे ऐसे ही घूम रही थीं– सहसा सभी की इस कठिनाई का क्षणिक विचार इनके मन में भी आया, थोड़ी चिंता भी हुई, तभी आवाज़ सुनाई दी 'मंगल', 'मंगल'। इन्होंने कहा, मंगल तो होगा ही निश्चितः पर कब तक ? पुनः वही स्वर सुनाई दिया 'चौदह दिन बाद'। यह बात इन्होंने दो–एक जनों से ही कही कि वसन्त (बारह तारीख) के दो दिन बाद तक सब कुछ ठीक हो जाऐगा। पू. मनोहर दास जी से भी एक दिन बातों ही बातों में "चौदह फरवरी तक सब ठीक हो जाऐगा"- यह कहा। वे इन पर विश्वास करते ही थे– मान गए। सचमुच ही तेरह, चौदह तारीख तक सभी कुछ शांत हो गया।

× × ×

पू० जनीया बोबो संकीर्तन के पश्चात् सुबह को प्रायः एकान्त हेतु लेट ही जाती थीं। आज भी लेटे लेटे देखा :

बड़ी कुञ्ज में डा. सा. वाली कोठी में नल के पास श्यामसुन्दर (पूर्ण वेश में) कुन्द के पुष्प चयन कर रहे हैं। श्री श्री राधा भी वहीं पुष्प चयन कर रही हैं पर उनकी पीठ है इनकी ओर। वरांडे में अपने दिव्य स्वरूप से खड़ी पू० बोबो देख रही हैं। श्याम सुन्दर ने अपनी उँगली पकड़ कर ऐसे ध्वनि की मानों कांटा लग गया हो। पू० बोबो भाग कर गईं और उनकी उँगली पकड़ कर कहा, "यह क्या करते हो ? तुम्हें फूल तोड़ने की क्या पड़ी है भला ?" आप हँसे और हँस कर बोले 'कांटा थोड़े ही लगा है, मैं तो वैसे ही विनोद कर रहा था, तुम्हें बुलाने को।' प्रियाजी जान बूझ कर पीठ किये ही खड़ी रहीं– जिससे इन्हें संकोच अथवा विक्षेप न हो। इतने में देखा श्री सन्तोष बहन जी, सरला बहन जी को फाटक पर छोड़ कर इनके पास आ गईं। श्री ठाकुर कलियाँ तोड़ तोड़ कर सरला बहन जी की ओर फेंकने लगे। दो बार फेंकी। पू. सरला बहन जी समझ गईं कि श्री ठाकुर जी हैं। उनकी ओर आती कलियों को वे बड़े स्नेह से अपनी शॉल में सम्हाल रही हैं।

आगे की बात कहने में कौन समर्थ है भला ?

× × ×

सन् १९७७ की ही बात है। एक दिन पू० बोबो ने देखाः- 'एक स्थली पर रास हो कर चुका है । स्टेज अभी उसी प्रकार बनी है। सभी दर्शक चले गए। श्री ठाकुर अभी भी वहीं बैठे हैं । पू० बोबो नीचे बैठी हैं । श्री ठाकुर बार बार अपना चरण फैलाते हैं और समेट लेते हैं । यह सोच रही हैं कि 'मुझे तो ऐसा कुछ है नहीं कि चरण अवश्य ही स्पर्श करूं ।' फिर ऐसा क्यों कर रहे हैं ? तभी किशोरी जी आकर इनका शीश अपने कर सरोरुह से स्पर्श कर, लाड़ से इनकी केशावली अपनी मृदुल अंगुलियों से सहलाने लगीं ।

अत्यंत सुख में भरी सिहरी पुलकी पू० बोबो के आनन्द की सीमा की थाह कौन पाता भला ?

× × ×

पू० बोबो कई दिन से अस्वस्थ सी चल रही थीं । ज्वर के साथ साथ, अन्दर से ठंड और मुख में गर्मी और खुश्की, छाती तथा गला भारी-भारी था ।

बड़ी कुञ्ज के ऊपर वाले कमरे में एकांत में थीं, इन्हें दीखा हनुमान जी बड़े ही वेग से गदा घुमा रहे हैं । इनके मन में पहले से ही विचार चल रहा था- पता नहीं कब शरीर छूट जाऐ ? चाहती हूं श्री सखा जी की लीलाओं की भूमिका अवश्य लिख दूं ताकि लोग इसे मेरी अपनी कृति न समझें । इन्होंने कहा था । वह निश्चित ही मृत्यु योग था, क्योंकि शरीर से प्रभु जी और कार्य लेना चाहते थे, उन्होंने यह माध्यम बना ऐसी व्यवस्था कर दी ।

× × ×

मार्च १९७८ में अट्ठारह से पच्चीस तक होली की धूम रही। अट्ठारह की सायं में अर्थात नवमी को बरसाने की होली के पश्चात् पू० बोबो ने प्रिया-प्रियतम को गलबहियां दिये, विलास गढ़ी की ओर शयन के लिये जाते और अगले दिन भोर में गह्वर बनस्थ विलास गढ़ी से आते हुए देखा ।

युगल ने रात्रि शयन आज विलास गढ़ी में ही किया ।
यह देख पू० बोबो बहुत ही प्रसन्न होती रहीं ।

× × ×

होली की धूम अपनी चरम सीमा पर है। प्रियतम की गुलाल की धूंधर ने सभी को रञ्जित कर दिया। उधर सखियों का उत्साह भी देखते ही बनता है। वे भी उमग उमग कर रंग से श्याम सुन्दर को सराबोर किये दे रही हैं।

कभी गुलाल की बदली छा जाती है- और कई बार स्वर्णिम पिचकारियों से रस बौछार कर परस्पर रंग से सिक्त कर देते हैं। रंग में भीजे परिधानों में से छलकती अंग श्री बरबस ही सभी का धैर्य हरण कर रही है।

इधर एक ओर खड़ी पू० बोबो यह सब निहार रही हैं। रंग की इस सरस धूम में से बड़ी लाघवता से समय पा, श्याम सुन्दर ने आ अपने रंजित कपोल से पू० बोबो को अनुरंजित कर दिया- सोचने का समय भी न मिला। ओह ...... अमित ..... अगाध रस ..... ।

× × ×

नए संवत् का नया दिन है। सेव्य स्वरूप श्री ठाकुर जी को पीले साटन के सफ़ेद पट्टी वाले, जिसमें हल्के फिरोज़ी से और लाल गाजरी से रंग के फूल हैं, धारण कराए हैं। पू० बोबो नित्य की भांति दोपहर में अपने एकांत में बैठी थीं। किशोरी श्री राधा लगभग दस वर्ष की वय की दीखीं। वे घुटनों के बल बैठी हैं। श्री ठाकुर जी के वस्त्रों में पट्टी में लाल फूल नहीं है, केवल फिरोज़ी ही हैं। किशोरी जी कौतूहल वश अपने वस्त्रों के लाल फूल खेल खेल में झूठ-मूठ उठा उठा कर श्री ठाकुर के वस्त्रों पर रखती हुई मुस्करा रही हैं। श्री ठाकुर जी भी इनके इस कौतुक को देख-देख रीझ रहे हैं। इन्होंने किशोरी जी को इशारे से कहा भी कि "श्री ठाकुर जी के वस्त्रों के साथ लाल से रंग के नग लगे हैं" परन्तु वे इस कौतुक में आनन्द मग्न हैं। बाद में श्री ठाकुर जी अपने पटके के दोनों छोर पकड़ इन्हें ओढ़ा सा रहे हैं। देखते-देखते दोनों ही पूर्ण किशोर रूप में परिणत हो आनन्द प्रदान करने लगे।

पू० बोबो यह दृश्य देख पूरा दिन उसी भाव में मग्न होती रहीं।

× × ×

अगस्त सन् १९७८ की बात है। श्री ठाकुर जी को शयन करा, पू० बोबो भी शयन कर रही थीं। रात्रि में गर्मी अधिक थी। इधर पू० बोबो

का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण वे ठंड और गर्मी का ठीक से निर्णय नहीं कर सकीं ।

''वहीं देखा सिरहाने बैठा कोई, युगल सरकार को पंखा कर रहा है। चौंक कर उठ बैठीं– बड़ी गौर से देखा तो श्री हनुमान जी बैठे पंखा कर रहे थे ।

गद्‌गद हो गईं पू० बोबो, यह सब देखकर ।

× × ×

पू० बोबो श्री रमा देवी जी के साथ पू० पण्डित श्री गया प्रसाद जी के दर्शनार्थ गोवर्द्धन गईं । साथ में श्री सुशीला बहन जी भी थीं। सभी पू. पंडित जी के पास देहलीज़ के पास ही बैठे थे । पू. पंडित जी, देवी जी को सैद्धान्तिक चर्चा सुना रहे थे, और पू० बोबो दानघाटी में श्री गिरिराज शिलाओं पर विचरण करते श्याम सुन्दर को देख रही थीं ।श्यामसुन्दर गुलाबी पाग, पीली धोती, पचरंग पटका और हरे रंग की काछनी धारण किये, दाईं ओर लकुटी का सहारा लिये, खड़े खड़े मुस्कराते रहे ।

यह दृश्य नेत्रों में समाया रहा और आनन्द में मग्ना पू० बोबो वहीं बैठी रहीं ।

× × ×

सन् १९८० की बात है । पू० बोबो ने देखा :–

''अभी भोर का उजाला पूरी तरह निखरा न था, प्रिया-प्रियतम रात्रि भर केलि निमग्न रहे । श्रमालस, मदालस और निद्रालस से मण्डिता प्रिया जी अभी जगी न थीं । वासन्ती समीरण के झोंके से प्रियतम एक दम उठ बैठे तथा प्रिया जी को झकझोर दिया । अर्द्ध मुकुलित उनींदे से नयन खोल, प्रिया जी ने श्यामसुन्दर को देखा और मुस्करा दीं । पुनः नयन मुंदे जा रहे थे, कि सजग करने के लिये श्याम सुन्दर ने उनकी भुजा पर रस वर्षण कर उन्हें सरसा दिया और कर कञ्ज फिराते रहे । उस संस्पर्श से पूर्णतः सजग सी प्रिया जी ने नयन खोल प्रियतम पर दृष्टि डालनी चाही । लता रन्ध्रों के गवाक्ष से पुनः एक सरस झोंका आया । श्याम सुन्दर ने प्रियाजी को गवाक्ष की ओर संकेत कर कुछ बाहर दिखाना चाहा । प्रियाजी समझी नहीं, उन्होंने अपने भोले तथा विस्मय पूर्ण नेत्र उठाए । रस समुद्र की अनगिन लहरियों में डूबते उतरते युगल बाहर पुष्पित वाटिका में चले आए तथा पुष्पों से मंडित

एक घने पौधे के पास आकर रुक गए। बाहर सभी ओर श्यामलता छायी है, अधिक ठंड नहीं है, सुहावना सा लग रहा है सब।

प्रियाजी उन पुष्पों को देख अत्यन्त हर्षित हो रही हैं– और चुन चुन कर अपने आंचल में रखती जा रही हैं। मुड़कर बीच बीच में श्याम सुन्दर की ओर भी देख लेती हैं। प्रियाजी की इस मुग्ध–लुब्ध छवि को निहार श्याम सुन्दर मुग्ध हो रहे हैं। सहसा आगे बढ़ उनके अत्यन्त निकट हो उन्हें ....। इस प्रकार प्रिया जी द्वारा संचित पुष्प पृथ्वी पर बिखर गए, मानों दोनों के चरणों में लोट, बलि बलि जा रहे हों इन दोनों की अटपटी रसीली चेष्टाओं पर।

इन दोनों प्रणय मत्तों की खोज में निकली सखियों ने इन्हें इस पुष्पित पौधे के पास देख लिया था। वे सब छिपी हुईं उस श्यामलता के झीने पर्दे से रसीली चेष्टाओं को निहारतीं रही थीं। पुष्प बिखरने की इस रसीली चेष्टा का अवलोकन कर सखियों के हास्य से मुखरित इस स्थली में रस निमग्न प्रिया–प्रियतम सम्हल गए। प्रियाजी एक ओर नयन नत किये खड़ी थीं तथा श्याम सुन्दर अपनी खोज भरी दृष्टि उठा, कभी इधर उधर देखते और कभी लुब्ध मुग्ध नेत्रों से प्रिया जी की ओर निहारते। उनकी इस सहज मुस्कान से अनगिन रश्मियां बिखर रही थीं।

सभी सखियों ने आ घेरा प्रिया प्रियतम को और फिर हास परिहास के मेले में समय का भान ही न रहा।

हल्की हल्की सुहावनी सूर्य प्रभा ने आ मानों इन पर वसन्तोत्सव की प्रथम बोहिनी का अबीर बरसा दिया। अब तो सभी चमक उठीं, घर से केशर–कुंकुम–अबीर–गुलाल तो साथ लेकर आई थीं, समय और सुअवसर पा सभी धन्य हुआ। उन बिखरे पुष्पों का उपयोग भी सभी सखियों ने किया और वह स्थली रस में भरी सभी को सराबोर करने लगीं।

यह सब दृश्य देख, मग्न मत्त पू० बोबो की बात लेखनी क्या और कैसे व्यक्त करे ?

× × ×

सन् १९८१ की बात है, बरसाने जाते हुए बस में बैठी श्री जी के मंदिर को देख सोचती जा रही थीं कि इस बार कमजोरी अधिक है। ऊपर दर्शन करने जाना कैसे हो सकेगा। इस कारण मन कुछ चुप और खिन्न सा भी होने लगा।

यह विचार अभी समाप्त भी न हुआ था कि किशोरी जी मंदिर के छज्जे पर खड़ी दीखीं। अपने हाथ से संकेत देकर आश्वासन दे रही थीं कि निश्चिन्त रहो, मैं ले जाऊंगी, सचमुच ऐसा ही हुआ पू० बोबो बड़ी ही सुगमता से ऊपर दर्शन करने जाती रहीं– किसी भी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं आई।

× × ×

सन् १९७५ की बात है। भोर के समय चाय के प्याले श्री ठाकुर जी के सामने रखे पू० बोबो ने सेव्य युगल से निवेदन किया, उठो चाय पी लो। दोनों ही पर्यङ्क के सहारे रजाई में लिपटे बैठे रहे। श्याम सुन्दर की ओर पू० बोबो बैठी थीं और प्रिया जी की ओर पू. सुशीला बहन जी। देखते देखते वह प्याले हरित मणि के हो गए।

× × ×

सन् १९८५ की संध्या को सात, साढ़े सात बजे की बात है। सभी से बात चीत करते–करते पू० बोबो ने पूछा, ''शीशम का पेड़ कैसा होता है?'' इनसे पूछा भी 'क्यों, क्या बात है,' परन्तु यह कुछ भी न बोलीं।

बाद में एक दिन बतलाया, ''एक सुन्दर उपवन में अपने दिव्य देह से पू० बोबो प्रिया–प्रियतम को खोजती घूम रही हैं। किसी ने कहा, 'शीशम के पेड़ के नीचे चबूतरे पर आसीन हैं युगल। धूप और गर्मी थी ही यह सोचने लगीं भला उसकी क्या छाया होती होगी। चबूतरा भी गर्म होगा। परन्तु देखा चबूतरे पर प्रिया–प्रियतम दोनों चरण लटकाए बैठे हैं। शीशम की घनी सुशीतल छाया में आनन्द मग्न हो रहे हैं।

युगल को बैठे देख पू० बोबो पुलकित, प्रफुल्लित होती रहीं।

× × ×

सांकरी खोर में मटकी फोड़ लीला के अद्भुत दर्शन कर पुलकित होती रहीं पू० बोबो। बात ऐसे हुई :-

'' श्री राधाष्टमी उपरान्त वहां की अन्य उत्सव लीलाओं के आस्वादन हेतु बरसाना ही निवास कर रही थीं। सितम्बर मास की सत्ताईस तारीख सन् १९८५ को देखा :-

''सांकरी खोर में विलास गढ़ी की ओर पहाड़ी पर लाखे मखमल के पर्दे पड़े हैं। उसी मखमल से स्तम्भ मढ़े हुए हैं । स्टेज पर भी नीचे वही वस्त्र बिछा हुआ है । उस पर प्रियतम श्यामसुन्दर उलटे लेटे हैं। लगता है, अलस श्री ने आवृत्त कर रखा है, परन्तु बीच-बीच में मुख उठा इधर उधर देख भी लेते हैं । चकसौली ग्राम की ओर से एक गोप बाला सिर पर दधि की मटकी लिये, दूर खड़ी मुग्ध हो प्रियतम को निहार रही है । मटकी यद्यपि अपने कर से थाम रखी है परन्तु पीछे को होती उस मुग्धा के शीश से कब मटकी गिर कर फूट गई और दही चारों ओर बिखर गया- अपनी तन्मयता में वह बाला जान ही न सकी । पास ही वृषभानु किशोरी यह दृश्य निहार-श्याम सुन्दर की ओर देख मुस्कराईं । मानों श्याम सुन्दर से कह रही हैं, ''कि तुमने मटकी फोड़ दी ।'' श्याम सुन्दर भी प्रिया जी की मुस्कान का अभिप्राय समझ, अपना स्पष्टीकरण करते हुए कहने लगे, ''मैंने नहीं फोड़ी यह मटुकी।'' अपनी लकुटी दिखलाते हुए बोले, ''देख लो, यह तो ऐसे ही रखी है ।'' प्रिया जी ने मुस्कान ही मुस्कान में पुनः अपनी बात कही 'लकुटी से नहीं, नयन कटाक्ष से' पुनः दोनों ही उस बाला को नयन कोरों से लाड़ लड़ा रहे हैं ।

पू० बोबो प्रसन्न हो रही हैं यह सब देख कर ।

× × ×
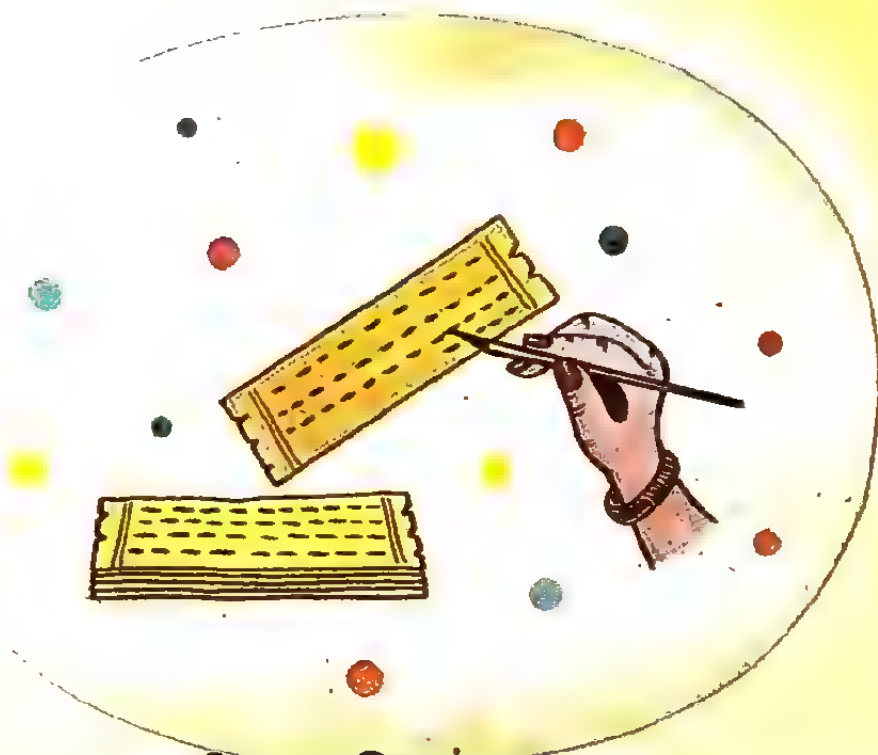
कतिपय कविताएं तथा पद

पुहुप भरी डलिया कर लीन्हें
रसिया आवत कुन्ज गली ते।
अति प्रफुल्ल लोचन अनियारे
भाव भरे रस रंग रली के।
झूमत गुनगुनात मधुरे स्वर
इत उत चितवत नव छवि उपजत।
आपुहिं रचना करि छन्दन मँह
गुन गावत वृषमानु लली के।।
लतनि मध्य ठाड़ी सुकुमारी
निरखे आवत पिय रस रंगीं।
अति उमंग भरि के इन फैंके
उन तन गुच्छा चम्पकली के।।
चौंके चतुर चकित चख चंचल
ठिठकि रुके पग चितवत तिही दिशि।
खिलखिलाई तब हँसी लाड़िली
सुनि पुलके अंग छैल छली के।।
द्रुत गति पग धरि बढ़े उतहिं कूँ
जाय झकोरी नवल किशोरी।

ब्रज विभव की अपूर्व श्री

भक्तिमती ऊषा बहन जी

तृतीय भाग

काव्य

स्वरलिपि :

१. श्री हरिवल्लभ शर्मा
जतीपुरा (गोवर्द्धन)

२. श्री निर्मला शर्मा
एम. ए. संगीत
वृन्दावन

(पू० बोबो)

....

भ्रू कटाक्ष छवि पिय मन हरनी
चितवन बंक नैन कजरारे ।

....

हम सखियन प्रति प्रीति न थोरी
सब बिधि प्रीति निबाहन हारे ।
दोऊ जीवन प्राण हमारे ॥

अनुभूति - अभिव्यक्ति

काव्य

'नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ॥'

आचार्य मम्मट

नियति के नियमों के बन्धन से रहित, केवल आनन्द से ही भरपूर, परतन्त्रता से रहित नवरसों से सुशोभित कवि की वाणी की जय हो ।

काव्य आत्मभाव का प्रतिबिम्ब होता है । जिस वस्तु की हम अनुभूति करते हैं, उसी के आस्वादन में सतत आनन्द मग्न रहते हैं– वही अनुभूति कभी–कभी अभिव्यक्ति के लिये मचल उठती है । वह आत्मानन्द विस्तृत रूप में आस्वादन हेतु बहना चाहता है । अतः उसी स्वानुभव और आत्म सुख का जब अनायास प्रकाश हो जाता है .... लिखित रूप में वही काव्य का रूप ले लेता है । स्वानुभव परम गोपनीय रस है। उसकी अभिव्यक्ति असम्भव ही है । देखते नेत्र हैं, आस्वादन हृदय करता है, और अभिव्यक्ति का माध्यम है मस्तिष्क । एक ही आस्वादन तीन स्थानों पर अनुकरण किये जाने पर अक्षरशः उसी स्तर से कैसे रह सकता है ? परन्तु जो कुछ भी हमें इसी क्रम से अथवा अन्य क्रमों से मूर्त हुआ उपलब्ध होता है उसी को हमें स्वीकारना होगा । जहां अभिव्यक्ति का माध्यम हृदय प्रधान है, केवल आत्मानंद की अभिव्यक्ति तक बद्ध है, उसे श्रेष्ठ कहना ही होगा । यह सब नियति के बन्धनों पर भी विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है ।

आत्मा की मुक्तावस्था ही ज्ञान कहलाती है, और हृदय की मुक्तावस्था, रस दशा को जिस माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सकता है अथवा गोपनीय रखने के प्रयत्न पर भी सहज अभिव्यक्ति हो जाती है– उसके उस माध्यम को, रूप को ही काव्य की संज्ञा दी गई है ।

अनुभूति जब अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है तो उसी को हम स्थायी अभिव्यक्ति अथवा सत्साहित्य के नाम से जानते हैं ।

काव्य, उसके प्रकार तथा भावनाओं का मूल्यांकन, बाद की बातें हैं । अपने प्रेमास्पद को देख, उनकी लीलाओं का आस्वादन कर

उस रस में सराबोर होने की कामना– अथवा उस सुखानन्द में आस्वादन रत हो हृदय में उठी रस तरंगों के प्रवाह से, रस कण छलक कर वाणी से, पुलक से अथवा किसी भी शारीरिक क्रिया से अभिव्यक्त हो जाते हैं; उन्हें ही हम अनुभव/आस्वादन अथवा काव्य की संज्ञा देते हैं ।

आस्वादन एक स्वच्छन्द विधा है । शास्त्र की मर्यादाओं का बन्धन वहां नहीं है, तर्क का वहां प्रवेश नहीं है तथा व्यवस्था के लिये वहां कोई स्थान नहीं है .... वहां रस ही रस है; आस्वादन ही आस्वादन है ।

पू० बोबो का काव्य, 'काव्य' नहीं है– वह है उनके आस्वादन का स्वतंत्र रस प्रवाह, रस सिंधु में उठी वीचियों में तैरते, आस्वादन करते भावों की अभिव्यक्ति । अभिव्यक्ति का प्रवाह इतना सहज और नैसर्गिक है कि उसमें उनका रञ्च मात्र भी प्रयास नहीं दीखता, प्रत्युत उनकी यह काव्याभिव्यक्ति अनेक बार श्यामा–श्याम के रस संकेतों, उनके सजग तथा प्रत्यक्ष सहयोग से ही पूर्णता को प्राप्त हुई है ।

आइये कतिपय पदों में वर्णित अनुभव प्रसङ्गों का किञ्चित् आस्वादन करने का प्रयास करें ।

१. [राग बिलावल

मैं प्रिय के पद-मंजीरों की
मुखरित ध्वनि से चिर-परिचित हूँ।

मैं परिचित हूँ उन रागों से
जो उनकी पद-झंकार बने।
मैं परिचित हूँ उन तारों से,
जो चरणों का शृंगार बने।
जानें कितने युग बीत गये,
कितने जग बन बन कर बिगड़े।
कितने फिर फिर निर्माण हुए,
उत्थान हुआ, बस कर उजड़े।
मैं विश्व-विपिन से दूर किसी
सूने कानन की अमर लता।
तब से ही उनके नूपुर की
ध्वनि सुधा-सलिल से सिंचित हूँ।

मैं प्रिय के पद मंजीरों की
मुखरित ध्वनि से चिर-परिचित हूँ॥

मैं परिचित हूँ उस नर्तन से
जिससे जग ने गति लय पाई।
मैं परिचित हूँ उस थिरकन से
जो जग में नव अभिनय लाई।
उससे चिर परिचय है मेरा
जिसने सृष्टि विस्तार किया
जिसने जग को चैतन्य किया
जग में जीवन-संचार किया
जिस पर वह मृदुल चरण ठुमके
जिस पर वह युगल चरण थिरके
जो महक उठी पद तल छू कर
उस ही पद रज से निर्मित हूँ।
मैं प्रिय के पद मंजीरों की
मुखरित ध्वनि से चिर परिचित हूँ।

२.	भैरवी

तुम पागल सा कर देते हो ।

भर देते हो इस जीवन में,
कुछ मादकता मदहोशी सी
कुछ आकुलता, आतुरता सी
कुछ बेचैनी बेहोशी सी
निज स्नेह-सिंक्त संकेतों से,
मन में मृदुता भर देते हो

तुम पागल सा कर देते हो ।

हर लेते हो मैं-मेरापन,
भय राग द्वेष जड़ता-कटुता
सुख-दु:ख अभिमान निराशा सब,
मद-मोह स्वार्थ गुरुता लघुता
निज चंचल नयनों से मेरी,
सब चंचलता हर लेते हो ।

तुम पागल सा कर देते हो ।

३.	राग भूपाली

मुझे न तेरा त्रास चाहिये ।

जग कहता है, तू स्वामी है, तू मालिक है, बहुत बड़ा है ।
तेरी नियति बड़ी कड़ी है, तेरा इक इक नियम कड़ा है
रहे बड़प्पन तेरा तुझ तक, रहे तुझी तक तेरी महिमा,
मुझे न अपना भय दे मनहर ! मुझे प्रेम-विश्वास चाहिये ।

मुझे न तेरा त्रास चाहिये ॥

मुझे नहीं है ऐसी इच्छा, मैं तुझको पलकों में बांधूँ ।
और न देख सकें फिर तुझको, केवल मैं ही तुझको साधूँ ।
नहीं चाह है ऐसी मुझको, मैं तो इतना ही कहती हूँ ।
आंखों से रह दूर भले ही - पर प्राणों के पास चाहिये ॥

मुझे न तेरा त्रास चाहिये ॥

४. राग बागेश्वरी

'दूर भी तुम, पास भी हो।'
हो विरह अनुभूति भी
सामीप्य का आभास भी हो।
दूर भी तुम, पास भी हो।
जानती हूँ देव, मैं तुम प्राण से भी हो निकटतम।
मानती हूँ देव मैं, तुम श्वास से भी हो सरलतम।
फिर न जानें भाव क्या हैं- जो हृदय में हैं तड़पते ?
कौन से वह भावघन हैं- अश्रुबन कर जो छलकते ?
और कुछ जानूँ न जानूँ पर मुझे इतना पता है
अश्रुपूरित लोचनों में प्रेम-मय विश्वास भी हो
दूर भी तुम, पास भी हो।
नित्य नव उल्लास देता मिलन चिर नूतन तुम्हारा।
निकट ही पाया तुम्हें प्रिय जब कभी मैंने पुकारा।
जब कभी ठोकर लगी या जब कभी पग डगमगाये
नित्य आश्वासन दिया तब दौड़ कर तुम पास आये।
तुम जहाँ मनहर मिलन की हास रेखा हो, वहाँ पर,
विरह व्याकुल इस हृदय की चिर विकल निश्वास भी हो
दूर भी तुम, पास भी हो।

५. राग-केदार

पूछते हैं लोग मुझ से,
श्याम से सम्बन्ध क्या है ?
नयन हो उठते सजल,
मुस्कान अधरों पर बिखरती,
और फिर बातें पुरानी,
सब हृदय-पट पर निखरतीं।
रुद्ध हो जाता गला तब
मूक हो जाती मुखरता
क्या कहूं, जाती कहाँ वह
बोलने की सब सुघरता ?
थकित वाणी, नमित लोचन
प्राण ! यह प्रतिबन्ध क्या है ?
पूछते हैं लोग मुझ से
श्याम से सम्बन्ध क्या है ?

६. राग दरबारी

मैं नहीं प्रतिदान चाहती ।

चाहती हूँ नाथ लेकिन, मैं तुम्हें अपनी सुनाऊँ ।
तुम न यदि मेरे कहाओ, मैं तुम्हारी ही कहाऊँ ।
बात सब जग की भुला कर, मैं तुम्हीं में रत रहूँ नित ।
पर न कष्टों से जगत के, मैं कभी परित्राण चाहती ।
मैं नहीं प्रतिदान चाहती ॥
लापता होकर रहूँ मैं, बस तुम्हें मेरा पता हो ।
यो रहूँ तुम पर समाश्रित, वृक्ष पर आश्रित लता ज्यों ।
नयन तुमको ही निहारें, प्राण तुमको ही पुकारें,
चाहती हूँ राग तुमसे, पर नहीं सम्मान चाहती ।
मैं नहीं प्रतिदान चाहती ॥
मैं तुम्हें रो रो पुकारूँ- इसलिये मुझ पर द्रवित हो
इसलिये मुझ पर कृपालु के कृपा वारिद स्त्रवित हों
इसलिये करते कृपा तुम, दौड़ कर आओ यहाँ पर ।
तुम रहो मेरे लिये ही, मैं नहीं भगवान चाहती ।
मैं नहीं प्रतिदान चाहती ॥

७. रागतोड़ी

मेरी यह पीड़ा श्री राधे ....
तुम बिनु और न कोई जाने ॥

नारी उर की विकल वेदना
केवल नारी ही पहिचाने ॥
आकुल मन की व्याकुलताऐं
धूं धूं करतीं उर ज्वालाऐं
पागल–पन की अनगिन बातें
धुंधली धुंधली सी आशायें

जीवन के सूने प्रांगण में
पीड़ित आंखों की बरसातें
विह्वल रसना के बेबस सुर
आश निराशा मिश्रित तानें ।
तुम बिनु और न कोई जाने ॥

प्रणयासव दे दे कर पहिले
सरल हृदय में तृषा जगाना
नवल राग रंजित नयनों से
नयनों में मधुरस भर जाना ।
अर्द्ध तृप्त ही छोड़, निठुर हो,
नयन, प्राण, तन, मन सब ले फिर
दूर खड़े हो कर तड़पाना,
उस पर छलिया की मुस्कानें
तुम बिनु और न कोई जाने ॥
मेरी यह पीड़ा श्री राधे
तुम बिनु और न कोई जाने
नारी उर की विकल वेदना
केवल नारी ही पहिचाने ॥

❀

८. राग शिवरञ्जनी

आज फिर अन्तर विकल है ।
चिर पिपासित उर मरुस्थल,
मांगता फिर स्नेह जल है ।
आज फिर अन्तर विकल है ॥
अब अधूरी भावनाऐं, फिर मचलती जा रही हैं
फिर बदलती जा रही हैं, मौन नीरव साधनाऐं,
रिक्त-रागा कामनाऐं, फिर संभलती जा रही हैं ।
गा रही हैं चिर उदासीना, हृदय की धड़कनें फिर,
गान वो ही राग रसमय
गीति जग में जो विरल है ।
आज फिर अन्तर विकल है ॥
अब न संयम काम देगा, उर उमड़ता आ रहा है
रव घुमड़ता आ रहा है, भावमय रंगीनियों का
अब न तन विश्राम लेगा, मन उखड़ता जा रहा है ।
चाह मेरी अंजुली भर, मधुरिमा का कोष अक्षय

कह न फिर ओ चिर-रंगीले
मांग मेरी क्यों विफल है ?
आज फिर अन्तर विकल है ......

❀

९.	राग रागेश्वरी

आज मेरे प्राण पागल
चाहते हैं नाथ तुम से
फिर वही बीती पुरानी
जो कभी अनजान में ही
चाह कर निज चाह दी थी
आज मेरे प्राण पागल
चाहते हैं नाथ तुमसे ॥
मांगता है विकल अन्तर
वेदना वो ही रसीली
पाश में जिसके बंधे तुम,
और वो ही कसक मिश्रित,
जो प्रबलतम आह दी थी
मांगता है विकल अन्तर
वेदना वो ही रसीली ।
खोजते हैं नयन मेरे
पन्थ फिर से वह सुपरिचित
हैं अपरिचित आज पर जो
नित्य तुम जिस पर मिले थे,
जो तुम्हीं ने राह दी थी
खोजते हैं नयन मेरे
पन्थ फिर से वह सुपरिचित ॥
आज फिर दे दो चिरन्तन
और कह दो बात इतनी
दे रहा हूँ आज फिर वो
एक दिन पहिले कभी जो
निज सुशीतल छांह दी थी
आज फिर दे दो चिरन्तन
और कह दो बात इतनी ॥

१०. 'राग काफी'

कब होगा हमसे प्यार सखी

मेरी वीणा है मूक पड़ी
सोये हैं इसके तार सखी
पर कभी खड़क ही जाती है
ले बजने का अधिकार सखी
मेरी इस नीरव वीणा की
है यही मूक झंकार सखी
कब होगा हमसे प्यार सखी ?

क्या शान्त कभी होगी मेरी
दुःख-दर्द भरी हुंकार सखी ?
क्या शीतल फिर हो पायेंगे
मेरे मन के अंगार सखी !
क्या लुप्त शून्य में ही होंगे
आकुल उर के उद्गार सखी !
कब होगा हमसे प्यार सखी !

आ दीन-दशा देखें मेरी
वह प्रियतम-प्राणाधार सखी ।
आ आप स्वयं वह कर जायें
इस पीड़ा का उपचार सखी ।
दुखिया प्राणों का सम्बल वह
हैं जीवन का शृंगार सखी ।
कब होगा हमसे प्यार सखी ?

११.	राग यमन

सन्त वन्दना

वन्दौं सन्त चरण मंगलमय ॥
प्रकट कल्पतरु सुखनिधि अक्षय ।
वन्दौं सन्त चरण मंगलमय ॥
जिनकी कृपा कोर को पाये,
रहत सदा मन प्रमुदित निर्भय ।
वन्दौं सन्त चरण मंगलमय ॥
जिनके दरस मात्र ते होवें,
चिन्ता, क्लेश आदि छिन महँ लय ।
वन्दौं सन्त चरण मंगलमय ॥

१२.	राग विहाग

(सन्त महिमा)

हरिजन हरि हू ते अति प्यारे ।
निशिदिन रंग करत हरि के संग.
छिनहु न होवत न्यारे ॥
हरिजन हरि हू ते अति प्यारे ॥
जिनका संग किये उर में,
उपजत प्रीति महा रे ।
जिनकी कृपा कोर छिन भर में
बिगड़ी बात सँवारे ॥
हरिजन हरि हू ते अति प्यारे ॥

१३.	राग देस

वृन्दावन

वृन्दावन के नाम सों, पुलकि उठत सब अंग ।
जिहि थल श्यामा श्याम नित, करत रहत रस रंग ॥
वृन्दा विपिन सुहावनो, रस रञ्जित रस मूल ।
तन मन चाहत विलसिबो, याकी सुखप्रद धूल ॥
वृन्दावन प्रति कुञ्ज महँ, बरसि रह्यो रस रंग ।
जाकी सौरभ लेश ते, बेसुध कोटि अनंग ॥

जमुना तट राजत सुभग, वृन्दावन सुख रूप ।
करत जहाँ प्रीतम प्रिया, लीला ललित अनूप ॥
वृन्दावन कुञ्जन सदा, मधुरितु करत विलास ।
विकट घाम अरु सीत जहँ, फटकत नाहिंन पास ।
वृन्दावन को आसरो, वृन्दावन की आस ।
छिन भर को छूटै नहीं, वृन्दावन को वास ॥

१४.	राग भैरवी

जय वृन्दावन

मम प्रियतम के पद पंकज की सुरभित रज से,
प्रतिक्षण पावन .... जय वृन्दावन ॥
जय वृन्दावन ।
मम प्रियतम के मधुरानन से है प्रतिबिम्बित,
तेरा आनन .... जय वृन्दावन ॥
जय वृन्दावन ।
मम प्रियतम की मधु मुरली से, गुंजित तेरा,
वन वन उपवन .... जय वृन्दावन ॥
जय वृन्दावन ।
मम प्रियतम की मधु चितवन से विकसित तेरे,
तरु पात सुमन .... जय वृन्दावन ॥
जय वृन्दावन ।
मम प्रियतम की प्रिय रवि तनया करतीं शोभित,
तेरा आंगन .... जय वृन्दावन ॥
जय वृन्दावन ।
जय वृन्दावन ॥

१५.	राग शिवरंजनी

सबहिं भाँति राख्यो मेरो मन ।
पंगु गिरि चढ़ै नेकु कृपाबल,
प्रकट दिखायो यह अपनोपन ॥

दूर करी म्लानता सारी,
प्रिया स्वामिनी पिय जीवन धन।
सदा सम्हारत कर दै राखत,
या ही बल पै रहौं मगन मन॥

निज जन संग दयो करुणाकर,
अपनी मानत रसिक सन्तजन
देखे बिना योग्यता रञ्चक,
राखत स्नेह 'रु' कृपा अकारण॥

१६. राग पूरिया

रूप रस से पोषिता हूँ,
राग रस से सिञ्चिता।
प्रीति से पालित सदा हूँ,
नेह रस में मज्जिता॥
राग रस से सिञ्चिता॥
स्मित सुधासव तोषिता हूँ,
दृष्टि मधुरस प्लाविता।
लाड़ में संतत पगी हूँ,
मृदुल अंक समाश्रिता॥
दृष्टि मधुर रस प्लाविता॥

१७. राग तिलंग

आन भाँति उन चितयो मोतन
सो चितवन मो हृदय गड़ी री।
वे ठाड़े वा द्रुम की छैयां,
हौं अपने गृह द्वार खड़ी री॥
सो चितवन मो हृदय गड़ीरी।
उन कछु कह्यो मन्द मधुरे स्वर,
सो धुनि मेरे स्रवन पड़ी री।
मदिर मनोहर वाणी मानों,
अमृत सिञ्चित पुहुप झड़ी री॥
सो धुनि मेरे स्रवन पड़ी री॥

तन सुधि रही न, रही ठगी सी,
निकट आय उन भुज पकड़ी री।
तन रोमाञ्च भयो परसत ही,
का जाने सो कौन घड़ी री॥
निकट आय उन भुज पकड़ी री॥
नैननि माहिं झाँकि मुस्काने,
उन्मद अँखियां बड़ी-बड़ी री।
सो चितवन अब निकसत नाहिन,
नैन प्रान मन माँझ अड़ी री॥
उन्मद अँखियाँ बड़ी-बड़ी री॥

सो चितवन मो हृदय गड़ी री।
नैन प्रान मन माँझ अड़ी री॥

१८. 'राग भैरवी'

प्रार्थना

तन मन नयननि कहँ सरसाओ।
फिर वही नेह रस बरसाओ॥
मृदु हास भरा रसमय आनन।
चितवन मधुपूरित दरसाओ॥
फिर वही नेह रस बरसाओ॥
अब झंकृत कर दो उर अन्तर,
अब बुझा बुझा मन उमगाओ।
फिर उसी प्रीति से अवलोको,
हँसते हँसते सम्मुख आओ॥
फिर वही नेह रस बरसाओ॥
फिर उस ही ममता से पोषो,
अपनत्त्व वही फिर प्रकटाओ।
फिर उसी मधुरता से मनहर,
हुलसाओ हिय, मद ढुरकाओ॥
फिर वही नेह रस बरसाओ॥

१९. राग पूर्वी

सखी सुन्दरी स्वामिनी, राधे रूप रसाल ।
वेगि निवारहु लाड़िली, हिय के सब जञ्जाल ॥

प्रेममयी श्री राधिके, प्रीतम प्रेम निधान ।
तृषित दृगन कहँ दीजिये, रूप रसामृत पान ॥

युगल रूप रस माधुरी, बसी रहे मन नैन ।
अंग अंग सेवा निरत, स्रवननि मधुरे बैन ॥

२०. राग ललित

अभिलाषा

रूप पेय नयना चहैं, प्राण अघट रस रंग ।
हृदय संग अविरल चहै, स्पर्श-सुधा-रस अंग ॥
श्रवण सुना चाहें सतत, रस-बतियाँ, मृदु हास ।
अंसाश्रय मस्तक चहै, नासा अंग सुवास ॥
तुम दानी रस-विभव के, रस नायक रस भूप,
निज सान्निध्य सुसम्पदा, वितरहु अमिय अनूप ॥

२१. राग 'गौड सारंग'

कब ढुरकि रहैगो मन मेरो,
कजरारे अम्बुज नयननि पै,
मतवारे स्नेहिल सैननि पै,
रसढारे मधुमय बैननि पै ।
कब ढुरकि रहैगो मन मेरो ॥

मुकुरोज्ज्वल गोल कपोलनि पै,
मकराकृत कुण्डल डोलनि पै,
मृदु हास विलास झकोलनि पै,
कब ढुरकि रहैगो मन मेरो ॥

कब ढुरकि रहैगो मन मेरो,
सुकुमार सुमञ्जुल अंगनि पै,
रस रञ्जित भाव विभंगनि पै,
मुरली की तान तरंगनि पै,
कब ढुरकि रहैगो मन मेरो ॥

२२.　　　　राग भैरवी

चित्त महँ रस रूप समाया रहे,
　　दृग रूप सुधा में पगे हि रहैं ।
बतियां मधुरी सुनने के लिये,
　　दिन रैन श्रवन ये जगे हि रहैं ॥
सिंगार बनाने-सजाने में,
　　कर मेरे नित्य लगेहि रहैं ॥
रस रंग उमंग तरंगनि में,
　　संतत मन-प्राण रंगे हि रहैं ॥
दृग रूप सुधा में पगे हि रहैं ॥

२३.　　　　राग जौनपुरी

याही सुख महं मगन रहौं नित ।
याही सुख महं मगन रहौं नित ।
प्रिया सहित तुम मोतन हेरो,
या हेरनि ते सरस रहे चित ॥

तुम्हरे हित सुख साज सजाऊँ,
समुझि समुझि तुम्हरी रुचि इंगित ।
कछु करिबे की कहो रीझ सों,
वैसो करि सुख लहौं अपरिमित ॥

तुम्हरे संग रहौं निशि बासर
पाइ संग-सुख रहौं प्रफुल्लित ।
कबहुँक बोलि कहो तुम मो सों,
बैठ पास आ डोलति है कित ॥

२४. 'मेघ मल्हार

वर्षा

भीजत चली कुंवरि सुकुमारी ।
इक कर लावनि थामि ऊंचे करि,
दूजे आँचर सीस सँभारी ॥
घन गरजत लरजत नभ दामिनि,
नन्हीं बूँदन परत फुहारी ॥
नाचत मोर विहग वन गावत ।
बहत सुशीतल मन्द बयारी ॥
ज्यों ज्यों वेग बढ़त मेहा को,
त्यों ही त्यों पग धरत अगारी ।
चाहति चलन सवेग सुन्दरी,
चलि न सकत मग रपटन भारी ॥
थकित चकित है तरुतर ठाढ़ी,
भीजे केश, कंचुकी सारी ।
ताही समय अचक पीछे आ,
प्रीतम भरि लीन्हीं अँकवारी ॥
पुलकित तन पीछे करि नैना,
भई प्रफुल्लित पियहिं निहारी ।
हहरि हँसे रसनिधि सुन्दरवर,
बढ़्यो नेह रस मेह मझारी ॥

❀

२५. राग गौड़ मल्हार

भीजत खड़े किशोर कुञ्ज तर ।
मन्द फुहार परत हैं शीतल,
सुरभित वात बहत है सर सर ।
फरहरात पीताम्बर सुन्दर,
लहर लहर लहरात चिकुरवर ॥
भीजत खड़े किशोर कुञ्ज तर ॥

घन गरजत लरजत सौदामिनी,
रिमझिम वेग बढ्यो लागी झर ।
भीजे वसन अंग लपटाने,
गात छटा छिटकी अति मनहर ॥
भीजत खड़े किशोर कुञ्ज तर ॥

२६. राग सूर मल्हार

आज भवन सों निकसि छबीली,
चली अकेली सो छवि अद्‌भुत ।
गरजत घन नभ कौंधत तड़िता,
चौंकि चौंकि चितवत हैं इत उत ॥
लहकति देह वदन विधु दमकत,
कनक वल्लरी जनु ससि संयुत ।
पीछे ते आ घेरि लई यों,
नव घन मधि ज्यों राजत विद्युत ॥

आज भवन सों निकसि छबीली,
चली अकेली सो छवि अद्‌भुत ॥

२७. 'राग मियां मल्हार'

भीजे वसन निचोरत हँसि हँसि
पुनि पुनि भीजत रीझि रीझि कै ।
लट सों छूटत मुक्तालर सी,
स्वच्छ बूँद आवत अंसनि पै ।
गात छटा छिटकी, छवि बाढ़ी,
चिहुँटि लगे तन वसन भीजि कै ॥
पुनि पुनि भीजत रीझि रीझि कै ॥

तन कम्पित रोमावली ठाढ़ी,
शीतल पवन झकोर परस ते ।
भीतर चलहु न किन हे मनहर,
प्रिया हठीली कहत खीझि कै ॥
पुनि पुनि भीजत रीझि रीझि कै ॥

२८.

आओ सब गावें मल्हार ॥
उठीं घटा कजरारी कारी,
शीतल चलत बयार ।
सुनि प्रीतम की रसमय बानी,
सबहिन हर्ष अपार ॥

कह्यो प्रिया हम गावें संग संग.
पग नूपुर झंकार ।
तुम मुरली महँ नव अलाप लो,
लेवहु तान सम्भार ॥

गान कियो आरम्भ सबै मिलि,
लागीं परन फुहार ।
हँसे समुझि सुनि बात प्रिया की,
प्रीतम रस रिझवार ॥

निरखि प्रिया की सो छवि अनुपम,
सके न आपु सम्हार ।
कह्यो एक सखि तान सम्हारो,
हे सुन्दर सुकुमार ॥

सजग भए मुस्काए मनहर,
पुनि सुधि हरी सुमार ।
रह न सकीं लखि विवश नागरी,
भरि लीन्हें अँकवार ॥

२९. 'राग शुद्ध सारंग'

ग्रीष्म

ग्रीष्म ऋतु सब भाँति सिहाऊँ ।
लै तुमहीं विहरूँ नाना विधि,
मनमानी निधि पाऊं ॥
ग्रीष्म ऋतु सब भाँति सिहाऊँ ॥ १ ॥
कर में कर लै उतरि जमुन जल,
लिपटि अंग हुलसाऊं ।
भीजे वसन अंग छवि छलकनि,
निरखि निरखि पुलकाऊँ ॥ २ ॥

जब हम बैठि नाव महँ डोलैं,
इत उत नाव झुकाऊँ।
तब तुम मो सों लिपटति भयवश,
फूला तन न समाऊँ ॥ ३ ॥

कबहुँक बैठि फुहारनि भीजैं,
निरखि छटा कछु गाऊं।
तब तुम नैन तरेरति बरजति,
बरजनि पै बलि जाऊँ ॥ ४ ॥

गोरे गात सुभग अंगनि पर
चन्दन चित्र बनाऊँ।
पुनि-पुनि रीझि रीझि वा छवि पर,
छवि के हाथ बिकाऊँ ॥ ५ ॥

बीनि कुसुम कोमल, मृदु कलियाँ,
अंग प्रत्यंग सजाऊँ।
कबहुँक मेंहदी लगाई स्वकर सों
अंगनि इत्र लगाऊँ ॥ ६ ॥

३०. राग वृन्दावन सारंग

'ग्रीष्म' (कुसुम कटीर)

राजत कुसुम कुटीर प्रिया-पिय, राजत कुसुम कुटीर ।
कुसुम आभरन अंग अंग प्रति, पहिरे झीने चीर ॥
प्रिया-पिय राजत कुसुम कुटीर ॥

सम्मुख चलत फुहारे शीतल, स्वच्छ सुगन्धित नीर ।
पाटल सौरभ लै मधु गन्धा, चली सुमन्द समीर ॥
प्रिया पिय राजत कुसुम कुटीर ॥

भे रोमाञ्चित पवन परस ते, श्यामल गौर शरीर ।
का जाने का सोच समुझि कै, दुहुँजन भए अधीर ॥
प्रिया पिय राजत कुसुम कुटीर ॥

अति रस भोए खोए रहे री, मृदु भावन की भीर ।
रूप रसासव पान मत्त दोउ, बँधे मैन जञ्जीर ॥
प्रिया-पिय राजत कुसुम कुटीर ॥

(उशीर गृह) **वृन्दावन सारंग**

गृह उशीर विराजहीं ।
नवनील घन नव दामिनी, गृह उशीर विराजहीं ॥ १ ॥
सुखद शीतल सेज पर, श्वेत चादर चाँदनी सी ।
युगल सुन्दर तहं विराजत, छवि नैन-मन अभिरामिनी ॥ २ ॥
नव नील घन महं दामिनी, गृह उशीर विराजहीं ॥
बात तो देखो निराली, नीलघन अरु दामिनी ज्यों,
चाँदनी के संग राजित, दिवस भा जनु यामिनी ॥ ३ ॥
सुमन सौरभ की महक सों, और शीतलता बढ़ी ।
बँध गए मधुपाश में वे कुँवर वर अरु कामिनी ॥ ४ ॥
नवनील घन, नव दामिनी, गृह उशीर विराजहीं ॥

'ग्रीष्म' (नौका विहार) **भीम पलासी**

सजी सजाई इक नौका में,
राजत दोऊ सुन्दर मनहर ।
तनिक तनिक सी हरियाली महं,
यत्र तत्र फूलन की शोभा ।
ता मधि अति सज्जित चौकी पै,
बैठे छवि के पुञ्ज युगलवर ॥

कर्णधार को है! हम-तुम में,
बूझत रसिक किशोर छबीलो ।
पिय मुख निरखि, लख्यो ललिता तन,
मौन रहीं श्यामा जू हँस कर ॥

हँसनि कछुक टोना सा कीन्हों,
रहिगे इकटक रूप विमोहित ।
मृदु मुस्काइ कह्यो ललिता जू
कर्णधार तुम दोऊ परस्पर ॥

बहुरि हँसी, हँसि पिय कर परस्यो,
परस सरस कौतुक उपजायो ।
आपु विवश, अब वे सचेत भे,
प्रश्नोत्तर भे अधिक सरसतर ॥
सजी सजाई इक नौका में, राजत दोऊ सुन्दर मनहर ॥

३३. जल विहार — शुद्ध सारंग

हँसि हँसि नीर उछारत दुहुँ कर ।
जमुना जल महँ ठाढ़े सुन्दर ॥
भीज गयो झीनो पीताम्बर ।
तन द्युति छिटक रही छनछन कर ॥
गुनगुनात कछु मन्द मधुर स्वर ।
जनु बहि चल्यो उमगि रस निर्झर ॥
जल कनिका सोहत आनन पर ।
नील कमल पै जनु मुक्ता लर ॥
ठाढ़ी प्रिया तटीय कदम तर ।
नील वसन तन गौर कलेवर ॥
कर बढ़ाइ पिय खेंच्यो आँचर ।
मुस्काईं विकसे अरुणाधर ॥
रीझि रहे सो छवि लखि मनहर ।
रस केलि भई जल केलि परस्पर ॥

३४. जल विहार — मद्यमाद सारंग

दुहुँ कर शीतल सलिल उछारती ॥
कटि पर्यन्त नीर महँ ठाढ़ी,
पुनि पुनि आंचर छोर सम्हारती । दुहुं कर .... ॥
कबहुँक झुकि निज छांह निरखि के,
बिथुरे कुञ्चित केश सँवारती ।
दमकत स्वर्ण फूल स्रवननि महँ,
सीस ढुराइ बिन्दु जल झारती ॥ दुहुं कर..... ॥
आसपास राजतिं ललितादिक,
भरि भरि अंजुरी तिन पै डारती ।
तेऊ हँसति हँसावति छिरकति,
ये भरि लोचन नेह दुलारतीं ॥ दुहुं कर .... ॥

चपल दृगञ्चल इत उत चितवति,
खग कूजन मिलि पियहिं पुकारतीं ।
औचक आ कूदे सरवर महँ
अकबक निरखति पलक न टारती ॥ दुहं कर ....
खिलखिलाय गहि बाँह झकोरी,
सकुचि विहँसि पिय भुजा निवारती ।
संखिजन मुदित भईं मुस्काईं,
नेह नैन भरि करती आरती ॥ दुहुं कर शीतल सलिल उछारती ॥

३५. जल विहार **राग शहाना**

तैरत प्रीतम प्रिया सखिन संग,
एकहि संग उतरि जमुना जल ।

फूल माल लै एक सहेली,
अरुझाई प्रीतम के केसनि ।
एक नवेली कौतुक कीन्हों,
बांधि दिये दोउन के आंचल ॥

रसिकराई जल लै अंजुरी महं,
छिरक्यो उन दोउन के वदननि ।
श्यामा जू निरखति मुस्कावति,
अधर लजावत पाँखुरी पाटल ॥

छ्य निरखि उमग्यो मन पिय को,
सखिन्ह ओर लखि, लख्यो प्रिया तन।
प्रिया बांधि भुज बँधे आपुहिं,
मदन नृपति जनु दीन्हीं साँकल ॥

एकहिं संग उतरि जमुना जल ॥

३६. ग्रीष्म 		**राग सुघराई**

(फुहारे) फवारे

पुष्प शैया पै विराजित,
पुष्प प्राङ्गण महँ युगल श्री ।
सामुहैं छूटत फुहारे,
छवि अमित रंगीन जल की ॥
पुष्प प्राङ्गण महँ युगल श्री ।
रंग हल्के सुखद शीतल,
नीर महँ उज्ज्वल झलक सी ।
धार ऊपर उठत ज्यों ज्यों,
फैलती अतिशय सुगन्धी ॥
पुष्प प्राङ्गण महँ युगल श्री ।
ग्रीष्म ऋतु ने नेहवश ये,
मधुर मृदु सेवा समरपी ।
अति प्रफुल्लित युगल सुन्दर,
निरखि शीतलता बरसती ॥
पुष्प प्राङ्गण महँ युगल श्री ।

३७. 'जन्मोत्सव'

नन्दगाँव (शहनाई)

'राग जौनपुरी'

नन्दभवन बाजत शहनाई ।
नन्दकुँवर की वर्षगाँठ है,
भादौ आठै सरस सुहाई ।
नन्दभवन बाजत शहनाई ॥
मंगल कलश लिए कर कमलनि,
स्वर्णथार शुभ-सौंज सजाई ।
हँसत लसत आईं ब्रजवनिता,
कहत बधाई, बधाई बधाई ॥

नन्द भवन बाजत शहनाई ॥
शुभ अरु शोभा चहुँ दिशि लखियत,
जनु रति मदन करत पहुनाई ।
धन्य धन्य ब्रजभूमि सुहावनि,
निरतत जहँ सुखनिधि–समुदाई ॥
नन्द भवन बाजत शहनाई ॥
नव किशोर वय नवल माधुरी,
छिन छिन शोभा होत सवाई,
नूतन वसन, नवीन आभरण,
रूप छटा बाढ़त अधिकाई ॥
नन्द भवन बाजत शहनाई ॥

३८. 'राग जय जयवन्ती'

नन्दकुँवर को जन्म दिवस है
ब्रज महँ घर घर बजत बधाई ।
नन्दभवन महँ मधुर कोलाहल,
सिंह–पौर बाजत शहनाई ॥
ब्रज महँ घर घर बजत बधाई ॥
आंगन भीर न परत सम्हारी,
जय जय बोलत भेंटत धाई ।
मंगलगान करतिं ब्रजवनिता,
आशिष देत विप्र–समुदाई ॥
जय जय बोलत भेंटत धाई ॥
भीतर झमक–दमक छवि भारी,
चपला मण्डलि जनु घिरि आई ।
सुन्दरि सखियाँ भरी उमंगनि,
थिरकतिं हँसति करत चपलाई ॥
चपला मण्डलि जनु घिरि आई ॥

ललितादिक संग कुँवरि राधिका
मध्य विराजित छवि अधिकाई ।
पीछे ते आ हौले-हौले
भुज भरि लीन्हीं चतुर कन्हाई ॥
पुलकित श्यामा छवि अधिकाई ॥

३९. बधाई 'श्रीराधा' लोकगीत

बरसानो नन्दगाँव गोवर्द्धन, जन्मोत्सव की धूम मची है ।
सकल विश्व की मोहकता, वृषभानु भूप के भवन सची है ।
सो धौं कौन विधाता है री, जाने यह रस-राशि रची है ।
रूप राशि छवि राशि विलोकत रति हू की मनो मती लची है ।
जन्मोत्सव की धूम मची है ।
रूप सींव नन्द लाल लाडिलो, जोरी अनुपम रुचिर जची है ।
हम सखियन की प्राण प्राण यह, नूतन जोरी हृदय खची है ॥

४०. भैरवी

आज सुहावन दिवस सखी री
पिय के हीय उमंग भरी है ।
मंगल-पर्व सुमंगल वेला,
सतत लगी रस रंग झरी है ॥
पिय के हीय उमंग भरी है ॥
प्रीतम अति रिझवार रसिकमणि,
निकट आय कै अंक भरी है ।
पिय-रस-भीनी, सहज नवीनी
हँसि के चितवन बंक करी है ॥
सतत लगी रस रंग झरी है ॥
निज कर हीर-हार पहिरायो,
जगमग मनहु मयंक-लरी है ।
तिन महँ पिय-प्रतिबिम्ब लसत यों,
नीलमणि जनु स्वर्ण जरी है ॥
जगमग मनहु मयंक लरी है ॥
मुग्ध लुब्ध पिय इकटक निरखत,

सुधबुध छवि के फन्द परी है ।
रसवश विवश दशा लखि पिय की,
प्रिया और ही रंग ढरी है ॥
हँसि कै चितवन बंक करी है ।
सतत लगी रस रंग झरी है ।
पिय के हीय उमंग भरी है ॥

४१. 'राग जौनपुरी

आज कुँवरि के जन्म दिवस पै,
बरसानो सरसानो री ।
भीर जुरी वृषभानु भवन महँ,
उमगि रह्यो बरसानो री ॥
बरसानो सरसानो री ॥
नाचत गावत जय जय बोलत,
आनन्द उर न समानो री ।
या कुंवरि की हँसि बोलनि पै,
सबरो गाँव बिकानो री ॥
बरसानो सरसानो री ॥
सुन्दरता सुख राशि नन्दसुत,
मनमोहन ब्रजरानो री ।
कीरतिजा के रूप जाल मँह,
नखशिख लौं अरुझानो री ॥
मनमोहन ब्रजरानो री ॥
सुखद दिवस यह पुनि पुनि आवै,
मंगल मूल सुहानो री ।
या उत्सव मँह मग्न भयो मन,
नेक न अजहुँ अघानो री ।
आनन्द उर न समानो री ॥
बरसानो सरसानो री ॥

४२. बधाई जन्मोत्सव नन्दगाँव 'राग जौनपुरी'

नन्दराय के मन्दिर सजनी,
जन्मोत्सव की धूम मची है ।
तीन लोक चौदह भुवनन की
शोभा सम्पति आय सची है ॥ १ ॥
अंग अंग आभूषण मण्डित
मेंहदी सुन्दर करनि रची है ।
ब्रज किशोरिका मण्डल माँहिं
नव किशोर छवि राशि जची है ॥ २ ॥
एक सखी कर परसि कह्यो कछु,
सुनि चञ्चल की दृष्टि नची है
तारी दै सब हँसीं सुन्दरी
सो छवि लखि रति-बुद्धि लची है ॥ ३ ॥
बाहर नृत्य गान उत्सव सुख,
भीतर औरै छटा खची है ।
मोहकता उल्लास माधुरी
सिमटि आई एकहु न बची है ॥ ४ ॥
जन्मोत्सव की धूम मची है ।

४३. श्री चन्द्रावली बधाई राग देस

आज कछु न्यारोई उल्लास
वर्षगाँठ की चहल पहल है,
पञ्चमी भादों मास ॥
आज कछु न्यारोई उल्लास ॥
आईं सखिन्ह सहित श्रीराधा
चन्द्रावलि जु के पास
आज कछु न्यारोई उल्लास ॥
औरै बढ़ी उमंग सबनि उर,
आनन अमिय उजास ।
आज कछु न्यारोई उल्लास ॥
भेंट समेट की बात चली कछु,
मच्यौ हास परिहास ।
आज कछु न्यारोई उल्लास ॥

४४. 'श्री राम जी की जन्मोत्सव बधाई' राग पीलू

आज अवध महँ अरु मिथिला महँ,
अति अद्भुत आनन्द छयो है ॥
जन्म दिवस अवधेश कुँवर को
लायो सुख उल्लास नयो है ।
गावति गीत विप्र कुल ललना
रवि कुल अम्बुज रवि उदयो है ।
मंगल दिवस मंगल तिथि नवमी,
ब्रह्म परात्पर जन्म लयो है ॥
जय जयकार सुखद कोलाहल,
धरा गगन लौं छाय गयो है ।
सुनि अपनो गुणगान सकुचवश
श्यामल मुख विधु अरुण भयो है ।

४५. रास (वेणु वादन) राग खमाज

नन्द कुँवर वर वेणु बजाई ।
झूम उठे वन विटप वल्लरी
मुग्ध भए खग मृग समुदाई
नन्दकुँवर वर वेणु बजाई ।
सरित-सरोवर कुञ्ज निकुञ्जनि,
सो मन मोहक धुनि लहराई ।
मुग्ध भए खग मृग समुदाई ।
धुनि सुनि भजि आईं ब्रजबाला,
देह गेह सब सुधि बिसराई ।
नन्दकुँवर वर वेणु बजाई ।
चपल नैन सों, सैन बैन सों,
स्वागत कीन्हों हँसि-मुस्काई ।
देह गेह सब सुधि बिसराई ।
जान परत जनु अनगिन चपला,
सजल मेघ कँह घेर्‌यो आई ।
स्वागत कीन्हों हँसि मुस्काई ।

४६. राग हंसध्वनि

मन्द मधुर मुस्कान वदन पै,
उन्मादक चितवन सरसीली ।
कुंडल झिलमिल झलक कपोलनि,
कर सरोज मुरली गरबीली ॥
मुक्तालर राजत ग्रीवा में,
उर वैजन्ती माल रंगीली ।
मोर मुकुट की झुकनि सुहावन,
सीस बनी पगिया चटकीली ॥
चिबुक मनोहर सुघर नासिका,
भाल अलकलट भौंह कटीली ।
उन्नत अंस लसत पियरो पट,
भुजा सुकोमल सबल सजीली ॥
लाल लाल करतल अति कोमल,
मृदु अंगुरिन मुंदरी चटकीली ।
सब मिलि मन मोह्यो री सजनी,
रह न सकी कुल कान हठीली ॥

४७. राग केदार

रास रस उल्लास थिरक्यो,
तरणि तनया के पुलिन पै ।
हास की छवि वदन पै ज्यों,
चन्द्रिका छिटकी नलिन पै ॥
रास रस उल्लास थिरक्यो ।
तरणि तनया ....
युग युगों का प्यार मानों
मूर्त हो थिरका विपिन में ।
राग रंग अभंग अनुपम,
नृत्य बन ठुमका विजन में ॥
युग युगों का प्यार मानों
मूर्त हो थिरका विपिन में ॥

कामिनी हरि संग शोभित,
दामिनी ज्यों नील घन में,
देखि कै फूले लता द्रुम,
चन्द्रमा विहँसा गगन में ॥
कामिनी हरि संग शोभित,
दामिनी ज्यों नील घन में ॥
राग बन अनुराग छलका,
नूपुरों की छम छनन में ।
हाव भाव विलास वैभव,
बह चला उन्मद हँसन में ॥
राग बन अनुराग छलका,
नूपुरों की छम छनन में ॥

४८. राग-हमीर

जमुना पुलिन सुभग राका निशि
पूर्णचन्द्र की विहँसन मनहर ।
रजत बालुका शीतल कोमल,
त्रिविध समीर बहत अति सुखकर ॥
राग बन्यो अनुराग महारस,
मुग्ध भए सुनि सकल चराचर ।
छूम छनन बाजत पैंजनिया,
रुनक झुनक कंकण किंकिणी स्वर ॥
निर्तत चहुँ दिशि हरि, ब्रज बाला,
मध्य राधिका श्यामल सुन्दर ।
नाना भाव व्यक्त करि बहु विधि,
छवि सों थिरकत लै कर महँ कर ॥
सार सम्हार न हार बार की,
शिथिल सिंगार छूटिगो आंचर ।
स्वेद बिन्दु झलकत मृदु अंगनि,
बिथुरे खुलि मानो मुक्ता लर ॥

रस की लूट, छूट रस रंग की,
लूटत घूंटत पाइ सुअवसर ।
नव नव हाव भाव मिति नाँही,
भयो विलुण्ठित-पुष्प धनुर्धर ॥
पूर्ण चन्द्र की विहँसन मनहर
त्रिविध समीर बहत अति सुखकर ।

४९. राग छायानट

नृत्य करत रस रास रसिक पिय,
श्री यमुना के रजत पुलिन पर ।
सखि मण्डल महँ प्रिया राधिका,
गान करति मन मुग्ध मधुर स्वर ।
श्री यमुना के रजत पुलिन पर ।
कबहुँक नृत्यत सखिन संग मिलि,
सीस सीस सों जोरि, पकरि कर ।
प्रिया संग लै तान नवीनी,
रंग बढ़ावत मुरली अधर धर ।
श्री यमुना के रजत पुलिन पर ।
मण्डल मधि आ लपटि प्रियासों,
भाव प्रकासत अधिक सरस तर ।
भृकुटि विलास हास रस रञ्जन,
मधु मद मज्जन प्रेम पुलक भर ॥
श्री यमुना के रजत पुलिन पर ।
तान तरंगनि अंग अनंगनि,
रति रस रंगनि लगी सुरस झर ।
ठुमकत थिरकत छूटीं कच लट,
झुकी चन्द्रिका, खुली मुकुट लर ।
श्री यमुना के रजत पुलिन पर ।

५०. चाँदनी **राग यमन**

विहरत हैं दोऊ रस भीने,
कुञ्ज भवन के आंगन महँ ।
खिली चाँदनी, झिलमिल रजकण,
हीरक चूर्ण बिछ्यो जनु वन महँ ।
कुञ्ज भवन के आंगन महँ ।
नील गगन महँ चन्दा की छवि,
इतनोई कह मुस्काए पिय ।
आशय समुझि प्रिया मुस्काईं,
औरै छवि उझली आनन महँ ।
कुञ्ज भवन के आंगन महँ ।
छवि निरखि रंग सों भर मनहर,
कछु और रंग-रस विस्तार्यो ।
सुधि भूलि रहे मद मत्त युगल,
रत मनसिज-रस-आराधन महँ ।
कुञ्ज भवन के आंगन महँ ।

५१. **भैरवी**

स्निग्ध भाल पै सोहत बिंदिया,
उभय भ्रुवनि मधि अति छबि पावत ।
कारी घुंघरारी लट छूटी,
छबि सर मँह जनु झुकि झुकि झाँकत ॥
कर्णफूल दमकत द्युति भारी,
गण्डनि नील छटा छिटकावत ।
हीर हार नीली चुनरी पै,
नील मणिन को भ्रम उपजावत ॥
रूप मुग्ध रसलुब्ध रसिक पिय
द्वार ओट ठाढ़े मुस्कावत ।
हौले हौले आ पीछे सों,
सम्मुख करि दर्पन दिखरावत ॥
चौंक परी पलटीं पीछे कूँ
पीय प्रवीन कण्ठ लपटावत ।
गाई उठे अटपट लटपट कछु,
कर विनोद मृदु, हँसत हँसावत ॥

५२.　　　　बागेश्वरी

चांदनी में चन्द्रमा दो, कुञ्ज में क्रीड़ा करें ।
निज सरोवर के किनारे, भुजन दै ग्रीवा खरे । कुञ्ज ......
एक ही अंसनि पिछौरी, एक ही माला गरे ।
नन्दनन्दन लाडिली जू, सुरस जंजाला परे ।
पीत श्यामल अंग छबि जनु, नीलमणि कंचन जरे ।
अंग सौरभ, श्वास सौरभ, कञ्ज सौरभ मद हरे । भुजन दै ग्रीवा खरे ।
मूक वाणी मुखर नैना, नेह रस भीजे भरे ।
आ विराजे इक शिला पै, भाव मद ढुरके ढरे । नीलमणि कंचन जरे ।

५३. गोचारण (वन जाने का)　　　　सवैया (भैरवी)

सिर मोरपखा कर लकुट लिये ।
नन्दलाल चले गोचरण को ।
आगे गउऐं, ग्वाले पाछे,
आवत हैं संग सम्हारन को ।
हँसि हँसि इत उत अवलोकत हैं,
नव केलि कला विस्तारन को ।
सखि सरबस हार चुकी पहिले
अब और शेष का वारन को ।
नन्दलाल चले गोचारण को

५४. उत्थापन के पद　　　　राग भैरवी

हे मृदुले ! अब उठो उठो,
खग कूजत अब भोर भयो ।
वचन सुने, सुनि मुस्काईं,
याते बाढ़्यो रंग नयो ॥
खग कूजत अब भोर भयो ।
लै करवट मुख मोर रहीं,
पिय को धीरज बाँध ढयो ।
याते बाढ़्यो रंग नयो ॥
खग कूजत अब भोर भयो ।

अंस भुजा धरि, झुके, हँसे,
दुहुँ कर पकरि झकोर दयो ।
याते बाढ़यो रंग नयो ॥
खग कूजत अब भोर भयो ।
हँसत हँसत उठि बैठ गईं,
प्रीतम उर उल्लास छयो ।
याते बाढ़यो रंग नयो ॥
खग कूजत अब भोर भयो ।
मत्त भयो मद-निधि उमग्यो,
रतिपति लखि बौराय गयो,
याते बाढ़यो रंग नयो ॥
खग कूजत अब भोर भयो ।

५५. राग कलिंगड़ा

हँसि-हँसि हेरत नैन कोर सों ।
अबहिं उठे हैं अरसाए से,
कछु चौंके से विहग रोर सों ।
हँसि हँसि हेरत .... ।
कर सों कर सहलात परस्पर,
उमगन उमड़न दुहूं ओर सों ।
हँसि हँसि हेरत .... ।
पुनि-पुनि सिहरत पुलकत पुनि पुनि
झकझोरे से मद हिलोर सों ।
हँसि हँसि हेरत नैन कोर सों ॥

५६. राग जोगिया

अरसाई सी उठी लाड़िली,
कहती, उन्मादक-उन्माद ।
पौढ़े निरखत रसनिधि प्रीतम,
तन पुलकित अन्तर आह्लाद ॥
बोले, उन्मादक .... उन्माद ॥

चौंक परी सुनि वाणी रसमय,
झिझकीं छलक्यो उर अनुराग ।
पिय उर सीस धर्यो, पिय पुलके,
सहसा गए मनोरथ जाग ।
बरबस छलक्यो उर अनुराग ॥
नींद भरे लोचन, छवि अद्भुत,
सघन पलक बिथुरे कच भाल ।
उन्मादक छवि, मत्त दशा सो,
लखि विकसे पिय नैन विशाल ॥
सघन पलक, बिथुरे कचभाल ॥
भुजनि समेटीं, अति उमंग मन,
पाई निधि जनु बिनुहिं प्रयास ।
दुहुँजन मिलि पौढ़े पुनि सजनी,
को वरनै सो उर उल्लास ॥
पाई निधि जनु बिनुहिं प्रयास ॥

५७. राग अहीर भैरव

भोर भये चन्दा निकस्यो सखि !
अनहोनी सी बात भई ।
नीलकमल चन्दा मिलि विहँसे,
कबहुँ सुनी यह बात नई ? अनहोनी सी ....
सेत सेज पै मृदुल रिजाई,
सघन घटा जनु प्रात छई ।
ता महँ प्रिया-पीय मिलि पौढ़े,
नवनूतन रसघात ठई .... अनहोनी सी .....
वरनि सकै रसविवश दशा को,
अति अद्भुत अनुरागमई ।
पौ फूटी पंछी बन चिहुँके,
जनु चेताए रात गई .... अनहोनी सी ....

नैन खोलि अवलोकि हँसे जनु,

समर जीति इठलात जई ।

नवल प्रीति अरविन्द चन्द की,

सखियन महँ विख्यात भई ॥

अनहोनी सी बात भई ॥

५८.	राग भैरव

विमल चन्द्रिका, स्वच्छ बिछौना,

तापै राजत मेघ दामिनी ।

भोर भयो बोलत बन पंछी,

सुनि उठि बैठे कुंवर कामिनी ॥

मानहु सोहत मेघ दामिनी ।

चकित भये से कहत परस्पर,

वायु वेग सों गई जामिनी ।

कौन उड़ाइ गयो लै या कूं,

वायु तीव्र नहिं, मन्द गामिनी ॥

वायु वेग कत गई जामिनी ॥

सुनि मुस्कावतिं छिपी सहेली,

छटा निरखि नयनाभिरामिनी ।

चौंकि परे परिहास वंचन सुनि

'लै भाजी सखि केलि नामिनी' ॥

छटा निरखि नयनाभिरामिनी ॥

५९. शयन	राग केदार

सुषमा छाई, राका विलसी

दल फूल खिले, शोभा विकसी

पंछी कलरव कर मौन हुए,

जब शय्या पर आसीन हुए,

रस रंग भरे मदमत्त युगल ॥ १ ॥

मृदु शीतल मन्द समीर चली
चन्दा विहँसा चाँदनी खिली
अति मोहक नीरवता पुलकी
जब शय्या पर आसीन हुए,
रस रंग भरे मदमत्त युगल ॥ २ ॥

यमुना तटवर्ती कुं ज घनी
मादक मनहर राका रजनी
हुलसी विलसी पुलकी सिहरी
जब शय्या पर आसीन हुए,
रस रंग भरे मदमत्त युगल ॥ ३ ॥

६०. राग बागेश्वरी

भली बनी जब सोवन लागे।
का जाने केहि हेतु किशोरी,
तुनकि ठुनकि कै सरकी आगे ॥
भली बनी जब सोवन लागे ॥

तनिक लगत ही दृग रस भीने,
भयो काह जो सहसा जागे।
भये चपल पिय हँसि उठि बैठे,
बिथुरीं कचलट सिथिलित बागे ॥
भली बनी जब सोवन लागे ॥

मची कलह, पै कलह केलि बन,
दोउन कहँ रति रस महँ पागे।
ढली निशा कब, कहाँ सजगता,
यों विलास कौतुक अनुरागे ॥
भली बनी जब सोवन लागे ॥

६१. विविध **राग सिन्धु भैरवी**

कर मंह कर लै प्राणप्रिया को,
रेखा देखत हैं, रस लम्पट।
अंगुरिन सों करतल मापत हैं,
अधरनि महँ कछु बोलत अटपट ॥
रेखा देखत हैं रस लम्पट .....

मान करन की बान परी है
अंगनि ऐंठ उमैंठ भरी है।
याको एक उपाय लिख्यो है,
जाते सिमट जाय सब खटपट ॥
रेखा देखत हैं रस लम्पट .....

यों कहि कै कस राख्यो पानी,
वे सिहरीं चतुराई जानी।
कर खेंचन चाह्यो कर में ते,
पै इन रस बरसायो झटपट ॥
रेखा देखत हैं रस लम्पट .....

बोले एक उपाय यही है,
या में कछु सन्देह नहीं है,
ऐंठ उमैंठ मान सब ढहिहैं,
अस कहि रस बरसायो झटपट ॥
रेखा देखत हैं रस लम्पट .....

६२. **राग हमीर**

लो, खिली चाँदनी उपवन में।
कुसुमित अलिन्द महँ शय्या पै,
राजत दोऊजन कानन में।
लो बिछी चाँदनी उपवन में ॥
कर महँ कर लै आनन जोरे,
आधी निशि बीती बातन में।
निद्रा को ठौर कहाँ ऐ, री,
रुचि सों मनसिज आराधन में।
लो, खिली चाँदनी आंगन में ॥

सबरी सुधि भूले मतवारे,
रस भीने सुख सम्वादन में ।
तन मन की सार सम्हार गई,
यों उठा बवण्डर सा मन में ॥
रुचि सों मनसिज आराधन में ॥
रसभीने सुख-सम्वादन में ।
आधी निशि बीती बातन में ॥
लो बिछी चाँदनी आँगन में ॥

६३. राग विहाग

मनमौज भरी रस चौंज भरी,
बातें करते निशि बीत चली ।
रस-रंग, अनंग-उमंग भरी,
छिन छिन प्रति नूतन प्रीत फली ॥
बातें करते निशि बीत चली ।

मुँदि जात कबहुँ दृग नींद विवश,
अलसान भरी जनु कञ्ज कली ।
पै प्रीति-विवश खुलि जात पुनः,
झकझोर जगावत रंग रली ॥
बातें करते निशि बीत चली ॥

दुहुँ ओर ललक मद की मधु की,
अरविन्द दुहुँ, दुहुँ मत्त अली ।
तहँ ठौर नहीं निद्रा हू को,
लखि ठिठकि रह्यो कन्दर्प बली ॥
बातें करते निशि बीत चली ॥

छिन छिन प्रति नूतन प्रीत फली ।
लखि ठिठकि रह्यो कन्दर्प बली ।
अरविन्द दुहुँ, दुहुँ मत्त अली ।
बातें करते निशि बीत चली ॥

६४. राग दुर्गा

दुहुँ जन करत विहार विपिन में ॥

नवल कौतुकी कौतुक कीन्हों,
नील चुनरिया ओढ़ि सीस ते,
आंचर छोर अंस पै डार्‌यो,
मिलि बैठे आ सुघर सखिन में ।
अलि लम्पट ज्यों छिप्यो नलिन में ॥

दुहुँ जन करत विहार विपिन में ॥

ऐते में आईं तहँ श्यामा,
पहिरे सुन्दर चीर गुलाबी ।
हुतीं छिपी वे लता ओट में,
प्रकट न हो जो भेद अलिन में ।
पै रहस्य प्रकट्यो इक छिन में ॥

दुहुँ जन करत विहार विपिन में ॥

निरखि परस्पर विहँसे दोऊ,
वे सब विहँसीं कर तारी दै ।
कह्यो झमकि कै एक सखी ने,
खुल जु गई चोरी सबहिन में ।
रंग भर्‌यो परिहास झरनि में ॥

दुहुँ जन करत विहार विपिन में ॥

६५. राग कामोद

श्यामा श्याम सहज रसभीने,
वन वन करत विहार ।
अति सुख पावत होत प्रफुल्लित,
शुक पिक मृगहिं निहार ॥

सरवर तीर बैठि सखियन सँग,
करत मनोहर गान ।
करतल ताल बजावत झूमत,
लै लै ऊंची तान ॥

कबहुँक सलिल उछारत दुहुँ कर,
मनहर श्याम सुजान ।
कबहुँक छींटे दै चौंकावत,
हँसत करत छवि पान ॥

कबहुँक सघन निकुञ्जन प्रविसत,
लसत करत खिलवार ।
कबहुँक कुसुम कुञ्ज ते निकसत,
दुहुँ कर लता निवार ॥

विविध विनोद प्रमोद प्रफुल्लित,
प्रीतम नव रिझवार ।
कबहुँ रिझावत कबहुँ खिजावत,
वितरत अमित दुलार ॥

६६.　　　　　　　　　　　　　　　　　　**राग बहार वसन्त**

वासन्ती उन्माद .... तुम्हारे नैननि में ।
मदन पर्व आह्लाद .... तुम्हारे नैननि में ॥
उत्फुल्ल कमल समहास-
सुवास मधु अधरनि ।
प्रणयासव आस्वाद ...... तुम्हारे नैननि में ।
वासन्ती उन्माद .... ॥
कुटिल अलक लटभाल,
कपोलनि अरुणाई ।
मधु मदिरा प्रासाद .... तुम्हारे नैननि में ।
वासन्ती उन्माद .... ॥
तिलक रेख रति लेख,
बिन्दु मधि काम बीज ।
मौन मधुर सम्वाद .... तुम्हारे नैनन में ।
वासन्ती उन्माद .... ॥

बंकिम भ्रू मधु बेलि,

पलक नव कुसुमांकुर

आमन्त्रण रस नाद .... तुम्हारे नैननि में ।

वासन्ती उन्माद .... तुम्हारे नैनन में ।

मदन पर्व आह्लाद .... तुम्हारे नैनन में ।

प्रणयासव आस्वाद .... ॥

६७.	राग सोहनी

पीत पुहुप निज कर लै श्यामा,
पिय के केश संवारि सजावत ।
वे हू पीत कुसुम सों इनको,
कबरी भार सजाइ कै बांधत ॥

पुहुप पराग चयन करि प्यारी
कोमल करजनि तिलक संवारत ।
बेंदी दई सुगौर भाल पै
धीमे स्वर रसिया कछु गावत ॥

सुनि सुनि सिहरत नवल नागरी,
भृकुटि चढ़ावत मृदु मुस्कावत ।
निरखि हरषि रस लम्पट प्रीतम,
उमगि भुजन भरि कण्ठ लगावत ॥

६८.	बसन्त बहार

राधा तन छवि कुसुमाकर सी

मादकता मधुमय वाणी की

मदमाती कोयल के स्वर सी ॥

वासन्ती शोभा अंगनि की,

भूषण रव चहक विहंगनि की ।

फहरान रंगीले वसननि की,

जनु झूमीं डालें कुसुमनि की ।
मलयानिल सौरभ श्वासन की,
मुस्कन मादक मन्मथ-शर सी ।
राधा तन छवि कुसुमाकर सी ।
किसलय दल शोभा अधरनि की.
नव कुन्द कली द्युति दसननि की,
अलि शिशु सम आभा अलकनि की,
छवि कुसुम कर्णिका पलकनि की ॥
मृदु मंजुल गोल कपोलन की,
छवि शीतल मधुर सुधा सरसी,
राधा तन छवि कुसुमाकर सी,
मादकता मधुमय वाणी की
मदमाती कोयल के स्वर सी ।
राधा तन छवि कुसुमाकर सी ॥

६१. लीला राग परज

आंचर पट लै मुरकि छबीली,
नयननि मँह मुस्कानी ।
प्रीतम तन पट ओट निरखि कै,
सयननि कछु बतरानी ॥
नयननि महँ मुस्कानी ॥
पाइ सहज ही सुरस सम्पदा
पुलकित भे रसदानी ।
आंचर ऐंचत, झाँकत नैननि,
कहत करत मन-मानी ।
अति पुलकित रसदानी ॥ २ ॥
तुनकीं प्रिया सरकि मुख मोर्‌यो,
पिय बोले रस-बानी ।
सुनहु छबीली तुनक छाँड़ि कै,
साँची एक कहानी ॥
पिय बोले रसबानी ॥ ३ ॥

भोले नैन उठाइ निरखि मुख,
समुझ चाल सकुचानी ।
चपल भये पुनि चतुर शिरोमणि,
बरबस भुज अरुझानी ।
कहत करत मनमानी ॥ ४ ॥

७०.	राग मारू विहाग

कछु बात कही, कह मुस्काऐ ।
दृग पद्म खिले अति सरसाऐ ॥
मृदु अधर दलों की फड़कन में,
रस रंग भरे स्वर लहराऐ ॥
दृग पद्म खिले अति सरसाऐ ॥
वन माल हेरि कछु इंगित कर,
कर कञ्ज उठा पुनि उर लाऐ ।
ये लचक-ललक, ये ललक-छलक,
ये सैन सरस उर उमगाऐ ।
कछु बात कही, कह मुस्काऐ ॥
मुख फेरि चली, सकुची, सिहरी,
वे झूमि झमकि आगे आऐ ।
हौं ठिठकि रही, मन उमगि चल्यो
उन अंक भरी दृग अरुझाऐ ॥
कछु बात कही, कह मुस्काऐ ॥
दृग पद्म खिले अति सरसाऐ ।
कछु बात कही, कह मुस्काऐ ॥

७१.	राग अड़ाना

करत सिँगार, सिँगार भये री ।
हार भये आपस महँ दोऊ,
इनके ऐसे ढंग नये री ॥ ...... करत सिँगार .... ॥
अंग अनंग रंग रस रंजित,
लोचन नूतन भाव छये री ॥ .... करत सिँगार ...... ॥
सिहरत गात रोम भे ठाढ़े,
जनु रतिपति उपहार दये री ॥ ..... करत सिँगार .... ॥

७२.　　　　राग माल कोंस

सुन सजनी ! इक बात आज की ।
करत सिंगार परस्पर दोऊ,
भीर बढ़ी तन छवि समाज की ॥
सुन सजनी ! इक बात आज की ॥
इकटक निरखत रूप माधुरी,
सुधि-बिसरी संकोच लाज की ॥
सुन सजनी ....

रूपासव पीवत तोउ प्यासे,
बात अनूठी प्रेम राज की ॥
सुन सजनी ! इक बात आज की ॥

७३.　　　　राग देसी

'जो तुम मोसों मान करो तो'
इतनोइ कह हँसे रसिक पिय,
सुनि पिय वचन प्रिया मुस्कानी ॥
नैन उठाइ निरखि प्रीतम मुख,
श्यामल कर पै कर धरि बोलीं,
तो तुम का करिहो रसदानी ?
सुनि मद छलक्यो अम्बुज, नैननि,
रसावेश सो निरखि नवेली,
अनायास यों कहि सकुचानी ॥
तो तुम का करिहो रसदानी ?
धीमे स्वर कछु बोले मनहर,
प्रिया वदन छवि और भई कछु,
बिनु कछु कहे कण्ठ लपटानी
सुनि गुनि वचन प्रिया सकुचानी ॥

७५ होरी	राग काफी

फागुन लग्यो विहंसि कह्यो रसिया
श्यामा जू के कान ।
आज प्रथम दिन करौं बोहनी
लै तुम सों रति-दान
सुनि नव नागरि नैन उठाये
अधरनि छलक्यो हास ।
परसि चिबुक बोले रस लम्पट
सफल भयो मधुभास ॥
यों कहि और निकट है मनहर
कण्ठ दई भुजमाल ।
करि मधुपान सरकि पुनि पाछे
मांड्यो वदन गुलाल ॥
पोंछ्यो रंग जोरि मुख सों मुख
सकुचि हटीं पुनि दूर
झपटि पकरि लीन्ही अति छवि सों
झूमि मदन मद चूर ॥
ह्वै रस विवश अनँग रँग भीजे,
लपटि रहे प्रिया गात
बार बार रसदान पान महँ
सांझ गई भई प्रात ॥

७५.	लोकगीत

ये होरी रंग रँगीलो री,
ढोटा ये छैल छबीलो री ॥

रूप भर्‌यो इतरातो डोले,
हो हो होरी होरी बोलै,
नैन नचावै छवि को तोलै,

छैला ये, मद गरबीलो री,
ढोटा ये छैल छबीलो री ।

ये होरी रंग रँगीलो री .... ।

काहू के गरबहियाँ मेलै ।
रंग माँडि मुख भुजन सँकेलै ।
एकनि झगरत एक सहेलैं ।
रसिया ये रूप रसीलो री
ये होरी रंग रँगीलो री ॥

रंग रार याही अति भावै ।
ठुमकि धरै पग भौंह मटकावै ।
ऊंचे स्वर रस गारी गावै ।
बाँको ये नेह हठीलो री ॥

ये होरी रंग रँगलो री ।
ढोटा ये छैल छबीलो री
छैला ये मद गरबीलो री ॥

७६.	राग जयजयवन्ती

होरी में अनुराग लुटत है
ब्रज की वीथिन्ह माँहि ।
सखी ! इन ....
फाग सुहाग सुभाग लुटत है,
आनन्द उर न समाँहि ....
सखी ! सुनि ....
कालिन्दी तट धूम मचत है
कुञ्ज निकुञ्जन छाँहि ....
सखी, चल ....
वन वन उपवन रंग मचत है,
अंग उमंग उमाँहि ....
सखी ! भरि ....
इत सखिजन उत पिय रस लम्पट
बदन मांडि मुरि जाहिँ ....
सखी ! हँसि ....

अति छवि सों भाजत मुरि चितवत

सैननि मैन नचाहिँ ....

सखी ! दृग ....

भरि भरि मूठ गुलाल उड़ावत

झपटि भुजन अरुझाँहि ....

सखी ! पिय ....

पिचकारिन रंग मार मचावत

नेक न उर सकुचाहिँ ....

सखी ! यह ....

बाँह झकोरत आँचर झटकत

लाख कहैं नहिं नाहिँ ....

सखी ! हम ....

मुख ते बात कहें रिस की

पै, इनके सुरस सुहाहिँ ....

सखी, सच ....

ब्रज की वीथिन्ह मांहि .... ॥

७७.	राग रागेश्वी

धर प्रिया का रूप प्रकटी

पीय की रस लालसा ही

रात दिन इस लालसा से

हैं विभूषित रस प्रवाही ॥ १ ॥

रस मधुरिमा से सुनिर्मित

मूरति यह चित्त चाही

पीय ने रखी संजो कर

नैन मन अरु प्राण मांही ॥ २ ॥

हेम लतिका में सकुच-श्री

और जो रस तुनक आही

नित्य नव नव केलि हित है

नील तरु की कामना ही ॥ ३ ॥

प्यार में दोनों पगे हैं
प्यार ही छिन छिन सुहाही
प्यार ही साकार है यह
खेल है सब प्यार का ही ॥ ४ ॥

७८. विविध — गौड़ सारंग (ध्रुपद)

मधु मधुर मृदु भावना, रस कामना के राज्य में,
दो चोर कल पकड़े गए ॥
निधि मैन की, रस रैन की,
चित चैन की चोरी किये ।
रति रंग के, सुख संग के,
रस अंक अंगों में लिये ।
मुस्कान से, दृग बान से करते हुए झगड़े नए ।
दो चोर कल पकड़े गए ॥
अटपट वचन, लटपट वसन,
अनुराग रस मदिरा पिये ।
रुनझुन रसन, उन्मद हँसन,
रोमाञ्च तन पुलकन हिये ।
अलसाए से, बौराए से, रसपाश में जकड़े गए ।
दो चोर कल पकड़े गए ॥

७९. — केदार

यह रूप छटा नव नागर की ।
नूतन रस केलि उजागर की ।
तू रोम रोम प्रति देख सखी,
माधुर्य मदाम्बुधि की उमगन,
मादक मुरली धुनि के संग संग.
नूपुर मण्डित पग की ठुमकन ।

शृंगार सुधा रस से सिंचित,
शीतल मृदु अंगन की पुलकन,
छिन ही छिन औरै और सखी,
अनुपम शोभा छवि आगर की ॥
यह रूप छटा नवनागर की ॥

मंजुल मधुराधर पर राजित ।
पीयूष पगी उन्मद विहँसन ।
अनियारे नयनों से झरती ।
अनुराग भरी रसमय चितवन ॥

नीलारुण मृदुल कपोलों पर,
कुण्डल द्वय की मनहर थिरकन ।
अति चपल चपल अति तरल तरल ।
मधुरिम सुषमा रस सागर की ।

यह रूप छटा नव नागर की ।
नूतन रस केलि उजागर की ॥

८१. मियां मल्हार

राग की रस सिक्त साधें
प्रीत के संकेत मनहर
छा गये बन स्मित वदन पै
लोचनों में हास बन कर । १ ।
प्रीत के संकेत मनहर । ....

अंग फड़कन बन समाया
नील वपु में पुष्प धनुधर
राग रस की लालसा से
है गये जु त्रिभंग, सुन्दर । २ ।
प्रीत के संकेत मनहर । ....

वक्ष पै श्री वत्स के मिस

अंकुरित हैं प्रेम अक्षर

बाँसुरी की तान-लय, में

है प्रवाहित नेह निर्झर । ३ ।

प्रीत के संकेत मनहर । ....

रूप की इस मधुरिमा पे

मुग्ध हैं सब ही अचर चर

विद्ध हैं ब्रज कामिनी, पै

रूप, चितवन, हास के शर । ४ ।

प्रीत के संकेत मनहर । ....

८२. राग खमाज (ध्रुपद)

देख सखी नन्दलाल, आवत हैं ठुमुक चाल ।

ग्रीव की ढुरनि देख, कच की रुरनि देख,

छबि सों हँसि मुरनि देख, एक हस्त सुमन डाल ।

देख सखी नन्दलाल .... ।

मुख पै स्मित छलक देख, मनहर सघन पलक देख

चल कुण्डल झलक देख, उर पै सोहत जलज माल ।

देख सखी नन्दलाल .... ।

कुटिल भृकुटि भंग देख, नयननि रस रंग देख

नवल तन अनंग देख, प्राणनि प्रतिपाल देख ॥

देख सखी नन्दलाल .... ।

देख सखी नन्दलाल, आवत हैं ठुमुक चाल ॥

८३. राग दरबारी

यह छलक कैशोर्य की है 'या तुम्हारे राग रस की'

ये लुनाई विधु बदन पै,

और यह विहँसन सजीली ।

नैन अनियारे मनोहर,

और यह चितवन नशीली ।

यह झलक कैशोर्य की है,
या तुम्हारे राग रस की ॥ १ ॥
नील वपु में ये चपलता,
और अंगों में खुमारी ।
लास्य नीलारुण पदों में,
लचक कटि-तट में तुम्हारी ।
यह लटक कैशोर्य की है,
या तुम्हारे राग रस की ॥ २ ॥
कम्बु ग्रीवा की ढुरनि ये,
ये कटीली भ्रू-विभङ्गी ।
कुण्डलों की झूम झांई,
लहलहाती छब त्रिभङ्गी,
ये ललक कैशोर्य की है,
या तुम्हारे राग रस की ॥ ३ ॥
ये भुजाओं में प्रकम्पन,
माल की पुलकन रँगीली ।
बाँसुरी पै करज नर्तन,
गान की तानें रसीली ।
यह छलक कैशोर्य की है,
या तुम्हारे राग रस की ॥

ब्रज विभव की अपूर्व श्री

भ
क्ति
म
ती
ऊ
षा
ब
ह
न
जी

(पू० बोबो)

चतुर्थ भाग

श्रद्धाञ्जलियाँ

कतिपय भावोद्गार

श्यामा श्याम की एकान्तिक रसमयी केलि में
सतत निमज्जिता, अनुरंजिता महाभागा
पुण्यमयी को शत–शत
नमन

आज हृदय में कौंध रही है–
भूली भूली बात पुरानी, भूली भूली बात।
जाने किस रस में मज्जित थीं–
वह सब संध्या प्रात, सुहानी वह सब संध्या प्रात।
जब जब मिलते थे वन–पथ पर
गाते अटपट गान मधुर स्वर, गाते अटपट गान।।
मधुर रूप रस पेय पिलाकर,
हरते थे मन–प्राण, विवश कर हरते थे मन प्राण।
अब भी तो है वही लालसा,
वही रसीली चाह–छबीले, वही रसीली चाह।
उर अन्तर मांगा करता है
वो ही सुरस प्रवाह, रंगीले वो ही सुरस प्रवाह।

श्रद्धाञ्जली

पू० बोबो का चरित्र छपने की बात जब चली तो अनेक अपनों ने उनके प्रति अपनी भावनाऐं व्यक्त कीं, लिख कर भी भेजीं। उन्हें यथोचित सम्मान तो मिलना ही चाहिये था, परन्तु ग्रन्थ का प्रारूप, स्मृति-ग्रन्थ न होकर एक भक्त गाथा के रूप में बना- अतः पूर्णरूप से श्रद्धाञ्जलियाँ दे पाना सङ्गत न लगा। बहुत विचार कर एक उपाय सूझा और उनकी उस विस्तृत श्रद्धाञ्जली सामग्री से विस्तारभय के कारण मार्मिक पंक्तियों को ही संक्षेप में उद्धृत किया गया है- अतः मैं उन सभी स्वजनों से क्षमा प्रार्थी हूँ। आगे जैसे-जैसे अन्य सामग्री प्रकाशित होगी हम सभी की भावनाओं को यथोचित सम्मान देने का प्रयास करेंगे।

ऊषा जी एक महान रसिक संत थीं। साधकों के लिये प्रेरणा स्रोत थीं- भक्ति की उच्चतम उपलब्धि प्राप्त, प्रिया-प्रियतम की निज परिकर, अनन्या सखी थीं।

पूजनीया श्री ललिता जी भाबूटा।

ऊषा जी की अद्वितीय रसमयी भावना जिसे श्यामा-श्याम ने प्रतिक्षण स्वीकारा-सत्कारा है- अतुलनीय है।

पू० श्री धर्म जी एम. ए. बी. टी.

ऊषा जी की महानता, विशाल हृदयता, सभी के प्रति समदृष्टि, सर्वोपरि प्रिया-प्रियतम के चरणों में अनन्य अनुराग जो सदा छलक छलक कर प्रेम रस के मिस बरसता रहा, निस्संदेह उनके अभूतपूर्व व्यक्तित्व का परिचायक रहा।

पू० श्री सरला जी, सन्तोष जी, वृन्दावन।

उनका जीवन तो धन्य हो गया। स्नेह का अखण्ड स्रोत माधुर्य का अगाध सागर, श्यामा-श्याम की अनुरक्ति में भीजा तरल, तरल वह अनुपम रूप- अनेक बार अपनी सरस स्मृतियों से झकझोरता आज भी अपनी रसिकता का परिचय दे रहा है।

श्री ज्ञानवती, पाण्डिचेरी 2.3.93

पूज्या ऊषा बहन जी के दर्शन कर उनके महान आदर्श और भक्ति भावना से सदा सदा प्रभावित होता रहा हूँ ।

श्री भीम सेन चौपड़ा, गोरखपुर मई १९९४

श्रद्धेय श्री श्री बालकृष्ण दास जी, परम पू० पंडित श्री गया प्रसाद जी, बहन सरला जी, सन्तोष जी तथा श्री श्री ऊषा बहन जी ये सभी महानुभाव वृन्दावन चले आने में मेरे प्रेरणा स्रोत रहे हैं । सदा सदा आत्मीयता पाकर अनुगृहीत हुआ हूँ ।

श्री राधेश्याम बंका, गोरखपुर अप्रेल, १९९२

परम भागवत, ब्रज रस की अपूर्व निधि भक्तिमती श्री श्री ऊषा बहन जी, जिन्होंने मेरी प्रत्येक क्रिया को बालवत् मान अपना स्नेह भाजन बनाए रखा, मेरी प्रत्येक शंका का बड़ा ही सन्तोषजनक, आत्मीयता पूर्वक समाधान कर मेरा उत्साह बढ़ाती रहीं ? परम पूजनीया, प्रातः स्मरणीया उन महान विभूति को किस प्रकार अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करूं ?

स्वामी रामेश्वरानन्द, ३, चार सम्प्रदाय नगर, वृन्दावन फाल्गुन पूर्णिमा २०५०

आप छके नैना छके, छके अधर मुस्काय ।
प्रेम दृष्टि जापर पड़े, रोम रोम छक जाय ॥

प्रेमा भक्ति की सजीव मूर्ति, उस महान विभूति के श्री चरणों में शत, शत प्रणाम ।

श्री अर्पिता, मानव सेवा संघ, वृन्दावन ।

प्रिया-प्रियतम की नित्य सङ्गिनी, उनकी लीला माधुरी में निमज्जिता, प्यार की मूर्ति नित्य शाश्वत पथ पर अग्रसरित कर अपनी महानता बिखेर गईं । ओह वे महाभागा ....

श्री उमा गुप्ता एम.ए.बी.टी., दर्शन अग्रवाल बी.ए.बी.टी. अक्षय तृतीया २०५१

हमारी एक मात्र आश्रय प्रेम पयस्विनी बोबो- उन्होंने ही हमें जीवन दिया- पथ का परिचय दिया । वह महान आत्मा .... ।

विमला कपूर, एम. ए. बी. टी., मलिका बेरी, वृन्दावन मार्च १९९४

सन्त शिरोमणि मीरा बाई की भांति, अनन्य प्रेमी भक्तों की परम्परागत अटूट शृङ्खला की वे एक कड़ी एवं तेजोमयी प्रकाशमान जीती जागती आदर्शमयी प्रतिमा थीं ।

श्री के. सी. देवेश्वर M.A.I.T.S., डायरेक्टर टेलीकॉम (रिटायर्ड) दिल्ली ।

शैशव में चैतन्य महाप्रभु और मीरा जी जैसे महान भक्तों ने मेरे मन में अनेक प्रश्न छोड़ दिये थे, जिनका उत्तर नहीं मिल पाता था। स्नेहमयी बोबो के सँग रहकर इन सभी प्रश्नों का निराकरण सहज हो गया।

प्रो० मिस निर्मल गुप्ता, एम. ए. एच. ई. एस. गवर्नमैंट कालेज नाहन।

लन्दन से वृन्दावन (भारत) स्थायी रूप से आने पर प्रेम का अगाध सरोवर, भक्ति का उत्तुङ्ग शिखर तथा वैराग्य का महान आदर्श जो श्री ऊषा बहन जी में सहज और नैसर्गिक था आज के युग में अतुलनीय है।

श्री चक्रपाल भाबूटा, श्रीमति कृष्णा भाबूटा, वृन्दावन।

अपने वृन्दावन आने पर प्रेम और भक्ति की अद्भुत सङ्गम स्वरूपा श्री ऊषा जी के दर्शन कर सदा सदा स्वयं को कृतकृत्य मानता रहा हूँ। वे आदर्श की महान तथा दुर्लभ मूर्ति थीं।

श्री चेतन भाबूटा, लन्दन।

बचपन में जिस बन्द कोठरी के भीतर देख उसके अन्दर का सभी कुछ बतला देने की बात मुन्नो ने कही थी और मैं बाल सुलभ उत्तर द्वारा उससे वंचित रह गया था, आज उनकी महान तथा अनुपम सामर्थ्य, भक्ति भावना, श्यामा-श्याम की लीलाओं में नित्य स्थिति तथा उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व को देख यत्किञ्चित् जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनका अनुज होने का मुझे गर्व है।

श्रीश मोहन भटनागर, नई दिल्ली।

प्रातः स्मरणीया परम पूजनीया श्री श्री ऊषा बहन जी के महान व्यक्तित्व तथा असाधारण भक्ति भावना से प्रभावित हो मेरी छोटी बहन दर्शन तथा सन्तोष को उन्हें सौंप पिता जी सर्वथा निश्चिन्त हो गए थे। उस महामानव को शत शत नमन।

श्री प्रेमचन्द जिन्दल, एसिस्टैन्ट गेरिजन इन्जीनियर (रिटायर्ड) अम्बाला।

उनके दर्शन करके सदा सदा मुझे एक अलौकिक आनन्द तथा आत्म सन्तोष की अनुभूति होती थी। उनका त्यागमय जीवन, निस्वार्थ सेवा, प्रेम भावना- उनमें सभी दैवी गुण थे।

वेद प्रकाश गुप्ता, प्रादेशिक प्रबन्धक न्यू बैंक आफ इंडिया, नई दिल्ली।

वे भक्ति की साक्षात मूर्ति थीं।

चमन लाल, न्यू बैंक आफ इंडिया, बैजनाथ।

जिन स्नेहमयी ने सहज करुणाकर मुझे जीवन दान दिया, अध्यात्म की प्रेरणा दी, वृन्दावन तथा भक्तों के चरणों का अनुराग प्रदान किया, भक्तिमती, उन महाभागा को सादर नमन ।

प्रेमचन्द गुप्ता, एसिस्टैन्ट गैरीजन इंजीनियर, रमेशचन्द गुप्ता, यमुनानगर ।

निश्छल प्यार की अगाध स्रोतस्विनी, भक्ति की अप्रतिम-प्रतिमा, ज्ञान की महान भण्डार, धैर्य तथा शान्ति की गम्भीर सरिणी सभी भगवदीय गुणों से परिपूर्ण सदा सदा हमें आकर्षित कर पथ प्रदर्शन करती रहीं- उन अप्रतिम तथा अलौकिक भक्तिमती श्रद्धेया के श्री चरणों में शत शत नमन ।

लक्ष्मीनारायण वत्स एम. ए. बी. टी., कुसुम वत्स एम. ए. आई. ई. एस.

वृन्दावन की सरस भूमि में बुला जिस महान आदर्श पूर्ण प्रेममयी ने अपने सच्चे प्रेम में बांध मेरा वृन्दावन के प्रति आकर्षण बना मुझमें एक बड़ा परिवर्तन ला दिया- वे महाभागा मेरी श्रद्धेया बनी रहीं । उस महान ब्रज-वैभव को बारम्बार प्रणाम ।

अविनाश चन्द्र नारंग, लैफ्टीनेन्ट करनल, श्रीमती प्रवीण नारंग

स्नेहमयी उस महाभागा के आंचल की सौरभ में बौराए से उस अभीप्सित पथ का परिचय पाते रहें । उनका वह अपूर्व इतिहास .... ।

इन्दु विजय गोडूरा एम. ए. बी. एड., पुनीता वत्स, नई दिल्ली ।

पूजनीया बोबो के जिस स्नेह और आत्मीयता के वशीभूत हुआ मैं वृन्दावन चले आने को बौरा उठता था, जिन्होंने अपनी अपूर्व शक्ति से मुझ में आमूल परिवर्तन लाने का भरसक प्रयास किया, प्रेम की उस प्रतिमा को शत शत नमन ।

अत्यन्त स्नेहमयी कोमल स्वभावा वे महाभागा अपनी प्रिय कामदा को उसके प्रार्थना करते ही तत् क्षण साथ ले गईं । अपूर्व सामर्थ्य सम्पन्ना उन भक्तशिरोमणि के चरणों में बार बार प्रणाम ।

प्रो० नन्दकिशोर अग्रवाल, एम. ए. एच. ई. एस. फ़रीदाबाद ।

पू० बोबो के प्रति आकर्षण हुआ । सहज सामीप्य मिला । असली घर का पता मिला । अपने मधुर विभव का प्रसार करते उन युगल सुन्दर का परिचय मिला । उसी सबका सतत पोषण, सिञ्चन करती गुरू रूपा उन श्रद्धेया ने मुझ में आमूल परिवर्तन ला दिया । उन प्रेम स्वरूपिणी के चरणों में शत शत प्रणाम ।

सुमित्रा गुप्ता, एम. ए. बी. टी., प्रेम मलिक, सन्तोष नारंग, वृन्दाबन ।

अध्यात्म का मार्ग, सन्त सेवा, भक्त चरित्र में निष्ठा तथा सात्विक जीवन यापन की प्रेरणा पा आज भी जिस पवित्रता से हमारा जीवन सधा है, यह उन महाभागा का ही कृपा प्रसाद है ।

डा० अभय वत्स, डा० श्रीमती कल्याणी वत्स, अमेरिका ।

जिस अपरिसीम व्यक्तित्व ने मुझ अपरिचिता को प्रथम दर्शन में ही एक अभूतपूर्व आत्मीयता से सिक्त कर प्रेमानुरागी श्यामा-श्याम के सन्निकट ला बिठा दिया, उन्हीं श्रद्धेया, मेरी परम आराध्या को शत शत नमन ।

डा० निशा शुभ बी. डी. एस. एम. डी. अरुणाचल ।

जिन स्नेहमयी का सतत सान्निध्य पा जीवन एक सुदृढ़ आत्म विश्वास लिये सात्विकता में बहता- अध्यात्म की ओर सहज प्रवाहित होने लगा- मेरी श्रद्धेया उन गुरु रूपा भक्तिमती को प्रणाम ।

आशा भटनागर, प्रधानाध्यापिका राजकीया महाविद्यालय, गोयला (हिमाचल)

मेरे विदेश रहने पर वहीं दर्शन देकर अपने निकुञ्ज प्रवेश का समाचार जिन्होंने स्वयं दिया, जिनकी कृपा ममता बटोरने में सम्भवत: मैं अन्तिम स्वीकृति हुआ, जिनके सतत प्यार और अपनत्व ने मेरी सभी वृत्तियों को समेट वृन्दावन तथा सन्तों में निष्ठा को दृढ़तम कर दिया, पथ प्रदर्शक गुरु रूपा उस महामानव को शत शत प्रणाम ।

शान्तनु पूनम राणा, जकारता (इन्डोनेशिया)

जिन्होंने अपने अमित प्यार से सिंचित और पोषित कर हमें पूरी तरह से सम्हाला, संरक्षण दिया, उन अद्भुत सामर्थ्य सम्पन्ना ब्रज की अपूर्व श्री को शत शत नमन ।

सुनील, मनोज भटनागर, नई दिल्ली ।

श्री श्री चैतन्य महाप्रभु जी की प्रेम द्रवणता, श्री श्री वल्लभाचार्य जी की सी लाड़मयी सेवा, श्री विवेकानन्द जी की सी बौद्धिक सम्पदा, भक्त सूरदास जी, सन्त तुकाराम जी तथा मीरा जी की सी प्रेमभावना जो पुञ्जीभूत हो एक ही महामानव के रूप में प्रकट हुई, वे पू० बोबो थीं । मेरी समस्त वृत्तियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरणा देने वाली भक्तिमती पूजनीया बोबो को श्रद्धासुमन अर्पित करने के लिये मेरे पास कुछ भी शब्द नहीं हैं ।

अनिल भटनागर, ब्रांच मैनेजर, जीवन बीमा निगम, श्रीमती अनुपम भटनागर एम. एस. सी, आई. एस. एस.

जिनकी प्रेरणामयी अमृतवाणी ने मुझे सम्हाला, सदा सदा संरक्षण दे मेरा उत्साह वर्द्धन किया, वृन्दावन का आकर्षण बना एक स्थायित्व प्रदान किया, उन श्रद्धेया भक्तिमती पूजनीया बोबो को कोटि कोटि प्रणाम ।

उर्मिल राजेश्वरी, प्रधानाध्यापिका एम. ए. बी. टी. सेवा समिति गर्ल्ज हाईस्कूल, अम्बाला, श्री तृप्ता चौपड़ा, अम्बाला ।

एक सबल सम्बल दे, पग पग पर मेरा मार्ग प्रशस्त कर सदा सदा सम्हालतीं रहीं । जिनकी अनायास बरसती कृपा ममता पाकर मैं विद्या उपार्जित कर सकी– गुरु रूपा उस महान विभूति के श्री चरणों में प्रणाम ।

श्री शन्नो देवी गुप्ता, एम. ए. बी. टी. प्रधानाध्यापिका, जैन गर्ल्ज हाई स्कूल, अम्बाला ।

श्री कृष्ण की क्रीड़ा स्थली, उनकी गोपनीय लीलाओं की रसमयी भूमि ब्रज में जिन्होंने ला इस माधुरी में सराबोर कर दिया, उन महाभागा की स्नेह और ममतामयी अकारण कृपा के लिये शब्द कहाँ से लाऊँ ? वे अपूर्व थीं ।

सरोज गुप्ता, एम. ए. बी. टी. कौशल गुप्ता तथा पुष्पा गुप्ता

पूजनीया बोबो की अकारण करुणा और ममता पूर्ण स्नेह ने जहां एक ओर शिक्षा दान किया वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक जीवन यापन करने की प्रेरणा दी– मानवता की उस महान आदर्श को सादर प्रणाम ।

श्री विश्वेश्वर नाथ बी. ए. एल. एल. बी. श्रीमती निर्मला गुप्ता

जननी के वात्सल्य सुख से बालपन में ही वंचित हो गया था । पिता के स्वभाव के कारण उनके प्यार से वंचित रहा । पूजनीया बोबो ने दोनों के अभाव की पूर्ति कर एक परम सुख में सिक्त कर दिया; श्यामा-श्याम की नाम माधुरी का रस बरसा सिंचित किया, गुरु रूपा, स्नेहमयी जननी स्वरूपा के चरणों में सादर नमन ।

ओम प्रकाश, भूतपूर्व अधीक्षक, डाक तार विभाग, शिमला ।

पू० बोबो की स्नेहमयी क्रोड़ ने बचपन से ही जिस लाड़ प्यार में सराबोर किये रखा– अध्यात्म का परिचय दिया उसी अपूर्व कृपा ममतामयी की अनवरत बरसती कृपा ने एक पथ, एक लक्ष्य सुनिश्चित कर अवलम्ब दे रखा है । उस महान विभूति को सादर नमन ।

निर्मला शर्मा, एम.ए., संस्कृत-संगीत, सुदेश गुप्ता बी. एस. सी. बी. टी., विमला शर्मा एम. ए. बी. टी. अम्बाला ।

जिनकी अनवरत बरसती कृपा ममता वश उनसे यथा समय उनका अभीप्सित ले पाने में सर्वथा असमर्थ हो, उस महान विभूति की गरिमा का यथोचित सम्मान न कर पाई फिर भी उनकी अकारण कृपा बरसती रही- स्नेहमयी, ब्रज की उस अपूर्व श्री की आशाओं को चरितार्थ कर सकूं, वे मुझे शक्ति प्रदान करें ।

डा. मिस सन्तोष गुप्ता एम. ए. पी. एच. डी, प्रधानाचार्य, राजकीय महाविद्यालय, होडल ।

जिस महान विभूति ने अपने सहज स्नेहवश पद सुन हमें सर्वदा सम्मान दिया, हम एक भुलावे से में ही रहते रहे, आज उसकी आध्यात्मिक चेतना, अपूर्व स्थिति को देख श्रद्धा से मन झुक जाता है- अत्यन्त स्नेहमयी जननीवत पालन पोषण करती उस हमारी परम पूजनीया बोबो के प्रति कुछ भी कहने को शब्द नहीं हैं । वे महान थीं- अपूर्व थीं ।

उमा- उत्तम तथा आभा भटनागर

'कुटिल कर्म' मुझे 'अपनी बरिआई' ले गए, इतस्ततः, तुमने सदैव कच्छप दृष्टि द्वारा पोषण किया । तुम्हीं, अपनी उदार कृपास्निग्धावलोकन मात्र से, मेरी स्वनिर्मित दूरी और देरी से उत्पन्न अभाव को दूर करने में सक्षम हो ।

'तुमरे हिय ममता रस अथोर, दो प्रीति सुधा मँह हमहु बोर ।'

जिस अपूर्व सुख में नित्य निमग्न हो सदा सदा पथ प्रदर्शित करती रहीं तुम्हारे उसी चिन्मय स्वरूप के प्रति 'मैं' और 'मेरापन' समर्पित करते हुए-

राजदुलारी एम. ए., बी. टी.

श्रद्धेया मां आनन्दमयी की कृपा प्राप्त कर निश्चिन्त हो गई थी। वृन्दावन आ सन्त दर्शन की बुभुक्षा बनी रहती थी । जिन कृपामयी ने अनायास ही समय समय पर हित सम्पादन कर मेरा मार्ग दर्शन किया, सभी प्रकार से मेरा ध्यान रखती रहीं, मेरे आध्यात्मिक संकल्प/विकल्पों तथा शंकाओं का सहज निराकरण कर मुझे आत्म सुख प्रदान करती रहीं- उस महान विभूति की आध्यात्मिक चेतना और उपलब्धि का ओर छोर पाना किसके सामर्थ्य की बात है ! उन्हीं महान प्रेममयी सभी की हितैषिणी श्री श्री को-

गुरदीप, मां आनन्दमयी आश्रम, वृन्दावन ।

अक्षय तृतीया २०५१

मेरे अनजाने में ही जिस महिमामयी ने मुझ पर अनायास कृपा कर श्रीधाम बुला लिया । यहाँ के प्रति आकर्षण सहज बन गया । जिन सर्वज्ञाता ने मेरी लौकिक तथा पारलौकिक सम्हार कर सभी प्रकार से अपना लिया मेरी गुरु रूपा अद्भुत सामर्थ्य सम्पन्ना, महामहिमा मयी को सादर सविनय नमन ।

राजेश शर्मा, एकाउन्टस आफीसर, दुबई ।

'भक्ति' तथा उससे युत 'श्री' के मनोरम तटों को प्लावित कर ब्रज रसाम्बुधि में निरन्तर निमज्जिता, रस मज्जिता स्नेहमयी पू० बोबो के प्रति कुछ भी कहने को मेरे पास शब्द नहीं हैं। अद्भुत सामर्थ्य सम्पन्ना उन महिमामयी को शत शत प्रणाम।

शशिकला मुले, एम. ए., बिहारी पुरा, वृन्दावन।

एक बार ही सत्सङ्ग में जाने पर मेरे अनजाने में कृपा का जो स्रोत बहा उसे क्या कहूँ ? उसी में हुआ अध्यात्म का बीजारोपण, जिससे लम्बे अन्तराल तक मैं अनभिज्ञ सी ही रही, आज पुनः उसके प्रस्फुटन ने, उन महाभागा (पू० बोबो) की अपूर्व सामर्थ्य तथा रसमयी स्थिति ने, मेरा सर्वस्व ही झंकृत कर वृन्दावन की लालसा से सिक्त किया है- मधुर रस सम्पन्ना उन महाभागा के चरणों में पुनः पुनः नमन्।

संतोष महाजन, गुड़गांव, हरियाणा। राज सतीजा, पुष्पा चावला, नई देहली

जिन महिमामयी ने समय समय पर उठी मेरी सभी शंकाओं, समस्याओं का सहज निराकरण कर मुझे सदैव भार से मुक्त रखा, पुण्यमयी उन बोबो जी के स्नेह का समादर कर धन्य होती रहूं श्री जी अनुग्रह रखें।

शीला देवेन्द्र भाटिया, बांके बिहारी कालोनी, वृन्दावन।

जिन महिमामयी ने मेरे बालपन में ही मेरी सभी वृत्तियों को परिष्कृत कर, मेरी वृन्दावन भावना, सन्तों के चरणों में अनुराग तथा मेरी समस्त सार सम्हार कर श्री बिहारी जी की सतत बरसती कृपा-अनुभूति की ओर प्रेरित किया, उन्हीं श्रद्धेया के चरणों में सतत प्रणाम !

श्री राहुल नेविल एवं समस्त परिवार, नई देहली।

अपने बालपन से ही जिन महिमामयी के स्नेह और प्यार ने मुझमें अध्ययन के प्रति रुचि दी, अध्यात्म का बीजारोपण कर एक स्थायित्व प्रदान किया, संयोग से आज उन्हीं द्वारा स्थापित कन्या विद्यालय के जिस सर्वोच्च पद पर वे सुशोभित रहीं, उनकी उसी गरिमा को बनाए रख सकूँ, श्याम सुन्दर मुझे शक्ति प्रदान करें !

श्री दर्शन अग्रवाल, एम. ए. बी. टी.
प्रधानाध्यापिका स. ध. क. विद्यालय, अम्बाला छावनी।

पू० बोबो के स्नेह और प्यार ने सिंचित किया। अध्ययन का संयोग बना, आध्यात्मिक जीवन यापन करने की प्रेरणा दी- उन्हीं महिमामयी के श्री चरणों में सादर नमन।

राज, अरुणिमा, स्नेह सक्सेना, वृन्दावन।

सन् १९३८ में अम्बाला में जन्म हुआ। सन् १९६५ में बहन जी की सन्निधि में, हिन्दी भाषा में पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से एम. ए. की डिग्री प्राप्त की। कुछ समय सरकारी अधिकारी पद पर कार्यरत रहने के पश्चात् त्यागपत्र दे सन् १९७२ में व्रज में आ व्रजवासी बन गये 'ऐसो कब करिहौ मन मेरौ'

'बारिशें', 'वेदवाणी' आदि ग्रन्थों का सम्पादन तथा 'व्रज भूमि मोहिनी', व्रज–वृन्दावन की अपूर्व प्रतिनिधि' ग्रन्थों का प्रणयन कर भाषा में एक विशेष सरसता का प्रसार किया है।

'व्रज विभव की अपूर्व श्री' ग्रन्थ की संरचना का श्रेय बहन जी के कृपावारि सिंचित उनके श्रेयस् अभ्युदय से पोषित जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन के कारण साधु भक्ति विजय को जाता है।

अन्यथा न होगा कि प्रत्येक आध्यात्मिक घटना अपने को युगान्तरकारी प्रभाव से दोहराती रहती है। अपने चरित्र नायक, बहन जी के अध्यापन काल में एक ऐसे ही मेधावी छात्र का उनके पास प्रवेश हुआ, जो कि बौद्धिकता से खुलते खुलते प्रज्ञा के द्वार से रागानुगा भक्ति के प्रागंण में पहुँच गया। यह हैं अपने विधार्थी काल में १६ वर्षीय विजय कौशल जो आध्यात्मिक विकास के पथ में उनकी करुणा स्नेह से सिंचित महात्मा 'साधु भक्ति विजय' बने फिर व्रजवासी बन गए।

व्रज के रस व्रजन में बहन जी ने इनके हृदय का द्वार खोल दिया और वह थाती सम्हला गई, अपने व्रज उपासना के संजोए अनुभव से।

श्रीपाद बाबा

जय जय राधिका माधव

अन्तिम वर्ष, की जन्म तिथि पर

रहहु प्रफुल्लित रैन दिन, युगल प्रेम लवलीन ।
प्रेम सरोवर मँह पलहु, जैसे जल मँह मीन ॥

नित्य सिद्ध देह प्राप्त श्री सखा जी ।

'इनकी स्त्री संज्ञा नाय। काहू मिस ते नित्य परिकर को हू भूतल पै आनो परै ।'

श्रद्धेय पंडित गया प्रसाद जी महाराज, गोवर्द्धन ।

'उनके कथन में गमन होना चाहिये, रचित पदों के अनुगत होना चाहिये- केवल उनकी याद भी पर्याप्त है पार होने के लिये ।'

श्रद्धेय श्री बालकृष्ण दास जी महाराज, वेणु विनोद कुञ्ज, वृन्दावन ।

'भक्तिमती ऊषा जी का हृदय मधुरा भक्ति में तन्मय रहा। वे महान रसिक भक्त थीं।'

श्रद्धेय श्री राम दास जी महाराज (करह वाले) कैम्प खैरागढ़, आगरा

'महज्जन समय की प्रतीक्षा नहीं करते, प्रत्युत समय उनकी भावनाओं का समादर कर कृतार्थ हो जाता है ।'

श्रद्धेय श्री श्री पाद बाबा, ब्रज अकादमी, वृन्दावन ।

'ऊषाजी के हृदय में प्रिया-प्रियतम के अनुराग में उठी तरङ्गों उनकी सहृदयता, त्याग तथा तितिक्षा, श्यामा-श्याम के चरणों में दृढ़ अनुराग, श्री राधावल्लभ जी के प्रति आस्था तथा श्री ललिता चरण जी महाराज से आत्मीयता- सभी ने उनके प्रति मेरी आस्था को और और पुष्ट किया है ।'

श्री हित दास जी महाराज, हिताश्रम सत्संग भूमि, वृन्दावन ।

श्री मद्वाल्मीकी रामायण में 'सिद्धा-सिद्ध सम्मता' शबरी के प्रसङ्ग में वर्णित है । समस्त ऋषिगण उनको नमन् करने में गौरवान्वित होते थे, उन्हें वैराग्य भक्ति की प्रतीक मानते थे- यह बात ज्यों की त्यों श्री ऊषा जी में आदर्श रूप से परिलक्षित होती थी ।

श्रद्धेय श्री अतुल कृष्ण गोस्वामी, सन्त शान्ता तीर्थाश्रम, मोती झील, वृन्दावन ।

प्रेमी भक्तों की गरिमा, उनकी सामर्थ्य का कौन वर्णन कर सकता है ? श्री ऊषा जी में, प्रेम था, श्री ठाकुरजी के प्रति उनका आन्तरिक द्रवण था, तितिक्षा थी, वैराग्य था, वे सर्वगुण सम्पन्ना थीं । उनकी सामर्थ्य का तो कहना ही क्या ?

पूज्या श्री ललिता बहन जी, बांके बिहारी कालोनी, वृन्दावन ।